080576

080576

आप
पस
स्कृत
चिरित
ाराक्षस
च्छकटिक
दम्बरी
लदमयन्ती
लिदास के
ुवंश
घदूत
भिज्ञान श
ोग वि
ाचार्य
ग स्त्रियों
ग पुरुषों
गासन व
णायाम क
ग से रोग
ग और सै
हिला
रेलू इलाज
थमिक चि
बी हैल्थ ग
र्भवती व
डीज हैल्थ
ोटापा घटा
ायमंड ब्यू
चार, मुरब
ायमंड कुक
वेट भ
ागे बढ़ो
फलता के
िता छोड़ो
हंसते हंसते
आप क्या न
सफलता का
धिक ज

डायमंड पाकेट बुक्स में

आपकी पसन्द की हर विषय की पुस्तकें

1990 MAY-AUG

क्रिकेट प्रश्नोत्तरी
डायमंड कुकरी गाइड
आचार्य भगवान देव
योगासन और स्वास्थ्य
डॉयमन्ड मेडिकल सैक्स गाइड
स्वेट मार्डेन
सफलता के सोपान
कालिदास
रघुवंश
ZRAJESH

स्कृत के महान ग्रन्थ

080576

चिरित	12.00
ाराक्षस	12.00
च्छकटिकम्	10.00
दम्बरी	10.00
नदमयन्ती (नैषधचरित	
लिदास के नाटक	
ुवंश	
घदूत	
भिज्ञान शाकुन्तलम्	

080576

ोग विषयक पुस्तकें

ाचार्य भगवान देव कृत

ग स्त्रियों के लिये	10.00
ग पुरुषों के लिये	12.00
गासन व स्वास्थ्य	12.00
णायाम कुंडिलिनी हठयोग	10.00
ग से रोग निवारण	12.00
ग और सैक्स	10.00

हिलापयोगी पुस्तकें

रेलू इलाज	12.00
थमिक चिकित्सा	6.00
बी हैल्थ गाइड	10.00
र्भवती व शिशुपालन	10.00
डीज हैल्थ गाइड	8.00
ोटापा घटाएं, कद लम्बा करें	10.00
ायमंड ब्यूटी गाइड	12.00
चार, मुरब्बे चटनी	12.00
ायमंड कुकरी गाइड	12.00

्वेट मार्डेन

ागे बढ़ो	12.00
फलता के सोपान	12.00
चता छोड़ो सुख से जियो	10.00
हंसते हंसते कैसे जियें	10.00
आप क्या नहीं कर सकते	10.00
सफलता का रहस्य	10.00

तरी	12.00
र	10.00
प (अपटूडेट)	10.00
विभिन्न खेलों के नियम	10.00
कपिल देव	10.00
क्रिकेट कैसे खेलें	12.00
तैराकी कैसे सीखें	6.00
आधुनिक मल्लयुद्ध	10.00
शारीरिक प्रशिक्षण पी.टी. एवं ड्रिल गाइड	6.00
जूडो, कराटे, बाक्सिंग व कुंगफू	12.00

स्वास्थ्य

स्वस्थ कैसे रहें	15.00
स्वास्थ्य संजीवनी	12.00
प्राकृतिक चिकित्सा	6.00
होम्योपैथिक गाइड	12.00
मधुमेह: कारण, इलाज	6.00
कैंसर: कारण, इलाज	6.00
ब्लड प्रैशर: कारण इलाज	6.00
हार्ट अटैक: कारण, इलाज	6.00

सैक्स ऐजुकेशन

सैक्स और पति पत्नी	10.00
यौन रोग कारण, निवारण	10.00
मैडिकल सैक्स गाइड	20.00
वृहद् वात्सायन काम सूत्र	12.00
सैक्स शक्ति कैसे बढ़ायें	12.00
सैक्स और स्त्री पुरुष	10.00
सैक्स समस्याएं और समाधान	12.00
सैक्स के 101 सवाल	12.00

जीवनी

लोकमान्य तिलक	12.00
मदनलाल ढींगरा	12.00
डा० राजेन्द्र प्रसाद	12.00
नाना साहब पेशवा	12.00
स्वामी दयानन्द और उनके अनुयायी	6.00
इंदिरा गांधी ने कहा था	10.00
गोपाल कृष्ण गोखले	10.00
मदन मोहन मालवीय	12.00
महर्षि विश्वामित्र	12.00
गणेश शंकर विद्यार्थी	12.00
स्वामी श्रद्धानन्द	12.00
युग पुरुष नेहरू	10.00
महात्मा गांधी	10.00
झांसी की रानी लक्ष्मी बाई	10.00
बादशाह खान	10.00
राष्ट्रमाता इन्दिरा गांधी	6.00
वीर सावरकर	10.00
राजीव गांधी	6.00
अमर शहीद भगत सिंह	10.00
चन्द्रशेखर आजाद	10.00
लाला लाजपत राय	10.00
राम प्रसाद बिस्मिल	10.00
छत्रपति शिवाजी	10.00
महाराणा प्रताप	10.00
सुभाष चन्द्र बोस	10.00
मदर टेरेसा	10.00

जीवनोपयोगी

जातक कथाएं - I	10.00
जातक कथाएं - II	10.00
मोहिनी विद्या, साधना और सिद्धि	10.00
डायमंड हिन्दी लर्निंग कोर्स	12.00
30 दिन में अंग्रेजी बोलिए	10.00
हिन्दी इंगलिश बोलचाल	10.00
हिन्दी इंगलिश टीचर	10.00
डायमंड नालिज गाइड	10.00
सार्थक और सुखी बुढ़ापे की ओर	10.00
घरेलू बागबानी	6.00
अमृत वाणी	12.00
फर्स्ट एड	6.00
पंचतंत्र	10.00
हितोपदेश	10.00
हिप्नोटिज्म	12.00
क्रोध और अंहकार से कैसे बचें	10.00
शराब, सिगरेट, बीडी, कैसे छोड़ें	6.00
प्रेमपत्र	12.00
पहेलियां ही पहेलियां	12.00
सिंहासन बत्तीसी	10.00
घाघ और भड्डरी की कहावतें	10.00
सुमन संचय	10.00
आजादी के तराने	10.00
नामकोश (बच्चों के नाम)	6.00

धिक जानकारी के लिये पूरा सूची पत्र निःशुल्क मंगायें वी० पी० से पुस्तकें मंगवाने पर आधा मूल्य एडवांस भेजें।

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

कथा पहेली

मार्च 1990

सर्वशुद्ध हल

1. I 'लाल पसीना' II 'भाभी जी' III 'हो भी और नहीं भी' IV 'औरत का घर' V 'यूं होता तो क्या होता?'
2. क्रमशः रवींद्रनाथ ठाकुर, मुद्राराक्षस, यू.आर. अनंतमूर्ति, कुसुम गुप्ता, मनमोहन चड्ढा, शिव प्रसाद सिंह, हंसराज रहबर, शिवानी, काका साहब कालेलकर, अरुण साधू, झंपुष्पा बंसल, प्रेमचंद, अभिमन्यु अनत, प्रभाकर श्रोत्रिय, ध्रुव शुक्ल, श्रीराम शर्मा राम, अविनाश.
3. 'तीन सौ बाईस किलोमीटर' शीर्षक कहानी में गोपी बाबू.
4. 'यूं होता तो क्या होता?'

3001 प्रतियोगियों में सर्वशुद्ध हल भेज पाने में सफलता प्राप्त की है एक मात्र प्रतियोगी श्रीमती राजेश गुप्ता ने. बधाई!

श्रीमती राजेश गुप्ता
5/27, पटेल गली, विश्वास नगर,
दिल्ली-110 032.

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िए और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए!

'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों से अनुरोध है कि वे पूर्तियां इसी पृष्ठ पर भेजें. इस बार के प्रश्न अप्रैल, 1990 के अंक पर आधारित हैं. पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तारीख 25 मई, 1990 है. जिन इलाकों में 'सारिका' कुछ देर से पहुंचती है, वहां के पाठक उल्लेख सहित पूतियां देर से भी भेज सकते हैं.

कथा पहेली : मई 1990

निर्देश के अनुसार खाली स्थान भरिए–

1. यह रचनाएं जिन रचनाकारों की हैं, उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
   I 'चारुचंद्र लेख' [ ] II 'बूढ़ी काकी' [ ]
   III 'निरुत्तर' [ ] IV 'गाती आग के साथ' [ ]
   V 'आसरा' [ ] VI 'बासंती चारोड़ [ ]
2. सुरक्षा की आशा अपराधी से रचना..................................में होती है.
3. "जो ऊंचे ओहदे पर रहता है, ढेरों कमाता है, जमीन जायदाद बनाता है, लोग उसी को सराहते हैं, पर जिंदगी सिर्फ इन्हीं बातों पर तो नहीं टिका करती. असली कामयाबी तो उसी को मिलती है जो इंसानियत में, ईमानदारी में, जनसेवा कार्यों में आगे रहता है."
   यह अंश.......................................के पात्र...................के एक संवाद से है. इसमें वह .... को दिलासा देने की कोशिश करता है.
4. "वस्तुतः आज का कथा समीक्षक लगभग शिविर काल की स्थिति में है."
   यह कथन ....का है.
5. प्रेम की परीक्षा का परिणाम चाहने वाला चरित्र...................... शीर्षक कहानी में .... का है.
6. पति-पत्नी के संबंधों को..........................की कहानी................ प्रभाव पूर्ण तरीके से प्रस्तुत कर सकी है.
7. पत्नी के जवाब से पति का निरुत्तर हो जाना.......................... शीर्षक रचना में सीधे सामने आया है.
8. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी..है.

नाम ....
पता ....

भारत सरकार
पर्यटन विभाग

पर्यटन विभाग द्वारा वर्ष 1989 के निम्नलिखित पर्यटन पुरस्कारों की घोषणा की जाती है :

(क) पर्यटन विषयों पर हिन्दी में लिखी गई मौलिक पुस्तकों के लिए
'राहुल सांकृत्यायन पर्यटन पुरस्कार—1989'

प्रथम पुरस्कार : 15,000 रु.

पुस्तक : 'विश्व पर्यटन और यात्रा उद्योग' लेखक : श्री शिवप्रसाद तिवारी

द्वितीय पुरस्कार : 10,000 रु.

पांडुलिपि : 'भारत के पर्यटन स्थान' लेखक : श्री गजानन राव

तृतीय पुरस्कार : 7,500 रु.

पांडुलिपि : 'शेखावाटी में पर्यटन विकास, समस्यायें व संभावनायें' लेखक : (1) डॉ. के. डी. यादव
(2) प्रो. के. एम. मोदी

(ख) पर्यटन विषयों पर भारतीय तथा विदेशी भाषाओं से हिन्दी में अनूदित पुस्तकों के लिए
'रांगेय राघव पर्यटन पुरस्कार—1989'

प्रथम पुरस्कार : 10,000 रु.

पांडुलिपि : 'राजस्थान के देवालय' अनुवादक : श्रीमती सरोज

उपर्युक्त दोनों पुरस्कारों का वितरण माननीय पर्यटन मंत्री द्वारा निकट भविष्य में होने वाली इस विभाग की हिन्दी सलाहकार समिति की बैठक में किया जाएगा ।

अगला अंक

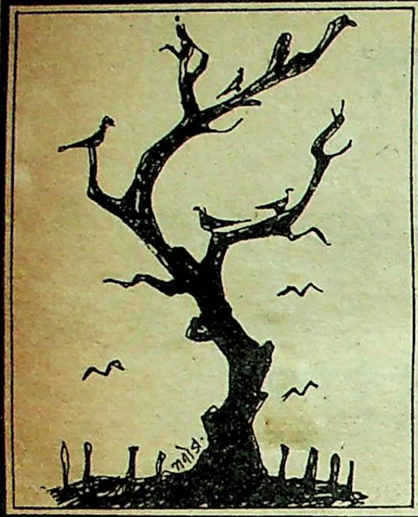

■

"... एक वक्त ऐसा भी था जब मैं घंटों पानी में पड़ा रहता था. मेरे जिस्म को पानी से प्यार है. चाकू को मेरे जिस्म से लगाव है. ऐसा क्यों? मैं आज तक समझ न सका. मैं तो सिर्फ इतना जानता हूं. चाकू मेरे जिस्म को समंदर से छीन लेने की कोशिश करता रहेगा और मेरा जिस्म समंदर की लहरों पर लहराता रहेगा.

यह तो सिर्फ एक घाव की बात हुई. अब दूसरे, तीसरे, चौथे घाव की बातें बाकी हैं. पांचवें घाव के बारे में आप कुछ भी नहीं जानते. पहले घाव के बारे में पहली मुलाकात में आपने जरूरत से ज्यादा ही जान लिया है. बाकी के घावों के बारे में हम फिर कभी बातें करेंगे..."

आबिद सुरती का उपन्यास

आकाश के उस पार

■

सारिका

समय, समाज और संस्कृति की पहचान

जून : 1990

"वे अगर ऐसा सोचते हैं कि पढ़ाई खत्म करने पर डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रशासन अधिकारी या व्यापारी बनूंगा. डेढ़-दो लाख रुपया दहेज लेने वाला शो-पीस का माडल बनूंगा और गुदगुदी पत्नी के साथ कोठी, कार और लंबी रकमों की सुविधाएं अर्जित करूंगा तो वे गलत सोचते हैं. मैं उस पीढ़ी में हूं जिसे पूरा जीवन होम कर देना है आने वाली पीढ़ी को दासता के जंगल से मुक्ति और सुख-सुविधा दिलाने के लिए...."

कैसा है यह नौजवान जो बदलते समय की बदलती समझ को साथ लेकर चल रहा है?

बदलती कथा-संवेदना से रू-ब-रू कराती अभिमन्यु अनत, रामधारी सिंह दिवाकर, नफीस आफरीदी, मुज्तबा हुसैन, कुमार अंबुज तरसेम गुजराल, गोपाल चतुर्वेदी, भगवतीशरण मिश्र, मैत्रेयी पुष्पा सहित चालीस कथाकारों की रचनाएं

जीवन के पचहत्तरवें वर्ष पूरे कर रहे वरिष्ठ कवि-कथाकार रामेश्वर शुक्ल अंचल की संस्मरण-कथा : 'जिज्जी'

साथ ही

सभी स्थायी स्तंभों के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध कथाकार शैलेश मटियानी का विचारोत्तेजक आलेख : 'कहानी की तीसरी दुनिया के दो तोता-मास्टर', से. रा. यात्री का स्तंभ और 'आलोचना की पुनर्यात्रा' में डा. नामवर सिंह की कथा-आलोचना पर सुधीश पचौरी की टिप्पणी.

■

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान
वर्ष : 30; अंक : 456; मई, 1990

Acc. No. RT-0501

प्रकाशक :
रमेशचंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

आवरण एवं सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

सीनियर मैनेजर विज्ञापन :
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिसपांस :
डा. राजेंद्रपाल जैन

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
उमेश कुमार

अंक सज्जा :
किलमिल

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था :
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय :
डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग, बंबई-400 001
फ्रेजर रोड, पटना
अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर
33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1
13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट, कलकत्ता-700 062
'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6-डी नुंगामबक्कम हाई रोड, मद्रास-600 034
88 महात्मा गांधी रोड, बंगलूर
407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411 002

उपन्यास

10 पापी :
रूपसिंह चंदेल

उसने जबसे होश संभाला, अपने को जगदीश सिंह की सेवा में पाया. जब वह बहुत छोटा था, उसकी मां मर गयी थी आग में जलकर सच तो यह था कि वह मरी नहीं, मार दी गयी थी.

बापू को जोरदार खांसी आ गयी थी. खांसता रहा था वह और खंखाकर बलगम उसने जमीन पर उगल दिया था. मक्कू ने देखा था, वह बलगम ही नहीं था केवल ... खून मिला था उसमें.

जगदीश सिंह मुस्कराये थे—एक कुटिल मुस्कान एक कागज में न मालूम क्या लिखकर उस पर उसका अंगूठा निशान ले' लियां था उन्होंने, फिर गंभीर स्वर में बोले थे, "जा, तू निश्चिंत होकर काम पर जा."

उस दिन के बाद जब भी सावित्तरी रास्ते में कहीं उससे टकरा जाती, शरमाकर छुई-मुई बन जाती.

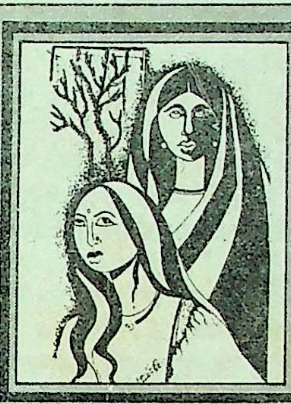

कथा रचनाएं

26 सरदार :
कर्तारसिंह दुग्गल
39 कल्पना के पंखों पर :
रावी
40 दीपिका :
परेश
43 डा. बीबर :
लिंगर
48 श्रद्धा का ताजमहल :
प्रेमकुमार
58 कमबख्त :
विभुकुमार
62 त्रिभुवनगाथा :
अशोक गुप्ता
68 जंगल क्यों कट रहे हैं :
राधेश्याम
72 फिर से :
हरिसुमन बिष्ट
77 चिड़िया और चील :
सुषम बेदी

धारावाही आयोजन

33 लाल पसीना :
अभिमन्यु अनत

कविता

26 डाले नहीं हाशिए :
शील

विशिष्ट आयोजन

55 आलोचना की पुनर्यात्रा :
सुधीश पचौरी
66 फाइल पढ़ि-पढ़ि :
गोपाल चतुर्वेदी

स्थायी स्तंभ

4 कथा पहेली
8 आपकी बात
82 कृतियां
86 हलचल

आवरण पारदर्शी
धर्मवीर जयनर, ज्ञान दीक्षित

कापीराइट © 1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

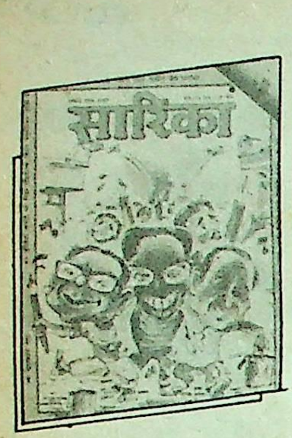

मॉरिशस के कथाकार

जिनका बिंदु-बिंदु सृजन भी प्रत्येक साहित्यानुरागी को एक महान उपलब्धि की भांति स्वीकार्य था, जीवन पर्यंत साहित्य साधना का अलख जगाने वाले तथा हिंदी साहित्य को अपनी बहुआयामी अनुपम अमूल्य कृतियों से संपन्न करने वाले युगदृष्टा तपस्वी से दिग्गज साहित्यकार श्रद्धेय 'नागरजी' चिर समाधि में लीन अवश्य हो गये हैं परंतु अपनी कृतियां स्मृतियों के माध्यम से पूर्ण गरिमा सहित वह हमारे मध्य सदा सर्वदा उपस्थित रहेंगे. कोटिशः नमन है उस महासिद्ध पुरुष को.

होली के चटकीले रंगों में नागरजी के चिर विछोह के अवसाद का रंग धुल गया. कदाचित इस कारण से या वास्तव में ही व्यंग्य विनोद की रचना केवल गुदगुदा ही सकीं. उन्मुक्त हास्य रंग से सराबोर करने में असमर्थ-सी रही. नागरजी की रचना 'अत्युत्तम' रमेश गुप्त की मध्यम तथा शेष साधारण रहीं.

मॉरिशस कथा खंड की रचनाएं—भारत भूमि से सुदूर बसे ये लेखक हिंदी से इतने गहरे संबद्ध हैं यह विचार मन में अनिवर्चनीय पुलक भर देता है. यद्यपि मंझे हुए साहित्यकारों की-सी भावनात्मक परिपक्वता अथवा भाषा सज्जा की प्रखर कला का किंचित अभाव है. इन लेखकों के पास तथापि सहज सरल भाषा सामान्य पाठक के लिए भी ग्राह्य है. यह प्रयास अतिशय सराहनीय है. 'तलाश' वात्सल्य रस से आप्लावित व सुंदर कथा है. 'शिष्य-शिष्या शिक्षक' का अंत चौंकानेवाला है. इन रचनाओं के लेखकों से शिक्षा लेनी चाहिए उन भारतीयों को जिनके लिए अपनी मातृभाषा हिंदी का पठन-पाठन भी लज्जा का विषय है एवं अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में अक्षम रह जाते हैं तथा कुंठग्रस्त से वह त्रिशकु की भांति आजीवन अधर में लटके रह जाते हैं. एक निश्चित मूल्य में घर बैठे मॉरीशस के कथा साहित्य से परिचित कराने तथा समुचित रूप से रसास्वादन के लिए धन्यवाद.

☐ **कमल कपूर, फरीदाबाद**

भावांजली नहीं भावांजलि

'सारिका' पत्रिका को मैं अपने छुटपन से ही देखता आ रहा हूं. जब कमलेश्वर इसके संपादक थे. शुरू से ही मुझे यह एक प्रतिनिधि हिंदी कथा पत्रिका लगती रही है. अब इधर आकर यह महसूस हो रहा है. पहले सिर्फ इस पत्रिका को देख भर लेता था.

अभी-अभी इसका मार्च, 1990 का अंक देखा. आपने पृ 11 पर अपने हस्ताक्षर के साथ हिंदी के यशस्वी कथाकार श्री अमृतलाल नागर को भावांजली देकर एक पुण्य कार्य किया है. मेरे जानते भावांजलि इस प्रकार होनी चाहिए जैसे श्रद्धांजलि. क्या मैं ठीक हूं.

☐ **राग रंजन, शकरपुर, दिल्ली**

खाम-खयाली-कथा

सारिका का मार्च 90 अंक पढ़ा. अरुण प्रकाश की रचना 'कोंपल कथा' कम्युनिस्टता से ग्रसित प्रांतीय पात्रों की एक ओर जहां खुलकर खिंचाई करती है वहीं लेखक थोड़ी असावधानी भी कर गये हैं. कहीं परोक्ष में पात्र को बुर्जुवा (चर्चित या फिर एक स्तरीय बताकर) का आवरण ओढ़ाकर लेखन में खाम खयाली पुलाव तो नहीं पाल रहे हैं. क्योंकि इन दिनों जहां पात्र को काफी घुटता हुआ दिखाया जाता है, वहीं उसे वर्ग चेतना या फिर समाज के प्रति संवेदनशील तत्वों को उगलवाकर लेखक अपना कोई हल या दिशा न देकर परिस्थितियों द्वारा टेंशन ही क्रियेट कर देते हैं.

वहीं अभिमन्यु अनत का 'लाल पसीना' सार्थक आभास को व्यक्त कर रहा है.

☐ **अरुण अभिषेक, पूर्णियां**

चौक का चांसलर

सारिका का व्यंग्य विनोद अंक देखा. होली के संदर्भ में आपने अच्छी सामग्री दी है. वैसे साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को होली के रंग से परहेज भी नहीं होना चाहिए. सारिका को आपने होली के रंगों से सराबोर कर दिया है. हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद सब कुछ हमें पढ़ने को मिला. आज के खीझ और बोझिल माहौल में भी कुछ क्षणों के लिए गुदगुदा गया सारिका का यह अंक. आपको बधाई है ऐसे सार्थक एवं सामयिक आयोजन के लिए.

आपने 'सारिका' के इस अंक में 'अपनी बात' में हिंदी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार स्व. अमृतलाल नागर को श्रद्धांजलि दी. वैसे हम सबका यह दायित्व भी था कि हम उस साहित्य मनीषी को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करें. आपका यह कहना कि उनका निधन आपकी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक क्षति थी वास्तव में सही है, लेकिन यह केवल आपकी ही व्यक्तिगत एवं पारिवारिक क्षति नहीं वरन् समूचे हिंदी साहित्य की यह व्यक्तिगत एवं पारिवारिक क्षति है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता. निःसंदेह वह हिंदी साहित्य के एक ऐसे सबल स्तंभ थे जिसके ढह जाने से आज एक खालीपन, एक शून्य भर गया है साहित्य में, जिसे जल्दी भरना संभव न होगा. वह
जीवन पर्यंत शब्दों की साध
करते, जीवन के विविध रू
विविध अनुभवों को साहित्य
उकेरते रहे, अपने आसपास
बिखरे चरित्रों को अपनी रचना
में समेटते रहे और उन चरित्रों
वास्तविकता से हमा
साक्षात्कार कराते रहे.
मायने में वह अपने परिवे
अपने युग के रचनाकार थे, त
अपनी रचनाओं में अ
तत्कालीन समाज के चरित्रों
पूरी ईमानदारी से उतारते
चाहे वह 'नाच्यौ बहुत गोपा
रहा हो या 'ये कोठेवालियां'
अन्य कोई.

वह लखनऊ चौक यू
वर्सिटी का वाइस चांस
इतना बड़ा किस्सागो था
अपनी रचनाओं में पूरे परिवे
को, पूरे माहौल को जीवंत
देता था. पाठक को लगता था
वह उस माहौल में ही पहुंच ग
है. चाहे इसकी बानगी
'मानस का हंस' में देख लें
'सुहाग के नुपूर' में. वह ऐ
रचनाकार रहा जो पाठक से सी
संबंध स्थापित कर लेता
उसकी रचनाएं इतनी सह
सरस एवं संप्रेष्य होती थीं
पाठक उसे बिना खत्म किये प
छोड़ नहीं पाता था. खैर उस
बारे में जितना भी कहा जाये
ही होगा. उस जिंदा
मस्तमौला साहित्यकार को
नमन है, सब का नमन है.

सारिका के इस अंक
'मॉरिशस कथा खंड' अच्छा
उपयोगी रहा. इसके ब
मॉरिशस की साहित्य की प्र
का एक अच्छा ग्राफ मि
'कोंपल कथा' उपन्यास में बि
की एक अहम समस्या पक
विवाह को अच्छे ढंग से उ
गया है, लेखक को साधुवाद
ऐसे सामयिक सोच के लिए.
सारिका को अच्छा ले जा र
बशर्ते युवा रचनाकारों
अधिक प्रश्रय दें तो अच्छा है

☐ **रमेश ऋतंभर,**
नरकटियागंज (बिहार)

अपरिभाषित प्रेम

लोचन विदेशी की कहानी ष्य शिष्या और शिक्षक' आज शैक्षणिक जगत का कड़वा तु यथार्थपरक चित्र है. प्रेम असल वो शब्द है जिसे रिभाषा के शब्दजाल में फांस ना कतई मुमकिन नहीं वरन यह एक ऐसा 'सेंटीमेंट' है जो उम्र एक-एक दिन फर्क से लग-अलग स्वरूप बदलता है. शौर्य की सीमा पार करना जुर्गियत हासिल करना है तेंद्रिय बनना नहीं और यही जह है कि क्षणात्म आवेश के शीभूत तरुण समुदाय का कोई दस्य जंग-ए-इश्क में प्राण न करने पर भी कदाचित तुल ता है परंतु इसी घटनाक्रम को क अधेड़ सिर्फ इसी दृष्टिकोण से चता है कि महज पिपासा शांत रने के लिए इतनी बड़ी कीमत काना निरी मूर्खता है क्योंकि पत्य की दहलीज के भीतर तक हुंच चुका व्यक्ति उठनेवाली मस्त समस्याओं से अवगत होता और यौन संबंधों की स्थापना में ह बहुत हद तक 'मैकेनिकल एंड कानॉमिकल' हो बैठता है. अतः ार शब्द उम्र के लिहाज से कहीं ाग, कहीं समर्पण तो कहीं हवस प्त के रूप में प्रकट होता है. एक भावना यह भी है कि यौन बंधों के अनैतिक रूप से ापित न करने की नाकामयाबी तरुण समुदाय के इश्क को श्क के दरिया में डुबो देना हती है. इस विषय पर ॉइकॉलाजिकल एनालिसिस' ड़ा ही जटिल हो उठता है और मस्या अंगद का पांव प्रतीत होती मुगल शहजादों का इश्क और गल शहंशाहों का इस संदर्भ में जरिया, उस समस्या के तरिक विश्लेषण का एक बर्दस्त नमूना है.

जयंत चक्रवर्ती, पटना सिटी

शिकवे दूर हुए

'व्यंग्य विनोद विशेषांक' इस र हमें काफी विलंब से मिला. फिर भी प्राप्त होने के बाद गुस्सा दूर हो गया. इस अंक में सबकी रचनाएं अच्छी लगीं. नागरजी पर विशेष सामग्री और कभी जरूर दीजिए.

इस व्यंग्य विनोद विशेषांक की सबसे श्रेष्ठ व्यंग्य रचना मुझे 'मेरा फोटो महान' लगी. शिवानंद कामड़े निश्चय ही श्रेष्ठ व्यंग्यकारों में गिने जायेंगे कृपया उन तक हमारी हार्दिक शुभकामनाएं एवं बधाई पहुंचा दें. विनोद शंकर शुक्ल की रचना भी बहुत पसंद आयी.

□ **राजकुमार अग्रवाल, बिलासपुर (म.प्र.)**

बाजी कामरेडों के हाथ

'सारिका' में बेहतर रचनाओं की श्रेणी में अरुण प्रकाश का उपन्यास 'कोंपल कथा' एक और कड़ी है. अगर इसे मार्च अंक की उपलब्धि कहूं तो अतिशयोक्ति न होगी.

मन-मस्तिष्क को झंकृत करके रख दिया. 'भैंसोंवाली गली' की याद ताजा हो आयी. औरत के खिलाफ पुरुष की वही एक जुटता. उसे कोई अहमियत नहीं. उसे सिर्फ वो करना है जो पुरुष का उसके लिए निर्देश है.. पढ़ना-लिखना भी एक ओर उठा के ताक पर रख दिया. ज्ञान का भैया उसका भाग्य नियंता हो गया.

दहेज कोढ़ है समाज का. विकृत होते कुछ तथाकथित प्रगतिशील परिवारों की सामाजिक प्रतिबद्धता व बड़प्पन का प्रतीक. जैसे और कोई भला काम बचा ही न हो! इस कुरीति पर गहरी चोट दी है अरुणजी ने. हालांकि बुनावट में और भी बहुत कुछ है मसलन अहंकार, पारिवारिक बिखराव, टूटन, कामरेडों की जागरूकता, लाचारी, मजबूरी और भी बहुत कुछ. सारा का सारा स्वतः याद आ जाने वाला. बहुत गुण की रचना दी है. अशोक बाबू की गिड़गिड़ाहट में आने वाले समाज का नक्शा छिपा है, अगर समय रहते बुराइयों को नहीं खत्म किया जा सका तो हम सब अशोक बाबू हो जायेंगे और बाजी कामरेडों के हाथ होगी.

तो हो जाए बधाई धन्यवाद. बूंद-बूंद नहीं धारा के रूप में.

□ **मुकेश कुमार भाटी, मेरठ**

डेढ़ इंच मुस्कान

'व्यंग्य विनोद विशेषांक' का आमुख देखते ही चेहरे पर डेढ़ इंच मुस्कान आ गयी. आमुख से लेकर अंदर का प्रत्येक पृष्ठ हंसाता, खिलखिलाता, व्यंग्यबाण चुभोता, गुदगुदाता, ठिठोलियां करता लोट पोट कर गया.

अंक की हास्य व्यंग्य गुदगुदाहट और एंद्रजालिक छटा के ताने बाने से मंडित सामग्री वर्षों गुदगुदाती, हर्ष और उल्लास का संचार करती रहेगी. इस उत्कृष्ट संयोजन हेतु साधुवाद.

□ **शालिनी यादव, वाराणसी**

साहित्यिक कृति पुरस्कार

हाल ही में हिंदी अकादमी, दिल्ली ने वर्ष 87-88 के साहित्यिक कृति पुरस्कारों की घोषणा की है. ये पुरस्कार प्रत्येक वर्ष एक वर्ष विशेष में प्रकाशित कृतियों पर दिये जाते हैं. पुरस्कार स्वरूप प्रत्येक पुरस्कार विजेता को ग्यारह हजार एक सौ एक रुपये की राशि, प्रशस्ति पत्र और पुरस्कार प्रतीक-चिन्ह समारोह पूर्वक समर्पित किया जाता है.

इस वर्ष पुरस्कार विजेता हैं :

उपन्यास के लिए
सर्वश्री भीष्म साहनी, नरेंद्र कोहली, राजेंद्र अवस्थी, मोतीलाल जोतवाड़ी और वीरेंद्र जैन.

कहानियों के लिए
सर्वश्री रमेश उपाध्याय, वीरेंद्र सक्सेना, बलराम, विजय किशोर मानव, रूपसिंह चंदेल और सविता चड्ढा.

कविता के लिए
सर्वश्री डा. विनय, पद्मा सचदेव, प्रताप सहगल, कुलदीप सलिल और प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय.

व्यंग्य के लिए
सर्वश्री सुरेश कांत, जयपाल तरंग और सुशील कालरा.

विविध विषयों के लिए
सर्वश्री रामदरश मिश्र, रणवीर रांग्रा, जयदेव तनेजा, ब्रजराज किशोर, कैप्टन भगवानसिंह, कुंवरलाल व्यास शिष्य, चंद्रकांत बाली, प्रदीप पंत और डा. धर्मवीर.

सभी पुरस्कार-जयी कृतिकारों को सारिका परिवार की ओर से हार्दिक बधाई.

नागरजी के पत्र

पंडित अमृतलाल नागर द्वारा समय-समय पर अपने देश-विदेश के साहित्यिक बंधुओं, इष्ट मित्रों, हिंदी साहित्य के अध्येताओं और हिंदी प्रेमियों को जो पत्र लिखे गये उनका हम संग्रह करना चाहते हैं. ऐसे सभी महानुभावों से, जिनके पास पंडित अमृतलाल नागर द्वारा लिखे गये पत्र सुरक्षित हों, हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि वे हमें सूचना देने का कष्ट करें ताकि हम उनकी फोटोस्टेट कापी करा सकने की व्यवस्था करा सकें. इस सहयोग के लिये हम उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे.

□ शरद नागर, कोठी शाहजी, मिर्जा मंडी, चौक
लखनऊ-226003 फोन : निवास : 61350, कार्यालय : 245844

पापी

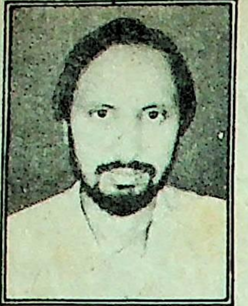

□ रूपसिंह चंदेल

जन्म: 12 मार्च, 1951, कानपुर जनपद के ग्राम नौगवां में प्रमुख कृतियां 'पेरिस की दो कब्रें', 'अजगर तथा अन्य कहानियां' (कहानी संग्रह). 'रुकेगा नही सवेरा' (उपन्यास). तीन किशोर उपन्यास, सात बाल कहानी संग्रह प्रकाशित. शीघ्र प्रकाश्य: 'आदम खोर', 'हारा हुआ आदमी', 'रमला बहू', 'प्रकारांतर', 'चीख' व 'हिंदी बाल कथा कोश' (संपादित).

संप्रति : केंद्रीय सरकार की सेवा में.

संपर्क : 10ए/22, शक्ति नगर, दिल्ली-110007

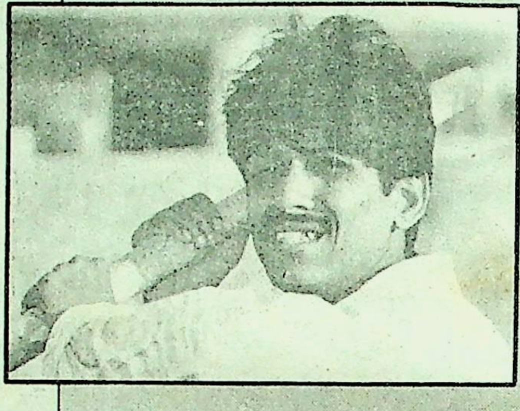

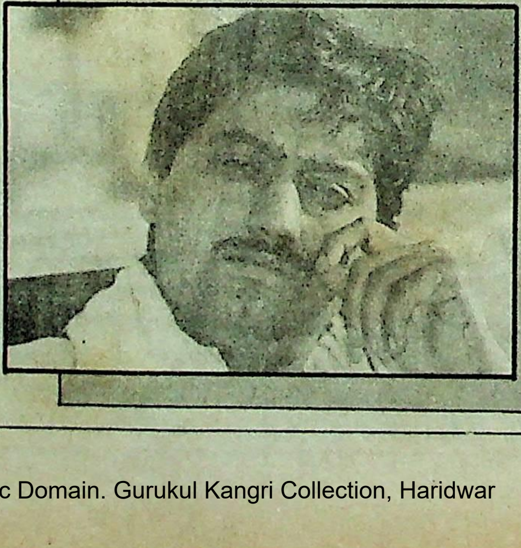

ाधी रात के लगभग वह कोठरी में लौट पाया था, थका-पिटा.

दोपहर से ही महफिल जमी थी वहां... शहर से मित्र आये थे, शंकर बाबू के साथ पढ़ने वाले... उन्हीं की देखभाल में लगा दिया था उसे लंबरदार जगदीश सिंह ने. ले थे, "बचवा के दोस्त हैं....कउनौ कमी न होने पावे."

उसने सिर हिला दिया था और वैसा ही करता रहा था, जैसा शंकर बाबू बोलते रहे थे. म से ही खाने-पीने का सिलसिला शुरू हो गया था. दो घूंट.. न-न करने पर भी जबर्दस्ती ड़कर उसे भी पिला दी थी शंकर बाबू के एक साथी ने. शायद कोई अंग्रेजी थी, तभी दो में ही उसका दिमाग झन्नाने लगा था. देसी तो वह पहले भी एक-आध बार ली-दिवाली में में ले चुका है. लेकिन उस दिन उसने जाना था कि देसी और अंग्रेजी के ाद में क्या फर्क होता था. उसे शंकर बाबू के वे दोस्त तब बहुत अच्छे लगे थे.

लेकिन शंकर बाबू की बात उसे अच्छी नहीं लगी थी जो उन्होंने पीने-पिलाने का लसिला खत्म होने के बाद कही थी. उनकी बात सुनते ही दोनों हाथ हिलाकर वह बोला , "न बाबू... मोहते ई सब न होई..."

"अबे सुन," उसके कंधे पर अपना दाहिना हाथ रख पुचकारते स बोले थे शंकर बाबू, ोटों से तेरी जेब भर देंगे और उसे भी मुंह मांगी रकम.... बस तू पसियाने या चमरौटे से सी को भी...."

वह छिटककर एक ओर जा खड़ा हुआ था, एक कोने में और बेचारगी से बोला था, झे माफ कर दो बाबू... ये काम मैं कभी नहीं करूंगा... कभी नहीं..."

"तुझे करना ही पड़ेगा मक्कू... मेरे साथियों के लिए !" शंकर बाबू के स्वर में धमकी .

"बाबू, एक बात सुनि लो... गरीब के लिए उसकी इज्जत ही सब कुछ होत है... अमानत तरह... उहे खातिर वे प्राण भी दे ले सकत हैं... ये न भूलो बाबू." उसका स्वर रुआंसा उठा था.

"स्साला बकवास करता है.... मुझे सीख दे रहा है!" चीखते हुए आगे बढ़े थे शंकर बाबू र लात-घूसों से पिल पड़े थे उस पर. वह पिटता रहा था, लेकिन उफ न की थी उसने. कर बाबू के साथी उसे पीटने के लिए हौसला बढ़ाते रहे थे, "और... अभी और शंकर!" पीटते-पीटते जब हांफने लगे थे शंकर बाबू तब दरवाजे की ओर उसे धकियाते हुए चीखे "मैं खुद ही देख लूंगा..... लेकिन तू अब यहां से दफा हो जा.... वर्ना जिंदा..." आगे के ब्द सुने बिना ही वह भाग खड़ा हुआ था जानवर बांधने के घेर की ओर और कोठरी में ते ही खटोली पर ढह गया था.

ा रों ओर घुप अंधेरा था और थी जानवरों के पेशाब और गोबर की गंध, चूहों की उछल-कूद और झींगुरों की आवाज. जानवरों के नथुने फड़क रहे थे और बीच-बीच में कोई भैंस फांय-फंकाकर मुंह से सांस छोड़ रही थी. यह सब उसे बुरा लग था. नींद थी कि कोसों दूर चली गयी थी और बदन रह-रहकर टीस रहा था उसका. न आने से मक्कू का मन न जाने कहां-कहां भटकने लगा. बीते दिन याद आने लगे. ने बाहर फैले अंधेरे को निहारने से बचने के लिए आंखें मूद ली और अपने अंदर फैले रे से, जो बचपन से अब तक गहराता ही गया है, जूझने लगा.

उसने जबसे होश संभाला, अपने को जगदीश सिह की सेवा में पाया. जब वह बहुत टा था, उसकी मां मर गयी थी आग में जलकर. सच तो यह था कि वह मरी नहीं, मार गयी थी. उसे तो कुछ होश नहीं. होश होता तो कैसे, तब वह मात्र दो साल का ही था. के बापू को एक बार मां की बहुत याद आयी थी. वह रोता रहा था और फिर उसी ने या था सब कुछ.

बिहार के उस गांव में बापू की भी छोटी-सी गृहस्थी थी—अपनी छोटी-सी झोपड़ी थी... की बिरादरी की लगभग सौ परिवारों की झोपड़ियों के बीच, जिसमें दिनभर हार-पतार खटने के बाद बापू उसकी मां और उसके साथ अपनी जवानी के दिन गुजार रहा था. तभी दिन वह सब घटा था.

गांव के एक भूस्वामी भूमिहार के बेटे से उनकी बस्ती के दो नौजवानों की मजूरी को र कहा-सुनी हो गयी थी. बात कुछ अधिक ही बिगड़ गयी थी शायद. वर्ना -सिकुड़कर रहनेवाली उस हरिजन बस्ती के युवकों में इतना दम-खम कहां से आ जाता वे भूस्वामी के बेटे पर हाथ उठा देते. लेकिन हाथ उनके उठ ही चुके थे. अधिक तो

सांझ ढलते-ढलते बस्तीवालों को पता चला कि घर लौटते समय नाले के पास उन दोनों नौजवानों को भूस्वामी के उस बेटे के साथ कुछ दूसरे लोगों ने गोली मारकर हत्या कर दी थी और लाशों को नाले में फेंक दिया था.

■

"तू चुप हो जा सावित्तरी!" हांफते स्वर में वह बोला, "थोड़ा देर और तू यहीं बैठ.... कहीं मत जाना, तुझे मेरी कसम... मैं अभी आया लौटकर..." उसने लाठी संभालकर कंधे पर रखी और दौड़ पड़ा मंदिर की ओर.

न मारा था उन लोगों ने उस भूस्वामी के बेटे को, फिर भी चार-छह लाठियां तो मार ही दी थीं. और इतना पर्याप्त था भूस्वामीयों के लिए. गांव के अन्य भूस्वामियों ने इसे उस बस्तीवालों द्वारा अपने खिलाफ यद्ध की घोषणा मान लिया.

मजूरी को लेकर झगड़े तो पहले भी होते रहे थे, लेकिन पहले उसकी बस्तीवालों को डरा-धमकाकर, मारकर वे लोग चुप करा दिया करते थे, किंतु उस दिन—दिन-दिन में ही भूस्वामियों ने एकत्र होकर योजना बनायी और सांझ ढलते-ढलते बस्तीवाले को पता चला कि घर लौटते समय नाले के पास उन दोनों नौजवानों को भूस्वामी के उस बेटे के साथ कुछ दूसरें लोगों ने गोली मारकर हत्या कर दी थी और लाशों को नाले में फेंक दिया था.

बस्ती में कोहराम मच गया था. बापू सहित बस्ती के सारे नौजवान इकट्ठा हुए थे उस रात बस्ती के बीच बने 'महादेव' के चबूतरे पर. इसका प्रतिकार कैसे लिया जाये, वे सब यही सोच रहे थे. उसकी माई दाल-भात और तरकारी बनाकर बापू का इंतजार कर रही थी. बस्ती की सभी झोपड़ियों में ढिबरियों की पीली बीमार रोशनी फैली हुई थी. सारी बस्ती किसी अभिशप्त नारी की भांति दिखायी दे रही थी.

तभी बस्ती के बाहर हलचल हुई थी. लोग कुछ समझ पाते, इससे पहले ही गोलियां दगने की आवाजें आने लगी थीं. बस्ती को भूस्वामियों और उनके लोगों ने घेर लिया था चारों ओर से. कुछ देर तक गोलियां चलती रही थीं और फिर सारी बस्ती को आग के हवाले कर दिया था उन लोगों ने. चारों ओर भाग-दौड़... चीख-चिल्लाहट... और था उन अताताइयों का अट्टहास. बस्ती के खाक होने तक वे सब उसे घेरे रहे थे. उनकी गोली का शिकार होनें से बच गया था उसका बापू. लपटों से खेलता बापू किसी तरह अपनी झोपड़ी तक पहुंच गया था. वहां बापू को मिली थी जलकर ढेर हुई उसकी मां की लाश और पास में रोता-बिलखता वह. वह बच गया था साफ. आग ने उसे छुआ तक न था.

उसे ले उसका बापू उसी क्षण लुकता-छुपता भाग खड़ा हुआ था. और आ पहुंचा था अपनी ननिहाल. ननिहाल में उसने कुछ दिन यों ही बिता दिये थे. उसकी माई के शोक में डूबे इधर-उधर भटकते हुए. लेकिन कब तक वह इस तरह रह सकता था वहां.... और तभी एक दिन उसकी भेंट वहां जगदीश सिंह से हुई थी. उन्हें एक हलवाहे की जरूरत थी और बापू को काम की. बापू उसे लेकर चला आया था. जगदीश सिंह के साथ... उनके गांव.

बापू भोर से रात देर तक जगदीश सिंह के काम में बेजुबान जानवर की तरह जुटा रहता. अपने बेटे से—मक्कू से दो बातें करने तक की फुर्सत उसे न मिलती. मक्कू दिन भर आवारा पिल्ले की भांति कभी जगदीश सिंह के घेर में पड़ा रहता, कभी गांव के बाहर बने हनुमान के बाहर किसी बच्चे के साथ खेलता रहता और कोई न होता खेलने के लिए तब अकेला ही पक्के कुएं, जो मंदिर से कुछ ही दूर था, की जगत पर बैठता या कुएं के पास के नीम के पेड़ों से गोंद निकालता रहता.

शंकर बाबू भी उसी की उम्र का था.... जगदी सिंह का इक्लौते बेटा. कभी-कभी वह भी उस साथ खेलता और नीम के पेड़ से गोंद निकालता. शंकर बाबू की मां, जिन्हें सभी लंबरदारिन कह को जब याद आती, मक्कू को बुलवाकर दोपहर खाना दे देती. ज्यादातर बेझर की रोटी और नम बुकनू. वह चबूतरे पर जब खाना खा रहा होता कभी-कभी शंकर बाबू अपना खाना लिये बाहर निकल आते. लंबरदारिन उन्हें उसके पास बैठ खाने से रोकती, लेकिन वह न मानते. उसके पा जाते थाली रखकर शंकर बाबू. वह देखता, दाल-भाल-रोटी-सब्जी-अचार.... अपनी रोटी हुए उसकी नजर शंकर बाबू की थाली पर टिक रहती. शंकर बाबू शायद उसका अभिप्राय सम जाते और थोड़ा-थोड़ा सब कुछ अपनी थाली से उसके कटोरे में डाल देते. वह सब खाकर मक्कू सोचता, 'क्या कारण है कि वह बेझर की सूखी रोटियां चबाता है और शंकर बाबू को इतना अ भोजन मिलता है. जबकि वह भी शंकर बाबू है—उतना ही बड़ा, उन्हीं की उम्र का. फिर भी अंतर क्यों? लेकिन तब उसके नन्हें मस्तिष्क में कुछ भी न आता था.

फिर जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया, सब कुछ समझता गया था. पांच की उम्र पार करते ही बाबू को स्कूल में भर्ती करा दिया गया था और घर की सफाई और गोबर इकट्ठा करने के का लगा दिया गया था. शंकर बाबू साफ-साफ क पहनकर स्कूल जाते तो वह हसरत भरी नजरों उन्हें देखता रहता. शंकर बाबू प्रतिदिन नये क बदलते और वह अपने को एक ही फटी-मैली में पाता तो उसका दिल बैठ-बैठ जाता. तब व पक्के कुएं की जगत पर बैठकर रोता रहता.

एक दिन उसने रात में बापू से जिद की कि उसके लिए भी नयी कमीज सिलवा दें और उ स्कूल जाने के लिए पाटी-बस्ता और बोरकला बापू कितनी ही देर तक उसे समझाता रहा था नयी कमीज के लिए पास पैसे नहीं हैं और स्क भर्ती होकर वह क्या करेगा. जब मजूरी ही क तो बिना पढ़ा-लिखा ही ठीक. लेकिन बापू का उसकी समझ में नहीं आया था. वह अपनी जि अड़ा रहा तो बापू को गुस्सा आ गया. उसने पिटाई कर दी. वह पिटता रहा और अपनी जि अड़ा रहा. बौखलाकर बापू ने धक्का देकर उ चारपाई से नीचे गिरा दिया. रात भर वह नी लेटा रहा. सोया भी नहीं उस रात.

और सुबह.... चुपचाप खिसककर वह हनु

मंदिर के पीछे जा छुपा था. बापू जब काम पर चला गया तब वह जा पहुंचा था स्कूल. काफी देर तक वह स्कूल के बाहर खड़ा बच्चों को देखता रहा और अंदर जाने का साहस बटोरता रहा. तभी उसकी नजर शंकर बाबू पर पड़ी. वह तीन लड़कों के साथ थे. मक्कू दौड़कर उनके पास पहुंचा. वह शंकर से कुछ कहता, इससे पहले ही शंकर ने पूछा, ''तू कहां था रे सुबह से?''

''मैं....मैं....'' कुछ जवाब न दे पाया वह.

''हां.... हां.. तू!''

''शंकर बाबू... मुझे भी स्कूल में भर्ती करवा दो... तुम्हारे साथ पढ़ने आया करूंगा.'' उसने पहले अपने मन की बात कह देना ही उचित समझा था.

''यह बकवास बंद कर मक्कू... सीधे घर जा नहीं तो तेरी और खैर नहीं आज.... सुबह से ही तेरी ढूंढ मची हुई है और तू यहां... अरे आज से तुझे जानवर चराने जाना है... समझा!''

शंकर बाबू के साथ के लड़के हंसने लगे थे. वह फिर भी टस से मस न हुआ था.

''तू जा या न जा लेकिन जो कुछ आज तेरे बारे में सुना था, वह तुझे बता दिया.''

शंकर बाबू अपने साथियों के साथ चले गये थे. उस दिन उसे लगा था कि अब शंकर बाबू भी बदल गये हैं... पहले जैसे नहीं रहे... उसके साथ खाने के लिए आ बैठने वाले. वह कुछ देर तक वहां खड़ा रहा था... और ललचायी नजरों से बच्चों को देखता रहा था, फिर मन मारकर लौट पड़ा था और जा बैठा था पक्के कुएं की जगत पर. पता नहीं कब तक वह वहां बैठा रहता अगर लंबरदार जगदीश सिंह का झन्नाटेदार तमाचा इसकी कनपटी पर न पड़ा होता. वह तिलमिला उठा था. लेकिन जगदीश सिंह ने उसे सिसकने भी न दिया और दोनों कान पकड़कर ऊपर उठाकर पटकते हुए बोले थे, ''स्साले, रोया तो उठाकर कुएं में फेंक दूंगा! दुनिया समझेगी कि खुद ही गिरकर मर गया है!''

उसकी चीख अंदर ही घुटकर रह गयी थी. केवल आंसू टपकते रहे थे. वह उकडूं बैठ गया था उनके सामने. लेकिन कहां बैठने दिया था उन्होंने! उसे घसीटते हुए ले गये थे और एक डंडा पकड़ाते हुए बोले थे, ''आज से तू भीखू अहीर के ग्वाल के साथ जानवर चराने जायेगा.''

और उस दिन से वह जानवर चराने जाने लगा था. पढ़ाई की कल्पना त्याग दी थी उसने. सुबह बापू के साथ उठकर जानवरों के पानी-चारे के इंतजाम में जुट जाता और दिन चढ़ते ही उन्हें हांक जंगल की ओर चला जाता. जिस दिन जगदीश सिंह या लंबरदारिन का मन खराब होता, उस दिन उसे दिन भर निराहार घूमना पड़ता. रात लौटता तो इतना थक चुका होता कि बापू से बात भी न कर पाता और न ही बापू उससे कुछ पूछता. एक ही चारपाई पर दोनों दो द्वीपों की भांति पड़े रहते रात भर.

अब शंकर बाबू से भी उसकी कम ही मुलाकात होती. और जब भी वह मिलते, कोई न कोई स्कूल का उनका साथी उनके साथ चिपका होता. तब उसे उनसे बात करने में संकोच महसूस होता और शंकर बाबू अपनी ओर से उससे बिना बोले गुजर जाते. कभी कंचे या गुल्ली-डंडा खेल रहे होते और वह खड़ा होकर खेल देख रहा होता तो वह उसकी तरफ देखते भी नहीं थे. उसे यह सब अजीब-सा लगता. शंकर बाबू का यह बदलाव उसे अखरता. उसने इस सबका कारण खोजने की कोशिश की और तब एक दिन उसकी समझ में आया कि शंकर बाबू और वह दो अलग दुनियाओं के बासिंदा हैं—मालिक और नौकर की दुनिया. तब तक वह बड़ा हो चुका था. धीरे-धीरे उसकी दुनिया उसे अपने जाल में लपेटती गयी थी और छटपटाता वह उसमें उलझता गया था.

बड़ा होने के साथ ही काम का बोझ उस पर बढ़ता गया था. बापू बीमार रहने लगा था, जिससे बापू के हिस्से का कुछ काम भी उसे करना पड़ता. जानवर चराने के साथ-साथ गोबर फेंकना, जानवरों की सानी-पानी, चारा लाने से लेकर दूध निकालने तक के काम उसके जिम्मे आ पड़े थे. भोर से ही देर रात तक वह जुटा रहने लगा. काम में ज़रा-सी भी कोताही लंबरदार को बर्दाश्त न थी. गाली-गुफ्तार तो उनकी जुबान पर हर समय रहता ही था, जब-तब उनका हाथ भी उस पर उठता रहता था. उसकी छटपटाहट बढ़ जाती ऐसे क्षणों में. उसे अपने बापू पर क्रोध आता. क्यों नहीं वह जगदीश सिंह की हलवाही छोड़ देता? एक दिन उसने बापू से पूछ लिया था.

''तब तू का मिट्टी खायेगा?'' बापू खिझला उठा था.

''अब त मैं भी कुछ करने लायक हो गया हूं बापू... हम कहूं भी जाकर कछू भी करके पेट पाल लेंगे.''

''तेरा माथा फिर गया है का रे मकुए... तुझे पता भी है कुछ....मैं... मैं.... बस अब मैं....''

बापू को जोरदार खांसी आ गयी थी. खांसता रहा था वह. और खखारकर बलगम उसने जमीन पर उगल दिया था. मक्कू ने देखा था, वह बलगम ही नहीं था केवल.... खून मिला था उसमें. बापू शिथिल हो गया था खांसते-खांसते. खांसी थमी तो वह निढाल-सा लेट गया था. और हाथ के इशारे से खूंटी पर टंगे झोले की ओर इशारा कर धीरे से बोला था, ''झोले से शीशी निकालकर दवा पिला रे मुझे.''

उसने शीशी निकाल उसी के ढक्कन में ढालकर तीखी गंध वाली दवा उसे पिला दी. दवा पीकर बापू काफी देर तक होंठ चाटता रहा था, फिर बोला था, ''मक्कू, बेटा, आज तुझे बता रहा हूं... मैं जियादा दिन नहीं चल पाऊंगा. अंदर ते शरीर खोखला होई गया है.''

''नहीं बापू, आप अइसा न कहें.... आप अभी....''. वह बिलख उठा था.

■

कुछ को इमलिहा बाबा इमली के उस विशाल पेड़ के नीचे सफेद झक कपड़ों में टहलते दिखे रात में और कुछ को बुलाकर बाबा ने बातें भी की थीं. इमहिलहा बाबा किसका भूत हैं कोई नहीं जानता.

"मैं ठीक कह रहा हूं रे... मुझे टी.बी. हो गयी है.... अब मैं ठीक नहीं होने का."

"इलाज करें ते ठीक काहे न होगे.... मैं लंबरदार से आरजू करूंगा... उनसे पइसा लेकर तुम्हार इलाज.... तुम ठीक होई जाओगे बापू... जरूर ठीक होई जाओगे..." आंसुओं से उसका चेहरा भग गया था. बापू की छाती पर सिर रखकर वह कितनी ही देर तक रोता रहा और बापू प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरता रहा था.

दूसरे ही दिन वह लंबरदार जगदीश सिंह के पास जा पहुंचा था. उसकी पूरी बात सुने बिना ही बोले थे, "पैसा! पैसा! जब देखो तब पैसा! पैसों की कोई बखारी है मेरे पास जो कभी तेरा बाप तो कभी तू चले आते हो! अभी परसों ही तेरे बाप को दिये थे पचास रुपये... उड़ा गया होगा चरस में... भाग जा! नहीं है, मेरे पास पैसे-वैसे!"

"मालिक, आपको पता नहीं... बापू को टी.बी.होई गयी है... अगर इलाज नहीं करवाया तो वो काम कइसे..."

"टी.बी. हो गयी... तो मैं क्या करूं! मैंने कोई ठेका ले रखा है तेरे बाप की बीमारी का?" गरजे थे जगदीश सिंह.

"नहीं लंबरदार, लेकिन इलाज तो जरूरी है न."

"तो करवा जाकर इलाज!"

"कहां से करवायें.... हलवाही आपकी करें हैं तो पैसे भी आपसे ही मांगेंगे."

"मैंने कहा न, मेरे पास नहीं हैं! इलाज का ठेका नहीं ले रखा...!"

मक्कू अपने को रोक नहीं पाया. चीख उठा, "ठेका नहीं ले रखा... ये बात आप आज कहि रहे हैं, अब बापू चारपाई पकड़ने वाला है... बंधुवा मजूर की तरह आपने बापू को इस्तेमाल किया है और आज आप..."

वह आगे कुछ बोलता,इससे पहले ही उसके मुंह पर तेज मुक्का पड़ा था जगदीश सिंह का. दोनों हाथों से मुंह ढांप लिया था उसने.

जगदीश सिंह दहाड़े थे, "स्साले,जुबान चलायेगा तो बोटी-बोटी काटकर कुत्तों को खिला दूंगा! कल का छोकरा स्साला जुबान चलाता है!" जूते चरमराते वह चल पड़े थे.

मक्कू ने लपककर उनके पैर पकड़ लिये थे, "मालिक, बापू की जगह मैं सारी जिंदगी आपकी गुलामी करि हौं... आप बापू का इलाज करवा दें... उसे मरने न दें मालिक!" वह बिलख उठा था.

कुछ देर सोचते खड़े रहे थे जगदीश सिंह फिर उससे अपने पैर छुड़ाते हुए बोले थे, "सौ-दो सौ में उसका इलाज न होगा... अभी तू सोच ले... बाद में कहते न घूमना लोगों से कि जगदीश सिंह ने तुझे फंसा लिया."

"मैंने सोच लिया है लंबरदार..."

जगदीश सिंह मुस्कराये थे—एक कुटिल मुस्कान. एक कागज में न मालूम क्या लिखकर उस पर उसका अंगूठा निशान ले लिया था उन्होंने, फिर गंभीर स्वर में बोले थे, "जा, तू निश्चिंत होकर काम पर जा और बापू से कहना, वो अपना इलाज शुरू कर दे... जितने पैसों की जरूरत हो, आकर ले जाया करे."

वह ठगा-सा रह गया था. यह क्या कह रहे लंबरदार... वह समझ नहीं पा रहा था. खड़ा उन्हें टुकुर-टुकुर देखता रहा था. जगदीश सिंह उसे इस तरह खड़ा देख तीक्ष्ण स्वर में बोले थे, "जाता क्यूं नहीं... मैंने कहा न, जाकर बापू को भेज दे!"

मक्कू पैर पटकता लौट आया था अपनी झोपड़ी में. यह झोपड़ी उसके बाप ने कुछ महीने पहले ही गांव पंचायत से मिली जमीन पर बनायी थी. जब वह लौटकर आया, बापू काम पर जा चुका था. वह बेचैन-सा झोपड़ी में पड़ा रहा था और सोचता रहा था कि बापू से पूछे बिना उस कागज पर अंगूठा निशान लगाकर उसने अच्छा नहीं किया है शायद. लेकिन अब हो क्या सकता था. वह उठकर मंदिर की ओर चला गया और मंदिर की बाहरी दीवार पर बैठकर हनुमानजी से मन ही मन प्रार्थना करता रहा कि वह कागज लंबरदार से कहीं गुम हो जाये या उनके कुर्ते की जेब में पड़ा-पड़ा धुल जाये या गलती से वह उसे फाड़ डाले. उसे लग रहा था कि शायद उसने कुछ ऐसा कर डाला है जो गलत है और उसे नहीं करना चाहिए था. दस बार हनुमान की ओर माथा झुकाकर उसने प्रार्थना की, "महावीरजी, एक हजार रुपये... एक हजार न सही... पांच सौ ही.... कहीं पड़े मिलि जायें, जिनसे मैं बापू का इलाज करवा सकूं. आप ये न सोचें भगवान कि रुपये मिलते ही मैं आपको भूल जाऊंगा. बिल्कुल न भूलूंगा भगवान. उस पर सबसे पहला हक तो आपै का होगा. पूरे पांच रुपइन का परसाद चढ़ाऊंगा आप पर—सबसे पहले. आप कुछ अइसा ज़रूर कर दें ईश्वर... जिसे लंबरदार से रुपये उधार न लेना पड़े... और हां, यह भी भगवान... कि आज जिस कागज पर लंबरदार ने मुझसे अंगूठा चिपकवा लिया है, वह कहीं बरि जाये या सड़ि-गलि जाये!"

वह पता नहीं कब तक आंखें बंद किये यों ही प्रार्थना करता रहता अगर उसे मंदिर के नये पुजारी पंडित तिरलोचन की आवाज न सुनायी देती, "अरे पापी, तू यहां बैठा है और वहां लंबरदार तुझे ढूंढ रहे हैं... आज जानवर चराने नहीं जाना क्या? बहुत बौखलाये से लग रहे थे लंबरदार."

पुजारी नये-नये आये थे. उनके लाल चेहरे पर चमक थी, शरीर गठीला और उम्र कोई चौबीस-पच्चीस के आसपास. मक्कू को वह अच्छे लगते थे. कभी-कभी मौका मिलने पर उनके पास जा बैठता, ज्ञान की दो बातें सुनता, समझने की कोशिश करता जो उसकी समझ में कम ही आती थीं.

पुजारीजी उसे सदैव पापी कहकर ही बुलाते और मक्कू को बुरा न लगता. पुजारीजी कहते, "पिछले

जन्म में पाप कर्म करने के कारण ही वह इस जन्म में एक मजूर के घर पैदा हुआ और पुण्य कर्म करने के कारण शंकर बाबू लंबरदार जगदीश सिंह के घर जनमे...''

पुजारीजी की बात उसे कभी समझ में नहीं आयी. लेकिन उसने इसका कभी प्रतिवाद भी नहीं किया. क्योंकि वह अपने को अपढ़, मूर्ख और उन्हें विद्वान मानता है.

''तू क्या सोच रहा है रे!'' पुजारी ने टोका तो वह अचकचा गया था. दीवार से कूद वह सीधा जानवरों के घेर की ओर भाग खड़ा हुआ था.

बापू को जब शाम को पता चला कि मक्कू ने उसके इलाज के लिए लंबरदार के पास रुक्का लिख दिया है तब वह आग बबूला हो उठा था, लेकिन हिम्मत उसकी भी न पड़ी थी कि जाकर वह रुक्का जगदीश सिंह से ले ले. वह भी उनसे डरता जो था.

और दूसरे ही दिन जगदीश सिंह उसके बापू को लेकर अपनी जान-पहचान के डाक्टर के पास ले गये थे, पड़ोसी गांव आलमपुर. वह उनके साथ गया था. डाक्टर से बोले थे. जगदीश सिंह, ''डाक्टर साहब, आप पैसों की चिंता न करें, जितना खर्च होगा, मैं दूंगा. बस आप इसका जमकर अच्छी तरह इलाज करके ठीक कर दें. मेरा नौकर है तो क्या, मेरे घर के सदस्य जैसा ही समझें डाक्टर साब इसे... और फिर आप तो खुद ही समझदार हैं...'' उस दिन बहुत मेहरबान लगे थे लंबरदार जगदीश सिंह.

''मैं सब समझता हूं ठाकुर साहब... अगर ये तीन महीना इलाज करा लेगा तो बस समझो फिर से पहले की तरह आपका काम करने लगेगा.'' डाक्टर ने जगदीश सिंह को आश्वस्त किया था.

''आपकी मेहरबानी डाक्टर साहब... मुझे तो यही चाहिए... इसकी बीमारी से काम का हर्जा तो हो ही रहा है.'' मक्कू की ओर घूरकर देखते हुए जगदीश सिंह बोले थे.''

मक्कू ने नजरें दूसरी ओर कर ली थीं.

डाक्टर ने कुछ टिकियां और पीने की दवा थमा दी थी और हफ्ते में एक बार दिखाने के लिए कहकर विदा कर दिया था. जगदीश सिंह ने कितने पैसे उसे दिये थे, यह बाप-बेटा दोनों ही न जान पाये थे. और उसके बापू का इलाज शुरू हो गया था. वह खुश था कि तीन महीने में बाप भला हो जायेगा. डाक्टर ने तीन महीने तक बापू को कुछ भी काम न करने की सलाह दी थी, लेकिन बापू के लिए आराम हराम था. जगदीश सिंह चाहते तभी तो आराम कर पाता बापू.

और वही हुआ जो उसने कभी सोचना न था. बापू की हालत दिन पर दिन खराब होती चली गयी. तीन महीने में हालत सुधरने के बजाय इतनी अधिक बिगड़ गयी कि बापू ने चारपाई पकड़ ली. अब वह जब भी खांसता, कफ के बजाय खून ही उगलता. उसकी जगह काम का सारा बोझ मक्कू के कंधे पर आ पड़ा. एक दिन उसने जगदीश सिंह से कहा, ''मालिक, बापू को शहर के किसी अस्पताल में देखवा देते... ई डाक्टर साहब की दवा से तो तनिकौ फाइदा न...''

''तू समझता है शहर के अस्पताल में मुफ्त में इलाज हो जायेगा!''

मक्कू उनके चेहरे की ओर देखता रह गया था.

''अब तक डाक्टर को पूरे डेढ़ हजार पुजा चुका हूं. लेकिन जिसकी उम्र ही पूरी हो चुकी हो, उसे कौन...?''

मक्कू की चीख निकल गयी थी, ''नहीं मालिक, अइसी कुभाख न बोलो मेरे बापू के बारे में!'' आंसू छलक आये थे उसके.

''मूर्ख, इसमें मेरा या तेरा कोई बस है? डेढ़ हजार रुपये खर्च करके भी हम जिसे फायदा नहीं पहुंचा सके, उस पर दस हजार भी तू खर्च कर दे... लेकिन...''

लेकिन का अर्थ वह समझ गया था. वह यह भी समझ गया था कि अब तक बापू के इलाज में लंबरदार ने डेढ़ हजार खर्च कर दिये हैं और अब वह एक पैसा भी खर्च नहीं करना चाहते. उसे लगा था कि वह चीत्कार कर उठे, 'लंबरदार, उसके जिस बापू के परिश्रम के बल पर आप ऐश करते आये हैं, आज वही इस हालत में आपके लिए बेकार हो गया है... वर्षों से बंधुआ मजूर की तरह आपके यहां काम करते जिसने अपने शरीर को गला दिया... आज उसके लिए आपके पास कुछ नहीं!''

लेकिन वह कुछ कह नहीं सका. चला आया था वहां से और झोपड़ी में आकर सुबकता रहा था अपनी मजबूरी पर—दरिद्रता पर. और जिस बात की उसे आशंका थी, वही हुआ था. बापू की खून की उल्टियां बढ़ती गयी थीं. दिन में दो-दो, तीन-तीन वह उनकी देखभाल भी नहीं कर पाता था ठीक तरह से. थोड़ी देर उनके पास बैठ नहीं पाता था. बैठा नहीं कि जगदीश सिंह की बुलाहट आ जाती थी. इस स्थिति में उसका मन करता कि वह बाप को लेकर कहीं दूर चला जाये... जगदीश सिंह की पहुंच के बाहर...

एक दिन रात में उसने बापू से कहीं चले जाने की बात कह दी. सुनकर फीकी मुस्कान तैर गयी थी बापू के मुख पर. बोला, ''तू तो निरा पागल है रे... अब मरते बखत कहां ले जायेगा तू मुझे?''

वह बापू के चेहरे की ओर देखता रहा था, जो झुर्रियों का रेगिस्तान बन चुका था. शरीर पर मात्र हड्डियां ही शेष थीं. खून और लंबरदार जगदीश सिंह की सेवा में अर्पित कर खटोली के द्वीप में पड़े बापू के रूप में आदि मानव को पता नहीं कब तक देखता रहता मक्कू. लेकिन बापू की आवाज ने उसे चौंका दिया था.

''बेटा, मरने से पहले मेरी एक इच्छा तू पूरी कर दे.''

वह बोला तो कुछ नहीं लेकिन चेहरे के भाव से

सारे शहर में 'बस लूट' में माल की लूट से अधिक और ही कुछ लूटे जाने की चर्चा थी—उसके साथ क्या हुआ, कैसे हुआ बार-बार पूछकर पुलिस भी जांच पूरी करने में लगी थी, घर के बाहर लोग ऊंची आवाजों में बस लूट कांड की चर्चा करते, कई दिन बाद भी विद्यालय जाते समय रास्ते में मानो सारी नजरें उसी पर केंद्रित थीं, कोई लुटेरों की संख्या पूछता—तो दूसरा कहता भैया, तीन थे पूरे तीन. उसके स्कूल पहुंचते ही भीड़ में सांप के आ जाने जैसी भगदड़ मच गयी थी, कमरों की खिड़कियों से उसे झांक-झांककर देखा जा रहा था—डाली से टूटे फूल की तरह कक्षा के एक कोने में बैठी थी वह—कोई बात भी करता तो सहानुभूति कम उलाहना ज्यादा! घर के लोग भी तो जैसे मौन ही हो गये थे सब! दोष किसका था? अनुत्तरित प्रश्न पतिता-पतिता की तेज आवाजों में खो गया था.

'बस लूट के हादसे की शिकार लड़की ने आत्म हत्या कर ली,' आंधी की तरह खबर दूर-दूर तक फैल चुकी थी—जगह-जगह भीड़ जमा थी... लड़की नहीं देवी थी वह तो

तमाम शहर में अब देवी के बलिदान के गुणगान हो रहे थे.

स्पष्ट कर दिया, 'कह बापू, जो कुछ तू कहेगा... मैं पूरा करूंगा.'

''सावित्तरी है न... वो कनकिया-बिसंभरा की बेटी... विसंभरा पिछले साल मर गया था न...''

उसने सिर हिलाकर जताया कि वह जानता है कनकिया की बेटी सावित्तरी को.

''अपनी ही जाति-बिरादरी है वो.''

''साफ-साफ कह न बापू, पहेलियां काहे कू बुझा रहा है!'' वह भी जिज्ञासु हो उठा था.

''कनकिया एक दिन मिली थी रास्ते मा, सुबो-सुबो. रोने लगी थी बेचारी... हम गरीबन की किस्मत मा रोना ही बदा होता है.'' लंबी आह भरी थी बापू ने.

''का कह रही थी सावित्तरी की अम्मा?''

''कहना का बेटा, सावित्तरी के लिए ही रो रही थी बेचारी. वो तेरे साथ उसका बियाह... मना मत करना मक्कू... मैंने ओको हां कह दिया है. बिना बाप की बेटी है.'' छत की कड़ियां गिनने लगा था बापू.

वह चुप रहा था. लेकिन एक बात उसने अवश्य महसूस की थी कि अब वास्तव में वह बड़ा हो गया है. अपने बारे में उसे कभी सोचने का अवसर भी कहा मिला था. जब भी सोचा उसने तो लंबरदार के बारे में, शंकर बाबू के बारे में, जो इंटरमीडिएट पास कर शहर चले गये थे पढ़ने: और जो भी थोड़ा समय मिला तो बापू के बारे में सोचा उसने. लेकिन उस दिन उसने अपने बारे में सोचा और अपने बारे में सोचते समय सावित्तरी, उसके सामने थी. बापू से उसने हां कह दी.

उस रात उसे नींद नहीं आयी थी. वह सावित्तरी के बारे में सोचता रहा था. सुबह एक बार उसके घर के सामने से निकला था, लेकिन सावित्तरी उसे दिखायी न दी थी. दूसरे दिन ही बापू ने कनकिया को बुलाकर बता दिया था कि मक्कू रिश्ते के लिए तैयार है. कोई शुभ घड़ी देखकर बंधन में बांध देंगे दोनों को.

उस दिन के बाद जब भी सावित्तरी रास्ते में कहीं उससे टकरा जाती, शरमाकर छुई-मुई बन जाती. एक दिन तो सामने पड़ने पर उसने कह भी दिया था, ''काहे को इतना सरमाती है तू... आखिर एक दिन तो तुझे...''

''धत्त!'' पायल छमछमाती भाग गयी थी सावित्तरी.

उसे लगा था जैसे सैकड़ों सुरीली घंटियां बज उठी हैं उसके कानों के पास. उसके मन के तार झनझना उठे थे. उस दिन उसने दूने उत्साह से काम किया था लंबरदार के खेतों में. जितने खेत की निराई दो दिन में होती, उसने एक दिन में ही कर डाली थी. जगदीश सिंह ने जानवर चराने का काम उससे छुड़ा दिया था. अब उसे वे सारे काम करने पड़ते थे, जो उसका बापू करता था.

वह सब करता, क्योंकि उसने रुक्का लिख रखा था.

■

जगदीश सिंह मुस्कराये थे—एक कुटिल मुस्कान. एक कागज में न मालूम क्या लिखकर उस पर उसका अंगूठा निशान ले लिया था उन्होंने, फिर गंभीर स्वर में बोले थे, ''जा, तू निश्चिंत होकर काम पर जा.''

उस दिन शाम जगदीश सिंह के जानवरों की सानी-चारा करके उनके घर हाजिरी बजा व प्रसन्न मन झोपड़ी में लौटा. वह सोच रहा थ कि जाते ही वह बापू को घूमा-फिराकर कहेगा कि शादी में अधिक देर न करे. जब कुछ ताम-झाम नहीं करना तब देर का क्या मतलब! लेकिन झोपड़ी के बाहर पहुंचने पर उसे आश्चर्य हुआ, झोपड़ी खुली पड़ी थी और अंदर घुप्प अंधेरा था.

बापू तो कभी ऐसा नहीं करता... खुली झोपड़ी छोड़कर कभी नहीं जाना और वहां होता है तो बिना चिराग जलाए नहीं रहता.उसका दिल धड़कने लगा था, तेजी से. झोपड़ी के दरवाजे पर पहुंचते ही उसने बापू को आवाज दी. कोई उत्तर न मिला तो वह उनकी चारपाई के पास पहुंचा. अंधेरे में टटोलकर देखा तो चारपाई खाली थी. उसका दिल धक-सा रह गया.

बापू कहां गया? वह नहीं सोच पा रहा था. चिरा जलाने के लिए वह माचिस खोजने लगा. तभी उसक पैर बापू से टकराया. बापू चारपाई के पायताने जमीन पर पड़ा था. उसने माचिस ढूंढ़कर चिराग जलाया. देखा, बापू मुंह के बल औंधा पड़ा है, निस्पंद, पास ही खून से जमीन गीली पड़ी है. वह विक्षिप्तों की भांति चीख-चीखकर रो उठा. मोहल्ला इकट्ठा हो गया था. सावित्तरी की मां कनकिया भी आयी और उसे दिलासा देती रही थी. जगदीश सिंह आये थे और पचास रुपये थमा गये थे बापू के क्रिया-कर्म के लिए.

न चाहते हुए भी उसने रुपये रख लिये थे. बापू के क्रिया-कर्म से निबटकर एक दिन उसने जगदीश सिंह से कहा था, ''अब मैं काम न कर सकूंगा लंबरदार, मुझे इजाजत दें तो...''

चौंके थे लंबरदार. बोले थे, ''काम नहीं करना तो मत कर, ले आ पांच हजार रुपये और मुक्त हो जा!''

''पांच हजार काहे के... ठकुर साब?''

''डेढ़ हजार तेरे बापू के इलाज के... और उसका ब्याज डेढ़ हजार... हो गये न तीन हजार...'' आंखें चढ़ाकर बोले थे जगदीश सिंह.

वह टकटकी लगाकर देखता रहा था उनकी ओर. मन किया था उसका कि आंखें निकाल ले उस अधम की.

''क्या सोच रहा है?''

''सोच रहा था कि अभी एक साल भी नहीं हुआ बापू के इलाज को... और डेढ़ हजार पर डेढ़ हजार रुपये ब्याज....''

''सो तो है... मैं तो इतना ही ब्याज लेता हूं.... जिसकी हजार बार की चूम होती है दौड़कर आता है कर्ज लेने... तेरी थी, तब तू भी आया था.''

''और दो हजार किस बात के?''

''एक हजार तोरे बापू ने दो साल पहले लिये थे...ब्याज सहित उसके.''

''आप मेरी झोपड़ी ले लें, जो बचेगा मैं जुगाड़

करके दे दूंगा."

"झोपड़ी!" मूंछों में ही मुस्कराये थे जगदीश सिंह, "झोपड़ी तो हजार-डेढ़ हजार से ज्यादा की नहीं है. चल, मैं दो हजार लगा देता हूं उसके. आटा चक्की के लिए वह जगह बेहतर रहेगी. लेकिन तीन तो तब भी तुझे देने ही होंगे मक्कू."

"देखता हूं." वह चलने को हुआ था.

उसे रोक समझाने के स्वर में बोले थे जगदीश सिंह, "अभी तू बच्चा है मकुए... काहे को जिंदगी तबाह करना चाहता है. मेरे यहां रहेगा तो ऐश ही ऐश रहेगी तेरी. तेरा बापू सावित्तरी से तेरी शादी करना चाहता था... दो-चार महीने में उसकी मां से कहकर मैं वह भी करवा दूंगा. फिर दोनों मियां-बीवी रहना ठाठ से... रहने के लिए घेर के पासवाली कोठरी दे दूंगा तुझे... सोच ले."

और वह भी सोचने लगा था कि जगदीश सिंह का प्रस्ताव माने या न माने. न मानने का मतलब था रुपयों का इंतजाम करना और इतनी रकम.. कठिन ही नहीं, असंभव लगा था जुटा पाना उसे. वह सावित्तरी की मां के पास गया था वहां से सीधे. सुनकर उसने भी सलाह दी थी कि लगा काम वह न छोड़े. सावित्तरी के बारे में सोचे... शादी कर कहां भटकता फिरेगा.

सावित्तरी का खयाल आते ही उसकी सारी उत्तेजना ठंडी पड़ गयी थी. उसे लगा था कि वह कभी नहीं जा पायेगा वह गांव छोड़कर. और गांव छोड़कर न जाने का मतलब था लंबरदार के यहां ही काम पर रहना. उसने बहुत सोचा... और अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह कभी कहीं नहीं जा सकता. जगदीश सिंह की हलवाही करेगा और सावित्तरी के साथ घर बसाकर वहीं जिंदगी बसर करेगा.

उसने जगदीश सिंह के सामने हथियार डाल दिये थे. सुनकर खिल उठे थे जगदीश सिंह.

"तू तो अपने बापू से भी अधिक समझदार है रे. मेरे पास रहेगा तो दुख काहे का होगा! और मैंने सोचा है कि तुझे सहारे के लिए दो-तीन बीघे खेत तिहाई पर दे दिया करूंगा.. जोतने-कमाने के लिए." मूंछों में मुस्कराते हुए बोले थे जगदीश सिंह.

यह प्रस्ताव उसे आकर्षक लगा था.

और एक दिन उसकी झोपड़ी पर कब्जा हो गया था जगदीश सिंह का. अपना ताम-झाम उठाकर वह आ गया था उनके घेर की कोठरी में. उसकी झोपड़ी तोड़कर पक्की ईंटों की दीवारें खड़ी करवा दी थीं जगदीश सिंह ने और धन्नियों की छत डलवा दी थी. आनन-फानन आटा-चक्की लग गयी थी. वहां—डीजल से चलने वाली. वह चक्की की ठक-ठक-ठक सुनता तो उसे लगता जैसे वह आवाज उसकी झोपड़ी में नहीं, उसकी छाती पर हो रही है.

उसके बापू को मरे मुश्किल से दो महीने ही बीते थे और झोपड़ी उसके हाथ से निकल गयी थी. शायद जगदीश सिंह को उसके बापू की मौत का ही इंतजार था. झूठा-धूर्त-मक्कार है यह आदमी जिसने उसके बापू के शरीर का खून तो चूस ही लिया था, "अब उसका खून चूसने लगा था! और वह कितना विवश है, कितना असमर्थ..." उसके अंदर एक टीस-सी उठती तो वह जगदीश सिंह को एक भद्दी-सी गाली देकर मन को संतोष दे लेता.

कुछ समय यों ही गुजर गया था. इस मध्य कनकिया ने दो-तीन बार उसे बुलाकर समझाया था, "बेटा, मेरी जिनगानी का भी कुछ ठिकाना नहीं... मरने से पहले सावित्तरी... तेरे बापू की भी यही इच्छा थी..."

"तू घबड़ा न अम्मा... भगवान महावीर ने चाहा तो इस बार की फसल मा ई पिशाच जगदीश सिंह का पइसा अदा करि देब... तब ही ठीक रही."

"कइसे अदा करिहा तू?"

"तीन बिगहा तिहाई मा जोता है इस बार. फसल लहलहा रही है... बोकी पैदावार ते... तीन हजार की ही त बात है... फिर शादी बियाह मा कुछ तो लेन-देन करहीं का पड़ी..."

कनकिया ने भी सोचा कि मक्कू ठीक ही कह रहा है. फसल आने में दो महीने की ही तो बात है. और वह भी कौन-सा इंतजाम करके बैठी है कि तुरंत शादी कर ही देगी.

वह भी खुश था सोचकर कि अब तो कुछ ही दिनों की तो बात है... सावित्तरी को उसकी बनने में.

नींद यों हिरन हो गयी थी कि एक क्षण के लिए भी झपकी न लगी थी. वह करवट ही बदलता रहा. बदन अभी भी टीस रहा था उसका और ठंड थी कि इठला रही थी. पिल्लही रजाई, जिसमें घुसते ही वह ढेर हो जाया करता था, आज ठंड से उसे नहीं बचा पा रही थी. वह नहीं समझ पा रहा था कि आज ठंड कुछ अधिक है. या शंकर बाबू की मार के कारण वह ऐसा महसूस कर रहा है.

सत्तो भंगन के मुर्गे ने बांग दी तो वह उठ बैठा. दरवाजा खोल बाहर देखा तो लगा कि रात अभी कुछ अधिक ही है. भोर तो नहीं ही हुआ. पैरों में रजाई डाल वह फिर बैठ गया. घेर में कोई भैंस खड़ी पेशाब कर रही थी. किसी दूसरे जानवर के खड़े होने की आहट भी आयी, जो शायद भैंस की पेशाब की छीटों से खड़ा हो गया था.

उससे बैठा नहीं जा सका. उठ खड़ा हुआ. अंगड़ाई ली तो बदन जोर से टीस उठा. थोड़ी देर खड़ा रहा वह, फिर पैरों से टटोलकर फटे चमरौंधों में पैर डाले, सिरहाने रखी लाठी उठायी, दरवाजे पर कुंडी लगायी और बाहर निकल गया.

सड़क पर आते ही कुत्ते भौंक उठे थे. लेकिन वह चलता रहा. कुत्तों ने थोड़ी दूर तक उसका पीछा किया लेकिन इमली के पेड़ के पास आकर वे रुक गये और कूंकूं करते हुए लौट गये. वह सावित्तरी के घर की ओर से निकला. क्षण भर के लिए वहां

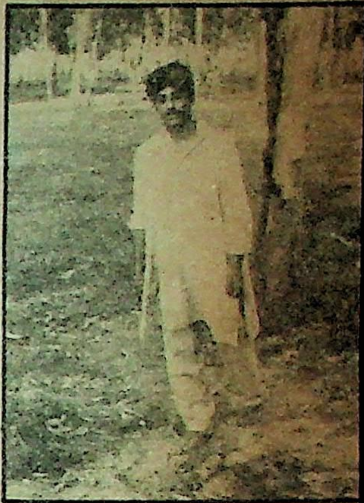

उस दिन के बाद जब भी सावित्तरी रास्ते में कहीं उससे टकरा जाती, शरमाकर छुई-मुई बन जाती. एक दिन तो सामने पड़ने पर उसने कह भी दिया था, "काहे को इतना सरमाती है तू... आखिर एक दिन तो तुझे..."

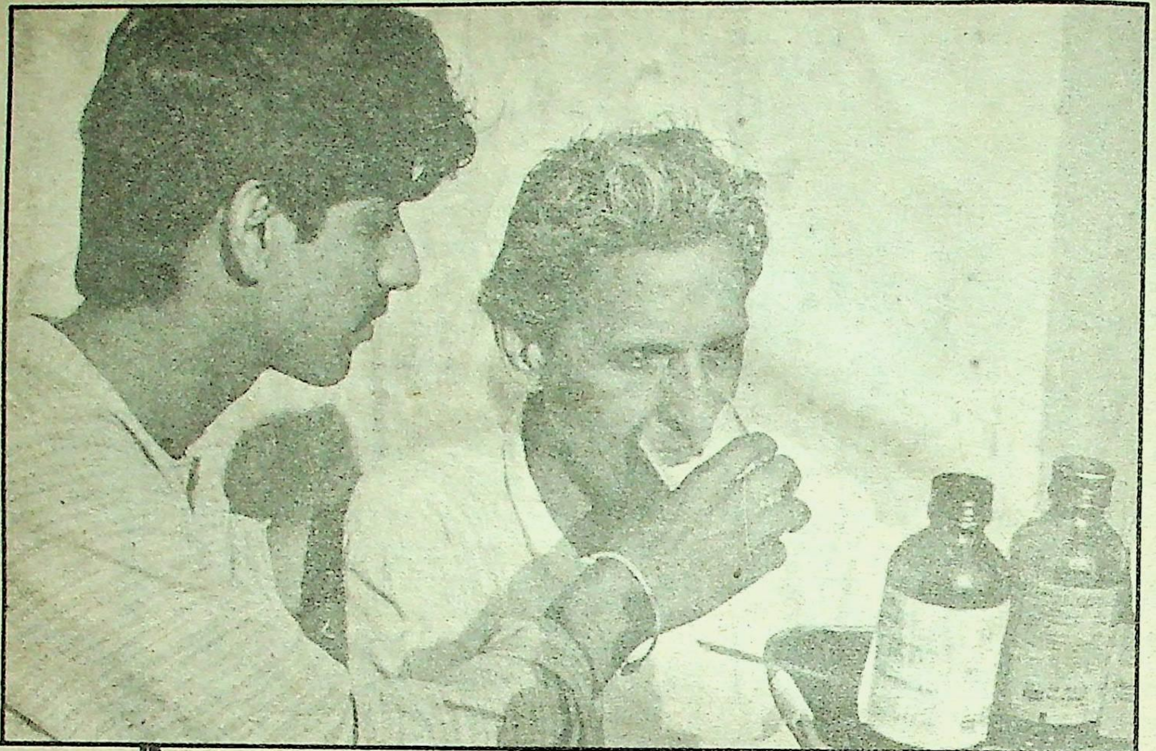

बापू को जोरदार खांसी आ गयी थी. खांसता रहा था वह. और खंखारकर बलगम उसने जमीन पर उगल दिया था. मक्कू ने देखा था, वह बलगम ही नहीं था केवल...खून मिला था उसमें.

ठिठका, आहट लेने के लिए कि मां-बेटी ठीक-ठाक तो हैं न. जब उनके सोने के खर्राटे सुने तो आश्वस्त हो गया और मंदिर की ओर मुड़ गया.

गांव पूरी तरह निस्तब्ध था... अंधेरे में खोया. कहीं किसी कुत्ते के भौंकने की या कूंकूने की आवाज ही सुनायी पड जाती थी.

वह जाकर मंदिर के बाहर चबूतरे पर बैठ गया और मंदिर की ओर मुंह कर हनुमान का स्मरण करने लगा, 'हे भगवान, शंकर बाबू, उनके दोस्तों से पिंड छुड़वा दो. जिसकी मांग वे लोग कर रहे थे, वह उनके लिए नहीं हाजिर कर पायेगा. हे प्रभू तुम सरबब्यापी हो, उनसे तुम ही मुक्ति दिला सकता हो.'

इस समय वह यह भी भूल गया था कि बाहर ओस में बैठे होने से ठंड के कारण उसका शरीर कांप रहा है. वह तो आज महावीर भगवान को प्रसन्न कर लेना चाहता था, जिससे सुबह शंकर बाबू की नजरों से दूर रह सके. वह सोच रहा था कि महावीरजी की किरपा हुई तो जरूर लंबरदार उसे खेतों में भेज देंगे.

वह आंखें बंद किये स्मरण में मग्न था कि मंदिर के पास वाली कोठरी का दरवाजा खुला. इस कोठरी में मंदिर के पुजारीजी रहते थे. उसकी आंख खुल गयी. उसने देखा, पुजारी कोठरी से बाहर निकले और तहमद उठा खड़े-खड़े ही मंदिर की दीवार गीली करने लगे हैं. उसे अजीब-सा लगा. पुजारीजी को तो ऐसा नहीं करना चाहिए. मंदिर में महावीर भगवान विराजमान हैं और पुजारीजी मंदिर की दीवार अपवित्र कर रहे हैं. अगर महावीरजी को गुस्सा आ गया तो? सुना है उनका गुस्सा बड़ा भयानक होता है पुजारीजी को पटरवनी दे-देकर मार भी सकते हैं...'

लेकिन महावीरजी ने पुजारी को पटखनी नहीं दी. पुजारीजी निवृत्त होकर लौटने लगे तो चबूतरे पर बैठे उस पर उनकी नजर पड़ी. वहीं से पूछा, "कौन है रे?"

"मैं हौं मक्कू, पुजारीजी."

"पापी, तू इस समय यहां क्या कर रहा है?" पुजारीजी चप्पलें चटखाते उसके पास आ गये.

चबूतरे से उतर उसने दूर से ही उन्हें पांय लागी की.

"क्या कर रहा है रे यहां?"

"कुछ नहीं महाराज, नींद नहीं आ रही थी, सोचा चलकर भगवान के थान पर ही बैठूं."

"ठंड भी नहीं लग रही तुझे? पुराने पापियों को ठंड नहीं लगती न." पुजारीजी हंसे.

वह कुछ नहीं बोला.

"चल, कोठरी में चल. भोर होने में अधिक देर नहीं है. चाय बनाता हूं, तू भी पी."

पुजारीजी ने चाय बनायी, गुड़ की. पीकर उसे लगा, ठंड कुछ कम होने लगी है. चाये पीते हुए पुजारीजी का धार्मिक उपदेश शुरू हो गया था. वह चुप सुनता रहा. लेकिन चाय खत्म करते ही पुजारीजी उपदेश बीच में ही छोड़कर उठे और बोले, "तू बैठ, मैं अभी आता हूं निबटकर." वे लोटे में पानी भरने लगे.

चाय पीने से उसे भी दबाव महसूस होने लगा था. पुजारी के साथ वह भी उठ खड़ा हुआ, "भोर होई रही है महाराज, मैं भी चलता हूं." वह बोला.

पुजारीजी कुछ नहीं बोले. कोठरी की कुंडी चढ़ायी

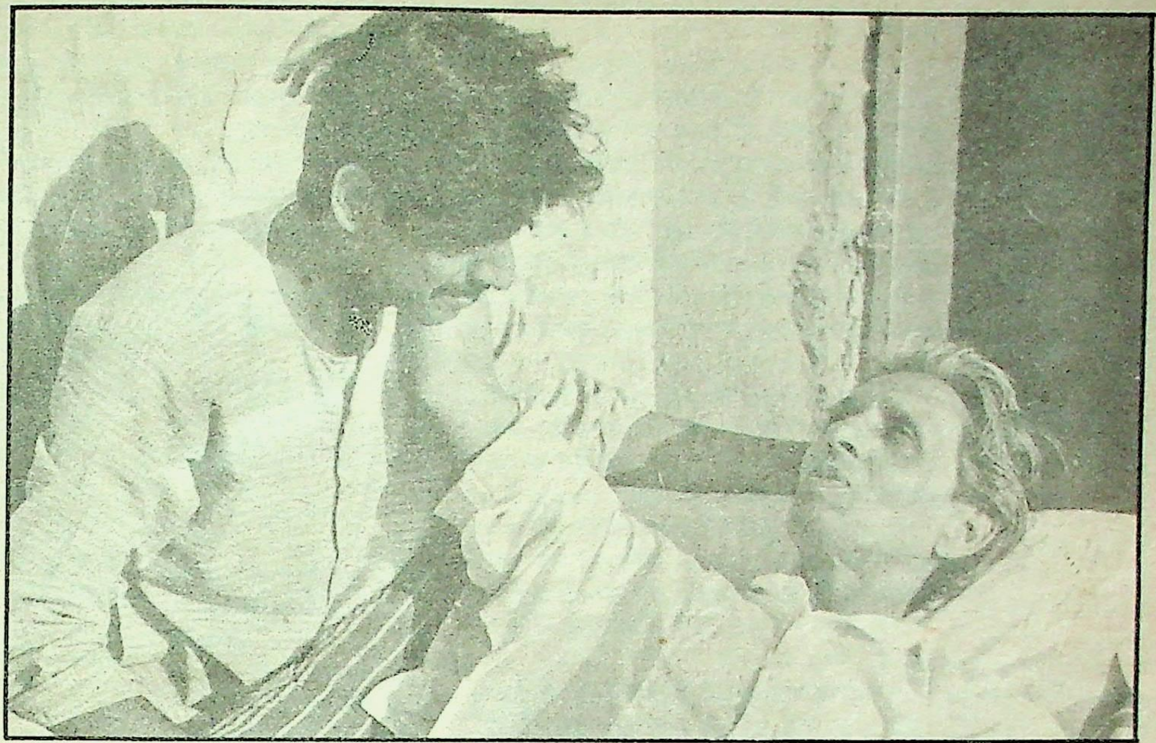

और लोटा थाम दौड़ पड़े. उसे हंसी आयी. अब उसका खुद का दबाव भी बढ़ रहा था. उसने भी चाल तेज कर दी और नहर की ओर बढ़ गया.

अभी हल्का-हल्का अंधेरा ही था जब मक्कू गोबर घूर में फेंक चुका था. बैलों और भैंसों को सानी कर चुका था. जगदीश सिंह के घेर में उन दिनों आठ जानवर थे. एक जोड़ी बैल, तीन भैंसें, दो पड़िया और एक पड़वा. केवल एक भैंस भरी.

जगदीश सिंह जब घेर में आये, तब वह भूरी को दोहने की तैयारी कर रहा था. पड़िया भूरी के थनों को चिचोड़ रही थी और भैंस सिर हिला-हिलाकर सानी में मुंह मार रही थी. उसने जगदीश सिंह को देखा और अंदर ही अंदर आशंकित हो उठा कि सुबह-सुबह आज वह उधर कैसे. कभी साल-छह महीने में एक बार जगदीश सिंह उतनी सुबह घेर में तभी आते हैं, जब कोई खास बात होती है. वह क्षण भर के लिए ठिठका, लेकिन तत्क्षण उसे याद आया कि उसे तुरंत पड़िया को खूंटे से बांध देना चाहिए नहीं तो वही सारा दूध पी जायेगी और बाल्टी में रोजाना से तनिक भी दूध कम निकला तो लंबरदारिन की भौंहें टेढ़ी हो जायेंगी

पड़िया बांधकर वह भैंस के नीचे बैठ गया और थनों में हाथ फेरने लगा. दूध उतर आया था उनमें. उसने बाल्टी टांगों में दाबी और छन-छन-छन दूध निकालने लगा. जगदीश सिंह आकर पास ही खड़े हो गये थे.

''जै राम जी की—मालिक.'' दूध निकालते हुए ही गर्दन टेढ़ी कर उनकी ओर देख वह बोला.

''राम राम...'' जगदीश सिंह कुछ देर खड़े देखते रहे. उन्होंने काला ओवर कोट पहन रखा था और सिर पर लंबरदारिन के हाथ की बुनी रंग-बिरंगी ऊनी टोपी चढ़ा रखी थी. भैंस ने गर्दन घुमाकर उन्हें देखा और नथुनों से फुंकार छोड़ उन्हें मारने के लिए गर्दन बढ़ायी.

''भूरी,क्या बात है?'' जगदीश सिंह आगे बढ़े भैंस की पीठ पर हाथ फेरने के लिए, लेकिन भैंस ने फिर भी उन्हें नहीं पहचाना. और गर्दन कुछ अधिक ही टेढ़ी कर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक जोर से फुंकारी. इस प्रक्रिया में उसकी एक टांग भी ऊपर उठ गयी. मक्कू गिरते-गिरते बचा.

''मालिक,आप बाहर चले जायें... भूरी बिगड़ गयी तो दुहना मुश्किल हो जायेगा.''

''लगता है बदजात ने पहचाना नहीं.'' झुंझलाते जगदीश सिंह बाहर चले गये.

भैंस को शांत होने में कुछ समय लग गया. वह दूध फिर ऊपर चढ़ा ले गयी थी. काफी देर तक थनों को सहलाने के बाद उसने दूध उतारा, लेकिन फिर भी पूरी तरह से नहीं.''

''आपके आवें ते भूरी बिचक गयी मालिक... पूरा दूध नहीं छोड़ि है.'' डरते-डरते मक्कू बोला.

''कसाइयों को पुजा दूंगा स्साली को! मेरे आने से बिचकती है!'' नथुनों को फड़फड़ाते गुर्राये जगदीश सिंह, फिर कुछ रुककर बोले, ''आज तू लौंडों के साथ नहीं रहेगा... बहेरवा हार का काम रह रहा है, न...''

''हां मालिक.''

■

उसने जब से होश संभाला, अपने को जगदीश सिंह की सेवा में पाया. जब वह बहुत छोटा था, उसकी मां मर गयी थी आग में जलकर. सच तो यह था कि वह मरी नहीं, मार दी गयी थी.

"तो जाकर उसे पूरा करना... शंकर खुद ही दोस्तों को घुमा लायेगा."

"अच्छा मालिक." उसका भय कुछ कम हुआ. अभी तक तो वह यही सोचता रहा था कि शंकर बाबू ने जरूर उठते ही उसके बारे में उल्टे-सीधे लंबरदार के कान भरे होंगे तभी इतनी सुबह वह घेर में दौड़े आये. लाठी भी उनके हाथ में थी. वह सोच रहा था, आज उसकी खैर नहीं. लेकिन अब वह सोचने लगा, शायद महावीरजी ने उसकी बिनती सुन ली है, तभी लंबरदार की मति मा ये बात आयी और वह दिन भर के लिए शंकर बाबू की नजरों से बचा रहेगा.

जगदीश सिंह चले गये. उसने कपड़े से बाल्टी ढकी और दूध लेकर घर की ओर चल पड़ा. उसे देखते ही लंबरदारिन बोलीं, "कब से दूध का इंतजार कर रही हूं... अब तेरी सुबह हुई?"

वह कुछ नहीं बोला. खड़ा रहा गर्दन झुकाकर और सोचता रहा, 'आज इन लोगों का सबेरा इतनी जल्दी कैसे हो गया? सूरज ने तो अभी ठीक से सिर भी नहीं निकाला. दूसरे दिनों से तो पहले ही वह आ गया है... फिर भी...'

"इस तरह क्यों खड़ा है? जाकर बबुआ और उसके दोस्तों को जगा. मैं चाय तैयार कर रही हूं."

उसे फिर अंदर कंपकंपाहट महसूस हुई. रात की चोट टीस उठी. उसने मना करना चाहा, वह नहीं जायेगा उनको जगाने, लेकिन कर नहीं सका. लंबरदारिन कूल्हे मटकाती रसोई में चली गयी तो वह भी शिथिल कदमों से बाहरवाले कमरे की ओर शंकर बाबू को जगाने चल पड़ा.

दरवाजा बंद था. वह कितनी ही देर दरवाजे के पास खड़ा रहा. सोचता रहा, कैसे आवाज दे. एक बार उसने दरवाजे पर कान लगाकर भी देखा, यह जानने के लिए कि वे लोग जाग रहे हैं या नहीं. उसे कुछ आभास नहीं मिला. वह सोचने लगा, हे भगवान, कोई उधर से गली में आ टपके तो उसी से कहकर उन्हें आवाज दिलवाए. लेकिन काफी देर खड़ा रहने के बाद भी कोई उधर से नहीं गुजरा. दरअसल वह कमरा मुख्य गली से दूर, एक कोलिया (संकरी गली) में था, जिससे प्रायः लोग कम ही आते जाते थे. उसमें दिन में भी अंधेरा-सा रहता था. उस समय तो वैसे भी गली में अंधेरा ही था. अभी तो सूरज की किरणें लंबरदार के घर के सामने वाले नीम के पेड़ की फुगगी पर आ बैठी थीं.

कितनी देर तू यों ही खड़ा रहेगा... लंबरदारिन का हुक्म तो बजाना ही पड़ेगा. उसने सोचा और धीरे से दरवाजे की कुंडी खटखटायी. अंदर से कोई आवाज नहीं आयी. उसने दोबारा कुछ जोर से कुंडी खटखटायी. फिर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई अंदर.

"शंकर बाबू... शंकर बाबू... मालकिन बुला रही हैं." दरवाजे पर थप-थप कर उसने आवाज दी. उसका गला खरखरा रहा था.

लेकिन अंदर कोई सुगबुगाहट नहीं हुई.

इस बार उसने दरवाजा पकड़कर भड़भड़ाना चाहा. सोचा कि ऐसा करने पर अधिक से अधिक फिर पिटना पड़ सकता है. लेकिन करे भी क्या वह.

दरवाजा पकड़ जैसे ही उसने भड़भड़ाना चाहा, दरवाजा खुल गया.

"यह तो खुला है... साइद बंद करना..." बुदबुदाते हुए उसने पूरी तरह दरवाजा खोल दिया और आवाज दी, "शंकर बाबू, मालकिन बुला रही हैं."

लघुकथा

चिड़ियां

☐ रामस्वरूप दीक्षित

"तूने कितने बीनपाये?"

"दो रुपये बारह आने, और तूने?"

"बीने तो मैंने तीन रुपये हैं, पर अठन्नी की इसमें दुक्की-तिक्की हैं, जिनका चलन आजकल बंद हो गया है, इसलिए ढाई रुपया ही हाथ लगा."

"ये तेरी मुट्ठी में क्या है? जेब भी तनी है, क्या भरा है बताना जरा?

"जेब में मखाने और मुट्ठी में बतासे हैं. क्या तूने नहीं उठाये?"

"अरे कहां, मैं तो पैसे बीनने में ही लगा रहा. पूरे चार रुपये करना चाहता था पर पौने तीन ही हो पाये. तू यार बड़ा चालाक निकला, पैसे भी खूब पा गया और बतासे मखाने ऊपर से."

"कोई बात नहीं, चलो, वहां बैठकर बतासे और मखाने खायेंगे."

"वाह! मजा आ गया. मखाने तो बहुत मुलायम होते हैं रे?"

"और बतासे की मिठास भी तो देख?"

"मेरा बापू कह रहा था एक दिन कि रसगुल्ला बहुत मीठा होता है. पर वह झूठ है, बतासे से मीठा रसगुल्ला नहीं हो सकता."

"हां, बात तो सच है."

"कोई बड़ा सेठ

कोई उत्तर न मिलने पर उसने झांककर देखा, वहां चारपाइयां खाली थीं. वह अंदर चला गया. अंडे के छिलके फर्श पर पड़े थे और खाली बोतलें लुढ़की हुई थीं. आलमारी की ओर नजर डाली उसने. शंकर बाबू के मित्रों का सामान रखा था वहां. खूंटी पर दो पैंटें टंगी थीं और दो जोड़ी चप्पलें भी चारपाई के नीचे रखी थीं. वह समझ गया कि वे लोग दिसा-मैदान गये हैं. दरवाजा बंद कर उसने बाहर से कुंडी चढ़ा दी.

"लागत है, शंकर बाबू लोग जंगल गये मालकिन." लंबरदारिन के पास पहुंच वह बोला.

"यह सब तेरे देर से आने के कारण हुआ! हाय हाय, बेचारे बिना चाह पिये चले गये."

"मैं तो... मैं तो... मालकिन..." शब्द उसके गले में ही फंस गये. उसे लंबरदारिन का यह दोषारोपण अत्यधिक घृणित लगा.

"चोप्प! तू नमक हराम है! जान-बूझकर देर से आया... भाग जा यहां से! मेरी आंखों के सामने से!" चीख उठी लंबरदारिन. उस क्षण उनकी बंटे जैसी बड़ी आंखें फैली हुई थीं और चेहरा सुर्ख हो रहा था.

उसने वहां रुकना उचित नहीं समझा. कहीं जगदीश सिंह आ गये तो... वे भी डरते हैं लंबरदारिन से... उनके आ जाने पर होने वाली स्थिति की कल्पना की उसने और चौपाल से फावड़ा ले बहेरवा हार के लिए तेज कदमों से चल पड़ा. पहले वह सोच रहा था कि चाय पीकर ही जायेगा... कुछ चबेना मिल जायेगा तो वह भी खा लेगा, लेकिन चाय-चबेना तो दूर, उसे लग रहा था कि अब शायद सारा दिन यों ही रहना पड़ेगा. यह कोई नयी बात न थी. पहले भी सैकड़ों बार ऐसा हो चुका है. अभ्यस्त हो चुका है वह, बिना खाये दिनभर खटने के लिए. जिस दिन भी लंबरदारिन गुस्से में होती हैं, उसके साथ यही होता है.

साहूकार लगता है. भगवान करे बेचारा स्वर्ग जाये."

"अपन की भी यही दुआ है. मैंने तो पहली बार मखाने और बतासे खाये हैं."

"अच्छा, अब ये बता कि इन पैसों का तू क्या करेगा?"

"पहले तू बता फिर मैं बताऊंगा."

"मुझे तो चड्डी खरीदनी है. दो महीने से फटी चिथड़ी लटकाये हूं. बापू से कहता हूं तो मारता है, कहता है पैसे कहां से लाऊं? क्या डाका डालूं तेरे लिए? जो मजूरी मिलती है उससे तेरा पेट तो भर रहा हूं."

"वाह दोस्त, क्या बात कही तूने, यही हाल तो अपना है. क्या तुझे मालूम था कि मैं यही कहने वाला हूं जो तू कह गया है?"

"अब जो तू समझे. पर यार ये तो बता, चड्डी दो-ढाई रुपये में तो आने से रही, कम से कम चार-चार रुपये की आवेगी. बाकी के पैसे कहां से लायेंगे?"

"ऐसा कर, पहले तू ले ले बाद में ऐसे ही कभी कोई और मरेगा तो मैं ले लूंगा."

"अरे नहीं यार, दोनों साथ ही लेंगे. जरा ठहर जा, वो जो कोने में सरोगा बाबू रहते हैं न, सुना है उनके पिता की तबीयत बहुत खराब है, शायद ही एक-दो दिन ठहरें. उनकी अर्थी के पैसे लूटकर ठप्पे से दोनों जन एक-सी चड्डियां खरीदेंगे." □

बहेरवा हार जाने का रास्ता मंदिर के पास से होकर गुजरता था. उसने दूर से ही देख लिया कि अपने दोनों मित्रों के साथ शंकर बाबू बाहर चबूतरे पर बैठे धूप सेंक रहे हैं. पास ही पुजारी भी बैठा है और सभी की उंगलियों में सिगरेट है.

सिगरेट का धुआं चुकरिया की तरह मुंह बनाकर ऊपर की ओर छोड़ते हुए शंकर बाबू कुछ कह रहे हैं और दो उंगलियों के बीच सिगरेट दबाए होंठों में लगाते हुए पुजारी जोर-जोर से सिर हिला रहा है. शंकर बाबू के दोनों मित्र सिगरेट की राख झाड़ खिलखिला रहे हैं. उसका दिल धक-धक करने लगा.

"हे महावीर जी, शंकर बाबू लोगन की नजर न पड़े मुझ पर." मन ही मन सोचते हुए उसने कदम और तेज कर दिये. लेकिन कनखियों से इधर देखने की इच्छा को भी वह रोक नहीं पाया.

शंकर बाबू का एक मित्र उसकी ओर इशारा कर शंकर बाबू से कुछ कह रहा था. उसके दिल की धुक-धुकी और तेज हो गयी, लेकिन किसी ने कुछ नहीं कहा. वह निर्विघ्न वहां से गुजर गया.

"तुम सचमुच दयालु हो भगवान." उसने श्रद्धापूर्वक पीछे मुड़कर मंदिर की ओर देखा और आराम से चलने लगा.

सांझ ढलने के बाद वह लौटा. दिन भर बिना खाये काम करते रहने से पेट और सिर में दर्द हो रहा था. लेकिन घेर पर पहुंचते ही पता चला कि लंबरदारिन दूध की बाल्टी लिये वहां पहले से ही मौजूद है. वह कुछ देर आराम करना चाहता था, लेकिन मन मारकर भूरी को दोहने बैठ गया.

दूध की बाल्टी लंबरदारिन को थमा वह कोठरी की ओर बढ़ने लगा कि लंबरदारिन की आवाज सुनाई पड़ी, "बैलन के लिए कटिया (कुट्टी) नहीं है मक्कू... हरियारी और कर्बी मशीन के पास पड़ी है."

उसे क्रोध तो बहुत आया. मन हुआ कि कहे, 'लंबरदारिन, बैलन की तो इतनी चिंता है आपको... और मैं जो दिन भर से...' लेकिन मन के उबाल को बाहर न निकलने दिया उसने. जाती हुई लंबरदारिन से धीरे से बोला, "अच्छा मालकिन."

लंबरदारिन के जाने के बाद वह दुविधा में फंसा रहा कुछ क्षण कि कुछ देर आराम कर ले फिर कटिया काटे या लगकर पहले कटिया काट ले और तब निश्चिंत होकर आराम करे. खाना तो दस बजे से पहले नसीब होने से रहा. तभी उसे याद आया कि कुछ दिन पहले सावित्तरी की अम्मां ने थोड़े से भुने चने दिये थे उसे... रहे होंगे कोई पाव भर. भुने चने उसे बहुत पसंद हैं न.

पुस्तकालय
०८०५३८
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

कुछ देर आराम करके ही कटिया काटूंगा. अकेले ही दो बोझ काटना पड़ेगा. आराम भी कर लूंगा और थोड़े चने भी पेट में डाल लूंगा.

वह कोठरी में जाकर चिराग जला चनों की पोटली ढूंढने लगा. उस छोटी-सी कोठरी में थोड़ा-सा सामान था उसका. एक टीन का संदूक जो बापू ने कभी खरीदा था, जिसमें उसके फटे पुराने कपड़े रखे रहते

हैं, खटोली, दरी और पिल्लही रजाई. एक लुंगी, फटी बंडी, कुर्ता और उस पर कतिका (कार्तिक पूर्णिमा) के मेले से खरीदी गयी पुरानी जर्सी उसके शरीर पर थे... बस इतनी ही चीजों का धनी था वह.

उसने चनों की पोटली आले में रखी थी. लेकिन उसे आश्चर्य हो रहा था कि पोटली वहां नहीं थी. 'कहां गयी पोटली? रखी तो आले में ही थी.' वह सोचने लगा. उसने खटोली के नीचे, दरवाजे की ओट में और दरी झाड़कर देखा... लेकिन पोटली गायब थी. तभी उसकी नजर एक कोने में इकट्ठा मिट्टी के ढेर पर पड़ी. ढेर के पास दीवार में बिल भी था. उसने देखा, कुछ चने मिट्टी के ढेर पर बिखरे हैं. स्पष्ट था कि चूहे पोटली बिल के अंदर खींच ले गये हैं. उसने मिट्टी के ढेर पर पैर पटका और कोठरी से बाहर निकल आया चिराग लिये. सोच लिया कि अब वह आराम भी नहीं करेगा.

वह आधा से अधिक बोझ काट चुका था. स्वयं हरियारी मिलाकर कर्बी का मूठा मशीन में ठूंसता और फिर मशीन चलाने लगता. खच्च... खच्च... कटिया का ढेर इकट्ठा होता जाता. पेट में दर्द होता तो वह थोड़ी देर के लिए खड़ा हो जाता.

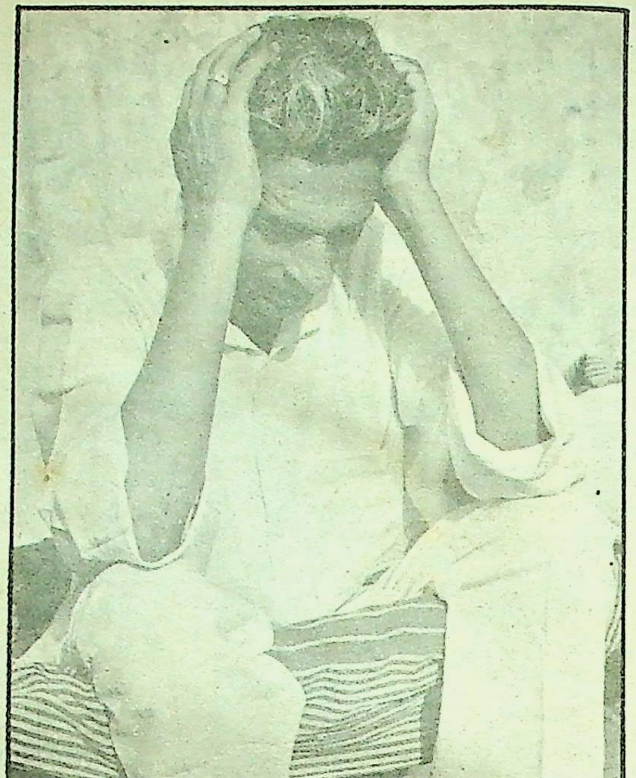

ताजा मूठा लगाकर उसने अभी मशीन का डंडा पकड़ा ही था कि सावित्तरी की अम्मां, कनकिया दौड़ती हुई आयी.

"मक्कू, बेटा मक्कू..." उसके स्वर में घबड़ाहट थी और वह हांफ रही थी.

"का अम्मां... का बात है?"

"बेटा, सावित्तरी... हाय मेरी बिटिया!" माथे पर दोनों हाथ रख वह बैठ गयी और बिलखने लगी.

"का हुआ सावित्तरी को...?" मक्कू घबड़ा उठा.

"बेटा, वो-वो... अभ्भी तलक...बेटा, मैं तो..."

"बोल अम्मा, बोल का हुआ हमारी सावित्तरी को?" उत्तेजित हो उसने कनकिया को झकझोरा.

"बेटा, वो अभ्भी तलक नहीं लौटी."

"कहां गयी थी?" उसे लगा घबड़ाहट के कारण उसकी आवाज भी कांप रही है.

"सांझ को बहिरे (दिसा-मैदान)... बेटा... पता नही साउज खा गा या धरती लील-गै मेरी बिटिया को! हाय, मैं तो कहीं की न रही बेटा... हाय सावित्तरी... तू कहां गयी?" कनकिया फिर विलाप करने लगी.

"अम्मा, तू मेरी मान, चुप हो जा... मैं देखत हौं सावित्तरी को."

"आस-पास के खेतन मा-औ धोबिन गड़ैया के पास तलक तो मैं देख आयी बेटा... पन... पता नहीं... हाय सावित्तरी..." वह फिर बिलख उठी.

"अम्मा, तू चुप रह... रो मत, नहीं त गांव इकट्ठ हुई जाई... तू घर चल, साइद सावित्तरी लौट आयी हो अब तक. पर तू रोना मत, थोड़ा धीरज रख. ज तक मैं पता न लगा लूं..."

कनकिया चुप हो गयी. मक्कू ने काम छोड़ दिया. लाठी उठायी और निकल आया घेर से बाहर. सोच लिया, जो भी होगा देखा जायेगा... अधिक से अधिक मारेंगे ही न जगदीश सिंह. कल शंकर बाबू की मार सही थी, आज उनकी भी सह लूंगा. लेकिन सावित्तरी को ढूंढना जरूरी है. अगर उसे कहीं कुछ..., नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता! हो सकता है उसे चक्कर आ गया हो और कहीं बेहोश पड़ी हो. दो दो दिन हो जाते हैं कभी-कभी इन लोगों के पेट में अन्न नहीं जाता. कमजोर तो है ही वह... अब चाहे जो भी हो जाये, फसल कटते ही वह उससे शादी कर लेगा और अम्मा के साथ ही रहने लगेगा, उसका भी सहारा बनकर.

उसने चाल तेज कर दी. कनकिया उसके साथ घिसटने लगी. रास्ते में दो-तीन लोग मिले और उन दोनों को इस तरह जाते देख खड़े होकर देखने लगे, लेकिन वह कुछ बोले बिना निकल गया. वे झोपड़ी में पहुंचे, लेकिन सावित्तरी नहीं लौटी थी.

''हाय मक्कू...!'' झोपड़ी खाली पा कनकिया फिर चीखने को हुई लेकिन उसने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, ''अम्मा, ई समय चीखने-चिल्लाने का नहीं है... महल्ला इकट्ठा करने का नहीं... किसको का जवाब देगी तू? हजार मुंह, हजार बातें होंगी. तू चुप बैठ घर मा. मैं पता करता हूं.''

कनकिया कुछ कहे, इससे पहले ही कंधे पर लाठी रख वह सरपट दौड़ पड़ा.

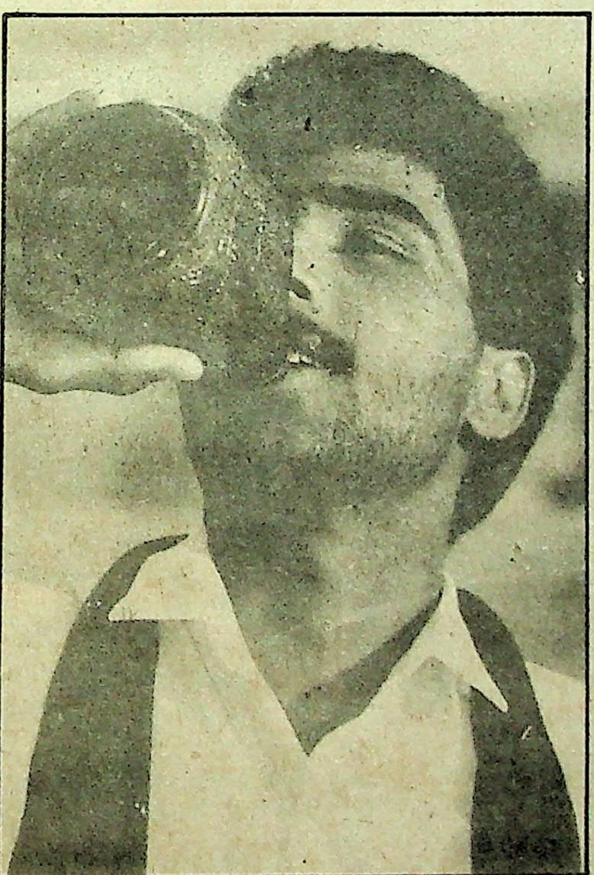

गांव के पास के एक-एक खेत उसने छान डाले. नहर से निकलनेवाली नाली के किनारे एक-एक झाड़ी के अंदर लाठी से टोह लेता वह नहर तक चला गया. नहर की पटरी पर खड़ा होकर वह सोचने लगा कि अब उसे किधर जाना चाहिए. रात का अंधेरा इतना गहरा था कि नहर में बहकर जाती लकड़ी सांप-सी दिख रही थी—काली. हवा चलने लगी थी और ठंड बढ़ गयी थी. जर्सी के बावजूद ठंड उसकी पसलियों में चुभ रही थी. लेकिन इस ओर उसका ध्यान नहीं था.. इस समय व्याकुलता थी उसके अंदर सावित्तरी को लेकर.

का हुआ सावित्तरी को... का सच में साउज.... लेकिन सालों से साउज कहीं आसपास जंगल में नहीं दिखा. हो सकता है आज आ ही गया हो—उसने सोचा—और यह भी तो हो सकता है, सावित्तरी किसी के साथ कहीं... उसके साथ शादी का वो नाटक ही करती रही हो. लेकिन किसके साथ? ऐसा तो कोई है नहीं उसके महल्ले में... यह जरूरी तो नहीं है कि गांव और महल्ले का ही कोई हो, आन गांव... भीखमपुर का भी तो हो सकता है कोई. खेत-पतार आते जाते नजरें मिल गयी हों किसी खाते-पीते बाप से बेटे से... पानी में कुछ गिरा छप से तो वह चौंका.

का ऊल जलूल वह सोचने लगा था सावित्तरी के बारे में. सावित्तरी ऐसा कभी नहीं कर सकती, चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये. वह तो केवल उसी की

है—दिल में गुदगुदी-सी हुई क्षणांश के लिए, फिर सावित्तरी की चिंता ने उसे आ घेरा. दूर इमलिहा बाबा की ओर सियार हुआ उठे तो वह धीरे-धीरे उधर ही चल पड़ा. इमलिहा बाबा का भय भी धीरे-धीरे उसके अंदर उभरने लगा था. इमलिहा बाबा को गांव में किसी ने देखा भी था, उसे संदेह है. लेकिन जिससे भी उसकी बात हुई, उसी ने देखने का दावा किया. कुछ को इमलिहा बाबा इमली के उस विशाल पेड़ के नीचे सफेद झक कपड़ों में टहलते दिखे रात में और कुछ को बुलाकर बाबा ने बातें भी की थीं. इमलिहा बाबा किसका भूत है, कोई नहीं जानता. इमली के पड़े के नीचे ही वे सबको दिखते रहे हैं, इसलिए उनका नाम इमलिहा बाबा पड़ गया.

जो कुछ होगा—देखा जायेगा—मक्कू ने सोचा और चाल कुछ तेज कर दी. रास्ते में पड़ने वाली झाड़ियों में लाठी से टोह लेता जा रहा था वह. एक झाड़ी में लाठी लगते ही कोई जानवर सर्र से निकल भागा. उसने अनुमान लगाया खरगोश या वनबिलाव होगा.

वह इमलिहा बाबा के पास तक पहुंच गया. एक खेत की मेड़ पर कुछ सियार बैठे थे. उसे देख वे भाग खड़े हुए. उसने इधर उधर देखा, कहीं कुछ नजर नहीं आया. सोच रहा था कि अगर सावित्तरी को भेड़िया या कोई दूसरा साउज ले गया होता तो खाने के लिए अधिक से अधिक इतनी दूर लाता... तब कुछ तो मिलना चाहिए था उसे, उसका अवशेष. इससे उसकी घबड़ाहट और बढ़ गयी. आशंकाओं के नाग फन उठाने लगे. वह इमली के पेड़ के नीचे तक गया मन में इमलिहा बाबा का नाम जपते हुए. सुना था, भूत प्रेत सर्वव्यापी होते हैं. अगर बाबा के दर्शन उसे हो गये तो वह उनसे कुछ पूछ सकेगा सावित्तरी के बारे में. लेकिन उसे निराशा हाथ लगी. कुछ देर वह पेड़ के नीचे रुका भी. लेकिन कहीं कुछ नहीं था. वह लौट पड़ा. लौटते समय उसे लग रहा था कि उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं और दिल बैठा जा रहा है.

उसे भी अब कहीं चला जाना होगा. जहां सावित्तरी नहीं, वहां रहकर वह क्या करेगा! उसने सोचा, 'लेकिन सावित्तरी की अम्मा... हो सकता है वह सावित्तरी को इधर ढूंढता रहा है... उधर सावित्तरी घर पहुंच गयी हो. जरूर वह कहीं चक्कर खाकर बेहोश हो गयी होगी और कहीं ऐसी जगह पड़ी रही होगी, जिधर वह नहीं गया.'

लेकिन फिर भी मंदिर की ओर तो वह गया ही नहीं. और वह मंदिर की ओर चल पड़ा. चारों ओर सांय-सांय हो रही थी और किसी पेड़ के नीचे से निकलने पर सूखे पत्ते चरर-मरर करने लगते थे. रात लगभग आधी होने को थी और चांद झांकने लगा था.

मंदिर से कुछ दूरी पर आमों का एक बाग था दर्शन सुकुल का. बाग मंझाकर वह सीधे सड़क पर पहुंचना चाह रहा था. बाग की झाड़ियां अंधेरे में दैत्यों की भांति दिखाई दे रही थीं. सूखे पत्तों की चरमराहट से किसी पेड़ पर के चमगादड़ चीखकर पर फड़फड़ाते उड़े तो वह डर गया. एक क्षण के लिए वह रुक भी गया. तभी उसे एक पेड़ के पास किसी साये के हिलने-डुलने का आभास हुआ. वह उस पेड़ की ओर बढ़ा, दिल कड़ा कर. पेड़ की एक डाल धनुषाकार नीचे झुककर जमीन छूती ऊपर चली गयी थी. साया उससे हटकर तने के पीछे चला गया था. चांद के ऊपर आ जाने से उसे कुछ-कुछ समझ में आ रहा था.

पेड़ के निकट पहुंचा तो साया दूसरे पेड़ की ओर खिसकता नजर आया.

''सावित्तरी!'' धीरे से वह बोला.

साया ठिठक गया.

वह साये के निकट पहुंचा. वह सावित्तरी ही थी.

''तुम कहां थी सावित्तरी?'' वह पागलों की तरह चीख उठा. लाठी एक ओर फेंक वह उसे पकड़ने के लिए लपका.

''मुझे मत छूना मक्कू, मत छूना...!'' मुंह ढांप सावित्तरी बिलख उठी.

''का हुआ, तू यहां क्या कर रही है पगली?'' ठिठककर उसने पूछा. उसके स्वर में उत्तेजना थी. मन चाह रहा था कि सावित्तरी को हृदय में छुपा ले.

''मुझे छूना नहीं, मैं तेरे लायक नहीं रही... नहीं नहीं...''

उसने देखा, सावित्तरी के शरीर पर चिथड़े मात्र शेष थे. सावित्तरी सिकुड़ी-सिमटी उसके सामने खड़ी रो रही थी.

वह अपने को रोक नहीं सका. चेहरे से सावित्तरी के हाथ हटा उसने दृढ़ता से पूछा, ''मुझे सब कुछ बता सावित्तरी... तुझे मेरी कसम!''

''दरिंदों ने तेरी अमानत लूट ली मक्कू... अब मैं तेरे लायक... मुझे छोड़ दे तू... मैं... मैं..!'' सावित्त सिसकियां लेती बोली.

''सावित्तरी, तू अइसा मत सोच, तू अइसा मत सोच सावित्तरी! बस मुझे बता दे तू, कौन हैं वे दरिंदे...?''

सावित्तरी रोती रही.

''सावित्तरी, तुझे मेरी सौं... साफ-साफ बता...''

सावित्तरी अटक-अटककर बोली, ''बहिरै से लौट रही थी कि शंकर बाबू अउर दुई अवर जनों ने मु पकड़ लिया. पता नहीं का सुंघाया कि मैं बेहोश हो गयी. होश आया तो देखा, उन तीनों के अलावा मंदिर का पुजारी भी है. समझ में आया कि पुजारी की मोठरी में हूं... वो सब शराब पी रहे थे... और उसके बाद... उसके बाद मैं का बताऊं मक्कू...'' वह फिर बिलखने लगी, ''...और होश आया तो देखा, सब लुढ़के पड़े हैं नशे में धुत. मैं उठकर भाग आयी. अब...'' सावित्तरी फिर रोने लगी.

''तू चुप हो जा सावित्तरी!'' हांफते स्वर में वह बोला, ''थोड़ी देर और तू यहीं बैठ... कहीं मत जाना, तुझे मेरी कसम... मैं अभी आया लौटकर...'' उसने लाठी संभालकर कंधे पर रखी और दौड़ पड़ा मंदिर की ओर.

●

पापी

छायाकार
पवन महेंद्र

मॉडल
मक्कू :
राजेश शर्मा
शंकर बाबू :
प्रदीप कुमार
बापू :
राजेंद्र शर्मा
लंबरदार जगदीश
अनिल कुमार
सावित्री :
अनीता कुमारी
लंबदारनी :
रेणू कुमारी
सावित्री की माँ :
सुरेंद्र शर्मा

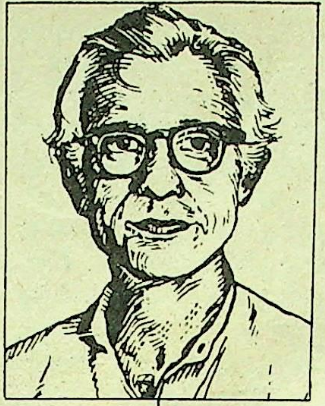

□ शील

जन्म: 14 अगस्त, 1914. कानपुर के पाली भोगीपुर नामक गांव में.

प्रमुख कृतियां: 'चर्खाशाला', 'अंगड़ाई', 'एक पग', 'उदय पथ', 'लावा और फूल' व 'कर्मवाची शब्द हैं ये' (काव्य). 'तीन दिन तीन घर', 'किसान', 'हवा का रुख', 'नदी और आदमी', 'रिहर्सल' (नाटक) तथा 'अर्थपिशाच' व 'चांद से गांव तक' (कहानी संग्रह).

कवि-कथाकार शील लंबे समय तक पृथ्वी थियेटर्स व 'इप्टा' से जुड़े रहे. आजकल वे एक उपन्यास पर काम कर रहे हैं. शील जी की चुनी हुई रचनाएं भी एक साथ प्रकाशित हो रही हैं.

यह कविता 22 फरवरी, 1990 को लिखी गयी.
संपर्क : 128/299, के. ब्लॉक, किदवई नगर, कानपुर, (उ.प्र.)

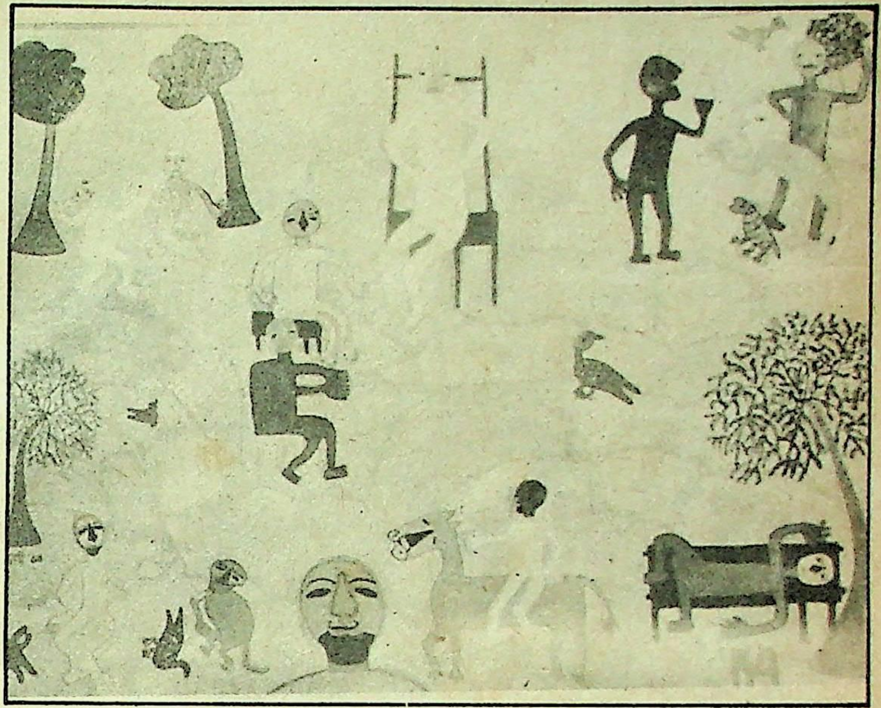

माधवी पारेख की कलाकृति

डाले नहीं हाशिये

बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.
समय के झकोरों में
खुले-खिले—
सुबह-शाम आये.
बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.

आंखों में रसे-बसे
कानों में गुंजारित,
हृदय में समाये—
कागज में उतरे.
बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.

जीवन जो जिया—
लिया-दिया, पूरा किया
कविता की सीमा में
डाले नहीं हाशिये.

प्रीति मिली प्राणों को
जन की प्रतीति मिली,
आतुर मुस्कानों में
जीवन की जीत मिली.
बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.

सरदार

सब कुछ लुट गया था ... उसे बैठे-बैठे खयाल आया, इस तरह के हालात में तो कुछ भी हो सकता है. चाहे उन्हें घर छोड़कर भाग जाना पड़े ... कैसे हैं यह हालात कि आदमी पल-पल आतंक के साये में जीने को मजबूर है ...

□ **कर्तार सिंह दुग्गल**

जन्म :1 मार्च, 1917
प्रमुख कृतियां: 'इक छिट्ट चानण दी' (कहानी संग्रह), 'कम बैक माई मास्टर' व 'विश्व की महानतम कहानियां' में संकलित.
पुरस्कार: अकादमी पुरस्कार (1965), 'गालिब पुरस्कार' (1976), 'सोवियत लैंड पुरस्कार' (1982)
संप्रतिः स्वतंत्र लेखन.
संपर्क: बी-7, होजखास एनक्लेव, नई दिल्ली- 110016

उस दिन वह बहुत रोया था. उस दिन जब 'ऑपरेशन ब्लू-स्टार हुआ था. समाचार पत्र की ओर देखता और उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी फूट पड़ती. उसकी पत्नी कभी उसके पलंग पर आकर बैठ जाती, बेबस उसकी ओर देखती रहती, मुंह से कुछ न बोलती, फिर उठकर बाहर आंगन में टहलने लगती. अकेले पति-पत्नी, उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. एक ही बेटा था जो शिमला में मेडिकल कालेज में पढ़ता था. बेटी ब्याही जा चुकी थी और अपने घर को बसा रही थी

धत् यह परिवार नियोजन! सरदारनी सर्दूल सिंह बड़बड़ाती, "अगर दो-चार बच्चे और होते तो कोई न कोई तो हमारे साथ रहता, हमारी देखभाल करता." कमरे के भीतर पति की पलकें सूखने में नहीं आ रही थीं और बाहर पत्नी परेशान थी. उनकी सैर का समय हो रहा था. हर रोज पति-पत्नी सैर के लिये जाते थे.

हर रोज वे पार्क के चार चक्कर लगाया करते थे. कॉलोनी के बाकी लोग हमेशा उनका मजाक उड़ाते, "क्यों सरदारजी, आपके "लावां-फेरे" हो गये?" न तीन, न पांच, हमेशा, वे चार चक्कर ही लगाते और फिर घर की ओर चल देत थे. इस कॉलोनी में सरदारों के घर गिनती के ही थे.

उस दिन वे घर से बाहर निकले ही थे, सड़क का पहला मोड़ काटकर, अगली सड़क पर अभी पांव रखा ही था कि सामने कोठी की छत पर खड़े कुछ बच्चे उन्हें देख कर गाने लगे "सरदारजी के बज गये बारह! सरदारजी के बज़ गये बारह!"

सरदार सर्दूल सिंह ने सुना और उनके कदम जैसे वहीं के वहीं ठिठक कर रह गये. वह कोठी किसी सेवानिवृत्त फौजी जनरल की थी. लेकिन उस कालोनी में सरदार सर्दूल सिंह को कौन नहीं जानता था? इस तरह की बेहूदगी करने की पहले कभी किसी को हिम्मत नहीं हुई थी. आज ही क्यों इन बच्चों ने कोठी की छत पर से यूं आवाजें कसीं! क्षण भर के लिये पति-पत्नी स्तब्ध से रह गये. ओर फिर उन्होंने छत के बच्चों की ओर देखा. वैसे के वैसे बेझिझक, निडर खड़े गा रहे थे. "सरदारजी के बज गये बारह! सरदारजी के बज गये बारह!" फिर सहसा वे हंसने लगे.

सरदार सर्दूल सिंह दांत भींचकर रह गये. और फिर उन्हीं कदमों से वे वापस लौट पड़े. खामोश! न उन्होंने सरदारनी से कोई बात की, न ही उनकी पत्नी ने बच्चों की बदतमीजी के बारे में कुछ कहा.

रास्ते में सरदार सर्दूल सिंह को बार-बार यह विचार आता, संभव है कि हम घर लौटें और उधर हमारी कोठी पर कोई कब्जा जमाये बैठा हो. या फिर सड़क पर से किसी ने बम फेंककर उसको तहस-नहस कर दिया हो. यह भी हो सकता है कि गेट फलांगकर यार लोग अंदर घुस गये हो और घर को लूटकर उसे आग लगा दी हो. आग तो बुझानी होगी और सर्दूल सिंह के कदम तेज हो गये, और तेज, फिर वह जैसे दौड़ने लगा हो.

"यह आप को हो क्या रहा है?" सरदारनी ने अपने घरवाले को पुकारकर पूछा. वह तो पीछे छूट गयी थी.

और सरदार सर्दूल सिंह को अचानक ध्यान आया कि वह यह क्या कर रहा था! सामने उसकी कोठी थी, वैसी की वैसी, जैसी उसे छोड़कर वे गये थे. एक ताला बाहर गेट पर, दूसरा ताला अंदर ड्योढी के दरवाजे पर बाकी सब कमरे भीतर से बंद थे. घर से निकलने से पहले उसने एक-एक चटखनी को आपने आप देखा था.

तो भी उसका दिल धक्-धक् कर रहा था. "हमला करेंगे. बम फेंकेंगे, आग लगायेंगे, तड़-तड़ गोलियों से भूनकर रख देंगे." सरदार सर्दूल सिंह मुंह ही मुंह में बड़बड़ा रहा था, "गुरु के घर तक को तो उन्होंने माफ नहीं किया था."

सरदारनी सुन रही थी, लेकिन खामोश थी. घर पहुंचकर उसने बाहर के गेट का ताला खोला. अंदर घुसकर, उसने तरंत गेट को फिर ताला लगा दिया. यूंही, ड्योढ़ी का ताला खोला, अंदर कदम रखते ही चटखनी चढ़ा दी.

''किसी समय भी आ सकते हैं,'' सरदार सर्दूल सिह ने कहा.

''कौन?'' सरदारनी ने झुंझलाकर पूछा.

''तेरा मतलब है नहीं आयेंगे? .... तो फिर नहीं आयेंगे?'' सरदार सर्दूल सिंह जैसे यह मानने के लिये कोई बहाना ढूंढ रहा हो कि उनके घर पर हमला नहीं होगा. और वह फिर अखबार लेकर घर के एक कोने में बैठ गया. पता नहीं, कहां से उसने अखबार ढूंढ लिया था.

''आपको यह कमबख्त अखबार फिर कहां से मिल गयी?'' सरदारनी ने परेशान होकर पूछा.

उसने सुनी-अनसुनी कर दी. फिर एक-एक पंक्ति पढ़ रहा था. अखबार पढ़ते हुये टप-टप उसके आंसू गिर रहे थे. पत्नी कितनी देर इंतजार करती रही. इस तरह कब वह नाश्ता करेगा? कब वह तैयार होगा? आखिर हारकर उसने, उसके एक मित्र को टेलीफोन किया.

''मैंने कहा, इन्हें आकर समझायें. यह तो सुबह से अखबार पढ़-पढ़कर रो रहे हैं'' उसकी आवाज चिंता से डूबी थी

''आप यह क्यों नहीं समझते कि हरिमंदिर आतंकवादियों का गढ़ बन गया था.'' उसकी पत्नी उसे याद दिला रही थी.

सरदार सर्दूल सिंह जैसे सुन ही न रहा हो.

''तौबा! तौबा! कैसे कैसे हथियार बरामद हुए हैं. छोटी-बड़ी मशीनगनें तक मिली हैं. और फिर ट्रांसमीटर..., हथगोले बनाने की अंदर फैक्टरी लगी थी.''

मैं पूछता हूं, यह कैसी सरकार है, जिसे इस सब कुछ का इल्म ही नहीं था! सरदार सर्दूल सिंह झुंझलाकर बोला.

''इल्म था, तभी तो सरकार को फौजी कार्यवाही करनी पड़ी.'' सरदारनी अपने पत्नी को समझ रही थी.

''तो फिर आखरी दम तक यह क्यों कहा जा रहा था कि फौज हरिमंदिर साहब में दाखिल नहीं होगी. झूठ, यह सरकार झूठी है.''

''प्रधानमंत्री कहती थी—हम कानूनी तौर पर हरिमंदिर साहब के भीतर घुस सकते हैं ....''

''लेकिन घुसेंगे नहीं.'' सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी पत्नी के वाक्य को पूरा किया. उसकी आवाज आंसुओं से भीगी हुई थी.

और सरदारनी खामोश हो गयी. इस इल्जाम का उसके पास कोई जवाब नहीं था.

सरदार सर्दूल सिंह को याद आ रहा था कि अकालतख्त पर उन्होंने 'अमृत छका' था. इससे पहले कि हरिमंदिर साहब के परिक्रमा के एक बुंगे में उनकी शादी के फेरे हुए थे और वे पति-पत्नी बने थे. हरिमंदिर की दहलीज पर माथा रगड़कर उसने गुरु महाराज से एक बेटा लिया था. पहले उनके यहां एक बेटी थी. जब कभी भी उस पर कोई मुसीबत आती, वह हरिमंदिर साहब हाजिर हुआ करता था. अकालतख्त के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करता था, प्रसाद चढ़ाता था. और ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसकी मनोकामना पूरी न हुई हो. वह अकालतख्त अब धराशायी कर दिया गया था.

रेडियो, टीवी और समाचार पत्रों में प्रतिदिन हरिमंदिर के प्रांगण में से प्राप्त हुए हथियार, गोला बारूद, गहने, नोटों से भरे हुये ट्रंक हीरे और मोती, तथा स्त्रियां जिनका कहना था कि उन्हें दासता बनाकर रखा गया था .... यह सब कुछ ब्रॉडकास्ट किया जा रहा था, छापा जा रहा था.

सरदार सर्दूल सिंह यह सब कुछ देखते, सुनते पढ़ते और बार-बार अपनी पत्नी से कहते, ''यह सब झूठ है. यह सब हथियार सरकार ने आप अंदर रखवाये होंगे. इतना बड़ा ट्रांसमीटर बिना सरकार की जानकारी के अंदर कैसे जा सकता है! राशन तक के ट्रकों की तलाशी ली जातीं थी. यह सब कुछ सरकार खुद करवाती रही है. सिखों को बदनाम करने के लिये. और अगर सचमुच सरकार को इस सबका पता नहीं चला तो इसे इस्तीफा दे देना चाहिये. ऐसी सरकार को कोई हक नहीं कि वह राज करे.

पड़ोस में राय साहब की बेटी ने अपना रेडियो ऊंचा लगाया हुआ था.

कोई लोकगीत के ये बोल गा रहा था:

''कि दरवाजे की कुंडी भीतर से किसने लगायी है
मेरा प्रियतम रूठ गया है, मैं उसे मनाने आयी हूं.''

''यह इतना ऊंचा रेडियो क्यों बजाती है?'' सरदार सर्दूल सिंह ने जैसे खीझकर कहा.

''जवान-जहान लड़की है. जैसा उसका जी चाहे, रेडियो सुने!'' सरदारनी उसे समझा रही थी.

''यूं करेगी तो मैं उसका अपने बेटे से मिलना-जुलना बंद कर दूंगा.''

''यह आज आप किस तरह की बातें कर रहे हैं?''

राय साहब की बेटी रचना उनके बेटे के साथ एक ही कक्षा में पढ़ती थी, बेटा, डॉक्टरी की पढ़ाई करने शिमला चला गया; रचना, लेडी श्रीराम कालेज में अंग्रेजी में ऑनर्स कर रही थी.

अचानक रेडियो बंद हो गया. शायद रचना का कालेज जाने का समय हो गया था.

''बात हुई न!'' सरदार सर्दूल सिंह ने पड़ोस में रेडियो बंद होने पर, खुश होकर कहा, ''लड़के-लड़कियों को बुजुर्गों का कहना मानना चाहिये. लड़की आज्ञाकारिणी है.''

''आज्ञाकारिणी होगी तो सुख पायेगी.'' सरदारनी ने धीरे-से कहा.

सरदार सर्दूल सिंह फिर भावुक होने लगा, ''हाय रब्बा! अकालतख्त पर टैंकों से गोलीबारी की गयी. जिस अकालतख्त से हुक्मनामा जारी किया जाता है, और सारे पंथ को उसकी पैरवी करनी होती है. और अब ''

''जत्थेदार कृपाल सिंह ने बयान दिया है कि कोठा साहब को कोई आंच नहीं आयी.'' सरदारनी बीच में बोली.

''झूठ बकता है.'' सरदार सर्दूल सिंह गरज उठा. फिर थोड़ी देर बाद

शांत होकर अपने आप से कहने लगा, "झूठ तो उसे बोलना था, जिसके दाये-बायें बंदूकधारी खड़े हों, उससे चाहे कुछ कहलवा लो."

इतने में उनका फोन बजने लगा. खबर आयी कि दरबार साहब की लायब्रेरी और अजायबघर को भी तहस-नहस कर दिया गया था. और वह भी तब जब आतंकवादियों ने हथियार डाल दिये थे. सफेद झंडी दिखाकर, विद्रोह बंद कर दिया था. सिख इतिहास की अनमोल पांडुलिपियां नष्ट कर दी गयी थीं. और फिर यह भी सच नहीं था कि स्वर्ण मंदिर की ओर एक गोली भी नहीं चलायी गयी थी ...."

उधर टेलीफोन पर कोई बोलता जा रहा था. सरदार सर्दूल सिंह ने कब से हुंकारा भरना बंद कर दिया था. कब से चोंगा उसके हाथ से छूटकर उसके घुटनों पर जा पड़ा था. चिंताओं में खोया. उसके हाथ-पांव ठंडे हो गये. जैसे बैठा था, वैसे ही बैठे-बैठे उसका सिर एक ओर ढुलक गया.

उसकी आंखों के सामने स्वर्ण मंदिर की लायब्रेरी में गुरु साहबान के अपने हाथों से लिखे नुस्खे, जिनके वह दर्शन कर चुका था, एक-एक करके तैरने लगे. पिछली यात्रा के दौरान सिख अजायबघर में देखे कुछ चित्र, कुछ हथियार, कुछ पोशाकें, कुछ गहने उसे याद आने लगे.

सब कुछ लुट गया था. जलाकर खाक कर दिया गया था. एक कौम के इतिहास को, एक कौम की विरासत को, स्लेट पर अंकित अक्षरों की तरह मिटा दिया गया था. उस दिन दोपहर का खाना उससे नहीं खाया गया. बैठे-बैठे उसे ध्यांन आया, इस तरह के हालात में तो कुछ भी हो सकता है. चाहे उन्हें घर छोड़ना पड़े. घर छोड़कर भागना पड़े. उसकी गाड़ी में तो पैट्रोल तक नहीं. और वह उठकर कार में पैट्रोल डलवाने, चल दिया.

"इस वक्त?" उसकी पत्नी ने हैरान होकर उससे पूछा.

गरमी कहे जैसे आज ही आज है. पसीना धारा बनकर चू रहा था. पैट्रोल पंप सुनसान पड़ा था. उसने अपनी गाड़ी पंप के सामने जा लगायी. पैट्रोल पंप के पास दो कर्मचारी खड़े थे. एक, ऑपरेटर, दूसरा कैश लेनेवाला, कंधे पर चमड़े का थैला लटकाये हुये. सरदार सर्दूल सिंह उनके मुंह की ओर देख रहा था. दोनों के दोनों कर्मचारी उसकी ओर नजरें गाड़े हुये थे. लेकिन टस से मस नहीं हो रहे थे. उनकी फटी-फटी आंखें जैसे कह रही हों—'सरदारजी, हम अगर आपको पैट्रोल न दें तो आप हमारा क्या बिगाड़ लेंगे?" दो मिनट, चार मिनट, छह मिनट; वे जैसे खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे. सरदार सर्दूल सिंह की गैरत का तकाजा. एक-आध मिनट और इंतजार के बाद, उसने गाड़ी स्टार्ट की और पैट्रोल पंप के अहाते से बाहर निकल गया. पैट्रोल पंप के कर्मचारियों ने उसे नहीं रोका; बल्कि जब उसकी गाड़ी जरा दूर हुई तो वे कहाकहा लगाकर हंस दिये. उनकी हंसी तीरों की तरह सरदार सर्दूल सिंह के सीने में आ गढ़ी.

उस शाम उसके जी में आया कि वह गुरुद्वारा रकाबगंज माथा टेकने जाये.

"आज ही क्यों?" उसकी पत्नी समझाने लगी, उसने सुनी-अनसुनी कर दी. हमेशा उसके साथ गुरुद्वारे जाया करती थी, लेकिन उस दिन वह टाल गयी.

क्योंकि मोटर में पैट्रेल काफी नहीं था, वह गुरुद्वारा दर्शन करने बस में गया. रकाबगंज बस में जाना ही उचित रहता था. पहले भी वह यूं ही करता था. बसें प्राय: केंद्रीय सचिवालय से होकर जाती है. वहां से बस मिलना भी आसान होता हे. लौटती बार बस भी जल्दी मिल जाती है.

गुरुद्वारा माथा टेककर, बस में लौट रहा था कि अपने विचारों में खोया सरदार सर्दूल सिंह अपने स्टैंड से आगे निकल गया. अच्चानक जब उसे इसका एहसास हुआ, वह सकपकाकर अपनी सीट से उठ खड़ा हुआ और कंडक्टर को अपने स्टैंड के लिये कहने लगा. यह सुनकर बस की बाकी सवारियां एक साथ हंस दी. बस के कंडक्टर की हंसी, इन सबमें ऊंची थी.

सरदार सर्दूल सिंह पानी-पानी हो गया. जब बस अगले स्टैंड प पहुंची, उसने शुक्र मनाया. बस से उतरकर, तेज-तेज कदम, वह घर की ओर पैदल ही चल दिया.

उन्हें यह नहीं मालूम था कि सरदारजी विदेश विभाग में अतिरिक्त सचिव के पद से रिटायर हुए थे. वह चाहता तो दिल्ली का उपराज्यपाल बन सकता था. अगर दिल्ली का नहीं, गोआ या पांडिचेरी के लिये तो उ पूछा भी गया था. एक ही एक, उसका ब्याहने को बेटा था. और को जिम्मेदारी नहीं थी. उसने यही फैसला किया कि वह रिटायर होकर बाकी सारी उम्र, भजन-पाठ में गुजारेगा. उसके बेटे के लिये रोज रिश आते रहते थे. पड़ौसी, राय साहब की बेटी उसकी दीवानी थी. जैसे हा लगाने से मैली होती हो.

यूं विचारों में खोया हुआ, सरदार सर्दूल सिंह अपने ठिकाने पर पहुं गया.

अगले दिन तह सैर को नहीं गया. न ही उसके अगले दिन. औ फिर कई दिन गुजर गये. जहां तक संभव होता, आजकर वह घ से बाहर नहीं निकलता था. यही डर, कि कोई बदतमीजी न कर बैठे

फिर एक दिन सरदारनी, हिम्मत बांधकर उसे सैर के लिये ले गयी सुबह की सैर, इस उम्र में बड़ी जरूरी होती है. पिछले कई दिनों से उ अपना घर वाला कुछ ढीला-ढीला लग रहा था.

कितने दिनों बाद वे पार्क में सैर के लिये आये थे. सरदार सर्दूल सिं यह देख-देखकर हैरान हो रहा था कि किसी ने भी शिकायत नहीं कि कि वे इतने दिन कहां गायब रहे थे? वह हर किसी के मुंह की ओर देखता

और फिर उस दिन सैर के बाद जब वे घर लौटने लगे, पहली बार, य किसी ने नहीं कहा था, जैसे वे हमेशा कहा करते थे— 'सरदार साहब आपके चार फेरे हो गये?'

इसका कारण, वह दूरी है जो हमारे बीच आ गयी है. सरदार सर्दू सिंह अपने आपको समझा रहा था.

आजकल पड़ोसियों की लड़की रचना भी उनके यहां कम ही चक्क लगाती थी. जब भी आती, 'आपरेशन बुडरोज़' की कहानियां ले बैठती

लघुकथा

अवकाश-ग्रहण

□ महेश चंद्र सरल

छोटे साहब को सेवा से अवकाश मिल चुका था, फिर भी अभी वे अपने घर नहीं गये थे. सामान अवश्य भेज दिया था. अभी घर-घर विदाई की दावतें खा रहे थे और जो नहीं पूछता, तो उसके यहां बिना बुलाये स्वयं पहुंच जाते. कस्बे का मामला ठहरा. कहते—'क्या करें, बिना घर आये और बिना मिले जाने का मन नहीं करता. इतने दिनों का साथ रहा. फिर कभी जीवन में भेंट हो न हो, इसलिये किसी को शिकायत करने का अवसर नहीं दूंगा.'

लोगों ने देखा था—ट्रंक में ऐसा-ऐसा सामान भरा था, जिसके विषय में कोई सोच भी नहीं सकता था. छोटे साहब जो ठहरे. अभी भी पिछली तारीखों में मामले तय

किये थे. लोग आ-जा रहे थे और उसके साथ ही गर्मी भी बढ़ रही थी.

जब जाने का एक दिन रह गया, तो एक व्यक्ति ने छोटे साहब से अपना घर पवित्र करने की विनय की. वे बोले, चलता जरूर, क्या करूं? लड़के सारा सामान लेकर चले आये, यहां तक कि वह बक्स भी ले गये, जिसमें पहनने के कपड़े थे. अब क्या मैं और मेम साब मैले कपड़ों में तुम्हारे यहां चलें? लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे?'

उत्तर मिला, 'कपड़ों का प्रबंध हुआ जाता है. शाम तक नये कपड़े सिल कर भी आ जायेंगे. कुछ थान टेरीकाट के टेलर के साथ भेज रहा हूं. आप पसंद कर नाप दे दें. मेम साब के लिये भी साड़ी पसंद करवा दें.'

छोटे साहब की तरकीब काम कर गयी. चलते-चलते हजार-बारह सौ के कपड़े और सही.

उसी शाम को लोगों ने देखा—नये कपड़ों में सजे-धजे छोटे साहब मेम साब के साथ जा रहे थे. □

कैसे फौजी, पंजाब के गांव-गांव में घूमकर आतंकवादियों की पकड़-धकड़ कर रहे थे. जत्थे के जत्थे, सिख नौजवान सीमा पार चले गये थे. लोग तो कहते कि भिंडरावाला भी, उधर जा निकला था. 'ब्लू स्टार' आक्रमण से पहले ही वह खिसक गया था. अकालतख्त के नीचे तहखानों में सुरंगें बनी हुई थीं. कई गांववाले कहते कि उन्होंने अपनी आंखों से भिंडरावाला को जाते हुए देखा था. सीमा पार से प्रशिक्षण लेकर वह लौट आएगा.

सरदार सर्दूल सिंह लड़की के मुंह की ओर देखता रह जाता. किस तरह बेपरकी लोग उड़ाते थे. रचना की बातें सुनकर सरदारनी यह फैसला न कर पाती कि लड़की भिंडरावाला का पक्ष ले रही थी, या सरकार का? उसे कुरेदने के लिये वह बीच में बोल पड़ी, "लेकिन उसकी लाश तो गोलियों से बिंधी, अकालतख्त के मलबे में से मिली है."

"जितने मुंह उतनी बातें," रचना जवाब देती, "कई तो यह भी कहते हैं कि भिंडरावाला ने आत्महत्या कर ली थी."

"इस तरह के लोग आत्महत्या नहीं किया करते. आक्रमण से पहले उसके साथियों ने जरूर उसे बाहर भेज दिया था."

हर बार जब वह इस तरह के किसी किस्से का जिक्र करके जाती, सरदार सर्दूल सिंह अपनी पत्नी से कहता, "लड़की बेशक कबूल सूरत है, मगर बोलती ज्यादा है."

"हां," सरदारनी सहमति में कहती, "बेशक बोलती ज्यादा है, मगर है बांकी. इस तरह की लड़की घर की रौनक होती है. हमारे यहां आती है तो घर सज जाता है." जैसे उसके मुंह में पानी आ रहा हो.

कितने दिनों से उनके बेटे बलजीत की, शिमला से चिट्ठी नहीं आयी थी. उस शाम पड़ोशियों की लड़की रचना उनके यहां आयी तो सरदारनी ने इसका जिक्र किया. "पिछले दिनों उसे जुकाम हो गया था. अब ठीक है. आजकल इम्तिहानों की तैयारी हो रही है." रचना ने इस विश्वास से कहा जैसे कि उस हर रोज चिट्ठी आती हो.

उस दिन रचना उनके यहां आयी. अंकल-आंटी को अपने कालेज में खेले जा रहे नाटक के लिये आमंत्रित कर रही थी.

उसने यह तो नहीं बताया कि उस नाटक में वह स्वयं भाग ले रही थी जाते समय वह उनके लिये दो टिकट छोड़ गयी. सरदारनी ने देखा, पचास-पचास रुपये के टिकट थे.

"खुले दिलवाली लड़की है." यह जानकर सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी पत्नी से कहा.

"दिल तो हमने देखा नहीं, लेकिन देखने में बड़ी खूबसूरत है." जैसे सरदारनी बहाना ढूंढ रही हो. कितनी ही देर उसके रंग-रूप की प्रशंसा करती रही. मुस्कराती हुई मोटी-मोटी आंखें, गोरा रंग, ऊंची-लंबी, बूटे जैसा कद, झम-झम करते मुलायम रेशम से बाल. कितना प्यारा जूड़ा बनाती है—गर्दन पर झुका हुआ, जैसे खुल-खुल जा रहा हो. मीठे बोल. मुंह खोलती है तो जैसे नगमे फूट रहे हों. फिर कपड़े पहनने का कैसा सलीका है. क्या मजाल जो आजकल की सिर फिरी लड़कियों जैसा कोई ओछा फैशन उसने कभी किया हो. गाने-बजाने की शौकीन. गाती कितना सुंदर है. सितार कितना प्यारा बजाती है."

"पोठोहारिन है." सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी पत्नी को टोका. वह तो जैसे उसने नाम की माला जपने लगी हो, "पोठोहारिनों का जादू बला का होता है. तुम पर यह जादू चल गया है."

"और आप पर भी" और फिर पति-पत्नी एक दूसरे की ओर अर्थभरी निगाहों से देखने लगे.

परंतु वही पति-पत्नी, जब अगले दिन रचना के कालेज में नाटक देखकर आये तो उनके मुंह फूले हुए थे. अपने-आप में सरदारनी बुड़बुड़ा रही थी, अपने-आप में सरदार कुलबुला रहा था.

बात यूं हुई, कालेज के नाटक में रचना एक फिरंगी लड़की का अभिनय कर रही थी. ऊंची एड़ी वाली सैंडल, कोट-पतलून, बॉब किये हुए बालिश्त-बालिश्त बाल. ऊंची लंबी-सी वह, ज्यों ही मंच पर आयी, सरदार और सरदारनी सर्दूल सिंह के कलेजे में जैसे तड़-तड़ गोलियां दाग दी गयी हों. इस लड़की ने अपने बाल कटवा लिये. पति-पत्नी का खून खौल उठा. उन्हें कुछ दिखायी नहीं दे रहा था. थियेटर-हाल के अंधेरे में से राह टटोलते, ठोकरें खाते वे किसी तरह बाहर आये, और किसी से कोई बात किये बिना घर लौट आये.

सारी उस रात सरदारनी सर्दूल सिंह रचना के आबशार जैसे बालों को याद करते हुये, चूल्हे पर चढ़ी हांडी की तरह उबलती रही.

सारी उस रात सरदार सर्दूल सिंह बार-बार अपने आप से कहता—जो लड़की इस तरह एक नाटक के लिये अपने बालों की बेअदबी कर सकती है, वह इस घर में दुलहिन बनकर कैसे आयेगी? कभी नहीं! कभी नहीं!! 'गुरु सिख' के साथ उसकी कभी शादी नहीं हो सकती. 'मैं कभी उसे अपनी बहू नहीं बनाऊंगा!'

"मैं कभी उसे अपनी बहू नहीं बनाऊंगा." सोते-सोते सरदार सर्दूल सिंह उठकर बैठ गया, और आप ही आप बोलने लगा.

सरदारनी को भी कहां नींद आ रही थी. परेशान-परेशान नजर; वह उठकर अपने पति के पास आ बैठी.

"अच्छा हुआ, समय पर पता चल गया. अगर कहीं गांठ पक्की हो जाती तो न इधर के रहते, न उधर के." सरदारनी बोली.

और फिर बाकी सारी की सारी रात वे इस तरह लाचार से बैठे रहे जैसे नाव डूब जाने पर नाविक.

"सिखी धर्म बार-बार हाथ नहीं आता?" सर्दूल सिंह घूम-फिरकर अपने-आप से कहता.

"सिखी धर्म बार-बार हाथ नहीं आता!" घूम-फिर कर सरदारनी अपने-आपसे कहती. वे एक दूसरे की आंख से आंख नहीं मिला रहे थे.

बात ही कुछ ऐसी थी. मन ही मन में जिस लड़की को वे अपनी बहू बनाये बैठे थे, वह दगा दे गयी थी. उसने अपने बालों की बेअदबी करवा ली थी. 'गुरु सिख' तो अपना अंग-अंग कटवा लेता है, मगर गुरु केसों, इवासों के साथ निभाता है.

यूं कुढ़ रहे थे, यूं तिलमिला रहे थे कि सुबह हो गयी. किसी न किसी

तरह वे सैर के लिये निकले. सैर करके लौटे ता नौकर की तैयार की हुई चाय जैसे उन्हें जहर-सी कड़वी लगी.

सरदारनी नहा-धोकर पाठ करने बैठ गयी. सरदार सर्दूल सिंह के लिये अखबार पढ़ना बोझल हो रहा था. परेशान-परेशान-सा वह आंगन में टहल रहा था. ''चाहे लाख मिन्नतें करे, मैं यह रिश्ता कभी नहीं होने दूंगा.'' सरदार बार-बार अपने-आपसे कहता.

''हमारा लड़का कोई भिखमंगा है. उसे लड़कियों की क्या कमी!'' पाठ कर रही सरदारनी सोचने लगती.

इतने में रचना उनके घर आयी. कालेज जाने से पहले उसने सोचा, कि अंकल-आंटी से पूछे कि नाटक उन्हें कैसा लगा था. पिछली रात नाटक खत्म होने पर वे कहीं दिखाई नहीं दिये थे.

अभी-अभी धुले-संवरे चमचम चमकते उसके बाल, उसकी कमर तक लहरा रहे थे. यह देखकर सरदार सर्दूल सिंह की आंखें फटी की फटी रह गयीं.

''लेकिन नाटक में तो तुम्हारे बाल कटे हुए थे!'' सरदार सर्दूल सिंह से रहा न गया, और आखिर उसने पूछ ही लिया.

रचना हंस दी. ''अंकल! वह तो हमने रोल करके बॉब बना लिये थे.'' सरदार सर्दूल सिंह ने सुना तो उसकी बाछें खिल गयी. इतने में सरदारनी पाठ खत्म करके आ गयी. एक नजर रचना के वैसे के वैसे पहले जैसे बाल देखकर उसे छाती से लगा लिया.

दिन पर दिन रचना उनके करीब और करीब आती जा रही थी. रचना के पिता राय साहब की सरदार सर्दूल सिंह से दोस्ती बढ़ रही थी. रचना की मां और सरदारनी सर्दूल सिंह मुंह-बोली बहनें बन गयी थीं. चाहे रस्मी तौर पर उनकी सगाई नहीं हुई थी, लेकिन इस तथ्य मे दोनों पक्ष अपरिचित नहीं थे कि रचना और डाक्टरी पढ़ रहा सरदार सर्दूल सिंह का बेटा एक दूसरे को प्यार करते हैं और जैसे ही लड़का पढ़ाई खत्म करेगा, उनको विवाह-सूत्र में बांध दिया जायेगा.

पंजाब से हर रोज बुरी खबरें आ रही थीं. हिंदू और सिखों में खाई बढ़ रही थी. कोई कहता, 'यह सारी शरारत एक पड़ोसी देश की है.' कोई कहता, 'केंद्र खुद यह सब करवा रहा है. सिखों को बदनाम करने के लिये.' जितने मुंह उतनी बातें. सरदार सर्दूल सिंह की समझ में कुछ नहीं आ रहा था. फिर कुछ दिन बाद जैसे एक बम फटा हो. देश के प्रधानमंत्री की उसके अपने ही दो सिख अंग रक्षकों द्वारा गोली मारकर हत्या कर गयी थी. सरदार और सरदारनी स्तब्ध होकर रह गये. ''बड़ा अनर्थ गया.'' वे बार-बार कहते. अभी वे यूं बेहाल हो रहे थे कि पता चला शहर में दंगे भड़क उठे थे.

फिर खबर आयी, जो कुछ दिल्ली में हो रहा था, हू-बहू वैसा कानपुर में, इंदौर में, बोकारों में, कलकत्ता में हो रहा था. देश के शहरों में हो रहा था.

देश की राजधानी दिल्ली में फसाद काबू में नहीं आ रहे थे. चारों आग की लपटें आकाश को झुलसा रही थीं. सड़कों पर आग बुझानेवा इंजनों की घंटियां लगातार सुनायी देती रहतीं. बार-बार उनके दोस्तों रिश्तेदारों के टेलीफोन आते—'घर से बाहर मत निकलना, बरामदे भी न बैठना.' उनका नौकर दूध लेने गया और खाली हाथ लौट आया दूध का डिपो बंद था.

जिस किसी को वे टेलीफोन करते, वहां से कोई जवाब न आता. वाले अपने-अपने घर छोड़कर कहीं निकल गये थे. जहां जिसके सी समाये, जा छिपे थे. उनकी जान-पहचान के सारे सरदार अप जान-पहचान के हिंदू दोस्तों के यहां सोते थे. सारी रा 'मुर्दाबाद-जिंदाबाद' के नारे सुनाई देते. भयानक नारे और हृद विदारक चीखें और फरियादें.

फिर उनकी कॉलोनी की बारी आयी. उनके किसी परिचित क टेलिफोन आया, 'मार्केट में सरदारों की दूकानें लूटी जा रही हैं. उन्हें आ लगायी जा रही है. पुलिस ने अश्रु-गैस के गोले फेंके, फसादी फिर काबू में नहीं आये. पुलिस ने गोली चलायी.''

बार-बार रचना और उसके घरवाले इन्हें अपने यहां ले जाने के लि कह रहे थे. रचना तो इनका कुछ प्रमुख कीमती सामान उठाकर अप घर ले भी गयी थी.—टीवी, बी.सी.आर., कालीन, गरम और रेशमी कपड़ों के सूटकेस, सरदार सर्दूल सिंह के आवश्यक पत्र, सेवि सर्टीफिकेट और गहनों की संदूकची आदि.

अफवाह गरम थी कि आसपास के गांवों के गुंडे उस रात दक्षिण दिल्ली पर हमला करेंगे. सरदार और सरदारनी सर्दूल सिंह पड़ोसियों यहां जा छिपे. एक दिन के लिये अपना घर छोड़कर गये और फिर कित ही दिन पड़ोसियों के यहां टिके रहे. फसाद थे कि काबू में ही नहीं आ थे. कहीं न कहीं कोई दुर्घटना हो ही जाती. हजारों लोग उजड़क शरणार्थी कैंपों में जा टिके थे. विधवा हुई औरतें, यतीम हुए बच्चे, 'गु सिख' जिनके 'कत्ल' कर दिये गये थे, दाढ़ियां—'कुतर' दी गयी चारों और हाहाकार मचा हुआ था.

जिस दिन वे अपने घर लौटे, सरदार सर्दूल सिंह को खबर मिली उसकी बुआ की बेटी, उसके दो जवान बेटे और दो पोते फसादियों यमुना पार की एक बस्ती में मौत के घाट उतार दिये थे.

अब सरकार झुग्गी-झोपड़ियों में से लूटा हुआ माल बरामद कर र थी. गुरुद्वारों और स्कूलों की मरम्मत के वायदे कर रही थी. नागरि संगठन, यतीम हुए बच्चों और विधवाओं की देख-रेख में लगे हुए

किंकर्त्तव्यविमूढ़ सरकार सर्दूल सिंह को न अपनी आंखों पर विश्वा होता, न अपने कानों पर. सुबह-शाम, शिमला फोन करके अपने बे का, लंदन से टेलीफोन आता. यही कहती कि अब आप यहां आ जायें.

सचमुच सरदार सर्दूल सिंह अब यह सोचने लग गया था कि दिल्ली छोड़कर वह पंजाब में ज़ा बसे. जो दुर्गति सिखों की दिल्ली में हुई थी कोई गैरतमंद इस तरह के शहर में नहीं रह सकता.

कुछ दिन बाद, किसी बहाने सरदार सर्दूल सिंह पंजाब गया. व देखना चाहता था कि कहीं कोई ठौर-ठिकाना मिल सकता है या नहीं

पंजाब तो लबालब भर चुका था. बिहार और यू.पी., बंगाल औ मध्य प्रदेश स लुटकर आय शरणार्थी कीड़ों की तरह कुलबुला रहे गुरुद्वारे भरे हुये थे, सरायें अटी पड़ी थीं.

ये सनफ़्लावर तेल है डबल रिफ़ाइन्ड ताकि इसमें हों सभी क़ुदरती पौष्टिकता.

सनौला-

अब आया है दिल्ली के रसोई घरों में धूम मचाने के लिए।

अपने रसोईघर में **सनौला** का स्वागत कीजिए. दक्षिण भारत के सबसे लोकप्रिय पकाने के माध्यम - **सनौला** में है भरपूर अनसैच्युरेटेड फ़ैट्स और विटामिनों का ख़ज़ाना. कोलस्ट्रॉल लैवल को नियंत्रित रखनेवाला है ये. और इससे बनता है स्वादिष्ट भोजन...व्यंजन ही व्यंजन. आप भी अब **सनौला** अपनाइए और सेहत का नज़राना पाइए.

सनौला - भोजन को स्वादिष्ट बनाए
सेहत का भी ख़्याल रखे.

निर्माता एवं बिक्री व्यवस्था करने वाले:-
तामिलनाडु एग्रो इंडस्ट्रीज़
कॉर्पोरेशन लिमिटेड

वितरक:-
MSIL
मैसूर सेल्स इंटरनैशनल लिमिटेड
सी-४, स्टेट एम्पोरिया कॉम्प्लेक्स, बाबा खड़क सिंह मार्ग,
नई दिल्ली ११० ००१. फ़ोन: ३४३८६३/३४३८६६

५ कि.ग्रा., २ कि.ग्रा., और १ कि ग्रा.
पैक में उपलब्ध.

SUNOLA
SUNOLA
SUNOLA

अभी वह पंजाब में ही था कि आतंकवादियों ने एक बस का रोककर कई निर्दोष सवारियों की निर्मम हत्या कर दी. सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी आंखों से देखा—बस जैसे खून की तलैया में खड़ी हो.

यूं बेगुनाह लोगों की हत्या! वह अपना-सा मुंह लेकर दिल्ली लौट आया. उससे और वहां नहीं रुका गया. बार-बार कहता—इतनी मासूम जानें, इतने बेगुनाह लोग, औरतें, बच्चे, मर्द!

दिल्ली लौटा तो उसके बेटे की चिट्ठी उसे मिली. उसके बेटे ने केश कटवा लिये थे. उसने चिट्ठी पढ़ी तो जैसे उस पर बिजली आ गिरी हो. वह धड़ाम से पलंग पर औंधा जा गिरा. उसकी पत्नी, इतने दिन रो-पीट चुकी थी. बेटे की चिट्ठी तो जिस दिन वह पंजाब गया था, उसी शाम की डाक में आ गयी थी. सरदारनी ने अपने मन को समझा लिया था. आगे-पीछे, प्रलय आयी हुई है. केशों के साथ, साफे के साथ खतरा महसूस करता होगा—इसी डर से ऐसा किया होगा.

और मां गलत नहीं थी. उस शाम बेटे की दूसरी चिट्ठी आयी।—"भापाजी, आपने मेरी पहली चिट्ठी का जवाब नहीं दिया. न ही इतने दिन से आपका टेलीफोन आया है. मुझे लगता है कि आपको मेरी हरकत से सख्त रंज पहुंचा है. लेकिन मैंने यह सब कुछ बेबस होकर किया है. मुझे आशा है कि आप मेरी मजबूरी को समझते होंगे."

कुछ दिन बाद सर्दूल सिंह को यह बात समझ में आ गयी.

फिर लुधियाना से उसके चाचा के बेटे की चिट्ठी आयी. उनके घर के ऊपर का हिस्सा खाली हो गया था. कोई हिंदू अफसर रहता था, जिसने अपना तबादला दिल्ली करवा लिया था. अगर सर्दूल सिंह के आने की इच्छा हो तो वे उसे किराये पर नहीं चढ़ायेंगे. तीन सोने के कमरे थे, बैठक थी, खाने का कमरा था, रसोई, स्टोर आदि. किसी को और क्या चाहिए. लेकिन सर्दूल सिंह का मन नहीं माना. जब भी वह इस सुझाव के बारे में सोचता, उसकी आंखों में खून से लथपथ बस की तसवीर उभरने लगती—जिसके इर्द-गिर्द, मासूम मर्द, औरतें-बच्चों की लाशें यूं पड़ी थीं, जैसे लकड़ियां काट रहे लकड़हारे के इर्द-गिर्द ठूंठ बिखरे होते हैं.

उसकी पत्नी ने एक से अधिक बार उसे याद दिलाया, लेकिन सर्दूल सिंह का मन नहीं माना. वह बात को टाल गया. कोई अपना घर भी यूं छोड़ा जाता है. बार-बार उसके भीतर से यह आवाज आती.

"कोई अपना घर भी यूं छोड़ा जाता है?" यही बात सरदारनी भी आजकल हर किसी से कहती.

जिंदगी फिर अपने ढर्रे पर आ गयी थी. दिल्ली फिर एक दुलहिन की तरह सजी-सजी लगती. हिंदू, सिख, मुसलमान, ईसाई—सब हंसते-खेलते, ब्याह-शादियों में इकट्ठा होते, क्लबों, काफी-हाऊसों में मिलकर बैठते.

लेकिन कभी-कभी सरदार सर्दूल सिंह को एक धक्का-सा लगता. उसके भीतर एक धमाका-सा होता. उसका आत्मसम्मान जैसे विद्रोह कर उठता. उनकी कालोनी में एक राय बहादुर मुरलीधर थे. पिछले साल जब उनका देहांत हुआ तो उसके घरवालों ने अखंड पाठ करवाया. शहर के सब से मशहूर रागी जत्थे को कीर्तन के लिए बुलाया. राम बहादुर की पत्नी जब न रही तो घरवालों ने पंडित को बुलवाकर पूजा हवन करवाया. सरदार और सरदारनी सर्दूल सिंह दोनों उनके यहां गये.

आजकल सरदारनी आमतौर पर कालोनी में हिंदू पड़ोसियों के यहां पूजा में शामिल होती. जब लौटती तो उसके माथे पर टीका लगा होता.

शुरू शुरू में, सरदार सर्दूल सिंह जब यह देखा करता तो आंखें मूंद लेता. अब कभी इस ओर उसका ध्यान नहीं गया था. जब कभी इस प्रकार का कोई समागम होता, चाहे दूर हो चाहे पास, वे उसे कभी न टालते.

किसी के यहां मुंडन, किसी के यहां यज्ञोपवीत, किसी के यहां जगरण, किसी के कुछ और किसी के कुछ. कई बार यह सोचकर कि वे सब कुछ

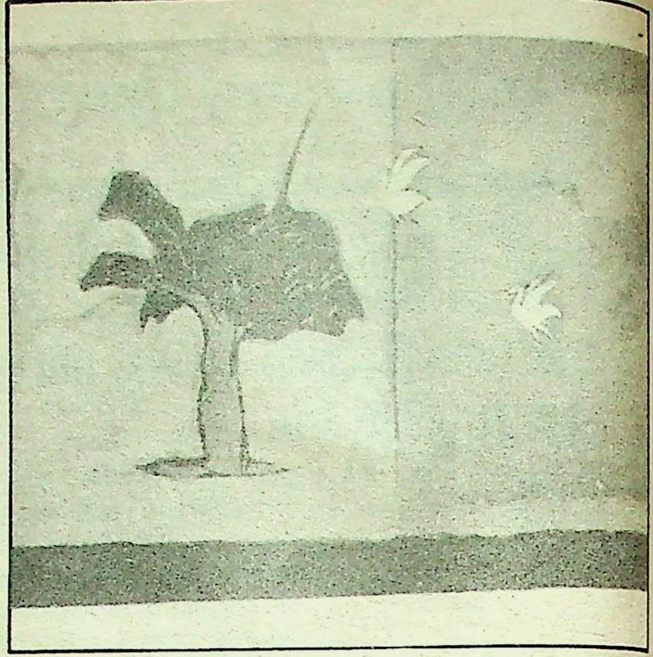

एक जरूरत समझ कर कर रहे थे, सरदार सर्दूल सिंह पानी-पीनी हो जाता. उसे अपना आप बुरा-बुरा-सा लगने लगता. तो फिर क्या?

अब उनके बेटे बलजीत के इम्तिहान खत्म हो चले थे. अगले सप्ताह उसे दिल्ली लौट आना था. मां-बाप की समझ में नहीं आ रहा था कि वे अपने बेटे का मुंह कैसे देखेंगे. न जाने वह कैसा लगेगा.

और फिर बलजीत आ गया. जान-बूझकर ये उसे स्टेशन पर लेने के लिए नहीं गये. टैक्सी से उतरा. न मां ने उसे एकदम पहचाना, न बाप ने जैसे कोई अजनबी आया हो. फिर वह आंखों में आंसू लिये, अपने डाक्टरी पास करके आये बेटे से मिले.

वह दिन, अगला दिन, और उससे अगला दिन, घर में जैसे मरघट की सी चुप्पी छायी रहती. मां-बाप के एक ही एक बेटे बलजीत से अपने माता-पिता का क्लेश न देखा जाता. आखिर उससे रहा नहीं गया, और वह अपने पिता के पांव पड़कर सुबकने लगा, "पापाजी. मुझे माफ कर दो. आप कहें तो मैं फिर केश रख लूं." यूं वह छमछम आंसू रो रहा था कि उसकी मां ने उसे छाती से लगा लिया. वह उसे दुलारने लगी.

इतने में पड़ोस में, नौकरों के क्वाटरों में एक शोर सुनाई दिया. हर किसी के कान खड़े हो गये. यह तो किसी औरत की चीखें थीं.

"कोई नहीं बेटा, यह तुलसी है. अपनी जोरू को पीट रहा है. दारू पीकर आता है और अपनी घरवाली को डंडे से पीटने लगता है." उसकी मां बलजीत को बता रही थी.

"लेकिन, यह तो जैसे किसी का कोई खून कर रहा हो." बलजीत का अंग-अंग कंपकंपा रहा था. एकदम उसके पुट्ठे अकड़ गये.

बलजीत ने न इधर देखा न उधर, और सामने कमरे के कोने में पड़ी, अपने बाप की छड़ी को उठा लिया.

"न बेटा. आजकल वक्त नहीं इस तरह के झगड़ों में दखल देने का." उसकी मां ने यह कहते हुए उसे रोका, "इसका तो ढब ही यही है. पीट-पीटकर उसे अधमरा कर देता है."

"कोई सरदार किसी निर्दोष पर जुल्म होते हुए कैसे देख सकता है?" यह कहते हुए बलजीत कमरे में से बाहर निकल गया.

"न बेटा, न बेटा यूं रात गये....." सरदारनी अपने बेटे को रोकती ही रही कि वह फसील फलांग कर नौकरों के क्वार्टर में जा पहुंचा.

"कोई सरदार किसी निर्दोष पर जुल्म होते हुए कैसे देख सकता है?" बलजीत का बाप, बलजीत की मां को समझा रहा था. □

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

पिछले अंकों में आप हरि, रामबरन, परकाश, सहदेव ठाकुर आदि आदि से मिल चुके हैं. इन सबकी अपनी-अपनी समस्याएं तो हैं पर एक समस्या साझी भी है—गोरे मालिकों और उनके सरदारों के अत्याचार से जूझने की समस्या. अब गास्तों की ही बात लें. पांच साल के इस बच्चे के साथ जो दुर्घटना घटी थी उसकी जिम्मेदारी मालिकों की ही थी पर वे कहां तैयार थे उसे निभाने के लिए. फिर क्या किया हरि और उसके साथियों ने ... पढ़िये धारावाही उपन्यास की पांचवीं किस्त.

दो दिन बाद खेतों में मजदूरों को गास्तों की हालत का पता चला. उसका एक पांव और एक हाथ टूट गये थे. माथे की चोट हल्की थी. खबर लाने वाला सुग्रीम चाचा था. बोला था कि डाक्टर को विश्वास है कि हाथ की हड्डी जुड़ सकती थी पर पांव की हड्डी का जुड़ना कठिन था. जुड़ भी गयी तो गास्तों को जीवन भर लंगड़ाते रहना होगा.

''नाहक टांग गंवा बैठल! छोटा-सा छोकरा. किस्मत ही खोटी थी उसकी.''

हरि यह मानने को तैयार नहीं था कि उसकी किस्मत ही खोटी थी और न ही उसने नाहक में टांग गंवायी थी. वह अपने दोस्तों से कहता रहा कि छोटे मालिक की वजह से उसका पांव बेकार हुआ था. रामबरण चाचा ने उसे चुप रह जाने की हिदायत दी, ''क्यों उटपटांग बातें करके अपना जीना हराम करना चाहते हो?''

हरि ने सिर हिलाते हुए कहा, ''जब भी उधर से हुए किसी अन्याय के बारे में कुछ बोलने की कोशिश की जाती है कि बस आप सभी लोग उसे या तो पागलपन करार बैठते हैं या उसे उटपटांग बातें कह जाते हैं.

हरि का बदन जितना काम और धूप के कारण पसीने से तर नहीं हुआ था उससे कहीं अधिक छोटे मालिक की उस हरकत को सोचकर, जिसकी वजह से गास्तों को टीले पर चढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ा था. खेतों में मजदूरों ने पहले दिन उस घटना पर बातें कीं फिर दूसरे दिन बात ऐसे भुला दी, गोया वह मुद्दत पुरानी घटना थी. हरि ने उस मामले में दोनों सरदारों से बात तो की पर उन्होंने कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी. बस्ती में सुग्रीम चाचा के पड़ोस में जिन दो मुर्गियों की चोरी हो गयी थी, उस पर तीन दिनों तक चर्चा होती रही थी. हरि ने सरदारों के सामने बड़े मालिक से बात करने की इच्छा जाहिर की तो दोनों ने अपने अपने ढंग से डांट दिया.

हरि को उस इलाके में काम सौंपा गया था, जहां नयी नस्ल के गन्ने बोये जा रहे थे. गड्ढों में औरतें आगे-आगे खाद डाले जा रही थीं और हरि अपने अन्य साथियों के साथ ईख की गुलियों को इस सावधानी से बिछाये जा रहा था ताकि अंकुर निकलने वाले हिस्से, जिन्हें आंख कहते थे, ऊपर को रहें. उन गुलियों पर माटी भी उतनी ही सावधानी के साथ चढ़ायी जा रही थी. माटी थोड़ी-सी कम या अधिक भर जाने पर गुलियों को फिर से बाहर निकालकर नये सिरे से रोपना पड़ता था. सरदार ने जब हरि को बाहर रोककर कहा कि वह दरियों में अधिक माटी चढ़ा रहा था तो हरि आवेश में आ गया. उसने अपने हाथ की कुदाली को जमीन पर फेंक दिया. वह सरदार औरतों की टोली का था. हरि के द्वारा कुदाली फेंके जाने पर वह अपनी जगह पर ठिठका रह गया. उसने रोब दिखाने के लिए गलती निकाली थी. अपनी गलती का एहसास करके वह वहां से टल गया. हरि ने माथे के पसीने को पोंछकर फिर से कुदाली उठा ली.

उसे भी अपनी निरर्थक नाराजगी पर पछतावा हुआ. गास्तों के खयाल से अगर दिमाग थका हुआ नहीं होता तो वह उतनी जल्दी आवेश में आने वाला नहीं था. सरदारों की जलील हरकतों पर चुप्पी साध लेने की आदत पड़ गयी थी. जब भी आपे से बाहर हुआ, मालिक के सामने भी जवाब देना पड़ा. अभी पिछले दिनों जब बड़े मालिक ने उसे यह कहकर डांटा था कि गन्नों को वह एक इंच अधिक ऊपर से काट रहा था तो हरि ने काम रोककर बड़े ही धीमे स्वर में कहा था, ''मैं इन खेतों में सात बोआई कर चुका हूं, सात फसलें काट चुका हूं. आप आगे आइये और इन कंकड़ों से भरी जमीन पर गन्नों को इससे नीचे काटना संभव हो तो काटकर बता दीजिये.''

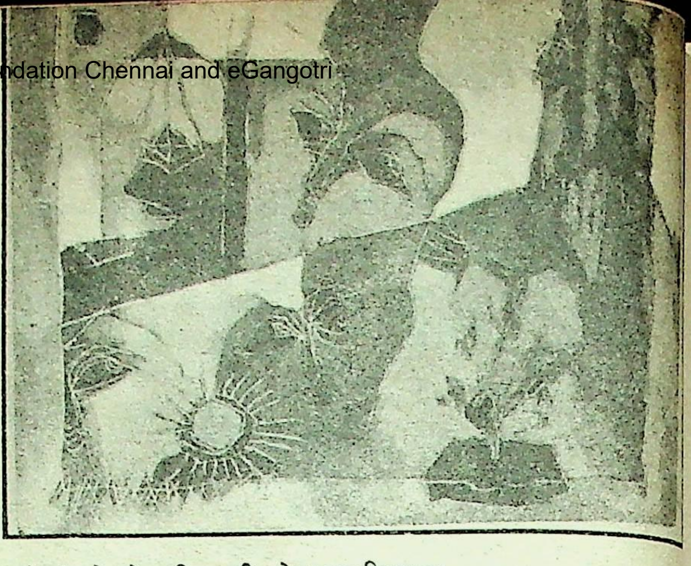

उसने अपने हाथ के गंडासे को मालिक की ओर बढ़ा दिया था.

हरि की उस शांत मुद्रा की गंभीरता को देखकर मालिक से आगे बोला नहीं गया था. आंखें गुरेरकर देखा था और टल गया था.

सोचा, आज वह नये सरदार के सामने चुप रह सकता था. लेकिन महकती धूप और जेहन में गास्तों के खयाल की गरमी का वजह से वैसा कर बैठा. पछतावे के बावजूद उसे इस बात का संतोष रहा कि उसने अच्छा ही किया. कम से कम वह आदमी आइंदा उस तरह की दखलअंदाजी की छूट तो न लेगा. खाने के समय वह संतोष और दो दूसरे मित्रों के साथ जिस जामुन के पेड़ के नीचे जा बैठा, वह एक ऊंची जगह थी. जहां से उत्तर प्रांत के खेतों की हरियाली दूर तक दिखाई पड़ती थी. विविधता लिये उस हरियाली के पार्श्व में एक ओर ग्रांगोब का समुद्र उफनता दिखाई पड़ता था तो बायीं ओर समुद्र के भीतर के दो छोटे द्वीप दूर होते हुए भी करीब से प्रतीत हो रहे थे. उन द्वीपों पर नजर पड़ते ही हरि को अपने किसी समय के गहरे दोस्त गाब्रियेल की याद आ गयी. गाब्रियेल उन दोनों द्वीपों में आता-जाता रहता था. हरि की बड़ी इच्छा थी कि एक दिन वह भी गाब्रियेल के चाचा की नांव से उन द्वीपों पर पहुंचेगा. अगर वह शाकाहारी न होकर मछली गोश्त खाने वालों में होता तो अब तक उन द्वीपों पर पहुंच गया होता. एक बार जब उसने संतोष और मूसा के सामने अपनी वह ख्वाहिश रखी थी तो दोनों हंस पड़े थे.

संतोष ने कहा, "लोग कहेंगे, ब्राह्मण का बेटा गाब्रियेल के साथ मछली पकड़ने गया था!" हरि कुछ देर के लिए गास्तों की याद को बिसार बैठा था लेकिन उन सामने के द्वीपों को देखकर उसे गास्तों के पिता की याद आयी फिर गास्तों की. खाने के पहले कौर के साथ भी वह यही सोच रहा था कि अगर वह सोलाज से उस दिन मिलने का साहस नहीं कर सका तो कम से कम गाब्रियेल से तो मिल लेता. वह हरि से कोई दस-बारह वर्ष बड़ा था. हरि का फर्ज होता था कि वह उससे मिलकर उसके बच्चे का हालचाल जान लेता, उसने सोचा, अभी देर नहीं हुई थी. मन-ही-मन तय कर लिया कि काम से छूटते ही वह गाब्रियेल से मिलने जायेगा. वैसा करके उसके शक्कर कारखाने के लिए निकलने से पहले ही उससे घर पर मिल सकता था.

उसने दाल-भात को सानकर कौर को मुंह में पहुंचाया. इसके बाद पात्र के कोने से इमली की चटनी को चुटकी में लेकर कौर के गले के नीचे उतर जाने का इंतजार करता रहा. वह जब नीचे उतर गया तो उसने उंगली की चटनी को जीभ पर रख लिया. वह जितनी खट्टी थी, उतनी ही तीती भी थी. उसकी चटनी में उसकी मां हमेशा अलग से मिर्च मिलाती थी. अलग से चावल के ऊपर भी दो-चार छोटी मिर्च रख दिया करती थी. शुरू में उसकी मां उसे इतनी मिर्च खाने से रोकती रहती थी. हरि जब छोटा था और जब तरकारी में मिर्च प जाने पर रो उठता तो उसका बाप उसे मनाने के लिए कहता, "अरे ना बेटे! मिर्च खाने से तो बच्चे जल्दी बड़े होते हैं."

और जब कुछ बड़ा होने पर वह खुद मिर्च लेकर बैठ जाता तो उसकी मां डांटती हुई कहती, "बच्चों को मिर्च नहीं खानी चाहिए. मिर्च खाने से गुस्सा आता है. लेकिन जब उसने देखा कि मिर्च के अभाव में वह अपनी पूरी खुराक नहीं खाता था तो फिर उसने उसे मिर्च खाने से रोकना ही बंद कर दिया.

गाब्रियेल का घर बस्ती के दूसरे छोर पर था. काम से छूटकर घर को लौटते हुए हरि दायीं ओर की पगडंडी से न होकर बायीं ओर की पगडंडी से चल पड़ा. सूरज के डूबने से पहले वह गाब्रियेल के घर पहुंच जाना चाहता था ताकि वह उसे घर पर ही मिल जाये.

जुर्म

□ युगल

सरकारी वकील के सवाल को खुद जज ने दुहराया, "तो तुम जुर्म कबूल करते हो?"

बंसी हजरा बोला, "मैंने कोई जुर्म नहीं किया हुजूर!"

"तुमने दारोगा रछपाल ठाकुर को छुरा मारा. उसकी हत्या की."

"जी, मैंने एक आततायी को दंड दिया था."

"दंड देना तुम्हारा काम नहीं था."

बंसी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "हुजूर, मेरा अपराध यही था कि मैंने दारोगा के खिलाफ आपकी इसी अदालत में गवाही दी थी. लेकिन एक कड़वी बात पूछने के लिए माफी चाहता हूं. आपकी मां को थाने की कोठरी में नंगी कर आपको पीट-पीटकर उकसे ऊपर सोने को मजबूर किया जाये... तो..."

अदालत की अनुशासित शांति में एक अशांत गर्मी आयी. जज का चेहरा लाल हो गया. सरकारी वकील बोला, "अदालत के इस अपमान के लिए..."

बंसी के हाथ वैसे ही जुड़े थे, "मुझे फांसी दी जाये हुजूर! ग्लानि के मारे मेरी मां छप्पर से लटक कर मर चुकी है. ऐसी बेगैरत की जिंदगी जीना कौन चाहेगा?" उसने जज की आंखों में देखा.

उस दिन की कार्यवाई मुल्तवी कर अदालत उठ गयी. □

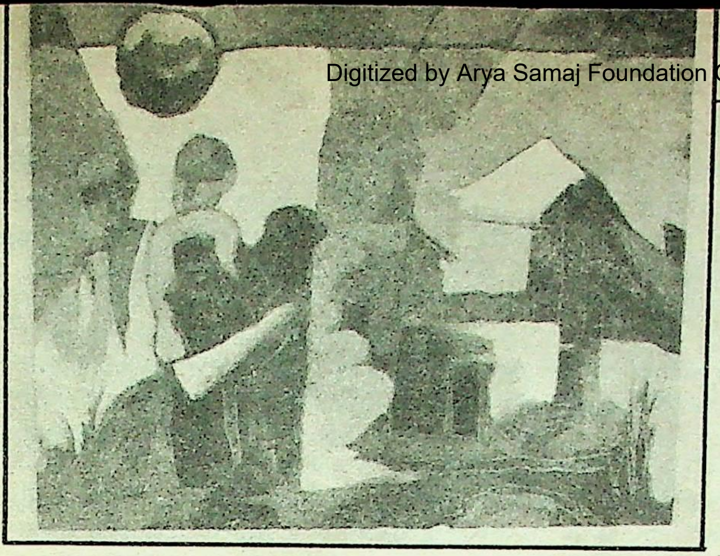

लेकिन ऐसा करके भी उसने वैसा नहीं पाया. गाब्रियेल के घर के सामने एक गड्ढा था जिसके पानी में कुछ बत्तखें तैर रही थीं. आंगन में फ्री आपें का जो पेड़ था, उससे किसी बड़ी मछली का जबड़ा टंगा हुआ था. उसके नीचे केकड़ों की सूखी टांगें और सूखी सीपियां बिखरी हुई थीं. आंगन आज भी वही बिसाइंध लिये हुए था.

घर की ओड़ियानी सजी हुई थी लताओं और फूलों की पौधों से. गमलों के रूप में पुराने हो गये टीन के बरतनों का इस्तेमाल हुआ था. घर पर सिर्फ सोलांज मिली. उसने बताया कि गाब्रिएल इसलिए कुछ पहले निकल गया था ताकि वह अस्पताल होकर काम पर पहुंचे.

हरि ने ज्यों ही गास्तों की बात छेड़ी, सोलांज़ रो पड़ी. उसने बताया कि उसका पांव हमेशा के लिए बेकार हो गया था. गाब्रियेल के साथ वह छोटे मालिक से मिल आयी थी. दोनों ने अनुरोध किया था कि गास्तों को शहर के अस्पताल में दाखिला दिलाने में उनकी मदद की जाये. छोटे मालिक ने दोनों को फटकार के साथ अपने यहां से निकलवा दिया था. बोला था कि गास्तों अपनी चुहलबाजी के कारण घायल हुआ था. वैसी हालत में कोठी की ओर से उसे कुछ भी नहीं मिल सकता.

पिछली रात हरि को भी यह खयाल आया था कि अगर शहर के अस्पताल में गास्तों का इलाज हो तो संभव है उसके हाथ के साथ-साथ उसका पांव भी ठीक हो जाये. छोटे मालिक के उस इनकार पर उसे क्रोध हो आया पर सोलांज के सामने उसने जाहिर नहीं होने दिया. सोलांज का घर गांव का एकमात्र टीन का घर था. बाकी तो सभी ईख के सूखे पत्तों के छप्पर वाले घर थे. वह घर कभी मारतें सरदार का था. पर जब उसे कारखाने के अहाते में बेहतर घर मिल गया था तो उसके उधर चले जाने पर बड़े मालिक की इजाजत पाकर सोलांज उसमें रह रही थी. उस घर में रहने के ही कारण गाब्रियेल उस दूसरे कारखाने की नौकरी के लिए नहीं जा सकता था जहां उसे दो-चार पैसे ज्यादा मिलने की उम्मीद थी. जब उसने हरि के सामने अपनी मजबूरी रखी थी तो हरि ने कहा था, ''पर यार, घर तो तुम्हें वहां भी मिल सकता है.''

''वहां घर नहीं मिल सकता. अगर मिलता तो चला ही गया होता.''

''अच्छा, तुम एक बात बता सकते हो मुझे?''

''क्या?''

''हम खेतों की धूप और बारिश में काम करनेवाले मजदूरों को कोठी में घास-फूस के छप्पर वाले ही घर मिलते हैं जब कि तुम लोगों को टीन की छत वाले घर मिलते हैं. ऐसा क्यों?''

''यह बात तो तुम्हें मालिकों से पूछनी चाहिए.''

हरि लज्जित हो गया था. ग्राबिएल के उस उत्तर से जाहिर था कि वह प्रश्न उसे भाया नहीं था. हरि ने अपने आप से कहा, अरे हां, यह प्रश्न तो मुझे मालिकों से करना चाहिए था. इस बेचारे से क्यों कर गया?

हरि ने एक बार अपने बाप से सुना था कि जो उनके धर्म के थे, उनके साथ गोरे मालिकों का व्यवहार उतना बुरा नहीं होता था. जब हरि के मां-बाप कोठी के घर में रहते थे, उस समय हरि तीन-चार वर्ष का ही था. बेल-वी आरेल की उस कोठी को छोड़ने के बाद ही उसका बाप अपने जीवन के चंद अच्छे वर्षों का लाभ उठाकर काटेज में एक घर बना पाया था. पर वह घर भी टीन का नहीं हो सका था. कोठी के घरों से फिर भी वह अच्छे ही थे. ईख के सूखे पत्तों की मुट्ठियों की छाजन थी. दीवारें पीछे की ओर रावेनाल और पत्थरों की थीं. आगे की और बीच की दीवारें सिर्फ रावेनाल की थीं.

बात

■ गंभीर सिंह पालनी

कानपुर में अपने ही विभाग में, अपनी जाति का और साहित्यिक अभिरुचि का एक लड़का है, इस बार बिटिया की शादी की बात उससे चलायेंगे. पांडेजी ने सोचा.

बात की शुरुआत कैसे की जाये. पांडेजी की समझ में नहीं आया तो पत्नी ने समझाया कि आप भी साहित्यिक अभिरुचि के हैं और वह भी साहित्यिक अभिरुचि का है. नया वर्ष आने को है. आप ऐसा करें कि नये वर्ष की शुभकामनाओं का एक कार्ड उसे भी भेज दें. कुछ दिनों बाद जब उसका जवाब आ जायेगा, तब परिचय और भी बढ़ायेंगे, तदोपरांत इस रिश्ते की बात मौका आने पर शुरू करेंगे.

नव वर्ष का शुभकामना-कार्ड भेजा गया. उसके कुछ ही दिन बाद दफ्तर में यूं ही बातचीत के दौरान एक दिन उन्होंने सुना कि उस लड़के का विवाह शीघ्र ही कहीं होने जा रहा है.

पति-पत्नी दोनों को बड़ा अफसोस हुआ कि ग्रीटिंग-कार्ड बेकार चला गया. शुरुआत में ही बात खत्म हो गयी. □

सोलांज के यहां से वह घर पहुंचा. कंधे से टोकरी और कुदाली को उतारकर ओड़ियानी में रख दिया. अमरक के पेड़ के नीचे मिट्टी का जो बढ़ा-सा गड्डा था, उसमें से डोल भर पानी लेकर उसने हाथ-पांव धोये. कमीज उतारकर आधे बदन को झपला लिया. शरीर की थकान कुछ कम हुई पर सिर का बोझ अपने उस दर्द को लिये रहा. बड़े आदमियों के द्वारा उस तरह के जुल्म होते रहना तो सभी के लिए आम बन गया था. अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं के देखकर फिर उसी सहजता के साथ भूल जाने की उन्हें आदत पड़ गयी थी. लेकिन इस बार जब एक बच्चे के हाथ-पांव मालिक की वजह से टूटे थे और उतनी ही निष्ठुरता से बह बच्चे का दोषी ठहराकर अपने को बेगुनाह बता रहा था. साथ ही जब उसने किसी मदद तक से भी इनकार कर दिया था तो हरि उस बात को इतनी आसानी से बिसार देने की स्थिति में अपने को नहीं पा रहा था.

दूसरे दिन उसने बैठक में उस बात का चर्चा की. कुछ ने उसकी बातों को महत्व दिया, कुछ ने नहीं दिया. सुग्रीम चाचा ने कहा, ''ठीक है, ठीक है. तू जो कहत बानी ठीक है पर हम लोग मुंह खोलेंगे तो नौकरी से हटा दिये जायेंगे. नाहक में अपना खनवा में माटी डाल लेवे के बात हम लोग काहे करीं.''

फिर शनिवार को उसी सुग्रीम ने उसे बताया कि लोयों घास के कारण इस सप्ताह चार मजदूरों की दो-दो दिन की मजूरी काट ली गयी. हरि ने खीज के साथ कह दिया, ''ठीक है चाचा, कटते रहने दो. हम लोग नाहक अपने खाने में माटी क्यों डालें! औरों पर बीत रहा है, चुपचाप देखते रहें.''

उस समय हरि सुग्रीम चाचा के घर सतुआ छोड़ने गया था. पिछली चार-पांच रातों से आसपास की औरतों से मिलकर उसके घर चक्की चलायी थी, जंतसार गायी थी और सत्तू पीसा था. चक्की जंता चलानेवालों में सुग्रीव चाचा की पत्नी भी थी इसलिए उसे अपना हिस्सा तो मिलना ही था. हरि जब उसके घर पहुंचा था तो उसके यहां दाल छौंकी जा रही थी. सूखी मिर्च के छौंक की उस चुभती गंध के कारण हरि खांसता छींकता रह गया था.

रात में जब हरि दो रोटियों की जगह एक ही रोटी खाकर उठने लगा तो उसकी मां पूछ बैठी, ''क्या बात है हरि?''

''आज पेट पहले ही से भरा-सा लग रहा है मां.''

रात भर अपनी खाट पर करवटें लेता हुआ वह उपाय सोचता रहा. कोई उपाय मन में भाता पर फिर लगता कि वैसा तो पहले भी कई बार कर चुका है. अगर कभी वो उपाय सूझे भी थे तो औरों के सामने रखने पर वे बेकार ही जाते रहे थे. पड़ोस में हर रात देर तक चक्की चलती रहती थी, औरतें सतवे पीसती हुई जंतसार गाती थीं. दोनों की मिली-जुली आवाज़ें उसे असह्य कोलाहल सा प्रतीत होता. वह एक कान पर दोनों हाथों को रखकर दूसरे को खाट से दाबकर उस कोलाहल को अनसुनी करने की कोशिश करता. ऐसा करके, वह औरतों के गानों को सुनने से तो अपने को बचा लेता था पर जांते की उस घड़घड़ाहट से अपने को नहीं बचा पाता. अभी जब उसके यहां चक्की चली और औरतों ने कजरियां गायी

हार-जीत

☐ रामनिवास मानव

दोनों में बहस छिड़ गयी.

''मेरी पार्टी का उम्मीदवार जीतेगा.'' अ ने कहा.

''नहीं. मेरी पार्टी का जीतेगा.'' ब ने दावा किया.

''तुम्हारे उम्मीदवार के जीतने का तो प्रश्न ही नहीं.'' अ में बड़ा आत्म-विश्वास था.

''प्रश्न हो या नहीं, जीतेगा वही.'' ब भी अपने मत पर दृढ़ था.

''लेकिन कैसे? वोट तो मिलेंगे नहीं उसे.''

''वोट हमें लेने आते हैं.''

''वो कैसे?''

''ऐसे!'' कहकर ब ने एक तेज धार चाकू अ की आंतों में उतार दिया.

अगले दिन इधर अल्प-संख्यक समुदाय के व्यक्ति की हत्या की खबर फैली, तो उधर सारे वोट ब के उम्मीदवार की मत-पेटी में जा गिरे. ☐

थीं तो हरि उन गानों के भीतर की उस पीड़ा से कांप उठता था. न जाने कब से ये औरतें उस दर्द को सहती, देखती, सुनती, गाती चली आ रही थीं.

उमस भरी रात होने के कारण जांता देर तक चलता रहा. खाट पर के गोनी के बिछावन के सूखे कुश के कारण हरि को गरमी और भी अधिक लग रही थी. दो दिन पहले उसकी शिकायत पर उसकी बहन देवी ने उस बिछावन की सिलाई खोलकर उसे धूप में रख दिया था ताकि पिस्सू और खटमल उससे बाहर आ जायें. पर वे पूरी तरह से खत्म नहीं हुए थे और हर समय हरि को तंग कर रहे थे. गरमी और ठंड दोनों मौसमों में हरि बिना कमीज के सोने का आदी था. गरमी की अकुलाहट में पसीने से तर उसकी कमर के नंगे भाग का खटमलों ने भरपूर लाभ उठाया था.

वह कई तरह से अपने मस्तिष्क की बातों को घुमा-फिराकर सोचता रहा. कभी प्रश्नों के उत्तर तलाशता और कभी उत्तर कोई दूसरा प्रश्न पैदा कर देता. उस रस्साकशी से बचने के लिए उसने नींद की चाह में आंखें बंद कर लीं. करवटें ले-लेकर नींद के लिए संघर्ष करता रहा. नींद नहीं आयी पर एक खयाल ऐसा जरूर उसके जेहन में कौंधा जिससे दिमाग की मांस पेशियां अपने आप क्षण भर पहले के तनाव से मुक्त होकर शिथिल हो गयीं. उसे अचानक पैदा हो आया वह खयाल पसंद आ गया. आगे सोचा, कल शनिवार होगा. क्यों न कल ही उस पर अमल किया जाये. उसने तय कर लिया कि वैसा ही करना था. मस्तिष्क की मांस पेशियों में नर्मी आ जाने से गर्मी भी कुछ खुल गयी हैं. उसे जम्हाई आयी. और जब तक उसे नींद न आ गयी, वह कल की योजना पर सोचता रहा.

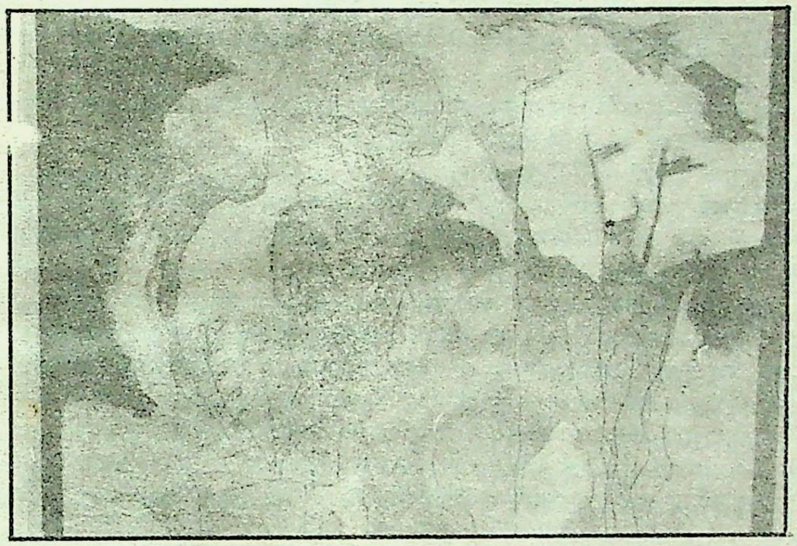

सुबह उठते ही उसने हर रविवार की तरह खुद अपने हाथों गाय-बकरियों को चारा पानी दिया फिर रोजाना की मौलिक आवश्यकताओं से निवृत्त हुआ. जब देवी चाय और परांठे लेकर सामने आयी तो वह कागज के एक टुकड़े पर कुछ नाम दर्ज कर रहा था. उसने अपनी बहन के हाथ से दोनों चीजें लेकर संदूक पर रख दीं. अब तक वह आठ नाम लिख पाया था. परांठे खाकर उसने चाय पी. जब घर से बाहर निकला तो सूरज की किरणें नारियल के चिलमनी पत्तों से छनकर आंगन में लोट रही थीं. वह सीधे मूसा के घर पहुंचा. उसकी बीवी ने बताया कि वह इबादत कर रहा था. हरि आम के पेड़ के नीचे बैठ गया. मूसा की बीवी ने हांडी साफ करने से पहले जो बासी भात और बची-खुची तरकारी बरतन मंजवे के पास फेंकी थी, उस पर कुछ मुर्गियां जुटी हुई थीं. तभी एक काला कुत्ता पिछवाड़े से आया और मुर्गियों पर झपट गया, मुर्गियां पंख फरफराती, कड़कड़ाती तितर-बितर हो गयीं. कुत्ते को रात की वह जूठन चाटने में मिनट भी नहीं लगा.

मूसा बाहर निकला. अपने सिर पर की काली टोपी को उतारकर हाथ में थामे हरि के पास आ गया. उतने सवेरे हरि के उस आगमन पर वह अपनी हैरानी जताता कि इससे पहले हरि ही उससे पूछ बैठा, "क्यों भाई, आज तुम्हें कहीं निकलना तो नहीं है?"

"आज घर ही पर हैं?

"क्यों?"

"बहुत जरूरी काम है तुमसे."

एक राजनीतिक चुहल

□ बलराम अग्रवाल

राज्यों के मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में एक मुख्यमंत्री पर कटाक्ष किया गया कि सबसे ज्यादा 'कर' उनकी सरकार ने थोपे हैं.

'थोपने का तो पता नहीं.' जवाब में बोलते हुए संबंधित मुख्यमंत्री ने कहा, 'लेकिन इतना तय है कि सबसे ज्यादा 'कर' इन दिनों महाराष्ट्र में हैं और वहां हमारा दल सत्ता में नहीं है.'

'मसलन?'

'मसलन!...गिनो...' वे उत्साहित स्वर में बोले, गावस 'कर', तेंदुल 'कर' अचरे 'कर', अमरापुर 'कर', वेंगसर 'कर'... क्रिकेट जैसे लोकप्रिय खेल में ही कई तरह के 'कर' हैं. उनका तो कोई विरोध नहीं करता!' □

''चाय पीकर आये हो?''

हरि के हां कह जाने पर उसने अपनी बीवी को अपने लिए बाहर ही चाय ले आने को कह दिया. पेड़ के नीचे जो दूसरा पत्थर था वह उसी पर बैठ गया. फिर पूछा, ''बताओ अपना जरूरी काम. गास्तों के मामले में मालिक से मिलने का कोई मतलब नहीं है. जब उसने गास्तों के मां-बाप की नहीं सुनी तो हमारी क्या सुनेगा.''

मूसा की चाय आ गयी. अपनी बीवी के हाथ से उस गरम गिलास को लेकर मूसा ने उसे अपने दूसरे हाथ में पहुंचाया. उसकी गरमी के कारण गिलास को इस हाथ से उस हाथ को पहुंचाता रहा. हरि ने उसे पहली चुस्की ले लेने दी तब कहा, ''हमें एक संघ बनाना है.''

''क्या बनाना है?''

''मजदूरों का एक संघ.''

''यह क्या होता है?''

''बन जाये फिर देखना.''

''चाय की दूसरी चुस्की लेकर मूसा बोला, ''मैं समझ गया.''

''क्या समझ गये?''

''जिस तरह हिंदुओं की अपनी और मुसलमानों की अपनी-अपनी जमात हैं उसी तरह तुम मजदूरों की भी एक जमात बनाने को सोच रहे हो.''

''सोच नहीं रहा हूं, बनाने जा रहा हूं. आज ही तुम्हारी मदद से. बोलो, तुम तैयार हो?''

''पर मजदूरों की यह जमात बनाकर करेंगे क्या?''

''तुम्हारी जो जमात है, उसमें तुम लोग क्या करते हो?''

''उसमें तो हम मजहब की बातें करते हैं. एक दूसरे के दुख-सुख में हिस्सा लेते हैं. बच्चों को पढ़ाते है और....''

''बस! मजदूरों की जमात का मकसद भी यही होगा. मजदूरों के हित, उनके दुख-सुख में भाग लेना उनकी मदद करना, उनमें संगठन लाना.''

''अगर ऐसी बात है तो मैं पीछे क्यों रहूंगा?''

कोई दस बजे के करीब हरि उन आठों व्यक्तियों को चान-लोंग की दूकान के पास इकट्ठा करने में सफल हो सका. दूकान की बगल में इमली का पुराना पेड़ था जिसके नीचे जानूभाई हजामत बनाता था. वहीं पर शाम के वक्त गांव के अधेड़ लोगों का जमाव होता था. कभी अखबार पढ़े जाते, कभी गांव की किसी घटना पर बातें होतीं. और जब सुग्रीम चाचा रौब में होता तो आल्हा सुनाने लगता. वैसा न होता तो जानू भाई इर्दगिर्द के लोगों को दुनिया भर की बातें सुनाना शुरू कर देता. वह जिस आदमी के बाल काट रहा था, उसे किसी दूसरे से सुनी अखबार में आयी एक खबर इस तरह सुना रहा था, गोया वह घटना के समय उसका चश्मदीद गवाह रह चुका था. दो-तीन लोग अपनी बारी की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे. जानूभाई उन दोनों के साथ दूर तक खड़े-बैठे लोगों को भी अपनी वह कहानी सुनाने के खयाल से जोर-जोर से बातें कर रहा था. इमली के पेड़ से कुछ ही दूरी पर वह गुलैची का पेड़ था जिसके नीचे हरि ने गांव के चुने हुए आठ व्यक्तियों की बैठक बुलायी थी.

जानू भाई के उस तरह जोर-जोर से बातें करने के कारण हरि को अपनी बात रोककर कहना पड़ा, ''ए जानू, हम भी जरूरी बात कर रहे हैं तुम जरा धीरे तो बोलो.''

कोई घंटे भर की उस बातचीत के अंत में हरि ने अपने आठ साथियों से सवाल किया, ''तो हम मान लें कि आज इस गुलैची के पेड़ के नीचे हमने मजदूरों के संघ की स्थापना कर ली?''

सबसे पहले मूसा ने उत्तर दिया, ''एकदम''!

बाकी सात व्यक्तियों ने भी हामी भरी.

हरि ने संकल्प भरे स्वर में सभी से कहा, ''तो फिर मजदूरों के इस पहले संघ का नाम भी हम रख लें. रामबरण चाचा, आप ही बतायें.''

''मैं क्या बताऊं?''

''हमारी इस सभा के लिए एक अच्छा सा नाम.''

''तुम जो नाम कहो, वही रखते हैं.''

''हम इसका नाम रखते है—उत्तर प्रांत मजदूर संघ.''

सभी ने मंजूरी दी ओर जब हरि ने आगे कहा, ''इस खुली जगह में हमने अपने मजदूर संघ की नींव तो डाल दी पर आगे की बैठकों के लिए गांव की बैठका की मांग करनी होगी. क्योंकि अब जो काम हमें करने होंगे, उनके सारे निर्णय बंद जगह में होना जरूरी है.''

जानू नाई उसी बुलंदी के साथ अपनी ही धुन में अपनी बातें सुनाता रहा.

क्रमशः

अगले अंक में

मालिकों और सरदारों के विरुद्ध मजदूर संघ के संघर्ष का क्या स्वरूप रहा? ... कितनी सफलता मिली इसमें हरि और उसके साथियों को? ... और क्या नयी समस्याएं खड़ी कीं मालिकों ने? ... इन्हीं और ऐसे ही सवालों के जवाब ....

कल्पना के पंखों पर

छोटी-सी यह कथा आपके विवेकजनित कुतूहल को जगाए तो संभावना है कि आपका इन कथा-पात्रों से कुछ निकट का नाता बने ...

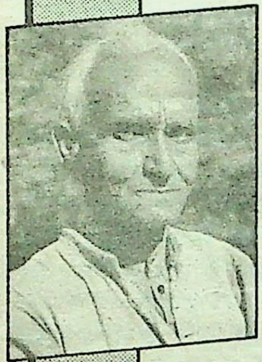

□ रावी

वरिष्ठ कथाकार रावी ने पंद्रह वर्ष की उम्र से ही कविता, डायरी, कहानी लिखना शुरू कर दिया था. तब से निरंतर लिख रहे हैं. पच्चीस से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित व चर्चित.

संप्रतिः स्वतंत्र लेखन

संपर्कः नया नगर, पोस्ट कैलास, आगरा (उ.प्र.)

नाम उसका दीपमाली, आयु पंद्रह वर्ष. उन दिनों एक हाईस्कूल में कक्षा 10 की छात्रा; और इसका रानू, आयु अठारह वर्ष, एक कालेज में कक्षा 11 का छात्र. पड़ोस के नाते परिचय और कुछ आना-जाना भी था. हिंदू वर्ण व्यवस्था के हिसाब से दोनों की जातियों में कुछ अंतर था.

एक दिन एकांत में रानू ने उससे कहा, ''दिम्मो, तुम्हारे पिताजी वर की तलाश में हैं. मैं भी कोई अच्छा-सा तुम्हारी जाति का लड़का खोजकर बताऊं?''

इस पर उसका चेहरा एकदम उदास हो गया, आंखों में आंसू भर आये और बरसने से पहले ही वह भागकर दूसरे कमरे में चली गयी.

बीस वर्ष बाद, संयोगवश इसकी उससे फिर भेंट हुई. वह अब एक स्कूल में अध्यापिका थी. बहुत थोड़ी बातचीत हुई. छात्राओं और पड़ोस के लड़के-लड़कियों की वह अब 'दीदी' थी. बाद में ऐसा कुछ सुनने में आया कि उसका विवाह हुआ, एक बच्चा भी, और विवाह के छह वर्ष के भीतर ही उसके पुत्र और पति की एक यात्रा दुर्घटना में मृत्यु हो गयी.

अगले बीस वर्ष बाद, एक रेलवे स्टेशन पर इन दोनों की फिर भेंट हुई. छात्राओं का एक झुंड उसे भेजने आया था. अब वह पचपन की थी और वे लोग उसे 'दीदी मां', कहकर पुकारतीं थीं. दोनों ने देखते ही एक दूसरे को पहचान लिया. रानू ने 'दीपा' संबोधितकर उसे हाथ जोड़कर और फिर एक हाथ उठाकर नमस्कार किया. उसने भी करबद्ध सिर झुकाकर इसे प्रणाम किया. ट्रेन आ रही थी, बात कुछ नहीं हुई, आवश्यक भी नहीं थी.

लेकिन बातचीत भरपूरी हुई. इन पंक्तियों के पाठक-पाठिकाओ आप कल्पना कर सकें तो करें कि बात कितनी हुई.

बीस वर्ष और और बीतने पर पिछले ही दिनों, उसके घर पर तीसरी बार दोनों की भेंट हुई क्योंकि वह होनी ही थी. घर उसका निजी था, एक-दो नौकर-नौकरानी तथा एक जोड़ा गोद लिया बेटा और बेटी भी उसके घर में थे.

दिम्मो जब चौदह की थी तब रानू के साथ उसका केवल एक चुंबन का आदान-प्रदान हुआ था. उस चुंबन की पकड़ और गहराई कितनी थी, बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिकों के लिए भी उसका मापना संभव नहीं है.

इस बार दोनों के बीच खूब घुलमिलकर बातें हुई और जो निर्णय लिये गये उनकी पूर्ति के लिए दोनों मिलकर अब साथ रहने लगे हैं.

लेकिन यह अभी आधी मंजिल तक पहुंची कथा आपके लिए नीरस और निरर्थक है, यदि यह आपके वैयक्तिक और विस्तृत पारिवारिक जीवन से पूरी तरह संबद्ध न हो. दिम्मो 15 से 75 की उम्र तक पहुंच गयी है और रानू उससे तीन वर्ष बड़ा भी है, पर वह, एक अन्य गणना के अनुसार बराबर 18 वर्ष का ही है और दिम्मो भी 15 की ही. गुह्य इतिहास और ज्योतिष विज्ञान के शास्त्रों के अनुसार यह बात हम आपको फुर्सत से हमारे पास बैठने पर दिखा सकते हैं, और जानने के लिए उत्सुक पाठिकाओं का दिम्मो से और पाठकों का रानू से प्रत्यक्ष साक्षात्कार भी करा सकते हैं. यदि वे हमारे साथ कल्पना के पंखों पर कुछ लंबी दूरी तक उड़ने में सक्षम भी हों.

दिम्मो और रानू की दूसरी, तीसरी और चौथी भेंट बीस-बीस वर्ष के अंतराल से हुई हो या कुछ कम, दस-पंद्रह के अंतराल से, दिम्मो इस समय 75 की हो या 75 और 50 के बीच किसी आयु की, उसकी जीवन कथा कथित विवरण से कुछ भिन्न भी हो तो भी उसकी व्यापक वास्तविकता में कोई अंतर नहीं पड़ता. कथाओं की अपेक्षा इतिहास में ऐसी ढीलें अधिक चलती हैं. दिम्मो और रानू का इतिहास के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रहा है और भविष्य के निर्माण में और भी अधिक महत्वपूर्ण होने वाला है.

यह दुरुह-सी लगनेवाली इतनी-सी कथा आपके विवेकजनित कौतूहल को जगाये तो संभावना है कि आपका इन दोनों से कुछ निकट का नाता हो और इनके प्रत्यक्ष संपर्क में आकर आप भी आज से प्रारंभ भविष्य में कुछ महत्वपूर्ण कार्य करने की स्थिति में आ गये हों. □

दीपिका

हृदय में उठते युद्ध को तो हम आधुनिकता के कृत्रिम साधनों से झुठलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन मन में उमड़ते महासागर का हाहाकार क्या रोकने से भी रुक पाता है ...?

□ परेश

अपनी पीढ़ी के महत्वपूर्ण कथाकार रचनात्मक अनुभव के विषय में परेश का कहना है—मूलतः यह मन का एक धुंधला भय है, जिसे हम छेनी, शब्द, रंग या रेखा के माध्यम से मूर्त करते हैं. भय से छूटने का और कोई उपाय नहीं है, इसके अतिरिक्त कि हम उसे आकार देकर देख सकें कि भ्रम और सही का अंतर कितना है.

संपर्क: 1217/8 सी, चंडीगढ़

सुबह एक बड़े आकार के बोइंग ने बिल्कुल छत पर आकर जैसे अपनी उड़ान को बिल्कुल स्थिर कर लिया—एक जानवर की तरह जो किसी निश्चित लक्ष्य पर उतरने के लिये हाथ-पांवों को सिकोड़कर चौकन्ना हो जाता है. खिड़की का पर्दा वापस खींच दिया. उसकी कर्णबेधी आवाज से टी.वी. पर आते 'रामायण के सीरियल के युद्ध-संगीत की ध्वनि बिल्कुल दब-सी गयी थी.

हृदय में उठते युद्ध को हम आधुनिकता के कृत्रिम साधनों से झुठलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन मन में उमड़ते महासागर का हाहाकार रोके नहीं रुकता. सीरियल में राम एक बार फिर युद्ध को टालने की किंचित् कशमकश दिखाते हैं. लक्ष्मण ही नहीं, दर्शक भी क्रोध में आकर यह बोलने लगता है कि भगवान अब और सहन नहीं होगा-आक्रमण कर दो. वत्सल ईश्वर फिर भी अपने मन के कोने में दबी करुणा और क्षमा के वश कहते हैं कि किसी जन्म में यह भी मेरा सेवक रह चुका है, किंतु अहंकार और अज्ञान के वश रावण की तरह आचरण कर रहा है. एक 'फ्लैश' सीता बनी 'दीपिका' का दिखाते हैं—जिसमें युद्ध के टलने की एक ही प्रपत्ति कि सीता मान जाये, सुनकर उसके होंठ कांपने लगते हैं—आंखों में पानी भर आता है. क्या एक स्त्री की देह के लिये रावण उतने लोगों की बलि देने जा रहा है. क्या देह देकर निरपराध राक्षसों के परिवारों की रक्षा की जाये. नहीं, वृहत्तर मूल्य की रक्षा के लिये, स्त्री के शील की रक्षा के लिये कितना भी विराट् नरसंहार छोटा है. मेरा मन कहता है, सीता देह नहीं, प्रेम की दीपशिखा है. इसे बुझने नहीं देना है. इसे आलोकित रहना है. राम के हृदय में यह अखंड आलोक कभी बुझेगा नहीं. जगत में देह-धारिणी सीता केवल भीतर की आलोकशिखा की प्रतिमूर्ति है.

'युद्ध'—अंततः सुग्रीव को आदेश देना ही पड़ा. 'युद्ध'—कैलाश पर कैलाशपति ने विस्मय से आंखें खोलीं. 'युद्ध'-देवाधिदेव इंद्र ने समस्त देवताओं को भाग लेने का आदेश दिया. 'युद्ध'—तपोवन में रहते तपस्वियों ने मनःचुक्षओं से देखा. 'युद्ध'-'युद्ध'—निरंतर मन में हाहाकार करता युद्ध दांपत्य में अर्थ-भार से चीखते पति-पत्नियों का आपस में युद्ध. पुरानी प्रेमिकाओं-प्रेमियों की निरंतर स्मृति से उठता मौन द्वंद्व. अचाहे आये अतिथियों से चिड़चिड़ा हुआ मन. छात्रों के झुंड में बेरोक टोक बढ़ती काम-पिपासा के सार्वजनिक प्रदर्शन से मन में कई दिनों से उठती उदासी और खीझ. एक असहाय और अपमानित-सी स्थिति. प्रांत में कितना अधिक खून-खराबा, कैसी बेबसी, कैसी दुरभिसंधि. पर्दे के पीछे राजसत्ता के हाथ क्यों बंधे हैं, कोई नहीं जानता.

घर से बाहर बहुत ही खिन्न मन लिये निकलना हुआ. एक शिव-भक्त मित्र पड़ोस में रहते हैं. उन्होंने बिना मेरे मन की भावना देखे 'नमःशिवाय' का कार्ड हाथ में थमा दिया कि अपने ड्राईंग रूम में लगा दूं. क्या नरसंहार बहुत समीप है? हो तो रहा है रात-दिन. मन में कितना तो युद्ध चल रहा है. दांपत्य की बेड़ियों में पति-पत्नी रात-दिन तिलमिलाते रहते हैं, कितनी तो हिंसा हो रही है. पड़ोसी दंपति दरवाजे तक छोड़ने आये. नमस्कार करते समय टन्न से सोटी सिर पर जमा ही दी, "बहनजी को भी साथ लाया कीजिये.

'बहनजी!.... ईश्वर ही बचाये. और युद्ध किससे चल रहा है."

उनसे विदा हो लोकल बस के स्टाप तक आ गया किंतु उनका ड्राईंग रूम मन से उतरा नहीं. वे वहां अकेले ही बैठे थे. थोड़ी देर पहले देखे 'सीरियल' में डूबे थे कि 'राम' के माध्यम से प्रोड्यूसर ने बहुत-सी ज्ञान की बातें कही हैं. वस्तुतः यह सब 'काम' पर 'अध्यात्म' की विजय है—उन्होंने पत्नी को चाय के लिये कहकर अपने विरेचन को विराम दिया.

उनकी बात से थोड़ी तसल्ली हुई. पत्नी-पुत्र में भी अधिक न उलझना चाहिये. सब एक 'सीरियल' है. टी.वी. देखकर बंद कर देने जैसी ही तटस्थता रखनी चाहिये. संयोग से कोई पुत्र बन गया है, कोई

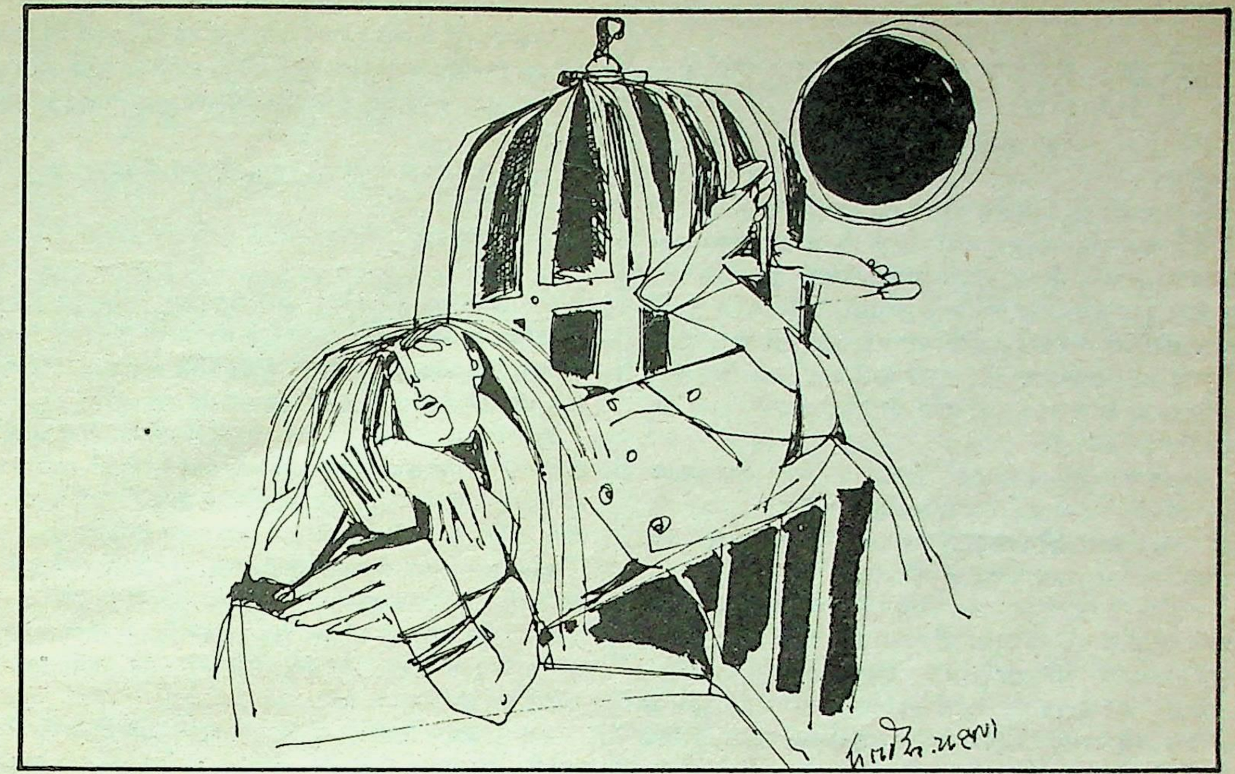

पत्नी. वस्तुतः सबकी यात्रा अलग-अलग है."

मैं इस भरोसे उनसे मिला था कि इनके घर में तो प्रेम होगा, कलह न होगी. कलह तो नज़र नहीं आयी. लेकिन उनकी शिव-भक्ति भी मुझे तो उनकी अपनी सीता से झगड़ा न हो जाये, का ही एक उपाय लगी.

बस देर से आयी. विश्वास था—कंडक्टर 50 पैसे वापस न करेगा. ऐसा ही हुआ. किंतु यह देखकर आधी तसल्ली हुई कि उसने टिकिट वापस न लिया. छुट्टी वाले दिन उन्हें कुछ अतिरिक्त पैसों की जरूरत होती है. पंद्रह सैक्टर की लायब्रेरी पर उतरा. बाहर किसी पुस्तक प्रदर्शनी के पोस्टर लगे हुए थे. इच्छा न थी कि प्रदर्शनी देखेंगे. नाम मात्र की होगी. आकर्षण आजकल देश की राजधानी में होते 'पुस्तक-मेलों' का नहीं होता. यहां इस छोटे संस्करण में क्या धरा होगा. किंतु वाचनालय-कक्ष में पुरानी पत्रिकाओं के व्यंग्य-विशेषांकों के अतिरिक्त कुछ भी नजर नहीं आया. मनुष्य ऊपर से ही बन-संवरकर रहता है. इसमें संदेह नहीं कि उसका भीतरी चेहरा वैसा ही है—जैसाकि कार्टूनिस्ट बनाते हैं. सारे पेज टेढ़े-मेढ़ें चेहरों से भरे हुए. प्रदर्शनी में आक्सफोर्ड से छपी किपलिंग की कहानियों के दो भाग नजर आये. शिलिंग य पाउंड में छपी कीमत से अनुमान न हुआ कि भारतीय मूल्य कितना है. कुछ क्रूर मुद्राओं में बैठे पुस्तक-विक्रेताओं से पूछने का साहस नहीं हो रहा था. एक-दो महिलाओं के आगमन से उनकी मुद्रा कुछ बदली तो साहस कर पूछा.

"दोनों का डेढ़ सौ रुपया."

"एक?"

कमीशन काटकर आपको 67 रुपये में पड़ेगा." जेब में दस का एक नोट था जो पत्नी से झगड़कर जीता था, इस ताने के साथ आज तो अपनी बदबू से सनी रोटियों से मुक्ति दो. कहीं दोसा खा लेने दो.

लायब्रेरी जल्दी ही बाहर आना हुआ, सो दोपहर की भूख अभी न लगी था. स्नान-ध्यान भी बाकी था. मन हुआ, क्यों न घर चलकर पत्नी को चकित किया जाये. कसाई घर को जाते गरीब मेमने से दस के नोट का खयाल आया. कंडक्टर फिर 50 पैसे के बजाय एक रुपया काट लेगा और इतने बड़े नोट के लिये बहुत कुछ अपमानजनक कहेगा.

किसी तरह दूसरी तरफ के बस स्टाप पर गया. छुट्टी का दिन होने से जल्दी बस आने की उम्मीद न थी. एक महिला ने निराशा से मुझसे समय पूछा और हताश भाव से पैदल ही एक ओर को चल दी.

जाने मुझमें साहस जैसे भाव का उदय अचानक क्यों हुआ. इसी स्टाप पर कुछ समय पूर्व नगर-पुलिस ने दो खूंखार आतंकवादी मार गिराये थे. रसोई जैसे धुएं से अजीब-सी गंध देती है. यहां का कोना भी मुझे कुछ घुटता-सा लगा. तो भी मैं सीमेंट की बेंच पर बैठ गया. बसों के आने-जाने की तरफ से ध्यान हट गया. कुछ समाधि-सी आने लगी. एक बस आंखों के सामने से जा रही थी. नंबर पढ़ा तो चौंका कि यह तो मेरे वाली ही बस थी. लेकिन जाने क्यों किसी क्षति की नहीं बल्कि मुक्ति की ही अनुभूति हुई. तात्पर्य, काल की रस्सी से गर्दन छूटी. कुछ समय निर्बाध बिताया जा सकता था. युनिवर्सिटी कॉफी हाउस में खाद्य पदार्थ सस्ते मिलेंगे—सोच एक रिक्शेवाले को रोका. रिक्शे पर बैठते ही मन और हल्का हो गया. बस और कंडक्टर के आतंक से मुक्ति हुई.

रिक्शा रेस्तरां से कुछ पहले ही रोक लिया. ताड़ के पंक्तिबद्ध पेड़ हवा में फड़फड़ा रहे थे. स्टूडेंट सैंटर एक घनवादी पेंटिंग-सा पूरे खुलेपन में शांत टिका हुआ था. कोई छात्र, वाहन इत्यादि न होने से मन और शांत हुआ. फूल और पार्किंग प्लेस के बीच तारों को हटाकर आने जानेवालों ने छोटा-सा रास्ता बना रखा था. सावधान न रहने से कपड़े उलझते हैं. अचानक पीली कमीज में एक युवा छात्रा आम के घने पेड़ों के नीचे नजर आयी. लगा मुझे ही देख रही है. पूरे परिवेश में वह अकेली पीली पंखुड़ी-सी स्थिर खड़ी थी—एक आलोक शिखा सी. यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह मुझे ही देख रही थी. इससे सुबह से अभी तक का बना हुआ विषाद अचानक घुलकर साफ हो गया. मन में एक अनजानी खुशी हुई. उसने मुझसे नजरें हटायी नहीं और बिल्कुल पास पहुंचने पर नमस्ते की. मुझे आह्लाद हुआ. मेरी ही छात्रा थी.

"अरे. तुम क्या कर रही हो आज यहां, अकेले?" मैंने कहा.

और, और आतंकवादी

□ जगवीर सिंह वर्मा

तीन सौ के लगभग गांवों के उस तहसीली क्षेत्र में बलात्कार की यह पहली घटना थी. बलात्कृत बालिका बारह-तेरह साल की थी, जबकि बलात्कारी बाइस-तेइस साल का भरा पूरा जवान था. बालिका ब्राह्मण परिवार की थी तो युवक अहेरिया परिवार से संबंधित था. उस गांव में ब्राह्मण परिवार अल्पसंख्यक थे. और छोटी मोटी ज्यादतियां सदा से ही सहते आ रहे थे. मगर यह अनहोनी थी. इस घटना ने सबको बुरी तरह हिला दिया था.

बलात्कारी परिवार आपराधकर्मी था और कुछ स्वजन हिस्ट्रीशीटर भी थे. स्थानीय पुलिस से उनकी मिलीभगत थी. इसी से बलात्कार की प्रामाणिक रपट पर भी उसने गिरफ्तारी विभागीय ऊपरी दबाव पर ही की थी.

मुजरिम तीसरे ही दिन जमानत पर घर लौट आया था. उसने अपने कुछ संगी साथियों सहित वादकारियों, गवाहों को आतंकित करना शुरू कर दिया था. वह लोग फिर वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक की शरण में पहुंचे थे. वहां भरपूर संरक्षण के आश्वासन के बावजूद भी स्थानीय पुलिस की निष्क्रियता ने उनके होश उड़ा दिए थे।

फिर भारी मन और भयभीत हृदय से उन लोगों ने अपनी मान मर्यादा, पीड़ा, मानवता जाति वगैरह का वास्ता देकर पास पड़ोस के आठ दस गांवों के प्रभावी, सम्मानित इंसाफपसंद आदमियों से सुरक्षा की, इंसाफ की, आतंक की समाप्ति की गुहार की थी.

पंचायत में प्रतिवादी पक्ष के बूढ़े, बालक और बेशऊर लोग ही आ पाये थे. बाकी गांव से बाहर चले गये थे. पंचायत ने उन लोगों के इस कृत्य की खूब भर्त्सना की थी और दंड भी निश्चित कर लिया था. यों दंड पुलिस कार्यवाही से बाहर नहीं था. अनेक जगह पुलिस ने बलात्कारी का मुंह काला करके गधे पर बिठकार जनता के बीच घुमाया था. बलात्कृत परिवार भी ऐसी ही कुछ चाहता था.

उधर बलात्कारी पक्ष ने स्थानीय पुलिस से पंचायत की सूचना देने के संग साथ सलाह भी मांगी थी. पुलिस ने सलाह दी कि गांव में वे एक दो झोपड़ी जलाकर रपट दर्ज करा दें. यदि कोई पंच या पड़ोसी गांव का अलम-बरदार ज्यादा 'नेतागीरि' दिखाये तो उसकी भी नाम घसीट दें, हम सब देख लेंगे.

और गांव में लौटकर शाह गाढ़ी होते ही बलात्कारियों के पक्ष ने एक झोपड़ी में आग लगा दी थी. बाद में बलात्कृत बालिका के पिता की छाती पर अनाधिकृत दोनाली कोंच पर धमकाया था—"खामोश बैठ जा घर, पंच पंचायत या ज्यादा गुल-गपाड़ा मचाया न, तो वह जो छोटी है न, नौ दस बरस की ... समझ ले, उसका भी यही अंजाम होगा! करता रहना तुझे जो करना है, ऐसा ही एक केस, ऐसे ही दो!"

और तब उस गरीब, निर्बल, बूढ़े और असहाय पिता को सहसा लगा था कि वह आजाद भारत के उत्तर प्रदेश के किसी गांव में न रहकर विदेशी पंजाब के किसी आतंकवादियों द्वारा सताये गांव में रह रहा है ... □

"अकेली नहीं हूं सर! इनडोर गेम्स चल रहे हैं." उसने उत्तर

"मुझे बिल्कुल आइडिया न था. यों ही कॉफी के लिये आया

"सर, गेम्स में चलिये. हम काफी आपको वहां पिलायेंगे." आग्रह किया.

"नहीं हल्ले-गुल्ले से दूर ही रहूंगा. रेस्तरा में रहूंगा, आना."

"थैंक्यू सर."

"होस्टलर हो न!"

"यस सर!"

लगा कोई दीपक है उज्ज्वल. काली पैंट स्मार्ट, लेकिन बिल्कुल हुये कमल-सा चेहरा. बहुत पतले होंठ. लिपस्टिक हल्की-सी. आंखें चमकता हुआ आकाश—जैसे सीप में बंद मोती. संवारी हुई भौंहें. आम्र बौर की गंध-तुर्श-हल्की बूंदाबांदी से घुली-सौंधी.

कॉफी से मन और भी खुल गया. गोलाई में बने रेस्तरां में खाली कुर्सी मेजें भी एक कला-दीर्घा का-सा आभास दे रही थीं. कहीं से का एक झुंड और आ गया और एक कोने में बैठकर 'हैप्पी बर्थ डे' लगा. जाहिर है 'हैप्पी बर्थ डे' उस दिन उनमें से किसी का न

खाद्य सस्ता मिला, लेकिन सत्रह सैक्टरवाली ताजगी उसमें न थी. दस रुपये में से कुछ बचाकर क्या करना था. बस के 50 पैसे रख रुपये का नोट वेटर को दे दिया. टिप देखकर विपन्न चेहरे के एक आदरयुक्त सौभ्यता आ गयी. मुझे लगा, उसे अपनी हल्दी कमीज पर थोड़ी शरम आयी.

मुझे भी अपनी किसी-किसी छात्रा से शरम आती है. कभी कोई देती है, "सर आपने कन्वेंस नहीं रखी हुई. कन्वेंस माने कार या छात्र कब समझेंगे, ये चीजें व्यापारिक तबके के पास होती हैं. दो का किराया नगर में हजार रुपये हो गया है.

सेंटर से उतरते समय गेम्सवाले छात्रों का झुंड मिल गया. इनफौरमल ड्रेस में देख उनका मन भी प्रसन्न हुआ. संकरे पुल पर से आते एक जोड़े के लिये सिकुड़कर रास्ता देना पड़ा. जोड़ा थोड़ा चला गया तो छात्रों ने समेवत स्वर में गाया, 'लेफ्ट राइट, लेफ्ट जाते जोड़े के कूल्हों के उतार चढ़ाव पर. अध्यापक होने के नाते डांटना पड़ा, "यह क्या, तुम लोग जब जोड़ों में घूमते हो तो बाकी फब्तियां कसेंगे."

"सर, ऐसी नोक-झोंक तो चलती ही रहती है."

"अच्छा, 'अब मैं नीचे जाऊंगा, तो मेरे लिये तो नहीं कहोगे- अकेला हूं!"

"मैं आपके साथ नीचे तक चलूंगी." वह पीली कमीजवाली छात्रा गयी थी.

मैंने आभार वाली आंखों से उसकी ओर देखा. एक मामूली-सी में भी उसकी ममता है कि उमड़ पड़ी, साहस कि वह यह फब्ती सहने तैयार है, कामना कि आपका साथ दूंगी, आदर कि कुछ न्यौछावर सकती हूं. नारी गुणों की खान होती है. यह नारी केवल आदर की इसके शील की रक्षा के लिये कोई भी मूल्य छोटा है. यह आलोक- है—यह प्रेम की लौ है. यह राम के हृदय में अखंड जलती है. ऊपर छाया है. मन में बसी सीता की मूर्ति को कोई छू नहीं सकता. देह- का जिसने अपहरण किया है, उसका विनाश आवश्यक है.

जीवन युद्ध चल रहा है. सूने रेस्तरां को देख मन हुआ था—अप में बसी प्रतिमूर्ति को भी यहां आमंत्रित करूं—सामने बिठाऊं- देखूं—उसकी अभ्यर्थना करूं. कितना कठिन है यह लोक-मर्याद देखते हुए यह कितना असंभव है. मन में बसी मूर्ति को मन में ही होगा. दीपिका! तुम्हारी आभार! तुम्हारा मर्यादा की रक्षा हो- लिये रात दिन युद्ध कर रहा हूं देवी! रात-दिन जल रहा हूं- तुम्हारे मीठे आलोक में जी रहा हूं

डा. बीबर

तर्कबुद्धि यानी रेशनलिज्म, मनुष्य जाति की बदतरीन बीमारी है. 'तर्क' सृजन को बिल्कुल उलट देगा. मानव इतना चतुर हो जायेगा कि वह प्रजनन या खानपान सब कुछ भूल जायेगा. उसे शायद मरना भी सीखना होगा ... एक सशक्त अमरीकी कथा

□ इसाक बाशेविस सिंगर

महत्वपूर्ण अमरीकी लेखक.
जन्म: 4 जुलाई, 1904 पौलेंड
प्रमुख कृतियां: 'गिंपल द फूल', 'द मैजीशियन ऑफ लुबिन', 'द स्पिनोजा ऑफ मार्केट स्ट्रीट', 'द स्लेव', 'शॉर्ट फ्राइडे', 'इन माई फादर्स कोर्ट', 'द मैनर', 'द एस्टेट', 'अ फ्रेंड ऑफ काफ्का'

अनुवाद : इंदुप्रकाश कानूनगो

वारसा के राइटर्स क्लब में डा. मार्क बीबर को हर कोई जानता था—लंबा कद, चौड़े कंधे, कनपटियों पर भूरे बाल. घनी भौंहों के नीचे उनकी भूरी-भूरी आंखें मदिरा के प्यालों में तिरती छोटी-छोटी चेरी की मानिंद दिखतीं. वे प्रोफेसरी अंदाज में चौड़े किनार की मखमली हैट पहनते. उन्हें अक्खड़ कहा जता, हालांकि उनका जन्म धनी हासिद परिवार में हुआ था. पहली जंग के पहले वे स्विटजरलैंड में दर्शन पढ़ने गये थे. सालों वे बेरोजगार रहे. गैर-यहूदी इलाके में कहीं किसी किराये के कमरे में वे रहते थे.

राइटर्स क्लब के सदस्य चकित रहते, डा. बीबर कैसे बिना कमाये गुजारा चला लेते हैं. अपने पिता की टूटी-फूटी जायदाद से थोड़ा-बहुत मिलता होगा! (उनके पिता मेदेल बीबर ने बड़ी उम्र में उन्नीस बरस की लड़की से विवाह किया था जिससे उनके ग्यारह बच्चे थे.) या फिर वे 'जिगोलो' हैं, बूढ़ी स्त्रियों के संग नाचनेवाले, उन्हीं के सहारे पलते हुए! कुछ सदस्यों को यह पता लगा था कि येशिवा-छात्र की तरह उन्हें रोज-रोज किसी-न-किसी के घर खाना मिल जाता है, पुराने दोस्त और रिश्तेदार दोपहर के या रात के खाने पर, या कभी वारसा और ओटवाक के बीच बने अपने ग्रामघरों में ले जाते हैं. कभी-कभी छुट्टी पर गये पत्रकार या प्रूफरीडर की जगह काम करने का अवसर राइटर्स यूनियन की मेहरबानी से उन्हें मिल जाता.

बहरहाल वे कायम थे, हरदम खुशमिजाज, जीजीविषा से सराबोर भोले-भाले. बढ़िया सिगार पीते. ढीले-ढाले कपड़े पहनते, मगर इंग्लिश ट्वीड के. घंटों स्विटजरलैंड के किस्से सुनाते. वे कई हस्तियों को जानते थे: लेनिन, क्रोपोत्किन, बर्गसां, क्यूनो फिशर, वूंत्द, जार्ज कैसर—राजगद्दी के तथाकथित दावेदारों और राजकुमारों को भी. मांटे कार्लो में उन्होंने घूमते-चक्र पर जुआ खेला था. कालेज के दिनों में उन्होंने प्रशियन सामंतों के साथ मिट्टी के प्यालों में छककर बीयर पी थी और शायद द्वंद्व-युद्ध में किसी के बदले खुद खड़े हो गये थे. विचार और कर्म से वे भोगवादी थे. राइटर्स क्लब के सदस्यों को उनकी डाक्टर की उपाधि पर संदेह होता. उन्होंने कोई शोध निबंध नहीं लिखा मगर जर्मनी के सारे दार्शनिक आंदोलनों की जानकारी उन्हें थी. वे स्वयं को आनंदवादी मानते, फिर भी डेविड ह्यूम, कांट और शापेनहावर के विचारों की कद्र करते. उन्होंने अपने मित्रों, प्रोफेसर मेस्सेर और पोफेसर बॉश की लिखी किताबें मुझे दीं. दोनों लेखक कांट के अनुयायी थे. किताबों पर बर्न विश्वविद्यालय लाइब्रेरी की मुहर थी.

वे मुझसे बीस बरस बड़े थे, फिर भी हम दोनों मित्र थे. मैं उन्हें 'आप' कहता, वे मुझे 'तुम'. उन्होंने मेरा नाम त्सुत्सिक (पप्पी) रख दिया था. वे कहते, ''खूब लिखो, त्सुत्सिक. मैंने कोशिश की लेकिन संयम नहीं है. जैसे ही पेन उठाता हूं, टेलीफोन खनखनाता है. कलम घिसने में दिलचस्पी नहीं रही. और फिर कौन पढ़े इतनी सारी किताबें? मर्जी से खाता हूं, मर्जी से पीता हूं. स्त्रियां अनेक मिल ही जाती हैं.''

वे सच बोल रहे थे. तलाकशुदा, विधवा, अविवाहिता और मोहब्बत की तलाश में घूमती अन्य स्त्रियों से दोस्ती करने में वे माहिर थे. राइटर्स क्लब में प्रायः उनके लिए फोन आते रहते. रोमांटिक, बातूनी स्त्रियां उन्हें बेचैन करती रहतीं. उनमें से उन्हें चुन लेते जिनके लिए जैसा वे कहते, 'भूमिका और उपसंहार' की जरूरत न थी.

मेरी आय उन दिनों बढ़ने लगी थी. मैंने यिद्दिश प्रेस के लिए थामस मान की 'द मैजिक माउंटेन' और कुछ अन्य जर्मन उपन्यासों का यिद्दिश में अनुवाद किया था. कभी-कभी मैं डा. बीबर को दोपहर के खाने पर बुलाता. वे किसी बढ़िया मदिरा का नाम लेते और कई तरह के खाने का आर्डर देते. मेज पर आया सारा खाना फटाफट खा जाते. खाने के दौरान सिगार पीते-पीते अनेक किस्से सुनाते. उन्होंने लंबी यात्राएं की थीं, यूरोप की लगभग सारी राजधानियों में रह चुके थे यिद्दिश के अलावा जर्मन, रूसी, फ्रांसीसी और इतालवी भाषाएं जानते थे. हिब्रू भी. छुटपन

में वे येशिवा में पढ़े. कुछ समय पहाड़ चढ़ना सीखा. उन्होंने अपनी आल्प्स की चढ़ाई का वर्णन सुनाया. उनके सारे किस्सों का एक ही निष्कर्ष निकलता : सब मिथ्या है, सभी दार्शनिक गलत हैं, सारे आदर्श खोखले और कपटी हैं.

जैसे-जैसे समय बीतता गया, वे प्रायः बिगड़े मूड में दिखाई देने लगे. अपनी समस्याएं बताते—बूढ़े होते जा रहे हैं, सारे अवसर गवां दिये. बीमार और कमजोर रहने लगे हैं. डाक्टर ने हृदय के अंदर चर्बी बढ़ जाने का रोग बताया है, सिगरेट, शराब और चर्बीयुक्त खाने पर पाबंदी लगा दी है. ज्यादा इश्कबाजी के विरुद्ध भी खबरदार कर दिया है. कहते हैं अब उन्हें आत्मा की शांति चाहिए. लेकिन शांति मिले कैसे, जब हर सवेरे एक ही सवाल मंडराये-दिन कैसे गुजरेगा. सबसे ज्यादा सताती उनकी बढ़ती उम्र. सारे बाल सफेद हो जायेंगे तब क्या करेंगे? कौन उनकी चिंता करेगा? बीमार हो गये तो क्या होगा? किसी अस्पताल में उपेक्षित पड़े रहेंगे. उन्होंने परिवार त्याग दिया, परिवार ने उन्हें त्याग दिया, अपने ही भाई-बहिन सड़क पर अजनबी-से चले जाते हैं.

उनके बाल पकने लगे. पहनावा लापरवाह रहने लगा. लंबे अंडरवियर की नाड़ियां पेंट के नीचे से निकलती हुई जूतों तक चली जातीं. सस्ती, बदबूदार सिगार पीने लगे. खाते वक्त कपड़ों पर छींटे उड़ जाते. उनके किस्से और मजाक पुराने पड़ने लगे. यदि वे स्वयं को ठीक से व्यवस्थित न कर पाये तो बिलकुल बिखर जायेंगे. एक दिन मैंने कह दिया, वारसा में कुछ एजेंट हैं जो ठीक जोड़ा-बिठा देते हैं.

धुएं के छल्ले उड़ाते, शरारती नजरों से उन्होंने मेरी ओर देखा. "रहने दो त्सुत्सिक. अभी मैं इतना नहीं गिरा हूं."

मैं कुछ दिन बाल्टिक समुद्र किनारे एक गांव में छुट्टियां मनाने चला गया. लौटा तो पता चला डा० बीबर ने शादी कर ली. दूसरे दिन उनका फोन आया. फोन पर पहले कभी उनसे बात नहीं हुई थी, आवाज जरा भी पहचान में नहीं आयी.

"त्युत्सिक", वे बोले, "मैं तुम्हें ही खोज रहा था. मैंने तुम्हारी सलाह मान ली. इस वक्त तुम वारसा के एक भद्र नागरिक से बात कर रहे हो."

"माशा अल्लाह! यह तो बढ़िया खबर है. बहुत अच्छा किया आपने."

"एकाएक हो गया. किसी ने यूं ही पहचान करा दी और बात बन गयी. तुम तो जानते हो, खूब देर तक बात खींचना मुझे पसंद नहीं. तालमुद में किसी स्त्री से ज्यादा बात करने की पाबंदी है, यानी सिर्फ हां ना तक ही महदूद रहो. मेरी पत्नी बुर्जुवा है लेकिन भली है, मुझसे ज्या ऊंची क्लास पढ़ी है—हायर सेकेंडरी! दिखने में बुरी नहीं है. मुझसे ब प्रेम करती है. इस उम्र में और इस स्थिति में मैं अधिक क्या अपे करता? अब मेरा एक घर है—सारी दुनिया. यकीन नहीं होता मैं क बेलगाम था. सच में बड़ी मजबूत काठी का रहा होगा! ठह जरा—साल्त्शे से बात करो. वह तुम्हें जानती है. मैंने तुम्हारी कहानी उसे पढ़ने को दी थी. उसे बहुत पसंद आयी. लो, बात करो

फोन में ठेठ पोलिश-यिद्दिश उच्चारण सुनाई दिया—"त्सुत्सि यही नाम है ना? बड़ा सुंदर. मुझे साल्तशे कह सकते हो. मार्क ने बताया है. उसके दोस्त मेरे दोस्त. शादी में शामिल होते बड़ी खु होती. बड़ा अफसोस रहा. तुम्हारी कहानी पढ़ी. बहुत बढ़िया. शाम कहीं जाना तो हो नहीं है?"

"कोई जरूरी नहीं."

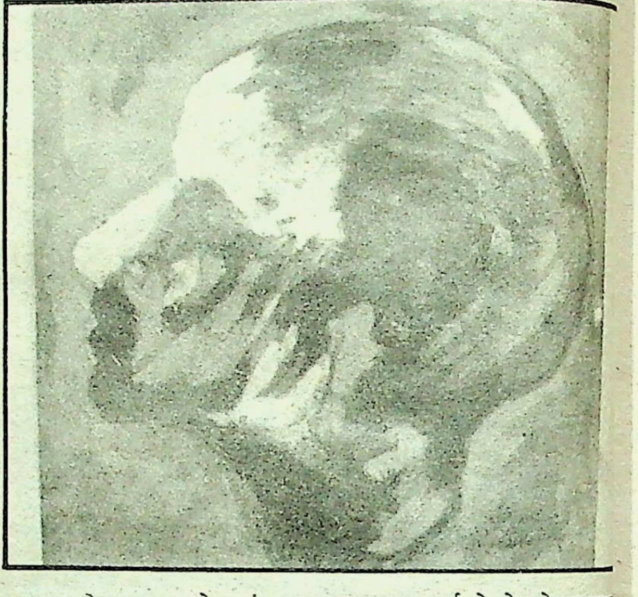

तब तो खाना हमारे यहां. मना मत करना भाई. ये तो हमेशा तुम्ह बातें करते हैं. सारी शरारतों की पोल खोल रखी है. तुम्हारी प्रतिभा बड़ा आदर करते हैं. कब तक आ सकते हो? जल्दी क्यों नहीं? हम काफी बड़ा अपार्टमैंट है, सब सुविधाएं हैं, रात रुकना चाहो तो अल कमरा है. मार्क तो तुम्हें गोद लेने की बात करते हैं."

शाम छह बजे, दाढ़ी बना, बाल संवार मैंने बढ़िया सूट और पहनी. दुकान से गुलाब का गुलदस्ता बनवाया और ड्रास्की किराये की. बीबर दंपत्ति ईसाईयों और यहूदियों के संपन्न इलाके में रहते उनके अपार्टमेंट तक एलिवेटर था. शीशम के ऊंचे दरवाजे पर नेम थी—'डा० मार्क बीबर'. दरवाजा एक भद्र नौकरानी ने खोला. बी और उनकी पत्नी ने स्वागत किया. साल्त्शे चवालीस-पैंतालीस होगी, ठिंगनी, सांवली, फूला वक्षस्थल और बड़ी-बड़ी आंखें—अनमनी हंसमुख यहूदी आंखें, यहूदी निर्वासन जितनी पु उन्होंने अपना हाथ इतना आगे बढ़ाया जैसे गले-लगना चाहती नौकरानी को गुलदस्ता देते हुए उसे फूलदान में रखने को कहा. उ गोल-मटोल गर्दन पर मोतियों की माला झूल रही थी. बायें हाथ उंगली में हीरे की अंगूठी चमक रही थी.

डा० बीबर रंगबिरंगा आसमानी जैकेट और स्लिपर्स पहने जवान दिखाई दे रहे थे, झुर्रियां गायब थीं, आंखों के नीचे के काले नदारद थे, सफेद बाल काले हो गये थे. उनकी सिगार एक एंबर हो में खुंसी हुई थी. घनी भौंहों के नीचे आंखें शरारत से भरी थीं. "सा

ये है त्सुत्सिक."

"मे आई किस हिम?"

"जरूर, जरूर."

बैठक में सब कुछ सलीके से सजा था, कालीन, कुर्सियां, सोफा, दीपदान और चित्र. कुछ समय बाद हम डाइनिंग-रूम में थे. कांच की एक विशाल अलमारी चीनी और चांदी के बर्तनों से भरी थी. डा० बीबर को धनीं स्त्री मिल गयी थी. एक भौंह तानकर वे मुस्कराये. "देख लो, मेरी जिंदगी बदल गयी है. अब मैं फटेहाल नहीं हूं."

"गरीब बने रहकर दुख झेलने से क्या फायदा?" साल्त्शे ने कहा, "मार्क जैसे आदमी को तो किताबें पढ़ने-लिखने का काम करना चाहिए, किसी अटारी में पड़े बरबाद क्यों हों? जब मैंने उनका कमरा देखा तो गश आ गया. मैंने उन्हें वहां से सिवाय उनकी पांडुलिपियों के और कुछ भी लाने नहीं दिया. इतना प्रतिभाशाली पुरुष अपने ही बारे में इतना लापरवाह? ओह, लोगों को खुद पर ही दया नहीं आती! अब तक तो वे बिलकुल चूर-चूर हो चुके होते. त्सुत्सिक, तुम तो अभी जवान हो. भला पाठ सीख लो—शादी कर लो, घर बसा लो. अपने मित्र के कदमों पर मत चलो. खाली पेट भजन नहीं होगा. आखिर इनकी जिंदगी सुधर ही गयी. अब तो अपने कमरे में दोपहर तक जमे रहते हैं. उन्हें कोई परेशान नहीं कर सकता. टेलीफोन मैं संभालती हूं. अभी तक उनके संबंधी दूर-दूर छिटके रहते थे, एकाएक सारे भाई-बहिन, चाचा-मामा दौड़े आये. उनसे बचना होगा. सच्चा दोस्त वही जो वक्त पर काम आये, वह नहीं जो अवसर देख लाभ उठाने आ पहुंचे. इसलिए त्युत्सिक ..."

"बस, बहुत है साल्त्शे. रसोइया से कहो मेहमान के लिए बढ़िया खाना लगाये."

"क्यों, चिंता क्या है? उसे इतनी भूख तो नहीं लगी होगी?"

साल्त्शे ने सुनहरी घंटी खनखनायी. सफेद लिबास और टोपी पहने रसोइया दरवाजे पर खड़ी हुई. नौकरानी तो एक है ही, अलग-से रसोइया भी, वास्तव में रईस हैं! खाने में उस रात क्या नहीं था! मसालेदार मछली, खट्टी-मीठी चटनी, पनीर, कोफ्ते, बिरयानी. डा० बीबर बड़े चाव से खाना खा रहे थे. वे तरह-तरह के पकवानों की ओर इशारा करते रहे और उनके नाम और बनाने की विधि बतलाते हुए मदिरा की चुस्की लगाते गये.

"ये मुझे नौ से दो बजे तक बंदी बनाये रखती हैं," उन्होंने कहा. "मैंने कुछ पुरानी पांडुलिपियां पढ़ीं. एकदम चौंक गया. उन दिनों का लिखा आज बड़ा बेरंग लगा. लगता है अब स्मृति चल दी. और फिर ठीक से जर्मन समझ नहीं पाता. हिब्रू जमती नहीं—उसमें आधुनिक जीवन-दर्शन की शब्दावली नहीं है."

"यिद्दिश में लिखिये ना."

"किसके लिए? येशिवा छात्रों के लिए? खैर, कुछ न कुछ तो करूंगा. दरअसल, अब किसी बात का एतबार नहीं रहा. मुझमें लेखक बनने का दृढ़ संकल्प नहीं है."

"बहाने खोजो हजार हैं," साल्त्शे ने कहा. "लगातार लिखते जाओ देखो सब अपने आप ठीक हो जायेगा. मूढ़ और अज्ञानी भी प्रसिद्ध हो गये हैं, मगर काम से जी चुराने वाला कभी नहीं पनप सकता चाहे कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो. मैं जर्मन पढ़ लेती हूं, समझती हूं. इनका लिखा हर वाक्य जबर्दस्त है. ये प्रतिभावान हैं, एकदम माहिर हैं."

"कुछ मीठा भी बनाया है ना?" डा० बीबर बोले.

"रुको जरा. आता ही होगा. और कुछ लो त्सुत्सिक. तुम्हें त्सुत्सिक कहती हूं, बुरा मत मानना. बहुत मीठा नाम है. मेरे पिता, ओह मेरे पिता, मेरे भाई को इसी नाम से पुकारते थे. दोनों ही नहीं रहे." साल्त्शे ने रेशमी रूमाल से आंसू पोंछा.

उस शाम जिस तरह बातचीत चली, मुझे लगा मैं बीबर दंपत्ति के घर अक्सर जाता रहूंगा. वहीं खाऊंगा, सोऊंगा, लिखूंगा. लेकिन हफ्तों, महीनों नहीं जा पाया. बीबर और साल्त्शे ने कई बार टेलीफोन किया, खाने पर बुलाया, लेकिन या तो मैं व्यस्त था या फिर भारी खाना खाने और रात देर तक बैठने का मूड ही नहीं बना. डा० बीबर ने राइटर्स क्लब आना छोड़ दिया. लोग कहने लगे घमंडी हो गये हैं.

एक दिन डा० बीबर फोन पर बोले, "त्सुत्सिक, मुझे भूल गये, यार."

"नहीं जनाब. आपको कैसे भूलूंगा! कैसे हैं?"

उन्होंने लंबी सांस ली. "लोग मुझसे द्वेष करने लगे हैं," वे बोले, "सोचते हैं, मुझे खजाना मिल गया है. ऐसा लगता है राइटर्स क्लब में मेरी बड़ी चर्चा चलती है. दरअसल, जो कुछ हुआ उसका मुझे अफसोस होने लगा है."

"क्यों, क्या बात है? आप दोनों के बीच सब ठीक तो है ना?"

"बहुत ज्यादा ही ठीक है. लेकिन उससे मुझे ऊब हो गयी है. वह मुझे अमर बनाने पर तुली हुई हैं. त्सुत्सिक, तुम जानते हो, मुझे कोई भ्रम नहीं है. एकाधी किताब छप जाये तो क्या? कौन पढ़ेगा? आज ही मैंने श्लीएरमाचीर पर निबंध लिखा. किसे परवाह है श्लीएरमाचीर की?

सुबह से रात तक वह मुझे बांधे रखती हैं. खाने के बाद एक घंटा सोना पड़ता है, खाना पचाने के लिए. रसोइया संसार का आठवां अचंभा है. इतना बढ़िया खाना बनाता है कि जबान ललचायी रहती है. इतना ठूंस लेता हूं कि पेट फटने-सा हो जाये. शाम को फिर दावत. रात में साल्त्शे की तबीयत घूमने को करती है—सिनेमा, थियेटर, ऑपेरा. उसके कई रिश्तेदार हैं जो मिलने आते ही रहते हैं, बदले में हमें भी जाना पड़ता है. कब्र में से निकलकर मेरे रिश्तेदार भी प्रगट हो गये हैं. सारी घिसी-पिटी बातें चलती हैं. मैंने शायद बताया था तुम्हें, साल्त्शो उम्र की बिनब्याही स्त्री थी—वयोवृद्ध कुमारी. अब वह अभाव करना चाहती है. मैं ऊब गया हूं. मुझे तो किसी हरकत की तलाश है. वह मुझे फोन उठाने का मौका ही नहीं देती, उसे खटका लगा मेरा ध्यान भंग होगा.'' डा० बीबर हंसे भी और कुड़कुड़ाये भी.

''सब ठीक हो जायेगा जनाब.'' मैंने कहा.

''कैसे? हर दिन मुझे अपना अभ्यास बताना पड़ता है. वह मेरा हर शब्द पढ़ती है. उसने एक प्रकाशक भी खोज लिया है. भगवान क्या करना चाहती है. जब कोई स्त्री किसी पुरुष की जिंदगी चलाने समझो बेड़ा गर्क. मैं तो इतना गुलाम हो गया हूं कि नौकरानी से ही भिड़ा ली हैं.''

''जरा ध्यान से भाई.''

''त्युत्सिक मैं फिर लौटना चाहता हूं.''

सर्दियां बीत गयीं, गर्मियां आ गयीं. मैं छुट्टियों में फिर से चला गया, इस बार ज़ाकोपेन, पहाड़ों पर. अगस्त में लौटा. ही राइटर्स क्लब पहुंचा, किसी ने कहा, ''डा० बीबर का ताजा सुना?''

''क्यों, क्या हुआ?''

''जोपोट के केसिनों में चालीस हजार ज्लोट्या हार गये.''

''चालीस हजार?''

''अपनी बीबी की सारी नकदी रकम. बैंक में दोनों का संयुक्त था. वे जोपोट गये और सब चौपट कर दिया.''

''वे कहां थीं?''

''पूरा ब्यौरा नहीं मालूम.''

मैंने डा० बीबर को फोन किया, लेकिन कोई जवाब नहीं एक-दो दिन बाद पृज़ेजाज़्द-मार्ग पर टहल रहा था कि डा० दिखाई दिये: ढीले-ढाले, निष्प्रभ, अस्तव्यस्त, आंखों के नीचे फिर काले साये. पहले कभी उनके हाथ में छड़ी नहीं रहती थी, पर अब और शायद वे लचक रहे थे. घनी भौंहों को ऊपर उठा उन्होंने अनिष्ट के अंदेशे से भरी मौन आत्मग्लानि के साथ मेरी ओर ऐसे जैसे हमारी भेंट तय थी और मैं देरी से पहुंचा हूं.

''डा० बीबर! ये आप ही हैं?''

''त्सुत्सिक, मैं तुम्हें ही खोज रहा था. कहां चले गये थे? मैं मुसीबत में हूं. तुम्हें पता चला मेरे साथ क्या घटा?''

''हां, हां.''

''ओह, मेरा दिमाग खराब हो गया होगा, भगवान जाने क्या मुझे लगता है मैं पूरा झक्की हूं. सब कुछ ऊब से हुआ. उसने ज़ोपोट किराये का एक घर लिया और सारी पांडुलिपियों के साथ मुझे बसाया, क्या नहीं किया उसने! एकाएक उसे वारसा जाना पड़ा— बहनोई सख्त बीमार पड़ गये थे. बिचारे मर गये. और इधर मैं चला गया, हालांकि महज देखने के खातिर, पर वह तो दलदल है! पैर गिरा कि फंसे. वह चेकबुक दे गयी थी, और ज़ापोट में बैंक की है. कहीं जाने की जरूरत ही नहीं थी. पैसा हार गया.''

''साल्त्शो कहां है?''

''उसने मुझे निकाल दिया. कहा कुछ नहीं. उसके रिश्तेदार तो पागलखाने भेजना चाहते थे.''

''सही कर रहे थे..''

''त्सुत्सिक, मैं कंगाल हो गया हूं. मेरे पास रात बिताने के बिछौना तक नहीं है. कानूनी तौर से वह मुझे निकाल नहीं सकती मगर पुलिस से कौन उलझे? उसका चाचा वकील है, उसने मुझे भेजने की धमकी दी. त्सुत्सिक, क्या मैं तुम्हारे यहां सो सकता

घटना-कथा

बदलते जीवन मूल्य

□ मनोरमा भटनागर

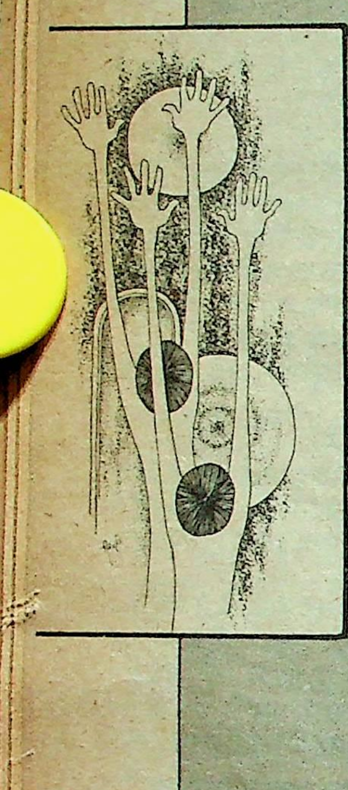

इलाहाबाद लखनऊ से आनेवाली एक ट्रेन में एक संभ्रांत दंपत्ति अपने सात-आठ साल के बेटे के साथ फर्स्ट क्लास के एक कंपार्टमेंट में सवार हुए. उन्होंने कंडक्टर से कहा, ''कृपया हमारे बेटे का लखनऊ से सहारनपुर तक का टिकट बना दीजिए. हम इसका टिकट जल्दी में ले नहीं पाये.

कंडक्टर 'अच्छा बना दूंगा.' कहकर चला गया पर सारी रात वापस नहीं आया. फिर प्रात: जब गाड़ी लक्सर पहुंचकर रुकी तब कंडक्टर आया और उनके टिकट चैक करने के बाद कहने लगा कि बच्चे का टिकट इलाहाबाद से सहारनपुर तक पेनल्टी के साथ बनेगा इसने बिना टिकट सफर किया है.''

बच्चे के पिता ने कहा, ''हमने आपसे लखनऊ में ही इसका टिकट बनाने को कहा था.''

''मुझे क्या पता यह इलाहाबाद से बैठा या लखनऊ से,'' कंडक्टर की दलील थी, ''आपको इलाहाबाद से सहारनपुर तक का ही टिकट पेनल्टी देकर लेना पड़ेगा.''

ऊपर की बर्थ पर एक सज्जन बड़ी देर से इनकी बातें सुन रहे थे. उनसे चुप न रहा गया. नीचे उतरते हुए वे से बोले,

''कृपया मेरे सामान का ध्यान रखिएगा, मैं अभी दस मिनट में वापस आ रहा हूं.'' और चले गये.

वे थोड़ी देर बाद लौटे और बच्चे के पिता को एक टिकट लक्सर से सहारनपुर तक का थमाते हुए कंडक्टर से बोले, ''यह बच्चे का टिकट है. बच्चा तो लक्सर से बैठा है, अब आप चाहें जो करें.'' बच्चे के माता-पिता ने कृतज्ञता से उनकी ओर देखा. उधर कंडक्टर को इस तरह मुंह की खाने और रिश्वत न ले पाने की ऐसी निराशा हुई कि वह लज्जित होने की बजाय विवेकहीन होकर बड़बड़ाता हुआ चला गया. □

''मेरे यहां तो सिर्फ एक ही पलंग है?''

''कुछ ज़्लोट्या उधार दे दो?''

''चालीस हजार ज़्लोट्या खेल गये?''

''तिरतालीस हजार. पता नहीं कैसे बिलकुल पता नहीं. मैं सोचता था मैं स्वयं को जानता हूं, लेकिन अब यकीन हो गया कत्तई नहीं जानता. समूचा आधुनिक मनोविज्ञान फूंक भर धुएं से ज्यादा कुछ नहीं. किसी भूत या राक्षस ने मुझे वश में कर लिया होगा. अब मैं समझा हूं तुम प्रेतों के विषय में क्यों लिखते हो. यह महज लोककथा नहीं, सच है. यार, कम से कम दस ज़्लोट्या तो दे दो.''

''मेरे पास दस ज़्लोट्या हैं नहीं. खैर, आज रात आप मेरे कमरे में सो सकते हैं.''

''क्यों? कहीं बाहर जा रहे हो? चलो, ठीक है. दो रात से न तो सोया हूं न कुछ खाया है. सिगार के लिए कम-से-कम तीन ज़्लोट्या ही दे दो. अच्छा सुनो, मैं अकेला तुम्हारे कमरे में नहीं जाऊंगा—अपनी मकानमालकिन से मेरा परिचय तो कराना ही होगा, कहीं वह मुझे चोर न समझ ले. जब पांसे उलटे पड़ रहे हों तो कुछ भी हो सकता है.''

''चलिये, थोड़ी-थोड़ी काफी पीते हैं.''

''क्या कह रहे हो? मेरे पैर लेकिन टूट रहे हैं. चलो, चलें. मुझे अक्सर लगता था यह दिन आयेगा. ठीक ही हुआ. सब कुछ किसी पिशाचिन की शरारत है—नहीं तो कहां है भगवान? अब मैं क्या करूंगा? धन के बिना काम चला लेने में बड़ा माहिर था मैं, लेकिन अब सारी अक्ल खोखली हो गयी. फिर से कैसे शुरू करूं? थोड़ा भी साहस होता तो खुदकुशी कर लेता.''

''शायद आप दोनों के बीच फिर से समझौता हो जायेगा.''

''कोशिश करो. तुम्हारी बड़ी कद्र करती है. दरअसल, जो जिंदगी मैं जी रहा था वह मुझे ले मरी. कौन किसी स्त्री के संग रोजाना चौबीसों घंटे रह सकता है? मुझे अकेलापन खलने लगा. कोई कुंवारा कई प्रेमिकाओं से दोस्ती बनाये रखकर भी अपने आपको संभाल सकता है. त्सुत्सिक, तुम कभी ब्याह मत करना. उससे ऐसे बचना जैसे आग से. हां, बाप बनने की इच्छा हो तो अलग बात है.''

''कत्तई नहीं.''

''शॉपेनहावर सही कहते थे. मानवी माया—ह्यूमन ट्रेजेडी—को जारी रखना अंधी लालसा है. सौभाग्य से वह इतनी उमरयाफ्ता थी कि गर्भ धारण नहीं कर सकती थी. मैं अपने वीर्य से स्टोरकीपरों, चौकीदारों, कोचवानों और रंडियों की पीढ़ी पैदा करना नहीं चाहता. मैं कुछ साल और जीना चाहता हूं और फिर खेल खत्म हो तो हो. लेकिन अभी क्या करूंगा? कहीं वे मुझे वृद्धाश्रम न पहुंचा दें? या मैं ही कोई अपराध कर बैठूं कि जेल में रहना पड़े! लेकिन कौन-सा अपराध करूंगा? क्या वेल्वीदीर महल को आग लगा दूंगा?''

हमने काफी पी. डा० बीबर घूंट लेते, फुसफुसाते, आंहे भरते गये. उन्होंने गंदे रुमाल से माथे का पसीना पोंछा. मैला सूट पहने, गंदे बदन, बिना शेव किये, एक आंख आधी बंद दूसरी पूरी खुली रखे वे मेरे सामने बैठे थे. नाखूनों में मैल भरा था. अपनी जेब से उन्होंने सिगार का एक टोंटा निकाला, सुलगाया, और घनघोर बदबूदार धुआं फूंका.

''जुआ खेलने की ऐसी क्या पड़ी थी?'' मैंने पूछा.

''तुम नहीं समझ सकते. इस ब्रह्मांड को चलाने वाली अदृश्य ताकतों के आगे किसी का बस नहीं चलता. तुम मानो, न मानो, अपनी उंगली पर गेंद नचा जहां मन आये फेंकने की इच्छा चल पड़ती है. और फिर जब गणित के नियमों से टकराओगे वे तुम्हारा मखौल उड़ायेंगे ही. मैं पंद्रह सौ ज़्लोटी जीत चुका था. एकाएक पांसा पलट गया. किस्मत में यकीन करते हो ना?''

''मैं सभी रहस्यों और परा-घटनाओं में यकीन रखता हूं.''

''ठीक करते हो. तर्कबुद्धिवाद, यानी रेशनलिज्म, मनुष्यजाति की बद्तरीन बीमारी है. 'तर्क' सृजन को, यानी इवेल्यूशन को, बिलकुल उलट देगा. मानव इतना चतुर हो जायेगा कि वह प्रजनन, खानपान या शौच सब भूल जायेगा. उसे शायद मरना भी सीखना होगा.''

डा० बीबर हंसे और फुनफुनाये, उनके काले पड़े दांत बाहर निकल आये. ''मुझे लगता है'', वे बोले, ''शायद साल्त्शे मुझे माफ कर देगी.'' □

साहब घर पहुंच चुके हैं...

■ शरद चंद्रा

हाल ही में बंबई से आने वाली राजधानी एक्सप्रेस से आने वाली किसी महिला को लेने मैं स्टेशन पहुंची तो सूचना मिली कि गाड़ी के पच्चीस मिनिट देर से आने की संभावना है. किताबों का स्टॉल अभी खुला नहीं था. खाली बैठकर समय निकालने की आदी न होने के कारण मैं प्लेटफार्म पर ही चहल-कदमी करने लगी. दिमाग बीच-बीच में प्रसारित छोटी-बड़ी सूचनाएं बड़े ध्यान से सुनने लगी... 'ध्यान दीजिए! बंबई से आने वाली राजधानी एक्सप्रेस निर्धारित प्लेटफार्म नं०-6 पर न आकर नं०-7 पर आ रही है। यात्रियों से निवेदन है कि प्लेटफार्म नं०-7 की तरफ प्रस्थान करें.'' मेरा काम एड़ियों पर पूरा घूम जाने से ही चल गया. दोनों प्लेटफार्म आमने-सामने हैं. मुड़ने पर देखा एक स्थान पर बड़ी भगदड़-सी मच रही है, कोई माला लेकर खड़ा है, कोई कैमरा. कुछ लोग पत्रकारों को चायपान करा रहे थे, कुछ उन सबके ऊपर ध्यान रखने में अतिव्यस्त थे. '... श्री चिरंजीलाल माथुर, श्री चिरंजीलाल माथुर जी एम.पी. साहब को लेने आए हुए हैं, कृपया वापस लौट जाएं. एम.पी. साहब प्लेन से आकर, घर पहुंच चुके हैं! सेयोगवश उस वक्त मेरी आंखें इस स्वागतपार्टी के बीच में दो मालाएं हाथ में लेकर बड़े इतमिनान से खड़े हुए एक सज्जन पर ही थीं. क्योंकि पान चबाने में उनका मुंह इतनी मेहनत कर रहा था कि मैं सोच रही थी कि उसके अंदर उस बैचेनी में पिसता पत्ता बनारसी है या सादा. इस सूचना के बाद अचानक वह मुंह बंद हो गया और कोई 2-3 मिनिट में मालाएं, चाय, पत्रकार सभी गायब हो गये. बेचारे चिरंजीलालजी पर मुझे हंसी भी आ रही थी और दया भी. □

श्रद्धा का ताजमहल

मैं कामना करती हूं कि आप मुझे गर्व कर सकने के अवसर जीवन भर देते रहेंगे. आप पर हुए हमले पर मैं क्या कहूं? कैसे संवेदना या सांत्वना प्रकट करूं? मैं समझ नहीं पा रही ....

☐ प्रेम कुमार

जन्म: 3 फरवरी, 1952
विविध पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित व प्रशंसित. चार संदर्भ ग्रंथ व तीन संपादित पुस्तकें प्रकाशित. 'एक बूढ़ा रौशनदान' (कहानी संग्रह)
संप्रति: धर्मसमाज कालिज, अलीगढ़ (उ.प्र.) के हिंदी विभाग में प्राध्यापक

कल के समाचार में आप पर दागी गयी गोली का समाचार
इतने वर्ष बाद आपके बारे में समाचार पत्र से कुशलता
की कभी कल्पना नहीं की थी. पहले तो मैंने केवल शीर्ष
एक नजर डाली और आगे बढ़ गयी. दरअसल राष्ट्रों, राष्ट्रा
प्रधान मंत्रियों पर प्राणघातक हमलों के समाचार इतने आम हो गये
अब प्राध्यापक पर प्राणघातक हमले का समाचार पढ़ने की
जिज्ञासा नहीं जगा पाता. पूरा समाचार पत्र पढ़ चुकने पर ला
पठनीय सामग्री बड़ी जल्दी चुक गयी है. दोपहर में अकेले पड़े
काटना मुश्किल हो गया. पतिदेव और दोनों बच्चे अपने-अपने का
पढ़ने को कोई अन्य मसाला पास न था. हार-झकमारकर सम
दैनिक फिर पढ़ना शुरू कर दिया. तभी आप वाले समाचार के
अपने शहर का नाम देखकर पढ़ने की उत्सुकता जगी. एक काल
दस-बारह लाइनों के उस समाचार को शुरू से अंत तक पढ़
आपका व कालिज का नाम बार-बार घबराहट के साथ पढ़ा. उस
को जिसमें आपके सकुशल होने की बात थी, तबसे अब तक मैं बा
आपकी इस घटना से मुक्त नहीं हो पा रही हूं. वर्षों की स्मृतियों के
अचानक एक साथ जीवित हो उठने के कारण मैं सिहर-सिहर जा
कल से आपको पत्र लिखने का साहस जुटा रही हूं. लिख सकी तो आ
हाथों में पहुंचा यह मेरा दूसरा पत्र होगा. आप विश्वास रखें कि यह
आपको पहले पत्र की तरह उद्विग्न नहीं करेगा, इसे लौटाकर मुझ
पहुंचाने के लिए आपको मानसिक यातना से नहीं गुजरना पड़ेगा

मैं सच कह रही हूं, आप पर हुए हमले के समाचार को पढ़क
बहुत-बहुत खुश हुई थी. यह जानकर और भी खुश कि इस तर
हमले पहले भी परीक्षाकाल में आप पर होते रहे हैं. पति के आने
प्रतीक्षा न कर पाने के कारण, आस-पड़ोस में घंटों सबको पागलों
तरह पढ़वाती घूमी थी वह समाचार. सर, एक बार फिर आपने मुझे
पर गर्व करने का अवसर दिया था. मैं आश्वस्त हुई कि इतने वर्षों में
से बदलते जीवन मूल्यों के बीच आप अभी एक सेंटीमीटर भी नीचे
उतरे हैं. वैचारिक स्तर पर आपने अपने को अपरिवर्तित और जिंदा
है. आप झुके या टूटे नहीं है. मेरी आंखें डबडबा आयी थीं, यह सोच
कि मेरे सर यही डिजर्व करते हैं. उनके साथ ऐसा ही होना चाहिए
उन पर हमला होना चाहिए, उन्हें सकुशल भी होना चाहिए.

सर, आज जैसे-तैसे आपसे कुछ कहने का अवसर मिला है. अव
गवां देनेवाले को जीवन भर पछताना पड़ता है. बार-बार अवसर दे
लिए प्रकृति बाध्य नहीं है. आपके आशीर्वाद से मैं एक सुखी सं
गृहणी का जीवन जी रही हूं. दो प्यारे-प्यारे बच्चे हैं. सीधे, समझ
पति हैं, ठीक-ठाक नौकरी है. छोटा-सा घर है. कपड़े हैं. कुछ गहने
साधन हैं, सुविधाएं हैं. बहुत बैंक बेलेंस तो नहीं है, पर ठीक से खा
लेते हैं आज के युग में एक औरत इससे अधिक और क्या सुख चा
होगी? मैं अपने आपको इससे बहुत अधिक संपदा की स्वामिनी मा
रही हूं. कभी व्यक्त नहीं किया सर, पर आज मैं छिपाऊंगी नहीं. ल
को अंधेरी संकटभरी रातों में जिंदा अथवा मृत मां-बाप या अ
आत्मीय संबंधों के सपने आते हैं, परंतु सर, मेरे सामने दिग्भ्रमित
में सदैव आपकी आकृति आकर खड़ी हो जाती है. कानों में आपके श
गूंजने लगते है. आज मैं सोचती हूं कि यदि आप मेरी ज़िंदगी के रास्ते
आये होते तो मेरा अतीत और भविष्य क्या होता? आपसे मिलने के
सर, मैं अपनी हर उपलब्धि को आपकी कृपा मानती रही हूं. अकारण
गयी कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रकट न करने को मैं पाप मानती हूं सर!
आपने कभी कहा था कि शास्त्रों में हर पाप का प्रायश्चित है, कि
कृतघ्नता का कोई प्रायश्चित नहीं. मुझे ठीक याद है न सर? मैं सम
हूं कि आदमी के मन से छोटे-से-छोटा प्रभाव भी मरते दम
हटाया-मिटाया नहीं जा सकता. कोई अगर हटाने-मिटाने का अभि
करे तो अलग बात है. आपको याद हो. न हो; मेरे पास उन दिनों

एक-एक पल एक-एक शब्द आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षित है. सर, आपके उन दिनों की स्मृति दिलाकर कोई लाभ भले ही मैं न पहुंचा पाऊं परंतु आश्वस्त हूं कि आपका कोई अहित मेरे इस आत्मस्वीकार या पत्र लेखन से नहीं होगा. बस, आप नाराज मत होना सर. चेहरे पर उदासी के भाव मत लाना. वैसे क्या आप अब भी उसी तरह झुंझलाते, नाराज होते हैं सर? इस समय भी आपकी झुंझलाहट और नाराजगी को याद करके मुझे बहुत डर लग रहा है. काश, अपने पत्र को पढ़े जाते समय के आपके चेहरे के भावों को मैं देख पाती!

सर, आपसे कभी जिक्र नहीं किया. घर में पढ़ाने के लिए प्रवेश करने के साथ ही कर्फ्यू लग जाया करता था. पापा बेचारे पुराने समय के चौथी पास परचूनी की दूकान से गृहस्थी का पालन पोषण करनेवाले. मां ग्रामीण संस्कारों वाली अशिक्षित वृद्धा. आपकी 'प्रोफेसरी' का आतंक उन पर इतना अधिक था कि जब तक आप पढ़ा रहे होते, वे अंदर फटकते तक नहीं थे. मेरे एक मात्र भाई ने जो कुछ आपके बारे में सुन रखा था, उसके कारण बैंक में ब्रांच मैनेजर होने के बावजूद आपका बेहद सम्मान करता था. उसकी पत्नी की हालत के बारे में जानकर आपको जरूर हंसी आयेगी. एक दिन आपके आने से जरा पहले घर पर भैया के दोस्त सपत्नीक आये थे. भाभी उनके लिए ट्रे में चाय नाश्ता सजाकर ला रही थीं. तभी आपने बड़ी तेजी से अपने रोज के अंदाज में दरवाजे के भीतर कदम रखे. भाभी घबरा गयी. मुंह फेरने व घूंघट खींचने के भयभीत प्रयास में चाय की ट्रे उनके हाथ से गिर गयी थी. उस दिन आपके पढ़ाकर चले जाने के बाद भाभी ने जब उस घटना की वास्तविकता बतायी, सब देर रात तक हंसते रहे थे. डरती तो मैं भी बहुत थी सर, लेकिन शुरू में ऐंठे-ऐंठे आपके घर में आने, गुमसुम रहने, तने बैठने, घड़ी देखकर पढ़ाकर लौट जाने के ढंग पर मुझे बहुत गुस्सा आता था. खीझ होती थी. झुंझलाहट आती थी. मेरी कुछ और सहेलियों को भी अध्यापक पढ़ाने आते थे, पर इतनी ऐंठ और रौब का जिक्र मुझसे किसी ने नहीं किया. कालिज जीवन से मेरा नाता नवीं कक्षा के बाद छूट गया था. पढ़ाने आनेवाले व्यक्ति का वह व्यवहार मुझे बहुत अप्रीतिकर और असह्य लगा था. मैंने दो-तीन दिन के बाद ही आपको कष्ट पहुंचाने की बात मन में सोची थी. पहले सोचा आपसे पढ़ाने आने की मना कर दूं, तो भय व तनाव भरे एक घंटे से मुझे मुक्ति मिल जायेगी. घर वालों के भय से निर्णय शीघ्र क्रियान्वित न हो सका. महीनों की मेरी झिक-झिक के बाद भैया आपको पढ़ाने के लिए ला पाया था. उसने बताया था कि आप ट्यूशन नहीं करते. एम.ए. के विद्यार्थी को ट्यूशन पढ़ानेवाले अध्यापक शहर में ज्यादा नहीं थे. किसी से उसे पता लगा कि आप पड़ोस में रहते हैं. मकान मालिक से कहलवाकर आपको बुलाया जा सकता है. भैया ने पहले आपके मकान मालिक को तैयार किया, तब कहीं बड़ी मुश्किल से आपको. अगर प्रथम वर्ष की परीक्षा में अपने आप मेरे पचपन प्रतिशत अंक न आये होते और भैया के कुछ मित्रों ने ट्यूशन पढ़वाने की सलाह न दी होती, तो मैं कब का भैया से कह देती कि मत करो किसी की खुशामद. मैं पहले की तरह अब भी बिना किसी के पढ़ाये कम से कम द्वितीय श्रेणी प्राप्त कर लूंगी. जीवन में प्रथम बार प्रथम श्रेणी प्राप्त हो सकने की संभावना और विश्वविद्यालय की तिथि के दिन प्रतिदिन निकट आते जाने की चिंता के कारण भैया ने अपने उत्तरदायित्व और मेरे भविष्य का ख्याल करके आपके घर के बीसियों चक्कर काटे थे. भैया से यह जानकर कि आपने पैसे तय नहीं किये और दस तारीख से शाम चार बजे पढ़ाने आने की कह दिया है, मुझे लगा था कि आप नहीं आयेंगे. आनेवाला तो पहले पैसे तय करता.

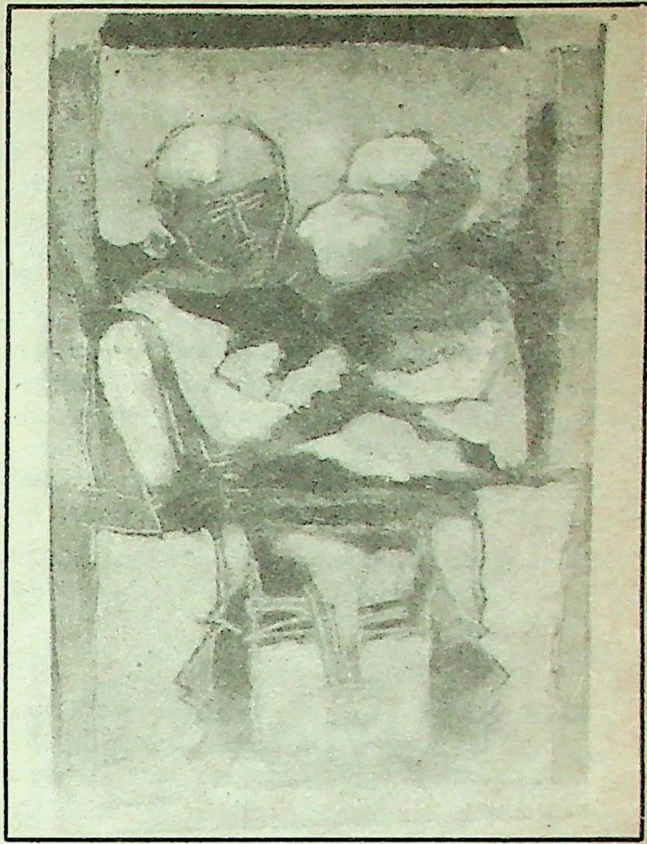

मेरा अनुमान गलत निकला. आप निश्चित तिथि को निश्चित समय पर आये. पढ़ाना शुरू करने से पहले अपनी स्वाभाविक ऐंठ के साथ आपने मेरे तथा घरवालों के लिए आवश्यक निर्देश दिये थे—'देखो, रोज ठीक चार बजे किताब कापी लेकर पढ़ने को तुम्हें तैयार मिलना होगा. पढ़ाते समय किसी का आना-जाना, इधर-उधर घूमना मैं बिल्कुल पसंद नहीं करूंगा. रविवार को मैं नहीं आया करूंगा. वैसे मैं कोशिश करूंगा कि समय से आऊं-जाऊं, तुम्हारा समय नष्ट न हो, पर अगर किसी ने मुझसे कुछ कहा तो मुझे बुरा लगेगा. यह मेरी जिम्मेदारी है कि मैं तुम्हारे साथ न्याय करूं. तुम्हें प्रथम श्रेणी लानी है तो मेहनत करनी होगी, मन लगाकर पढ़ना होगा. उसके बाद मुझसे लिखवा पढ़वाकर देखा था. तब अलग-अलग पुस्तकों व प्रश्नपत्रों के पढ़ाने का क्रम तथा समय निर्धारित किया था. मेरी सारी शिक्षा व्यक्तिगत छात्र के रूप में हुई है. इसलिए आपके अध्यापन की किसी से तुलना तो मैं नहीं कर सकती थी. पर हां, आपका पढ़ाया मेरी समझ में आता था, मुझे प्रतिदिन नया जानने का अनुभव होता था. पढ़ाते समय आपका प्रभाव मुझ पर पड़ता था. आप समय से आते, पढ़ाते, चले जाते. पूरे एक सप्ताह में प्रतीक्षा करती रही कि आप बीच में हसेंगे, बोलेंगें. मेरे बारे में जानना चाहेंगे, अपने बारे बताना चाहेंगे. आपने मेरे न जाने कितने अनुमानों को गलत साबित किया है सर! आप चाहते तब भी मेरे सारे अनुमानों को सही सिद्ध नहीं कर सकते थे. तब नहीं समझती थी, इस क्षण अनुभव कर रही हूं, कितने बेसिर-पैर की बातें सोचा करती थी आपको लेकर. आपके पढ़ाकर जाने के बाद बहुत देर तक वहां से उठने को मन न करता. आपकी छुई चीजों पर उंगलियां फिराकर सहलाती, उन्हें चूसती. रात में पढ़ते समय आपकी बातें याद करके घंटों न पढ़ पाती. हो सकता है मेरे उस आचारण में मेरी निजी जिंदगी के कटु अनुभवों और भूख का हाथ हो. आपको मेरे बारे में भैया ने केवल इतना बताया था कि मैं एक परित्यक्ता स्त्री हूं और भैया मेरी नौकरी लगवाकर स्वावलंबी बनाने के लिए एम.ए. करा देना चाहते हैं. मैं आपको अपने बारे में विस्तार से बताना चाहती थी, आपने कभी अवसर नहीं दिया. कई बार कोशिश की, सफल न हो सकी. आज मैंने असफल न होने का दृढ़ निश्चय कर लिया है सर!

सर, आपको यह नहीं मालूम कि नवीं कक्षा पास करने से पहले मेरी शादी हो गयी थी. यहीं क्यों, आपको मेरे बारे में मालूम ही क्या है भला? मेरी शादी तय हुई. बारात आयी, मेरे ही शहर के एक दूसरे मुहल्ले से. मैं सजी, संवरी, चहकी, हंसी, दुल्हन बनी, भांवरें पड़ीं, विदा हुई. उस घर में मेरा स्वागत हुआ. दिन भर चहल-पहल में रही. बस अपनी शादी के संबंध में इतनी ही यादें मेरी पिटारी में बंद हैं सर! शाम के बाद तो घर में तहलका मच गया था, क्योंकि मेरा पति बना व्यक्ति अचानक रास्ते से गायब हो गया था. कहीं भाग गया था. कई दिन तक लौटाने के लिए की गयी भाग-दौड़ की बातें सुनती रही थी. अंततः एक सप्ताह को हुए मेरे सास-श्वसुर ने रोते बिलखते मेरे सामने सच स्वीकार किया था-'बेटी तेरे साथ हमने पाप किया है. सोचा था, शादी कर देंगे तो वह सुधर जायेगा. परंतु बेटा अब वह कभी नहीं सुधरेगा. दिल्ली में जहां वह नौकरी करता है, नालायक ने किसी और लड़की से पहले से शादी कर रखी है. अब हम और तो कुछ नहीं कर सकते बेटी, पर हां, आज के बाद यह सारा जेवर, दहेज, में आया, सब सामान तुम्हारा है. तुम्हारे खाने-पीने, रहने-सहने की जिम्मेदारी हमारी है.' सर, तब मैं बच्ची थी. सब रो रहे थे इसलिए थोड़ी बहुत देर मैं भी रोयी-पीटी. एक-दो बाद पिता के घर वापिस चली आयी. बाद में सोचा करती थी, किसी सुधारने के लिए एक लड़की के जीवन से प्रयोग की सुविधा कित आसान और सस्ती है सर? कुछ दिनों सहानुभूति और दया को पड़ा. एक साल में ही मैं जैसे बहुत बड़ी हो गयी थी. मां-बाप की भैया-भाभी की उकताहट मुझे न मिली होती तो मैं आगे पढ़ने का कभी न कर पाती. परित्यक्ता को पितृगृह में रहने की सुविधा किन और हालातों पर मिल सकती है, मैं बहुत अच्छी और सही तरह जान हूं सर. प्राइवेट हाईस्कूल किया. इंटर किया. बी.ए. का फार्म भरते तक म्यनिसपल बोर्ड की प्राइमरी पाठशाला में नौकरी मिल पढ़ने-पढ़ाने के अतिरिक्त मेरी जिंदगी का कोई अर्थ नहीं रह गया। तब. कहीं आना-जाना मिलना-जुलना वर्षों पहले बंद कर चुकी अपने बारे में दूसरों से प्रामाणिक टिप्पणियां व जानकारियां सुनकर के दिनों में मैं रात-रात भर रोया-छटपटाया करती थी. मेरे दुश्च होने, किसी अन्य से संबंधों के कारण पति को छोड़ आने, धन-जे दबाकर बैठ जाने और अब खुले रूप में वेश्या का जीवन बिताने की

सोफा

□ 'भृंग' तुपकरी

सुबह उठा तो झुटपुटा था. मैंने दरवाजा खोला, तो आंगन के एक कोने से आवाज आयी, "देख रहे हो अपने निकम्मे बेटों की करतूत? मुझे जान-बूझकर उन्होंने कल रात बाहर ही छोड़ दिया! कल रात देर से हल्की बारिश हुई थी. बारिश तो हल्की थी; मगर जगह-जगह टूट-फूट गया हूं ना, इसलिए मेरे भीतर तक पानी आ घुसा है! मैं भीतर बाहर सब तरफ से भीग गया हूं! मुझे उठवा लो यहां से!"

मैंने हैरानी से आंखें फाड़ फाड़कर देखा. यह मेरा पुराना सोफा था. मैंने उसे समझाने की कोशिश में कहा, "अरे भाई, कल अपने यहां उत्सव था न? अपने छोटे सपूत का जन्मोत्सव! कई मेहमान आये थे. खाना-पीना हुआ था. ये नौजवान ऐसा हुड़दंग मचाते हैं कि क्या कहें? लगा, कहीं तुम्हारे पुरानेपन को और भी चीरफाड़ न डालें. इसीलिए मैंने ही उनसे कहा था कि सोफे को बाहर निकाल दो."

सोफे ने मुझ पर व्यंग कसा, "क्यों झूठमूठ मुझे बहलाना चाहते हो? क्या मैं बहरा हूं? क्या तुम्हारे छोटे बेटे ने एतराज नहीं उठाया था कि अगर मैं भीतर रहा तो सबके आगे घर की पोल खोलकर रख दूंगा?.... मुझे तो लगा था कि आप अपने उस नासमझ और नालायक बेटे को डांटकर कहेंगे कि जिसकी गोद में पलकर तुम सब बड़े हुए हो, क्या वह तुम्हारे घर की पोल खोल सकता है? मगर नहीं, आपने भी उनकी हां में हां मिलाते हुए कह दिया था, 'लड़का ठीक कहता है. इसने भीतर कितनी सारी जगह घेर रखी है. इसके साथ कुछ कुर्सियां भी उठाकर बाहर रख देंगे. भीतर जगह भी ज्यादा निकल आयेगी और घर की शोभा भी बटाई में नहीं पड़ेगी.' आपका बेटा ऐसा कहता तो कोई बात नहीं थी, क्योंकि वो हमारी कल्चर को नहीं जानता. मगर आप... क्या आप भी अपनी कल्चर भूल गये?"

"मगर मैंने उससे कहा था न कि आनेवाले लोगों के बच्चे-कच्चे बाहर ही बैठ जायेंगे. सोफे पर नयी चादर डाल देना." मेरी जुबान कह रही थी, मगर आंखें नीची हुई जा रही थीं.

"नयी चादर?" और सोफा हंस पड़ा, "मगर वह मेरा सम्मान बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि मेरी पुरानी शक्ल को छिपाने के लिए." ...और फिर सबने मिलकर चंद नयी कुर्सियों के साथ उसे उठाकर बाहर रख दिया था.

बात उसकी ठीक थी. नयी कुर्सियों के बीच उसे इसीलिए रखा गया था कि उसका ऐब छिपा रहे. काश, कि आजकल के नौजवान पुरानेपन को 'ऐब' नहीं मानते!

"क्या मेरा पुरानापन कोई ऐब है?"

"नहीं भाई, कम से कम मैं तो ऐसा नहीं मानता."

"तो फिर अपनी बात, अपने कल्चर की बात आपने उन्हें समझायी क्यों नहीं?"

"मगर मेरी बात यहां सुनता कौन?"

"तो यों कहो ना कि तुम कहकर भी उनको अपनी या कल्चर की बात समझा नहीं सकते; और वे बिना कहे ही आपसे अपनी बात मनवा लेते हैं?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं."

"तो और कौनसी बात थी कि जब सब मेहमान चले गये, तब नयी चादर और नयी कुर्सियां तो हटा ली गयीं, केवल मुझे उठाना जरूरी नहीं समझा गया?"

मैंने बगलें झांकते हुए उससे कहा, "चिंता न करो. मैं अभी तुम्हें उठवाने का इंतजाम करता हूं. मुझ अकेले से तो तुम उठने से रहे. आखिर पुराने हो ना. कितने भारी हो तुम!"

"हां, आजकल की बहुतेरी चीजों की तरह हल्का तो हूं नहीं, मगर टिकाऊ भी कितना हूं, क्या यह भूल गये?"

"कैसे भूल सकता हूं भाई. आधी से ज्यादा उम्र तो तुम्हारे ही साथ काटी है! बल्कि अब भी तुम पर ही तो सोता हूं मैं."

"इसीलिए शायद तुम्हारे 'निकम्मे' बच्चे अपने निकम्मेपन को नजर अंदाज करके हम दोनों को ही निकम्मा मान बैठे हैं. निकम्मे, बेवकूफ कहीं के!" और जब मेरा ही सोफा मेरे ही लहजे में मेरी ही बात मुझसे कहकर हंसने लगा तो शर्म से अपना माथा झुका लेने के अलावा मेरे पास और कोई चारा नहीं था. □

केवल बाहर के लोगों ने ही नहीं, मेरे करीबी रिश्तेदारों ने भी वर्षों कहीं-फैलायी हैं सर! क्या मेरे बारे में कभी ऐसा कुछ आपने भी सोचा है सर? नहीं, आप ऐसा नहीं सोच सकते. मैंने किसी को कभी कोई सफाई नहीं दी सर, आज आपसे पूछ रही हूं, इस तरह के झूठ और गंदेपन को पता नहीं क्यों, सारी उम्र ढोते रहते हैं लोग? इसमें शतांश भी सच नहीं था सर! जो सच था, उसे आज आपको, केवल आपको पहली बार बता रही हूं. मेरे बारे में दमतोड़, दुर्नाम प्रचार करनेवाले वे ही लोग थे, जिनकी अनुनय-विनय, प्रलोभन या धमकी से अप्रभावित रहकर मैंने उन्हें स्पर्श की छूट या शरीर का सुख नहीं दिया था. इन याचकों में मेरे निकट संबंधी, करीबी रिश्तेदार पीछे नहीं थे सर. चाहकर भी मैं उस आतंक और यातना से आपको अवगत नहीं करा सकती जो मैंने परित्यक्त जीवन के प्रारंभिक सात सालों में झेला था. इस सबका एक लाभ अवश्य हुआ सर, कि मुझे आदमी की सूरत से घृणा हो गयी. आदमी से भयंकर डर लगने लगा. एकदम सीमित, "संकुचित और एकाकी जीवन की अभ्यस्त हो गयी. इसका यह मतलब कतई नहीं कि मेरे अंदर तूफान नहीं उठता था या आकांक्षा नहीं जगती थी. यह सब होता था सर, परंतु अनदेखे हादसों के डर ने मुझे बहकने-फिसलने नहीं दिया. एक बार फिसली भी तो वह फिसलन मेरी उपलब्धि बन गयी. आप कहेंगे, मैं झूठ बोल रही हूं. आपको धोखा दे रही हूं. अगर ऐसा था, तब मेरे द्वारा आपको दिया गया वह पत्र क्या था?

मैं आपसे झूठ नहीं बोल सकती सर. यह शतप्रतिशत सच है कि आपको वह पत्र देने से पहले मैं बहुत उन्मत्त-उत्तेजित रही थी. बहुत सोच-विचार और हिम्मत के बाद, पंद्रह दिन आपकी तरफ से पहल की प्रतीक्षा में थक-हारकर मैंने वह पत्र आपको दिया था. ट्यूशन पढ़ने-पढ़ाने के माध्यम से प्रेम-प्रदर्शन और शरीर प्राप्ति के बीसीयों किस्से मैंने सुने थे. जो किताबें पढ़ती या सिनेमा देखती, उनमें एक लड़का होता था एक लड़की होती थी. दोनों जवानी के नशे में चूर एक दूसरे को पाने के लिए बेताब दिखते थे. शुरुआत किसी विशेष घटना या निरंतर नैकट्य से होती. वे मौके-बेमौके एक-दूसरे को चूमते-चाटते, साथ-साथ घूमते-नाचते. बीच में कुछ विरोध होता या मुश्किलें आतीं. छल, बल या कौशल से, किसी ने किसी प्रकार उनमें से एक मर जाता. जिंदा रहते तो दोनों मिल जाते. इतना सब रोज-रोज देखने-सुनने के बाद मुझ जैसी युवती उससे भिन्न और क्या कदम उठा सकती थी? आप तटस्थ होकर खुद सोचें. पंद्रह दिन आपके साथ बैठकर मैंने जाना कि आप बहुत अधिक भयंकर या डरावने नहीं हैं. पत्र देने के बाद मुझे लगा कि आपने उस समय तक की पुरुष संबंधी मेरी पूर्वधारणाओं को बदल दिया है. मैंने केवल इतना सुना-देखा था कि पुरुष अथवा नारी के अंदर 'आई लव यू' कहकर तूफान उठाया जा सकता है. मुझ पर जैसा लिखा जा सका, पूरे पांच पृष्ठों का लंबा पत्र मैंने पूरी रात जागकर आपको लिखा था. औरतों से सुने अनेक प्रिय से प्रिय और महान से महान संबोधनों तथा गद्य-पद्य की पंक्तियों के सहारे मैंने अपनी आकांक्षा उसमें व्यक्त की थी. आप अद्वितीय है, बहुत अच्छे हैं, सुंदर है. आपकी बहुत याद आती है. आपके बिना मैं नहीं रह सकती. आप मेरे मालिक हैं, देवता हैं मेरे जीवन की नैया के खिवैया हैं...' अब वह सब याद नहीं, कैसे भर गये थे तब पूरे पांच पृष्ठ? इधर-उधर जरा भी खाली स्थान नहीं छोड़ा गया था. तीन दिन किताबों में छिपाए फिरने के बाद, जिस डर और आशा के साथ उस पत्र को मैंने आपके हाथों तक पहुंचाया था, आज भी याद करके सिहर रही हूं. मेरे मन को पंख लग गये थे. पलकों ने आंखों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था. अचीन्हे स्पर्श का सुख शरीर को रोमांचित किये डाल रहा था. पूरी रात और अगला चार बजे तक का दिन दिवास्वप्नों और अनुमानों के सहारे गुजरा था. आप निश्चित समय आ गये थे. घर में प्रवेश करते समय मैंने एक पल आपका चेहरा देखा था. वह बता रहा था कि आप रात भर सो नहीं सके हैं. उदास, बुझे, तनावग्रस्त-आप उस दिन अपने स्वाभाविक रूप से भिन्न दिख रहे थे. मेरा जुनून आपको देखते ही उतर गया था. अनजाने हादसे के डर से शरीर जड़वत हो गया था. निगाहें नीचे किये-किये आपने किताब उठाकर खोली थी. मैंने नोट करने के लिए कापी खोलकर उसके बीच में डॉट पैन लगा लिया था. उसी तरह बैठे कुछ कहने की शुरुआत आज आप और दिनों की तरह तुरंत नहीं कर पा रहे थे. आप कुछ कहना चाह रहे थे, मैं बहुत-बहुत सुनना चाह रही थी. निगाहें न आप उठा रहे थे, न मैं उठा पा रही थी. दो-तीन बार धीमे-धीमे खांसकर आपने मेरा पत्र अपनी जेब से निकाला था. कुछ कहने से पहले मेरी उंगलियों की तरफ बढ़ाया था—'इसे अपने हाथ से तुरंत फाड़ दो! अनु, तुम बहुत भोली हो! इसका परिणाम नहीं सोचा? ऐसे कभी किसी को पत्र नहीं देना चाहिए. मैं

सिर्फ एक रोटी

□ तरसेम गुजराल

नीरज बाबू ट्रांसफर होकर शहर में नये-नये आये थे. दो दिन एक मित्र के पास ठहरे रहे. सबसे बड़ी तलाश थी किराये के एक मकान की. किराया भी कम हो ताकि वे होटल में रोटी का खर्च निकाल कर कुछ घर भेज सकें. मकान में वे ज्यादा कुछ नहीं चाहते थे. सिर्फ एक कमरा. रसोई अलग हो तो वे खाना खुद भी बना सकते हैं. एक बाथरूम आदि. बस.

अचानक उनकी नजर अखबार में छपे एक विज्ञापन पर गयी. लिखा था: 'किराये के लिए खाली है एक कमरा बजाये किचन बाथरूम. किराया कुछ ही कम.'

नीरज बाबू कमरा देखने के लिए चले गये. कमरा एक पुरानी बस्ती में था. पेचदार गलियां से गुजरने के बाद. मकान काफी पुराना था. कमरा छोटा-सा था. पुराने किस्म की छत शहतीर और सिरकियों वाली. एक तरफ से झुकी हुई. खिड़की सिर्फ एक ही. वह भी छोटी सी.

"किचन कहां है?" उसने आंगन में निकलकर वृद्ध मकान मालिक से पूछा.

"जे रहा!" एक ढारे के आगे एक ट्रांजिस्टर कंपनी का बड़ा-सा बोर्ड खड़ा करके गुजारा किया गया था.

"और बाथरूम?" नीरज ने चिढ़कर पूछा.

"जे रहा." बूढ़े आदमी ने उसी बोर्ड को खींचकर आगे के ढारे पर कह दिया.

नीरज को लगा कि उसका विज्ञापन लिखने वाले ने अनपढ़ बूढ़े के साथ मजाक किया है.

"तुम्हें कोई दिक्कत नहीं होगी. चाहो तो अपना कुछ फालतू सामान मेरे कमरे में रख देना."

नीरज घर से बाहर निकल आया.

"पानी साथ वाले मकान से जितना चाहो भर सकते हो. सबीना बड़ी भली महिला है. मना नहीं करती—कभी-कभी एक दो बाल्टी मैं खुद ला दिया करूंगा."

"आखिर सुनूं तो किराया कितना लेंगे आप?" बेहद उकता कर नीरज ने सवाल किया.

"तुम मुझे सिर्फ एक रोटी सुबह और एक रोटी रात को दे देना." □

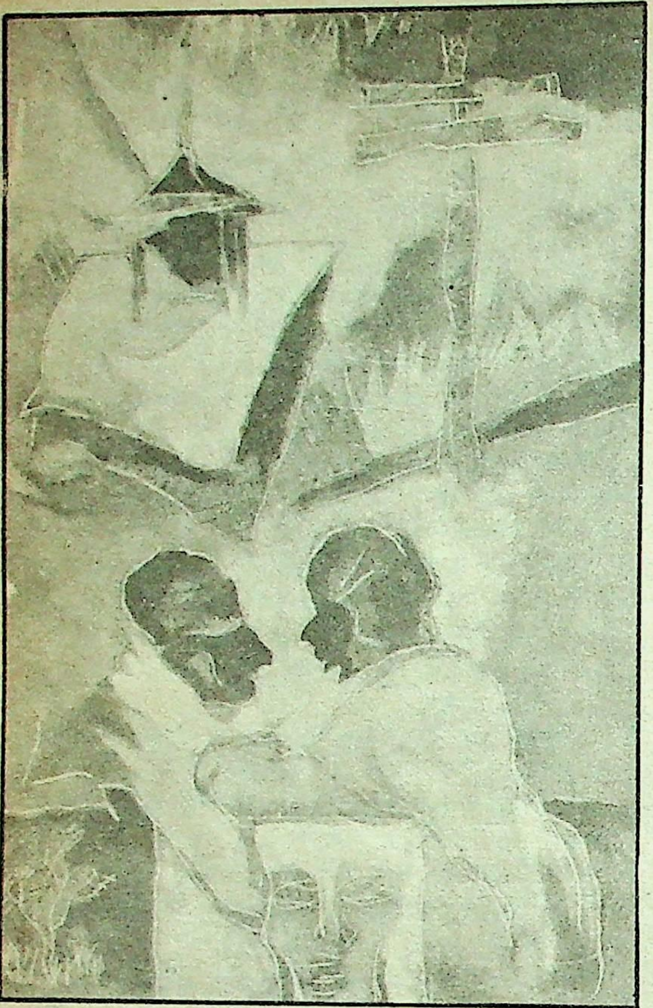

इसका दुरुपयोग भी तो कर सकता था. अनु! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था? पत्र को अपने कापी में रखते समय मैं चुप थी, हैरान थी. मुझे लगा कि आपने मुझे अपमानित किया है, मेरा तिसस्कार किया है.

आपसे अपने मन का एक और पाप आज कह दूं सर, उस क्षण पहली प्रतिक्रिया मुझ पर क्या हुई थी, आप बता सकते हैं? नहीं वैसा तो केवल मुझ जैसी स्त्री ही सोच सकती थी, आप जैसा पुरुष नहीं! सर, बहुत छोटे से कालांश के लिए मेरे नारीत्व ने अपमान और आघात अनुभव किया था. मैंने आपको घमंडी अथवा कापुरुष मान लिया था. आपको गाली देने का मन हुआ था. उस समय आपको अपमानित करने के लिए उठकर जाने का जैसे ही मैंने इरादा बनाया, आपके आगे कहे वाक्यों ने उसे पूरा नहीं होने दिया—'अनु, इससे बड़ा सौभाग्य मेरा क्या हो सकता है कि तुम जैसी शिक्षित और सुंदर स्त्री मुझसे प्रभावित है! उसे मैं अच्छा लगता हूं. किसी स्त्री की यह स्वीकृति पुरुष के जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि होती है अनु, पर...' आप रुके थे. मैंने नजरें उठाकर आपकी ओर देखना चाहा, परंतु गर्दन पहले से कुछ अधिक नीची हो गयी थी. जाने का इरादा कब कपूर बनकर उड़ गया था, कह नहीं सकती. कान आपसे आगे और सुनने के लिए बैचेने हो रहें थे—''पर अनु, तुम्हें शायद यह नहीं मालूम कि मैं विवाहित हूं. दो बच्चों का पिता हूं. घर-गृहस्थी से संतुष्ट हूं. मुझसे तुम्हें क्या मिलेगा? मैं तुम्हें शुभाकांक्षा के अतिरिक्त और क्या दे सकता हूं?' आप फिर चुप हो गये थे. इस प्रसंग को छोड़ने, भूल जाने की कहकर पढ़ाने में लग गये थे. और दिनों की तरह न आप पढ़ा पा रहे थे, न मैं कुछ सुन समझ पा रही थी. आपके प्रश्न से मेरा ध्यान भंग हुआ था—'अनु तुम्हें बुरा तो नहीं लगा? तुम नाराज तो नहीं हो? तुम कहीं घृणा तो नहीं करने लगोगी मुझे?' पूछते-पूछते आप उठ खड़े हुए थे. मैंने नजर उ तो देखा, आप मेरी ओर देख रहे हैं, उत्तर की आशा कर रहे हैं. आ नजरों से दो एक पल टकराकर मेरी दृष्टि वापस लौट आयी थी. कुछ देर खड़े कहते रहे थे—'अनु, गिरने-संभलने के बीच केवल क्षण का फासला है. कोई एक क्षण आदमी को कहीं से कहीं पहुंचा दे कुछ से कुछ बना देता है. क्षण बीता कि सब कुछ बदला. मुझे वि है, जब कभी सोचोगी तो तुम यह महसूस करोगी.' कानों को जब आ शब्द सुनाई नहीं दिये, मैंने निगाह उठाकर देखा. आप जा चुके

सर, इसे आप मेरा अंधविश्वास कहें, तो कह लें. आपके संप आने के बाद मेरे जीवन में विकट परिवर्तन हुए हैं. सुख चैन से परिचय हुआ है. सर, यह संयोग नहीं, तो और क्या था कि उन्हीं दिनों मां-बाप को दोबारा मेरा विवाह करने की जिद्दी बीमारी फिर उ आयी थी. पहले मैं उनके किसी तर्क, अभ्यर्थना या भावना से बिल प्रभावित नहीं होती थी. अपने भाग्य में खुशी नाम की चीज के न होने घोषणा करके उनके प्रस्ताव को पूरा सुनने से पहले ही अस्वीकृत दिया करती थी. उस बार उनका पूरा प्रस्ताव मैंने कई दिन तक संकल्प-विकल्प की यातना झेली. कुछ निर्णय न ले पाने के कारण सं के साथ इस संबंध में आपकी राय मांगी. आपने झटपट घरवालों की को अपना भरपूर समर्थन दिया था. मैंने उसी रात अपनी स्वीकृति शर्त के साथ परिवार के लोगों को दे दी थी, कि सर को सब कुछ प दिखाना बताना पड़ेगा. अगर सर स्वीकृति दे देंगे तो मुझे कोई आप नहीं होगी. उसके बाद जो हुआ सब आपके द्वारा हुआ, आपके सा हुआ. वर्तमान पति आये. आप मिले. बातें कीं. दो दिन आपसे व घरव से उनकी क्या बातें हुईं, यह नहीं मालूम. परंतु यह अच्छी तरह या कि वर्तमान पति ने उस बार मुझसे मिलने पर क्या कहा था. सर, बताया गया था कि उनकी पहली पत्नी शादी के एक माह बाद ही बस दुर्घटना में खत्म हो गयी थी. शादी का उनका कोई इरादा कई तक नहीं हुआ. मेरे पिता व अन्य एक दो रिश्तेदारों के प्रयासों जानी-पहचानी देखी भाली जगह से, शादी कर लेने को वे तैयार हो थे. वे भी दो दिन घर में बड़े शांत और गंभीर रहे थे. चलते सय म मिले, कुछ-बातें की, और बोले—'आपने जीवन में दुख देखे हैं इसी उम्मीद है कि आप सुख की कीमत समझेंगी. आप भाग्यशाली हैं आपको ऐसे अध्यापक मिले हैं. मुझे भरोसा है आप ऐसे व्यक्ति से शि लेने के बाद अपना कर्तव्य और दूसरे की भावनाओं का खयाल सकेंगी.' सर, मुझे सच में उस दिन पहली बार आप पर गर्व हुआ था. तय हुआ. वे विदा हो गये. आर्य समाज मंदिर में दोबारा हुए मेरे वि संस्कार के घरवालों के अलावा अकेले आप साक्षी थे. न कोई परिचि रिश्तेदार. एक घंटे में मैं परित्यक्ता से पत्नी बन गयी थी. आपको है, संस्कार संपन्न होने पर, उठकर मैंने केवल आपके पैर छुए थे आपने मुझे वही सबके सामने पहली और अंतिम बार चूमा था.

आपको याद होगा, उस चुंबन से जुड़ा प्रसंग सर! आप भले ही गये हों लेकिन मैं न अब तक भूली हूं, न भूलूंगी. तब तक चुंबन का आने पर मैं भी अन्य स्त्रियों की भांति लजाने-शर्माने का ढोंग करती तब प्रथम बार मुझे चुंबन की ताकत जानने का अवसर मिला था परीक्षा समाप्त हो चुकी थी. परिणाम निकला. उम्मीद थी कि श्रेणी के लिए मुझे शाबाशी देने स्वयं आयेंगे. चूंकि वह भी अनुमान इसलिए उसे गलत निकलना ही था. कई बार बुलाये जाने पर आप दोपहर आये. आप उसी जगह, उसी कमरे में बैठे थे. आप कह चु कि मेरी मेहनत का फल मुझे मिल गया है. मैं कहना चाहती थी कि केवल आपकी कृपा का परिणाम है. आपकी अपेक्षाकृत कुछ क कमजोर आवाज मेरे कान में पड़ी—'अनु, मैं कुछ बातें तुम्हें ब चाहता था.' मैं समझ न सकी कि कैसे उन बातों के साथ

बहुत-बहुत बातों को बताने का निवेदन आप से करूं. चुप रह गयी.'

'क्या तुम कभी नहीं पूछोगी, अनु, मैंने तुम्हारा पत्र क्यों और कैसे लौटाया? क्या तुम समझती हो कि मेरे अंदर कोई उथल-पुथल नहीं हुई थी?'

सर, मेरे लिए आपका इस तरह से बोलना कहना अप्रत्याशित था. मेरा मुंह खुल नहीं सका था.

'अनु, तुम्हारे पत्र को पाने के बाद मैं पूरी रात नहीं सो सका था. पत्र को तुम्हारे हाथ में लौटाकर देने से पहले क्या-क्या नहीं सोचा था मैंने? मैं पढ़ाने आना बंद कर दूं, परिवार के किसी सदस्य को वह पत्र दे दूं और एक क्षण को यह भी कि क्यों न तुम्हारा आमंत्रण किसी न किसी रूप में स्वीकार कर लूं. परंतु अनु, उस तनावों में कटी रात के किसी हिस्से में यह खयाल जोर पकड़ता गया कि मैं विवाहित हूं, में अध्यापक हूं. मेरा बहकना अपने परिवार और अपने पेशे के प्रति बेईमानी होगी. अनु, मैं मानता रहा हूं कि ईमानदारी को खंड-खंड जीकर मूल्यांकित करना केवल एक भ्रम है. मेरे एक कदम के आधार पर मेरे पूरे वर्ग का मूल्यांकन तुम उम्र भर करती रहोगी. मेरे कारण तुम्हें सारी अध्यापक जाति से घृणा या श्रद्धा हो सकती है. अनु, मैं पत्थर नहीं था, देवता भी नहीं था. मैं एक आदमी था ओर आदमी हूं. तुम्हें समझाकर पत्र लौटा देने का निर्णय मैंने उस रात के उन तनाव भरे क्षणों में ले लिया था.

सर, मैं तब भी चुप रही. मैं साफ देख रही थी कि आप कुछ असहज थे उस दिन. मैं बोल नहीं सकी, पर आपको बताना चाहती थी कि आपको देखकर मैं पुरुषों को घृणा करते जाने के अपराध से बची थी सर! उस दिन भी हृदय के भावों को छुपाकर, बदलकर प्रस्तुत करने की कला से अपरिचित, अनजान आपके चेहरे को देखकर मुझे तृप्ति मिली थी, संतोष हुआ था. मुझे चुप देखकर आपने कहा था—'अनु, क्या आज के बाद अब हम मिल पायेंगे? मिलेंगे भी तो अब इस तरह बैठकर बातें करने का अवसर कभी नहीं मिलेगा. अनु, जो कल था, आज नहीं है. जो अब है, उसे कल नहीं रहना है.'

मैं कितनी नादान थी तब? इस तरह मैंने सोचा ही नहीं. आपके सुना, तो हिल गयी. कुछ कहना चाहा. थूक सटका. जीभ होंठों पर फिरायी. खांसी-मठारी. पर सब व्यर्थ. गला भर आया. टप, टप, टप, टप! सामने मेज पर पड़ती उन बूंदों को आपने देखा. में काबू नहीं रख पा रही थी.

'नहीं, नहीं, ऐसे नहीं रोते, तुम तो पागल हो बिल्कुल.' कहते-कहते आपने बाल सहलाये. पीठ ठोकी. अपनी उंगलियों से चिबुक को सहारा देकर मेरा चेहरा ऊपर किया. कुछ देर मेरी आंखों की ओर देखा. पानी भरी मेरी आंखों से साफ-साफ देखा कि आपकी भी आंखें निर्जल नहीं थी और न जाने क्या विचित्र और अवांछित कह रही थीं. आपके होंठ उसी मुद्रा में मेरी आंखों की ओर बढ़े. मैं चौंकी. मैं कांपी. मैंने चीख पड़ना चाहा. तेजी से अपनी उंगलियों के स्पर्श द्वारा आपके चेहरे को केवल पीछे कर दिया.

सर, उस समय तक मैं चुंबन को प्रेम के आवेश पूर्ण कामातुर क्षणों का एक उत्तेजक भर मानती थी. आपसे प्रथम बार यह जाना कि अलग-अलग क्षण में अलग-अलग व्यक्तियों के होंठों द्वारा शरीर के अलग-अलग हिस्सों के स्पर्श से अनगिनत भावनाएं, संवेदनाएं जगा सकनेवाले चुंबनों के अनगिनत प्रकार हो सकते हैं. यहां भी आपसे झूठ नहीं बोलूंगी. मेरी अल्पज्ञता हो सकती है सर. तब मुझे लगा था जैसे एक पिता अपनी अबोध बच्ची के सामने धीरे-धीरे अपने वस्त्र उतारना चाह रहा है. बच्चों को निर्वसन देखने का बड़ों को अभ्यास होता है सर! किसी अन्य को नंगा देखने के लिए बच्चे भी आतुर-व्याकुल हो सकते हैं. परंतु अपने माता-पिता को निर्वसन होते देख बच्चों की आंखें अंधी-सी हो जाती है न सर? उस छोटी-सी कालावधि में पहले मैंने सोचा कि मेरा स्पर्श आपको कहीं अपवित्र न कर दे. फिर मुझे स्वयं पर क्रोध आया कि मैं आपको नहीं, आपके होंठों को एक स्पर्श तक न दे सकी. वह क्रोध मुझे ग्लानि बनाकर कुढ़ा-घुला डालता यदि आपने आगे जो कहा, वह न कहा होता—'अनु, क्या तुम्हें तुम्हारे पिता ने कभी नहीं दुलारा-चूमा?'

'क्यों नहीं सर!'

'तब?'

'....'

'वैसे मुझे खुशी है. तुम बहादुर हो. मेरे द्वारा तुम्हें विश्वास दिया ही जाना चाहिए.'

मैंने कहना चाहा—'सर, मैं आपको कैसे बताऊं कि आपको मैं क्या मानने लगी हूं?—कह नहीं सकी. मुझे पता नहीं तब क्या हो गया था. आपने मेरी उंगलियों में अपनी उंगलियां फंसाते-उलझाते कहा था—'अनु, यद तुमने मेरी सीमाओं को मानने से इनकार कर दिया होता तो मैं अकेला क्या यह स्तर रख पाता? मेरा यह बढ़प्पन रह नहीं पाता शायद! बस एक आश्वासन चाहता हूं. अपनी इस आस्था और श्रद्धा से मुझे कभी वंचित तो नहीं करोगी अनु?'

मेरे मुंह से अपने आप निकला था—'कभी नहीं सर! कोशिश करूं, तब भी नही. आप मेरे इस विश्वास की पूंजी को मुझसे कभी छीनना नहीं सर! कभी नहीं! नहीं छीनेंगे न सर?'

आप उठकर चलने को तैयार थे. मैं दरवाजे तक आपको छोड़ने आना चाहती थी. आपने रोक दिया था. सर वह कालखंड मेरे मस्तिष्क में अमरत्व पा गया है. अतीत में ऐसे ही किसी कालखंड पर एक शंहशाह द्वारा संगमरमरी पत्थरों के सहारे प्रेम को अमरत्व प्रदान करने के उद्देश्य से बनवाया गया ताजमहल मैंने देखा है सर. संभव होता तो मैं उस कालखंड पर एक ताजमहल बनाकर अपनी आस्था और अपनी

सब्र

□ एल.एल. मीणा

पूरे घर की सफाई के कारण आज भोजन बनने में बहुत विलंब हो गया था. बच्चे बेसब्री से भोजन का इंतजार कर रहे थे. दोनों कुत्तों को भी कुछ नहीं मिल पाया था, जिसमें से एक ज्यादा शरारती होने के कारण बंधा हुआ था और दूसरा टोह ले रहा था इधर-उधर ... उधर भोजन बनना शुरू हुआ नहीं कि इधर बच्चे डट गये थाली-कटोरियां ले कर और इंतजार करने लगे रोटी सिक कर आने का ... पहली रोटी सिक कर आयी तो बच्चे उस पर झपट पड़े. जैसे ही रोटी आती, बच्चे उस पर झपट पड़ते. जिस के हाथ जितना टुकड़ा लगता वह उस को मुट्ठी में दबा कर खाने लगता, शंकित नजरों से अन्य बच्चों की तरफ देखता हुआ कि कोई छीन न ले! इस छीना-झपटी मे छोटे बच्चे को कुछ नहीं मिल पाया था और वह रोने लगा था. बड़े बच्चे एक दूसरे से कहते तो रहे कि तू दे, तू दे, लेकिन देने को कोई तैयार न था ... रोटी सिकने की रफ्तार बढ़ी तो बच्चों की यह छीना-झपटी खत्म हुई. एक स्थिति में जब थाली में रोटी अतिरिक्त हो गयी तो बड़ी लड़की ने एक रोटी उठा कर कुत्ते को दे दी, जो वहां आ कर खड़ा हो गया था. दूसरा बाहर बंधा कूं-कूं कर रहा था. कुत्ते ने रोटी ली, भाग कर बाहर गया बंधे हुए कुत्ते के पास और उस को वह रोटी दे कर वापस आ खड़ा हुआ उसी जगह पर. □

श्रद्धा को अमरत्वं प्रदान कर देती. शब्दों का वह अंतिम आदान-प्रदान मैं भूली नहीं हूं सर.

'22 अक्टूबर को शाम चार बजे आर्य समाज मंदिर में तो आप आयेंगें न? आपको आना होगा सर.'

'आऊंगा अनु, जरूर-जरूर आऊंगा.' आपने मेरे कंधे पर अपना हाथ रखते हुए खड़े-खड़े कहा था. मुझे लगा जैसे एक पुल बन गया था उन हाथों का दो शरीरों के बीच. आंसुओं को थोड़ी देर पहले बोलते हुए मैंने सुना था. एक मन से दूसरे मन तक पहुंचकर संदेशवाहक का काम करते मैंने देखा था. हाथों के उस पुल से बहुत-सी इच्छाएं, बहुत-सी भावनाएं इधर से उधर यात्री बनकर दौड़ने भागने लगी थी. पुल तो सदैव हर स्थिति में अपने धर्म का निर्वाह करता है सर. यह तो लोगों पर निर्भर करता है कि उसको वे क्या-क्या पाने ले जाने का माध्यम बनाते हैं.

'तब सर, मेरी एक प्रार्थना और स्वीकार करें आप!'

'बोलो अनु, बोलो! क्या?'

'सर, उस दिन सबके सामने आपने चरण स्पर्श की अनुमति चाहती हूं और तभी आपसे अपने मस्तक पर एक चुंबन अंकित करने की याचना करती हूं मैं!' कह तो गयी, पर आपके जाने से पहले ही आपके सामने से मैं भाग आयी थी. आकर घंटों बिस्तर पर पागल की तरह पड़ी हिलक-हिलक कर खूब रोयी थी.

आप थक जायेंगे सर, पत्र पढ़ते-पढ़ते. मैं इसे दोबारा नहीं पढ़ूंगी. कहीं पोस्ट करने का इरादा त्यागना न पड़ जायें. जो मन में आया, लिखती रही हूं. रजिस्टर्ड डाक से भेजूंगी. सादा डाक से भेजने-मिलने का क्या भरोसा? जानती हूं, आप उत्तर नहीं देगें. मैं नहीं चाहती कि आप उ दें. इतना जरूर चाह रही हूं कि पत्र आपके हाथों तक पहुंचे, आप और बीता काल खंड आपकी स्मृति में भी कुछ समय के लिए जी उठे.

सर, छंद और उसका प्रसंग तो इस समय मुझे याद नहीं. 'उद्धवशतक' पढ़ा रहे थे. कुब्जा के संदर्भ में 'द्वापर' में अभिव्य मैथिलीशरण गुप्त की आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि की चर्चा कर रहे बता रहे थे कि कृष्ण द्वारा कब्जा का कूबड़ समाप्त करना, वस्त उसकी हीनताग्रंथि को समाप्त कर, उसमें आस्था व विश्वास जमाव उसे नारीत्व की अनुभूति करा देना था. आज मुझे लग रहा है सर आपने एक आदमी, एक अध्यापक बने रहकर मेरे संदर्भ में कृष्ण के धर्म को निर्वाह किया था. मैं कृतज्ञ हूं सर. आप विश्वास रखें कि जिस-जिस हिस्से को आपके स्नेह स्पर्श का प्रसाद मिला था, वह फौ की तरह अटूट रहकर मस्त जी रहा है. आपको अपने हाथ की उं उंगलियों से पत्र लिख रही हूं, जिनसे गृहस्थी के सारे काम करती हूं. जिन्हें कभी आपने छुआ था. आपके स्पर्श के प्रभाव ने मस्तक को क झुकने नहीं दिया. आपके द्वारा थपथपाये कंधों और ठोककर मजबूत हुई पीठ में जीवन जी सकने की पर्याप्त शक्ति है. बच्चे ठीक हैं. सकुशल हैं, प्रसन्न हैं. विश्वासपूर्ण, आस्थावान जीवन की शैली सीख यदि आपसे मुझे न मिली होती, तो मुश्किल से बना मिला छोटा-सा परिवार बहुत से अन्य परिवारों की तरह अविश्वास क और रोज-रोज की घुटन-टूटन का शिकार हो सकता था. सर, मैं हूं. आप चिंता न करें. मैं खूब खुश हूं. आपकी कृतज्ञ भी.

मैं कामना करती हूं कि आप मुझे गर्व कर सकने के अवसर जीवन देते रहेंगे. आप पर हुए हमले पर मैं क्या कहूं? कैसे संवेदना या सांत्व प्रगट करूं? मैं नहीं समझ पा रही. हमले को पढ़कर जो अनुभव ह लिख चुकी हूं. भविष्य में आपके मंगल की कामना करते हुए पू चाहूंगी सर, रेगिस्तान में जब पानी की बूंद या वृक्ष की छाया किसी य का लक्ष्य अथवा आदर्श बन जाये, तब उसके लिए थकान और तपन कोई अर्थ रह जाता है सर? मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसे आक्र आपको हिला नहीं सकते. पर फिर भी यदि इन दिनों आपने तनाव किसी क्षण में स्वयं को थका-हारा या अकेला अनुभव किया हो तो आगे की पंक्तियों को जरा रुककर आप पढ़ लेना—'एक मजबूत पेड़ गिराने के लिए आंधी-तूफान को ऐड़ी-चोटी का पसीना एक क पड़ता है. ऐसा नहीं है कि बड़े मजबूत पेड़ टूटते या गिरते नहीं है. लें जब गिरते हैं सर, तो गिरने से अकेले वे ही प्रभावित नहीं होते. कि खुशियां, कितने विश्वास, कितनी आस्थाएं उनके साथ टूट धराशायी हो जाती हैं. उनसे लिपटकर आगे बढ़ती लताएं, उन पर घोंसले, उनके निवासी, उनकी छाया में आसपास की हंसती-लहरा हरी-भरी धरती के लिए दुर्भाग्य होता है किसी बड़े वृक्ष का गिर जा टूट जाना सर.'

बस अब और अधिक नहीं सर. केवल एक बात. बहुत मिल आपसे. एक अनुमति और. जब भी कभी आपके दर्शन का अवसर मिलें, अपने चरणों को स्पर्श करने का नहीं, चूमने का विश्वास अधिकार आप मुझे देगें.

शेष शुभ!!

आपकी सद्भाव

पुनश्च : आपने वह कहानी मुझे पढ़वायी थी, जिसमें मेरे पहले पत्र उपयोग किया था. इस पत्र के उपयोग से आपकी नवीनतम कहानी मुझे आतुर प्रतीक्षा रहेगी सर!!

"अनु

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए
इन्टीरियर डेकोरेशन
(सर्टिफिकेट एवं डिप्लोमा कोर्स)
- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
- सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
- आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- महंगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
- कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान

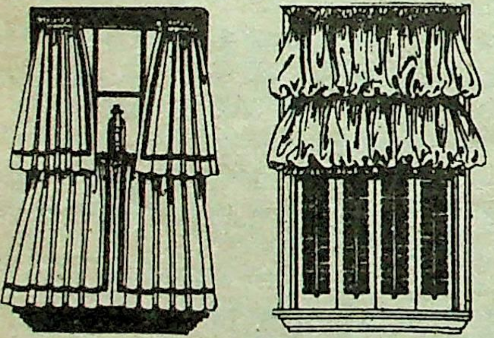

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :-
AID एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

हिंदी कहानी : प्रक्रिया और पाठ

(एक भूली हुई किताब के बारे में)

□ सुधीश पचौरी

> 'कथा समीक्षा की पुनर्यात्रा' स्तंभ के अंतर्गत पिछले अंक में आपने देवीशंकर अवस्थी की कथा-आलोचना पर टिप्पणी पढ़ी. इस बार सुधीश पचौरी एक भूली हुई किताब—'हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ' के बहाने सुरेंद्र चौधरी की कथा-समीक्षा पर टिप्पणी कर रहे हैं. यह क्रम जारी रहेगा...

हिंदी कहानी की उम्र कोई बहुत बड़ी नहीं है इसलिए उसके स्वतंत्र शास्त्र की उम्र भी कम ही कही जा सकती है. अधिक से अधिक शुक्ल से शुरू होकर वह आज तक चली आती है. फिर नये जमाने में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली सांस्कृतिक घटनाओं, खासकर अंग्रेजी में बन बिगड़ रहे कथा समीक्षा के संसार का प्रायः सीधा ग्रहण सुलभ हो जाने से हिंदी कथा चिंतन की अपनी मौलिक वृत्ति को खोज पाना एक उत्साहहीन काम बन जाता है. जब सब कुछ उधर का ही है तो फिर किस बात पर गर्व-खर्व किया जाए? मन गिर जाता है और परजीवी होने का अहसास धिक्कारने लगता है. शायद इसलिए भी समकालीन समीक्षा अपनी दुर्गति को प्राप्त हो रही है.

बहुत पहले लिखी सुरेंद्र चौधरी की कथा समीक्षा पुस्तक 'हिंदी कहानी : प्रक्रिया और पाठ' को पढ़ते हुए कुछ ऐसा ही अनुभव होता है क्योंकि उसमें शायद पहली बार हिंदी कहानी को कहानी के तौर पर एक सार्वदेशिक विधा के तौर पर स्वीकृत करके, निर्विकल भाव से उसके अल्पायु में 'प्रीमैच्योर' रूपों को देखने की एक व्याकुलताभरी कोशिश मिलती है. पुस्तक संभवतः 1963 के आसपास प्रकाशित हुई है और अब प्रायः अनुपलब्ध है. जबकि वह हर हाल में हिंदी कहानी की एक अनिवार्य पुस्तक के रूप में सुरक्षित रहनी चाहिए.

इस पुस्तक में कथा चिंतन का एक पूरा इतिहास दर्ज है. हिंदी कथा समीक्षा की भाषा, उसके औजार और उदाहरण यानी आलोचना कर्म के सकल रूपों की अच्छी झलक मिलती है. पता चलता है कि तब देवीशंकर के अतिरिक्त और नामवर सिंह के अतिरिक्त एक अन्य युवा समीक्षक सक्रिय था जो हिंदी कहानी को उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व देना चाहता था और उसे वैसा ही पाना चाहता था, कि वह इस काम के लिए गहन अध्ययन और प्रबंध लेखन कर सकता था, कि वह अपने समय के तमाम महत्वपूर्ण विचारधारात्मक प्रश्नों और रचना के प्रश्नों को आमने-सामने रखकर देख सकता था और अनातंकित रह अपने समय के लेखकों से गंभीर विवाद उठा सकता था. किंतु जो चुपके से अपने मन को भी दृढ़ता पूर्वक रख सकता था.

सुरेंद्र चौधरी की उक्त पुस्तक को पढ़ने के बाद हिंदी कथा चिंतन की कई समस्याएं स्पष्ट हो जाती हैं. कहानी रचना है या मनोरंजन, कहानी में व्यापार धर्म घुस आ रहा है तो क्या समस्या आ रही है! 'कहानी' और 'शॉर्ट स्टोरी' में क्या फर्क है? क्या कहानी को एक विधा के रूप में हिंदी में समीक्षा स्वतंत्र सामग्री माना जा सकता है. यदि हां तो उसकी प्रक्रिया (रचना प्रक्रिया) क्या है और उसका 'पाठ' क्या है? सिद्धांत कथा कम और उनका 'एप्लाइंड' रूप अधिक—सुरेंद्र चौधरी की कथा समीक्षा की खास विशेषता है.

किंतु सुरेंद्र चौधरी की समीक्षा की कुछ अन्य विशेषताएं हैं जिन पर लोगों का ध्यान नहीं गया है. वे पहले समीक्षक हैं और प्रेमचंद की कथा शैली की कुछ खास विशेषताओं को रेखांकित करते हैं. प्रेमचंद के सरल, रैखिक कथा स्थापत्य में एक 'कामनैस' एक खास शांति क्यों मिलती है और क्यों आगामी कथाकारों में वह नहीं, फिर जैनेंद्र, यशपाल, अज्ञेय, आदि की कथा शैलियों की क्या विशेषताएं है जहां वे प्रेमचंद से अलग होते हैं और सार्थक होते हैं. फिर 'नयी कहानी' कहां से 'नयी' होती है? ये सारे सवाल सुरेंद्र एक विराट फलक पर स्पष्ट करते चलते हैं.

जिन लोगों ने बाद में प्रेमचंद की परंपरा की खास रट लगायी वे आलोचना कर्म में अपनाया जाने वाला विकट संयम यहां देख सकते हैं. प्रेमचंद बड़े रचनाकार हैं. इसलिए नहीं कि वे 'अंतिम दिनों में मार्क्सवादी बन चले थे' बल्कि इसलिए कि वे वाकई बड़े कलाकार हैं. नयी कहानी के दौर में प्रेमचंद के वृत्त को तोड़ने की जल्दबाजी में प्रायः यह कहा जाने लगा कि प्रेमचंद की परवर्ती कहानियां ही असली कहानियां हैं. सुरेंद्र चौधरी की कहानियों के भीतर मौजूद एक अनमोल शैली का बारंबार स्पष्टीकरण देते हैं जिसे वे 'कथा शक्ति' कहते हैं 'नेरेटिव इनर्जी वृत्तांत या आख्यान या कथा का एक स्वभाव है जो कथा के भीतर रहता है, बाद की समीक्षा में यह नेरेटिव इनर्जी भुला दी गयी लगती है. प्रेमचंद इस नेरेटिव इनर्जी को एक 'शांतिपूर्ण' वातावरण में बदल देते हैं, वे मामूली से प्रसंग में एक विशाल और विराट अर्थ स्थापित करते हैं, और फिर भी निहायत प्रशांत कथा शक्ति पैदा करते हैं. यह प्रेमचंद

की अननुकरणीय कला है जो उन्हें महान बनाती है. प्रेमचंद की अनेक कहानियों की ऐसी सूक्ष्म पड़ताल अन्यत्र दुर्लभ है. सुरेंद्र प्रेमचंद की इस 'प्रशांत शैली' को हिंदी की अपनी मौलिक उपलब्धि मानते हैं. यह उनकी समीक्षा पद्धति का मुख्य प्रस्थान बिंदु है. वे प्रेमचंद को सबसे बड़ा कलाकार मानते हैं और एक बड़े कलाकार के कथानक के ढांचे (जिसे वे स्थापत्य कहते हैं, जो शायद तब नया-नया चलन में आया होगा जब वे लिख रहे थे) के भीतर कलातत्वों का अध्ययन करते हैं. लगभग समग्रता में वे उन्हें महान दिखते हैं फिर भी वे 'महान' शब्द का उपयोग नहीं करते.

शायद वे प्रेमचंद की महानता मानते नहीं, उसे खोजना चाहते हैं. खोजते-खोजते वे कहते हैं, ''प्रेमचंद की कहानियों के 'कथात्मक स्थैर्य' (नेरेटिव काम) के अंतरंग में जो गति है, जो सहज योग क्षेम की अनुभूति है, और जो सर्वाश्रित संवेदनीयता है, वह उनके कथानकों से विकसित होती है, विचार के बहिरंग ढांचे से नहीं.'' ये समग्र कला के औजार हैं जिन्हें सुरेंद्र खोजते हैं. बहिरंग ढांचे और विचारों से उत्तेजित होकर प्रेमचंद को प्रगतिशीलता का लठैत बनाने में जो किशोर वय वाली आसानी है. सुरेंद्र उधर नहीं जाते बल्कि रचना के गहरे प्रसंगों में उनके लिए यह श्रेणी ही बेकार हो जाती है.

कथानक, कथा शक्ति और कथात्मक वृत्ति—ये तमाम कथा नेरेटिव—के कारक हैं. सुरेंद्र चौधरी की समीक्षा पद्धति कहीं भी इनकी पड़ताल नहीं छोड़ती. इस अर्थ में वे समीक्षा में यादृच्छिकता का सहारा नहीं लेते. वे समीक्षा के नाम पर प्रायः चलने वाले 'स्पेकुलेटिव' या मनमाने ढंग को स्वीकार नहीं करते. यानी आप उन्हें उनके औजारों समेत कहीं भी कभी भी पकड़ सकते हैं. यहां अन्य आचार्यों की तरह का गोपन व्यापार नहीं है, न 'बंद मुट्ठी में क्या है' की कयास लगाने वाले सट्टेबाजों का मसखरा तरीका जो 'जाकी रही भावना जैसी' वाला आचरण करता है.

जैनेंद्र, यशपाल, अज्ञेय, प्रेमचंद से अलग यदि दिखते हैं और फिर भी 'खास' दिखते हैं तो इसी औजारों की स्पष्टता के कारण, वे 'नेरेटिव' के पक्के औजारों से इनकी कथा में भी एक बड़ा सार्थक तत्व निकालते हैं, प्रेमचंदीय कथात्मक स्थैर्य की जगह बाद में यदि कहानी में यह 'शांति' भंग होती है, अनस्थिरता आती है तो सुरेंद्र उसे सकारण रखते हैं. कहानी में 'विचार को निचोड़ना' और कथानक का एकदम गौण हो उठना, प्रेमचंद के बाद की कहानी की यह प्रमुख समस्या है. इस प्रसंग में कथानक का बदलता रूप सुरेंद्र की नजरों से छुपा नहीं रहता. वे कथाशक्ति को खोजते हैं और 'संश्लिष्टता' की तलाश कथानक में करते हैं. यही संश्लिष्टता जब परवर्ती कहानी में गिरती दिखती है तो वे इसे कथा के संकट का नाम देते हैं. क्या बाद के कथा विकास के संकट को उन्होंने बहुत पहले ही नहीं देख लिया था? मुझे लगता है कि 'कथा शक्ति' के ह्रास को देखने वाले वे पहले समीक्षक हैं. इसीलिए यह पुस्तक इस मौलिक चिंता से शुरू होती है कि कथा लेखन में व्यापार धर्म रचना धर्म को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है.

सुरेंद्र के अज्ञेय संबंधी विचार इसीलिए बहुत सों को चौकाने वाले लगेंगे. वे अज्ञेय की कुछ अति प्रसिद्ध कहानियों को जितने आदर से याद करते हैं और उनके 'कथा स्थापत्य' की चर्चा करते हैं उसे देख उनके साहस की प्रशंसा करनी होती है क्योंकि जब अज्ञेय को उनके 'प्रतिक्रियावादी' अपराधों के लिए 'सजाए मौत' दी जा रही थी तब सुरेंद्र चौधरी प्रेमचंद के बाद एक बड़े कथाकार के रूप में उन्हें सिद्ध करते नजर आते हैं. विचारों से मार्क्सवादी होते हुए भी, इस अर्थ में वे अन्य तमाम अपने समकालीन 'मार्क्सवादियों' से भिन्न और स्वतंत्र हैं. वे कला की दुनिया में कला के भीतर ही समग्र चीजें देखते टटोलते हैं कला से बाहर दिखने वाले आचरण और विचार के सहारे रचना को दो दूनी चार में नहीं देखते. अज्ञेय की राजनीतिक विचारधारा क्या थी—यह तथ्य सुरेंद्र जैसे सी.पी.आई. के कार्ड होल्डर से बेहतर कौन जानता होगा, फिर भी वे इस कारण कथा के भीतर अज्ञेय को 'सजाए मौत' नहीं सुनाते. यह विकट संयम है एक समीक्षक का क्योंकि उसके लिए कला कर्म ही समग्र कर्म है, उसी में विचारधारा और अनुभव सब समा जाते हैं. वह इस मायने में देवीशंकर की तरह रचना को एक साथ समग्रता में समझने की कोशिश करने वाले समीक्षक हैं.

> सुरेंद्र के अज्ञेय संबंधी विचार इसीलिए बहुत-सों को चोंकाने-वाले लगेंगे. वे अज्ञेय की कुछ अतिप्रसिद्ध कहानियों को जितने आदर से याद करते हैं और उनके 'कथा-स्थापत्य' की चर्चा करते हैं उसे देख उनके साहस की प्रशंसा करती होगी, क्योंकि जब अज्ञेय को उनके 'प्रतिक्रियावादी' अपराधों के लिए 'सजा-ए-मौत' दी जा रही थी तब सुरेंद्र चौधरी प्रेमचंद के बाद एक बड़े कलाकार के रूप में उन्हें सिद्ध करते नजर आते हैं.

इस अर्थ में सुरेंद्र चौधरी नयी कहानी वा नामवर सिंह से कई मायनों में भिन्न ए यत्किंचित बेहतर समीक्षा कर्म का उदाहर बनते हैं. वे कला के भीतर-बाहर आते जाते और कला की शर्तों पर. कथा है तो 'नेरेटि की अनिवार्य और तमाम सार्वकालिक पर. वे मार्क्सवाद की शार्ट सर्किटिंग नहीं करते इस अर्थ में वे समीक्षा कर्म के उस स्कूल के नजदीक नजर आते हैं जो समीक्षा कर्म को गह सांस्कृतिक तर्क की तरह लेता है और 'एजीटेशनिस्ट' नहीं है. हिंदी समीक्षा रामविलासजी आज तक एजीटेशनिस्ट आलोचना के सबसे बड़े प्रतीक हैं औ नामवरजी भी इसके 'बॉडी लाइन' के केस हैं नामवरजी की कथा समीक्षा में कथा, कथाका और उसके प्रति अपने उद्गारों का चुनाव इसी मेरे-तेरे वाली माया से तय होता है यह 'एजीटेशनिस्ट' दृष्टि है जो प्रगतिशीलता के नाम पर चली है.

स्वयं सुरेंद्र चौधरी इस पद्धति के क कायल नहीं रहे बल्कि वे शायद कथा समीक्ष में इसका प्रबल निषेध जैसे हैं. इसकी सजा भी उन्हें खूब मिली है. अन्यथा एक जमाने में अप समकालीनों में सर्वाधिक व्यापक फलक प कथा चिंतन कर सकने वाला यह श साहित्यिक परिदृश्य से यों गायब-सा कर दि गया होता और एक उभरता हुआ ब समीक्षक यों निर्वासित न हो गया होता. हिंदी जदांनोवीय संस्कृति सोवियत साहित्य से भी ज्यादा क्रूर रूप में आज भी जीवित है.

सुरेंद्र चौधरी मुक्तिबोध की तरह औ शायद उनके समांतर कथा में कहानी की प्रक्रिया की बात करते हैं और उसके प पर जोर देते हैं. हम सब जानते हैं कि बाद दिनों में कविता के 'अवधानपूर्वक पाठ' पर नामव ने जोर दिया. कहने का अर्थ यह कि सुरेंद्र हि कथा के जातीय स्वभाव को समझने के लि उसकी प्रक्रिया और पाठ को आवश्यक मा मानते हैं. इस अर्थ में, उनके ये निबं कथाकारों के लिए खासकर उपयोगी है दरअसल, वे कहानी लिखने वालों के समीक्ष हैं और इसी अर्थ में कथा समीक्षा के ए महत्वपूर्ण उदाहरण हैं. उनकी समीक्षा देखक समीक्षा करना सीखा जा सकता है.

सुरेंद्र चौधरी की कथा पद्धति अपने नि निष्कर्षों और स्थापनाओं पर इस कद आश्वस्त रहती है कि खंडन-मंडन का मौ रहते हुए भी वे उधर ज्यादा समय खराब न करते. यह आत्मविश्वास यहां तक कि बा में लगभग 'आदेशात्मक' अनुगूंजें रहती हैं. आत्मविश्वास भी है और कैशोर्य भी उनकी पद्धति पर इसका अच्छा असर पड़ता यह निश्च्छल अहंकार का लाभ है जो समी

'कविता का अंत' से...

समकालीन कविता में ऐसा क्या है जो उसे भक्तिकाव्य से जोड़ता है? यह करुणा का भाव है, यह करुणा की संरचना है. दुःख मूलक इस कविता का संदेश करुणा ही है. यह करुणा का नया काव्य है जिसे सुखवादी समाज में उसी तरह व्यर्थ और तिरस्कृत किया जाता है जिस तरह भक्तिकाव्य तिरस्कृत हुआ होगा. सुख-सिद्धांत में शिक्षित कर दिए गए समाज में जब दुःख का परिज्ञान ही मंद कर दिया गया हो तो करुणा की अवतारणा कैसे होगी? उसका आग्रह और सम्मान कैसे होगा? समकालीन कविता को लेकर प्रायः लिखी जाती टिप्पणियों में इस मर्म का जाने-अनजाने तिरस्कार उसके साथ सुख-सिद्धांत के द्वारा तय किए गए रिश्ते का ही परिणाम है. समीक्षक यदि इस कविता की गहन सामाजिकता नहीं देखते तो इसीलिए कि वे या तो कला का परम सुख देखने के आदी हैं या क्रांति का परम सुख. यह कविता इन दोनों से परे चली गई है. एक समूचा दौर बदल गया है कविता में.

समकालीन काव्य का स्थायी 'करुणा' कहने के पीछे उसकी वह नई संरचना है जिसके केंद्र में रक्षा की प्रार्थना का भाव है. कविता में स्त्री, बालिका, पत्नी, मां, बच्चे पक्षी, पशु, पेड़, प्रकृति यों ही अवतरित नहीं हो गए. ये समकालीन समाज के मूल आलम्बन हैं और इसीलिए कविता के भी अनिवार्य आलम्बन बन रहे हैं. यदि कविता और जीवन के संबंध की अनदेखी करने की जिद नहीं ठन रखी है तो यह संबंध देखने के लिए अलग से प्रशिक्षण की जरूरत नहीं. समीक्षा चाहे तो इसे देख सकती है.

समाज के अप्रकट आलम्बन रचना में ही मूर्त रूप धारण करते हैं. समाज रचना में इसी रूप में अवतार लेता है, अवतारणा करता है कवि. बहुत पुरानी भाषा है मगर 'अवतारणा' की यह अवधारणा आधुनिक संरचना से खूब मेल खाती है.

इस कविता में सर्वाधिक उत्कट आलम्बन 'स्त्री' का है. स्त्री यानी एक जाति. यदि कविता के बारे में भी कविता है तो कविता को स्त्री के रूप में ही सोचा गया है. यदि उपरोक्त तमाम आलम्बनों की प्रकृति देखी जाए तो यह तथ्य खुलेगा कि कविता में आने वाले ये तमाम आलंबन 'धरती मां' (मदर अर्थ) के एक विराट प्रतीक की सृष्टि करते हैं, जो तमाम दीन वस्तुओं की रक्षा का आश्वासन देता लगता है. मां का यह महा प्रतीक समकालीन कविता के केंद्र में है. स्त्री में मां! बच्ची में मां! बच्चे में मां! प्रकृति में मां! कविता में मां का यह सर्वाश्लेषी प्रतीक इतना बड़ा है कि कविता से आरपार फैला है. यह कविता इस 'मां' की ही खोज है. वह सीता माता की खोज है. वह मदर मेरी की खोज है, वह 'दुर्गा' की खोज है. हर तरफ से दुत्कारे गए मनुष्य की व्याकुल खोज है यह कविता, जिसमें 'मां' की महान मूर्ति बैठी है. यह समूची रचना प्रक्रिया को अपने स्नेह, ममता, वात्सल्य और प्रेम से बांधे है.

कविता में 'व्यंग्य' की जगह निवेदन ने अगर ले ली है तो इसी 'मां' के कारण. एक विश्वदृष्टि की तरह वह हरेक चीज को व्यवस्था देने का काम करती है. जो लोग अवतारणा को 'नकल' कहते हैं या फैशन, उनके लिए भी यहां करुणा का सागर छलछलाता रहता है. यह कविता की अहिंसा है. व्यंग्य की हिंसा नहीं रह गयी है. यह अहिंसा की संरचना है. इस मां की अवतारणा करने के बाद हिंदी कविता न केवल पूर्ववर्ती दौर से एकदम अलग खड़ी हो गयी है बल्कि कई सौ साल की पीछे यात्रा करती हुई मध्यकालीन भक्ति-काव्य के पास जा खड़ी हुई है. यूटोपिया-विहीन समाज में टिकने के लिए इतिहास में ही जाया जा सकता है. □

[सुधीश पचौरी की पुस्तक 'कविता का अंत' के 'करुणा के वजन का कोई शब्द' शीर्षक लेख से. प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली से प्रकाशित.]

को मिलता है अन्यथा यही दादागीरी बन जाती जो अन्यों में मिलती है.

कहानी की रचना प्रक्रिया और पाठ प्रक्रिया संबंधी उनके विचार आज भी उपयोगी लगते हैं क्योंकि वे कहानी या उपन्यास दोनों को समेटने वाले 'नेरेटिव स्ट्रक्चर' को कथा के मूल में रखकर देखते हैं. पश्चिमी समीक्षा का यह सदुपयोग है जिसे वे संस्कार की तरह विकसित करते हैं. कथा अंततः वृत्तांत है, आख्यान है. हर कथा में अंततः कारक तत्व यही ठहरता है, यह विश्वास उनकी समीक्षा पद्धति को अपने तमाम समकालीनों से अलग करता है.

प्रेमचंद की 'कफन' का पाठ विश्लेषण इस सदर्भ में सुरेंद्र चौधरी के अन्यतम निबंधों में गिना जाना चाहिए क्योंकि यह कथा समीक्षा की असल चुनौती को स्वीकारता है. वह रचना से सीधे टकराता है और एक समीक्षा मार्ग बनाता है. जिसे आज हम किसी हद तक संरचनावादी समीक्षा के रूप में जानते हैं. 'कफन' के सिलसिले में चौधरी काफी हद तक उस पद्धति का उपयोग करते हैं. इसीलिए वे कफन को नहीं बुधिया की कहानी कहते हैं. प्रेमचंद के बाद वे अज्ञेय की शरणदाता और 'कैसेंड्रा का अभिशाप' दो कहानियों की समीक्षा करते हैं. 'नीलमदेश की राजकन्या' के स्ट्रक्चर में आत्मात्वेषण पाठ प्रक्रिया से ही निकालते हैं. 'जानवर और जानवर' (राकेश) में अंतर्निहित 'नयी कहानी' के पाठ के वैशिष्टय को बताते हैं. ये उनके अपने चयन हैं.

सुरेंद्र की यह किताब नामवरजी की नयी कहानी से संबंधी लेखमाला के कुछ ही दिन बाद तैयार हुई है क्योंकि इसमें उसका उल्लेख बराबर आता है. देखने वाली बात यह है कि नयी कहानी पर नामवरजी के चिंतन के मुकाबले अनेक स्तर पर भिन्न पद्धति सुरेंद्र अपनाते हैं और सफलतापूर्वक हिंदी कहानी को उसका व्यक्तित्व प्रदान करते हैं. वे फतवों और पंडित की तरह नामकरण संस्कार में व्यस्त नहीं होते □.

कमबख्त

''पार्टनर, आज मूड बहुत ऑफ है. 'कमबख्त' की बहुत याद आ रही है ...!''

कैसी है उनकी यह प्रेमिका जिसकी कहानी मित्र को सुनाकर वे हल्का हो लेना चाहते हैं ...!

□ **विभु कुमार**

प्रमुख कृतियां : 'सही आदमी की तलाश', 'मेरे साथ यही तो दिक्कत है', 'तालों में बंद प्रजातंत्र', 'अपरिमाषित', 'कहे ईसा, सुने मूसा', 'हवाओं का विद्रोह'.

संप्रति : दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर में हिंदी विभाग में अध्यापन.

संपर्क : सी टू वन, देवेंद्र नगर, रायपुर.

उस दिन मौसम अजीब तरह से उदास था. ऐसे में आदमी उदास न हो तो क्या करे, और जब आदमी उदास होता है, तब या तो वह शराब पीता है अथवा प्रेमिका को याद करता है—कभी-कभी दोनों काम साथ-साथ भी करता है. और अगर प्रेमिका ने शराब पीने की मनाही कर दी हो—तब?

बहरहाल इसका जवाब मेरे पास नहीं है. फिलहाल में इतना जानता हूं कि उस दिन हालात कुछ ऐसे ही थे. वह उदास था, उसका मूड ऑफ था, उसे प्रेमिका की याद सता रही थी और उसके पास गम-गलत करने के लिये पैसे नहीं थे.

शाम का वक्त और उदास मौसम और प्रेमिका की याद और मुफलिसी का आलम-यानी खुदा खैर करे.

सड़क किसी अल्हड़ प्रेमिका की तरह इठला रही थी और वह अपनी प्रेमिका की यदा में डूबा-डूबा सड़क के किनारे लगी रेलिंग पर बैठा था, कि तभी वे दिखे.

''चलो, चलकर होटल में बैठते हैं.'' अंदर ही अंदर वह खुश हो गया था-बोला कुछ नहीं.

''घर पर सामान पटककर तुम्हें ही खोजने निकला हूं. मन बड़ा उदास था. सोच रहा था तुम मिल जाओगे तो शाम की यह जानलेवा उदासी, रात की रंगीनी में कुछ तो कम होगी.'' उसे कुछ भी कहने का अवसर दिये बगैर वे कहे जा रहे थे. उसके पास सुनने के अलावा और कोई विकल्प भी नहीं था.

होटल अपने शहर के चरित्र के अनुकूल बद-शकल था. फिर भी उसे अपनी-अपनी पत्नियों की तरह बर्दाश्त करते थे. फाइव स्टार होटलों जैसी हमारी प्रेमिकाएं हमारी पहुंच से दूर जो थीं.

खैर, फिलहाल होटल शांत था. हमारे अशांत मन को ऐसी ही शांति की जरूरत थी. उन्होंने वेटर को बुलाकर रुपये दिये कि वह एक बॉटल रम की ले आये.

वेटर के जाने के बाद उन्होंने कहा—''पार्टनर, आज मूड बहुत ऑफ है, 'कमबख्त' की याद बहुत आ रही है.'' वह सकते में आ गया. बिना पिये उसे नशा होने लगा था. वे प्रेम भी कर सकते हैं .... उसकी बुद्धि सुन्न पड़ गयी थी.

वह दिमाग पर और जोर डालने की फालतू कोशिश करता कि इसके पेश्तर वेटर दो गिलास, वेफर्स, पानी का जग और बर्फ रख गया.

उसने वैफर का एक टुकड़ा टूंगना चालू कर दिया. वे खाली निगाहों से, खाली गिलासों की ओर ऐसे देख रहे थे मानों वह गिलास उठा लिया और होंठों पर कुछ इस तरह फिराया मानो उसका चुंबन ले रहे हों. उसका दीवानापन उसके लिये हैरत की बात थी. इसी समय वेटर रम की बोतल भी ले आया.

पार्टनर, आज जो कुछ मैं तुम्हें सुनाऊंगा, उसके आधार पर तुम्हें कहानी लिखनी होगी.'' बोतल की सील तोड़ते हुए उन्होंने कहा.

''पहले सुन तो लूं.'' वे रम गिलास में उड़ेल रहे थे, लेकिन उनका ध्यान कहीं और था. उन्होंने 'पेग' नहीं 'पेगा' बना दिया था. लगा मामला काफी सीरियस है.

''प्रॉमिस करो, तो गिलास देता हूं.'' उन्होंने कहा. वे अपनी प्रेम-कहानी सुनाने के लिये व्यग्र थे और जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं. अपना गम-गलत करने के लिये मैं व्यग्र था. गिलास उनके हाथ से लगभग छीनते हुये कहा, ''प्रॉमिस एंड चीयर्स.''

सहृदय पाठको! इस प्रेम कहानी का पहला अध्याय यहीं समाप्त कर रहा हूं. जानता हूं, और अफ़सोस भी है, कि आपको अभी तक प्रेम नामक वस्तु के दूर-दूर तक दर्शन नहीं हुए हैं. आपको शायद न मालूम हो कि प्रेम करना जितना कठिन है, प्रेम कहानी लिखना उससे कहीं और ज्यादा कठिन है, इसलिये अपनी तरफ से कुछ न कहकर सीधे उनकी डायरी के

अंश, 'मय कामा, फुल स्टाप, विदिन इनवरटैड कॉमाज़' प्रस्तुत कर रहा हूं. कथाकार होने के नाते कुछ मार्जिन अवश्य ली है—मसलन अपने मित्र का नाम आपको नहीं बताया है और न ही उनकी प्रेमिका का नाम बताऊंगा. यूं भी प्रेम कहानी में महत्वपूर्ण प्रेम होता है, करनेवाले या उनका नाम नहीं. यह प्रेम कहानी अगर आपको अपनी लगे तो जिम्मेदारी मेरी नहीं कहीं-कहीं तो मुझे अपनी ही लग रही थी. और यह भी, कि जिस तरह अखबार में प्रकाशित सामग्री में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं होती, उसी तरह इस प्रेम कहानी से मेरी सहमति भी अनिवार्य नहीं है.

डायरी के अंश ....

छह सितंबर

आज मन बहुत बेचैन है. सोचता हूं, क्या मन आज ही बेचैन है—या कि इस बेचैनी का एक लंबा सिलसिला है, इतिहास है. शायद मेरी बेचैनी का इतिहास आज से दो वर्ष पहले शुरू हुआ था, जिस दिन 'उसने' मेरी क्लास में प्रवेश किया था. विगत वर्षों में कितनी ही लड़कियां मेरी क्लास में आयीं और गयीं, मैंने कभी किसी भी लड़की के विषय में सोचा तक नहीं. ऐसा क्या है इस लड़की में, कि मेरे व्यक्तित्व पर इस कदर हावी हो गयी है .....

(प्रिय पाठको! कुछ पंक्तियां मैं मित्र की भलाई के उद्देश्य, तथा प्रेम की गोपनीयता को मद्दे-नज़र रखते हुए छोड़ रहा हूं)

अपने बारे में लिखना और सच लिखना कितना कठिन है, इसका अनुभव इस क्षण हो रहा है, सोचता हूं कि लेखक जो भी लिखता है क्या वह झूठ होता है. शायद नहीं, फिर मुझे एक सच लिखने में इतनी दिक्कत क्यों हो रही है. मैंने तो सोचा था, कि जिस 'सच' को मैं उसके सामने न कह सका, उसे लिखकर ही कह दूंगा. मगर वह भी नहीं लिख पा रहा हूं. आखिर मुझे एक वाक्य ही तो कहना है उससे .... '...' (नाम) कि मैं तुम्हें .... और उसके आगे कुछ लिखने में मेरी कलम क्यों कांप जाती है.

(प्रिय पाठको, डायरी में आत्मग्लानि के प्रसंग बहुत हैं, इसलिये उन्हें छोड़ रहा हूं.

चौदह सितंबर

आज भी मैंने सोचा, वह आयेगी और मैंने देखा कि वह सामने से आ रही है. शायद टैलीपेथी इसी को कहते हैं.

मैंने सोच रखा था, चाहे जो हो जाये, आज 'सच' कह ही दूंगा. मैंने उसे पास के ही होटल में चलने के लिये कहा. थोड़े न-नुच के बाद वह राजी हो गयी लेकिन अब मुझे लग रहा है कि होटल नहीं जाना चाहिये था. अचानक ही उसका मूड उखड़ गया था. काफी देर बैठे रहने के बाद भी. मैं अपना 'सच' उससे नहीं कह सका. मन में तो इतना कुछ भरा कि कहने बैठता तो रात भी कम पड़ती. उसने एक-दो बार कहा भी, "कहिये न, जो भी कहना है." मैंने कहा, "घर आना, तब कहूंगा."

सात अक्तूबर

बीस सितंबर से आज तक के सोलह दिन मैंने कैसे गुजारे हैं, मैं ही जानता हूं

(फ्लैश बैक)

बारह चालीस के आसपास वह आयी. लगभग डेढ़ बजे मैंने उसे पिछली रात लिखी डायरी पढ़ने दी. मुझपर जैसे नशा-सा सवार था मैं चाय बनाने के बहाने से हट गया. बीच-बीच में चुपके से झांक लेता, वह चारों ओर से बेखबर पढ़ने में डूबी थी, इधर उसने पढ़ना समाप्त, किया उधर मैं चाय लेकर आया, वह रो रही थी. मैंने इस स्थिति की कल्पना नहीं की थी. पांच-दस मिनट बाद उसने कहा, "आपने ऐसा कैसे सोच लिया?" मैं क्या उत्तर देता. उसने आगे कहा, "किसी और ने यह बात कही होती तो ...." (सच में डर गया था.) मैंने समझाने की कोशिश की

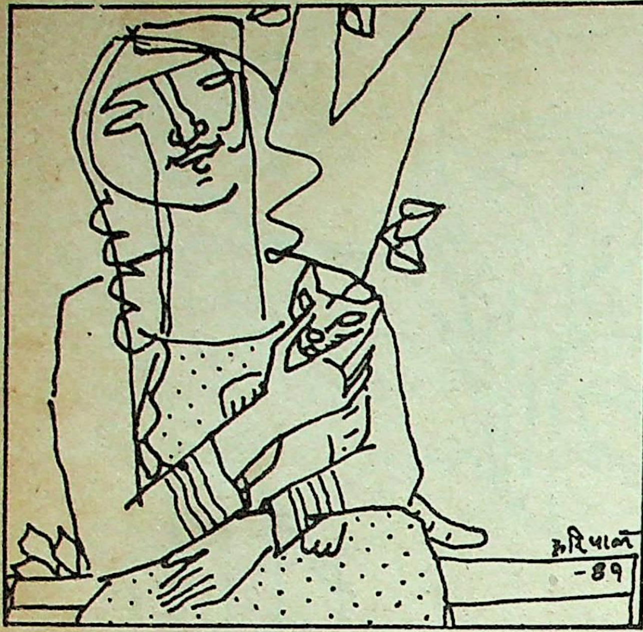

कि मेरी बात का बुरा लगा हो, तो मैं क्षमा चाहता हूं. और न जाने मैं क्या-क्या बोलता रहा. जाते-जाते उसनें इतना ही कहा, ''काश मैं आपसे दस साल पहले मिली होती.''

(फ्लैश बैक समाप्त)

आज सोलहवां दिन है. मुझे फिर लग रहा है कि वह आज आयेगी और वह सचमुच आती हुई दिखाई देती है. आते ही उसने कहा, ''अब मैं कभी नहीं आऊंगी, यही कहने आयी हूं.''

''न आती तो भी मैं समझ जाता.''

''आप अठ्ठाइस-उंतीस को नहीं आये.''

''मैं डर गया था. यही सोचता रहता था कि तुमने अपने घरवालों को बता दिया होगा.''

''छह अक्तूबर को भी नहीं आये आप! मैंने कहीं पढ़ा था कि छह तारीख़ का आपके लिये विशेष महत्व है.''

''अब कब आयेंगे?''

''तेरह को.''

(मौन)

''अभी भी मुझे चार सौ बार याद करते हैं...''

''अब चौबीस घंटे बाद करता हूं.''

उंतीस अक्तूबर

मुझे रह-रहकर ऐसा क्यों लगाता है, कि उसके घर के लोग मेरा आना पसंद नहीं करते.

एक जनवरी

आज पूरे चालीस दिन बाद उसके घर गया. उम्मीद थी कि बैठते ही पूछेगी, ''इतने दिन क्यों नहीं आये!''

(प्रिय पाठको! बीच में कुछ ऐसी बाते हैं जिनका इस कहानी के मूड से मेल नहीं बैठता, बस इसलिये, उन बातों को छोड़ रहा हूं, आपको तो प्रेम कहानी सुननी है, बकवास नहीं.)

नौ फरवरी

अभी ही उसे छोड़कर आ रहा हूं. रिक्शे के चौक से मुड़ने के पहले उसने परदा उठाकर देखा. लगा, उसने अपने होंठ यूं बंद किये हो—मानों 'फ्लाइंग किस' दे रही हो. मेरी भी इच्छा हुई कि वैसा ही 'कहूं, संकोचवश न कर सका.

आज लगभग दो घंटे वह मेरे साथ रही. काम की बात उसने इतनी ही कही, ''दूसरी बार जब आऊंगी, बहुत कुछ कहूंगी.''

मैं अबोध बच्चे की तरह खुश हो गया.

पांच मार्च

बीच में मैं काफी दिनों बाहर रहा, लेकिन हर वक्त उसकी यादों में डूबा रहा. आज जब वह मिली तो उसने पूछा, ''वहा हमारी याद आती थी?'' मन हुआ कि चिढ़ाने के लिये कह दूं, बिलकुल नहीं, लेकिन मन पर मैंने सेर रख दिया.

उसके आने और जाने की बीच का समय इतनी जल्दी क्यों गुजर जाता है—रुक क्यों नहीं जाता. मैं यही सोच रहा था कि उसने कहा, ''अब जाऊंगी, तेरह को आऊंगी.'' वह चली गयी.

तेरह मार्च

वह नहीं आयी.

(प्रिय पाठक! आप सोच रहे होंगे, अजीब प्रेम कहानी है, लेकिन मैं भी क्या करूं, अपनी ओर से कुछ जोड़ भी तो नहीं सकता. मैं जयशंकर प्रसाद की तरह प्रतिभाशाली नहीं हूं कि इतिहास के साथ कल्पना का समन्वय कर दूं. कल्पना को भी इतिहास बना दूं.

वैसे ठीक बात है कि मित्र को प्रेम का इजहार किये छह महीने से ऊपर हो गये, पर लड़की की ओर से—'हां-न' कुछ भी नहीं. अब इसके लिये मैं क्या करूं. मैं वही लिख रहा हूं, जो डायरी में लिखा है. पर आप ज़रा धैर्य रखिये न प्रेम और कहानी दोनों ही धैर्य की मांग करते हैं.)

तेइस अप्रेल

उसने आज कहा, कि अगर मैं वह कह दूंगी जो आप सुनना चाहते हैं—तब आप क्या कहेंगे.

मैं पशोपेश में पड़ गया. मैंने तो सोचा ही नहीं था, बल्कि मुझे तो यह भी नहीं मालूम था कि अगर लड़की प्रेम की बात स्वीकार कर ले तो क्या करना चाहिये, मुझे चुप देख, वह खिलखिलाकर हंसी. मैं अंदर ही अंदर कट गया. मैं बेचैन था और वह खुश थी—खनखना रही थी. कुछ क्षण

अपने लोग

■ सुकेश साहनी

आज वह पहली बार रेल के प्रथम श्रेणी डिब्बे में यात्रा करने जा रहा था. कई दिनों से वह इस यात्रा की कल्पना मात्र से ही रोमांचित होता रहा था. गाड़ी के आते ही वह प्रथम श्रेणी का डिब्बा ढूंढकर उसमें चढ़ गया. पहले केबिन के प्रवेश द्वार पर ही वह ठिठक गया. पूरा केबिन पुलिस वालों से खचाखच भरा हुआ था. वह उल्टे पांव दूसरे केबिन की ओर बढ़ गया. यहां चार अफसरनुमा व्यक्ति दिन में ही शायिकाओं पर आंखें बंद किए लेटे हुए थे. वह जबरदस्ती खांसा, सोचा, पढ़े लिखे लोग हैं, देखकर उठ जाएंगे. उसके खांसने का केवल इतना असर हुआ कि उनकी बंद आंखें खुल गयीं. वे सब बिना हिले डुले भावशून्य आंखों से उसकी ओर देखते रहे. उसे गुस्सा आने लगा. सब ऐसे मस्त पड़े हैं जैसे पूरी

बांद वह बोली. निश्चित ही वह मेरी स्थिति भांप गयी थी, उसने कहा, "पहले सोच लीजिये फिर कहूंगी."

(प्रिय पाठको! आखिर लड़की प्रेमिका बन गयी. लेकिन उसने इतने गैररोमांटिक अंदाज में प्रेम को स्वीकार किया कि मित्र महोदय सुन ही न पाये. हादसे का आंखों देखा हाल आप उन्हीं के शब्दों में सुनिये.)

दो मई

छब्बीस अप्रेल को उसने स्वीकार किया कि वह भी मुझे प्यार करती है. लेकिन यह स्वीकार इतना गैररोमेंटिक था कि मन में किसी तरह की रोमांचकारी अनुभूति नहीं हुई, सोचने लगा क्या कारण है इसका! क्या उसने मेरा मन रखने या पीछा छुड़ाने के लिये झूठमूठ ही कह दिया है. मैंने कतई उम्मीद नहीं कि थी कि इतने ग़ैररोमांटिक अंदाज में (आधा घंटा रोने के बाद) मुझसे काफी दूरी रखते हुये, मरियल-सी आवाज़ में वह प्यार की बात स्वीकार करेगी. उसके कहने से ऐसा लग रहा था मानो कोई उसका गला दबाकर मजबूर कर रहा हो, कि कहो ऐसा वरना मार डालूंगा.

काश कि वह स्वीकार ही न करती—

छह मई

वह मुझसे एक प्रेमिका की तरह व्यवहार क्यों नहीं करती! वह चाहती है कि मैं शराब न पियूं. इसे वह इस तरह क्यों नहीं कहती—कि आपको मेरे प्यार की कसम, आप शराब नहीं पियेंगे!

एक दिन उसने कहा, "आप अच्छी तरह रहेंगे."

मेरी समझ में नहीं आया कि इस वाक्य का मतलब क्या है. इस समय इसका संदर्भ क्या है.

एक दिन उसने कहा, "आप फालतू लोगों को याद नहीं करेंगे." मैं इस वाक्य अर्थ और संदर्भ भी नहीं समझ पाया. मैंने अपनी तसल्ली के लिये पूछा, "क्या तुम फालतू हो." वह चुप रही. इस तरह की बातें-प्रेमिकायें अपने प्रेमी से तब कहती हैं, जब उनकी शादी कहीं और तय हो जाती हैं. क्या उसके साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ है—या होने जा रहा है!

(प्रिय पाठको! डायरी में अब कुछ विशेष नहीं है. केवल कुछ तारीखों, सामान्य से विवरणों-घटनाओं के बीच में बहुत से पन्ने छूटे हैं. एक पन्ने पर लिखा है—इक्कीस जून की घटना के लिये मैं दोषी नहीं हूं'

गाड़ी खरीद ली हो.

इस बार वह दनदनाता हुआ तीसरे केबिन में घुस गया. यहां एक डाक्टर साहब अपने परिवार के साथ बैठे हुए थे. कई जोड़ी आंखें उसे घूरने लगीं मानो उसने केबिन में घुसकर कोई बहुत बड़ा अपराध कर दिया हो. वह बिना कोई तौर तरीका दिखाए सीट पर बैठ गया. अगले ही क्षण उसे वहां बेहद घुटन-सी मालूम होने लगी. पूरे केबिन में चुप्पी छायी हुई थी. मानो उसकी उपस्थिति में वे आपस में बात करना भी अपना 'पोजीशन' के खिलाफ समझते हों.

गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी हो गयी थी. वह केबिन से बाहर आ गया. अपने पीछे उसे मिसेज डाक्टर की आवाज सुनाई दी. "कैसे-कैसे जाहिल लोग आ जाते हैं!" वह प्रथम श्रेणी के डिब्बे से उतरकर साधारण डिब्बे में घुस गया. यहां बहुत भीड़ थी, पर लोगों ने आगे पीछे सरक कर उसे सीट पर टिकने भर की जगह दे दी. उसने राहत की सांस ली. उसे लगा जैसे वह अपने लोगों के बीच आ गया हो. गाड़ी के गति पकड़ते ही वह अपने पड़ोसी यात्री के कंधे से सिर टिकाकर ऊंघने लगा था. □

लेखक का वक्तव्य

प्रिय पाठकों! डायरी तो समाप्त हो गयी, किंतु प्रेम कहानी नहीं, ऐसी कितनी ही डायरियां समाप्त हो जायेंगी लेकिन प्रेम कहानी समाप्त नहीं होंगी. मित्र की कहानी मैं कितनी ईमानदारी से लिख पाया, नहीं कह सकता. वे इन दिनों शहर में नहीं हैं, आयेंगे तब पूछूंगा.

मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि जिसे पढ़ाने के लिये यह कहानी उन्होंने मुझसे लिखवायी है, वह इसे पढ़ भी पायेगी या नहीं! अगर पढ़ ले तो मेरे मित्र को खबर अवश्य कर दे. इक्कीस जून को क्या हुआ था, इसकी जानकारी लेखक को भी दे दें, क्योंकि पाठकों की तरह वह भी घटना की हकीकत जानने के लिये उत्सुक है. साथ ही लेखक की यह भी प्रार्थना है कि अगर उस दिन कोई सीरियस बात नहीं हुई तो मित्र से अवश्य मिले.

बेचारे उस दिन से परेशान हाल हैं.

प्रिय पाठको! इस कहानी में अगर आपका मन न रमा हो तो मुझे माफ कर दें. प्रेम अनुभव की चीज है. लिखने या पढ़ने-सुनने की नहीं अगर आपने प्रेम किया है, तो जरूर रम सकेंगे.

आपसे प्रार्थना है कि अपनी डायरी इस लेखक को न दीजियेगा सच, इस लेखक को न प्रेम करना आता है, न ही प्रेम कहानी लिखना आता है. प्रेम करना आता होता तो समय ही कहां बचता उसके पास कहानी लिखने के लिये.

छपते-छपते

प्रिय पाठको, खुश-खबरी है कि मित्र की प्रेमिका उनसे मिलने आयी थी. सारे गिले शिकवे फिलहाल दूर हो गये हैं. मेरी समस्त हार्दिक शुभकामनायें उनके साथ हैं. साथ ही ईश्वर से प्रार्थना है कि दुबारा वैसा कोई हादसा न गुजरे कि फिर कहानी लिखनी पड़े.

समाप्त

पुनश्च:

अभी भी मन में शंका है क्या उनकी प्रेमिका उनसे सचमुच मिलने आयी थी या उन्होंने यूंही कह दिया. मैं सच तो क्या, 'सच की परछाईं' भी देख पाने में असमर्थ हूं. देख पाता तो 'न्यूज लाइन' न बना देता. बस! सच केवल इतना है कि उस दिन के बाद से आज तक मित्र महोदय ने मझे कभी शराब नहीं पिलायी और मेरे पास इतने पैसे कभी नहीं हुए कि खुद पी सकूं. □

त्रिभुवनगाथा

आखिर ऐसा क्या हो गया था कि कथाकार ने कहानी को नये सिरे से लिखने का निर्णय कर लिया ...? लिखने का ही नहीं उसी तरह उसे जीने का भी ...

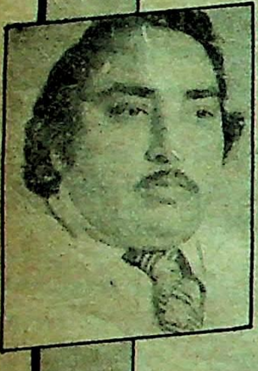

□ अशोक गुप्ता

युवा कथाकारों में एक महत्वपूर्ण रचनाधर्मी.
संप्रतिः इंजीनियर.
संपर्क : द्वारा 'कथाभाषा',
550 सेक्टर-10,
फरीदाबाद, 121002

उस स्थिति में न तो कुछ आकस्मिक हुआ था, न ही अप्रत्याशित. विपिन ने मेरे सामने बैठकर तन्मयता से मेरी कहानी पढ़नी शुरू की थी और मैं पूरी तौर से तैयार था कि पहला ही पृष्ठ पलटने के पूर्व कुछ होगा जरूर. हमेशा की तरह इस बार भी विपिन ही मेरी कहानी का पहला पाठक था और कहानी में इस बात की पूरी गुंजाइश थी कि बहस हम दोनों के बीच एक हल्के से तेवर से शुरू हो और फिर घमासान हो जा बैठे हमारी पूरी मित्र मंडली के बीच एक महायुद्ध की तरह. इसीलिए मैंने यह कहानी आज शनिवार को विपिन के हाथ सौंपी थी ताकि जो होना है, हो ही जाये.

जैसा मुझे अंदाजा था, वैसा ही हुआ. कुछ ही पंक्तियां पढ़ने के बाद विपिन ने पढ़ना रोककर अपनी निगाहें मेरे चेहरे पर फेंक दीं और एक अर्थ भरी मुस्कान के साथ उसके होंठ खुल आये.

"फिर त्रिभुवन?"

मैं इस प्रश्न के लिए तैयार था. मुझे मालूम था कि कहानी की सारी की सारी जमीन और बुनावट एक तरफ रह जायेगी और मेरी मंडली के किसी भी दोस्त का हमला पहले पात्र के इस नाम पर होगा. पिछले सात महीनों में यह मेरी तीसरी कहानी थी जिसमें मैंने अपने एक पात्र को त्रिभुवन नाम पहनाया था, और मेरी दूसरी ही कहानी में यह बात पकड़ में रख ली गयी थी.

प्रश्न की प्रतिक्रिया में मैंने भी अपने चेहरे पर एक प्रति मुस्कान ओढ़ ली जो मुझे जरूरी लगी. मैं इंतजार करने लगा कि विपिन इस प्रश्न को हवा में छोड़कर कहानी आगे पढ़ने लगे. इसी बीच मैंने कुर्सी पर अपनी मुद्रा बदली, पैकेट से सिगरेट निकालकर अपने होंठों में फंसायी और अपने अंदाज के प्रतिसंशय को पुष्ठ करने के लिये माचिस तलाशने के बहाने एक नजर विपिन के चेहरे पर फेंक दी.

विपिन अब भी अपने प्रश्न के साथ तनकर खड़ा हुआ था. न तो उसकी मुस्कान का कसाव जरा ढीला पड़ा था, न ही दृष्टि का पैनापन. मैं समझ गया कि अब युद्धरत हो जाने का कोई विकल्प नहीं है.

"मैंने इस कहानी में उन मानवीय संदर्भों की छानबीन की है जो भावुकता का अर्थहीन ऊहापोह पैदा करते हैं, जिनसे आदमी और आदमी के बीच एक छद्म सामीप्य पैदा होता है, जबकि असलियत में उससे शोषण प्रक्रिया को ही तरह मिलती है, इससे अकेला आदमी और भी अकेला और कमजोर हो जाता है.

मेरी यह कहानी इस अकेलेपन के खिलाफ एक कमजोर आदमी की लड़ाई है. मैंने ...."

एक निरंतरता छोड़कर मैं विलंबित लय में सिगरेट जलाने में व्यस्त हो गया. यह मेरी रणनीति है. मैं आश्वस्त था कि कहानी के बारे में मैं एक चौकस सूत्र विपिन के आगे फेंक चुका हूं जिस पर गौर करना उसे निश्चित रूप से जरूरी लगेगा. हालांकि इस बात से यह शर्त कतई पैदा नहीं होती थी कि विपिन इससे त्रिभुवन का कहानी में होना भूल जायेगा. और भूला भी नहीं विपिन. त्रिभवन की कहानी में होने की पड़ताल अभी भी उसके चेहरे पर पूरी तरह साया थी.

"... और मेरे इस मंसूबे में त्रिभुवन इस कमजोर आदमी का प्रतिनिधि पात्र है जिसका जिक्र मैंने अभी किया है. उसकी चारित्रिकता."

"चारित्रिकता की ऐसी की तैसी!" मेरे बयान तथा कहानी की शुरुआत ने मिलकर एक बेहद ऊब भर दी थी जो शायद त्रिभुवन की उपस्थिति खोज निकालने के उतावलेपन में उपस्थित बाधा से पैदा हुई थी. मुझे लगा कि अब रचना स्थगित करके त्रिभुवन प्रसंग की ओर लौटे बगैर कुछ नहीं होगी. यह ठीक भी था और विपिन के साथ ही ठीक था. भले ही जो ठीक नहीं था, वह जानबूझकर, चौकस सोच के साथ ही बेठीक रखा गया था. मेरे चेहरे पर इस बात की लहर झट विपिन ने पकड़ ली और मुझे मेरे असमंजस से बाहर खींच लिया, "चल, कहीं बाहर

चलते हैं.''

मैं उठ खड़ा हुआ, बिना कुछ कहे. मुझे मालूम था, हम कहां जायेंगे. 'कहीं बाहर' का अर्थ मुझे पता था.

''त्रिभुवन मेरी ही फर्म में काम करता है. त्रिभुवन माहेश्वरी.'' विपिन के होंठ थोड़े से खुले और एक सहज-सी मुस्कान उन पर खिंच आयी.

''मैंने शायद कभी जिक्र किया हो तुमसे कि हमारी फर्म के मालिक प्रताप माहेश्वरी की दो शादियां थीं.'' उनकी पहली शादी जब हुई थी, तब वह एक मध्यवित्त परिवार के साधारण आदमी थे और ताजा-ताजा कानून पास करके इस इरादे से शहर आये थे कि ज़मकर वकालत करेंगे ओर अपने पिता की वह जमीन जो बहन की शादी तथा अपनी वकालत की पढ़ाई में रेहन चढ़ गयी थी, उसे छुड़ाकर अपना फर्ज पूरा करेंगे. उनके इस फर्ज में बराबर से उनके साथ थी उनकी पत्नी यशोधरा. लेकिन चक्कर कुछ और ही चला और प्रताप माहेश्वरी पंडित नरसिंह चतुर्वेदी से आ भिड़े. पंडितजी अपने जमाने के दिग्गज सट्टेबाज थे और मकद्दमा लड़ना उनका शगल था. नरसिंह चतुर्वेदी से पारी के बाद प्रताप बाबू को अपनी जमीन वापस छुड़ाने में ज्यादा समय नहीं लगा और उसे इन दोनों की दोस्ती कुछ और परवान चढ़ गयी. त्रिभुवन, उसका बेटा तब चार का हो चला था, जब प्रताप बाबू के पिता श्रीधर माहेश्वरी मन शरीर से कुछ अशक्त महसूस करने लगे थे और ऐसे में यशोधरा ने यह तय किया था कि वह त्रिभुवन को लेकर गांव में रहेगी ससुरजी के पास और प्रताप बाबू हफ्ते-हफ्ते घर आया करेंगे. इस योजना के साथ यशोधरा ने गांव में एक स्कूल शुरू किया था और साथ ही त्रिभुवन ने पढ़ाई.

शगल कभी-कभी चुनौती बन जाता है न, और ऐसी ही एक बार नरसिंह चतुर्वेदी के साथ हुआ. बातों ही बातों में बैठे-ठाले हरिहर बंसल से उनकी पता नहीं क्या तनातनी हुई कि पंडितजी उनके घर से मानो शिखा खोलकर निकले कि भले ही कंगाल हो जायें लेकिन हरिहर को एक तगड़ा झटका दिये बगैर चैन नहीं लेंगे. मुकद्दमेबाज़ पंडित नरसिंह चतुर्वेदी को इस रार का हल्ल मुकद्दमे में ही मिलना था और मिला भी वहीं, प्रताप माहेश्वरी की दफ्तरनुमा बैठक में. तय हुआ कि हरिहर की एक विधवा बहन का हक, जो अपनी विवाह योग्य बेटी शकुंतला के साथ हरिहर पर ही आश्रित थी, हरिहर की गांववाली जमीन-जायदाद पर निकाल दिया जाये, कुछ इस तरह की हरिहर उससे बेदखल हो जाये. चक्कर शुरू हुआ और खत्म हुआ दोहरी कामयाबी के साथ. हरिहर की बहन ने मुकद्दमा जीत लिया और हरिहर की भानजी शकुंतला, जो प्रताप के मन में कुछ चुभती-सी लगी थी, प्रताप की विवाहिता पत्नी हो गयी. प्रताप का यह दूसरा विवाह बाकायदा शकुंतला की मां की खुशी से हुआ था और उसने इस शादी पर जी खोलकर खर्च करने के साथ-साथ अपनी मुफ्त हाथ आयी जायदाद का खासा हिस्सा प्रताप को भी दिया था. इस तरह प्रताप माहेश्वरी टटपुंजिया वकील से हैसियत वाले बन गये थे. अब शुरू हुई थी माहेश्वरी खानदान की सरमायदारी. उनकी पहली पत्नी ने यह समाचार सुना तो यकायक जड़ हो आयी और उसने खुद को पत्थर कर लिया. भले ही वह अपने ससुर के जीने तक वहां रही जरूर लेकिन कभी प्रताप बाबू का चेहरा नहीं देखा. श्रीधर माहेश्वरी की मृत्यु के बाद इधर प्रताप बाबू पिता की शुद्धि करके शहर लौटे, उधर यशोधरा ने गांव छोड़ दिया बगैर कोई संकेत-सूचना दिये. त्रिभुवन साथ था उसके, उसकी बी.ए. की डिग्री और पहाड़-सा मनोबल शकुंतला से विवाह के पांचवें बरस भी जब प्रताप बाबू निसंतान रहे और सभी प्रकार की जांच-कोशिश के बाद शकुंतला बांझ साबित हुई तो एक कुलीन किंतु विपन्न घर से तिलक बाबू को गोद लिया गया ताकि वंश और सरमायदारी जारी रह सके. अपनी उम्र के बाइसवें वर्ष में जब वह प्रताप

बाबू से फर्म का मालिकाना सम्हाल चुके थे, तब अपनी मां की मृत्यु के ठीक एक वर्ष बाद तिलक बाबू ने यह पहली बार जाना था कि वह प्रताप बाबू के दत्तक पुत्र हैं और कोई त्रिभुवन है प्रताप और यशोधरा का रक्तज जिसके लिए प्रताप माहेश्वरी का चित्त-मन निरंतर दुख और पश्चाताप से छीजता रहता है.

उस दिन यह जानकर तिलक बाबू ने कहा कुछ नहीं था लेकिन एक दिन सहसा प्रताप बाबू के सामने यशोधरा और त्रिभुवन को लेकर प्रकट हो गये थे. तिलक बाबू की पत्नी ने एक दिन अपने पीहर के किसी गांव में किसी यशोधरा त्रिभुवन का प्रसंग सुना था और प्रताप माहेश्वरी का जुड़ाव उनसे पुष्ट करके झट वहां पहुंच गयी थी उन्हें लेने और मान मनौव्वल करके ले भी आयी थीं. इस तरह लंबे अर्से के परित्यक्त, उपेक्षित तथा विपन्न जीवन जीने के बाद त्रिभुवन अपनी मां के साथ अपने पिता के घर 'माहेश्वरी विला' आ गया और यहीं से असली बात शुरू होनी है.

पूर्ण वयस्क तथा पढ़ाई से स्नातक था त्रिभुवन उस समय जब पिता के घर आया था. पिता की ही तरह कद-काठी जिसमें रौब पैदा करने की पूरी गुंजाइश लेकिन उन्हीं की तरह ढुल-मुल-सा, अनिश्चिततता की स्थिति में बने रहने वाला, जो विषण्ण तथा आश्रित जिंदगी जीते-जीते कातर भी हो गया था. एक स्पष्ट-सी दयनीयता का भाव चेहरे पर जिसका आत्मविश्वास से छत्तीस का आंकड़ा. लेकिन जो कुछ भी था, था तो माहेश्वरी कुल का ही रक्त न, सो उसे जुड़ना था प्रताप बाबू के काम धंधे से और वह जुड़ गया. इस तरह त्रिभुवन का हमारी फर्म में श्रीगणेश हुआ. कायाकल्प किया गया उसका. सूट से लेकर जूते तक सब बदल जाने के बाद एक नया त्रिभुवन पैदा हुआ जो सिर्फ अपने चेहरे पर अंकित अपने जीवन की उस यात्रा कथा से पहचाना जा सकता था जो उसने अद्यतन अपनी मां के साथ झेली थी.

फर्म 'माहेश्वरी इंटरप्राइज' के चेयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर थे प्रताप बाबू, जिनकी सक्रिय गतिविधि फर्म में अब बहुत कम रह गयी थी. डायरेक्टर थे तिलकबाबू जो फर्म का सारा मालिकाना सम्हालते थे, और मार्केटिंग देखते थे आशीष चतुर्वेदी जो नरसिंह चतुर्वेदी के छोटे सपूत थे. त्रिभुवन फर्म में आये और प्रताप बाबू की सलाह पर तिलक बाबू ने उन्हें एकाउंट्स में बैठाना शुरू कर दिया.

शुरू-शुरू में त्रिभुवन की जहीन लगन तथा काम सीखने की कोशिश ने सबको बहुत आश्वस्त किया. लेकिन त्रिभुवन को हिसाब में शुरू से ही

बड़ी गल्तियां गड़बड़ियां नजर आने लगीं. जब वह उन्हें प्रताप बाबू के सामने रखते तो उनका जवाब होता कि वह तिलक से बात करे और तिलक बाबू सारी बात सुनकर बस ठठाकर हंस पड़ते. कभी-कभी ऐसा भी होता कि फुर्सत के समय प्रताप बाबू या तिलक त्रिभुवन को लेकर बैठ जाते और समझाने लगते वह पूरा-ताना बाना जिसके तहत त्रिभुवन द्वारा पकड़ी गयी गड़बड़ियां, गड़बड़ियां न होकर सूझ-बूझपूर्ण तजबीजें हैं, जिनके लिए फर्म कानूनी सलाहकारों को ढेरों रुपया देती है और फायदा कमाती है, त्रिभुवन समझता जरूर रहता लेकिन उसके चेहरे से असहमति की रेखाएं नहीं मिटतीं तो नहीं मिटतीं और अंकित होती रहतीं उसके चेहरे पर उसकी आदि यात्रा कथा के विस्तार के रूप में. उधर आशीष चतुर्वेदी यह सब देखकर दांत पीसता रहता कि आखिर कोयले को धोकर सफेद करने की यह बेकार कोशिश क्यों? वह तिलक बाबू के ही कमरे में उनकी मेज पर हाथ पटककर कहता, ''क्या एक यतीम को इस तरह बिजनेस मैनेजर बना सकता है कोई?''

''नो .... नेवर ....''

और तिलक बाबू का चेहरा कहीं भीतर से पल भर को दुप्प से बुझ जाता. समय बीता और जल्दी ही साबित होने लगा कि तमाम बुद्धिमत्ता तथा दक्षता के बावजूद त्रिभुवन बुनियादी तौर पर उस वर्ग का आदमी नहीं है जिसे लेजर और जनरल की पहचान के रास्ते किसी व्यावसायिक संस्थान की प्रवर गद्दी तक पहुंचाया जा सके. फर्म के आर्थिक आंकड़े बहुत साफ होकर त्रिभुवन के सामने आते लेकिन उसके एक तरफ होती उनकी पक्षधरता जिनका इस सिलसिले में निरंतर छिनता जा रहा है और दूसरी तरफ होता वह पूरा तंत्र जो हर प्रस्तुत स्थिति को एव व्याख्या, एक समाधान देने को तैयार बैठा होता. एक ऐसा समाधान जो मान्य, स्वीकृत और वैध व्यावसायिक सिद्धांतों से निकलता था, त्रिभुवन के दोनों ओर दो अलग-अलग तंत्र थे, एक अबूझ पहले की तरह. साफ और स्पष्ट था तो केवल; बाहर फर्म के लिए हिसाब का गलत-सलत होना और भीतर, चेहरे की निरीहता और उस यात्रा कथा का गुरुत्व जो सूट-बूट से सजकर भी अंततः उसी यात्रा का अगला पड़ाव होता था, विषयांतर नहीं.

त्रिभुवन अपने दोनों तंत्रों के बीच बराबर से कमजोर था क्योंकि व अनजाने जिसका हिस्सा था, उससे कटा हुआ था और जिससे जुड़ा हुअ था उसके लिए अबूझ मां जो एक उम्र तक अपने सत्य के साथ उसकी ताकत थी, वह मान सहित बुलाये जाने पर अपनी सारी ऊर्जा अपने पति के चरणों में निरस्त करके व्यक्तित्वहीन हो गयी थी. इस तरह उससे उसकी मां भी छिन गयी थी और उसकी माटी का परिवेश भी. इधर फर्म में उसे आंकती-घूरती कुटिल सौम्यवर्णी और चमकदार आंखों-मुस्कानों के आगे वह निरंतर अनफिट साबित होता जा रहा था.

पहले रौबदार और रुतबे का वह रंग मिटता गया धीरे-धीरे जोर देकर उसे फर्म में उतारा गया था और बाद में वह सिर्फ एक अकेली महत्वहीन और उपेक्षणीय-सी शह बनकर रह गया, भले ही उसका ओहदा वही था और वही था उसका अलग कमरा, जो सही माने में उसके लिए 'नो मेंस लैंड' बनकर रह गया.

माहेश्वरी विला में ही त्रिभुज भी रहता था और वह दिन, जिस दिन की मैं बात कर रहा हूं, त्रिभुवन के लिए शायद बड़ा पीड़ादायक दिन था या हो सकता है वह पीड़ादायक स्थिति त्रिभुवन की दिनचर्या हो और उस दिन फर्क केवल पीड़ा की सतह पर आ जाने का हो.

उस दिन तिलक बाबू की ससुराल से कुछ मेहमान आये थे और तिलक बाबू का कमरा माहेश्वरी परिवार के घर से अलग-अलग एक फर्क-सा हिस्सा बन गया था जिसमें त्रिभुवन की जगह नहीं भर थी. प्रताप बाबू के कमरे में उस दिन नरसिंह चतुर्वेदी अपने बेटे आशीष के साथ विराजमान थे सो प्रताप बाबू त्रिभुवन और यशोधरा से फिर उतना ही छिन गये थे जितना कि पहली बार उसका अपना कमरा तो 'नो मेंस लैंड' था ही और मां के कमरे में अगरबत्ती का धुआं ओर पाठ का स्वर इतना कीचमकीच मचाये हुए थे कि त्रिभुवन को वहां बैठने से बेहतर बाहर सड़क पर टहलना ही लगा और भीतर से उठकर कोटी में बाहर फाटक के पास फालतू-सा आकर खड़ा हो गया.

मैं उस समय याकूब की दूकान पर बैठा उससे कुछ कागज टाईप करा रहा था. भरपूरी सर्दी की उस रात जितनी जल्दी याकूब को शटर गिराकर घर भागने की थी उतनी ही जल्दी मुझे थी अपने कागज उसी दिन पूरे कराने की. सो जब तक काम चलता रहा, हम दोनों जुटे रहे काम खत्म करके निकलते समय जब मैंने त्रिभुवन को फिर वहीं खड़े देखा तो मुझसे नहीं रहा गया और मैं उधर ही बढ़ लिया. एक ही फर्म में काम करने के नाते हमारा परिचय तो पुराना था. उसके फर्म की तो होने का हउआ उतरने के बाद हमारा परिचय प्रकट होने लगा और यूनियन की बात बीच में आ जाने से तो हम घनिष्ठ ही हो गये थे.

''यूनियन की बात?'' विपिन इस प्रसंग से चौंका और होंठों तक सिगरेट ले जाते उसके हाथ वहीं ठहर गये.

''क्या तुम लोगों ने उसे यूनियनबाजी में खींच लिया?'' विपिन की भौंहें तनी रहीं और उसका प्रश्न उसके चेहरे पर कुछ और गहरा हो आया.

कुछ देर चुप रहा मैं, हालांकि विपिन की मुद्रा मेरी चुप्पी तोड़ने पर अपने पूरे तेवर से आमादा थी.

''ऐसा हुआ कि कुछ त्रिभुवन की बेवकूफियां और कुछ आशीष बा और तिलक बाबू के बीच की बातचीत जो यह बात फर्म में फैलते दे नहीं लगी कि त्रिभुवन अपनी असलियत से मामूली आदमी भर है औ वह कभी भी सफल बिजनेस मैनेजर नहीं बन सकता. ऐसे में, वकी यूनियन प्रेसिडेंट, हर मामूली आदमी की तरह त्रिभुवन को भी यूनि का हिस्सा होना ही चाहिए था. क्योंकि यूनियन मामूली आदमियों के हि में, मामूली आदमियों के ही दम पर चलती है.

''भले ही उसे चलाते हैं गैरमामूली, मक्कार लोग ... ''विपिन के हों गहरी छटपटाहट से टेढ़े हुए और चेहरा लाल हो आया. मुझे लगा कि

विपिन के मूड के हिसाब से अब एक आवश्यक मध्यांतर जरूर होना चाहिए. और दो कॉफी का फिर एक आर्डर चीखते हुए मैं टायलेट की तरफ बढ़ लिया.

मेरे लौटकर आने तक भी विपिन का चेहरा सहज नहीं हो पाया था. मैं उसे देर तक बताता रहा था कि मेरा भी एकाउंट्स में होना एक कारण बना था मेरी त्रिभुवन से निकटता का और इसी सिलसिले में मुझे ढेर-ढेर बातें पता चलने लगी थीं फर्म के बारे में जो मेरे लिए नयी थीं और यूनियन के प्रेसिडेंट को त्रिभुवन से दूर ही रखा गया था.

"तो पूरी रणनीति बनाकर त्रिभुवन से छद्‌म आत्मीयता पैदा कर रहे थे तुम लोग." विपिन के चेहरे पर घृणा भी थी और बेतरह क्रोध भी, तुम्हें पता था कि त्रिभुवन उस वर्ग का आदमी नहीं है, जिनके बीच है. तुम्हें यह भी पता था कि वह नहीं जानता कि किनके बीच है. इस पार और उस पार भी. तुम यह भी जानते थे कि वह ज्यादा देर वहां टिक नहीं पायेगा, इसलिए तुम चाहते थे कि त्रिभुवन जब तक वहां है, तुम लोग जल्दी-जल्दी उसका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठा डालो. क्या तुम्हें मन में एक बार भी त्रिभुवन को उस तकलीफ भरे नरक से, जिसके तुम चश्मदीद गवाह भी हो, निकालने की बात आयी? आती भी कैसे, तुम तो खुद चाहते थे कि त्रिभुवन उस अंतिम पल तक उस नर्क का हिस्सा बना रहे जब तक वह खुद उसे दूध की मक्खी-सा न निकालकर फेंक दें ....

"मक्कार हो तुम. तुमने झूठ कहा था. त्रिभुवन की पीड़ा तुम्हारा दर्द नहीं है. तुम्हारी रुचि का विषय है त्रिभुवन के होने की स्थिति, जो तुम्हें बड़ा कहानीकार भी बनाती है और बड़ा यूनियनबाज भी ... शिट् ...."

सन्नाटे का भारी माहौल खिंचा रहा कुछ पल. फिर विपिन को सहज होने की आवश्यकता महसूस हुई. उसने चेहरे का तनाव कुछ ढीला किया और जड़ हो आये हाथों में कुछ हरकत आयी. मेरी कहानी वहीं मेज पर कॉफी के प्यालों के बीच पड़ी थी. विपिन की उंगलियां रेंगी और कहानी को उसने अपने हाथ में ले लिया.

"कहानी में तुमने क्या अंत दिया है त्रिभुवन को?" विपिन ने फिर एक प्रश्न मेरे आगे सरका दिया.

मेरे मन में पल भर को कहानी सुना डालने की अकुलाहट जिंदा हुई और भर गयी. मेरी कहानी का त्रिभुवन उस कुटिल और भ्रष्ट मालिक को मारकर खुद मालिक बन बैठता है और खून बहाकर उस अनफिट व्यवस्था में फिट हो जाता है जो उसकी मानसिकता का हिस्सा नहीं है, और फिर सब ठीक हो जाता है. जाहिर है, मेरी कहानी में ऐसा कुछ नहीं था जिससे त्रिभुवन माहेश्वरी का अकेलापन टूटता. उससे त्रिभुवन माहेश्वरी को उस कुटिल और गलत व्यवस्था से बेआवाज, अपनी अपंग होती जा रही मां को लेकर अलग हो जाने का न तो संदेश मिलता था न ही ताकत. इसलिए मेरी कहानी भी उतनी ही गलत थी, जितना मैं.

मैंने चुपचाप विपिन से अपनी कहानी ली और जेब में रख ली.

"विपिन, यह कहानी मैं फिर लिखूंगा. नये सिरे से ..."

विपिन की आंखों में चमक आ गयी, "और फिर उसी तरह से उसे जिओगे भी ...?

"हां, उसी तरह से उसे जिऊंगा भी ...?

फिर हम दोनों उठे और चल दियें. सारे रास्ते हम दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं हुई.

मेरे घर पहुंचकर साईकिल उठाकर चलते-चलते विपिन ने फिर डबडबायी आंखों से मेरी ओर देखा.

"मेरी बात भूलोगे तो नहीं?"

"नहीं भूलूंगा विपिन, अपनी बात नहीं भूलूंगा." और मैंने अपने हाथ विपिन के हाथ पर रखकर अपनी भरपूर निगाह उसके चेहरे पर फैला दी.

मेरी आंखें भी डबडबा आयी थीं. और इस बार हमारे आंसुओं का स्वाद और गंध बिल्कुल एक जैसे थे. □

राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार प्रतियोगिता

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन सी ई आर टी) छब्बीसवीं राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार प्रतियोगिता के अंतर्गत 5 से 15 आयुवर्ग के बच्चों के लिए लेखकों और प्रकाशकों से उपयुक्त पुस्तकें/पांडुलिपियां आमंत्रित करती है ।

पुरस्कार : पुरस्कारों की कुल संख्या छत्तीस है । हिंदी में चार पुरस्कार हैं तथा अंग्रेजी, असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, बांग्ला, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, संस्कृत तथा सिन्धी—प्रत्येक भाषा में दो-दो पुरस्कार हैं । प्रत्येक पुरस्कार की राशि रु. 5,000/-होगी ।

पुस्तकों की योग्यता : (क) मात्र दो कैलेण्डर वर्ष 1987 तथा 1988 में प्रकाशित पुस्तकें प्रविष्टि के लिए सम्मिलित की जायेंगी. (ख) प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त **अप्रकाशित पाण्डुलिपियां अधिमानतः टंकित रूप में स्वीकार की जायेंगी । इन पाण्डुलिपियों का विषय 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' से संबंधित होना चाहिए ।** प्रकाशित पुस्तकें किसी भी विषय पर हो सकती हैं किन्तु वे बच्चों के अनुकूल होनी चाहिएं । (ग) पाठ्यपुस्तकें, अन्य पुस्तकों के अनुवाद, पुर्नप्रकाशन अथवा संक्षिप्त संस्करण सम्मिलित नहीं किये जायेंगे । बाल साहित्य प्रतियोगिता के लिए इससे पूर्व की प्रतियोगिता में प्रस्तुत की गई प्रविष्टि अथवा राज्य सरकार अथवा भारत सरकार अथवा सरकारी विभागों से तथा किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से प्राप्त धन राशि की सहायता से किसी संगठन द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में पहले से ही पुरस्कृत पुस्तक इस प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायेगी ।

प्रवेश शुल्क : प्रत्येक पुस्तक तथा पाण्डुलिपि के लिए दस रु. (10 रु.) का रेखांकित पोस्टल आर्डर, मुख्य लेखा अधिकारी, एन.सी.ई.आर.टी. के पक्ष में निम्न पते पर भेजा जाना चाहिए ।

अंतिम तिथि : 16 जुलाई 1990

प्रतियोगिता से संबंधित विस्तृत जानकारी तथा नियम निम्न पते से प्राप्त किये जा सकते हैं:

प्रो. अर्जुन देव,
विभागाध्यक्ष,
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली– 110016

davp 89/1281

बजट के बाद बचत-अभियान

□ गोपाल चतुर्वेदी

बजट द्वारा सरकार जग को जताती है कि उसके दिल में देश के लिये कितना प्यार है. मां बच्चे को बुरी आदतों से बचाने के लिय सजा देती है. सरकार भी कभी बड़ों की दाल-रोटी छुड़वाती है, कभी छोटों की आइसक्रीम. हम हर बजट का बड़ी बेकरारी से इंतजार करते हैं. बजट के आगमन की संभावना से फालतू चीजें तत्काल भूमिगत हो जाती हैं. फिर मूल्य बढ़ने के बाद ही प्रगट होती हैं. दूकानदार समृद्धिरेखा के ऊपर चले जाते हैं, निश्चित आय वाले गरीबी रेखा के और नीचे. अनजान कुछ भी समझें. सरकार बजट में वही करती है जो मुल्क के विकास के लिये जरूरी है. अब पैट्रोल की कीमत बढ़ी तो पालक और पपीते की भी तो तरक्की होगी. हमारे धर्म-निरपेक्ष देश के लोगों में नहीं है पर मूल्यों में आदर्श, सौहार्द और भाईचारा है. सीमेंट ऊपर उछली तो गारमेंट क्यों पीछे रहे. वाशिंग-मशीन और आलू-बैंगन में क्या ताल्लुक है! पर इधर वाशिंग मशीन कीमती हुई तो उधर आलू-बैंगन. दिक्कत यही है कि आम आदमी कम-अक्ल है. शिकायत करता है. उसे कैसे कोई समझाये कि कर और कीमतें सरकार विकास की लगन और अपने नैसर्गिक देश प्रेम के कारण बढ़ाती है. यह दीगर है कि विकास सिर्फ कीमतों का हो!

सरकार को विवशता में कई काम करने पड़ते हैं. कभी श्रीलंका में शांति की फौज भेजनी है. कभी आत्मसम्मान की रक्षा के लिये तोप की खरीद करनी है. अंतर्राष्ट्रीय करारों की परंपरा और दुनिया का दस्तूर निभाने के लिये कमीशन भी खाना है. किसानों को कर्ज भी देना है और उसे बट्टे-खाते में भी डालना है. हवाई मुसाफिरों के लिये नये जहाज आने हैं. हवा और रेल की दुर्घटनाएं भी होनी हैं. सरकार को मृतकों के प्रति प्रतिबद्धता जताने के लिये मुआवजा भी बढ़ाना है. रेल और जहाज के यात्रियों को इतना यकीन तो होना ही चाहिये कि अगर 'सफर' कर जीना है तो मुआवजे में मरना है. जीवित के प्रति उदासीनता और मृतकों के लिये श्रद्धा हमारी संस्कृति का पुराना चलन है. यों भी जिंदा लोग इस अलौकिक वसुंधरा पर स्वर्ग-वास का ही टैक्स तो भर रहे हैं.

इन सब कल्याणकारी कामों में पैसों का खर्च है. सरकार जनता को सदा से सोने की मुर्गी का सम्मान देती आयी है. उसका यकीन लोगों को जिंदा रखकर धीरे-धीरे जिबह करने में है. लिहाजा वह इतने ही टैक्स लगाती है कि ज़नता की सांस-सांसत में रहकर भी चालू रहे. नतीजतन हर बजट एक घाटे का सौदा है. सरकार के पास एक लघु और दीर्घकालीन कार्यक्रम है. बजट का तात्कालिक लक्ष्य पहले घाटा बनाना और फिर घटाने का अभिनय करना है. दूरगामी उद्देश्य आबादी में से गरीबों को मिटाकर गरीबी हटाना है. अब तो सब ही जानते हैं कि जनता सरकार से काम की उम्मीद नहीं रखती है. इसीलिये देश में स्वैच्छिक संस्थाओं की संख्या अनाप-शनाप बढ़ रही है. कोई संस्था उपभोक्ता आंदोलन से जुड़ी है, कोई टी.वी. के कार्यक्रमों के पीछे पड़ी है. सरकार कुछ करे न करे पर उन्हें अनुदान जरूर दे दे. सरकार भी अपने कर्तव्य और दायित्व के बारे में चौकन्नी है. वह खुद काम तलाश कर अपने को व्यस्त रखती है. घाटा बनाने के तत्काल बाद सरकार उसे घटाने में लग जाती है. घाटा बनाओ, बढ़ाओ, घटाओ से बेहतर काम कौन-सा हो सकता है!

मंत्रालय में वित्त सचिव हुकुम देते हैं, 'डैफिसिट' को कंट्रोल करना है. जल्दी से बचत के निर्देश बनाइये. अतिरिक्त सचिव संयुक्त को, संयुक्त सचिव उप को, उपसचिव अवर को,अवर सचिव अनुभाग अधिकारी तक आदेश दोहराते हैं. बात सहायक तक आकर रुक जाती है. सहायक नया है. साथियों से पुराने का पता पूछता है. एक दो हफ्ते में पता लगता है कि पुराना अपने नये विभाग में छुट्टी पर है.

सचिवालय का उसूल है कि सचिव हर आध घंटे बाद एक मीटिंग करें. वर्ना उन्हें सत्ता और शक्ति का एहसास कैसे होगा! बचत का कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण मसला है. उनका निजी सचिव साहब के हुकुम के सात दिनों बाद इस विषय पर बैठक रखता है.

''तो मिस्टर वर्मा! क्या प्रोग्रेस है इकोनॉमी इंस्ट्रक्शन की,'' सचिवजी बचत की कॉफी पीते हैं. वर्माजी संयुक्त सचिव शर्मा को निहारते हैं जो उपसचिव दंडपाणी को ताकते हैं. युवा और रूमानी प्रेमी ही नहीं, खुर्राट अफसर भी अक्सर आंखों की बोली बोलते हैं. इस मौन-नयन संवाद के बाद दंडपाणी का स्वर फूटता है, ''सर! इस बार की 'क्रिटिकल सिचुएशन' को ध्यान में रखकर हम चाहते हैं कि सेविंग के नये 'एरिया' भी कवर करें. इसके लिये जरूरी है कि 'पास्ट' के सारे 'आर्डर', 'स्टडी' किये जायें सर! हम आजादी के बाद की फाइलें निकलवा रहे हैं. अगले दस-बारह दिनों में ड्राफ्ट तैयार हो जायेगा.''

मीटिंग से लौटकर दंडपाणी को गुमशुदा फाइल की खबर मिलती है. दंडपाणी नये सहायक को उसकी नानी याद दिलाते हैं. पर मामला विचाराधीन का विचाराधीन ही रहता है. फाइल न मिलने की यही सरकारी कैफियत है. अन्यथा निर्णय तो आनन-फानन हो जायें, बस फाइल कंबख्त ही गायब रहती है.

नया सहायक 'प्रोबेशन' पर है. वह घबराकर हर सरकारी बुजुर्ग की डैस्क खटखटाता है. आयंगर उसकी मदद करते हैं, ''दिन तो अंग्रेजी प्रशासन के थे. क्या लैंग्वेज थी नोटिंग-ड्राफ्टिंग की! कितना पक्का अनुशासन! अब तो सब चौपट हो गया है. हम तो कल रिटायर हो जायेंगे. आगे तुम जानो!''

इसके बाद वह तिलकधारी वर्मा नामक हस्ती की विस्तृत जानकारी देते हैं. दूसरे विश्व-युद्ध के वक्त की इकोनॉमी का बड़ा जोर था. शर्मा मेहनत कर बचत में माहिर बन गये. वह चांद से लेकर चाय और चवन्नी तक के मसलों पर बचत के कदम सुझा सकते थे. 'बचत' शर्मा ने बचत के हर संभावित मुद्दे कलैक्ट कर लिये थे. वह जानते थे कि जब तक बजट हैं, घाटा भी रहेगा. और बचत के सरकारी निर्देश भी जारी होंगे. वह अपने साहब के सामने अपनी बनायी बचत की पचास सूत्री योजना पेश कर देते थे. अफसर मनचाहे 'पाइंट' पर 'टिक' लगा दे. इधर टिक लगी, उधर निर्देश तैयार.

नया सहायक प्रभावित हुआ. चार-पांच साल के इकोनॉमी सरकुलर तो उपलब्ध थे ही. फाइल की तलाश से आसान बचत शर्मा के उदाहरण पर अमल था. उसने शनीचर-इतवार सोते-जागते बचत के मुद्दे सोचे. सोमवार को विजयी मुद्रा में उसने दंडपाणी के आगे सरकारी खर्च में बचत के

पचास तरकीबें पेश कीं.

''फाइल कहां हैं!'' दंडपाणी ने सवाल किया

''पुराना सहायक ले गया सर!'' नये ने उत्तर दिया. जैसा सब जानते हैं, पुराने सरकारी लतियलों का मन घर-बाहर से हटकर फाइलों और फाइल-वालियों में सिमट जाता है.

''यह क्या है?''

''पुराने आदेशों का निचोड़ है सर! कुछ नये सुझाव भी हैं.''

नये बचत-प्रस्ताव अलग पन्ने पर थे. दंडपाणी ने उन पर उड़ती नजर डाली. उपसचिव के स्तर और उसके ऊपर के अधिकारी अपनी याददाश्त पर अधिक और टिप्पणी लेखन के अध्ययन में कम यकीन रखते हैं. साहब ने सहायक को कागज लौटा दिये.

''पढ़िये! क्या नया है.''

''सर! स्टाफ कारों पर करोड़ों की बरबादी है. इन पर रोक लगा दें.''

''आप पागल हो गये हैं! घर का रोजमर्रा का सामान कैसे आयेगा. दूसरे मंत्रालय के मित्रों से मुलाकात कैसे होगी!''

''मीटिंगों में भी काफी अपव्यय है. बाहरवाले दिल्ली आते हैं. दिल्लीवाले देश घूमते हैं. काम के दिन अलग जाया होते हैं....''

''रिश्ते-नातेदारों से भेंट होती है. व्यक्तिगत संपर्क से निजी काम होते हैं. बाहर की मीटिंगें कार्यकुशलता के लिये अनिवार्य हैं.''

''सर! विदेशी दौरे......''

''वह तो यों ही बहुत कम हैं. यह दीगर है कि कम का मतलब हर मुमकिन मौके पर दो-चार देशों का एक मनोरंजक चक्कर है. फारेन ट्रिप भी न रहे तो कौन स्टेट का राजपाट छोड़कर यहां बाबू बनने आयेगा. वी.सी.आर. साउंड-सिस्टम, वाशिंग मशीन, स्कॉच आदि जाते हैं तो ले आते हैं. आखिर हम लोगों को भी तो जिंदा रहना है.''

''टेलीफोन से एस.टी.डी. की सुविधा हटाने से भी खर्च कम होगा. सरकारी काम हो तो लोग ट्रंककाल करें, रजिस्टर रखें.''

''आप आधुनिक सैटीलाइट के संचार युग में कबूतर से संदेश भेजने की दकियानूसी पेशकश करना चाहते हैं! सचिव का लड़का लंदन में है, लड़की न्यूयॉर्क में. उनसे बातचीत कैसे होगी! हमारे अंकल, आंटी, भाई-बहन सब मद्रास में हैं. उनके हालचाल कैसे पता लगेंगे.''

सुझाने-नकारने का सिलसिला एक घंटे तक चलता रहा. दंडपाणी दुखी थे. बचत-निर्देश बनाने का वक्त निकला जा रहा था. अब क्या होगा! वह सचिवालय की पद्धति से-वाकिफ थे. पुराना सहायक गया तो फाइल भी चली जाती है. यह कल का छोकरा उलटे-सीधे प्रस्ताव बनाकर रही-सही कोर-कसर भी पूरी कर देगा. वह हड़बड़ाये से संयुक्त सचिव के पास गये. फिर दोनों निराशा में डूबकर अतिरिक्त के पास.

''एक ही तरीका है. हम सचिव और मंत्री को विश्वास दिलाएं कि यह नायाब वित्तीय घाटा एक अहम और स्थायी राष्ट्रीय संकट है. काश्मीर और पंजाब-सा. यह अनुचित है कि सिर्फ हमारा मंत्रालय ही इस 'क्राइसिस' से निबटने की जिम्मेदारी ले. हमें सब राजनैतिक दलों के सहयोग और सहमति से एक सर्वदलीय समिति बनाकर घाटे को घटाने के लिये बचत का इंतजाम करना चाहिये.''

सबने उनके अनुभव और सूझबूझ की दाद दी. सर्वदलीय समिति मेहनत और लगन से अपने काम में लगी है. व्यर्थ के खर्चे, मंत्रालयों की आपसी बचत-प्रतियोगिता की वजह से अब और जरूरी हो गये हैं. हर मंत्रालय सर्वदलीय समिति को पटाने के चक्कर में उस पर अंधाधुंध 'बचत' कर रहा है. कोई मेंबरों को कार दे रहा है, कोई टेलीफोन. बचत नियोजित ढंग से हो रही है. खर्च सुनियोजित तरीके से, समिति अपना काम कर रही है, सरकारी विभाग-मंत्रालय अपना. जनता बजट को भुगत चुकी है. अब बचत से उसे कौन बचाये! □

जंगल क्यों कट रहे हैं?

'बाघ एक बकरी के साथ भाग रहा था. यह विश्व के लिए अनूठी खबर थी. किसी को यकीन हो ही नहीं सकता ...' पर क्या खबर महज इतनी ही है, या इसके आगे कुछ और ऐसा हुआ कि मनुष्य जाति आज तक बाघ को ढूंढ रही है ..?

□ राधेश्याम

'गांधीयन' सरीखे उपन्यास के लेखक राधेश्याम वर्तमान जीवन की विसंगतियों को अपनी ही तरह से उकेरते हैं.
संप्रतिः दूरदर्शन केंद्र, जयपुर से संबद्ध.

यह कथा 0086वें वर्ष की है. जब राष्ट्र में राम-राज्य सप्ताह की घोषणा हुई थी. इसके तहत यह प्रचारित किया गया था कि जब तक राम-राज्य सप्ताह मनता रहेगा, सभी दुकानें रात-दिन खुली रहेंगी और कोई भी दुकानदार अपनी दुकान पर ताला नहीं लगायेगा. जहां तक कि उसके गोरखा या अन्य किस्म के पहरेदार भी दुकान पर रखवाली नहीं करेंगे. उस पूरे जश्न के दौरान कोई आदमी किसी के यहां नौकर नहीं रहेगा. कोई किसी से मार-पीट, गाली-गलौज या किसी भी प्रकार के हिंसात्मक व्यवहार नहीं करेगा. देश के जेलों से सभी कैदियों को रिहा कर दिया जायेगा और वे आठवें दिन फिर अपने-अपने जेलों में वापस लौट आयेंगे, वगैरह-वगैरह अनेकों अध्यादेश जारी कर दिये गये थे.

व्यापारी वर्गों में चोरों से ज्यादा भय पुलिसवालों से था. चोर या डाकू हो सकता था खुशियां मनाने के क्रम में अपने धैर्य को भूल भी सकते थे लेकिन पुलिस के लिए अपना धंधा भूलना असंभव था. फिर भी सात दिनों के लिए पुलिस द्वारा निहत्थों पर लाठी चार्ज, शरीफ इंसानों पर भारतीय दंड संहिता के तहत झूठे मुकद्मे लादना और उनसे भयादोहन करके मुद्राएं प्राप्त करना, अथवा गुप्तांगों में लाठी घुसेड़ने जैसी कलाओं का प्रशिक्षण भी स्थगित कर दिया गया था. साथ ही यह निर्णय ले लिया गया था कि पंद्रह दिनों के लिए पुलिस की बगल में, वायरलेस सेट की जगह भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, की एक प्रति लटकती रहे जिससे कि 'अशिष्ट' शब्द की व्याख्या करने में थोड़ी सहायता मिल सके.

इस तरह की अनेक घोषणाओं से जहां सरकारी वर्ग में खुशी की लहर ने उत्तेजना फैला दी थी वहां जनता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा. चूंकि सब कुछ बर्दाश्त कर लेना, उस देश के संविधान में लिखा हुआ था, इसलिए किसी ने कुछ नहीं कहा. लोगों में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया तक नहीं हुई. उनके चलने बोलने और काम करने की मुद्राओं से लगता था कि वे या तो ऊंघ रहे थे या अफीम की पिनक में थे या उनकी नसों में खून की जगह अलकोहल का संचार हो रहा था, मानो उन्होंने प्रजातंत्र ब्रांड की शराब, बोतल की बोतल पेट में उड़ेल रखी हो.

देखते-देखते पूरे शहर में अचानक राम के चित्रों की भरमार होने, जगह-जगह रामचरित मानस का पाठ व सेमिनार की आयोजन किया जाने लगा. राम के विशाल व्यक्तित्व का बखान करते हुए पोस्टरों हैंडबिलों और अन्य किस्म के परचों की बाढ़ आ गयी. हर घर में उनकी चर्चा होने लगी. बेटा राम के जैसा हो. पति राम के जैसा हो. भाई राम के जैसा हो. राजा राम के जैसा हो. राजा रामचंद्र की जैय-जैसे गगनभेदी स्वर क्षितिज को हिलाने लगे. भूले हुए राम, उनके आदर्श और उनके उच्च विचार लोगों को बेतरह याद आने लगे. लगा राजा राम एक बार फिर सात दिनों के लिए उस राष्ट्र में जीवित हो गये थे.

इसका सबसे ज्यादा लाभ परिवार कल्याण विभाग को हुआ. राजा दशरथ यानी राजा रामचंद्र के पिता के भले ही चार बेटे थे लेकिन राम के ज्यादा से ज्यादा दो लड़के थे. इसलिए राम राज्य और लेप्रोस्कोपिक पद्धति द्वारा वंध्याकरण और इसी प्रकार के अनेक विषयों पर सेमिनार रखे गये. इस पर तमाम विशेषज्ञों से पर्चे पढ़वाये गये. बहसें हुईं काफी खर्च हुआ. और अंत में काफी हंगामे के बाद लोग उसी निष्कर्ष पर पहुंचे, जिसको लेकर सेमिनार शुरू हुआ था. यानि हम दो, हमारे दो. इस विषय पर विशेषज्ञों ने काफी रिसर्च करनेकी सिफारिशें कीं. गांवों में लोगों के बीच लूप और निरोध की जोडी स्वीकृत की गयी या नहीं, इसके लिए कुछ बेरोजगार नौजवानों को नौकरी देने का निर्णय लिया गया ताकि राष्ट्र को यह पता चल सके कि गांव में लोग अभी शरमाते हैं या बेशर्मी से निरोध खरीदकर व्यवहार भी करते हैं? लव-कुश को परिवार नियोजन के प्रतीक के रूप में उद्घृत किया गया. पूरे राष्ट्र में राम राज्य सप्ताह मनाने के क्रम में यह एक नमूना था. इस प्रकार न जाने कितनी सरकारी, गैरसरकारी व अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं ने शहर से गांवों तक अनंत प्रकार के सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्यक्रमों का आयेजन कर लिया था.

जीव पटेल की कलाकृति

इसी क्रम में एक गांव में, जब एक बूढ़े किसान को उसके मुखिया ने बतलाया कि देश में राम-राज्य सप्ताह मनाया जा रहा है तब थोड़ी देर के लिए उसे यकीन नहीं हुआ. उसका मुंह खुला का खुला रह गया. यह देखकर मुखिया मन ही मन हंसने लगा. उसकी नजरों में बूढ़ा मूर्ख लगने लगा था. उसने मन ही मन कहा, 'गधे, तू बूढ़ा हो गया. इतना ही नहीं मालूम कि एक बार जो आदमी मर जाता है, दुबारा वापस नहीं आता!' फिर प्रकट वह उसे समझाने लगा, ''काका, बात यह है कि देश चाहता है कि एक बार यहां फिर राम राज्य की स्थापना हो जाय...''

''राम कौन बनेगा?'' बूढ़े ने पूछा.

''इसमें राम बनने की क्या जरूरत है?'' मुखिया ने उत्तर दिया.

''बिना राम के राम राज्य कैसा?''

''अब वह जमाना कहां रहा काका? अब तो प्रजातंत्र है. हम लोग उनके आदर्शों से राष्ट्र को महान बनाना चाहते हैं. उनसे प्रेरणा लेना चाहते हैं.''

''चाहते क्यों हो, लेते क्यों नहीं?'' बूढ़े किसान ने पूछा.

''यह सुनकर मुखिया ने किसी मूर्ख से बहस करना अच्छा नहीं समझा और ब्रातचीत का रुख दूसरी ओर मोड़ दिया. ''काका, गांव में सरकार ने कुछ कार्यक्रम आयोजित करने के लिए कहा है, जिसके लिए कुछ चंदा वगैरह करना ही पड़ेगा. आप तो जानते हैं कि बिना पैसे के कुछ हो नहीं सकता.''

किसान चुप रहा. फिर मुखिया ने समझाते हुए कहा, ''हमारी सरकार गरीब है, काका. उस पर भी उसने राम राज्य सप्ताह पर करोड़ों रुपये खर्च करने का फैसला किया है. आप लोग जितना देंगे, उससे सरकार की बचत होगी.''

अब बूढ़े की बारी थी. वह मुस्कराने लगा. प्रकट कुछ नहीं कहा, लेकिन मन में कहने लगा—'गधे की औलाद, तू अभी तक मुझे बेवकूफ समझ रहा है! आजादी के बाद इत्ते साल गुजर गये! फिर प्रकट उसने कहा, ''जो कहोगे, बेटा, हम करने को तैयार हैं. आखिर तुम मुखिया हो.''

यह सुनकर मुखिया बहुत प्रसन्न हुआ और फिर मिलने का वादा करके चला गया. मुखिया को वह किसान देर तक जाते हुए देखता रहा. फ़िर उसने पच्च-सा थूक दिया और बुदबुदाया, ''स्साला बेईमान! पापियों और घूसखोरों के देश में राम राज्य मनाने चला है!

सरकारी-स्तर पर राम राज्य सप्ताह के उद्घाटन के लिए यह तय किया गया कि इस अवसर पर बाघ और बकरी को एक घाट पर पानी पीने दिया जाये. जिस मुहुर्त पर फीता काटा जाये, उस वक्त दोनों एक घाट पर मौजूद हों. उस अवसर पर दूतावासों के अधिकारियों को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाये. लेकिन बाघ के पूरे होशोहवास तक, बकरी को एक साथ रखना कठिन था. क्योंकि रिहर्सल में ही तीन बकरियों की जानें चली गयी थीं. बाघ जब भी देखता, बकरी पर टूट पड़ता. अंत में उच्च स्तरीय सरकारी अफसरों एवं बाघ के विशेषज्ञों की आपतकालीन सभा में यह निर्णय लिया गया कि उसके मजबूत जबड़े को तोड़ दिया जाये या उसके सारे दांत निकाल दिये जायें. फिर उसके नाखूनों को काटकर छोटा बना दिया जाये, ताकि बाघ अपने दांतों और पंजों का उपयोग न कर पाये.

और हुआ भी ऐसा ही. तड़के ही बाघ को बेहोश करके उसके जबड़े को तोड़ दिया गया. उसके नाखूनों की कटनी कर दी गयी और राम घाट पर बांध दिया गया. थोड़ी देर बाद एक बकरी उसके पास ही छोड़ दी गयी. बकरी की नजर जैसे ही बाघ पर पड़ी, उसकी घिग्घी बंध गयी. उसने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया. जैसे-जैसे सुबह की लालिमा क्षितिज पर फैल रही थी, बकरी की असहाय चीख आसमान को छेदने

लगी थी.

थोड़ी देर बाद जब बाघ की बेहोशी कुछ घट गयी तो उसने बमुश्किल आंखें खोलकर बकरी की तरफ देखा जो लगातार मिमियाती जा रही थी. लेकिन दर्द के मारे उसका शरीर झनझना रहा था, इसलिए वह पुनः आंखें बंदकर कराहने लगा. बकरी को, बाघ की कराह ने हैरत में डाल दिया. उसने बाघ के गरजने की कल्पना जरूर की थी लेकिन बाघ एक बकरी के सामने कराहने लगे, यह उसकी कल्पना की अनंत दुनिया से बाहर की बात थी. सहसा उसे यकीन नहीं हुआ. उसने अपनी चेतना के जाग्रत होने की परीक्षा में अपना सिर जमीन पर दे मारा. तब कहीं जाकर विश्वास हुआ कि एक महान सत्य सामने था. फिर भी उसे लगा, जरूर प्रकृति में कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है.

बाघ की दर्दभरी कराह ने उसे जैसे हिलाकर रख दिया. उसने अंदर ही अंदर यह मान लिया कि वह इस बाघ का भोजन बनने के लिए नहीं, बल्कि उसकी सेवा के लिए बांध दी गयी थी. उसने बड़ी हिम्मत बांधकर, अपनी संपूर्ण जानवरीय भावनाओं के साथ, मिमियाते हुए कहा, ''लगता है, आपको कष्ट हो रहा है. मैं आपकी कोई मदद कर सकती हूं?''

इस बार बाघ के चकित होने की बरी थी. बकरी की इस मधुर आवाज ने जैसे बाघ के असंख्य दर्दों को हर लिया हो. उसे भी यकीन नहीं हुआ कि जिस बकरी को आज तक वह केवल अपने पापी पेट की क्षुधा तृप्ति का साधन समझता था, वह भीतर से इतनी करुणामयी हो सकती थी. शर्म से वह बकरी से आंखें नहीं मिला सका. नजर झुकाते हुए उसने कहा, ''हां, जालिमों ने मेरा जबड़ा बुरी तरह कुचल दिया है. नाखून उखाड़ लिये हैं कमबख्तों ने...''

''क्यों?'' भोलेपन से बकरी ने पछा.

''इसलिए कि उन्हें डर था कि मैं तुझे खा न जाऊं. क्योंकि वे लोग राम राज्य सप्ताह मना रहे हैं. उस अवसर पर हम लोगों का एक साथ फोटो लेना चाहते थे.''

''आग लगे उनके फोटा को! देखो तो तुम्हारी क्या हालत बना दी है राक्षसों ने!'' कहकर बकरी बाघ के पास आ गयी और उसके जबड़े को सूंघने व प्यार करने लगी. पता नहीं क्यों बाघ को इससे काफी सुख मिलने लगा. वह भावुक हो उठा.

''तुम्हारी आंखें बहुत अच्छी हैं...'' बाघ ने प्यार से, दर्द की परवाह किये बगैर कहा.

''तुम्हें हमारी आंखें देखने की फुर्सत ही कहां मिलती है? देखते ही हमें चीर-फाड़कर रख देते हो.'' बकरी ने उलाहना देते हुए बड़ी सरलता से जवाब दिया. बाघ क्षण भर को भूल गया कि उसका जबड़ा पूरी तरह नेस्तनाबूद था और उसके बेहोश पड़े रहने की सुइयां दी जा चुकी थीं. उसे पहली मर्तबा महसूस हुआ कि बकरी सिर्फ खाने की चीज नहीं है. उसने शरीर में एक नयी ताजगी महसूस की, फिर बकरी से कहा, ''उसके पहले कि कोई आदमी यहां आये, चलो हम भाग चलते हैं.''

''बाघ का किसी बकरी के साथ भाग जाना संसार की पहली और आखिरी घटना होगी, शायद.'' बकरी ने सहमति प्रकट करते हुए कहा.

''हां, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ.''

''अगर तुम्हारी नीयत खराब हो गयी तो?''

''मुझे तुम आदमी समझती हो क्या? तुमने संकट के समय मेरा साथ दिया है. मैं भूखा मर जाऊंगा लेकिन तुम्हारी ओर नजर उठाकर भी नहीं देखूंगा.'' बाघ ने दृढ़ स्वर से बकरी को आश्वस्त किया.

बकरी मुस्करायी और बोली, ''प्यार से भी नहीं देखोगे?''

यह सुनते ही बाघ, बकरी के पास आ गया. बकरी की कमजोर रस्सी को तोड़ दिया. आजाद होकर दोनों गेट की तरफ बढ़ने लगे. बाघ चलने में अभी लड़खड़ा रहा था क्योंकि बेहोशी की दवा का असर पूरी तरह टूटा नहीं था. दोनों चले जा रहे थे लेकिन बाघ के मन के अंदर वैचारिक द्वंद्व शुरू हो चुका था. बाघ एक बकरी के साथ भाग रहा था. यह वि की अनूठी खबर थी. किसी को यकीन हो ही नहीं सकता. कम से क बाघ की जातिवाले उसके नाम से आगामी कई पीढ़ियों तक थूक रहेंगे. उसका जिक्र आते ही संसार भर के बाघों के मुंह का स्वाद बि जायेगा.

बाघ जाति के पुजारी बाघ के भगवान के पास इतनी शिकायतें करें कि उसे नर्क में भी जगह नहीं मिलेगी. जाने कितनी कहानियां कि रूपों में कही जायेंगी. फिर भी उसे चिंता नहीं होगी. वह समाज से लड़े लेकिन बकरी को किसी तरह नुकसान नहीं पहुंचायेगा.

इधर बकरी सोच रही थी कि अचानक उसे क्या हुआ कि एक अप ही कातिल को दिल दे बैठी. फिर बाघ और बकरी दो अलग-अलग जाति हैं. हर जाति की अपनी-अपनी इज्जत है. और फिर इस प्रेम के चक्कर अगर वह गर्भवती हो गयी तो क्या होगा? बच्चा क्या बनेगा, बाघ बकरी? बकरी जाति के मुखिया पता नहीं कितनी बार अपना सि पीतल के दरख्त से टकरायेंगे. पंचायतें होंगी. बकरी जाति की इज्ज मर्यादा पर उसे कलंक का टीका समझा जायेगा. उसे बाघ खा लेता खुशी की बात थी. जाति के सम्मान की बात थी. लेकिन इससे सारा जाति का अपमान होगा कि बकरी जाति की लड़की से, एक बाघ प्या करने लगा. बकरी जाति के खुदा उसे नर्क में भी जगह नहीं देंगे. फिर वह बाघ का साथ नहीं छोड़ेगी.

दोनों सोचते हुए झुटपुटे अंधेरे में काफी दूर निकल आये थे. अभी ज पहुंचे थे, उसे बड़े शहर का ही छोटा हिस्सा था. पहले तो उन्हें लोगों डर होते लगा कि उन्हें शीघ्र ही यह बात समझ में आ गयी कि उन डरना फजूल था. क्योंकि उन लोगों ने अपनी-अपनी आंखों पर पट बांध रखी थी. वे लोग अपने शासक के अंधे भक्त थे. दो-चार लोगों बीच की कुछ बातें सुनकर बाप ने समझ लिया—वह अकसर बिना लो को बताये कहीं चला जाता था जो उन्हें आंखें बंद करने और खोलने हुक्म दिया करता था. लोग पिछले तीन दिनों से यह तय कर नहीं पा थे कि वे लोग क्या करें? हुक्म के बिना आंखें खोलकर देखने का सा किसी में भी नहीं था.

तभी बाघ की नजर केले की बड़ी दूकान पर गयी. उन्हें भूख लग थी. दोनों उस और लपके और केले खाने लगे. चपर-चपर की आवा सुनकर दूकानदार को लगा कि कोई केले चुरा रहा था, इसलिए उ पट्टी हटा कर देख ली. लेकिन देखते ही उसकी घिग्घी बंध गयी. क्यों खाने वाला एक बाघ था. दूसरे अगर वह बाघ-बाघ चिल्लाने लगता

फसल

□ महेश चंद्र सरल

एक आला अफसर का तबादला हो गया, किंतु बंगले की भूमि पर लगाये गये आलू तैयार नहीं हो पाये थे. बंगला खाली हो गया, पर ध्यान लगा रहा आलुओं पर. जब फसल तैयार हो गयी तो वे आये और आलू थोक भाव में बाजार में बिकवा गये. उनके समय के छोटे अफसरों और कर्मचारियों ने साथ दिया. कुशल रही कि नये अफसर ने इस मामले में उदारता से काम लिया और उन्होंने आलुओं पर अपना स्वामित्व नहीं जताया. बाजार में 'साहब के

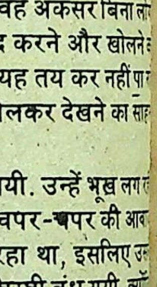

उसका नाम बिना हुक्म के पट्टी खोलने वालों में चला आता. अतएव वह राम राम करता दम साधे, बाघ के चले जाने का इंतजार करता रहा.

भरपेट केले खाने के बाद उस बस्ती से दोनों निकल गये. जंगल का इलाका वहां से बहुत दूर था. रास्ते में जब दोनों एक दूसरे के शरीर से सटकर चल रहे थे. बकरी अब तक उन लोगों के बारे सोच रही थी, जिनकी आंखों पर पट्टियां बंधी थीं. अब तक ऐसा दृश्य उसने नहीं देखा था. जब उसकी समझ में कुछ नहीं आया तब बाघ से उसने पूछा, ''आदमी-आदमी से इतना डरता क्यों है? मैं तो अपनी जाति की किसी बकरे या बकरी से नहीं डरती.''

''बाप भी किसी दूसरे बाघ से नहीं डरता.'' बाघ ने कहा.

''तो फिर उन्होंने अपने आंखों पर पट्टियां क्यों चढ़ा रखी थीं?''

''वे आदमी थे. वे लोग उतना ही देख सकते हैं जितना उन्हें देखने का हुक्म है.''

बकरी समझ गयी. बाघ की ओर उसने कातिल आंखों से काम बाण चलाते हुए कहा, ''मुझे कभी-कभी तुमसे बहुत डर लगता है. आग और पानी में कभी दोस्ती हुई है आज तक?''

''तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करती?'' मैं जानवर हूं वफादारी मेरी रग-रग में है. मैंने तुम्हें चाह लिया है. मरते दम तक तुझ पर आंच नहीं आने दूंगा.''

इस तरह बातें करते हुए वे दोनों चलकर एक नयी बस्ती के पास रुक गए. वहां के लोगों को देखकर भी उन्हें अजीब-सा लगा. वहां के बूढ़े-बच्चे, सभी मुंह पर पट्टियां चढ़ाए हुए थे. वे देख सकते थे, सुन सकते थे, लेकिन उनसे बोलना संभव नहीं. इसके पहले किसी की नजर उन पर पड़े, वे रास्ता काटकर दूसरी तरफ से निकल गए. बकरी से फिर नहीं रहा गया. उसने पूछा, ''उन लोगों ने मुंह क्यों बंद कर लिया था?''

''इसलिए कि सरकार ने उन्हें कुछ भी बोलने की आजादी, एक विधेयक लागू करके छीन ली है. उन लोगों को सिर्फ देखने और सुनने का ही अधिकार है.''

बाघ के ज्ञान पर बकरी को गर्व हो आया. जानवर होते हुए भी बाघ को इतनी जानकारी थी, यह सोचकर पुलकन से भर गयी और उछल-उछलकर नृत्य करना शुरू किया. हालांकि उसने अभी तक एक भी हिंदी फिल्म नहीं देखी थी, फिर भी वह उसी नायिका की तरह लग रही थी जो नायक के सामने उछल-कूदकर नाच दिखाती हुई गाना गाकर अपने प्रियतम को मोहित करने की कोशिश करती है. बाघ भी हिंदी फिल्म के नायक की तरह मुस्कराया ओर बकरी को अपने आगोश में भरकर उछल-कूद करने लगा.

आलू कहकर उनका मान बढ़ाया जाता रहा.

पर एक ऐसी ही दूसरी घटना में पहले वाले अफसर जब अपनी गेहूं की तैयार फसल लेने साधिकार आ गये, तो वर्तमान अफसर ने उस पर अपना स्वामित्व जताया और तर्क दिया कि फसल की तैयारी के समय जो बंगले में रहता है, वह उसी की होती है. दोनों पक्षों की महिलाओं ने इस मामले में जमकर रुचि ली. बात आम होकर हवा के साथ सभी जगह पहुंच गयी. किसी ने ताने दिये और किसी ने हंसी उड़ायी. समाचार पत्रों ने भी अपनी भूमिका निभायी.

पता चला कि ऊपर पहुंची खबरों और वहां के हस्तक्षेप से दोनों अफसरों को आधी-आधी फसल पर ही संतोष करना पड़ा. □

जब दोनों प्रेम करके अलग हुए, मंथर गति से रास्ते पर आगे बढ़ने लगे. सूरज के ढलने में कुछ ही क्षण बाकी थे. जंगल की छाया दूर से ही दिखाई पड़ने लगी थी. जंगल तक पहुंचने के लिए एक और बस्ती थी जिसे पार करना था. अचानक उन दोनों की नजर एक आदमी पर पड़ गयी जो उन्हें चकित नजरों से देख रहा था. डर से उसका चेहरा पीला पड़ गया था. उसके कानों पर बड़ी-बड़ी गद्देदार पट्टियां बंधी थीं. बाघ ने फौरन भांप लिया और उस आदमी से डरकर अपना रास्ता बदल लिया. अचानक आदमी दौड़कर, बिजली की गति से चिल्लाता हुआ बस्ती की तरफ भागा. बाघ भी छलांगे मारता हुआ तेजी से जंगल की तरफ दौड़ा. लेकिन बकरी की स्थिति नाजुक हो गयी थी. वह दौड़ने में बाघ का साथ नहीं दे पा रही थी. बाघ कुछ देर तक तो उत्साहित करके उसे दौड़ाता रहा, लेकिन बकरी फिर शिथिल पड़ गयी.

तभी बाघ को दूर से आते हुए लोगों के चीखने की आवाजें सुनायी पड़ीं. उसने गर्दन उठाकर देखा, सबके हाथ में कोई न कोई हथियार था और वे तेजी से बाघ की ओर बढ़े जा रहे थे. बाघ, यह देखकर चिंतित हो उठा. बकरी समझ गयी. उसकी आंखों में आंसू छलक आए.

''तुम मेरी चिंता मत करो ... भाग जाओ ...! भगवान के लिए जल्दी करो ...!''

''मैंने कहा न, मैं आदमी नहीं हूं. तुम संकट के समय मेरे पास आयीं. मैं तुम्हें संकट में डालकर नहीं भाग सकता. तुम कोशिश करो.''

''मैं बहुत थक गयी हूं मैं भाग नहीं सकती. तुम्हें मेरी कसम!'' बकरी ने समर्पण भाव से कहा.

''देखो, मैं तुम्हारी कोई कसम नहीं मानूंगा. चाहे मैं मर जाऊं, तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता.''

बाघ के इस निर्णय को सुनकर बकरी घबरा गयी. लोग तेजी से नजदीक आते जा रहे थे. बकरी की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे. बाघ के चेहरे पर बेचैनी का समुद्र लहराने लगा.

''सुनो, मेरी अंतिम इच्छा पूरी करोगे? तुम्हें इस ऐतिहासिक प्यार की कसम .... मुझे वे किसी भी हालत में जीवित नहीं रहने देंगे. इससे अच्छा है कि मुझे तुम मार दो. कम से कम मरने वक्त एक संताष तो रहेगा?'' बाघ को चुप देखकर बकरी ने फिर पूछा, ''क्या मेरी अंतिम इच्छा भी पूरी नहीं करोगे?'' बकरी ने गिड़गिड़ाते हुए कहाए

''नहीं, मुझसे यह नहीं होगा. मैं तुम्हें प्यार करता हूं.'' बाघ ने फिर दुहराया.

''देखो, जिद मत करो. मैं तुमसे अपनी मुक्ति की भीख मांगती हूं. मेरी आत्मा को संतोष मिलेगा. जल्दी करो .... नहीं तो वे तुम्हें भी मार डालेंगे. मुझे मुक्त कर दो. इसके पहले कि वे मुझे कुट्टी-कुट्टी करके गोश्त बनाकर भून डालें ....''

यह सुनते ही बाघ के पुट्ठों में हरकतें हुई. वह जोर से गरजा बकरी के सिर को मुंह में पकड़कर पूरी ताकत से झटका दिया. कुछ ही क्षण के लिए बकरी के शरीर में कंपन हुई और वह निश्चेष्ट पड़ गयी. दूसरे क्षण बाघ ने सिर को धड़ से अलग कर दिया. फिर धड़ को मुंह में पकड़कर जंगल की तरफ दौड़ गया.

थोड़ी देर के बाद लोग उसका पीछा करते हुए, उस स्थान पर रुके जहां बकरी का ताजा-ताजा खून गिरा था और उसका मस्तक लुढ़का पड़ा था. सब लोगों के चेहरे पर खून को देखकर बाघ का आतंक छा गया. वे सशक्ति हो उठे. तभी उनमें से किसी ने कहा, ''अभी छोड़ दो .... शाम हो गयी है. कल बंदूक लेकर जंगल जायेंगे ....''

कहा जाता कि तभी से कुछ आदमी उस बाघ की तलाश में जंगलों में घुस गए हैं और जंगलों को काट-काटकर बाघ की तलाश कर रहे हैं. □

फिर से

एक चुप्पी उनके बीच फैल गयी. शायद दोनों ही अपने आप में अनजान होकर संयम और शालीनता से दुनिया के नये सवाल का उत्तर ढूंढने लगे थे ... कैसे थे यह सवाल ...? क्या इनका कोई उत्तर मिल सका उन्हें?

□ हरिसुमन बिष्ट

जन्म: 1 जनवरी, 1958
प्रमुख कृतियां: 'ममता' 'आसमान झुक रहा है' (उपन्यास) 'सफेद दाग', 'आग और अन्य कहानियां' (कथा-संग्रह) 'अपनी जबान में कुछ कहो' (रूसी कथाकार विक्टोरिया तोकारेवा की कहानियों का संपादन)
संप्रतिः 'इंद्रप्रस्थ भारती' के संपादन विभाग से संबद्ध.
संपर्कः सी-241 बी, सेक्टर-19, नोएडा-201301

झक जुनाली रात.

चारों तरफ दिन-सा प्रतीत हो रहा था, फिर भी वह मान बैठी थी मुंह बाये अंधेरा खड़ा है. हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा है. चांद औ टिमटिमाते तारों की रोशनी सदा-सदा के लिए अलोप हो गयी है. में पेड़ों पर टूटते-झपटते चमगादड़, मुंडेर पर बैठे उल्लू के कर्कश पर ताल देता कठफोड़वा की खट्-खट् उसे गहरी अंधेरी रात अनुभूति करा रहे थे. सांझ ढलते ही उसने दरवाजा बंद कर लिया अपनी गुदड़ी पर पसर गयी. करवट बदलती, सोचती रही कि घर-बाह ही क्यों अब मेरे जीवन में ही गहरा अंधेरा फैल चुका है.

उसकी आंख लग गयी.

दरवाजे पर दस्तक-सी हुई. वह उठी नहीं. उसे लगा, मैं कोई सप देख रही हूं. वरन् इस अंधेरी रात में दरवाजे पर आकर दस्तक कौन दे भला! अब दस्तक देनेवाला अपना है ही कौन? अपनी पूरी दुनिया उजड़ चुकी है. उस सच को सपना मानकर उसने आंखें मूंदी ही र

दस्तक बढ़ती गयी, तेज होती गयी. फिर भी वह उसे सपना मान भुला देने का प्रयास करती रही. उसे अपनी विस्मृति का भास हुआ पूरा शरीर तो सोया हुआ है पर चेतना जागी हुई है. आंखें भी बंद ही तभी उसे यह स्वर सुनाई दे रहा है. उसने गहरी नींद सोने और विस्म के लिए करवट बदली. प्रयास विफल रहा. वह उठी, बुदबुदायी, " कठफोड़वा ने तो मेरी नींद ही छीन ली है. और दिन में यह गांवड़ी लेने नहीं देती है."

उसके बुदबुदाने पर दस्तक थम गयी. उसने घर के कोने में रखे पु चीथड़े, टाट-पट्टियां उठायीं और दरवाजे के खुले जोड़ों में उन्हें दिया ताकि बाहर का शोर सुनाई न पड़े.

वह अपनी गुदड़ी पर लौट आयी.

दस्तक जो उसके बुदबुदाने के साथ थम गयी थी वह पुनः प्रारंभ गयी.

वह दुखी हुई. उसे लगा-कठफोड़वा चीड़ के पेड़ को छोड़कर दरवाजे पर आ चुका है. वह अपनी चोंच से दरवाजे की सांकल हिला है. लेकिन आज तक वह कभी नहीं आया. उसने मन में सोचा कि उठ दरवाजा खोले और उड़ा दे. लेकिन उसकी हिम्मत नहीं हुई. सांकल तरह एक भय उसे भी हिलाने लगा: 'अब मेरे पास बचा ही क्या उसने मन को समझाने के अंदाज में कहा, 'मैं तो सपना देख रही सपने में अपनों को देख रही थी. अपने पति के पांवों की आहट सुन थी. अपने अज्जो के दरवाजे पर खड़ा होकर दस्तक देने को सुन रही दरवाजा खोलने के लिए ज्योंही अपना सपना संजो रही थी कि कठफोड़वा ने ..... अपने बेटे की बलाईयां नहीं लेने दी मुझे. मैं अपने से नहीं मिल सकी. मेरा सपना अधूरा ही रहा—सपना खंडित गया—ओह इसका भी क्या दोष. आज से पहले मेरे दरवाजे पर यह नहीं आया—पूरे बीस साल हो गये हैं इस घर को संभाले हुए. आंधी-अंधड़ तो नहीं, कोई आफत तो नहीं घिर आयी उस पर! अपने मन को समझाते हुए दरवाजा खोला.

बाहर जुनाली रात देखकर उसे आश्चर्य हुआ. यह रात है या हाथभर चढ़ आया है. अंचभित होकर उसने आंखें उघाड़ीं—यह है. यह जीवन सिंह ही है—उसका पति. उसका प्यारा जीवन. अपनी आंखें मिचमिचायीं. 'नहीं, यह जीवन नहीं है—हो भी नहीं भूत हो सकता है उसका. यही मेरे दरवाजे को जोर-जोर से पीट रहा वह उसे देखकर दहल-सी गयी, 'यह जीवन की भूतिया आत्मा न सकती. उसका भूत यहां नहीं आ सकता, यह कोई चोर-उचक्क फिर लुटेरा है.' उसने झटके से अपना दरवाजा घुड़क दिया, उसे अकेली विधवा होने का एहसास हुआ. एक अबला होने का एह हुआ. यह जीवन का भूत होता तो वह कभी नहीं डरती. जीवन से

बहुत प्यार करती थी. वह भी उसे हमेशा आंखों में समाये रहता था. उसे असमंजस में घिरी एवं भयभीत होकर दरवाजा घुड़क देने पर एक स्वर उभरा–''लीला.''

'लीला!' वह स्वयं बुदबुदायी, 'यह स्वर कैसा? क्या इस चोर को मेरा नाम मालूम है? नहीं, इसे मेरा नाम कैसे मालूम हो सकता है भला! गांव का कोई भी बड़ा-छोटा, औरत-मर्द मेरा नाम नहीं जानता फिर यह अपरिचित–ओह, तब तो यह जीवन का भूत ही है. मालूम था तो सिर्फ जीवन को. मगर भूत बोल सकता है? मुझे नहीं मालूम. मैंने तो ऐसा कभी नहीं सुना.' उसने धीरे से दरवाजा खोला. मन हुआ, उससे पूछे उसकी हिम्मत नहीं हुई. उसने अपने अतीत को पलटकर देखा :

जब मैं ब्याहकर इस घर में आयी तब 15 साल की थी और जीवन अट्ठारह साल के. सास-ससुर दोनों सिर पर थे. घर-बांहर के काम में हाथ बंटाने वाला तीसरा कोई नहीं था. जीवन हल जोतता, हाट-बाजार जाता तो मैं सासूमां के साथ खेत-खलिहान और गाड़-गधेरी जाती. कुछ ही दिनों में गृहस्थी की गाड़ी रफ्तार में आ गयी. जात-बिरादरी की बराबरी पर आ गये. सासूमां कहती, ''बहू है कि साक्षात् देवी है, लक्ष्मी है. जब से पांव इस घर में पड़ा सभी रतन हाथ लग गये.'' ससुर तो बस मुझे देखकर लोट-पोट हो जाते. और सासूमां से कहते, ''बहू को देखकर जी मोटा हो गया अज्जो की मां! अब तो आहार भी बढ़ गया है. कौर से बढ़कर आधी रोटी, कभी-कभी तो पूरी रोटी ऊपर खा लेता हूं. अब स्वाद आया न बहू के हाथ की पकायी रोटी का. आज तक तो खाली पेट भरायी चल रही थी तुम्हारे साथ.''

और दोनों खिलखिला उठते लोग कहते, ''शादी के बाद जीबुआ भी जीवनसिंह हो गया है. वह नासमझ नहीं रहा. उससे भी तो दुःख-सुख में सलाह-मशविरा करना चाहिए.''

घर के बदलते माहौल के बारे में सुनकर मैं सोचती, क्या शादी के बाद ही आदमी समझदार होता है. उससे पहले नहीं. ससुराल में आकर लड़की को अपना जीवन नयी साड़ी की तरह धो-सुखाकर तहा देना होता है. अपना पिछला सब कुछ भुला देना होता है. इस गांव के लोग तो जैसे मेरा नाम ही नहीं जानते. जो भी मिलता है 'जीवनसिंह की बहू' या फिर सीधे-सीधे 'जीवन की बहू' कहकर पुकारते हैं. तब मुझे लगता था, मेरा नाम ही गुम हो गया है. मेरी अपनी पहचान ही गुम हो गयी है. शादी के चंद रोज बाद ही एस.एस.बी. के सिपाही गांव के लोगों को बंदूक और राइफल चलाने की ट्रेनिंग देने आये. मेरा नाम भी वहां दर्ज किया गया. हर रोज हाजिरी होने लगी. सभी का नाम लेकर पुकारा जाता और मुझे 'जीवन की बहू'. पहलेपहल तो बहुत हंसी आयी. कुछ सोचा भी नहीं, और जब फायरिंग हुई तो मेरी सारी गोलियां निशाने पर ठीक लगीं. हफ्ते भर बाद माह भर की ट्रेनिंग के लिए शिमला जाने का आर्डर मिल गया. मैं बहुत खुश हुई. लेकिन आर्डर में मेरा नाम वही दर्ज था–''जीवन की बहू''. मुझे बहुत अफसोस हुआ. एस.एस.बी. के कमांडर के पास जीवन ही गया. उनका भी कहना था–'यह सुधार पहले क्यों नही किया गया? अब एस.एस.बी. के रिकार्ड के अनुसार यही नाम है–इसे ही होना चाहिए.'

यह सुनकर मैं टूट गयी. ट्रेनिंग के लिए शिमला जाने का ध्येय छोड़ दिया. उस दिन जीवन ने बहुत समझाया, ''तू क्यों उदास हो रही है लीला! तेरा नाम तो मुझे याद रहना चाहिए. दुनिया नाम भुला दे तो क्या फर्क पड़ता है. दिलों में फर्क नहीं आना चाहिये.''

''पर मैं शिमला तो नही जाऊंगी न इस नाम से. वहां के लोग भी क्या कहेंगे. मेरे नाम की हंसी करेंगे.''

''तुम न जाना चाहती हो तो ठीक है. तुम्हारे बदले मैं फौज में चला जाता हूं. तुम अपने गांव की रक्षा तो कर सकती हो न अब. मैं देश रक्षा के लिये जाऊंगा. जानती हो आजकल सरकार बहुत ज्यादा सिपाही भरती कर रही है फौज में, चीन की लड़ाई के बाद.''

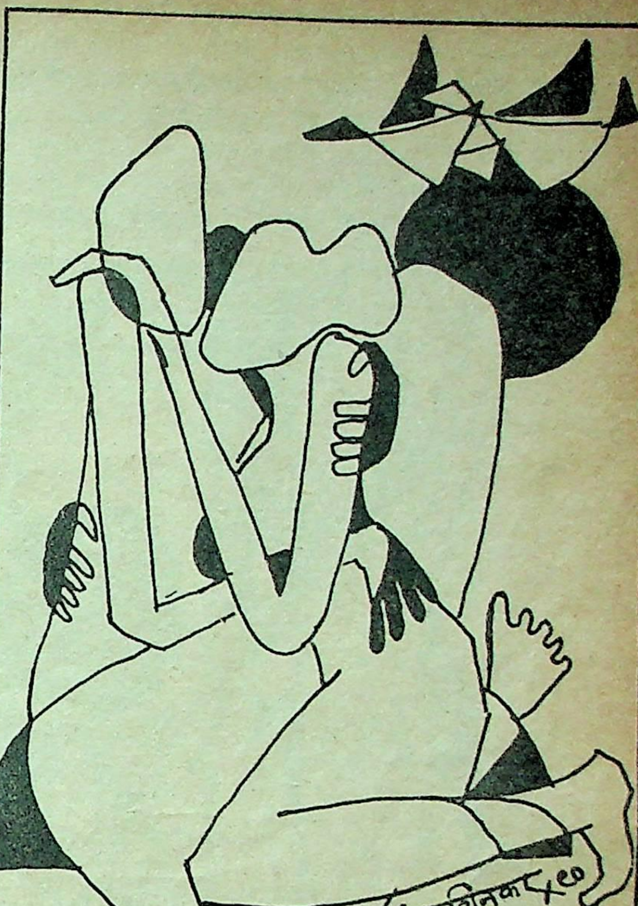

''हां, ठीक कह रहे हो जीवन. देश की रक्षा तो हमारा पहला काम है. तुम भरती हो जाओ. दुश्मन पर मेरे नाम से भी एक गोली चला देना. तब देखना मेरे नाम से चली गोली कभी खाली नहीं जायेगी.''

'तब तो एक क्यों सारी गोलियां तेरे नाम से चलाऊंगा. फिर तो एक भी दुश्मन नहीं बचेगा लीला!'' यह कहते जीवन ने मुझे अपनी बाहों में कस लिया था. एक जोश रगों में दौड़ने लगा. उसी समय सिर पर हाथ रखकर उसने कसम ली थी कि वह एक भी दिन घर पर नहीं रहेगा. ये सारी बातें उस रात को हुई थीं. सुबह हुई. जीवन घर से चला गया भरती होने. सच्ची लगन जागी थी मन में. रानीखेत पहुंचने की देरी थी. वह भरती हो गया. साल भर बाद घर लौटा तो वह पहले जैसे जीवन नहीं रहा. सूरत ही बदल गयी. चेहरे का रंग ही बदल गया. गाल पिचक गये. हाथ में छाला गांठें बन गयीं. उससे जब पूछा तो वह बोला, ''बहुत कष्ट में बिताये नौ महीने लीला! तुझसे वचन न किया होता तो कभी का छोड़-छाड़कर आ लौटता. ट्रेनिंग के समय तो मौत भी न मालूम कहां छुप जाती है–तुम यकीन करो लीला गांव की ट्रेनिंग तो कुछ भी नहीं है–सिवाय यह जानकारी के कि रायफल के तीन मुख्य भाग होते हैं–बट, बॉडी और बैरल या लकड़ी लोहा और पीतल राइफल की ये चीजें ही पूछते थे एस.एस.बी. के सिपाही. मगर फौज में लीला...''

साल पर बाद घर लौटा तो जीवन का वही संबोधन था. उस दिन के और आज के स्वर में कोई फर्क नहीं है, गौर से देखा-जीवन ही है.

''लीला!'' पुनः संबोधित किया, ''पहचान नहीं रही हो क्या? मैं हूं, मैं हूं जीवन.''

"जीवन!" उसने दरवाजा पूरी तरह खोला और आगे बढ़ी. "जीवन तुम ...."

"हां लीला! मैं ही हूं जीवन." उसने बाहें फैलायीं, "पहचान नहीं रही हो क्या? आओ इधर आओ. मुझे गौर से देखो. मैं ही हूं न."

"हां, मगर तुम तो ....."

"हां, तुम ठीक सोच रही हो."

"आओ, अंदर आओ, मेरा घर अंदर है. तुम्हारे आने को कोई देख लेगा. मन ही मन जल-भुन जायेगा."

"कौन देखेगा इस आधी रात में. सारा गांव सोया हुआ है."

"ये तो हैं जो मुझे मुंह चिढ़ाते हैं. देखो कैसा मुंह बना रहा है अब भी. और ये सुनो इनका चीखना-चिल्लाना. लोगों को कैसे जगा रहे हैं. तुम्हारे आने की खबर देने के लिये."

"तुम क्या कह रही हो, किससे कह रही हो."

"इनसे कह रही हूं. तुम क्यों पहचानोगे इन्हें. ये जून, ये चमगादड़ और यह कठफोड़वा तो मेरे दरवाजे की सांकल को भी हिला देता है."

"हां, ठीक कह रही हो लीला! चलो, अब अंदर ले चलो मुझे."

लीला की बाहें थाम लीं जीवन ने और अंदर चले आये. बाहर के सापेक्ष धुप अंधेरा. लीला ने इशारा किया और धीरे से बोली, "आओ इधर आओ. यह है मेरी गुदड़ी, बैठो."

"किधर मुझे तो कुछ भी नहीं दिख रहा है."

"देखो, मेरी आंखों से देखो."

"ढिबरी नहीं बालोगी?"

"नहीं."

"क्यों?"

"उसकी रोशनी मुझे अच्छी नहीं लगती."

"क्यों"

"अब मैं इस अंधेरे की आदी हो चुकी हूं." इसमें मुझे सब कुछ है."

ठीक कह रही हो. आओ, तुम भी बैठो अपनी गुदड़ी पर."

मैं बैठी-बैठी तब से थक गयी हूं. पीठ भी दुखने लगी है. सीधा नहीं होता."

"तो मेरे समीप बैठोगी भी नहीं."

"पहले दरवाजा बंद कर लेती हूं."

"क्यों?".

"जून का उजारा मेरी गुदड़ी की तरफ बढ़ आयेगा. मुझे यह नहीं लगता. इससे डर लगता है."

"क्यों? यह तुम्हारा घर है. अपने भीतर ही डर लगता है आश्चर्य!"

"हां, बहुत डर लगता है मुझे. अपने भीतर का डर. कहीं दरवाजे खुले रह गये तो—ओह कहीं दरवाजा खुला ही रह उसकी चांदनी मेरे बिस्तर तक रेंगती चली आयेगी. कहीं आंखें मैं गहरी नींद सो गयी तो यह चांदनी मुझे झुलसा देगी. रात-रात भर जगी रहती हूं. दरवाजे के जोड़ों को भी बंद कर हवा का तेज झोंका आकर मुझे झकझोरने लगता है. दरवाजे के ठूंसे चित्थड़ों को गिरा देता है. मैं उन्हें ठीक करती हूं, फिर .... बेरुखी से कहती हूं—क्यों बर्फ बिखेर रही है ये हवा. मेरा शरीर ही जम चुका है. देखो जीवन तुम खुद छूकर देखो—एकदम बर्फ है न?"

"तुम्हें मरे लौट आने की आस नहीं थी क्या?"

"आस तो बहुत की पहलेपहल. लड़ाई की खबर सुनती लोगों से रेडियो की खबर पूछती. खबर सुनकर बहुत खुश भी कि तुम छंब में दुश्मन से भिड रहे हो. आगे बढ़ रहे हो. बड़ा

गुठलियां

□ सुकेश साहनी

"मांजी चाय! बहू की मीठी आवाज सुभद्रा कानों में पड़ी. चाय का पहला घूंट पीते ही लगा चाय केवल दूध से ही तैयार की गयी है. सुभद्रा पुलकित हो उठी. राकेश और रीना को उसकी सेहत कितनी चिंता है! शायद इस बार उसने गांव से राकेश के यहां आकर कोई गलती नहीं की है.

दीवार पर अपने पति की माला चढ़ी फोटो को देखते हुए पुरानी यादों में खो गयी. बचपन के बारे में सोचते ही लिए बागों की ओर दौड़ते बच्चे उसकी आंखों के आगे लगते हैं. उसे शहतूत बहुत अच्छे लगते थे, पर वह चाहकर नहीं खा पाती थी. उन दिनों हर वर्ष उसके भाई बहनों की में वृद्धि हो जाती थी और उनमें से किसी एक को कमर से उसे मां के कामों में हाथ बंटाना पड़ता था. भाइयों से बहुत होती थी. मां उन्हें बादाम और चिलगोजे खाने को देती पिताजी भी मूंगफली की तरह मेवे फांका करते थे. जब

मांगती तो कहा जाता, "ये सब चीजें लड़कियों के खाने के लिए नहीं होतीं." चौदह वर्ष की आयु में उसका विवाह हो गया था और तब से अब तक उसका समय बच्चे पैदा करने, करवाने और फिर उन बच्चों को पालने-पोसने में बीत गया था.

इन्हीं बातों को सोचते-सोचते वह थक गयी. रोहित और नन्हीं बिट्टी उसके पास बैठे आम खा रहे थे. पास ही राकेश खड़ा अखबार पढ़ रहा था.

"मां, हम लोग कल बीस-पच्चीस दिनों के लिए एल.टी.सी. पर साऊथ जा रहे हैं...." राकेश ने अखबार से आंख हटाए बिना मां से कहा, "तुम हमारे पीछे घर का जरा ध्यान रखना.... वैसे रीना सब इंतजाम करके जायेगी....तुम्हें हमारे पीछे कोई परेशानी नहीं होगी."

गाढ़े दूध से तैयार चाय का आखिरी घूंट सुभद्रा को बहुत कड़वा लगा. तो इसीलिए लाया है मुझे गांव से. उधर बिट्टी गला फाड़-फाड़कर रोने लगी थी. रीना ने चुपके से आम का गुठली वाला भाग रोहित को दिया था जबकि बिट्टी काफी देर से गुठली की मांग कर रही थी.

रोहित अपनी छोटी बहन के रोने की परवाह किए बिना बड़ी तेजी से गुठली चूसे जा रहा था. □

करती थी मन-ही-मन.

"क्यों?"

"बहुत अधिक मलाल. तुम छंब में अकेले लड़ रहे थे दुश्मन से. काश मैं भी तुम्हारे साथ होती. मेरा निशाना तो तुमसे भी सही था न. तुम्हें याद है—एस.एस.बी. की फायरिंग में पांच बुल और चार सेंटर मारे थे. एक गोली आउटर पर न मालूम कैसे चली गयी और तुम." वह जोर से खिलखिलायी, "और तुम फेल हो गये. तुम्हारी सभी गोलियां तो ....."

"ठीक कह रही हो. मैं उस दिन क्यों आज तक फेल हुआ हूं"

"ऐसा क्यों सोचते हो जीवन!"

"सच लीला, पाकिस्तान की फौज हमारी फौजों से बहुत पीछे थी. आज भी पीछे ही है हर तरफ से. हमारे देश के सिपाही अपने यश व सम्मान के लिये नहीं देश के लिये लड़ते हैं. देश-रक्षा के लिये लड़ते हैं—पद प्रतिष्ठा की तो वे सोच भी नहीं पाते. ऐसा सोचने का वक्त ही कहां मिलता है उन्हें. मैं निशानेबाजी में पहले ही फेल हो चुका न, उसका परिणाम भी तुम देख रही हो. अब 13 वर्ष दुश्मन की रोटी-नमक खाकर लौटा हूं."

"ऐसा क्यो सोचते हो जीवन! तुम जानबूझकर तो उनकी पकड़ में नहीं आये न?"

"नहीं, आखिरी गोली दागने तक तुम्हारा नाम लेकर लड़ता रहा. मेरे पांचों साथी एक ही बार में मारे गये. मैं बच गया. लड़ता रहा. जब मेरे पास एक ही गोली बची तो मैंने अपने मरे हुए साथियों की मैगजीन ढूंढी. कहीं भी नहीं मिले. उनके साबुत जिस्म नहीं मिले. पांचों के जिस्मों के सैकड़ों-हजारों कतरे-कतरे बिखर चुके थे. मैं हताश हो गया. बिना गोलियों के दुश्मन के सामने टिका रहना या फिर आत्मसमर्पण करना रास नहीं आया. सिर्फ एक गोली बची थी. दूर-दूर तक नजर दौड़ायी. चारों तरफ़ धुंध और उसके बीच आग उगलती तोपें, मशीनगन और एक भीषण स्वर सुनायी पड़ रहा था. कोई भी नहीं दीखा. सभी दुबके पड़े थे. दुश्मन ने फायरिंग तेज कर दी. मैदान छोड़कर भागना कायरता लगी. शेष बची गोली अपनी कनपटी पर दागने को निशाना साथ ही रहा था कि दुश्मन ने दबोच लिया. वे मुझे पकड़कर ले गये. फिर मेरी सुध किसी ने नहीं ली. बटालियन के अन्य साथियों ने भी कोई खोज खबर नहीं ली. उन्होंने सोचा, उन पांचों के साथ मैं भी मारा गया हूं. काश उस दिन ऐसा हो गया होता ...."

"मगर जीवन, तुम्हारे शहीद होने की खबर तो मुझे भी पोस्टमैन ने दी थी. उसने मेरे सामने ही तार खोलकर पढ़ा था."

"अच्छा....."

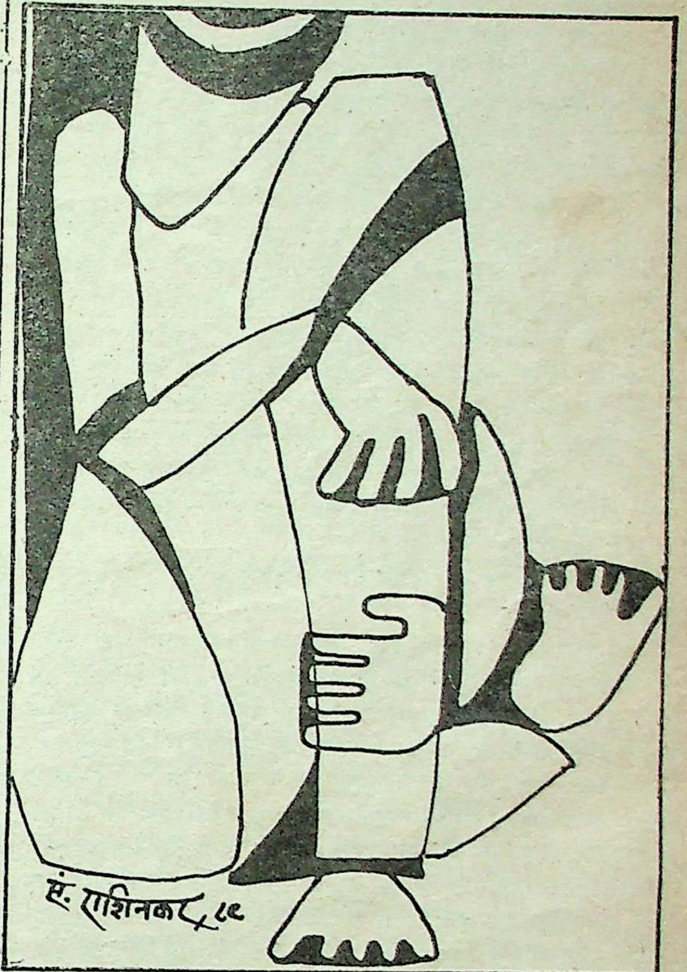

"और हफ्ता या दस दिन के बाद यह वर्दी देखो—यह वर्दी नहीं है अब. मेरे दरवाजे पर के पर्दे हैं. रात-दिन लटके इन पर्दों में मैंने तब से अपनी आंखें काटकर चिपकायी हैं."

"ओह यह वर्दी भी...."

"हां, मुझे नहीं आया आज तक कि यह वर्दी तुम्हारी ही है. ये मुझे तुम्हारे बदन पर फिट न आने का एहसास दिलाते रहे हैं. इसी उम्मीद पर आज तक जीवित हूं. आज की हकीकत जान लेने को ये मुझे जीवित रखे रहे. मैं इन्हीं के सहारे जीवित हूं जीवन—इन्हीं के सहारे."

"मगर मेरे पकड़े जाने की खबर तो सरकार को दे दी गयी थी. तुम्हें उसकी सूचना नहीं मिली क्या?"

"नहीं, अचानक नहीं. यह खबर मिल गयी होती तो मेरी यह गत नहीं होती. यह घर यों ही तबाह नहीं होता. बस जीवन अब तो काल के दिन गिन रही हूं."

"क्या तुम इतनी टूट चुकी हो? हताश हो चुकी हो? मैंने कभी सोचा भी नहीं कि इस तरह तुम हार मान लोगी. तुम्हारे कहने पर मैंने परदेश का मुख देखा. फौज में भरती हुआ. तुम्हें याद है जब मैं भरती होने के

लिये गया—उस दिन तुमने क्या कहा था—देश के लिये जान भी चली जाये तो उस पर दुःख नहीं करोगी. यही था तुम्हारा विश्वास, तुम्हारी हिम्मत."

"दुख तो मुझे जरा भी नहीं हुआ था उस रोज जीवन! जब पोस्टमैन तार लाया था. तुम यकीन मानो मेरा एक भी आंसू नहीं टपका था. गांव के छोटे-बड़े और औरत-मर्द सभी ढांढस देने आये. मैंने उन्हें फटकार लगा दी—फौजी चूहे-बिल्ली और गीदड़ की मौत नहीं मरते. सीना खोलकर गोली खाते हैं. वे तो वर्षों तक याद किये जाते हैं. वे तो मरकर भी जीवित हैं."

"तिस पर भी आज यह दशा कर डाली?"

"उन लोगों ने एक नहीं सुनी. कहने लगे—तुम्हारे मरने की खबर पाकर भी मैं खुश हूं. मैं अपने को विधवा नहीं देखना और कहना चाहती. बड़े-बुजुर्गों ने मुझे दुतकारा. औरतें आयीं, मेरा चरेऊ तोड़ा, चूड़ियां तोड़ीं और गले का गुलुबंद, कान के कर्णफूल निकाल कर रख दिये. मैंने उन्हें काफी रोका, समझाया. वे मुझे बेवा बनाकर ही थकीं."

"और जब सुबह मुझ पर नजर पड़ेगी तब."

"तब तो भगवान ही जाने. क्या कुछ कहेंगे. मेरी तो उस दिन इच्छा हुई कि जहर खाकर गहरी नींद सो जाऊं. जब भी सोचा उसी समय अजीत को सामने पाती. इसे तुम मुझे डरपोक कहोगे लेकिन तब जहर खाकर मर जाना कायरता लगी. जहर खाने को हाथ बढ़े नहीं. फिर कल्पना में तुम्हारे मारे जाने की याद करती रही कि गोली कहां पर और कैसे लगी होगी. अपने गंगरथों में लगी रहती तो एकाएक हाथ-पांव जड़ बन जाते. अजीत को भी हाय हो गयी. वह कभी चक्की के सहारे बैठा रहता तो कभी दरवाजे के कोने में सिसक-सिसक रोता रहता. उसे कुछ भी नहीं सूझता था."

"अपना अज्जो तो अब जवान हो चुका होगा. मेरे कंधों पर आ लगा होगा?"

"हां, पूरा गबरू हो चुका होगा. तुम्हारी खबर सुनकर उसका मन पढ़ाई पर नहीं लगा. तुम ही सोचो जरा, वह पढ़ाई करता भी कैसे? इस खेती में कुछ हो तब न! तुम्हारा सहारा था, वह भी नहीं रहा. तुम्हारा आखिरी मनीआर्डर मिला तो वह तुम्हारी ही तेरहवीं पर खतम हो गया. उसकी स्कूल की फीस बंद हो गयी. संग के स्कूल जाते वह मुरझाया रहता घर पर. बहुत समझाया उसे—दो एक खेत और बेच दूंगी. दो खेत तो पहले ही बेच चुकी थी. उसने मेरी एक नहीं मानी. बोला—'इस तरह खेत कब तक बेचती रहोगी मां. असली पढ़ाई तो अब शुरू होगी. इस तरह सभी खेत बिक जायेंगे. अपना एक ठिया-ठिकाना भी नहीं बचेगा. अपनी थाती ही बेच देंगे तो हम कहीं के नहीं रहेंगे.' वह खिन्न हो गया. तुम तो जानते ही थे—जब वह छोटा था करीबर छह-सात बरस का कैसा चिढ़ाया करता था. मैं भी फौज में जाऊंगा तो दुश्मन को ठैं-ठैं उड़ा दूंगा और फिर बहुत बड़ा आफिसर बनूंगा. उसने अपनी जिद पूरी की."

"वह भी फौज में चला गया है?"

"हां, वह फौज में चला गया. मेरा सहारा बन गया वह. घर का खर्च भी ठीक-ठाक चलने लगा. मुझे अपने साथ परदेश ले गया. तुम कभी ले गये मुझे अपने साथ. कभी सोचा भी तुमने. भूलकर भी नहीं. कुछ दिन वह मुझे आगरा ले गया. तब उसकी बटालियन वहां थी—वहां उसने ताजमहल दिखाया. चली तो गयी मैं. वहां मगर अपना कोई नहीं. न बोली और न भाषा और न मेरी जान-पहचान का पड़ोस ही. मेरा मन नहीं लगा. चली आयी. इस माटी से तो मोह हटता ही नहीं. फिर ...."

"फिर ....!"

"और फिर वह नहीं माना. बोला, तू घर पर अकेली क्या करेगी मां. कुछ दिन के लिये संग चली चलो न. तुम्हारे साथ रहने से मुझे भी चिंता नहीं रहेगी और मैं ना-ना करते हुए भी संग चली गयी. वहां मन भी लग गया. अपने ही सब लोग मिल गये. आगरे की तरह वहां दिन भर भीतर ही बंद नहीं रहती थी. पड़ौसी कभी मेरे पास चले आते तो कभी मैं उनसे दिल बहला लेती. सोचती, अबकी अज्जो घर भेज देगा तो—बहू लाने की बातें चलाऊंगी. मगर ......"

"क्यों चुप हो गयी तुम? रो रही हो क्या? ये गरम-गरम आंसू ही हैं न? मुझे कुछ भी नहीं दिख रहा है लीला! ढिबरी बाल नहीं रही हो तुम. बताओ न फिर क्या हुआ?"

"क्या होना था जीवन! अब आगे न पूछो. मेरे करम ही फूटे थे. सुबह-सुबह कलेवा करके चला था अज्जो घर से. दिन के खाने को नहीं गया. मैं उसकी बाट देखती रही. वह नहीं आया."

"क्या कह रही हो तुम?"

"तुम सोचोगे कि उसके साथ भी ऐसा ही हुआ. नहीं, स्वर्ण मंदिर का कम पूरा कर दिया था उन्होंने. पूरा मंदिर खाली करवा दिया था. उसने बताया कि दो एक रोज में सब कुछ ठीक हो जायेगा. कई उग्रवादी पकड़े गये हैं, कई मारे गये हैं. उसकी बटालियन के भी कई सिपाही मारे गये हैं. जब वह शाम होने पर घर लौटकर दिन की बात बताता तो मेरा दिल ठौर छोड़ देता. कैसी निर्दयी भूमि है यह और उस दिन उसने ड्यूटी पर जाते हुए बताया था कि काम पूरा होने पर मुझे गांव छोड़ देगा. ब्लू स्टार ऑपरेशन करने वाली बटालियन यहां नहीं रहेगी शायद. दूसरी बटालियनें आयेंगी उनकी ठौर पर अचानक उसी दिन उग्रवादियों ने देश-द्रोहियों ने घात लगाकर हमला किया था. कई जवान मौके पर ही मारे गये. अपना अज्जो भी घायल हुआ था. उसे अस्पताल में भर्ती किया. मैं उसके साथ रही दो दिन तक. मेरा साथ रहना उसे भाया नहीं. वह छोड़ गया मुझे सदा-सदा के लिये. मुझे अब न रोना आया और न हंसना ही."

"यह सब तुमने अपनी आंखों से देखा? वह घायल अजीत ही था. वह घायल मरने वाला हमारा ही बेटा था."

"हां, वह अजीत ही था. अपना अज्जो."

"ओह, यह सब तुम्हारे भाग्य का ही दोष है लीला! काश उस दिन मैं भी मारा जाता तो ...."

"तुम्हारे मारे जाने का मुझे जरा भी दुःख नहीं हुआ. तुम्हारा लक्ष्य मुझे मालूम था कि लड़ाई में लड़ने वाला जवान अपने लिये नहीं अपने जीवन के लिये नहीं बल्कि अपने देश के लिये लड़ता है. मगर..

"यही अफसोस तो मुझे भी है कि वह अपनों की गोली का शिकार हुआ. दुश्मन की गोली सीने पर लगती. वह शहीद हो जाता लेकिन वह तो अब शहीद भी नहीं कहलायेगा. उससे बेहतर तो...."

"हां, वह शहीद भी नहीं कहलाया. उसके मारे जाने की एक निशानी आज तक नहीं मिली मुझे. हां, कभी मन में संदेह होता है. उस को याद करती हूं—अजीत नहीं मरा. वह अब भी जीवित है. तब दुश्मन से लड़ाई नहीं हुई थी. उस दिन तो उस शहर के दो आदमियों में आपस में तनातनी हुई थी. बात-बात में नौबत यहां तक आयेगी किसे मालूम था. दरअसल वह तो उनमें बीच-बचाव करने उन्हेंह समझाने गया था. हम आपस में लड़ते-झगड़ते रहे तो लोग क्या कहेंगे? दुनिया क्या कहेगी. दुनिया झगड़ने पर सवाल करेगी तो हम क्या जवाब देंगे. ऐसे अधिक दिनों तक चलता रहा तो दुनिया भी सवाल नहीं करेगी. दुनिया भी गूंगे की तरह टुकुर-टुकुर देखती रहेगी."

वे दोनों एक दूसरे का मुंह देखते रहे. एक चुप्पी उनके बीच फैल गयी. शायद दोनों ही अपने आप में अनजान होकर संयम और शालीनता से दुनिया के नये सवाल का उत्तर ढूंढने लगे थे. दरवाजों के छेदों से घुसी चांदनी मद्धिम पड़ने लगी थी. दोनों को दिशा खुलने का भास हुआ. लीला बोली, "मैं कब से तुम्हारा इंतजार कर रही थी जीवन!"

जीवन बोला, "और मैं आ गया. मगर अपना अज्जो ...."

दोनों के बीच गहरी उदासी फैल गयी. नियति की निर्मम मार झेलती हुई लीला को लगा कि उसे वह सब कुछ मिल चुका है जिसे वह तेरह वर्ष पहले खो चुकी थी. वह उठी. दरवाजा खोला. दिन चढ़ आया था.

चिड़िया और चील

तू जो चाहती है कर ... बस एक बार अपने पैरों पर खड़ी हो जा ... तेरे होने से घर में सब कुछ चहक उठता है ... चिड़िया तो आकाश में उड़ती हुई ही सबसे ज्यादा प्यारी और मोहक लगती है

□ सुषम बेदी

दो वर्ष पूर्व धारावाहिक के रूप में प्रकाशित व चर्चित 'हवन' सरीखे उपन्यास की लेखिका.
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी, डिपार्टमेंट ऑफ मिडिल ईस्ट लेंग्वेजेज एंड कल्चर, 607 कैंट हॉल, न्यूयार्क. एन.वाय.-110027

मम्मी ने पिंजरे का किवाड़ खोल दिया और इंतजार करने लगीं कि चिड़िया वापिस पिंजरे में लौट आये...लेकिन चिड़िया लाँग-जंप भरकर कभी रसोई की आल्मारी की छत पर जा बैठती तो कभी खाने की मेज पर. रसोई की खिड़की खुली थी ... ममी को डर हुआ कि चिड़िया कहीं बाहर न उड़ जाए ... वे पिंजरे के पास हथेली में दाना लिए उसे पुकारने लगीं ... सहसा उन्हें रीढ़ में झुरझुरी-सी महसूस हुई ... फरफराते पंखों पर ममी को कितनी ही तस्वीरें तिरती-सी दीखने लगीं—झालरोंवाली फ्रॉक में इठलाती नन्हीं गुड़िया, चटक रंगोंवाली बिकनी पहने बीच पर गीली रेत में लोटती चिड़िया...हां यही तो था उसका नाम. घर पर सब प्यार से उसे चिड़िया बुलाते थे. चिड़िया की ही तरह तो दाना चुगती थी वह .... चिड़िया की ही तरह चहचहाती थी .... तब पर नहीं निकले थे उसके कि फुर्राकर उड़ सके .... बस डाल से डाल तक फुदका करती थी. हिंदुस्तान छोड़ने से पहले इन डालियों की कमी भी नहीं थी .... लगातार एक गोद से दूसरी गोद ....

ममी उसे डाक्टर बनाना चाहती थीं, डैडी वकील. दोनों खुद भी डाक्टर थे...डैडी कार्डिओलोजिस्ट और ममी रेडियोलोजिस्ट. न पैसों की कमी थी न प्रोत्साहन की ... ढाई साल की उम्र से ही इस अमरीकी शहर की सबसे बढ़िया प्राइवेट नर्सरी स्कूल में प्लास्टिक के अक्षरों और नंबरों को हाथ से महसूसती वह जल्दी ही उन्हें पहचान कर सबको अपनी प्रतिभा से प्रभावित करने लग गयी थी. ममी जब भी पास होतीं ... बस यही सवाल पूछतीं ... स्कूल में क्या हुआ ... और स्कूल से लौटने पर ... बेबीसिटर क्या सिर्फ उसे टेलिविजन ही तो नहीं दिखाती रही? कुछ फुरसत होती तो ममी कहतीं, अच्छा वो वाली राईम सुना दो .... 'ट्विंकल ट्विंकल लिटल स्टार' ... ममी को खुश करने के लिए चिड़िया दुहराने लगती तो ममी जरूर कहती—"यू विल बी ए स्टार माई चाइल्ड?"

फिर चिड़िया को जैसे कुछ याद आ जाता और वह मचलकर कहती, "विल यू गो टू वर्क टुमारो?"

"यैस आई हैव टू ... नहीं तो तुम्हारे स्कूल की फ़ीस कौन देगा?"

"आई डोंट वांट टु गो टु स्कूल टुमारो!"

"दैट इज इंपासिबल ... यू हैव टु गो टु स्कूल!"

"नो ... वी गो टु पार्क."

"संडे, वी गो टु पार्क."

"नो ... टुडे!" चिड़िया जिद करती.

"लेकिन अब तो शाम हो गयी ... अंधेरे में पार्क नहीं जाते."

नर्सरी से किंडरगार्टन और फिर फर्स्ट ग्रेड में पहुंच जाती है चिड़िया एक दिन ...

"मॉम हू डू यू लव मोस्ट?"

ममी उसे प्यार से दुलारती है, "अपनी चिड़िया को!"

"नो SS दैट इज रांग ... मिस बर्गर सेज एवरीवन लव्ज हिमसेल्फ़ मोस्ट ... यू लव योअर सेल्फ़ मोस्ट ... नॉट मी ..." ममी अवाक् उसे देखती रहती है.

फिर एक दिन डिपार्टमेंटल स्टोर से बाहर निकलते ही वह पैसे मांगने लगती है ... कोई फटेहाल, बेघर गरीब इंसान पैसा मांगता है और चिड़िया उसे देना चाहती है ... ममी ने तब डांट लगा दी थी. "सब झूठमूठ की गरीबी है इस देश में ... ड्रग खाकर पड़े रहते हैं और फिर आने जाने वालों को तंग करते हैं ... रहने दे ... कुछ नहीं देना इसको!'

चिड़िया बड़ी हो रही है.

"माम, कैन आई हैल्प यू इन द किचन?"

"नहीं बिटिया ... वह सब मैं खुद संभाल लूंगी ... तू जा पढ़ ... अपना होम वर्क खत्म करले, फिर तेरी भरतनाट्यम की भी तो क्लास है आज ... उसका अभ्यास भी करना होगा ... वर्ना तेरी टीचर गुस्सा करेगी."

एक बार ममी बीमार पड़ जाती है ... चिड़िया कहती है, "मैं स्कूल नहीं जाऊंगी ... घर पर कौन देखभाल करेगा तुम्हारी!"

"जा जा, मेरे बहाने से स्कूल मिस करने की कोई ज़रूरत नहीं. ऐसी कोई बीमार नहीं कि मेरे लिए तुम पढ़ाई का हर्ज करो. पढ़ना तुम्हारे लिए र बसे ज्यादा इंपेंटेंट है!"

"बस पढ़ो ... पढ़ो ... पढ़ो ... इससे हटकर तुम कोई बात ही नहीं करती."

"और क्या ... इस देश में सफलता की यही एक कुंजी है. तुमको अपने अमरीकी साथियों से बेहतर ग्रेड्स लाने होंगे तभी तो तुम बढ़िया हार्व स्कूल और फिर आईवी-लीग यूनिवर्सटी में जा सकोगी. एक बार किसी आईवी-लीग यूनिवर्सटी में पहुंच गयीं तब तो हमेशा के लिए ज़िंदगी बन गयी समझो ... तरक्की का हर रास्ता खुल जाता है, तुम—" सहसा ममी की कमर में तीखा दर्द उठा और वे बोलते-बोलते रुक गयीं ... चिड़िया ने ममी के चेहरे पर उभरती दर्द की छाप देखी ... पर वह रुकी नहीं, उसे स्कूल पहुंचना था.

उस दिन चिड़िया एक टेलिफोन नंबर रट रही थी .. ममी ने हैरान होकर पूछा तो वह पूरी कहानी सुनाने लगी, "मॉम, लिंडा की मॉम और डैड ने उसको इतना मारा कि वो मर ही गयी ... उसके मॉम-डैड को पुलिस पकड़कर ले गयी .... मिस जॉनसन कहती हैं कि ये टेलिफोन नंबर चाइल्ड एबयूज हैल्प का है ... अगर तुम्हारे मॉम या डैड तुमको मारें तो इस नंबर पर फोन कर देना ... फिर उनको भी पुलिस पकड़कर ले जायेगी.

"अब तुम मुझ पर गुस्सा करोगी न, तो मैं भी पुलिस को फोन कर दूंगी .... मॉम लिंडा अब कभी स्कूल नहीं आयेगी ... जब मर जाते हैं तो फिर कभी स्कूल नहीं जाते ..."

ममी को लगा था उनके हाथ से कुछ बहुत कीमती फिसला जा रहा है ... बहुत चाहकर भी जिसे पकड़े रखना नामुमकिन हो रहा है. कुछ घर से बाहर भी है जिस पर उनका अपना कोई बस नहीं ... क्या ये समाज उनको भी कोई धमकी दे रहा है?

ख़ैर पढ़ते-पढ़ते चिड़िया शहर के नामी हाई-स्कूल में भी पहुंच गयी ... बड़ी मुश्किल से दाखला मिलता है इस स्कूल में ... हजारों परीक्षा देते हैं लेकिन दाखला दो-तीन सौ को ही मिलता है ... प्रतियोगिता से प्रताड़ित उन सैकड़ों छात्रों के बीच चिड़िया कुछ फिसलने लगी. छमाही रिपोर्ट कार्ड मिला तो ममी सकते की हालत में थी.

"यह बायौलोजी में तुझे 'सी' कैसे मिला?"

"आई थिंक, द टीचर डज नॉट लाइक मी!"

ममी उसके टीचर से मिली थीं ... बायौलोजी की क्लास सुबह साढ़े आठ बजे होती थी ... टीचर ने ममी से कहा था, "लगता है आपकी बेटी को पूरी नींद नहीं मिलती .. मेरी क्लास में कुछ सुस्त और सोयी-सोयी सी दीखती है."

ममी शाम होते ही चिड़िया के पीछे पड़ जाती, "टाईम मत वेस्ट कर ... जल्दी सोना है ... तुझे तो हमने डॉक्टर बनाना है ... बायौलोजी में पिछड़ गयी तो काम कैसे चलेगा!"

"पर ममी, मैं जल्दी नहीं सो सकती ... इंगलिश टीचर के लिए आज यह किताब पढ़कर बुक रिपोर्ट लिखनी है."

ममी को समझ नहीं आता क्या करे—कहे.

बायौलोजी में दुबारा नंबर कम आये तो ममी के हाथ-पैर ठंडे पड़ गये थे ... फिर चिड़िया से सलाह करके एक झूठ गढ़कर टीचर को बताया गया था कि टेस्टवाले दिन चिड़िया बीमार थी. डर के मारे टेस्ट कर दिया ... क्या अब दुबारा ले सकती है!

डैड के प्रोत्साहन पर चिड़िया ने स्कूल की स्पीच-टीम में भी हिस्सा लिया है ... वकील के लिए पब्लिक-स्पीकिंग बहुत जरूरी होती है न!

आज शाम चिड़िया को कल सुबह होनेवाले गणित के इम्तहान की तयारी करनी है, दोपहर के स्पीच टूर्नामेंट के लिए स्पीच को रट्टा ल है ... रात एक बजे तक चिड़िया जगी रही ... सुबह बायौलोजी के घंटे में वह फिर नींद के झूले ले रही थी.

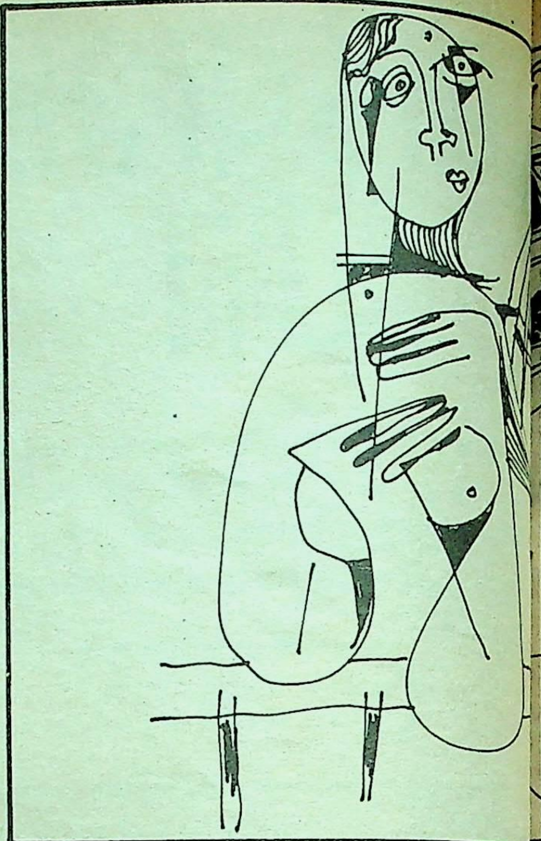

शाम को डैड ने पूछा था कि स्पीच कैसी रही तो चिड़िया पुरस्का जीत पाने के अपराध-भाव को एक उदासीनता से ढककर बोली, " डिड नॉट विन!"

"वॉय?"

यूं डैड ने विस्तार से जानने के लिए ऐसा पूछा था ... पर चिड़ि अपराध-भाव अब आक्रमण का आकार ले बैठा ... भड़ककर "वैल, यू कांट विन ऐवरीटाईम!"

चिड़िया को शांत करने के लिए डैड पूछ बैठे, "तुम्हारी स्पीच टॉपिक क्या था?"

"आइ डोंट टु रिपीट ...यू कैन रीड इट योअर सेल्फ़." लिखित भ की कॉपी चिड़िया ने डैड को पकड़ा दी. डैड ने शीर्षक पढ़ा 'टीन सुएसाईड्स' यानि 'किशोर आत्महत्याएं' ... पहला पैराग्राफ इस था कि इस देश में हर साल करीब दस हजार टीन एजर्स आत्महत शिकार होते हैं जिसकी वजह ड्रग, इन्सिक्योरिटी, डिप्रैशन अकेलेपन के साथ-साथ खासकर आवासियों के बीच इसकी किशोरों पर उनके मां-बाप द्वारा बढ़ता हुआ दबाव है ... मां-बाप अपनी ख्वाहिशों और अधूरे सपनों को अपनी औलाद द्वार करवाने के लिए इन किशोरों को बदहवास घोड़ों की तरह मार-मारकर चलवाए रखना चाहते हैं जिसका परिणाम बहुत होता है. भौंचक्के भाव से डैड ने बार-बार वे पंक्तियां पढ़ीं... विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जो वे पढ़ रहे हैं, वह कुछ घंटे उनकी बेटी एक भाषण में कह चुकी है. सहसा वे जोर से फटका

"यह सब क्या बकवास लिखी है?"

अबकी चिड़िया शांत रही.

"बकवास नहीं डैड ... यूं भी इस स्पीच के तथ्य एक जाने

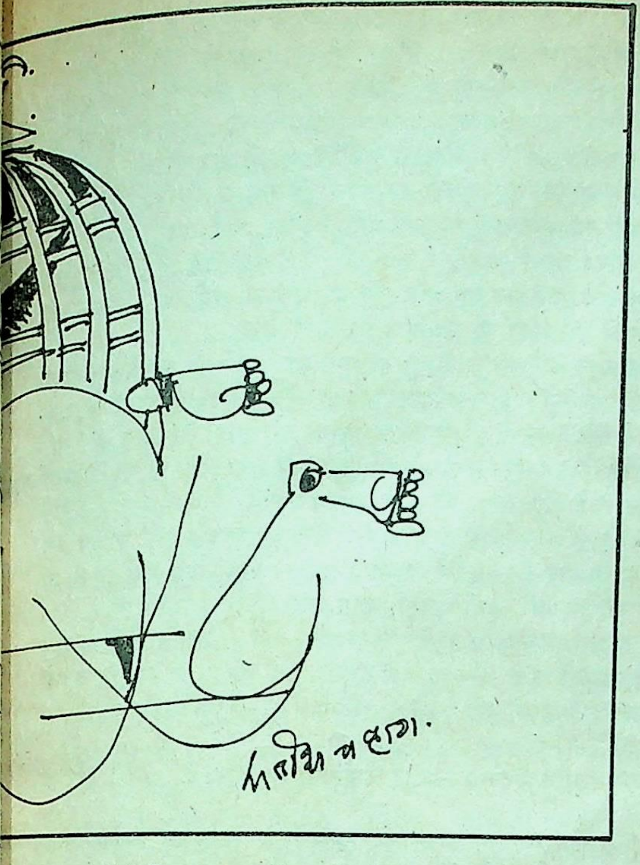

शोधकर्ता के हैं ... स्कूल में यूं सबको स्पीच पसंद आयी थी."

सहसा डैड एकदम चुप हो गये. थोड़ी देर बाद पता नहीं क्या सोचते-सोचते बोले, "क्या तुमको ऐसा लगता है कि हम तुझ पर प्रैशर डाल रहे हैं?"

"कभी-कभी .... पर यह मेरे अपने बारे में तो नहीं ... यह तो ..."

"खैर अब मैं तुझे कुछ नहीं कहूंगा."

लेकिन मम्मी को डैड के इस रुख पर गुस्सा आ गया था, "रहने दो, तुम तो फालतू में घबरा जाते हो! हम ऐसे तो डॉक्टर नहीं बन गये ... दिन-रात पढ़ते थे ... घर के काम भी करते थे ... इससे तो मैं कुछ भी कराती ही नहीं ... कम से कम पढ़कर अपने-आप में कुछ बन जाना तो उसका फर्ज है! हम अपने फायदे की बात थौड़े ही करते हैं ... देखो, भरतनाट्यम भी छूट गया इसका ... किसी भी काम के लिए वक्त नहीं ... तो वक्त है किसलिए? ज्यादा ही दिमाग बिगाड़ देते हैं यहां बच्चों का ... मां-बाप न हुए मानो दुश्मन हों बच्चों के ... फालतू में मां-बाप में भी गिल्ट ..."

मन ही मन मम्मी डर भी गयीं थीं जैसे उन्हें कोई धमकी दे रहा हो.

लेकिन भूमिकाओं में अदला-बदली हो रही थी. मम्मी-डैडी कुछ भी चिड़िया का नापसंद कहते तो वह भड़क जाती, "कम डाऊन ... आइ विल डू एट माइ ओन पसंद."

बड़ी तेजी से मम्मी-डैडी उसकी जिंदगी में फालतू और बेकार की चीज होते जा रहे थे ... उसे मम्मी-डैडी की बातें, उनके अनुभव अपने संदर्भ में एकदम इररैलेवेंट लगने लगे ... उनमें एक और जीवन-शैली, एक और संस्कृति की बू थी जिसे चिड़िया अपने लिए बहुत पिछड़ा और हानिप्रद भी समझने लग गयी थी. मम्मी-डैडी के खिलाफ बोलते हुए उसकी आवाज में एक मसीहापन होता जैसे कि दुनिया भर के मां-बापों के खिलाफ आंदोलन में वह किशोरों का नेतृत्व कर रही हो. उसे विश्वास हो गया था कि उसके अपने और ज्यादातर मां-बाप बातें प्रजातंत्र की करते हैं पर होते तानाशाह हैं.

चिड़िया आईवी-लीग तो नहीं पर एक अच्छे कालेज में भी दाखिला पा गयी थी ... होड़ यहां भी कम नहीं थी.

उधर अब चिड़िया के पर भी तो निकलने लगे थे ... वह उड़ना चाहती थी ... घरौंदे से बाहर खुली हवा पर तैरना चाहती थी. ... एक सहपाठी उसे अपनी ओर खींच रहा था ... हवाओं पर साथ-साथ तैरने का आमंत्रण.

उसने सहपाठी से कहा, "मम्मी को लड़कों से दोस्ती पसंद नहीं."

सहपाठी बोला, "मम्मी को कुछ बतलाने की जरूरत ही क्या है ..."

"लेकिन मम्मी को यूं मैं सब कुछ ..."

उसने बात काटकर पूछा, "कितने साल की हो?"

"अठारह!"

"तो तुम वयस्क हो, अब मम्मी की जेल से रिहा हो जाओ."

"लेकिन ..." वह अभी भी घबरा रही थी." सहपाठी बोला, "किसकी जिंदगी है यह?"

"मेरी."

"तो मम्मी ने जीना है इसे या तुमने!"

घर पर चिड़िया ने मम्मी से कहा, "मैं बोर्डिंग में रहना चाहती हूं"

"क्यों?"

"इंडिपेंडेंटली रहूंगी.'

"अभी से ऐसी बात ... पढ़ाई खत्म करले ... फिर शादी के बाद तो हमसे अलग रहना ही है."

"लेकिन घर पर पढ़ाई ठीक से नहीं होती ..."

"यहां घर पर भला तुझे कौन डिस्टर्ब करता है?"

"क्या तुम समझ पाओगी कि अकेले रहने की भी एक जरूरत होती है ... कि मां-बाप के साथ रहकर बच्चे का पूरा विकास नहीं होता ... तुम्हारा जमाना, तुम्हारा देश बहुत फर्क था ... क्या तुम्हें भरोसा नहीं होता कि मेरी दुनिया तुमसे बहुत अलग हो सकती है ..."

मम्मी नहीं मानी. चिड़िया और मम्मी में आये दिन किचकिच होती. चिड़िया की सहन-शक्ति खत्म हो रही थी, "आई डोंट अंडरस्टैंड ... आइ एम एन एडल्ट नाऊ ... तुम लोग मुझे मनमर्जी से क्यों नहीं रहने देते!"

"जब खुद कमाने लगोगी तो रह लेना मनमर्जी से ... कुछ ज्यादा ही पर निकल आये हैं तेरे!

"मेरे कालेज की फीस देती हो ... मुझे खाने-पहनने को देती हो इतना ही शै है न तुम्हारा ... इसके लिए तुम मुझे गुलाम बनाकर नहीं रख सकतीं!"

मम्मी को जैसे लकवा मार गया हो, "कैसे कह गयी तू ये बात ... बस यही नाता है तेरा-हमारा ... बस इसीलिए टिकी है तू यहां कि और कोई तेरे कालेज की फीस नहीं भरेगा ... हमारा प्यार ... हमारी कद्र ... हमारे साथ रहना अब गुलामी लगती है तुझे ...!"

अचानक चिड़िया डर गयी ... ये तो बतंगड़ बन गया ... मम्मी को नाराज करके वह जायेगी कहां ... अभी उसके परों में उड़ने की पूरी ताकत कहां है?

"सॉरी मॉम ... आइ डिड नॉट मीन टु हर्ट यू ... आइ लव यू!" और मम्मी के जिगरे में फिर से वात्सल्य के दरिया बह निकले.

"देख बिटिया ... हम जो कहते हैं तेरे भले के लिए ही ... पहले पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो जा, फिर ..."

"बस मॉम, हो गया न भाषण शुरू .. जब भी मैं तुमको 'आइ लव यू' कहती हूं ... तुम इतनी 'इंस्पायर्ड' हो जाती हो कि बस कभी न रुकने वाली 'स्पीच-रेन' शुरू हो जाती है!"

"चल-चल मजाक ज्यादा ही करना सीख गयी है!" मम्मी बनावटी गुस्से से कहती है.

और उस शाम चिड़िया के लिए खास पकवान बनते हैं ... उसका

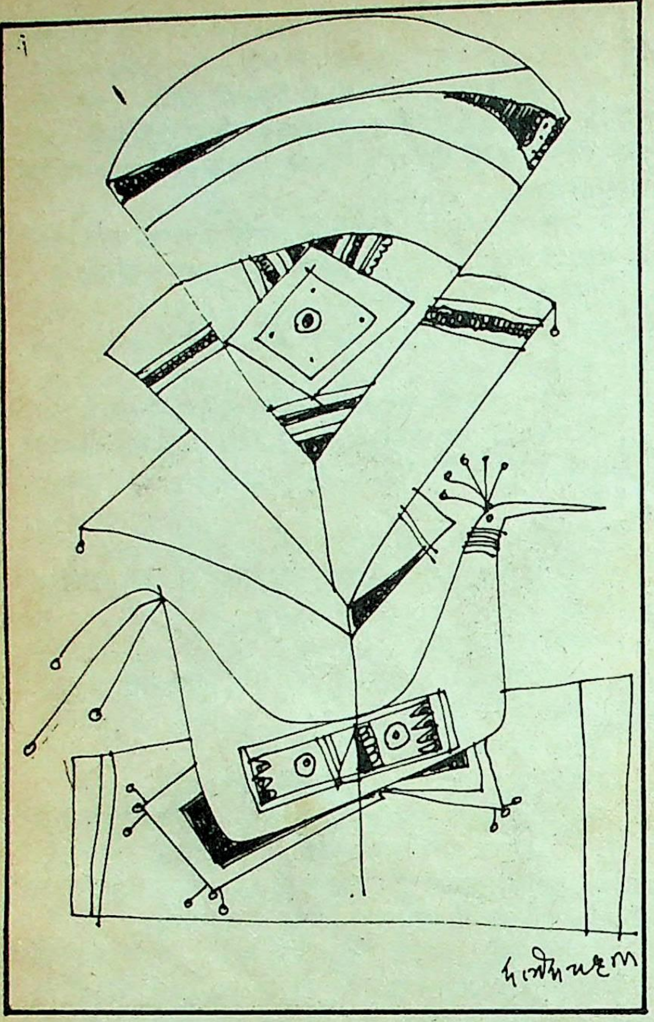

पॉकेट-अलाउंस बढ़ा दिया जाता है और ममी उसे नया ड्रेस खरीदवाने के लिए ब्लूमिंगडेल्ज ले जाती है.

चिड़िया ने जब सारा किस्सा अपने सहपाठी से कहा तो वह बोला, ''तुम्हारी ममी बहुत लोनली और इन्सिक्योर है ... तुमको खोने से डरती है ... इसी से तुम्हें तरह-तरह की रिश्वत देकर पास रखना चाहती है.''

''तुम्हारा मतलब ...''

''दखो, मां-बाप का भी अपना स्वार्थ होता है ... वे अपना पोजैशन खोना नहीं चाहते ... इसलिए हर तरीके से बच्चों .. एडल्ट बच्चो को भी कब्जे में रखने की कोशिश रहती है उनकी ... अभी ये आसान भी है क्योंकि तुम उन पर पूरी तरह से डिपेंडेंट हो.''

चिड़िया आत्म-दया से भर उठी, ''कैसी एग्जिस्टेंस है हमारी ... कि अपने सरवाइवल तक के लिए दूसरों का मुंह जोहना पड़ता है ... मेरा उस घर में कतई मन नहीं लगता ... पर कहीं और रहने का ठिकाना भी तो नहीं ... पता नहीं कब छुटकारा होगा.''

''हम दोनों अगर नौकरी कर लें तो कोई छोटी-सी जगह किराए पर लेकर साथ रह सकते हैं.''

''और पढ़ाई?''

''पढ़ाई साथ-साथ चलती रहेगी.''

और चिड़िया अपने घरौंदे से उड़कर आ गयी. एक छोटी-सी नौकरी कर ली. डाक्टर-वकील बनने के सपने तो यूं भी उसने नहीं उसके मॉम-डैड ने देखे थे ... खुद वह ऐसा कुछ करना चाहती थी जिससे एकदम मशहूर हो जाए ... पर अभी उसके दिमाग में साफ नहीं था कि क्या करने से वह फटाफट नाम और शोहरत पा सकती है. कभी-कभी वह फिल्म बनाने का सोचती ... पर अभी न पैसा था, न ट्रेनिंग, न ही स्पष्ट विचार या विषय ... लेकिन महत्वाकांक्षा थी और दम था ... भीतर एक अकुलाहट-सी बनी रहती ... उसका सहपाठी सादा जिंदगी जीने में विश्वास रखता था ... एकदम मिनिमलिस्ट ... कम से कम चीजों के साथ गुजारा करना ... मिट्टी से जुड़ी जिंदगी की ओर लौटना ... लेकिन इस नयी आत्मनिर्भर जिंदगी का अपना ही सुख था. चिड़िया पूरी तरह से अपनी नयी दुनिया में मस्त हो गयी. हर दिन आर्ट-हिस्ट्री के नये-नये कोर्स और किताबें पढ़ते हुए, नये-नये लोगों से मिलते और नये घर का दायित्व निबाहते हुए वह मॉम-डैड को भूल-सी गयी. कम से कम नये जीवन में उसे कहीं भी उनका संदर्भ नहीं दीखा.

एक बार ममी बहुत बीमार हो गयी थीं ... उनका ऑपरेशन होना था. डैड का फोन आया था पर चिड़िया को बहुत पढ़ाई करनी थी. तब ममी ने हिंदुस्तान से मौसी को बुलवाया था अपनी देखभाल के लिए.

मौसी ने दिन-रात ममी की तीमारदारी में लगा दिया था पर चिड़िया के रुख से वे बहुत खफा थीं ... वे ममी से कहतीं, ''तुम तो अपनी बेटी से डरती हो ... कुछ कहती ही नहीं. मेरी बेटी इस तरह करे तो उसकी टांगें तोड़कर न धर दूं ... इतनी आजादी आखिर क्यों? कुछ मकसद भी तो होना चाहिए न!'' ममी सुनती रहतीं और मौसी कहती जातीं.

''दरअससल तुमको बच्चे पालना आता नहीं ... यहां आजादी के बोल बोले, उसकी चर्चा और नारों से इतना आतंकित हो जाते हो कि बच्चों को अनुशासित भी नहीं करते ... तभी ये बच्चे न हिंदुस्तानी रह पाते हैं न अमरीकी.''

ममी निरीह भाव से कहती, ''जवानी का जोश है ... मेरी बात तो सुनती ही नहीं.''

मौसी को और भी तरह मिल जाती, ''वो कौन-सा जानवर होता है—हां, सर्पिणी अपने अंडों को खुद ही खा जाती है न ... पर कभी सुना है ऐसा शिशु जो अपने पैदा करनेवाले को खा डाले ...!''

''ये कैसी बात कह रही हो तुम ... चिड़िया भोली है ... उम्र के साथ मां-बाप के दिल को समझने-पहचानने लगेगी.''

''और नहीं तो अपने उसी सहपाठी के साथ शादी कर ले जिसके साथ रह रही है. कम से कम तुम्हारी मुक्ति तो हो.''

उधर कई सालों तक चलनेवाले अस्थायी रैन बसेरे में अब चिड़िया की सहपाठी से नोक-झोंक होने लगी. तंगी की उस जिंदगी से चिड़िया तंग आने लगी थी. दोनों एक-दूसरे से कुछ ऊबने-से भी लगे. शादी की बात उठी तो सहपाठी बोला, ''आई बिलीव इन कमिटमेंट ऑफ हार्ट्स ... शादी तो आदमी तब करे जबकि सामाजिक स्वीकृति कुछ मायने रखती हो ....''

जल्द ही उसके दिल की कमिटमेंट किसी और से हो गयी.

मौसी के बहुत समझाने पर ममी—डैडी चिड़िया को छुट्टी मनाने के बहाने से हिंदुस्तान ले गये ... वहां उसे शादी लायक कई लड़के दिखाए गये. चिड़िया ने ममी से कहा, ''ये कैसा खिलवाड़ कर रहे हो तुम लोग... जिसे न जानती न बूझती उसके साथ जिंदगी बिताऊंगी .... क्या बेवकूफ समझ रखा है तुमने मुझे .... यह नहीं होने का!''

अमरीका लौटकर चिड़िया को नये सिरे से घोंसला खोजना था. अपनी छोटी-सी तनख्वाह में कोठरी का किराया, खाना-पीना और दूसरे खर्चे नहीं चला सकती थी. पहले सहपाठी के साथ सब कुछ शेयर करती थी ... अकेले बूते मुश्किल था. दूसरे सहसा सहपाठी से अलग होकर उसने यह भी महसूस किया कि वह ख्वामखाह अपने आपको मॉम-डैड के घर के वैभवपूर्ण माहौल से वंचित कर रही थी ... अकेले रहने से उसका स्तर बहुत ज्यादा गिर जाता था ... ऐसी हालत में तो उसकी महात्वाकांक्षा उसका फिल्म बनाने का सपना, कभी भी पूरा न होगा.

और चिड़िया अपना तिनका भर सामान लेकर ममी-डैडी के घर गयी ... हमेशा की तरह ममी ने अपना सब कुछ उसके लिए बिछा दि

था. चिड़िया को दिनों बाद बहुत चैन और राहत मिली.

लेकिन बहुत जल्द घर में तनाव शुरू हो गये. दरअसल चिड़िया वहां रहते हुए भी रह नहीं रही थी. बस रैन भर के बसेरे की ही बात थी. और अगर दिन में घर पर होती भी तो अपना कमरा बंद किए पड़ी रहती ... ममी के मिलनेवाले आते तो लाख मिन्नत करने पर मुश्किल से वह उन्हें 'हेलो' करने बाहर आती फिर मिनट भर में वापिस लौट किवाड़ बंद कर लेती. ज्यादातर उसे खाने की भी भूख नहीं होती थी. शायद डायटिंग के चक्कर में या फिर घरवालों से बचने का बहाना होता.

ममी अब उसे घर रखने के बजाय घर से निकालने के चक्कर में थी. दिन-रात एक ही सवाल, ''तू शादी क्यों नहीं करती?''

चिड़िया सोचती है वह ममी-डैडी की अकेली संतान है ... इस घर पर उसी का हक है ... अगर वह यहीं रहती रहे तो गलत क्या है!

मौसी का दूसरा चक्कर लगा तो फिर ममी से कहने लगीं, ''बहुत बिगाड़ा हुआ है तुमने लड़की को ... तीस से तो ऊपर हो गयी ... शादी कब करेगी?''

चिड़िया बिगड़ उठती है, ''आपकी आंखों में भला मैं क्यों खटकती हूं ... आखिर मेरा घर है ... शादी करूं या न ... जब तक चाहूंगी यहीं रहूंगी ... आखिर मेरे मां-बाप हैं, आपको क्या!''

''मौसी भी गुस्से से बोली, ''बड़े स्वार्थी बच्चे हैं आजकल के! मां-बाप पर अपने हक का तो खूब समझते हैं ... पर उनके लिए कुछ करने का कोई भाव नहीं ... बस जब मन आया चले आये, इस्तेमाल किया और फिर उड़ गये अपने ठिकाने को ... कम से कम मां-बाप की खुशी के लिए ही शादी कर लो ...''

अब के ममी बीच में बोल पड़ती हैं, ''रहने दो शीला ... आखिर बच्ची है ... इसके घर आ जाने से रौनक आ जाती है वर्ना जिंदगी में अब ज्यादा है ही क्या?''

लेकिन उस रौनक के बीच अंदर ही अंदर ममी को कुछ सालता रहता है ... बत्तीस बरस की लड़की के घर लौटने पर वह खुश हों या रोयें ... वो यह भी जानती हैं कि चिड़िया किसी भी पल उड़ने की फिराक में है ... यह घर उसके लिए ऐसी सराय है जिसने उसे मुफ्त पनाह दी हुई है ... क्या सच में ममी का इस्तेमाल किया जा रहा है. चिड़िया को तो इस घर में किसी से कोई सरोकार नहीं ... सुबह-सुबह काम पर निकल जाती है और देर रात गये घर लौटती है .... पता नहीं मौसी के कहने का बुरा मान गयी या क्या ... अब तो किसी दोस्त या रिश्तेदार के आने पर 'हलो' कहने अपने कमरे से नीचे तक नहीं उतरती. घर सच में सराय था.

फिर ममी सोचती है ... सारी उम्र तो उसने चिड़िया को कोई जिम्मेदारी नहीं दी ... सिर्फ लाड़-प्यार दिया ... अब भला वह जिम्मेदारी निभाने के काबिल कैसे हो ... कभी दूसरों के लिए कुछ करने को कहा-सिखाया नहीं ... तब चिड़िया कैसे जाने ... और उदास मन से ममी ने मान लिया कि कुसूर उन्हीं का है.

अब चिड़िया को दाना-पानी की या आशियाने की फिक्र करने की जरूरत नहीं थी ... सारी सुख-सुविधाएं मुहय्या थीं ... अगर इनकी एवज में कभी ममी का उपदेश सुनना पड़ जाता तो वह कानों में वाकमैन के इयर-प्लग खोंसकर पॉप-संगीत सुनने लग जाती.

अब वह फिर से फिल्म बनाने के सपने देखने लगी ... नौकरी से अब कुछ पैसा बच रहा था पर वह काफी नहीं था ... और फिर ममी-डैडी का पैसा भी तो आखिर उनकी चिड़िया का ही है.

उसने ममी से कहा, ''मैं फिल्म बनाना चाहती हूं ... पैसा लगाओगी?''

तो चिड़िया को अभी भी ममी-डैडी के सहारे की जरूरत थी. क्या ममी की परवरिश ने ही इतना कमजोर बना दिया कि चिड़िया अधूरी-सी फुदकन भरकर फिर से मां के घोंसले में आ गिरी है ... क्या अभी उड़ना नहीं सीखा उसने .. कभी सीख पाएगी ... जब पर निकलने को हुए थे तभी क्या ठीक से उड़ने देना चाहिए था ... कहां, क्या गलत हो गया उनसे ... चिड़िया की बांहों से जैसे नये पंख निकालना चाहते हुए ममी ने कहा, ''तू जो चाहती है कर ... बस एक बार अपने पैरों पर खड़ी हो जा ... तेरे होने से घर में सब कुछ चहक उठता है ... पर दूर पहाड़ों से, हवाओं से और बादलों से फिसलकर आती चहचहाट शायद कहीं ज्यादा मीठी सुनाई पड़ती है ... चिड़िया तो आकाश में उड़ती हुई ही सबसे ज्यादा प्यारी और मोहक लगती है ...''

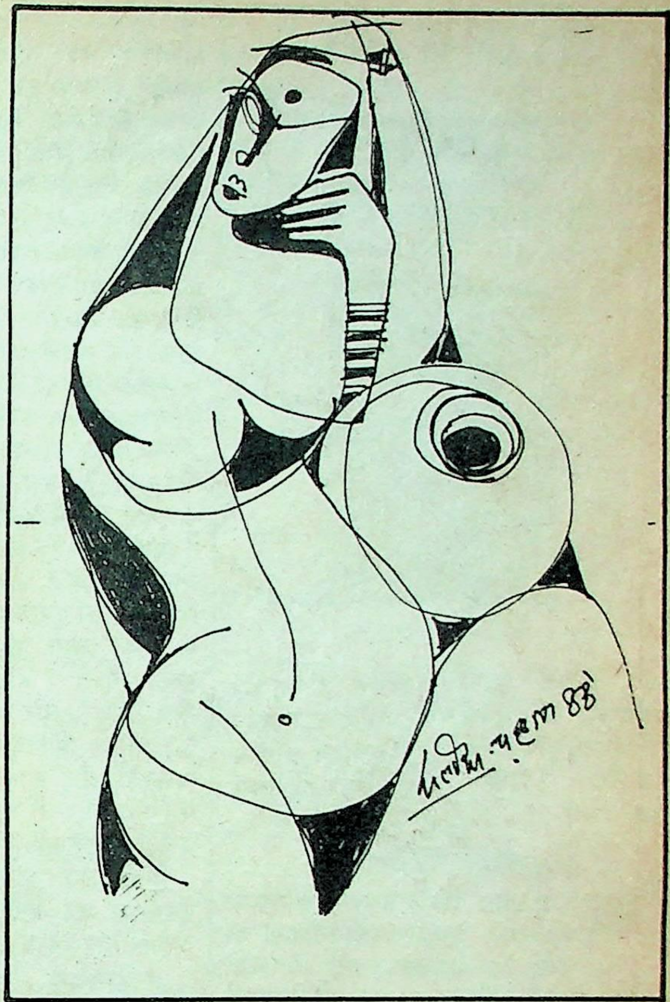

चिड़िया अभी ममी की पूरी बात समझ भी नहीं पायी थी कि अचानक ममी को कुछ ध्यान हो आया और वे बोलीं; ''तेरे डैडी नाराज तो नहीं होंगे ... कहते हैं उसे मन मांगा देकर बिगाड़ रही हो.''

चिड़िया कड़की, ''ठीक है रख लो संभालकर ... चिता पर धरकर साथ ले जाना ... जीते जी मुझे 'डिपराईव' करके सुख मिलता है तो लो ... मैं भी तुम दोनों के मरने का इंतजार कर लूंगी ... मां-बाप भी पता नहीं किस बात के बदले लेते रहते हैं ... ट्रस्ट को पैसा दे देंगे अपनी औलाद को नहीं ... पैदा करने का यह मतलब तो नहीं की सारी उम्र उन्हें दबोचकर कोख में ही रख लिया जाए ....''

सहसा ममी ने देखा ... चिड़िया वहां नहीं थी ... शायद रसोई की खिड़की से बाहर चली गयी थी. ममी घबराकर बाहर की ओर दौड़ीं ... बाहर सिर्फ एक बड़ी चील आसमान को गिरफ्तार किए हुए थी ... ममी बदहवास चिड़िया को खोजने लगी. चिड़िया कहीं नहीं थी ... अचानक ममी को लगा उन्हें कुछ भ्रम-सा हो रहा है ... शायद चील वहां नहीं थी ... या शायद चील चिड़िया को उगल दे ... और आसमान पर आंखें टिकाए वे चिड़िया के लौटने का इंतजार करने लगीं. □

बंकिम के उपन्यास

□ राजकुमार सैनी

□ **'बंकिम समग्र' (बंकिम ग्रंथावली), संपादक: निहालचंद्र वर्मा. प्रकाशक: प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिंदी प्रचारक संस्थान, पी.बी. 1106, पिशाचमोचन, वाराणसी-221 001; मूल्य : 50.00 रु.**

'बंकिम समग्र' में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की समग्र रचनाएं संकलित नहीं की गयीं, जैसा कि संकलन के शीर्षक से धोखा होता है. लेकिन इतना जरूर है कि इसके अंतर्गत बंकिम की समग्र औपन्यासिक कृतियां एक ही जिल्द में उपलब्ध हो गयी हैं. छोटे-बड़े कई उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने 'कमलकांतेर दफ्तर', 'लोक रहस्य' जैसी गल्पेतर गद्य–रचनाएं भी कीं. इसके अलावा 'राममोहनूज व्हाइफ' शीर्षक से उन्होंने अंग्रेजी में भी एक उपन्यास लिखा था. यह अंग्रेजी उपन्यास उनकी सर्वप्रथम साहित्यिक कृति थी जो किशोरी चांद मित्र के 'इंडियन फील्ड' पत्र में 1864 ई. में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई. 'कमलकांतेर दफ्तर' उनके व्यंग्य प्रधान निबंधों का संग्रह है जो एक हास्य-प्रधान रचनाकार के रूप मैं बंकिम की प्रतिभा और निर्बाध अभिव्यक्ति क्षमता का परिचायक है. बंकिम अपने समय के प्रमुख आलोचक और पत्रकार भी रहे हैं. आलोचक के **रूप में उन्होंने भारतीय साहित्य पैर हावी हो** जाने वाले रीति वाद की आलोचना की और यह अभिमत व्यक्त किया था कि मानव चरित्रों और भावों की असीम और अनंत प्रकार की संभावनाओं को केवल आठ या नौ रसों तक सीमित करना युक्तियुक्त नहीं है, इसी प्रकार मानव के सौंदर्य प्रेमी अंतश्चेतना को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है, इस अंतश्चेतना को अलंकारों, रीतियों तक बांध देना उचित नहीं है. बंकिम ने विद्यापति, बाल्मीकि, भवभूति और शेक्सपियर संबंधी अपनी समीक्षात्मक टिप्पणियों में एक परंपरा-प्रिय किंतु स्वच्छंदतावादी आलोचक का परिचय दिया. इसके साथ ही उन्होंने **धार्मिक और वैज्ञानिक विषयों पर भी कलम** चलायी.

तथापि वे एक महान उपन्यासकार के रूप में ही देश और विदेश में जाने जाते हैं. कुछ विचारकों की दृष्टि में रवींद्रनाथ ठाकुर और शरत चंद्र चटर्जी के आर्विभाव के बावजूद वे बंगला के महानतम उपन्यासकार हैं. बंकिम बंगला के ही नहीं भारत के महानतम **उपन्यासकारों में अपने ढंग के एक सबसे बड़े** किस्सागो हैं. इसमें दो राय नहीं कि वे पुनरूत्थान वादी और हिंदूवादी रुझानों से ग्रस्त हैं, इसके बावजूद वे हमारे सबसे बड़े राष्ट्रीय लेखकों में एक हैं. उनका 'आनंदमठ' उपन्यास राष्ट्रीयता का पर्याय समझा जाता है. आनंदमठ का संदेश-गीत बंदेमातरम् संसार भर के राष्ट्रीय गीतों में अद्वितीय माना गया है. इस गीत में प्रकृति और मातृभूमि एकाकार हो गयी हैं. इसके अतिरिक्त धार्मिक, पौराणिक निष्ठाओं और जातीय संस्कृति की राष्ट्रीय परिणति का इससे अधिक लोकप्रिय कलात्मक उदाहरण ढूंढे नहीं मिलता.

ऐतिहासिक कालखंडों की औपन्यासिक **पुनर्रचना कर अतीत को वर्तमान की तरह** नमूदार कर देने में उनका कोई सानी नहीं है. 'दुर्गेशनंदिनी', 'राजसिंह' और 'सीताराम' जैसे उपन्यासों की रचना में इतिहास, किंवदंतियों, लोक-कथाओं और कल्पना का मिलाजुला रोमांस है. पाठक के लिए उनका औपन्यासिक संसार इतिहास की दुनिया से अधिक विश्वसनीय हो उठा है. उनके कलात्मक तर्क और उनकी कलात्मक परिणतियों से पाठक इस कदर भावाभिभूत हो उठता है कि वह ऐतिहासिक तर्क और तत्संबंधी ऐतिहासिक पाहासिक परिणतियों को ताक पर रख देता है और बंकिम का कथा संसार ही उसके लिए **अधिक यथार्थ हो उठता है.** 'दुर्गेशनंदिनी' में तिलोत्मा और बिमला, 'मृणालिनी' में मनोरमा और मृणालिनी, 'चंद्रशेखर' में लवंगलता और शैवालिनी... 'सीताराम' में श्री और जयंती–ऐसे नारी चरित्र हैं जो ऐतिहासिक चरित्रों से अधिक विश्वसनीय और वास्तविक प्रतीत होते हैं. इसका श्रेय बंकिम की औपन्यासिक कला को जाता है. तथापि बंकिम के अधिकांश नारी चरित्र पतिव्रता और पतिपरायण नारियों की चारित्रिक उपलब्धियों और सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाते, इन चरित्रों में अगर कोई अपवाद है तो वह मात्र शैवालिनी का चरित्र है. 'शैवालिनी' पुरुष प्रधान समाज की पतिव्रता नारियों-सी अधीनस्थ नहीं है, वह अपनी स्वायत्तता का बार-बार परिचय देती है तथापि वह शरत की कमल ('शेष प्रश्न'–उपन्यास) जैसी स्वतंत्र और स्वयं प्रभुसत्ता संपन्न नारी की तुलना में सांस्कृतिक और सामाजिक पिछड़ेपन का आभास देती है. ऐसा होना स्वाभाविक भी है. बंकिम के समय में अगर शरत लिख रहे होते तो शायद उनके लिए भी उस समय कमल जैसे नारी चरित्र की सृष्टि करना संभव नहीं होता.

समसामयिक समाज को केंद्र मानकर लिखे गये उपन्यासों में 'विषवृक्ष', 'इंदिरा', 'राधारानी', 'रजनी', 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' और 'देवी चौधरानी' उल्लेखनीय हैं. 'इंदिरा' और 'राधारानी' लघु-उपन्यास हैं जबकि 'रजनी' लघु उपन्यास होते हुए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें नेत्रहीन किंतु भावमयी युवती की मार्मिक व्यथा-कथा है जो अंततः सुखांत गाथा का रूप ले लेती है. इनमें भी 'विषवृक्ष' और 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएं हैं. यद्यपि समसामयिक समाज के चित्रण में बदलते हुए नैतिक मूल्यों के अंतर्विरोध और टकराव को बंकिम भरसक जागरूकता और ईमानदारी के साथ प्रतिध्वनित करते हैं तथापि उनके नारी-चरित्र नैतिकता संबंधी सामंती दहलीज को लांघ नहीं पाते. 'विषवृक्ष' की कुंद, 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' की रोहिणी उस दहलीज को लांघती भी हैं. अपने 'पाप' के प्रायश्चित अथवा दंड के रूप में दारुण और त्रासद अंत का शिकार होती हैं. बंकिम का महत्व इस बात में है कि वे उस युग में भी आधुनिक कथा रचते हैं, ऐसी कथा जो अत्यंत जटिल और घुमावदार पेंचों को खोलती चलती है. वे पथभ्रष्ट मनुष्यों का सहानुभूतिपूर्वक चित्रण करते हैं और 'सामाजिक बंधनों' तथा 'नियति के विधानों' की परोक्ष ढंग से आलोचना करते हैं. बंकिम अपने समाज की नारी की मुक्ति के लिए शरत की तरह आक्रामक नहीं हैं लेकिन नारी की जिजीविषा के प्रति वे उदासीन भी नहीं हैं.

"छिः छिः! कुंदनंदिनी! तुम चोर के स्पर्श से कांपी क्यों? छिः छिः! कुंदनंदिनी! चोर की बात सुनकर तुम्हारे शरीर में रोमांच क्यों हो उठा? कुंदनंदिनी! देखो, पुष्करिणी का पानी साफ, सुशीतल और सुवासित है. वायु के हिल्लोल से उसमें तारे कांपते हैं. डूबेगी? डूब क्यों नहीं मरती? पर कुंदनंदिनी मरना नहीं चाहती!"

(विषवृक्ष, बंकिम समग्र : पृष्ठ–264)

नारी संबंधी एकनिष्ठता के पीछे पुरुष का जो स्वार्थ छिपा है, उसे भी वे उद्घाटित करने से नहीं चूकते. नगेंद्र जब कुंद पर आसक्त है और सूर्यमुखी जैसी आदर्श पत्नी के होते हुए भी कुंद से विवाह करने पर उतारू हो जाता है. अपने

बहनोई श्रीशचंद्र के व्यंग्य भरे पत्र के उत्तर में अपनी सफाई देते हुए, वह जो जवाब भेजता है, उसके एक अंश को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा :–

"तुम कहोगे कि यदि एक पुरुष की दो स्त्रियां हो सकती हैं, तब एक स्त्री के दो स्वामी क्यों न हों. इसका जवाब यह है कि एक स्त्री के दो स्वामी होने से बहुत अनिष्ट होने की संभावना है, एक पुरुष के दो विवाह से इसकी संभावना नहीं. एक स्त्री के दो स्वामी होने से संतान का पितृनिरूपण नहीं होता. पिता पालनकर्ता है—इसके अनिश्चय से सामाजिक विश्रृंखलता उत्पन्न हो सकती है. किंतु पुरुष के दो विवाह से संतान की माता का अनिश्चय नहीं हो सकता."

(विषवृक्ष - बंकिम समग्र : पृष्ठ—264)

नगेंद्र के उपर्युक्त तर्क का बखिया उधेड़ते हुए, बंकिम उपन्यास के अंत में यह चरितार्थ करते हैं कि एक आदर्श पत्नी के रहते पुरुष का दूसरा विवाह करना भी अनिष्ट का कारण बनता है. बंकिम पुरुषों और स्त्रियों के अलग-अलग नैतिकता के दोहरे मानदंडों को नकारते हैं. यदि एकनिष्ठता स्त्री के लिए आदर्श है तो वही एकनिष्ठता पुरुष के लिए भी जरूरी है. सामंती मूल्यों की दहलीज लांघकर ही वे ऐसा उपन्यास लिख पाते हैं. रूप और अंतर्वस्तु-दोनों की दृष्टि से बंकिम की यह अत्यंत जटिल औपन्यासिक कृति है जिसकी संरचना पुराने उपन्यासों की-सी सरलीकृत नहीं है. यह एक आधुनिक उपन्यास जैसी समकालीन बुनावट का पूर्वाभास देता है. 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' भी लगभग इसी कोटि की रचना है. इस उपन्यास में वक्रोक्तियों और निम्न प्रधान शैली में घटनाओं का वर्णन है. इस उपन्यास में मानवीय आवेगों, वासना और यातना की कथा है. यहां रचनाकार नारी के अवैध संबंधों के चित्रण में परंपरागत संकोच को तिलांजलि देकर ऐसी आधुनिक दृष्टि का परिचय देता है जो स्त्री-पुरुष संबंधों में विवाह द्वारा लादी गयी नैतिकता की तुलना में परस्पर स्नेह निष्ठा को तरजीह देती है. रोहिणी का चरित्र आगे चलकर शरत और रवींद्र के नारी पात्रों के लिए एक जमीन तैयार कर देता है.

'युगलांगुरीय' शीर्षक रचना उपन्यास नहीं बन पायी. इसे उपन्यास या उपन्यासिका भी कहा जा सकता है. यह मात्र एक कहानी है. 'आनंदमठ' और 'देवी चौधरानी' वारेन हेस्टिंग्ज के शासन से पूर्व मुस्लिम शासन काल के अंतिम चरण के दौरान व्याप्त अराजकता के दिनों की परिस्थितियों पर आधारित उपन्यास है. 'आनंदमठ' की कथा का आधार 'संन्यासियों का विद्रोह' है जो एक ऐतिहासिक घटना है. 'देवी चौधरानी' की कथा का आधार हंटर द्वारा 'स्टैटिसूटिकल अकाउंट्स ऑफ बंगाल' में वर्णित भवानी पाठक और देवी चौधरी नामक 'डाकुओं' की गतिविधियां हैं. दोनों उपन्यासों में, ऐतिहासिक विवरण कथा के लिए जमीन देते हैं. इस जमीन पर बंकिम अपनी औपन्यासिक प्रतिभा, राष्ट्रीय अभिरुचि और सामाजिक अंतर्दृष्टि का क्रांतिकारी और सर्जनात्मक उपयोग करते हुए किस्सागोई का ऐसा ताना-बाना रचते हैं कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता. ऐतिहासिक रोमांस समकालीन यथार्थ और औपन्यासिक कल्पना का परिपाक इन दोनों उपन्यासों की विशेषता है. 'आनंदमठ' के सत्यानंद, धीरानंद, शांति, जीवानंद और भावानंद तथा 'देवी चौधरानी' के भवानी पाठक और देवी चौधरी जैसे इतने सजीव हो उठे हैं कि वे ऐतिहासिक पुरुष और स्त्रियों से भी ज्यादा वास्तविक लगने लगते हैं. क्रांतिकारिता और राष्ट्रीयता की दृष्टि से ये चरित्र पाठकों को गहरे स्तर पर आंदोलित करते हैं. ऐसे चरित्रों के स्रष्टा होने के कारण बंकिम राष्ट्रीय क्रांतिकारी चेतना के एक प्रतिनिधि साहित्य-स्रष्टा कहलाए.

'कपाल कुंडला' बंकिम का एक बिल्कुल अलग ढंग का उपन्यास है. आजकल हम साहित्य में फंतासी के प्रयोग की अक्सर चर्चा करते हैं. यदि इसी दृष्टि से देखें तो भारतीय आधुनिक कथा साहित्य में 'कपाल कुंडला' के जोड़ की कम फंतासियां लिखी गयी हैं. इस संबंध में बंकिम के छोटे भाई पूर्णचंद्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है :–

"जब बंकिमचंद्र नेगुंआ (इस समय के कांथी) महकमा में थे, तब एक संन्यासी कापालिक से उनका संपर्क हुआ था. बीच-बीच में वह निशीथकला में आकर उनसे मिलता था. बंकिम चंद्र उसे तरह-तरह से डराने की कोशिश करते थे, तो भी वह कभी-कभी आ जाया करता था. जब वे समुद्रतट पर चांदपुर के बंगले में रहते थे, तब यह संन्यासी प्रतिदिन आधी रात के वक्त आता था. चांदपुर से कुछ दूर समुद्र के किनारे घना जंगल था. बंकिमचंद्र की धारणा थी कि वह संन्यासी समुद्रतीर के उसी जंगल में रहता है."

(बंकिम समग्र, पृष्ठ-982)

इसी संन्यासी से प्राप्त किन्हीं विवरणों के आधार पर अपनी कल्पनाशक्ति द्वारा बंकिम ने 'कपालकुंडला' के अद्भुत कथा-लोक की सृष्टि की.

कापालिक द्वारा प्रतिपालित 'समुद्रतट विहारिणी बनचारिणी' षोडसी के अभूतपूर्व रोमांस की इस कथा में कई तत्व घुलमिल गये हैं. 'कपाल कुंडला' एक गद्य-काव्य भी है, फंतासी भी और रोमांस भी. उपन्यास में नाटकीय प्रभाव भी प्रचुर है. उपन्यास में एक ओर नारी 'मोती बीबी' का चरित्र 'गृहस्थ घर की कुल त्यागिनी वधू' की कहानी पर आधारित है. 'कपाल कुंडला' नामक कन्या इस उपन्यास में साक्षात प्रकृति के ही मानवीकृत रूप में उपस्थित होने का आभास देती है. लेखक ने उसे 'अपूर्व माधुर्यमय प्रकृति की मोहिनी मूर्ति' के रूप में अंकित किया है. बंकिम श्री संजीव चंद्र की धारणा से सहमत नहीं थे कि संन्यासी का प्रभाव एकदम मिट सकता है. इसलिए इस उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि अपने प्रतिपालक पिता कापालिक के संस्कारों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाती.

बंकिम अपने उपन्यासों में साहित्य संबंधी सभी सर्जनात्मक तत्वों का कलात्मक इस्तेमाल करते हैं. गीति तत्व, नाटकीयता, काव्य-तत्व, औपन्यासिकता, रूपवर्णन, प्रकृति-वर्णन, बिंबविधान, शब्द-चित्र आदि जैसे सभी तरह के प्रयोगों द्वारा वे अपने उपन्यासों में साहित्यिक-गुणवत्ता भर देते हैं. यहां तक कि तिलस्म से लेकर जादुई यथार्थवाद तक की पुरानी और नयी शैलियों के पूर्वरूप यहां उपलब्ध हैं. 'कपाल कुंडला' उपन्यास के अधिकांश परिच्छेदों के प्रारंभ में, वे कालिदास, माइकेल मधुसूदन दत्त, शेक्सपियर, कीट्स, बायरन जैसे महाकवियों तथा अन्य कवियों के प्रासंगिक उद्धरण देते हुए एक तरह के विशिष्ट कलात्मक प्रभाव की सृष्टि करते हैं. यदि प्राचीन काव्यशास्त्र की शैली में कहें तो कह सकते हैं कि 'कपाल कुंडला' अद्भुत रस का श्रेष्ठ काव्य है. यदि आधुनिक शैली में कहें तो यह एक जादुई यथार्थवाद की विचित्र फंतासी है. उनके दूसरे उपन्यास 'देवी चौधरानी' के बारे में भी पूर्णतः नहीं तो अंशतः यही बात लागू होती है. असल में उनकी अधिकांश कृतियों पर कमोवेश रूप में यह मंतव्य चरितार्थ होता है.

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बंकिम पराधीन भारत की राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के अपने समय के श्रेष्ठतम साहित्यकारों में एक थे. कला की दृष्टि से वे एक उच्च कोटि के कलाकार के यद्यपि उनकी हिंदूवादी अवधारणा चंद्रमा के माथे पर कलंक बिंदिया की तरह लगती है तथापि रवींद्र और शरत की तुलना में वे कोई छोटे लेखक नहीं हैं. प्रेम-प्रसंगों और युद्ध-प्रसंगों की मिश्रित गाथाएं रचने में वे विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हैं.

भारत के एक अत्यंत महत्वपूर्ण लेखक के लगभग सभी उपन्यासों को सस्ते दामों पर एक ही जिल्द में उपलब्ध कराने के लिए प्रकाशक और संपादक दोनों साधुवाद के पात्र हैं. 'जीवन परिचय और रचनाएं' के रूप में जो परिशिष्ट है; वह संक्षिप्त होते हुए भी स्वतः पूर्ण है. फिर भी इतने बड़े लेखक के बारे में जितना लिखा जाए, कम है. आशा है कि लगभग एक हजार पृष्ठों का यह ग्रंथ हिंदी पाठकों में लोकप्रिय होगा. □

शुरुआत का श्रेय

खेल खिलाड़ी
विश्वकोश

खेल खिलाड़ी विश्वकोश : योगराज थानी, प्रकाशक : राजपाल एंड संज 1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-100006, मूल्य-80 रुपये

हिंदी में गंभीर खेल पत्रकारिता की शुरुआत करने वालों में योगराज थानी का नाम प्रमुखता से आता है. पिछले 25 साल से अधिक समय से वे खेलों पर लिख रहे हैं. उनकी नयी पुस्तक "**खेल खिलाड़ी विश्वकोश**" भी हिंदी में अपनी तरह की पहली पुस्तक है. यह खेल प्रेमियों तथा खेल पर लिखने वालों के लिए एक जरूरी पुस्तक भी है. देश विदेश के कई जाने माने और कई अनजाने या कमजाने खिलाड़ियों का परिचय इसमें मिल जायेगा. कुछ ऐसे आंकडे मिल जायेंगे जिनकी तलाश में आपको कई दिन लग सकते थे. खेलों के कई ऐसे संदर्भ यहां मिलेंगे जिन्हें अन्यथा कहीं खोज पाना कठिन होता. ओलिंपिक खेलों में अब तक के भारतीय प्रदर्शन, अर्जुन पुरस्कार प्राप्त खिलाड़ियों की पूरी सूची, क्रिकेट हॉकी, फुटबाल से लेकर बेसबॉल, ब्रिज तक के खेलों की जानकारी को समाहित करने की कोशिश इस डिमाई आकार की 383 पृष्ठों की पुस्तक में की गयी है.

पर श्री थानी को अपनी सीमाओं का पता भी था. भूमिका में वे कहते हैं : "**देश के खेल प्रेमी पाठकों को इस पुस्तक में सब कुछ मिल जायेगा, यह दावा करना तो एक प्रकार का दंभ होगा. हां, इतनी बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि इस एक पुस्तक में आपको बहुत कुछ मिल जायेगा.**" इसके बाद थानी जी अपनी खेल भावना का परिचय देते हुए आगे कहते हैं:" **यदि इसमें कहीं अधूरापन जान पड़े तो आपकी रचनात्मक आलोचना का स्वागत होगा.**"

जब थानी जी यह अंतिम वाक्य लिखते हैं तो ऐसा नहीं है कि वे अपनी कमजोरियों से स्वयं परिचित नहीं हैं. वे जानते हैं कि एक खास तरह की लापरवाही उनमें है. -'चलने दो, बाद में देख लेंगे' वाला भाव गलतियां भी करा बैठता है, मसलन इसी पुस्तक में शतरंज के भारतीय ग्रेंड मास्टर विश्वनाथन आनंद के बारे में जो टिप्पणी है उसमें उनका परिचय न होकर उस समाचार की कटिंग है जो उन्हें ग्रेंड मास्टर का खिताब मिलने के बाद छपा था. सत्तर के दशक की मशहूर एथलीट अनुसुइया बाई के बारे में लिखा है. "**पिछले दो वर्षों में वह चार बार 100 मीटर की दूरी को 12 सेकेंड में पार कर चुकी हैं.**" जबकि दस वर्ष पूर्व वह खेलों की दुनिया से अलग हो चुकी हैं. जाहिर है थानीजी ने उन दिनों अनुसुइया बाई पर जो लिखा था, उसे बिना किसी प्रकार का संशोधन किये, जस का तस छाप दिया है, विजय अमृतराज तथा डेविस कप पर लिखते हुए कहीं भी थानी जी 1988 में भारत के डेविस कप फाइनल में पहुंचने का उल्लेख नहीं करते. जबकि यह पुस्तक 1989 में छपी.

थानी जी से मैं निवेदन करूंगा कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण जब प्रेस में जाये तो वे एक बार बैठकर सारे विवरणों तथा रिकार्डों को अप-टू-डेट कर दें और तभी पुस्तक की पांडुलिपि प्रकाशक को दें.

अंत में मैं एक बात अवश्य कहना चाहूंगा कि यह पुस्तक इन सारी कमजोरियों के बावजूद एक जरूरी पुस्तक है. हो सकता है इस पुस्तक से प्रेरणा पाकर कुछ अन्य विश्वकोश प्रकाशित हों, हो सकता है वे इससे अधिक परिपूर्ण हों, पर इसकी शुरुआत करने का श्रेय थानी जी से और कोई नहीं छीन सकता.

पत्रिकाएं

मनोरमा ईयर बुक : 1990

मनोरमा
ईयर बुक 1990

अहिंदी प्रदेश केरल से हिंदी में 'ईयर बुक' का प्रकाशन जब पिछले वर्ष प्रारंभ हुआ तब जिज्ञासु पाठकों को खासी राहत मिली होगी. इस वर्ष भी कोट्टयम से प्रकाशित 'मनोरमा ईयर बुक' का वर्ष 1990 का अंक अपने आप में खासा महत्वपूर्ण है. चार खंडों में विभाजित इस ईयर बुक की सामग्री विज्ञान और प्रौद्योगिकी, विश्व-परिदृश्य, भारत एवं प्रांत तथा खेल जगत को संभवतः हिंदी में पहली बार इतने बेहतर ढंग से प्रस्तुत कर सकी है. 1989 का साल विश्व स्तर पर घटना-प्रधान रहा. पूर्वी यूरोप में हुए बड़े परिवर्तन ने तो समूचे विश्व को ही प्रभावित किया है. इस संदर्भ में ओ.एन. मेहरोत्रा का लेख 'ढहता हुआ साम्यवादी सोवियत- यूरोपियन साम्राज्य' महत्वपूर्ण कहा जा सकता है. नवीं लोकसभा के चुनावों पर ए.के. रामाकृष्णन का लेख विषय को देखते हुए पूरे धैर्य व संतुलन का प्रतीक बन पड़ा है.

आवरण कथा—'शाश्वत वर्तमान का बोध' अपने प्रारंभ से ही पठनीय पकड़ लिए चली है. 'दूरदर्शन पर धर्म ग्रंथों के प्रसारण और आधुनिक समाज पर इसका प्रभाव' को आधार बनाकर लिखी गयी यह आवरण-कथा बेबाकी के साथ सवाल उठाती है कि क्यों हम एक ही व्यक्ति के सीमित दृष्टिकोण से बंधने को विवश हैं? आलेखकार मनमोहन चड्डा स्पष्ट रूप से कहते दिखाई पड़ते हैं कि कहने को तो हमारे 'रामायण' व 'महाभारत' टेलीसीरियलों का आधार हमारे प्राचीन महाकाव्य हैं लेकिन ये दोनों सीरियल हमारे इन धर्मग्रंथों के साथ न्याय नहीं करते. वे कहते हैं—यदि इन सीरियलों को उत्तमता की कसौटी पर परखा जाये तब ये न्यूनतम शर्तों को भी पूरा नहीं कर पाते. अंत में उनका इस रूप में सचेत करना तो उल्लेखनीय है ही कि हम इन सीरियलों को ही इन ग्रंथों का पर्याय न मान लें. माध्यम ही संदेश है कि मनोवृत्ति को हावी न होने दें और इस माध्यम का लाभ उठाकर इन ग्रंथों के नये-नये रूपाकारों की खोज करें.

आंकड़ों की बड़ी दुनिया के बीच कहीं-कहीं ऐसी प्रेरक सामग्री भी इस 'ईयर बुक' में मिलती है कि मन खुश हो जाता है. 'कोट्टयमः साक्षरता का कीर्तिमान' ऐसी ही सामग्री है. देश में कोट्टयम को अकेला ऐसा जिला यहां बताया गया है जो 100% साक्षर है. पूरा विश्व जब 1990 के साल में 'साक्षरता वर्ष' मना रहा है, भारत के एक जिले को यह गौरव प्राप्त होना खुशी की बात है. बावजूद इसके यहां यह सूचना भी है कि जब विश्व भर के आंकड़े हमारे सामने होंगे तब कुल मिलाकर भारत का स्थान कहां होगा यह अनुमान भी अपमानजनक ही है. मजे की बात तो यह है कि यहां बड़ी जनसंख्या के होने का कोई बहाना भी चलने वाला नहीं है, चूंकि चीन जैसा देश भी इस दिशा में भारत से कहीं आगे है. और सभी जानते हैं कि चीन की जनसंख्या 1102,200,000 है. कुल मिलाकर यह ईयर बुक हमारी जानकारी बढ़ाती है, अपनी स्थिति पर खुश होने और अफसोस करने के अवसर जुटाती है, और संभलकर चलने को आगाह करती है.

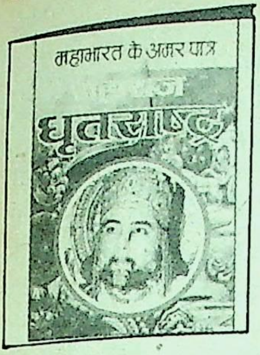

भारत के महान अमर क्रांतिकारी
अशफाक उल्ला खां

महाभारत के अमर पात्र
आचार्य द्रोण

महाराज धृतराष्ट्र

महाभारत के पात्रों को औपन्यासिक शैली में जीवंत करने का सार्थक प्रयास है. शाश्वत कथामाला के अंतर्गत प्रकाशित महाभारत के अमर पात्र महाराज धृतराष्ट्र का चरित्र अनेक विरोधाभासों से परिपूर्ण है. अपने अंधेपन के कारण कौरवों में ज्येष्ठ होते हुए भी उन्हें राज गद्दी से वंचित किया गया. अनुज पांडव के संन्यास और निधन के बाद सत्ता उनके हाथ में आयी तो वे अनेक प्रकार की महत्वाकांक्षाओं से भर गये. अपने पुत्र के अन्याय को जानते हुए भी वे उससे जुड़े रहे और उसे किसी भी प्रकार अन्याय के मार्ग से न हटा सके. इस प्रकार वे महाभारत के सर्वाधिक दयनीय पात्र हैं.

उपन्यास की तरह रोचक तथा महाभारत की मूल कथा एवं भावभूमि से परिपूर्ण यह जीवन-गाथा पाठकों को धृतराष्ट्र के दुविधाग्रस्त चरित्र को सजगता के साथ बताने में पूरी तरह समर्थ एवं पठनीय है. डा. विनय ने इस सीरीज में यह आकर्षण अलग तरह से बनाया है.

गोपाल कृष्ण गोखले

स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए भारत माता के जिन सपूतों ने अपना जीवन अर्पित कर दिया, उन्हीं महान सपूतों में गोपालकृष्ण गोखले का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है.

गोखले ने भारतीय राजनीति में एक नयी विचारधारा, नयी चिंतन पद्धति और चेतना को जन्म दिया, जिसने भारतीय जनमानस को शिक्षा, आर्थिक व सामाजिक पक्ष में नयी दिशा दी. उन्होंने हमें महात्मा गांधी जैसा नेता दिया. आश्रम - पद्धति को विकसित किया. समाज सुधार की परंपरा के जनक भी गोपालकृष्ण गोखले ही हैं. गोखले के अनुसार उनका हृदय भारत के प्रति इस प्रकार समर्पित था कि वह भारत के सच्चे सेवक बन गये.

महान देशभक्त, अहिंसा के पुजारी, सांप्रदायिक एकता के प्रबल समर्थक गोपालकृष्ण गोखले की बहुआयामी प्रतिभा और उनके जीवन चरित्र से जुड़े अमर प्रसंगों से परिचित कराने वाली यह पुस्तक निश्चय ही स्वागत योग्य है.

अशफाक उल्ला खां

भारत को स्वतंत्र कराने तथा स्वतंत्र भारत के निर्माण में देश के अनेकानेक वीर सपूतों ने अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये. अशफाक उल्ला खां ऐसे ही वीर सपूत का नाम है जो मस्ती के साथ गीत गाते हुए फांसी के फंदे पर झूल गये.

प्रस्तुत पुस्तक में प्रारंभिक जीवन, क्रांति-पथ का वरण, काकोरी कांड, काकोरी के बाद, न्याय का नाटक आदि शीर्षकों के अंतर्गत अशफाक उल्ला खां के जीवन और उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है.

पुस्तक में इसके चरितनायक के अल्प आत्मकथ्य के साथ ही उनके भाई रियासत उल्ला खां, काकोरी कांड मुकदमे में उनके वकील कृपाशंकर हजेला, सुशील कुमार, काकोरी कांड में दंडित मन्मथनाथ गुप्त, योगेशचंद्र चटर्जी आदि के संस्मरण, अशफाक के आठ पत्र उनकी अनेक कविताएं भी संग्रहीत की गयी हैं, जिन्होंने पुस्तक को ऐतिहासिक दस्तावेज बना दिया है.

क्रांतिकारी अशफाक खां के जीवन को समझने के लिए उपादेय यह पुस्तक सबके लिए संग्रहणीय है.

आचार्य द्रोण

महाभारत के पात्रों को जीवंत करने में डा. विनय ने एक लंबी यात्रा तय की है. शाश्वत कथा माला के अंतर्गत उन्होंने महाभारत के अमर पात्रों युधिष्ठिर, अर्जुन, कृष्ण, द्रौपदी, गांधारी, कुंती, भीम, भीष्म, कर्ण, धृतराष्ट्र, शकुनि, दुर्योधन, एकलव्य अभिमन्यु और द्रोण आदि को साकार करने का सार्थक प्रयास किया है.

लेखक के अनुसार 'महाभारत के पात्र' उपन्यास नहीं है किंतु महाभारत में व्यक्त यथावंत चरित्र भी नहीं, और ये उपन्यास भी हैं तथा कथाचरित भी. किंतु इनकी प्रामाणिकता इनकी घटनाओं ये जिस तरह सिद्ध होती हैं, उसी तरह इनके मन के स्पर्श से भी.

महाभारत में अपने शिष्यों को ज्ञान-संपदा से संपन्न बनाने वाले तथा युद्ध विद्या में पारंगत करने वाले द्रौण किन कारणों से दुर्योधन के अत्याचारों को सहन करते रहे और युद्ध के मैदान में अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के सामने खड़े हो गये यह जानना रोचक भी है और ज्ञानवर्धक भी. डा. विनय की समर्थ लेखनी ने मानो आचार्य द्रोण को हमारे सामने खड़ा कर दिया है.

□ **डा. गिरिराजशरण**

- 'गोपाल कृष्ण गोखले', लेखक: अवधेश कुमार चतुर्वेदी, मूल्य: 12 रुपये.
- 'अशफाक उल्ला खां', लेखक: भवान सिंह राणा, मूल्य: 12 रुपये.
- 'महाराज धृतराष्ट्र', लेखक: डा. विनय, मूल्य: 10 रुपये.
- 'आचार्य द्रोण', लेखक: डा. विनय,मूल्य 10 रुपये

सभी पुस्तकों के प्रकाशक: डायमंड पाकेट बुक्स, 2715 दरियागंज, नई दिल्ली-2

उपन्यासकार के जन्मोत्सव पर 'उपन्यास-संध्या'

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र का नाम हिंदी जगत के लिए अब किसी परिचय का मौहताज नहीं रह गया है. उनकी प्रखर सृजनधर्मिता ने आम पाठकों को भी अपने कथा-साहित्य से गहरे जोड़ लिया है. कम समय में भी उपन्यास-साहित्य में उनके विपुल सारस्वत योगदान से व्याप्त जड़ता भंग हुई और विशेषकर इस प्रदेश की सृजन भूमि अधिक उर्वर हुई है. यही कारण है कि विगत 27 मार्च को पटना स्थित राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद के सभागार में अखिल भारतीय हिंदी प्रसार प्रतिष्ठान सहित कुछ साहित्यिक संस्थाओं की ओर से राष्ट्रीय ख्याति के उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र के 51 वें जन्मदिवस के अवसर पर 'उपन्यास संध्या' का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता पटना उच्च न्यायालय के वरीय अधिवक्ता दमनकांत झा ने की.

सुप्रसिद्ध हिंदी सेवी एवं वयोवृद्ध साहित्यकार डॉ. माहेश्वरी सिंह 'महेश' ने समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा कि डॉ. मिश्र ने 'पहला सूरज', 'पवनपुत्र', 'प्रथम पुरुष' तथा 'पुरुषोत्तम' जैसे उपन्यास लिखकर हिंदी उपन्यास की धारा को एक नयी दिशा दी है, जिससे आने वाली पीढ़ियां दिशा-निर्देश प्राप्त करेंगी. हिंदी के सुप्रतिष्ठ उपन्यासकार अमृतलाल नागर के निधन के बाद तो उनकी धारा में डॉ. मिश्र ही अब ऐसे लेखक हैं, जिनसे उपन्यास-साहित्य तथा उसके पाठकों को काफी अपेक्षाएं होने लगी हैं. मुझे विश्वास है कि ये नागरजी के अभाव को अपने सारस्वत कृर्तत्व से पूरा कर पाएंगे. अ.भा. हिंदी प्रसार प्रतिष्ठान के निदेशक डॉ. सतीशराज पुष्करणा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि डॉ. मिश्र के उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं, शोधग्रंथ भी हैं. इनके उपन्यासों के पात्र भले ही ऐतिहासिक या पौराणिक हों, किंतु वे अपने अतीतकाल में रहते हुए भी वर्तमान के जीवन-संघर्षों एवं आदर्श-प्रतिमानों से जुड़े रहते हैं.

संगोष्ठी में अपनी भागीदारी दर्ज करते हुए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के निदेशक डॉ. शिववंश पांडेय ने डॉ. मिश्र से संदर्भित अनेक अंतरंग संस्मरण सुनाते हुए कहा कि मैंने इनके साथ कार्य करते हुए बहुत कुछ सीखा, जिनसे मुझे आज बहुत लाभ हो रहा है. मैं इनकी कार्य-दक्षता, सृजनात्मक लेखन एवं प्रशासन में उनकी सात्त्विक ईमानदारी का कायल रहा हूं. उन्होंने कहा कि डॉ. मिश्र ने उपन्यास-लेखन के इतर व्यंग्य एवं बाल-लेखन भी प्रचुर रूप से किया है जिसका मूल्यांकन किया जाए तो वे उपन्यासकार की तरह ही श्रेष्ठ व्यंग्य एवं बाल लेखक के रूप में भी जाने जाएंगे. जो भी इनके संपर्क में आता है, उन्हें ये हमेशा ऊपर उठाने का प्रयास करते रहते हैं. राजभाषा विभाग के पूर्व निदेशक भी बदरीदास ने कहा कि पहले से अब राजभाषा विभाग का आयाम काफी बढ़ गया है, फिर भी वे समय निकालकर प्राथमिकता के आधार पर साहित्य-लेखन कर लेते हैं, यह उनकी सृजनात्मक निष्ठा की बड़ी विशेषता है. मैं उनके लेखन की सात्त्विकता से बहुत प्रभावित हूं, क्योंकि इनके साहित्य में संघर्षशील मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित किया गया है. साहित्य अकादमी से पुरस्कृत सुप्रसिद्ध कवि मार्कंडेय प्रवासी ने कहा कि डॉ. मिश्र एक मछुवारे की भांति भावों-शिल्पों का जाल फेंककर सागर से जो सृजन के मोती पकड़ते हैं, वह समकालीन साहित्य को काफी समृद्ध कर रहा है, इसलिए बिहार की मिट्टी से जुड़े डॉ. मिश्र पर पूरे देश को गर्व है.

भाषाविद् समीक्षक एवं पटना कॉलेज के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. चंद्रकिशोर पांडेय 'निशांतकेतु' ने मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए हिंदी उपन्यासों का विकासक्रम, उपस्थित वर्तमान तथा डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास-शिल्प की विशद विवेचना प्रस्तुत की. उन्होंने डॉ. मिश्र को 'सुशिल्पित उपन्यासकार' के रूप में रेखांकित करते हुए उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'पहला सूरज' को इस सदी के कालजयी उपन्यासों में आठवें स्थान पर प्रतिष्ठित कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की. उन्होंने कहा कि रचना का जन्मपूर्णता में होता है, इसलिए किसी रचनाकार का मूल्यांकन उनके संपूर्ण साहित्य के आधार पर करना चाहिए. इस निकष पर डॉ. मिश्र का साहित्य-लेखन श्रेष्ठ एवं कालजयी है. वर्तमान से अतीत की यात्रा कर डॉ. मिश्र ने ऐतिहासिक-आध्यात्मिक शक्ति-स्रोत ढूंढ़कर उसे सर्जनात्मक विधाओं के माध्यम से वर्तमान दशा-दिशा को समृद्ध किया है. 'पहला सूरज' इतिहास न होकर शुद्ध साहित्यिक कृति है और इसी दृष्टि से उस कृति का मूल्यांकन होना चाहिए. प्रो. निशांतकेतु ने प्रशासन में रहते हुए भी साहित्य की सेवा करने वाले लेखकों की सुदीर्घ परंपरा का उल्लेख करते हुए कहा कि भाषा और साहित्य के विकास के लिए विपुल साहित्य लेखनरत रहने की परंपरा में बिहार की मिट्टी से जुड़े डॉ. ग्रियर्सन, जगदीश चंद्र माथुर जैसे यशस्वी रचनाधर्मियों में डॉ. भगवतीशरण मिश्र का नाम पांक्तेय होगा.

युवा कवि-कथाकार एवं 'साहित्य कुंज' के सचिव शिवनारायण ने इस पूरे समारोह का संचालन करते हुए आरंभ में ही डॉ. मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी रचना-प्रक्रिया पर विस्तार से चर्चा की. उन्होंने कहा कि आज किसी कृति की आलोचना करते समय लेखन के साथ-साथ उसके पृष्ठगत आयामों एवं आधार तत्त्वों की भी विषद व्याख्या रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत की जाती है, तभी लेखक के रचना-संसार का पूरा-पूरा अर्धोद्घाटन हो पाता है. इस दृष्टि से डॉ. मिश्र की रचना-प्रक्रिया अनूठी-सात्त्विक है. उन्होंने जोर देते हुए कहा कि यदि कोई महत्त्वपूर्ण कृति सामने आती है तो उसकी गंभीर समीक्षा होनी चाहिए, हर परवर्ती पीढ़ी को साहित्य की उस धारा से जुड़ने में सुविधा हो सके. इस अवसर पर अन्य वक्ताओं में सर्वश्री डॉ. कुणाल कुमार, डॉ. मिथिलेश कमारी मिश्र, रामसिहासन सिंह 'विद्यार्थी', डॉ. संतोष दीक्षित ने भी अपने उद्गार व्यक्त किए. समारोह के आरंभ में सहभागी संस्थाओं की ओर से डॉ. भगवतीशरण मिश्र का भव्य स्वागत करते हुए उन्हें संस्कृत में एक अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया. अभिनंदन-पत्र का पाठ संस्कृत के आचार्य पं. अमलेश वर्मा ने किया.

अंत में, समारोह में उपस्थित रचनाधर्मियों के प्रति अपना आभार ज्ञापित करते हुए डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने इस भव्य सारस्वत आयोजन के लिए सहभागी संस्थाओं को धन्यवाद दिया. उन्होंने कहा कि मैं साहित्य-सेवी हूं और हमेशा भाषा-साहित्य के विकास के लिए सृजनरत रहना चाहता हूं. मुझे यह भ्रम कदापि नहीं है कि मैं एक महान उपन्यासकार हूं, जैसा कि लोग अक्सर कहते रहते हैं. मेरा लेखन मनुष्य को ऊंचाई, गरिमा एवं मान-मूल्य देने के लिए सतत-सचेष्ट रहता है. मुझे किसी वाद-विशेष के प्रति कभी आसक्ति नहीं रही. मेरी प्रतिबद्धता मनुष्य के कल्याण के प्रति रही है और मेरी सभी कृतियों में मेरी इस प्रतिबद्धता को साफ-साफ देखा जा सकता है. मुझे अभी बहुत लिखना है और अपने इस सतत लेखन के लिए मैं आप सब की मंगलकामना चाहता हूं.

इस समारोह का [illegible] 'सारस्वत' के अध्यक्ष निशांतकेतु [illegible] धन्यवाद-ज्ञापन से हुआ.

शिवनाराय

साहित्यकार समारोह

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा साहित्यकार सम्मान समारोह, सूचना केंद्र, उदयपुर में संपन्न हुआ. अकादमी के कार्यकारी अध्यक्ष डा. हेतु भारद्वाज ने अकादमी की गतिविधियों का विस्तार से परिचय देते हुए सम्मानीय रचनाकारों व अतिथियों का स्वागत किया. समारोह की अध्यक्षता करते हुए सुप्रसिद्ध कवि रघुवीर सहाय ने कहा कि प्रकाशन आदि की विकट समस्या से हमें जूझना पड़ रहा है.

श्री सहाय ने आजादी पश्चात के वर्षों में विकास के नाम पर अर्जित सरकारी उपलब्धियों की चर्चा के संदर्भ में कहा कि साहित्यकार की दृष्टि से हम यह भी पहचानें कि रचनात्कता ही इस देश को प्राप्त आजादी का पर्याय है. उन्होंने यह भी कहा कि स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में भारत की ऐतिहासिक, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिकता का विभाजन होता रहा है और हमने ही स्थापित मूल्यों को तोड़ा है. इसी क्रम में बी.ए. के पाठ्यक्रम तक हिंदी के साथ एक अन्य प्रादेशिक भाषा शिक्षण आवश्यक किए जाने की बात पर भी सहाय ने जोर दिया.

इस अवसर पर 'सारिका' के संपादक अवधनारायण मुद्गल ने सम्मान समारोह के विशिष्ठ अतिथि पद से बोलते हुए कहा कि राजस्थान साहित्य अकादमी सकारात्मक कार्यों में लगी है तथा यही एक मात्र अकादमी है जो योजनाबद्ध एवं सुविचरित ढंग से अपने कार्यों में प्रगति करते हुए कार्य कर रही है. इसी [illegible] से इसने अपना एक विशेष स्थान बना लिया है.

साहित्यकार सम्मान समारोह का शुभारंभ बाबा नागार्जुन ने सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्वलित कर किया. वयोवृद्ध साहित्यकार नागार्जुन ने साहित्यकारों को सम्मानित करने की परंपरा को अकादमी के लिए गौरवपूर्ण बताया और कहा कि राजस्थान साहित्य अकादमी ने कई उल्लेखनीय कार्य किये हैं. बाबा ने कहा– रचनाकारों का सम्मान, पांडुलिपि प्रकाशन सहयोग आदि कार्य सराहनीय है, लेकिन साहित्य जगत के पिछले वर्षों के प्रखर साहित्यकारों के कार्यों पर गहन चिंतन-मनन के लिए हर वर्ष व्याख्यानमालाओं का आयोजन किया जाए. इन विशिष्ठ साहित्यकारों के नाम गिनाते हुए बाबा ने रांगेय राघव, अज्ञेय व अमृतलाल नागर का उल्लेख किया.

सुविख्यात कवि और चिंतक बाबा नागार्जुन ने सर्व प्रथम स्वर्गीय डा. प्रकाश आतुर को अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य मनीषी' के सम्मान से मरणोपरांत अलंकृत किया, सम्मान स्वरूप ग्यारह हजार रु. की राशि, रजतपत्र, शाल व अकादमी प्रकाशन उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नूतन माथुर ने ग्रहण किये. विशिष्ठ साहित्यकार योजना परंपरा के अंतर्गत बाबा ने शांति मेहरोत्रा, ओमप्रकाश निर्मल, योगेंद्र किसलय को अलंकृत किया और उन्हें पांच-पांच हजार रुपये, प्रशस्ति पत्र, शाल व पुस्तकें भेंट स्वरूप दीं.

कार्यक्रम का संचालन अकादमी सचिव, डा. लक्ष्मी नारायण नंदवाना ने किया. □

विष्णु पुरोहित

भारतीय कथा साहित्य

दिल्ली विश्वविद्यालय के जानकीदेवी महाविद्यालय में 19-20 मार्च, को विभिन्न भारताय भाषाओं का कथा साहित्य पर द्विदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया. गोष्ठी का उद्घाटन करते पांडुरंगराव ने गोष्ठी के विषय को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि आज साहित्य मानवीयता से दूर चला गया है. आज के बिखरते हुए अलगाव के वातावरण में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की जितनी भी जानकारी प्राप्त हो सके उतना अच्छा है. कुछ कहने की, कुछ कहलवाने की और उसे जनमानस तक पहुंचने के लिए जब इच्छा जन्म लेती है तब ऐसी गोष्ठियों का महत्व बढ़ता है.

विषय प्रवर्तन करते हुए भारतीय ज्ञानपीठ के सचिव श्री बालस्वरूप राही ने विभिन्न भाषाओं से अनूदित कहानियों का उल्लेख करते हुए कहा कि बिना आंचलितकता के हम भारतीयता की सही पहचान नहीं कर सकते. केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रसिद्ध कथा-लेखक डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने विषय को महत्वपूर्ण बताते हुए हिंदी कथा साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला. प्रो. डा. तारकनाथ बाली ने कहा कि यह पहला अवसर है जब दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी कॉलेज में इतनी भारतीय भाषाओं को एक साथ गोष्ठी में जोड़ा गया है. उन्होंने विषय को महत्वपूर्ण बताते हुये उनके विभिन्न आयामों की चर्चा की और विभिन्न भाषाओं के कथा साहित्य के बीच भारतीय अस्मिता की पहचान पर बल दिया. प्रसिद्ध आलोचक प्रो. डॉ. नामवर सिंह ने आज की कहानी पर विचार प्रकट करते हुए विभिन्न भाषाओं की कथाओं का उल्लेख किया. गोष्ठी का समापन करते हुए साहित्य अकादमी के सचिव डॉ. इंद्रनाथ चौधरी ने विषय को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि हमें अपने साहित्य की परिभाषा अपने ढंग से करनी चाहिए. उसका अपना काव्य-शास्त्र होना चाहिए. उन्होंने आलोचक की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए कहा कि बहुत-सी भ्रांतियां आलोचक फैलाते हैं जो भारतीय जमीन से जुड़ी साहित्यिक कृतियों में विदेशी प्रभाव ढूंढते हैं. उन्होंने कहा कि अपने साहित्य का मूल्यांकन करने के लिए अपना दृष्टिकोण स्पष्ट और स्वच्छ होना चाहिए.

गोष्ठी में असमिया की डॉ. इंद्रा गोस्वामी, उर्दू के डॉ. सादिक, संस्कृत के श्री जयपाल विद्यालंकार, हिंदी के डॉ. गंगा प्रसाद विमल, पंजाबी की श्रीमती अजिताकौर, मराठी के डॉ. चंद्रकांत मेहता, तेलुगु के डॉ. जे.एल. रेड्डी, तमिल की डॉ. के.ऐ. जमुना अय्यर, बंगला की डॉ. जयंती चट्टोपाध्याय, मराठी के डॉ. निशिकांत मिरजाकर और उड़िया की डॉ. विधुत मोहंती ने अपनी-अपनी भाषा के कथा साहित्य पर विचार प्रकट किये. विभिन्न कॉलेज के प्रवक्ताओं ने सक्रिय भाग लेकर गोष्ठी को सफल बनाया. □

हिंदी साहित्यकार और विद्वान सम्मानित

राजनिवास में आयोजित 'सम्मान अर्पण' समारोह में दिल्ली के उपराज्यपाल अर्जन सिंह ने हिंदी के जानेमाने साहित्यकारों को सम्मानित किया. यह उल्लेखनीय है कि हिंदी अकादमी प्रतिवर्ष हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा के लिए साहित्यकारों के समग्र योगदान के सम्मान स्वरूप उन्हें सम्मानित करती है. 'सम्मान अर्पण' समारोह में बोलते हुए उपराज्यपाल महोदय ने कहा कि ''साहित्यकार सम्मान का भूखा नहीं होता है. यह तो समाज का कर्तव्य है कि वह उसे समुचित आदर दे और उसकी सेवाओं की पहचान करे.'' **हिंदी अकादमी के इस कार्य की सराहना करते हुए उपराज्यपाल ने कहा कि इन मनीषी** साहित्यकारों का सम्मान करके हिंदी अकादमी ने अपना कर्तव्य निभाया है. इस कार्य से हिंदी अकादमी का ही मान बढ़ा है. हम इन सभी साहित्यकारों के हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने हमारी यह छोटी-सी भेंट स्वीकार की, हमारी बात रखी और आज इस समारोह में आकर शोभा बढ़ाने की कृपा की. उपराज्यपाल ने यह भी कहा है कि मैं सभी साहित्यकारों को आदर पूर्वक बधाई देता हूं और उनसे यह अनुरोध भी करता हूं कि वे समय-समय पर हिंदी की सेवा के लिए हमारा मार्गदर्शन भी करते रहें.

हिंदी अकादमी के सचिव डॉ. नारायणदत्त पालीवाल ने समारोह का संचालन करते हुए सभी साहित्यकारों, मनीषियों और अतिथियों का स्वागत किया तथा अकादमी की विभिन्न योजनाओं पर प्रकाश डाला.

सम्मानित किये जाने वाले साहित्यकारों में सुप्रसिद्ध साहित्यकार **विष्णु प्रभाकर को 'शलाका सम्मान'** समर्पित किया गया, जिसमे 51,000/- रु. की राशि, एक शॉल, स्मृति चिह्न तथा प्रशस्ति-पत्र शामिल हैं.

हिंदी साहित्य की सेवा के लिए सर्वश्री देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ. ओंप्रकाश, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, जगदीश चतुर्वेदी, केदारनाथ सिंह, रमेश बक्षी तथा नासिरा शर्मा को सम्मानित किया गया. हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में सराहनीय कार्य के लिए श्री लक्ष्मी चंद्र जैन एवं डॉ. वेद प्रताप वैदिक को सम्मानित किया गया. इसी प्रकार राष्ट्रभाषा सेवा एवं प्रचार तथा प्रसार के लिए डॉ. पांडुरंग राव तथा ब्रजकिशोर शर्मा को सम्मानित किया गया. इनमें से प्रत्येक की सेवा में 21,000/-रु.की राशि, एक शॉल, स्मृति चिह्न तथा प्रशस्ति-पत्र भेंट किये गये.

यह उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध कथाकार मन्नू भंडारी ने अकादमी द्वारा भेंट की गयी सम्मान राशि को 'भानपुरा मेधावी एवं निर्धन छात्र समिति' नामक स्वयंसेवी संस्था को दे देने की इच्छा व्यक्त की है तथा कथाकार कमलेश्वर ने सम्मान के प्रतीक के रूप में केवल 1,000/-रु. स्वीकार करके शेष राशि चार युवा एवं उभरते हुए लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए दे देने की इच्छा व्यक्त की है.

इस अवसर पर अकादमी द्वारा सभी सम्मानित साहित्यकारों की परिचय स्मारिका का प्रकाशन भी किया गया, जिसका उपराज्यपाल महोदय ने विमोचन किया. प्रो. विजयेंद्र स्नातक ने योजना की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए सभी के प्रति आभार प्रकट किया.

आसमान झुक रहा है

हाल ही में, नोएडा सांस्कृतिक मंच की एक चर्चा गोष्ठी हिंदी के सुपरिचित युवा लेखक हरिसुमन बिष्ट के उपन्यास 'आसमान झुक रहा है' पर, नोएडा में संपन्न हुई. गोष्ठी में सर्वश्री सुरेंद्र तिवारी, अखिल अनूप और महेश दर्पण ने अपने-अपने आलेख पढ़े जिनके अनुसार क्रमशः यह उपन्यास मूलतः शोषण की गाथा का, जड़ और स्थापित से मुक्ति की कामना का और ऊंच-नीच से अंटे पड़े गांव की उद्देश्यपूर्ण कथा का उपन्यास है. परिचर्चा का प्रारंभ करते हुए सुरेश कुमार ने कहा कि इस उपन्यास में पहाड़ी गांवों में व्यापत वर्ग-विभाजन और नारी शोषण का चित्रण महत्वपूर्ण है. पंकज बिष्ट ने जहां **उपन्यास के प्रामाणिक चित्रण की** सराहना की वहीं यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' ने उसे संवेदना के स्तर पर प्रभावशाली बताया. दिविक रमेश ने कहा कि उपन्यास का यदि कोई मूल चरित्र है तो वह पहाड़ ही है और इसी दृष्टि से उपन्यास के स्ट्रेक्चर को देखा जाना चाहिए. ज्ञानप्रकाश विवेक का विचार था कि यह उपन्यास उन लोगों के लिए है जो पहाड़ की अभावग्रस्त जिंदगी को गहरे से समझना चाहते हैं. गोष्ठी में भाग लेने वाले अन्य लेखकों

में सर्वश्री असगर वजाहत, शौ
गर्ग, सुरेश उनिवाल, देवेंद्र
चौबे, राधेश्याम प्रगल्भ, आशा
व्होरा, राकेश रेणु, राजा खुग
रमेश कौशिक, प्रेमपाल
मनमोहन चड्ढा और बाबा का
आदि थे. अंत में अध्यक्ष पद से बो
हुए राजकुमार सैनी ने कहा
हरिसुमन बिष्ट का उप
लेखकीय साहस और चुनौती
उपन्यास है.

देवी शंकर अवस्थी प्रसंग

सात अप्रैल, सुबह दस बजे साहित्य अकादमी का सभागार खचाखच भरा था. वहां देवीशंकर अवस्थी के समकालीन-सहयोगी ही नहीं, वरन् युवा से लेकर तरुण यानी कई पीढ़ियों के साहित्यकार बड़े उत्साह से आये. इससे अवस्थीजी के व्यक्तित्व की आत्मीयता और आलोचना की लोकप्रियता का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है. साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित 'देवीशंकर अवस्थी स्मृति संगोष्ठी' में इन्हीं दोनों पहलुओं पर गर्मागर्म चर्चा हुई. गोष्ठी के दो सत्र थे. पहला संस्मरणों पर केंद्रित था और दूसरा उनकी समीक्षा पर. गोष्ठी चली तो सत्रों की सीमाएं भंग हो गयीं. संस्मरणों की शुरुआत नेमिचंद्र जैन ने की. उन्होंने अवस्थी जो के 'जीवंत व्यक्तित्व' और सच्चाई, ईमानदारी का वातावरण बनानेवाली उनकी उपस्थिति की चर्चा की. श्रीलाल शुक्ल ने दुख के साथ कहा कि उनके जाने से हिंदी आलोचना में उस प्रवृत्ति का विकास रुक गया जो शुद्ध स्वायत्तता और सापेक्षता के बीच थी. राजेंद्र यादव हमेशा से समीक्षा की अध्यापकीय प्रवृत्ति की जड़ता से चिंतित रहे हैं. उन्होंने अवस्थी जी में इसका अभाव पाकर प्रसन्नता व्यक्त की. डा. विश्वनाथ त्रिपाठी ने एक ऐसे प्रकरण का आरंभ कर दिया, जो दूसरे सत्र में नामवर बनाम देवीशंकर अवस्थी के रूप में छाया रहा. त्रिपाठीजी ने कहा कि 'रचना और आलोचना' के देवीशंकर अवस्थी और 'कविता के नये प्रतिमान' के नामवर सिंह में कोई अंतर नजर नहीं आता. इसके अलावा श्री अजित कुमार, डा. रामदरश मिश्र और कैलाशचंद्र शर्मा ने भी अवस्थी जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला.

दूसरे सत्र की चर्चा
गहमागहमी लिए हुए थी.
प्रकाश ने अवस्थी जी की आलो
के उस पहलू को उठाया कि
शिक्षा-संस्कृति की समस्याओं
गंभीरता से विचार किया गया है,
डा. नामवर सिंह पर उन्होंने
समस्याओं की अनदेखी का
लगाया. [illegible]श उपाध्याय ने अ
जी को रूपवादी समीक्षक
किया. राजकुमार सैनी ने रेखां
किया कि नामवर सिंह के
अवस्थीजी ने साहित्य की संवेदन
महत्व दिया. डा. मैनेजर पांडे
अपने वक्तव्य की शुरुआत
कहकर की कि जहां नामवर सिं
आलोचना खत्म होती है, व
अवस्थीजी की आलोचना शुरू
है, इसी बीच संचालक की छो
पर्ची उन्हें मिली और उनका व
गड़बड़ा गया. थोड़ी देर तक वे
विश्रृंखल-सा बोलते रहे. डा.
तिवारी ने अवस्थी के अंतर्विरो
चर्चा की और उनके मूल्यांक
अतिवादिता से बचाते हुए अवस्थी
को अत्यंत ग्रहणशील, बहुआ
और संवेदनशील आलोचक ब
अजय तिवारी ने इस बात को
उदाहरणों से पुष्ट किया. डा. ना
सिंह ने ज्यादातर सफाई दी और
ऊपर लगे आक्षेपों का उत्तर
उन्होंने जब बोलना शुरू कि
पंजाबी लेखिका अजित कौर वि
स्वरूप उठकर बाहर चली गयीं
नामवर सिंह ने अवस्थी
रूपवादी समीक्षक ठहराया
उनकी ईमानदारी पर भी शक
किया. कुल मिलाकर गोष्ठी
जीवंत रही, सिवाय इसके कि
जे.एन.यू. के छात्र पेटभर
मिलने का दुख व्यक्त करते

☐ बली

रचनात्मकता का सम्मान

राजधानी स्थित सादतपुर गांव में जन कवि शील के सम्मान में 13 व 14 अप्रैल को दो दिवसीय समारोह संपन्न हुआ. शीलजी के व्यक्ति और रचनाकार पर केंद्रित सत्र में कवि की रचनाओं का बंगला में करुणा निधान द्वारा किया गया अनुवाद उल्लेखनीय रहा. 'जन कविता: परंपरा और परिदृश्य' पर केंद्रित सत्र और कवि सम्मेलन इसलिए यादगार बन गये कि त्रिलोचन शास्त्री, अजित कुमार, कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, अदम गौंडवी, प्रयाग शुक्ल, अजय तिवारी, मंगलेश डबराल, कुबेरदत्त, मैनेजर पांडेय, राजकुमार सैनी, सरोज शर्मा, अरुण प्रकाश, कुमार सौवीर सहित अनेक चर्चित हस्ताक्षर यहां मौजूद थे. 'यथार्थवादी कहानी: परंपरा और परिदृश्य' पर केंद्रित सत्र की अध्यक्षता की प्रख्यात कथाकार रमाकांत व रमेश उपाध्याय ने और प्रारंभिक विचार सूत्र देते हुए संचालन किया महेश दर्पण ने. विषय प्रवर्तन करते हुए सुधीश पचौरी ने शीलजी के रचनाकर्म को प्रेरक व महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि हमें विचार करना चाहिए कि हमारी यथार्थवादी परंपरा का चुनाव और उसकी व्याख्या है क्या? नयी कहानी की हमारी व्याख्या क्या हो? नयी कहानी के बाद 'स्कूल ऑफ थॉट' की अनुपस्थिति को रेखांकित करते हुए उनका कहना था कि हमें समांतर कथा आंदोलन के बारे में भी विचार करना होगा. समीक्षा पद्धति की चर्चा करते हुए सुधीश का कहना था कि यथार्थ की एक पूर्वकल्पना जरूरी है. वर्तमान को संकट की घड़ी बताते हुए उनका कहना था कि आलोचना की आज रचना से मांग कुछ ज्यादा ही हो रही है. यथार्थ को समझने के मौजूदा औजारों को भी उन्होंने नाकाफी बताया.

अरुण प्रकाश का कहना था कि हमारे यहां स्वाधीनता आंदोलन पर बहुत लिखा गया पर सांप्रदायिकता से मिली चुनौती का वरण हम नहीं कर पाये. आज कहानीकार का संबोधन पाठकों से हटकर आलोचकों की तरफ चला गया है. उन्होंने कहा कि रचना के मूल्यांकन के औजार जरूर तय कीजिए पर इतना विलंब न कीजिए कि औजार ही पुराने पड़ जाएं. हमें आलोचना से सीखने को कम मिला है. डा. ओमप्रकाश ग्रेवाल ने सवाल उठाया कि आज जिस बिंदु पर हम खड़े हैं वहां यथार्थवादी परंपरा से जुड़ाव कैसा हो, यह सोचना होगा. हमें रचनाशीलता की स्थिति व चुनौतियों पर विचार करना होगा. यदि हम कहानी आलोचना के आकादमिक सिद्धांत बनाकर चलेंगे तो रचनाकारों को आलोचना से अधिक मदद नहीं मिलेगी. भले ही हमारे पुराने मानदंड उसी रूप में लागू न होते हों पर आज जहां हम खड़े हैं उसे समझने के लिए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने की कोशिश करनी होगी. आज का यथार्थ हवा में से निकलकर नहीं आया है. उनका कहना था कि हमें इस बात से सावधान रहना चाहिए कि आज के संकट की गलत परिभाषा से रचनाकार ठगा न जाए. यह संकट सामाजिक बदलाव का परिणाम है, ऐसा कहना सरलीकृत कर देना नहीं है.

शील सम्मान
13-14 अप्रैल 1990

डा. माहेश्वर ने इस बात पर विशेष बल दिया कि कहानी की परपरा को हमें 100 सालों तक ही सीमित नहीं कर देना चाहिए. हमारी विरासत में लोक साहित्य की विरासत भी है. हमें अपनी समूची परंपरा को लेना होगा. लोक कथाओं को आधुनिक ढंग से भी इस्तेमाल किया जा सकता है. उनमें क्राफ्ट भी मिलता है और दर्शन भी.

मनमोहन का कहना था कि परिस्थितियां कुछ इस तरह से बदली हैं कि उनके प्रति समर्पण तरह-तरह से दिखायी देता है. हमारे सामाजिक यथार्थ में पेचीदा स्थिति है. जो क्रुशुएल जंक्चर है, वह समकालीन में दिखायी नहीं देता. हमारे साहित्य में एक तरह का अराजनीतिकरण हुआ है. संकट क्या है, उसे परिभाषित करना पहले जरूरी है. हमारे बोध में नयी चीजें आ गयी हैं पर हमारे नाशंज नहीं बदले हैं. आलोचना की विफलता भी मैं इसी संदर्भ में देखता हूं.

ब्रजेश्वर मदान ने कहा कि मार्क्स के सामने आज का समाज नहीं था. आज की टेक्नौलॉजी नहीं थी. आज आदमी की नित नयी जरूरतें पैदा की जा रही हैं. नायक गायब जरूर हो गया है, पर हमें संज्ञा पर नहीं, क्रिया पर जोर देना चाहिए. आज बहुत-सी कहानियां मीडिया के दबाव में आकर लिखी जा रही हैं. इससे पॉपुलर टेस्ट के लिटरेचर का खतरा बढ़ा है. आलोचना और कहानी के संकट के भी मेरे खयाल से नकली मुद्दे बनाए गये हैं.

यश सरोज ने कहानी को चौपाल से जोड़ते हुए कहा—''रचनाकार पहले पहल बड़ी चर्चा की दरकार नहीं रखता. व्यक्तिगत रूप से परंपरा वही है—जो मैंने समझी है, कबूल की है, ली है. आज हमने साहित्य को खानों में बांट रखा है. मेरी समझ से सत्य के शाश्वत मूल्यों को रेखांकित करना ही अंततः स्वीकार किया जाएगा.'' नफीस आफरीदी ने कहा—यह आयोजन अपने आय में एक अलग ही तरह का आयोजन है. एयरकंडीशंड हॉलों की संस्कृति से अलग. आज सांप्रदायिकता अपने चरम पर है... पर हमारे रचनाकार इसे भी एक फार्मूले की तरह उठा रहे हैं. वे विभाजन से कथा सूत्र उठाते हैं. यह नहीं करते कि सचमुच आपसी मेल मिलाप और सौहार्द को आज की जिंदगी में तलाश करें. हमें एक-दूसरे की संवेदनाओं को समझना चाहिए.

सम्मानित रचनाकार शीलजी ने कहानी को निदान की खोज और रास्ते की तलाश बताया. कहानी हमारे यहां कही जाती रही है, लिखने का काम बहुत बाद में शुरू हुआ. विक्षुब्ध मन से उन्होंने कहा, ऐसा लगता है जैसे हम नयी परंपरा का सृजन नहीं करना चाहते. कहानी को हम वह रूप दें कि पाठक यह समझे कि पात्र हमारा है!

कथा गोष्ठी के अध्यक्षमंडल के सदस्य कथाकार रमेश उपाध्याय ने कहा कि आज की चर्चा से यह जाहिर हो गया कि साहित्य के बारे में हम कितने गंभीर हैं. साहित्य एक किनारे नहीं हो गया है. हम वह जमाना भूल जाते हैं जब साधन मौजूद नहीं थे और आदमी पोथी लिखकर मर जाता था. वे पोथियां आज भी हमारे साथ बनी हुई हैं. आज हम क्षणवादी नजरिये से सोचते हैं. साहित्य अखबार या टी.वी. का प्रोग्राम नहीं है. रचना और आलोचना का जैसा संबंध होना चाहिए, वह नहीं है. पर यह कहना कि हमें आलोचना की जरूरत ही नहीं है, गलत है. अपने आपको स्वायत्त मान लेने की यह बात हमें अपने सामाजिक यथार्थ से दूर करती है. आलोचक समाज का एक जिम्मेदार व्यक्ति है. सामाजिक संकट को तो हमने स्वीकार कर लिया, पर उससे निबटने के बारे में राय मिल नहीं पा रही. दूरदर्शन का प्रभाव नये रचनाकार ग्रहण कर रहे हैं.

अध्यक्षमंडल के दूसरे सदस्य कथाकार रमाकांत ने 'चांद से गांव तक' और 'कुत्ते की दुम' जैसी कहानियों की चर्चा के साथ रचनाकार शीलजी से संबंधित संस्मरण सुनाये. उनका कहना था कि आधुनिक कहानी को महज 100 वर्ष हुए हैं अभी. सोचने की बात यह है कि हमारी आधुनिक कहानी पहुंची कहां तक है? उनका कहना था कि विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है' की आलोचना भावुकता के कारण की जाती है और श्रेष्ठता के नाम पर निर्मल की 'परिंदे' को लटका दिया जाता है. जिस चीज को निर्मल तीन-चार पृष्ठों भी नहीं कह पाते हैं उसे प्रेमचंद महज एक वाक्य में कह जाते हैं—'संगीत से कल्पना चित्रमय हो जाती है'. निर्मल की वह कहानी हमारे लिए कहानी का मयार नहीं हो सकती. रचनात्मक आलोचना करते हुए हमें कहानी को घपलों से बचना चाहिए. आलोचना ने घपले भी बहुत किये हैं. □

कर वंचन का मायाजाल
कर देगा हाल बेहाल

अपने आयकर/ धनकर संबंधी मामलों का निपटारा करें

लंबी और महंगी मुकदमेबाजी से बचें । अपने कर-निर्धारण में निश्चितता प्राप्त करें ।

आयकर और धनकर अधिनियमों के अधीन दंड और अभियोजन, भारतीय दंड संहिता के अधीन अभियोजन, किसी अन्य केंद्रीय अधिनियम के अधीन अभियोजन से बचें ।

आयकर विभाग द्वारा धन का छिपाना या जालसाज़ी साबित कर देने या करने की संभावना से पूर्व

ये सभी लाभ आपको मिल सकते हैं । यदि आप निपटारे के लिए आवेदन दाखिल करें तो

इस संबंध में आवेदन दिल्ली, बंबई, कलकत्ता और मद्रास स्थित आयकर/ धनकर समझौता आयोग की पीठों के समक्ष दाखिल किये जा सकते हैं ।

निपटारें के लिए आवेदन तभी दाखिल करें :

(क) जब घोषित आय पर देय अतिरिक्त आयकर 50,000 रु. से अधिक हो ।

(ख) संबंधित वर्षों के लिए कर की विवरणियां दाखिल कर दी गयी हों ।

(ग) तलाशी और ज़ब्ती के मामले में, ज़ब्ती के बाद 120 दिन बीत गये हों ।

आयकर विभाग
आयकर निदेशालय
(ग.सां प्र. एवं जन संपर्क)
नयी दिल्ली

डीएवीपी 90/2

"स्वाद लाजवाब
सुगन्ध, वाह जनाब!"
रत्ना छाप
जाफरानी पत्ती
300
IS: 2344
ISI
L-1081435
ता के मानदण्ड
एकदम खरा
फ़रानी जर्दा
रत्ना छाप
ज़ाफरानी पत्ती
सुगन्धित चबाने की तम्बाकू
शुद्ध वजन 50 ग्राम
300
रत्ना छाप
जाफरानी पत्ती नं.-300
TRADE MARK
REGD. NO. 295532
प्रभात ज़र्दा उत्पादन

अब नई शानदार पैकिंग में

वैधानिक चेतावनी : तम्बाकू चबाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है

नेट कोलमैन एंड क. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेश चंद्र द्वारा नेशनल [illegible] रोड, बंबई-400001, शाखाएं, 7 बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7 ए. एस.एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014; एस.एंड.बी. टावर्स, 88, महात्मा गांधी रोड, बंगलोर-560001; 8-9 अनुपम चेंबर्स, टोंक रोड, जयपुर- 302004.

ीकृत सं. D-(C)-779
र्व शुल्क के बिना डाक में डालने
ी अनुमति सं. U-89

RNI No. 6254/60

Regn. No. G
Regn. No. KRN
RJ 2954

Chutki
Chutki
Chutki
Chutki

चुटकी में मस्ती

अब
जर्दा पान मसाला
में भी उपलब्ध।

चुटकी
पान मसाला

प्यार के रिश्तों में एक अनोखी ताज़गी और मीठी-मीठी महक लाता है। हर मौके, हर महफिल में रंग जमाता है। सौंफ छुआरा और इलायची वाला चुटकी पान मसाला

वैधानिक चेतावनी: जर्दा चबाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

नवभारत टाइम्स प्रकाशन

जून, १९९०, मूल्य : दस रुपये

सारिका

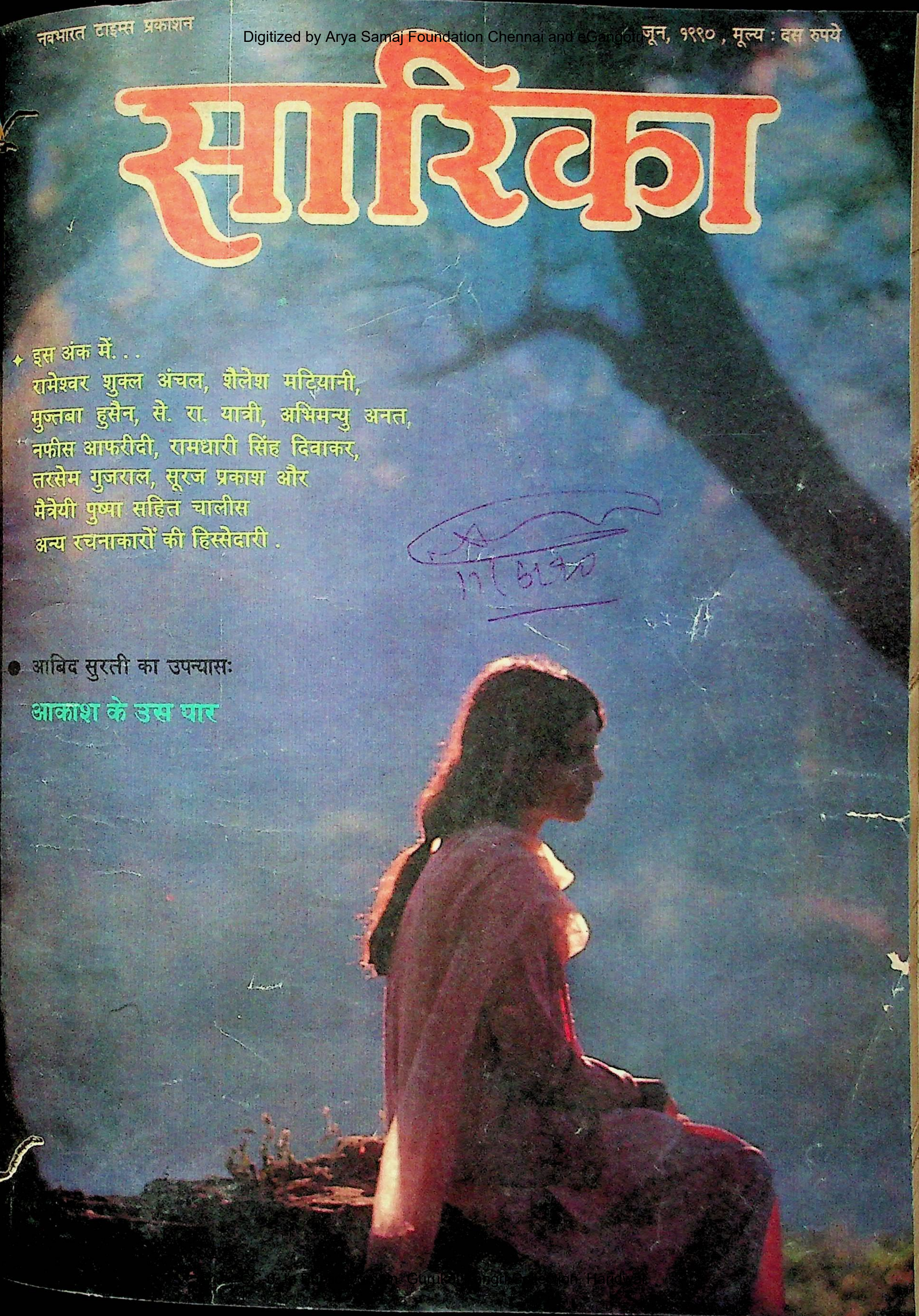

✦ इस अंक में. . .
रामेश्वर शुक्ल अंचल, शैलेश मटियानी,
मुज्तबा हुसैन, से. रा. यात्री, अभिमन्यु अनत,
नफीस आफरीदी, रामधारी सिंह दिवाकर,
तरसेम गुजराल, सूरज प्रकाश और
मैत्रेयी पुष्पा सहित चालीस
अन्य रचनाकारों की हिस्सेदारी .

17/6/90

● आबिद सुरती का उपन्यासः

आकाश के उस पार

Bhola
SPECIAL
ZAFRANI PATTI
भोला छाप
ज़ाफ़रानी पत्ती
खाने का खुशबूदार तम्बाकू
सुगंध स्वाद व ताजगी के लिये
केसरवानी जर्दा भण्डार
पो. सहसों. जि. इलाहाबाद
भोला
स्पेशल
जाफरानी पत्ती
उत्तम
सुगन्धित
तम्बाकू
SAHSON DIST. ALLAHABA
Bhola
भोला
ज़ाफरानी जर्दा
325
उत्तम सुगन्धित
तम्बाकू
पान
ट्रेड मार्क
रजिस्टर्ड
रजि. नं. २४६४७३
चाँदनी पत्ती
वर्कदार
पान में खाने का रूपम मिश्रित सुर्ती
केसरवानी जर्दा भण्डार
पो. मु. सहसों जि. इलाहाबाद
पान
छाप
SPECIAL
PAN
CHHAP
ZAFRANI PATTI
जर्दा भण्डार पो. मु. सहसों

हमारे उत्कृष्ट उत्पादन

प्रस्तुतकर्ता
भोलानाथ केसरवानी

जर्दा तो हर कोई
बना सकता है लेकिन
जिसकी क्वालिटी बेमिसाल
और जायका लाजवाब है
वह केसरवानी
जर्दा भंडार वाले
ही बनाते है

निर्माता
केसरवानी जर्दा भंडार
सहसों इलाहाबाद

वैधानिक चेतावनी :—तम्बाकु चबाना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है

डायमंड पाकेट बुक्स में

जिनकी कलम का जादू आपका मन मोह चुका है।

रहस्य, थ्रिल और सस्पैंस से भरपूर

श्रीकान्त पाटेकर

का नया जासूसी शाहकार

एक और खून

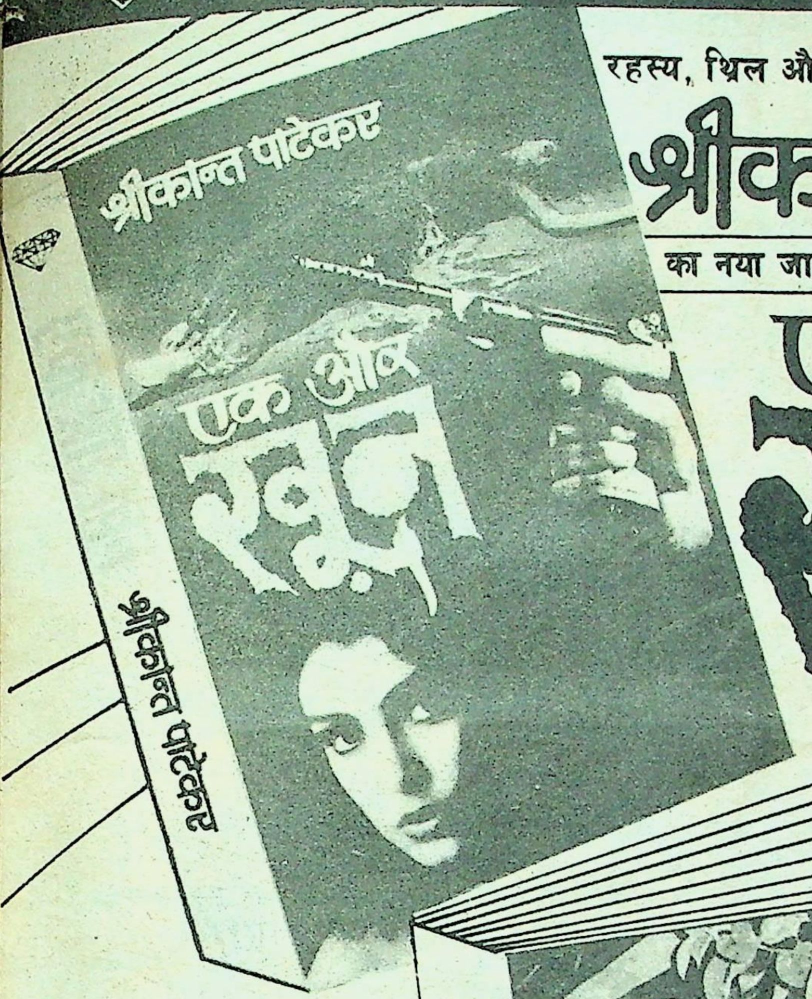

पुस्तकालय
गु० कां० विश्वविद्यालय
हरिद्वार

समीर के अन्य उपन्यास

टूटा घरौदा	10.00
शक	10.00
परख	10.00
कोशिश	10.00
धन दौलत	10.00
वचन की लाज	10.00
कलयुग की सीता	10.00
दूसरा गौतम	10.00
अंतिम सच	10.00
कोहरा	10.00
अधूरा सुहाग	10.00
बंदिश	10.00
तीन सहेलियां	10.00
शपथ	6.00
एक ही रास्ता	6.00
दूर के राही	6.00
प्यासी सीप	5.00
सुख दुख	6.00
आग	6.00
कलयुग का भीष्म	6.00
सुहाग की लाज	6.00
अधूरी पत्नी	6.00
छोटी बहू	6.00
पति परमेश्वर	6.00

महिलाओं की पहली पसंद
भावनाओं के कुशल चितेरे
समीर
का नया उपन्यास
टूटा घरौंदा

समीर
टूटा घरौंदा
टूटा घरौंदा
समीर
10/-

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा.लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

कथा पहेली

अप्रैल :1990

सर्वशुद्ध हल

1. अमृत लाल नागर, प्रदीप पंत, हरिशंकर परसाई.
2. पृष्ठ 10 पर 'सारिका' द्वारा जारी अपील.
3. कथा शिल्पी अमृत लाल नागर स्मृति शेष हो गये थे.
4. रमेश चंद्र शाह के 'किस्सा गुलाम'.
5. I शिवजी श्रीवास्तव II महावीर अग्रवाल III अज्ञेय IV रमेश चंद्र शाह V रानी राम सहाय VI धर्मानंद भंटु
6. 'वह भी'
7. I कोंपल कथा II राधेजी पर व्यंग्य नहीं लिखूंगा III यह पात्र इस अंक में नहीं है. IV वह भी V तलाश

हजारों प्रतियोगियों में इस बार सर्वशुद्ध हल कोई भी प्रतियोगी नहीं भेज सका है. एक अशुद्धि के साथ हल भेजने वाले एक मात्र प्रतियोगी को पुरस्कृत किया जा रहा है. यह प्रतियोगी हैं.

प्रदीप नारायण बालिया
अंतर राज्य पुलिस बेतार केंद्र,
यूनिट-8, नया पल्ली,
भुवनेश्वर (उड़ीसा)
पिन-751012

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िए और 200 रुपये के पुरस्का जीतिए!

'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों से अनुरोध है कि वे पूर्तियां इसी पृष्ठ पर भेजें. इस बार के प्रश्न मई, 1990 के अंक पर आधारित हैं. पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि 25 जून, 1990 है, वहां के पाठक उल्लेख सहित पूर्तियां देर से भी भेज सकते हैं.

कथा पहेली

जून, 1990

निर्देश के अनुसार खाली स्थान भरिए

1. न्यायाधीश को निरुत्तर कर देने वाला कथा प्रसंग.................... की........................ नामक रचना में आया है.
2. पृथ्वी थियेटर्स में लंबे समय तक जुड़े रहे रचनाकार की एक रचना इस अंक मे प्रकाशित हुई है. यह रचना है.................. और रचनाकार हैं....................
3. क्रमवार प्रस्तुति न होने के कारण........................... नामक रचना में कथा ए चित्रों का तालमेल गड़बड़ गया है.
4. 'जैसे को तैसा' कहावत........................... नामक रचना पर सटीक बैठती है.
5. सरकारी अधिकारियों के भ्रष्ट और गलीज व्यवहार का सही उदाहरण रचनाकार..................... ने अपनी रचना........................में बखूबी सामने रखा है.
6. उपन्यास........................... के कथांश में एक स्त्री के दो स्वामी न हो सकने का तार्किक विश्लेषण किया गया है.
7. "प्रेमचंद की कहानियों के कथात्मक स्थैर्य (नैरेटिव काम) के अंतर्गत जो गति है, जो सहज योग क्षेम की अनुभूति है और जो सर्वाश्रित संवेदनीयता है, वह उनके कथानकों से विकसित होती है, विचार के बहिरंग ढांचे से नहीं." यह विचार... के हैं.
8. शिल्प की दृष्टि से इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी.................... है.

नाम ....
पता ....

विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला

जनरुचि के 50 लघु विश्वकोशों की एक अनूठी संग्रहणीय भृंखला

खोजें
अनसुलझे रहस्य
रोमांचक कारनामे

विश्व-प्रसिद्ध
विश्व-प्रसिद्ध 101 व्यक्तित्व
विश्व-प्रसिद्ध धर्म मत एवं सम्प्रदाय
विश्व-प्रसिद्ध खेल और खिलाड़ी
विश्व-प्रसिद्ध रिकार्ड्स
वैज्ञानिक
विश्व-प्रसिद्ध विनाश-लीलाएं
गुप्तचर संस्थाएं
विश्व-प्रसिद्ध दुर्घटनाएं
विश्व-प्रसिद्ध जासूस
प्रेरक प्रसंग
विश्व-प्रसिद्ध
विश्व-प्रसिद्ध बैंक डकैतियां
जासूसी कांड
हत्यारे
सभ्यताएं
रोमांस कथाएं
दुस्साहसिक खोज यात्राएं
जन-क्रांतियां
भूत-प्रेत घटनाएं
तख्तापलट की घटनाएं
राजनैतिक हत्याएं
हस्तियों के प्रेम-प्रसंग

मूल्य: 18/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें
मंगाने पर डाकखर्च माफ

■ प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री ■ प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित ■ सरस कथा शैली ■ फोटोटाइप सैट ■ बढ़िया कागज पर ऑफसेट छपाई ■ बहुरंगी आवरण ■ वाजिब दाम

इस भृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करते हुए उसके ज्ञान-क्षेत्र का विस्तार है।

उदाहरणार्थ **रोमांचक कारनामे** में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो **खोजें** में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। **अनसुलझे रहस्य** में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो ***खेल और खिलाड़ी, 101 व्यक्तित्व*** व वैज्ञानिक जीवनी-प्रधान पुस्तकें हैं। **विनाश-लीलाएं** व **दुर्घटनाएं** में मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है तो ***गुप्तचर संस्थाएं, जासूस*** व ***जासूसी कांड*** में जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं। ***सभ्यताएं, मिथक एवं पुराण कथाएं*** और ***प्रेरक-प्रसंग*** किसी भटके हुए मन के लिए प्रकाश-स्तंभ हैं तो ***हत्यारे*** में रक्त-पिपासु हैवानों की कथाएं हैं। ***रोमांस-कथाएं*** तथा ***हस्तियों के प्रेम-प्रसंग*** में लैला-मजनूं से लेकर हिटलर, कैनेडी, चार्ली चैपलिन, नेहरू जैसे व्यक्तियों के दिलों की धड़कनें हैं तो ***अनमोल खजाने*** में रहस्य और रोमांच से भरे खजाने हैं। ***दुस्साहसिक खोज-यात्राएं*** में कोलंबस, मार्को पोलो जैसे खोज-यात्रियों की गौरव-गाथाएं हैं तो ***जन-क्रांतियां*** में सभी महत्त्वपूर्ण क्रांतियों का ब्यौरा है। ***भूत-प्रेत घटनाएं, अलौकिक रहस्य*** तथा ***मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे*** पढ़कर आपकी रातों की नींद उड़ जायेगी। ***कुख्यात महिलाएं*** व ***विलासी सुंदरियां*** में मर्लिन मुनरो, जैक्लीन कैनेडी जैसी औरतों का निजी जीवन है तो ***सनकी तानाशाह, राजनैतिक हत्याएं, तख्ता-पलट घटनाएं*** व ***आतंकवादी संगठन*** में आपको विश्व-कूटनीति का असली चेहरा दिखाई देगा।

[illegible] प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक सचित्र मिनि एनसाइक्लोपीडिया है।

विलासी सुंदरियां
कुख्यात महिलाएं
सनकी तानाशाह
मांसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे
नये प्रकाशन
आतंकवादी संगठन
मिथक एवं पुराण कथाएं
अलौकिक रहस्य
भ्रष्ट राजनीतिज्ञ

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांगें। वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते:-

पुस्तक महल खारी बावली, दिल्ली-110006
शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

अगला अं

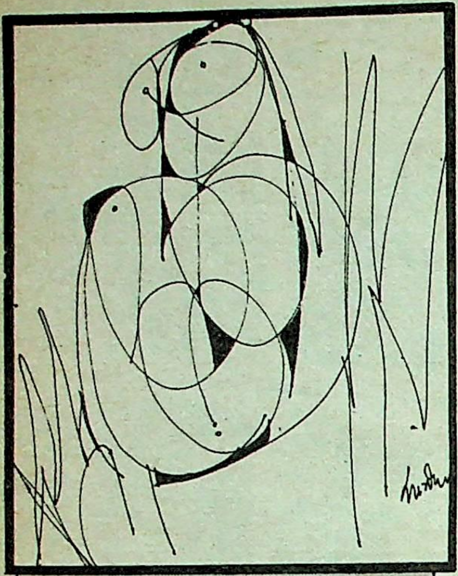

सीमांत उसके जीवन में एक निश्चित बदलाव लेकर आया है. उसने अपनी मित्र वंदना को सीमांत के बारे में बताया था. यह भी बताया था कि सीमांत के आने के बाद से वह हंस सकी है. वंदना उसके खिले चेहरे को देखकर कह रही थी, "तुम ऐसे ही हंसती रहा करो, कितनी अच्छी लगती हो हंसते हुए... मैं तुम्हारे सीमांत को देखना चाहती हूं."

कौन है यह सीमांत...? आखिर उसका कथा नायिका से रिश्ता क्या है?

कुसुम चतुर्वेदी की संपूर्ण उपन्यासिका

पड़ाव

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचा

जुलाई, 1990

'वे मुख्यमंत्री की पार्टी के लोग थे और प्रचार के लिए उत थे कि जनता मुख्यमंत्री के साथ है...' क्या जनता को भी य पता था कि वह मुख्यमंत्री के साथ है...?

वर्तमान जीवन की सच्चाईयों को बेनकाब करती गोविंद मिश्र, शशिप्रभा शास्त्री, मानिक बंद्योपाध्याय, गौरीशंकर कपूर, सुदर्शन नारंग, प्रदीप पंत, प्रबोध जोशी, केवल सूद और दानिश की कहानियां.

"...मुझे यह मानने में बिल्कुल हिचक नहीं कि मैं अब तक यह नहीं जान सका कि कहानी क्या होती है, और अच्छी कहानी किसे कहेंगे. कभी-कभी कल्पना किया करता कि कहानी को एक चीख की भांति होना चाहिए, अंधेरे में उठती कोई चीख."

लेखन के इस मोड़ पर आकर कथाकार गोविंद मिश्र अपने आलेख में पड़ताल कर रहे हैं उन सूत्रों की जो रचना का प्रकाश देते हैं... 'आधे पहुंचकर...'

और साथ में

आपकी बात, कथा पहेली, कृतियां, कैसे-कैसे लोग, आलोचना की अंतर्यात्रा, फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, हलचल, लघुकथाएं, कविता 'पुरुषोत्तम' और 'लाल पसीना'.

प्रकाशक:
रमेश चंद्र

संपादक:
अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक:
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

सीनियर मैनेजर विज्ञापन:
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिस्पांस:
डा. राजेंद्रपाल जैन

सीनियर ऑफीसर रिस्पांस:
शबनम अग्रवाल

रिस्पांस सहयोगी:
अशोक माथुर

प्रोडक्शन:
हरेंद्र सिंह नेगी
उदेश कुमार

आवरण एवं अंक सज्जा:
किनमिन

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था:
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय:
डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग, बंबई-400 001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर

33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट, कलकत्ता-700 062

'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6 डी नगामवक्कम हाई रोड, मद्रास-600 034

88 महात्मागांधी रोड, बंगलूर

407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411 002

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान
वर्ष : 30, अंक : 457, जून, 1990

उपन्यास

12.
आकाश के उस पार
आबिद सुरती

"शराब की आदत तो मैंने छोड़ दी. लेकिन नोटों को भुलाना मुश्किल था. डॉक्टर को छोड़ने के बाद मैं एक होटल में रूम लेकर अकेली ही रहने लगी. पिंकी मेरे पेट में पल रही थी. और उसके लिए मुझे नोटों की जरूरत थी. आज तक वह जरूरत पूरी नहीं हुई. जब तक पिंकी शादी करके किसी अच्छे परिवार में नहीं चली जाती. मुझे ऐसे ही ··· जीना होगा."

नील खामोश हो गयी है. उसकी आंखों में खालीपन उतर आया है. उसके सामने वीरानी छलक उठी है. उसके चेहरे पर उदासी फैल गयी है.

आवरण पारदर्शी :
ओ.पी. कपूर

कथा-रचनाएं

32. जिज्जी :
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
38. बड़े होते लोग :
रामधारी सिंह दिवाकर
43. किराये का इंद्रधनुष :
सूरज प्रकाश
48. टाट का कफन :
नफीस आफरीदी
53. बेटी :
मैत्रेयी पुष्पा
56. टेलीविजन :
मुज्तबा हुसैन
58. जलता हुआ घर :
तरसेम गुजराल
71. राहत की एक सांस :
कुमार अंबुज

धारीवाही आयोजन

62. लाल पसीना :
अभिमन्यु अनत
68. पुरुषोत्तम :
भगवती शरण मिश्र

कविता

38. अंत:सलिला
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

विशिष्ट आयोजन

66. फाइल पढ़ि-पढ़ि जग मुआ :
गोपाल चतुर्वेदी

75. कैसे-कैसे लोग :
से.रा. यात्री
78. आलोचना की पुनर्यात्रा :
सुधीश पचौरी
80. हिंदी कहानी के दो तोता मास्टर :
शैलेश मटियानी

स्थायी स्तंभ

4. कथापहेली
8. आपकी बात
84. कृतियां
88. हलचल

कापीराइट ©1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

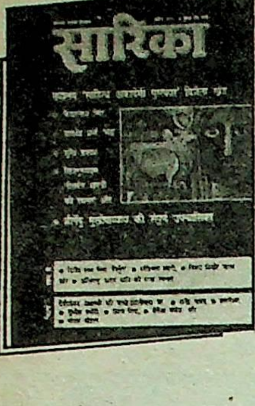

मर्मस्पर्शी कथाएं

सारिका का अप्रैल अंक पढ़ने का अवसर मिला. 'रंग बिरंगे लोग' में वास्तव में सभी पात्र अपने-अपने रंग में रंगे हुए लगे. विशेष आकर्षक रही—द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की 'दिशाहीन'. कथा के अंत में महसूस हुआ कि ममता के साथ लेखक न्याय नहीं कर पाया. जीवन भर कर्तव्य परायण रहने पर उसके जीवन को 'दिशाहीन' कर दिया गया.

'मुट्ठी भर रोशनी' बहुत ही भावुक कर गयी. 'सारिका' की विशेषता यही महसूस होती है कि इसमें मर्मस्पर्शी व भावुक कथाओं का समावेश रहता है.

□ **अंजनी कुमार बाजपेयी, जयपुर**

आम आदमी का द्वंद्व

अप्रैल अंक की सभी कहानियां पढ़ीं. 'लाडली' और 'युद्धविराम' कहानियां इस अंक की उल्लेखनीय कहानियां हैं. 'लाडली' में जहां यादवेंद्रजी की परंपरागत शैली और भाषा की सौंधी महक है वहीं 'युद्धविराम' में मानवजी ने एक आम आदमी के द्वंद्व को बड़ी बारीकी से उभरा है. कहानी का अंत बेहद प्रभावशाली और स्वाभाविक लगा. इस सशक्त रचना के लिए मानवजी को बधाई!

लघुकथाओं में 'शर्महया', 'उम्मीद', 'ब्रह्म का रूप' और 'बड़ा कौन' अच्छी रचनायें हैं.

□ **कैलाश चंद्र शर्मा, कानपुर**

नये रचनाकारों की सशक्त अभिव्यक्ति

जिस तरह शारीरिक विकास के लिये पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है ठीक उसी तरह उचित मानसिक विकास हेतु अच्छे साहित्य की आवश्यकता होती है. इस क्षेत्र में 'सारिका' की अपनी परंपरा रही है और बुद्धिजीवियों में इस पत्रिका का अपना एक सुरक्षित स्थान है.

अप्रैल, 90 अंक में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता' खंड की आड लेकर जिस फूहड़ साहित्य को परोसा है, एकाएक विश्वास नहीं होता कि ये 'सारिका' है. 'लाडली' में अश्लील संवादों की पराकाष्ठा है. गालियां विहीन संवादों द्वारा भी क्षेत्रीय बोली' का पुट मिल सकता था. 'रंग बिरंगे लोग' (शीर्षेंदु) में कहीं भी कुछ रंग बिरंगा नहीं लगा. अलबत्ता बदरंग-लोग यदि इस उपन्यासिका का नाम होता तो धक भी सकता था.

एक बार फिर निर्गुणजी ने 'ममता' के नाम से अपनी कलम का लोहा मनवा लिया. जबकि 'सरस्वती' अभी भी दिल-दिमाग पर छायी हुई है. साधुवाद!

नये रचनाकारों ने भी काफी सशक्त अभिव्यक्ति दी है. अपनी कलम को तेजेंद्र शर्मा (मुठ्ठी पर रोशनी), विजय किशोर मानव (युद्ध विराम) एवं शैलजा (जो एक सपना था) की रचनाओं का उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं.

□ **लोकेश बाजपेयी, विदिशा (म.प्र.)**

गांव की तस्वीर

अभी कुछ दिनों से 'सारिका' के पुराने अंकों को उलट-पलट रहा था, उसमें अंक 290, 1 से 15 अगस्त, 1981 हाथ आ गया. 'ग्रामीण कथाओं' के आइने में हमारा देश. अंक काफी अच्छा था, फिर से पढ़ा नयापन का अनुभव हुआ. श्री रामदरश मिश्र का साक्षात्कार तथा शिवप्रसाद सिंह जी के विचार 'ग्राम कथा लेखन' गांव आप बीती मिथलश्वरजी की...

ग्रामीण कहानियों व साक्षात्कारों में गांव की वास्तविक तस्वीर आंखों के सामने घूमने लगी. आप शायद यह ने सोचने लगें कि अतीत का बारीकी से मूल्यांकन क्यों कर रहा हूं. वास्तव में आपसे मैं यह निवेदन करना चाहता हूं. तब से अब तक बीते हुए 10 वर्षों में हमारा ग्रामीण कथा लेखन कितनी प्रगति कर पाया है. हमारे आज के गांव जहां अब दूरदर्शन की पहुंच है, बिजली, सड़कों के बढ़ते साधन. पीने के पानी की सहूलियत का सरकार का प्रयत्न से कितना फर्क आया है. इस विषय में दस वर्ष बाद फिर से विशेषांक के माध्यम से साक्षात्कारो द्वारा प्रतिष्ठित लेखकों मे माध्यम से, आप बीती तथा इस दस वर्ष के अंतराल में जो अच्छी कहानियां गांवों के जीवन के ऊपर लिखी गयी उनको समाविष्ट करके हम सभी वाचकों के सामने रखने की कृपा करें.

□ **ओमप्रकाश सिंह भदौरिया, गांधीनगर (गुजरात)**

यूं होता तो क्या होता?

'सारिका' के अप्रैल अंक में प्रकाशित लेखक अविनाश की उपन्यासिका 'यूं होता तो क्या होता' अधूरी कहानी पढ़ने को मिली. मजा किरकिरा हो गया. बीच में पेज नहीं थे. यह प्रकाशन या पेज ठीक से न होने के कारण ऐसा हुआ. इसे हम पूरा पढ़ना चाहते हैं. कैसे पढ़ने को मिलेगा. लेखक से पत्र व्यवहार किया तो उन्होंने लिखा मेरे पास एक ही प्रति है, आप बाजार से पता कीजिये! अब बताइये 'सारिका' संपूर्ण कहां मिलेगी. मेरे पास नयी प्रति है, परंतु कहानी अधूरी है. बीच के पेज नहीं है. ऐसी भूल से पाठकों को पश्चात्ताप होता है. बिना कसूर कहानी का मजा किरकिरा, क्या पूरी कहानी पढ़ने को मिलेगी?

□ **कृपाशंकर औदीच्य, फतेहपुर (उ.प्र.)**

उपेक्षित तीसरी परंपरा में एक और उपेक्षा

यह देखकर बड़ा सुखद अनुभव हुआ कि इस वर्ष विभिन्न पत्रिकाओं ने स्व. डा. देवीशंकर अवस्थी की कथा-समीक्षा के क्षेत्र में मौलिक देन को रेखांकित करने का स्तुत्य कार्य किया है. इसमें संदेह नहीं कि डा. अवस्थी कहानी-समीक्षा के लिए सर्वथा नये औजारों की खोज की सफल कोशिश कर रहे थे और उन्होंने कहानी विधा को अलग महत्ता दिलाने का जो कार्य किया, उसका ऐहितासिक महत्व है. यह दुर्भाग्य रहा कि उनके द्वार प्रतिपादित कथा समीक्षा के औजार पर आगे बहुत कारगर काम हुआ. 'सारिका' के अप्रैल, 1990 में सुधीश पचौरी का लेख अवस्थी के दाय को सही परिप्रे प्रस्तुत करने का प्रयास करता है. मुझे यह लेख पढ़ते समय लगता रहा कि हम 'सुपरलेटिव्ज' में बातें करते हैं 'सुपरलेटिव्ज' किसी व्यक्ति वस्तुनिष्ठ महत्ता का निषेध करते यह बात बहुत महत्व नहीं रखते अगर आज डा. अवस्थी जीवित तो डा. नामवर सिंह का क्या होता? क्या यह जरूरी है कि कथा समीक्षा में किसी को बड़ा करना चाहते हैं तो पहले डा. ना सिंह को उससे छोटा सिद्ध करें नामवर सिंह ने कहानी समीक्षा लि उसमें उन्होंने कविता के औजारों प्रयोग किया तथा वह समीक्षा अंतर्विरोधों का शिकार है, उस अक्सर चर्चा होती ही रहती है. तो चर्चा डा. अवस्थी द्वारा प्रतिपा कथा मानों पर होनी चाहिए. सुधी पचौरी निश्चय ही एक सुधी समीक्षक हैं. किंतु लेख में वे कहीं-कहीं अतिरेकवादी हो गये हैं और वे की जिस तीसरी परंपरा की बात रहे हैं, वे स्वयं भी उसी का पोषण रहे हैं.

मैं एक उदाहरण देना चा हूं—मेरा मतलब किसी छोटा-बड़ा करना नहीं है और न तय करना है कि कथा-समीक्षा परंपरा किससे प्रारंभ होती है लिखते हैं, "यदि यह टिप्पणी पहले लिखी जाती तो भी (और भी) यह अवधारणा प्रस्तुत की थी कि हिंदी कथा-समीक्षा वास्तविक शुरुआत नामवर सिं नहीं, देवीशंकर की कथा-समीक्षा होती है. यों नयी कहानी की दुष्यंत कुमार की टिप्पणियों से है. ऐसे ही राजेंद्र यादव याद कर कि हिंदी कथा-समीक्षा का 'किन्ही शिलीमुखजी' से होता है. तरह देखेंगे तो कथा-समीक्षा भारतीय उत्स 'वेदों' में गिरेगा." (सारिका, अप्रैल, 90 76-77) यहां सुधीश पचौरी "किन्ही शिलीमुखीजी' लिखना उपेक्षा का निर्वाह है जिसकी अवस्थीजी के संदर्भ में भर्त्सना रहे हैं. मैं यहां निवेदन यह चाहता हूं कि हिंदी समीक्षा प्रारंभिक दौर में जिन समीक्षकों हिंदी समीक्षा को अपना मौलिक

हिन्दी अकादमी, दिल्ली

का महत्वपूर्ण प्रकाशन

'इन्द्रप्रस्थ कहानी संग्रह'

- इस संग्रह में वरिष्ठ पीढ़ी के एवं युवा पीढ़ी के कहानीकारों की रचना-दृष्टि एक साथ ही पाठकों के लिए उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है ।
- लगभग 300 पृष्ठ के इस कहानी संग्रह में 35 कहानियां संकलित की गई हैं ।
- ये कहानियां जहां आज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का आईना प्रस्तुत करती हैं, वहीं जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने अंक में समेटते हुए मानवीय रिश्तों, संवेदनाओं और परिवेश से भी जुड़ी हुई हैं ।
- कृपया अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए ।
- रॉयल डिमाइ आकार में पक्की जिल्द सहित संग्रह का मूल्य केवल 100/- रु, जिसे सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा नीचे दिये गये पते पर भेजा जा सकता है ।
- अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

—डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव,
हिन्दी अकादमी,
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरैंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110 002.

स्वतंत्र स्वरूप प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य किया उनमें रामकृष्ण शिलीमुख भी एक थे. 'आर्यभाषा और संस्कृति', 'आलोचना समुच्चय', 'कला और सौंदर्य', 'काव्य जिज्ञासा', 'निबंध प्रबंध', 'प्रसाद की नाट्यकला', 'सुकवि समीक्षा', आदि शिलीमुखजी की प्रतिष्ठ कृतियां हैं. बाद में उनके प्रतिनिधि समीक्षात्मक निबंधों का संग्रह 'शिलीमखी' नाम से डा. विजयेंद्र स्नातक ने संपादित किया. शिलीमुखजी की लिखी समीक्षाओं की महत्ता आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी स्वीकार की थी. उनकी विख्यात कृति 'सुकवि समीक्षा' के विषय में शुक्लजी ने लिखा है, "पं. रामकृष्ण शुक्ल ने अपनी सुकवि समीक्षा में कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, बिहारी, भूषण, भारतेंदु, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद कर अच्छे समीक्षात्मक निबंध लिखे हैं." (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 624, संवत 1997 का संस्करण). शिलमुखजी साहित्य और उसकी समालोचना को सहजात मानते हैं तथा मानसिक और साहित्यिक विकास के साथ-साथ समालोचना और समालोचक का विकास भी आवश्यक मानते हैं. वे समालोचना के लिए शास्त्र के ज्ञान को अपर्याप्त मानते हैं तो साहित्य की पाश्चात्य कसौटियों को भी वे अपूर्ण मानते हैं. वे समालोचना की अपनी राह बनाते हैं. शिलीमुखी के लिए साहित्य में व्यक्त मानव हृदय के साथ पाठक का संवाद स्थापित करने का प्रयास समालोचना करती है. उस क्षेत्र में शिलीमुखीजी ने हिंदी आलोचना को शास्त्र मुक्त विचार और अभिव्यंजना पद्धति का नया वैभव प्रदान किया जबकि स्वयं शुक्लजी शास्त्रीय अध्ययन और पांडित्य आदि पर बल दे रहे थे. शिलीमुखजी की समीक्षा दृष्टि की संपन्नता का पता तो इसी बात से लग जाता है कि जब शुक्लजी छायावाद को 'शैली की विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना' कह कर नकार-सा रहे थे उस समय शिलीमुखीजी छायावाद के बारे में ये विचार रख रहे थे, "जड़ अथवा अमूर्तों के वर्णन में कहीं-कहीं अधिक लाक्षणिकता आ जाने से बहुत से लोगों के लिए कथन में जो एक अस्पष्टता पैदा हो जाती है, उसी को ये छायावाद कहने लगते हैं. ऊपर के उदाहरण में (जलधि-लहरियों की अंगड़ाई बार-बार जाती सोने.) इस प्रकार की लाक्षणिकता खूब है परंतु उसमें अस्पष्टता नहीं है." (आलोचना-समुच्चय—रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख, पृ. 223)

पर मैं शायद मुख्य बिंदु से भटक गया हूं. मैं कहना यही चाहता हूं कि हिंदी समीक्षा के निर्माण में जिन लोगों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया, उनमें शिलीमुखजी भी एक हैं, पर अगर उन्हें भी उपेक्षा ही मिली तो किया क्या जाए? जिस संदर्भ में सुधीश पचौरी ने "किन्ही शिलीमुखजी' वाली बात कही है, अब उस पर आइए—शिलीमुखीजी ने 'आधुनिक हिंदी कहानियां' नाम से एक संग्रह संपादित किया था जिसका प्रकाशन काल 1928 के आसपास है. उस संग्रह में उन्होंने प्रसाद, विनोद शंकर व्यास, प्रेमचंद, सुदर्शन, हृदयेश आदि की कहानियां को संकलित किया था. किंतु इस संग्रह का मूल महत्व शिलीमुखजी द्वारा लिखी गयी लंबी भूमिका में था क्योंकि यह भूमिका जैसे हिंदी कहानी की विकास यात्रा की छोटी-सी अवधि में ही इस विधा को स्वतंत्र सत्ता प्रदान कराने का हिंदी में प्रथम प्रयास था. इस भूमिका में उन्होंने समान आधार भूमि वाली विधाओ से कहानी की पृथकता प्रस्तुत करने का प्रयास किया जैसे उपन्यास और कहानी का अंतर स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा, "जन-साधारण का यह विचार कि उपन्यास और कहानी में एक मात्र आकार का ही भेद है, बड़ा भ्रामक है. यह सत्य है कि आकार की दृष्टि से कहानी को एक विशिष्ट परिधि के भीतर रहना पड़ता है परंतु केवल इतने से ही कहानी और उपन्यास का बेद निर्धारित नहीं होता. ऊंट और खरगोश के भेद को समझने के लिए केवल यह कहने से ही काम नहीं चल जाएगा कि एक बडा होता है और दूसरा छोटा." आधुनिक हिंदी कहानियां', भूमिका, पृ. 9-10) तो फिर अंतर कहां है? शिलीमुखजी ने कहानी का मूल रूप वृत्त वर्णन को माना है तथा उसकी प्रेरणा के रूप में हृदय की वृत्तियां के प्रकाशन एवं उसके प्रति उत्सुकता की सहज मानवीय प्रवृत्ति को स्वीकार किया है. (वही, पृ. 6) इस भूमिका में वे कहानी के स्वरूप, अवयव, रचना पद्धति तथा विषय आदि पर नये ढंग से विचार करते हैं और उनका यह कहानी के अंतरंग और बहिरं वस्तुपरक ढंग से समझने का आधार प्रदान करता है. कहानी विभिन्न तत्वों पर विचार करते कहानी का आधार तत्व 'संवेद स्वीकार करते हुए कहते हैं कि में एक संवेदना की प्रस्तुति कथाकार का मुख्य उद्देश्य हो

...हो सकता है कि राजेंद्र का कहना गलत हो कि कथा का आरंभ शिलीमुखजी से हो किंतु यह तय है कि कहानी पर सुचिंतित आलेख हिंदी में इस नहीं मिलता.

मेरे यह सब कहने से देवीशंकर अवस्थी की देन का कम नहीं हो जाता, पर मैं उ परंपरा की एक और स्मृति 'कि शिलीमुखजी' के महत्व की संकेत करना चाहता हूं. साथ ही भी निवेदन करना चाहता हूं कि अवस्थी द्वारा प्रतिपादित औजारों भी हमें वस्तुपरक दृष्टि से वि करना चाहिए क्योंकि 'सुपरलो का प्रयोग एक दूसरे अतिवाद जन्म देता है. माना डा. अवस् कथा समीक्षक के नये औजारों खोज की दिशा में एक नयी दृष्टि पर हमें यह भी नहीं भूलना चाहि उन्होंने 'एक पति के नोट्स' (भल्ला) जैसी कहानी में आधु दृष्टि का आरोपण करने का प्र किया था, पर यह कहानी हिं कभी भी एक नये दिशाबोधक कहानी प्रमाणित नहीं हो सकी काल की जिन कहानियों की चर्चा एक प्रकार से क्लासिक कहानियों रूप में करते हैं, उनमें इस कहानी नहीं उल्लेख नहीं होता. उनके औ भले गलत न रहे हों पर उन उनका गलत प्रयोग तो किया ही. पति के नोट्स' और 'यह मेरे नहीं' (धर्मवीर भारती) कहानियों तुलना ही गलत थी क्योंकि भारती कहानी का बोध यदि 1950 के पर है तो महेंद्र भल्ला की कहानी यथार्थ गढ़ा हुआ और कृत्रिम है. पंक्तियों के लेखक ने उन्हीं 'लहर' (अक्टूबर 65) में एक टि में यह बात कहीं थी. साथ ही मु स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं डा. अवस्थी हिंदी कहानी के ब को बड़ी पैनी दृष्टि से समझने-प का प्रयास कर रहे थे और कथा-समीक्षा के नये मानदंड को आकुल थे

☐ हेतु भारद्वाज, नीमकाथाना.

क्या आप

अपने घर को कम खर्च में सजाना चाहते हैं. कमरों में सही प्रकार की फर्नीचर सैटिंग चाहते हैं. परदों, दीवारों व फर्नीचर में सही तालमेल चाहते हैं. हर कमरे में बहुपयोगी अलमारियां चाहते हैं. सही प्रकार की योजनाओं की जानकारी चाहते हैं तो हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टीफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें.
सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें.
आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं.
कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान
कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं.
अपनी योग्यता बढ़ाएं तथा घर भी सजाएं
बेडरूम, ड्राइंग/डाइनिंग, रसोईघर, आंगन आदि की सजावट स्वयं कम खर्च में करें.
हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन का एकमात्र कोर्स
महिलाओं, गृहिणीयों, एवं छात्र-छात्राओं के लिए सर्वोत्तम.
रंगयोजनाओं, बहुपयोगी बिल्ट-इन फर्नीचर, परदे, प्रकाश व्यवस्था, नयी सजावट सामग्री, पौधों, फर्नीचर-अरेन्जमेन्ट, कपबोर्ड तथा अलमारियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :-

AID

एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007

R K SWAMY/PCRA/5789 HIN

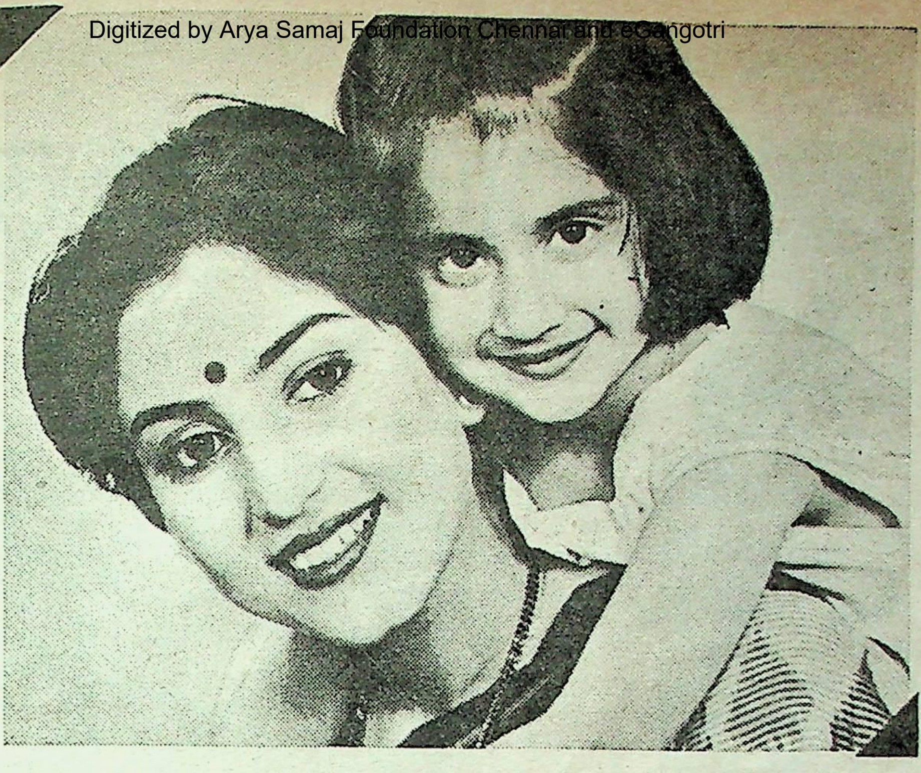

क्या आपकी बेटी बीस साल बाद भी आपको इतना ही चाहेगी?

क्यों नहीं?

उसके भविष्य के लिए आपने सब कुछ तो किया है. उसकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा प्रबंध किया है. उसके विवाह के लिए पैसे भी जमा करने शुरू कर दिए हैं.

पर कुकिंग गैस और मिट्टी के तेल के लिए क्या किया?

जब आपकी बेटी अपना घर बसायेगी तब तक उनके भंडार तो शायद ख़त्म हो जाएंगे!

हां, आप उन्हें बचा कर रख सकती हैं. हर रोज़ उनकी बचत करके—भविष्य के लिए, अपनी लाड़ली बेटी के लिए.

ईंधन बचाने के लिए नीचे दिए हुए सरल तरीके अपनाएंगी तो आपकी बेटी हमेशा आपके गुण गायेगी.

- **ईंधन बचाने वाले नूतन गैस/मिट्टी के तेल के स्टोवों का उपयोग करें.**
- **स्टोव जलाने से पहले पकाने की सब सामग्री तैयार करके पास रख लें.**
- **जहाँ हो सके वहाँ प्रेशर कुकर का इस्तेमाल करें.**
- **उबाल आते ही लौ कम कर दें.**
- **पकाने के लिए चौड़े, कम गहरे बर्तनों का इस्तेमाल करें.**
- **बर्तनों को ढक कर खाना पकाएं.**

अधिक जानकारी चाहिए तो हमारी पुस्तिकाएं मुफ़्त मंगाने के लिए आज ही हमें पत्र लिखें.

नाम ________________________

पता ________________________

____

शहर __________ ज़िला __________

PCRA

पेट्रोलियम कंज़रवेशन
रिसर्च एसोसिएशन
पोस्ट बॉक्स नं. 572
नई दिल्ली-110 001 फ़ोन : 3315868

अपनी बेटी के लिए गैस/मिट्टी का तेल बचाइए

R K SWAMY/PCRA/5789 HIN

आकाश के उस पार

□ आबिद सुरती

जन्म: 5 मई, 1935 राजुआ (सौराष्ट्र) लेखक, चित्रकार और कार्टूनिस्ट के रूप में प्रख्यात. पिछले तीन दशकों से हिंदी व गुजराती की विविध पत्र-पत्रिकाओं में लेखन. रेडियो व बंबई दूरदर्शन के लिए नाट्य लेखन. बंबई दूरदर्शन द्वारा तीन उपन्यासों पर टेली फिल्में. प्रमुख कृतियां: 'राधे-राधे हम सब आधे' (नाट्य लेखन व निर्देशन) 'तीसरी आंख' (कहानी) विविध: फिल्म सर्टीफिकेशन बोर्ड, फिल्म राइटर्स ऐसोसिएशन, और ऐसोसिएशन ऑफ राइटर्स एंड इलस्ट्रेटर्स फॉर चिल्ड्रेन दिल्ली के सदस्य. अब तक पच्चीस उपन्यास, दो कहानी संग्रह, तीन नाटक, एक यात्रा वृत्त, बारह कार्टून और कुछ संग्रह बाल-पुस्तकें प्रकाशित. 'रावण रेखा' और 'दलदल' उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य.

संपर्क: 60/1,
हिल रोड, बांद्रा,
बंबई-400 050

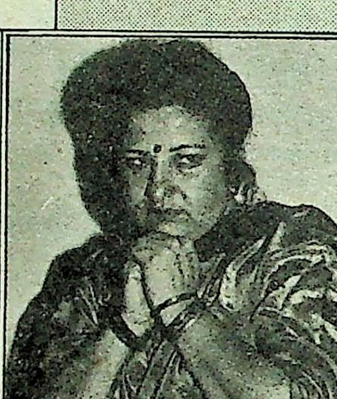

मेरे श
शरीर
आइए
ज्यादा वक्त
उबड़-खाब
मेरे पेट
मैं बिस्तर
लोग उसे
कभी मौ
हो जाता है
उसने मेरे
नहीं कर प
भगवान
नहीं. दोस्त
नहीं बिगा
वॉटर-स्की
आज मैं
है. मेरी बी
रास्तों पर
मेरे बच
समंदर से
बच्चे थे.
मेरे मह
बंगला, घू
और सोने
पैर पसार
पैंसठ स
जिस्म पहा
करते तो
हैं, यह वे
के अलावा
मैं न अ
अनजान न
रखने के
फेरकर स
उस वक
और कमर
खतरनाक
मछलियों
शो-विं
जुलूस पर
जाता है.
चौड़ी स
बंद हो ग
किनारे ख
मेरी न
के फुटपा
दिखता है
छिपता-छि
कभी मे
बाल. कभ
फुटपाथ

मेरे शरीर पर कई घाव हैं. मैं सैनिक नहीं हूं. शायद आपको हैरत होती होगी? मेरे शरीर पर कैसे घाव हैं? सवाल भी उठते होंगे. संदेह भी होता होगा.

आइए! आपको मैं अपना पहला घाव दिखाता हूं. इधर, मेरे सामने बैठिए. मैं आपका ज्यादा वक्त नहीं लूंगा. जरा अपनी उंगली दीजिए. इधर टांकों पर हल्के से रखिए. चमड़ी उबड़-खाबड़ लगती है न? इस घाव की भेंट मुझे डॉक्टर ने दी है.

मेरे पेट में एक गांठ है. भयानक गांव. उस गांठ का दर्द भी भयानक है. दर्द शुरू होते ही मैं बिस्तर पर मछली की तरह तड़पने लगता हूं. मेरी अंतिम घड़ी मेरे पास दौड़ी आती है. लोग उसे मौत कहते हैं.

कभी मौत सर्जन का चाकू लेकर आती है. और सर्जन मौत का नकाब पहने सिर पर खड़ा हो जाता है. मेरे डॉक्टर के चेहरे पर कभी मैं ऐसा ही मौत का काला नकाब देख लेता हूं. उसने मेरे जिस्म में चाकू घुमाकर मेरे अंदर की गांठ निकाली है. लेकिन अभी तक वह तय नहीं कर पाया कि मैं ठीक हुआ हूं या नहीं! मुझे इसकी परवाह नहीं.

भगवान में मुझे अचल श्रद्धा है. मेरी मौत निश्चित समय पर आयेगी. समय से पहले नहीं. दोस्तो, मैं जवान हूं. मेरे अंग-अंग में बिजली भरी है. डॉक्टर का चाकू मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता. कुछ बिगाड़ा भी है तो सिर्फ इतना कि मैं पहले की तरह शाम के वक्त वॉटर-स्की नहीं कर सकता. बहुत जल्दी थक जाता हूं.

आज मैं बहुत थका हुआ हूं. कल ही मद्रास लौटा हूं. मैं मद्रास में रहता हूं. यही मेरा घर है. मेरी बीवी है. मेरा बच्चा है. जिसे मैं अपना कह सकूं वह सब कुछ यहीं है. यहां के रास्तों पर से गुजरते हुए कभी बचपन की यादें मुझे घेर लेती हैं.

मेरे बचपन के दिनों से हांगकांग जुड़ा है. उसे घेरता समंदर जुड़ा है. बचपन से ही मुझे समंदर से लगाव रहा है. बचपन से क्यों? यह मैं नहीं जानता. मेरे साथ मुझ जैसे कई और बच्चे थे. मगर शायद ही उन्होंने समंदर की ओर प्यार से देखा हो ऐसा मुझे याद है.

मेरे महान पिता हांगकांग में कई करोड़पति में से एक थे. रहने के लिए आलीशान बंगला, घूमने-फिरने के लिए आलीशान वातानुकूलित कारें, भूख लगने पर आलीशान खाना और सोने के लिए झीने, रेशमी पर्दों के बीच सजाया हुआ आलीशान गोलाकार पलंग. दोनों पैर पसारकर वे सपाट सोते और उन नथूने गुस्सैल बुलडॉग की तरह गुर्राने लगते.

पैंसठ साल की उम्र में पैंतालिस साल के जवान लगते थे. यह उनकी खूबी थी. उनका जिस्म पहाड़ी था. आजाद था. उस उम्र में भी अगर किसी सोलह साल की लड़की से ब्याह करते तो कम-से-कम एक दर्जन बच्चों के बाप बनने की कुव्वत रखते थे. डर किसे कहते हैं, यह वे कभी भी जान न सके. सच कहूं तो मेरे पहलवान पिता, भगवान और मेरी मम्मी के अलावा किसी से नहीं डरते थे.

मैं न अपनी मम्मी से डरता था न अपने पिता से. पिता यह बात जानते थे. मम्मी भी अनजान नहीं थीं. शायद इसीलिए उन दोनों को मेरी फिक्र लगी रहती थी. समंदर से दूर रखने के लिए वे अपनी ओर से पूरी कोशिशें करते और मैं उन सब कोशिशों पर पानी फेरकर समंदर में उतर जाता. पेट में घुसते चाकू की तरह.

उस वक्त मेरी उम्र बारह साल से ज्यादा नहीं थी. मैं नायलोन की एक चड्डी पहनता और कमर में टारजन की तरह एक छूरा बांधता. टारजन की फिल्मों में कई बार मैंने खतरनाक मछलियों के साथ की लड़ाई देखी थी. टारजन को अपने छूरे से शार्क जैसी खूनी मछलियों को चीरते देखा था. उन दिनों वह बहुत स्वाभाविक लगता था.

शो-विंडो में झांकता हुआ मैं ट्रैफिक सिग्नल पार कर लेता हूं. मेरी नजर तमिल सेना के जुलूस पर पड़ती है. दूर से चीखता हुआ वह मेरी ओर आ रहा है. ट्रैफिक का रूट बदलता जाता है.

चौड़ी सड़क पर मैं एक भी गाड़ी नहीं देखता. दूकानों के शटर नीचे गिर चुके हैं. दरवाजे बंद हो गये हैं. खिड़कियां बंद हो गयी हैं. जुलूस मेरे सामने से गुजरने पर मैं फुटपाथ के किनारे खड़ा हो जाता हूं.

मेरी नजरों में फुटपाथ पर चलता एक चेहरा आ जाता है. मैं साफ नहीं देख पाता. सामने के फुटपाथ पर ऑफिस से निकले स्त्री-पुरुषों की भी भीड़ है. चेहरा पल-भर के लिए दिखता है तो दूसरे पल और चेहरे उसे ढक देते हैं. वह चेहरा चंद्रमा जैसा है और बादलों से छिपता-छिपाता आगे बढ़ रहा है. मैं अपनी आंखें टिकाता हूं.

कभी मेरी नजर में सिर्फ जामुनी साड़ी का टुकड़ा पड़ता है तो कभी कंधे पर खेलते कटे बाल. कभी मैं चेहरे का सिर्फ एक हिस्सा ही देख लेता हूं.

फुटपाथ पर के लोगों के बीच से रास्ता बनाती लड़की अन्नादुराई के बुत की ओर कदम

> कभी मौत सर्जन का चाकू लेकर आती है. और सर्जन मौत का नकाब पहने सिर पर खड़ा हो जाता है. अपने डॉक्टर के चेहरे पर कभी मैं ऐसा ही मौत का काला नकाब देख लेता हूं.

अपने आपको संभालते ही उसने मेरी ओर देखा और थोड़ी सिकुड़ गयी. सफेद साड़ी के पल्लू से झटपट आंसू पोंछ उसने मुस्कराने की कोशिश की. उसमें भी वह नाकाम रही. तब पीठ फेरकर बाहर निकल गयी.

बढ़ा रही है. मैं उसके समानांतर चलता हूं. हम दोनों के बीच चौड़ी सड़क है. नारे लगाता जुलूस है. पुलिसों की कॉर्डन है.

जुलूस के स्टेशन की ओर चले जाने पर सड़क सूनी पड़ जाती है. रास्ते के बीच में पड़े कागजों के टुकड़े सांय-सांय करती हवा में करवटें ले रहे हैं. एक कुत्ते को सुनसान सड़क के बीच के दौड़ते हुए मैं देखता हूं.

मद्रास की यह सड़क, सड़क है या मेरा धड़कता दिल? मेरे दिल में भी खामोशी है. सन्नाटा है. वीरानी है. किसलिए? मैं नहीं जानता. किसलिए?

मैं शादीशुदा हूं. मेरी एक बीवी है. मेरा एक बच्चा है. दोनों को मैं चाहता हूं. नील कौन है? मुझे भी यही जानना है: नील कौन है?

'हंप्टी-डंप्टी नर्सरी' आते ही मेरे पैर कुछ पल के लिए रुक जात है. 'ट्रिप्लिकन हाई रोड' के विस्तार में यह एक ऐसी नर्सरी है जिसके बच्चों को कोरोनेशन कॉन्वेंट स्कूल में ज्यादा तकलीफ के बिना एडमिशन मिल सकता है, यहां पढ़ाने का तरीका आधुनिक है. दूसरे, एक दो अध्यापिकाएं मेरी पहचान की हैं. मैंने अपने राजू का दाखिला यहीं करवाया है.

पहले दिन राजू के गले में उसके नाम का कार्ड बांधकर मैं ही उसे यहां ले आया था. मेरी तरह दूसरे कई मां-बाप अपने-अपने बच्चों को लाये थे.

नील के साथ मेरी पहली मुलाकात यहीं हुई थी. मैं उससे परिचित न था. वह भी मुझे जानती न थी. और हम दोनों एक ही नर्सरी में दाखिल हुए बच्चों के माता-पिता थे.

नील की आंखें गीली थीं. मैं उसका चेहरा देख रहा था. क्यों? शायद, वह भीगा हुआ था इसलिए. शायद यहां दूसरा कोई न था इसलिए.

अपने आपको संभालते ही उसने मेरी ओर देखा और थोड़ी सिकुड़ गयी. सफेद साड़ी के पल्लू से झटपट आंसू पोंछ उसने मुस्कराने की कोशिश की. उसमें भी वह नाकाम रही. तब पीठ फेरकर बाहर निकल गयी.

उन काली कजरारी आंखों में न जाने ऐसा क्या था कि उसका असर मेरे दिलो-दिमाग पर काफी समय तक छाया रहा. कई बार उन आंखों को अपनी आंखों के सामने रख उन्हें मैंने ग़ौर से देखा. मुझे लगा वे आंखें साधारण न थीं.

अंजु कहती थी, मम्मी होने के नाते राजू को नर्सरी में ले जाने का फर्ज उसका है. और पहले दिन ही मैंने उसे प्यार से ना कह दिया. "रोज सुबह मैं ही उसे ले जाऊंगा." मैंने कहा था, "इसलिए कि यही वक्त मेरा समंदर जाने का है." अंजु को थोड़ा-सा बुरा लगा था. हम दोनों में थोड़ी तकरार भी हुई थी. इस तरह की किटकिट-पिटपिट का मैं आदी हो गया हूं.

दूसरे दिन भी राजू को लेकर मैं आया और राजू भरपूर आवाज में रो रहा था. ओह गॉड! यह रोना, ये आंसू, ये चीखें... मुझसे बर्दाश्त नहीं होते. "राजू! प्लीज... तू रोना बंद करेगा या फिर कल से तेरी मम्मी को तेरे साथ भेजूं?"

मैं दरवाजे तक पहुंचूं, उससे पहले मेरी नजर पर पड़ी.

उसके साथ छोटी बच्ची को देख मुझे हैरत हुई. वह रो नहीं रही थी. एक दिन में कोई बच्चा स्कू का आदी हो जाये, यह मेरे लिए वास्तव में हैरत बात थी. राजू को शांत करने के लिए मैंने उस की ओर इशारा करके कहा, "देख राजू, यह ब कितनी सयानी है. तेरी तरह ऊधम नहीं मचाती. अब चुप भी हो जा."

उसने कुछ पल के लिए उस बच्ची की ओर दे मैंने नील की आंखों में देखा और राजू का रोना फि शुरू हो गया. अध्यापिका ने हाथ बढ़ाकर राजू अंदर खींच लिया. नील की बच्ची भी अंदर चली गयी, फिर एक बार हम दोनों एक दूसरे के सामने आ गये.

"आपकी बेटी काफी समझदार है." मैंने शुरु की.

वह सिर्फ मुस्करा भर दी. उस मुस्कान के कई मतलब निकलते थे. उनमें से एक: मिस्टर! मुझे आपकी बातों में दिलचस्पी नहीं.

शायद यह सच भी हो.

वह सीढ़ियों उतर गयी. कार में उसे लिफ्ट ऑ करने की मेरी हिम्मत न हुई.

मैं कार में बैठा. स्टार्ट की. नहीं हुई. फिर की. फि भी नहीं हुई. मेरी फोर्ड कार का यह ऐतिहासिक मॉडल है.

थोड़ी कोशिशों के बाद कार आगे बढ़ने लगी. कुछ दूर जाने पर मेरी नजर नील पर पड़ी. फुटपा पर चलने की बजाय वह सड़क पर चल रही थी. अपनी अफलातून कार उसके करीब लेकर मैंने हिम्मत से रोकी. पहले तो वह चौंक गयी. लेकिन चेहरे पर नजर पड़ते ही उस पर आदतन फीकी मुस्कान दौड़ गयी.

"स्टॉप पर लंबी क्यू है?" मैंने बेवकूफ की तर उससे पूछा और मुझे थोड़ा-सा पछतावा भी हुआ. बस के लिए लंबी क्यू थी. और वह साफ दिखायी रही थी.

उसने मेरा अपमान न करते हुए 'हां' कहा. लेकि कार में बैठने की इच्छा नहीं दिखायी. मैं उलझन पड़ गया. उसकी समझ में भी यह न आया कि उ क्या कहना चाहिए?

"कहां रहती हो?" अंत में मैंने ही पूछा.

"यहीं, पास में."

"आई सी!" कार स्टार्ट कर मैंने दौड़ा दी.

मरीना बीच, समंदर का किनारा आया. मेरा 'शेड' आया. कार मैंने रेत के पास पार्क की और कानों से नारे टकराये

"हांगकांग वाला सेठ! मुर्दाबाद...!

"गरीबों का दुश्मन! मुर्दाबाद....!"

"देश का दुश्मन! मुर्दाबाद...!"

मछेरे हाथ में काले झंडे लिये शेड के दरवाजे

खड़े थे. मेरे लिए यह नया अनुभव न था. ये मछेरे रोज सवेरे मेरे वर्कर्स के आने के वक्त शेड के दरवाजे पर आकर खड़े हो जाते थे. नारे लगाते थे. गालियां बकते थे. और घंटे भर बाद बिखर जाते थे.

मैं बेफिक्र था. कानून मेरे साथ था. कानूनन मैंने रेत में टेंपरेरी शेड खड़ा किया था. शेड में तेइस वर्कर्स काम करते थे. तैरता रेस्तरां बनाने की मेरी योजना आकर ले रही थी. तैरता रेस्तरां तैयार होने पर मैं उसे जहाज की तरह किनारे से एक फलांग दूर ले जाने वाला था.

नारे लगाते मछेरों के बीच से रास्ता बनाकर मैं बेहिचक शेड में दाखिल हो गया. दरवाजे पर खड़े गुरखे ने जोरदार सलाम मारा. कांट्रेक्टर के आदमी अपने काम में मशगूल थे. कोई रंदा मार रहा था तो कोई मेजरिंग टेप से नाप ले रहा था.

आज चीफ आर्किटेक्ट भी आया था और तैरते रेस्तरां के तैयार हिस्सों के बारे में कांट्रेक्टर से चर्चा कर रहा था. उसके हाथ में प्लान था और होंठों के बीच सिगरेट.

"हैलो?"

दोनों ने मेरी ओर वेजिटेबल मुस्कान फेंकी. कांट्रेक्टर ने मेरे सामने प्रोग्रेस रिपोर्ट रखी.

"दुबे!" मैंने उससे कहा, "आज वर्कर्स कम क्यों लग रहे हैं?"

"हम भी यही चर्चा कर रहे थे." उसने आर्किटेक्ट की ओर इशारा करते हुए कहा, "मछेरों के दबाव और धमकियों की वजह से वर्कर्स घटते जा रहे हैं. अगर हालात ऐसे ही रहे तो मुझे शक है, हम वक्त पर काम पूरा नहीं कर सकेंगे."

मैं सोच में पड़ गया.

शेड के पिछले दरवाजे से बाहर आकर मैं समंदर में कूदा. रोज की तरह आज भी दो-चार गोते मारे और रेत में पैर फैलाकर लेट गया.

पानी का जीव पानी के बिना जी नहीं सकता. मैं भी पानी के जीवों में से एक हूं. जन्म माटी पर हुआ यह अलग बात है. स्वभाव से जलचर हूं और कोई मुझे मछली की औलाद कहेगा तो मैं बुरा नहीं मानूंगा.

ज्यादा वक्त सनबाथ न लेकर मैं सीधा 'शयद्रापेट' पहुंच गया. यहां मेरा दफ्तर है.

"गुड मॉर्निंग, सर!" मेरी टेबुल पर आज की पोस्ट रखते हुए मेरी स्टैनो ने कहा. "आपके लिए ट्रंक कॉल थी."

"कहां से?"

"उदयपुर."

"कोई मैसेज?"

"आपकी कल की मीटिंग कैंसल कर दी गयी है."

"नयी तारीख दी?"

"नहीं. कल या परसों फिर संपर्क करेंगे."

मीटिंग कैंसल होने का मुझे गम न हुआ. सच कहूं तो खुशी ही हुई. भीतरी खुशी वजह? राजू. नर्सरी जाते वक्त तो वह खूब ऊधम मचाता था. लेकिन नर्सरी से छूटते ही उसका चेहरा उम्र-कैद से लौटे क़ैदी-सा खिल उठता. उछलता, कूदता आकर वह मुझसे लिपट जाता. अंजु उसके जूते-जुराब उतार उसके सामने चप्पल रखती. उसकी युनिफॉर्म बदल उसे घर के कपड़े पहनाती. फिर सूरज डूब जाता. फिर एक नया सूरज निकलता.

जल्दी से नाश्ता निपटाकर मैं फटाफट तैयार भी हो गया.

"अंजु! ओ अंजु!"

"जी?" किचन से आकर अंजु मेरे सामने खड़ी हो गयी.

"अभी तक राजू को तैयार नहीं किया? कब मैं उसे नर्सरी छोड़ूंगा और कब ऑफिस पहुंचूंगा?"

अंजु चुपचाप पासवाले कमरे में गयी. फौरन वापस भी आयी. उसके हाथ में कैलेंडर था. मेरे सामने रखते हुए उसने सवाल किया. "इसे क्या कहते हैं?"

आज इतवार था. बेवकूफ की तरह मैं राजू को नर्सरी ले जाने के लिए तैयार खड़ा था. उल्लू की तरह कभी अंजु के चेहरे को तो कभी कैलेंडर के लाल आंकड़ों को देख रहा था.

"पापा!" राजू ने दौड़ते हुए आकर मुझसे पूछा, 'आज मुझे कहां ले जायेंगे?"

उसका मन सुबह से ही बैंड-स्टैंड जाने को था. मेरा मन दोपहर के खाने के बाद थोड़ा आराम कर शाम को जाने का था. अंजु ने कहा—उसकी इच्छा ही नहीं. मैंने वजह पूछी. उसके पास कोई वजह न थी. "बेचैनी हो रही थी." यह कोई वजह नहीं हुई.

"एक गोली खा लो न!" मैंने उसे सलाह दी. लेकिन अंजु जानती थी. एक दो गोलियों से फर्क नहीं पड़ेगा. बोतल सहित सारी गोलियां गले से नीचे उतारने पर भी फायदा नहीं होगा. दिन पर दिन उसका शरीर फूलता जा रहा था. किस डॉक्टर में ताकत थी, उसे फूलने से रोके?

"एक दिन मैं गुब्बारे की तरह फूट जाऊंगी."

अपने तनहा पलों में अंजु कभी यह जुमला कह डालती है. मैं मजाक समझता हूं. गुब्बारे की तरह गुब्बारा फूटता है. पानी का बबूला फूटता है. किसी ने जीते-जागते इंसान को गुब्बारे की तरह धड़ाम से फूटते हुए कभी देखा या सुना है?

राजू को मैं अपनी बगल की सीट पर बैठाकर बैंड-स्टैंड की ओर कार दौड़ा गया. आज छुट्टी का दिन होने की वजह से सड़कें सूनी थीं. हम बहुत जल्द बैंड-स्टैंड पहुंच गये. साईसों की कतार के पास मैंने कार पार्क की. राजू अपने फेवरेट पोनी को ढूंढ़ने लगा. सफेद, उजले पोनो के सिवा वह दूसरे किसी भी पोनी पर बैठना पसंद नहीं करता था.

साइस ने उसे पोनी पर बैठाया. उसके हाथ में लगाम के साथ एक छोटी छड़ी भी दी. पोनी ने राउंड शुरू किया.

राजू खुश था. छुट्टी के दिन कौन-सा बच्चा खुश नहीं होगा? चार राउंड पूरे होने पर मैं राजू के साथ

नील ने धारे से एक गुब्बारे की डोर अलग कर छोड़ दी. गुब्बारा हवा में उलट-पलट होता ऊपर गया. हम दोनों ऊंचे आकाश में तैरते जाते गैस के गुब्बारे को देखते रहे.

बगीचे में दाखिल हुआ. मैंने बैठने के लिए एक बैंच ढूंढ़ी. राजू झूले की ओर दौड़ गया.

सिगरेट का गुबार छोड़ते हुए मेरी आंखों में नील का चेहरा उभर आया. आंखें भर आयीं. न जाने क्यों अचानक उसकी याद आ गयी? नील से मेरी सिर्फ दो मुलाकाते हुई थीं. वे भी नर्सरी में. न वह मुझसे परिचित थी. न मैं उससे. फिर भी मैं उसे क्यों याद करता था? शायद उसकी आंखें...

राजू की मीठी आवाज मेरे कानों से टकराते ही मैंने उसकी ओर देखा. दौड़ते-दौड़ते वह मेरी तरफ आ रहा था. उसके हाथ में एक बच्ची का हाथ भी था. मैंने ध्यान से उस बच्ची को देखा. मेरी हैरत का पार न रहा. वह बच्ची नील की बेटी थी. नील कहां थी?

बच्ची के साथ राजू मेरे सामने आकर खड़ा हो गया. "पापा!" उसने गहरी सांसें लेते हुए कहा, "यह मेरी दोस्त है. क्लास में मेरे पास ही बैठती है."

बुझी हुई सिगारेट को जूते तले दबाते हुए मैंने दोनों के सिर पर प्यार से हाथ फेरा. मेरी आंखें नील को तलाशती दूर तक फैल गयीं. कहीं भी नजर न आयी तो मैंने बच्ची से पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"पिंकी."

"वाह! कितना बढ़िया नाम है." फिर, मैंने धीरे से जोड़ा, "पिंकी! तुम्हारी मम्मी तुम्हारे साथ नहीं आयी?"

जवाब में उसने सिर्फ उंगली उठा दी. मैंने उस दिशा में देखा. नील थोड़े फासले पर एक बैंच पर बैठी थी. उसका सिर एक ओर झुक गया था.

उसे जगाने की इच्छा न हुई. उसे डिस्टर्ब करने की हिम्मत भी नहीं हुई.

पिंकी ने कहा—उसे गैस के गुब्बारे बहुत पसंद हैं. राजू ने कहा—उसे बाजा खरीदना है. राजू को मैंने बाजा दिलाया. पिंकी के लिए आधा दर्जन गैस के गुब्बारे खरीदकर मैंने डोर उसके हाथ में थमा दी. पिंकी खुश होकर उछलती-कूदती दौड़ी. मैं उसे रोकूं इससे पहले वह नील तक पहुंच भी गयी.

"मम्मी! मम्मी! मम्मी!"

बस, वह ज्यादा कुछ न बोली, बोलने की जरूरत भी नहीं थी. नील चौंककर गैस के गुब्बारे देखती रही. नील परेशान चेहरे से पिंकी की आंखों में झांकती रही. पिंकी की उंगली फिर उठी. नील की नजरें मेरी ओर, मेरे चेहरे पर, मेरी आंखों में दौड़ आयी, इस बार मुस्कराने की मेरी बारी थी. मैं मुस्कराया. उसने आंखें मिचमिचायीं.

मैं राजू के साथ उसके सामने आकर खड़ा हो गया. पिंकी गुब्बारों की डोर नील के हाथ में सौंपकर झूले की ओर दौड़ गयी. राजू उसके पीछे दौड़ा. पलक झपकते ही दोनों गायब भी हो गये.

"मैं बैठ सकता हूं?"

उसने सिर्फ इशारे से 'हां' कहा. मैं थोड़ा-सा फासला रखकर उसके पास बैठ गया. गुब्बारों की डोर पकड़े हुए वह खामोश बैठी थी. वह कुछ बोलती क्यों नहीं? शायद उलझन में होगी. मेरी चुप्पी भी मुझे खटकने लगी. धड़कनें पल पल तेज होती जाती थी.

नील ने धीरे से एक गुब्बारे की डोर अलग कर छोड़ दी. गुब्बारा हवा में उलट-पलट होता ऊपर चला गया. हम दोनों ऊंचे आकश में तैरते जाते गैस के गुब्बारे को देखते रहे. देखते ही देखते कलाबाजियां खाता गुब्बारा आंखों से ओझल हो गया.

नील ने दूसरे गुब्बारे की डोर अलग की. फिर तीसरे की. फिर चौथे की. एक के बाद एक सभी गुब्बारे आकाश में तैरने लगे. तैरते-तैरते ओझल होने लगे. हो गये. हमने आंखें झुकायीं एक दूसरे की आंखों में देखा. नील ने अपना चेहरा घुमा लिया. बाल चेहरे पर फैल गये. गर्दन मेरे सामने उभर आयी.

मैंने एक तिल देखा. दोनों कंधों के बीच गर्दन पर वह चिपका था. उस तिल को छूने की अपनी इच्छा को मैं रोक न सका. मैंने सिर्फ उंगलियों के पोर ही रखे और उसकी पूरी पीठ कांप उठी. धीरे-धीरे फिर उसका चेहरा मेरे सामने आया.

पिंकी कहीं से अचानक दौड़ती हुई आकर मेरी गोद में बैठ गयी. उसके पीछे आते हुए राजू से यह बर्दाश्त न हुआ. उसने जिद की. 'पिंकी को नीचे उतारो. मुझे अपनी गोद में बैठाओ.' मैंने उसे भी उठाकर अपनी गोद में लिया. दोनों मेरे एक-एक हाथ में समा गये.

शाम ढल गयी. नील बालों को ठीक करती खड़ी हुई. दोनों बच्चों के साथ मैं भी खड़ा हो गया. धीरे-धीरे चलते हम बगीचे से बाहर आये.

नील एक भी शब्द कहे बगैर मेरी कार की अगली सीट पर बैठ गयी. पिंकी पिछली सीट पर थी. राजू को भी मैंने उसके पास बैठाया. दोनों बच्चे खिड़की के एक-एक शीशे के पास खड़े हो गये. कार स्टार्ट कर मैं 'बीच रोड' की ओर दौड़ा गया.

नील अभी भी खामोश थी.

"तुम्हें कहा जाना है?" आखिर मुझे ही पूछना पड़ा. नील ने ग्लोब सिनेमा का पता दिया. 'पाईक्राफ्ट रोड' के कॉर्नर से कार दौड़ाते हुए मैं 'नोबल चेंबर्स' के पास आ पहुंचा. नील चुपचाप बाहर निकली. पिंकी को साथ लिया और सामने के मकान की सीढ़ियां चढ़ गयी.

अपनी कार स्टार्ट करने में मैंने थोड़ा वक्त लिया. इस दौरान मेरी आंखें 'नोबल चेंबर्स' पर टिकी रहीं. मैंने देखा, एक बंद फ्लैट में रोशनी होते ही खिड़की के शीशे रोशन हो गये. धीमे से खिड़की खुली. नील पल भर के लिए दिखायी दी और खिड़की वापस बंद हो गयी.

बैंड-स्टैंड पर जो मजा राजू को आज आया, वैसा पहले कभी नहीं आया. ऐसा उसकी चाल, उसका दमकता हुआ चेहरा कह रहा था.

घर से कब्र तक

मेरी उम्र

□ आबिद सुरती

मेरी उम्र आ
जितनी सोच
होंगे उस
थोड़ी ज्यादा ही
मेरे बाल अब का
नहीं रहे. सच कहूं
बाल ही नहीं र
चमड़ी जले हु
कागज-सी हो ग
है. चेहरे पर कई टे
मेढ़ी झुर्रियां पड़ ग
हैं. आंखें अंदर औ
अंदर धंसती जाती है
डॉक्टर कह
है—मोतिया है. च
बेकार हो गया
आंखें भी कहां क
की रही
वॉकिंग-स्टिक
लाल रंग लगवाने
दिन अब ज्यादा
नहीं.

"मम्मी! मम्मी!" घर आकर उसने अंजु से कहा, "आज है न, मेरी एक दोस्त है न, पिंकी उसका नाम है न, वह बैंड स्टैंड आयी थी. पापा ने उसे इतने सारे गुब्बारे दिला दिये. फिर है न, हम खूब खेले, खूब दौड़े."

अंजु ने सवालिया नजरों से मेरी ओर देखा. मैंने उसके फूले हुए जिस्म को देखा. पिछले एक हफ्ते से अंजु नेचर क्योर ट्रीटमेंट ले रही थी. उसकी खुराक भी बदल गयी थी. दूध और मौसंबी के रस के अलावा वह दूसरा कुछ भी नहीं खा सकती थी. खाने की उसे जर्बदस्त इच्छा होती और यह मुझसे अनजान न रहता. वजह कि अंजु स्वभाव से पेटू थी.

पिछले कुछ दिनों से अंजु की एक शिकायत बढ़ती जा रही थी. वह कहती थी, अब मैं उससे पहले जैसा प्यार नहीं करता. डबल बैड पर सोये-सोये मैं सोच रहा था—अंजु की शिकायत गलत नहीं थी. मेरा उसके प्रति प्यार दिन-ब-दिन घटता जा रहा था. लेकिन उसकी वजह थी. दिन-ब-दिन उसका जिस्म फूलता जा रहा था उसका क्या?

अंजु में एक खूबी यह थी कि वह सोयी हो तब उसकी खुली आंखें देख कोई कह नहीं सकता था कि वह नींद में होगी! मैं सिर्फ तजुर्बे से कह सकता था.

तड़के मेरी आंखें खुलते ही मैंने फिर एक फ्रैश नजर उसके जिस्म पर डाली. अभी उसके खर्राटे जारी थे. उसका जिस्म बढ़ने के बाद उसकी नींद दुगनी हो गयी थी. थकान भी दुगनी लगती.

मैं नहाकर बाथरूम से बाहर निकला. शर्ट को पैंट में डालते हुए मेरी नजर ड्रेसिंग टेबल के आइने से सीधी अंजु पर दौड़ गयी. अभी भी वह सो रही थी. लेकिन जागते हुए. उसके हाथ में मेरा तकिया था. दोनों हाथों के बीच में भींचा हुआ.

आया ने राजू को तैयार किया. हम डायनिंग टेबल की कुर्सी पर बैठ गये. नाश्ते में राजू ने दूध और थोड़े बिस्किट और कॉर्न फ्लेक्स लिये. मैंने सिर्फ चाय पी.

अपने जूतों का फीता बांधकर मैंने ब्रश के दो हाथ मारे. राजू ने बस्ता उठाते अंजु को 'टाटा' किया. अंजु ने लेटे-लेटे ही मुस्कराने की कोशिश की और उसमें वह कामयाब भी हो गयी. हम नीचे आकर कार में जा बैठे.

दूर से नर्सरी का रंग नजर आते ही राजू के चेहरे का रंग बदलना शुरू हो गया. कैड्बरी का मीठा स्वाद करेला हो गया. चुस्त जिस्म कमजोर पड़ने लगा. नर्सरी आने तक तो वह कठपुतला बन गया.

मैंने कार रोकी और उसने पहली सिसकी ली. हम कार से बाहर निकले और वह जोर-जोर से रोने लगा. रोना बढ़ता गया. चीखें बढ़ती गयीं. मैंने लाचार होकर उसे अध्यापिका के हाथ में सौंप दिया. एक नजर मैंने भीतर भी डाली.

अभी पिंकी नहीं आयी थी. मैं दीवार के सहारे खड़ा हो गया. आज मैं वक्त से दस मिनट पहले आ पहुंचा था. मैंने एक सिगरेट होंठों के बीच दबाकर लाइटर क्लिक किया.

पहली सिगरेट खत्म होने पर उसे जूते के नीचे मसल मैंने दूसरी जलायी, कोई मेरे पैरों से लिपट गया था. मैंने नजरें नीची कीं. वह पिंकी थी. उसके हाथ में कैड्बरी रखते हुए मैंने नील के सामने नजर उठायी. नहीं, यह नील नहीं थी. पिंकी के साथ आया आयी थी. आया का बरसाती बादलों जैसा गहरा चेहरा देखकर मेरा चेहरा पीला पड़ गया.

नील आज क्यों नहीं आयी? एक के बाद एक सवाल उठते गये. गिरते गये. सिगरेट की राख झड़ती गयी. कार के पहिये गोल-गोल घूमते गये.

ऑफिस में पहुंचते ही स्टेनो ने डाक का पुलिंदा मेरे सामने रख दिया. मैंने कोट उतारकर हैंगर में लटकाया. कुर्सी पर बैठा और एक के बाद एक लिफाफा खोलने लगा. पुलिंदे में खत से ज्यादा मासिक पत्रिकाएं थीं. थोड़ी-सी विदेशी भी थीं.

दोपहर बाद ऑफिस में ज्यादा न रुक मैं कार में बैठा और सीधे घर की ओर दौड़ा गया.

राजू खिलौने की ट्रेन की पटरी जोड़ रहा था. कमरे के बीच में वह बैठा था. ट्रेन की पटरी उसके अतराफ गोलाकार में जुड़ गयी थी. इंजिन में चाबी भरकर उसने पटरी पर रख दिया. ट्रेन का सफर शुरू हो गया. ट्रेन पटरी पर गोल-गोल घूमने लगी. राजू ताली बजाने लगा.

मेरी जिंदगी भी इस ट्रेन की तरह गोल-गोल चक्कर काट रही थी. सुबह जहां से दिन शुरू करता था, रात को वहीं लौट आता था. दुनिया गोल है. मेरी जिंदगी गोल थी. अंजु का जिस्म भी गोल-मटोल था.

"उदयपुर से आपकी ट्रंक कॉल थी." अंजु ने आराम कुर्सी पर से कहा.

"कुछ खास?"

"आपकी मीटिंग उन्होंने शनिवार को रखी है."

शनिवार के बीच में अभी दो दिन बाकी थे. शुक्रवार को एक्सप्रेस से निकलने का मैंने तय कर डाला. कल गुरुवार था.

राजू सुबह उठकर मेरे साथ नर्सरी जाने के लिए चल पड़ा. कल की तरह आज भी वह खामोश था. नर्सरी का दरवाजा देख वह ऊधम मचायेगा इसका मुझे पूरा यकीन था.

दरवाजे में घुसते ही उसकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे. मुझे उसके चेहरे को नजरअंदाज करना पड़ा. मानो मैंने वे आंसू देखे ही नहीं थे. वह भी चुपचाप अंदर चला गया.

मेरी नजर आया के साथ आती पिंकी पर पड़ी. मेरे पैर उसकी ओर बढ़े. उसके हाथ में जल्दी से केड्बरी का स्लेब थमा मैंने आया से पूछ लिया, "तुम्हारी मालकिन साथ नहीं आयी?"

उसने सिर्फ 'ना' कहा.

"तबीयत तो ठीक है न?"

घर से कब तक

मुखराम

दौलत थी तब लोग मिस्टर मुखराम कहकर पुकारते थे. अच्छा लगता था. पर वे दिन ज्यादा न टिके. दौलत गयी और साथ में मेरे नाम को भी थोड़ी-सी 'ट्विस्ट' करती गयी. मुखराम, मूरखराम हो गया. अब तो मुझे न कोई कोई मुखराम कहता है न मूरखराम. माफ कीजिएगा, कोई कुछ कहता ही नहीं. मैं आऊं कि जाऊं. मैं खड़ा रहूं या बैठूं, मैं हंसूं कि रोऊं, किसी को जरा भी फर्क नहीं पड़ता. हां, कभी 'बूढ़ाऊ' जैसा शब्द कानों से टकराकर दिल के आरपार उतर जाता है. □

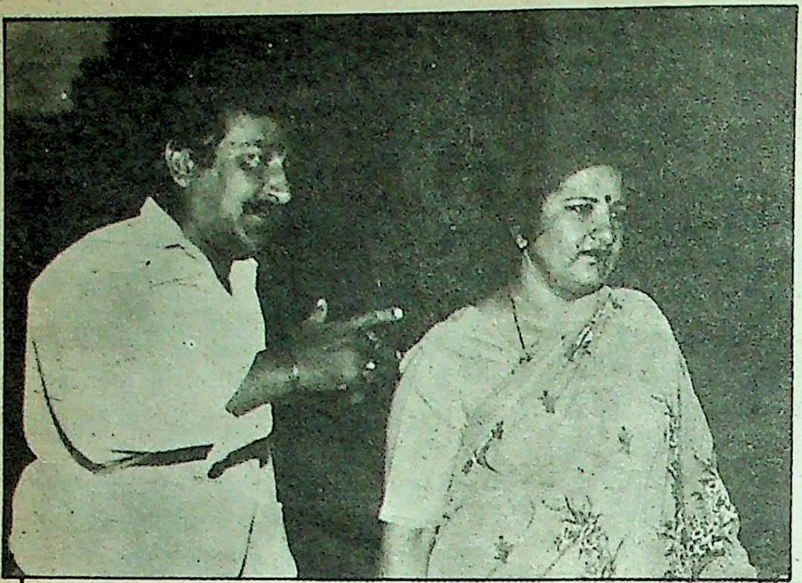

तड़के मेरी आंखें खुलते ही मैंने फिर एक फ्रैश नजर उसके जिस्म पर डाली. अभी उसके खर्राटें जारी थे. उसका जिस्म बढ़ने के बाद उसकी नींद दुगनी हो गयी थी. थकान भी दुगनी लगती.

"उसने कोई जवाब नहीं दिया. आखिर मैंने कह दिया, "शाम को मैं मिलने आऊंगा. संदेश दे देना."

एक भी शब्द कहे बिना आया वापस चली गयी.

सूरज ढलने से पहले ही मैंने अपनी अफलातूनी कार को गोलाबारी की आवाजों के साथ स्टार्ट कर नील के घर की ओर दौड़ा दिया.

'नोबल चेंबर्स' के सामने आते ही मेरी आंखें ऊपर उठ गयीं. नील के फ्लैट की खिड़कियां बंद थीं. अंदर की बत्तियां भी बंद होने की वजह से खिड़की के शीशे धुंधले लग रहे थे.

लिफ्ट में खड़े होकर मैं तीसरी मंजिल पहुंच गया. मेरे खयाल से यह सामनेवाला फ्लैट ही नील का था. पर... पर वहां ताला क्यों था? नील इस वक्त कहां गयी होगी?

मैंने पड़ोसी की डोरबैल के बटन पर उंगली रख दबायी दरवाजे खुलने पर एक प्रौढ़ आदमी हाथ में कोई पत्रिका लिये मेरे सामने खड़ा था. मोटे फ्रेम के चश्मे के पीछे से उसकी छोटी-छोटी आंखें मुझे गौर से निहार रही थीं. उसने सिर्फ बनियान और हाफ पैंट पहन रखा था.

"आपको किससे काम है?" मेरे कुछ पूछने से पहले उसने सवाल किया.

मैंने कहा, "नीलम से." और आगे जोड़ा, "आप बता सकते हैं, अभी वह कहां गयी होगी?"

"सॉरी जेंटलमैन!" उसने कहा, "वह तो फ्लैट खाली कर आज ही चली गयी."

उसके शब्द मेरी रीढ़ की हड्डी को कंपाते हुए लिफ्ट की रफ्तार से नीचे उतर गये. नील फ्लैट खाली कर चली गयी? इंपोसिबल! नामुमकिन! मुझे उसके शब्दों पर यकीन नहीं हो रहा था. मैंने उससे एक साथ कई और सवाल पूछ डाले. क्यों चली गयी? कहां चली गयी? उसका नया पता आप जानते हैं? वह मद्रास में ही है या शहर छोड़कर चली गयी?

उससे मुझे सिर्फ इतनी ही जानकारी मिली. नील के बारे में इस मकान में किसी के पास कोई जानकारी नहीं थी. वजह? सिर्फ चार महीने प वह यहां रहने आयी थी.

बीच-रोड की सुनसान सड़क पर मेरी कार बढ़ रही थी. कहां जाऊं? यह तय नहीं था. बस कार आगे और आगे बढ़ रही थी. यह तय था. मुझे जल्दी घर नहीं जाना था.

शहर की भयानकता में भी एक आकर्षण हो इसका मुझे आज पहली बार एहसास हुआ. रात अंधेरों में भी एक कशिश थी जो आज से पहले कभी नहीं जानी.

रात का एक बज गया था. कल मुझे उदयपुर जाना था. तड़के एक्सप्रेस पकड़नी थी. अभी मैंने अपना सूटकेस भी तैयार नहीं किया था. मैं कार की दिशा में दौड़ा गया.

उदयपुर की मुलाकात मैंने सोची थी उतनी कामयाब नहीं रही. ऊंचे तबके के अधिकारियों के सामने प्लान बिछाकर उनको समझाने की करीब-करीब सारी कोशिशें मैं कर चुका था. उ मैंने यह भी बताया कि तैरता रेस्तरां मोबाइल एक जगह से दूसरी जगह ले जाना मुमकिन होगा जरूरत पड़ने पर उसे पानी से बाहर भी निकाला सकेगा. फिर भी उनके गले से मेरी बात नहीं उ

दो दिनों की लंबी चर्चा के बाद हमारी मीटिंग समाप्त हुई नतीजा? भविष्य में एक और मीटिंग और वह आखिरी होगी. पिछली तीन मीटिंगों का भी मुझे यही दिलासा देकर हुआ था.

इस बार मैंने धमकी दी कि अगर अगली मीटिं में फैसला नहीं निकला तो मैं अपनी योजना वापस लूंगा. मेरी चेतावनी का असर उन पर ज्यादा न हुआ. वे गिलहरी की तरह हंसे और हंसते-हंसते साथ लंच लिया. शाम की गाड़ी पकड़ मैं वापस मद्रास चला आया.

आज का सारा दिन मैंने इधर-उधर भटककर बरबाद किया. लेकिन इसका मुझे दुख नहीं. मैंने को देखा है. नील मद्रास में है. नील ने सिर्फ घर बदला है. किसलिए? इस सवाल का जवाब मेरे नहीं. अचानक गायब हो जाने की वजह?

यही जानने के लिए मैं जुलूस चीरता पुलिस की कोर्डन तोड़ता, गिरता पड़ता, लोगों की गालियां खाता, सामने फुटपाथ तक दौड़ गया था. अगर तमिल सेना का जुलूस बीच में अड़ा न होता तो मैं आसानी से उस जामुनी साड़ी के कभी झलकते क छिपते टुकड़े तक पहुंच सकता था.

उदयपुर से आने के बाद पूरा महीना बीत ग इस बीते महीने में जिंदगी की दौड़ के अ बताने लायक और कुछ भी नहीं घटा. न कैसे जिंदगी के इस रुटीन से मेरा जी परेशानी महसूस करता है. कभी इससे घबराकर मैं किसी कॉफी हाउस में चला जाता हूं. घंटों तक अकेला रहता हूं.

कॉफी पीकर मैं खड़ा हो जाता हूं. मेरा जी थो

हल्का हो गया है. मेरे सिर से एक बोझ उतर गया है. काउंटर पर बिल चुकाकर मैं कॉफी हाऊस से बाहर निकलने लगता हूं और मेरी नजर नील पर पड़ती है.

कुछ फासले पर वह किसी आदमी के साथ बैठी है. दोनों के बीच कॉफी के कप रखे हुए हैं. नील सिगरेट फूक रही है. हां, सिगरेट ही है उसके हाथ में और वह भी किंग साइज.

धीरे-धीरे मैं नील की टेबल के सामने आकर खड़ा हो जाता हूं. ''नील! नील!'' यह होंठ खुल जाते हैं.

उसके पास बैठा आदमी कभी मुझे देखता है तो कभी नील को. नील उसके हाथ पर अपना हाथ रखते हुए मुझे कहती है, ''ऐ मिस्टर! इस तरह आंखें फाड़-फाड़कर क्या देख रहे हैं.? न मेरा नाम नील है, न मैं आपको जानती हूं.'' आवाज भी वही है.

''नील!'' मेरे होंठ खुल जाते हैं. ''मुझे छल कर तुम्हें क्या लाभ होगा, यह तो मैं नहीं जानता. लेकिन मुझे इतना यकीन है कि जो नील कुछ पलों के लिए मेरी जिंदगी में आयी थी वह तुम ही हो! तुम ही पिंकी की मां हो और तुम...''

नील खुलकर हंस देती है, ''मिस्टर!'' और कहती है, ''मैं कुंवारी हूं और जिंदगी भर कुंवारी रहने की मैंने कसम खायी है. आपको धोखा हुआ है. कृपा कर हमें हमारी कॉफी पीने देंगे तो मैं आपकी आभारी होऊंगी.''

दोनों मेरे सामने देखे बगैर ही कॉफी के कप उठाकर घूंट-घूंट पी जाते हैं. मैं नील के चेहरे पर नजर गड़ाए ज्यों का त्यों बैठा रहता हूं. नील के साथ बैठे आदमी को मेरी मौजूदगी खटकती है.

पहली बार मैं उसकी तरफ नजरें घुमाता हूं. उसने टेढ़ी धारियोंवाले लाल स्वेटर पर कोट पहना है. कोट के सारे बटन खुले हैं. उसका चौड़ा सीना मैं साफ देख सकता हूं. उसके छोटे बाल, कई मुक्के खाकर चपटी हुई नाक, उभरे हुए चिकबोन से, वह कोई बॉक्सर होगा, इतना अंदाजा मैं लगा लेता हूं.

नील से मैं फिर सवाल करता हूं, ''क्या नोबल चेंबर्स में तुम नहीं रहती थी?''

जवाब में वह सिगरेट का कश लेकर धुएं का गुबार मेरे चेहरे पर फेंकती है.

''मिस्टर!'' बॉक्सर बोल उठता है, ''आप पागलखाने से निकलकर तो नहीं आये न? अब एक भी लफ्ज बोले तो...''

जुमला वह पूरा नहीं करता. मैं समझ जाता हूं. अपनी कुर्सी से आहिस्ता-आहिस्ता खड़ा हो जाता हूं. मुझे कुछ याद आया है. मैं अचानक कहता हूं, ''नील नाम की औरत की पीठ पर दोनों कंधों के बीच एक तिल था. जाने से पहले मैं एक बार वह तिल देखकर यकीन करना करना चाहता हूं.''

नील चौंक जाती है. मैं जल्दी से कदम बढ़ाकर उसकी पींठ पीछे आता हूं. मैं उसके बाल उठा उसकी गर्दन पर नजर डालूं उससे पहले बॉक्सर अपनी कुर्सी से उठ मेरे जबड़े पर एक घूंसा जमा देता है.

जबड़े पर हाथ रख मैं खड़े होने की कोशिश करता हूं. बॉक्सर खड़े होने में मेरी मदद करता है. उसका इरादा मुझे दूसरा घूंसा जमाना है. उसका हाथ फिर ऊपर उठता है. मैं उसे रोक उसके पेट में एक लात जमा देता हूं. नील खड़ी हो जाती है.

चीते की फुर्ती से आगे बढ़ मैं तीन एक घूंसे और जमाता हूं. कॉफी हाऊस का माहौल तंग हो गया है. करीब-करीब सारी टेबलें खाली हो गयी हैं. लोग दीवार से सटकर खड़े हैं.

मैं एक आखिरी मुक्का मारकर उसे खामोश करता हूं. दीवार से टिककर खड़ा उसका जिस्म धीरे-धीरे फिसलता हुआ फर्श पर ढेर हो जाता है.

नील पर मैं एक सरसरी निगाह डालता हूं. जैसे कुछ हुआ न हो ऐसे वह सिगरेट फूंकती दीवार के सहारे खड़ी है.

दूसरे दिन मैं अपने सोलिसिटर के ऑफिस में पहुंच जाता हूं. यहां मेरी मुलाकात मिस्टर गुणवंत से होती है. गुणवंत प्राइवेट डिटेक्टिव हैं. विदेशों में प्राइवेट डिटेक्टिव हर नुक्कड़ पर दिखाई देते हैं. भारत में भी उनका वजूद होगा इसकी मुझे कल्पना नहीं थी.

सीलिसिटर को मैं पूरी जानकारी देता हूं. कानूनन मुझे मरीना बीच पर थोड़ी-सी जगह मिली है. समंदर के बीच तैरता रेस्तरां खड़ा करने की इजाजत मिली है. अब मुझसे यह गुंडागर्दी बर्दाश्त नहीं होती. अब तक मेरा डेढ़ लाख रुपया डूब चुका है.

''मिस्टर क्षितिज!'' सोलिसिटर सिगार सुलगाते हुए मेरी ओर देखता है, ''मछेरों के विरोध की वजह क्या है?''

''सही वजह यह है कि समंदर में तैरता रेस्तरां खड़ा होने पर मछेरों का तस्करी का धंधा बंद हो जायेगा.''

गुणवंत हमारी बातें गौर से सुन रहा है.

सोलिसिटर फिर सवाल करता है, ''मछेरों ने

नील चौंक जाती है. मैं जल्दी से कदम बढ़ाकर उसकी पीठ पीछे आता हूं. मैं उसके बाल उठा उसकी गर्दन पर नजर डालूं, उससे पहले बॉक्सर अपनी कुर्सी से उठ मेरे जबड़े पर एक घूंसा जमा देता है.

कानूनन कोई कदम उठाया है?"

मैं 'हां' कहकर जोड़ता हूं, "उन्होंने यूनियन खड़ी की है और स्टे ऑर्डर लाने की तैयारी में हैं. वैसे भी मेरा कारोबार करीब-करीब बंद हो गया है."

"स्टे ऑर्डर आने दो. फिर कानूनन लड़ लेंगे."

"इससे पहले कुछ हो नहीं सकता?"

"पुलिस की मदद मिल सकती है."

फिल वक्त पुलिस का इंतजाम स्वीकार कर मैं खड़ा हो जाता हूं. मेरे साथ गुणवंत भी उठता है. हम दोनों साथ-साथ ऑफिस से बाहर निकलकर फुटपाथ पर उतर जाते हैं.

"आपको कहां जाना है?" मैं कार का दरवाजा खोलते हुए उससे पूछ लेता हूं. वह मुझे अन्नादुराई स्क्वेयर पर छोड़ने को कहता है. मैं उसे अपनी बगल की सीट में बिठाकर कार दौड़ा जाता हूं.

"आपको जल्दी तो नहीं?" कॉफी हाऊस पर नजर पड़ते ही मैं कार की रफ्तार कम करता हूं. वह 'ना' कहता है.

कॉफी के एक-एक कप हमारे सामने रखे हुए हैं. मुझे बॉक्सर के साथ वाली फाइट अचानक याद आती है.

गुणवंत को मैं नील के बारे में बताता हूं. नर्सरी की हमारी पहली मुलाकात से आखिरी फाइट तक का वाकया उसे सिलसिलेवार सुनाता हूं. वह दिलचस्पी से सुनता रहता है. बीच-बीच में अपनी डायरी में कुछ नोट करता जाता है. नील का पुराना पता भी वह लिख लेता है.

"कहिए," मैं सवाल करता हूं, "इस केस में आप मेरी क्या मदद कर सकते हैं?"

"मुझे सिर्फ इतना जानना है. नील कौन है? क्या है? कहां है?"

"बस?" गुणवंत सिगरेट सुलगाते हुए मुस्कराता है,, "मैं आपको यह भी बताऊंगा कि वह क्या थी? कौन थी? कहां थी? उसके पूरे इतिहास की फाइल मैं आपकी टेबल पर तस्वीरों के साथ रख दूंगा. लेकिन इसके लिए कम से कम एक महीने का वक्त आपको देना होगा."

दूसरे दिन से मैं अपना स्वभाव बिल्कुल बदल लेता हूं. एक नया सहनशील आदमी बन जाता हूं. अंजु कुछ भी बोले, कितने भी कड़े लफ्जों में कहे, मैं सिर्फ मुस्करा देता हूं. ताकि उसे आगे कुछ बोलने का मौका न मिले. लेकिन उससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ा.

अंजु की दिमागी हालत सुधरने के बजाय दिन-रात बिगड़ती गयी. अब उसके रोजमर्रा के कार्यक्रम बदल गये हैं. रोज शाम को वह बेशर्मी से भेलपूरीवाले के पास दौड़ जाती है. रात को देर तक बालकनी में खड़ी रहती है. दोपहर तक बिस्तर में पड़ी रहती है. खाने के वक्त कहती है—भूख नहीं. बेवक्त आया को थाली परोसने का हुक्म देती है. कभी बाल बनाती है. कभी उसके बाल खुले ही रहते हैं. मुझे लगता है वह पागल हो जायेगी.

एक रात मैं बालकनी में जाकर उसके बगल में खड़ा हो जाता हूं. थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहकर शुरुआत करता हूं, "अंजु! कल इतवार है. राजू को मैं पुंडी-डेम ले जानेवाला हूं. तुम्हें हमारे साथ चलना पड़ेगा."

"और नहीं जाऊं तो?" वह सामने सवाल फेंकती है.

"मुझे दुख होगा."

"तुम्हारे साथ जाने से मुझे दुख होगा उसका क्या?"

"डार्लिंग, तुम्हें हो क्या गया है?"

"कुछ भी नहीं."

"क्या मैं तुम्हें प्यार नहीं करता? पति होने के नाते मैंने अपने फर्ज में कहीं कोई कमी रखी है? अंजु डार्लिंग, मुझे एक बार, सिर्फ एक बार बता दो कि तुम्हें क्या खटकता है और उस कांटे को मैं अपनी जिंदगी से हमेशा के लिए खींच बाहर करूंगा."

मेरे लफ्जों का असर मैंने जितना सोचा था, उससे कुछ थोड़ा ज्यादा ही होता है अंजु नाराज नहीं होती. तू-तड़ाक से जवाब भी नहीं देती.

"क्षितिज," उसके होंठ कांपते हैं, "कभी-कभी मैं भी यही सोचती हूं. एक पति अपनी पत्नी के लिए जो कुछ करता है, उससे ज्यादा तुम मेरे लिए कर रहे हो. फिर भी मेरा मन मुझे क्यों डंस रहा है? कुछ कमी, कुछ अधूरेपन का एहसास क्यों होता है? वह 'कुछ' क्या है? यह मैं खुद नहीं जानती. मैंने ऐसी कई औरतें देखी हैं जिनके पास कुछ नहीं. घर में खाने के लिए एक जून की रोटी भी नहीं. फिर भी उनके चेहरे, उनके जिस्म फीके नहीं लगते. वजह? जो 'कुछ' मैं चाहती हूं, वह उनके पास है. कभी मुझे ऐसा भी लगता है, मैं पागल हूं. क्योंकि मैं क्या चाहती हूं यह मुझे खुद नहीं पता." कहते-कहते वह रो देती है.

मैं उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरता हूं. उसकी पीठ पर हाथ फेरता हूं. दोनों हाथों के बीच मुंह छिपाकर वह पलंग पर लेट जाती है. धीरे-धीरे उसकी गीली आंखें बंद हो जाती है. मैं देर तक जागता, सोचता रहता हूं.

मैं एक कमजोर इनसान हूं. मेरी सारी ताकत का मेल जीरो है. विशाल सागर को चित करने का गर्व भले ही मैं लूं, एक आम औरत का मन न पाने का अफसोस भी मुझे कम नहीं. सारी रात में करवटें बदलता पड़ा रहता हूं.

सुबह अंजु को लेकर मैं पुंडी डेम जाने के लिए चल देता हूं. राजू हम दोनों के बीच सीट पर खड़ा है. अफलातून तेजी से आगे बढ़ रही है. मैं पिकनिक के मूड में हूं. राजू का उत्साह भी कम नहीं. अभी तक अंजु अपना मूड माहौल से एडजस्ट नहीं कर पायी.

"पापा!" राजू पूछता है, "पिकनिक का कोई गाना नहीं सुनाओगे?"

"तू साथ गायेगा?"

घर से कब तक
रिटायर्ड

वह 'हां' कहता है. ''मम्मी! आप भी गाओगी न?''

अंजु 'ना' नहीं कहती.

''रेडी?'' मैं कहता हूं. ''एक, दो और...'' तीन कहने से पहले ही राजू शुरू हो जाता है:

''फोर्टीन ग्रीन बोटल्स, हैंगिंग ऑन द वॉल
इफ वन ग्रीन बोटल ऐक्सीडेंटली फॉल्स.''

मैं और अंजु उसके साथ-साथ गाने लगते हैं:

''फोटीर्न ग्रीन बोटल्स, हैंनिंग ऑन द वॉल
इफ वन ग्रीन बोटल ऐक्सीडेंटली फॉल्स.''

''थर्टीन ग्रीन बोटल्स...'' राजू पूरी ताकत लगाकर ऊंची आवाज में चिल्ला रहा है. अंजु बीच में अटक-अटककर फिर शुरू हो जाती है. मेरे खयाल से गाने के बोल वह भूल चुकी है. मैं आखिर तक राजू का साथ देता हूं. गाना पूरा होते ही राजू तालियां बजाने लगता है.

अंजु उसे खींचकर अपनी गोद में बिठा लेती है. राजू का मन खिड़की के पास बैठने का है. अंजु खिसककर मेरे पास आ जाती है. मैं अपना बायां हाथ उसके गले में डाल देता हूं. मुझे सिर्फ एक हाथ से ड्राइव करता देख अंजु मेरा हाथ उठाकर वापस स्टीयरिंग पर रख देती है. उसकी यह हरकत मुझे अच्छी लगती है.

पुंडी डेम आने पर मैं फूलों से भरे बाग के सामने कार रोकता हूं.

राजू फूलों पर मंडरा रही एक तितली के पीछे दौड़ जाता है. हम दोनों दूब पर चद्दर बिछाकर बैठ गये हैं. अंजु की आंखों में आज से पहले मैंने कभी इतना प्यार नहीं देखा. उसकी आंखें किसी अनजानी रोशनी में जगमगा रही हैं.

मुझे एहसास होता है. जो 'कुछ' अंज की आंखों में है, वह मेरी आंखों में नहीं. उस 'कुछ' को मैंने रोशनी का नाम दिया है. लेकिन वह रोशनी नहीं. फिर भी कुछ चमक रहा है. कुछ जगमगा रहा है. शायद वह उसका प्यार हो. शायद वह उसके भीतर की चेतना हो. शायद वह उसका धड़कता दिल हो.

अंजु वही 'कुछ' अभी भी मेरी आंखों में खोज रही है. वह मेरे भीतर है फिर भी सतह पर क्यों नहीं आता?

''पापा! पापा!''

राजू के हाथ में तितली आ गयी है. वह दौड़ता हमारे पास आ रहा है. अचानक उसका एक पैर दूसरे पैर में उलझते ही वह—गुलाटं खाकर दूब की चद्दर पर गिर पड़ता है. तितली उसके हाथ से छूटकर उड़ जाती है. वह उदास चेहरे से ऊपर और ऊपर जाती तितली को देख रहा है. मैं उसकी आंखों में आंसुओं की बूंदें देखता हूं.

उसे फुसलाकर अपनी गोद में लेते हुए अंजु कहती है, ''राजू बेटा, बोल, हम लोग कौन-सा गेम खेलें?''

''चोर-सिपाही.'' राजू तुरंत बोल उठता है. उसकी आंखों में दिखते आंसू उल्टे पैर दौड़ गये हैं.

''पापा!'' वह कहता है. ''मैं चोर हूं. मैं दौड़ूंगा. आप दोनों सिपाही मुझे पकड़ना.''

राजू एक, दो और तीन कहकर दौड़ जाता है. हम दोनों आंख मिचौली करते मानो दौड़ न पा रहे हों ऐसे उसके पीछे चल रहे हैं. चलते-चलते मैं अंजु को गुदगुदी भी करता जाता हूं.

गुलमोहर का पेड़ आने पर राजू उसके इर्द-गिर्द घूमने लगता है. हम भी पेड़ के आसपास फेरे लेने लगते हैं. मुझे हमारी शादी के फेरे याद आ जाते हैं. वे फेरे मैंने गंभीरता से लिये थे. जबकि उस वक्त मेरी इच्छा इतनी ही रफ्तार से फेरे लेने की थी. मेरा बस चलता तो मैं अंजु को गुदगुदी कराते दौड़ा जाता.

''क्या हुआ?'' अचानक तने को थाम अंजु खड़ी हो जाती है तो मैं पूछ लेता हूं.

थोड़ी देर तक वह खामोश खड़ी रहती है. हांफती रहती है, ''सीने में थोड़ा-सा दर्द हो रहा है.'' ऐसी शिकायत भी वह करती है. मैं उसे सहारा देकर नीचे बैठा देता हूं. उसकी सांसें दोगुनी हो गयी हैं. वह लगातार गहरी सांसें ले रही है.

राजू उसके पास खड़ा होकर फटी-फटी आंखों से देख रहा है.

''क्या होता है, अंजु?'' कुछ न सूझने पर मैं फिर पूछ लेता हूं.

वह पानी मांगती है. मेरे पैर कार की ओर तेजी से बढ़ जाते हैं. हमारा वॉटर बैग और टिफिन कार में ही हैं. तुरंत ही मैं वॉटर बैग के साथ वापस लौटता हूं. उसकी सांस मंद हो गयी है. मैं उसे दूब पर लिटाते हुए उसका सिर अपनी गेद में ले लेता हूं. घूंट-घूंट करके उसे पानी पिलाता हूं. चार घूंट से ज्यादा वह पी नहीं पाती. उसका धड़कता दिल रुक गया है. उसकी सांसें रुक गयी हैं. उसकी आंखें अब भी खुली हैं. लेकिन वह 'कुछ' जो उनमें रोशन था पिघल गया है. धीरे-से मैं उसकी पलकें गिरा देता हूं.

अंजु बगैर की जिंदगी मुझे उदासी से भरी और बोझिल लगती है. कमरे के घुटन भरे माहौल में एक बोझ तैरता है. यह बोझ कभी मेरे सिर पर आ बैठता है तो कभी मेरे कंधों पर. मैं डबल बैड में सोता हूं और यह बोझ मेरे सीने पर उतर आता है.

अंजु की मौत के बाद मैंने अपने रोजमर्रा के कामों में भी तब्दीली कर ली है. पहले मैं काम खत्म कर सीधा घर लौटता था. अब मैं घर से नफरत करता हूं. घर से जितना हो सके, दूर रहने की कोशिश करता हूं. अगर मेरी जिंदगी में राजू नहीं होता तो मैं घर वापस लौटने की सोचता ही नहीं.

राजू तैयार होकर मेरे पास आता है. राजू अब अपने हाथों से तैयार होना सीख गया है. अपने हाथों से नाश्ता भी कर लेता है.

हम दोनों नर्सरी पहुंच जाते हैं. राजू का रोना, राजू की शरारतें भूतकाल बन गये हैं. वह अब जिद भी नहीं करता. उसके सिर पर प्यार से हाथ फेर मैं उसे दरवाजे तक छोड़ आता हूं. वह चुपचाप दाखिल हो

धूम्रपान करने की इच्छा होने पर खलनायक जैसा डॉक्टर का चेहरा सामने आ जाता हो तो आप क्या करेंगे?

खासतौर से लंबे और उबाऊ दिन, आपके आसपास बनता अकेलेपन का गहरा घेराव, आपके सिर पर झूलते निराशा के बादल, आपके साथ-साथ दौड़ती लाचारी और आपके आगे-आगे दौड़ती मौत. मौत से आप मिल नहीं सकते. लाचारी के चंगुल से आप बच नहीं सकते. आप संघर्ष करें और आखिर थक कर नीचे गिर पड़ें. आप बेबसी से थोड़ी दूर बैठी और आपकी हालत पर हंसती मौत को दया की नजर से देखें. तब कहीं से भी कोई कहेगा—बूढ़े को मौत भी नहीं आती! इसे आप कौन-सी लाइफ कहेंगे? □

जाता है. मैं बाहर आता हूं. मेरी कार मरीना बीच की ओर दौड़ जाती है.

शेड के बाहर पुलिस का पहरा बैठ गया है. पुलिस का संरक्षण होने पर भी ये कारीगर काम करने को तैयार नहीं. गुरखा अभी तक कैसे टिका है, यह मेरे लिए एक सवाल है.

"साहब!" वह कहता है, "अब तालपत्री की जरूरत पड़ेगी."

उसकी बात गलत नहीं. बरसात का मौसम शुरू होते ही शेड में पानी टपकना शुरू हो जायेगा. लकड़ी का अधूरा काम और जो कुछ फर्नीचर तैयार पड़ा है, वह कभी सड़ जायेगा. तैरता रेस्तरां तैरने से पहले डूब जायेगा.

शेड मुझे अभी से कब्रिस्तान लगता है. यहां का माहौल, यहां की खामोशी, यहां की आबोहवा, यहां के चप्पे-चप्पे में उदासी है. इसके बावजूद मैं काफी देर तक यहां बैठा रहता हूं. मेरी आज की जिंदगी और शेड में ज्यादा फर्क नहीं.

मैं दफ्तर में दाखिल होता हूं. दफ्तर में ज्यादा काम न होने से मैं कुर्सी की पीठ पर सिर टिकाकर आंखें मींच लेता हूं. बंद आंखों के सामने स्टेनो आकर खड़ी हो गयी है. वह अफसोस जताती है. मैं उसकी ओर देखे बगैर ही उसे दरवाजा दिखा देता हूं.

टेलीफोन की घंटी बज उठती है. "हैलो?"

फोन सोलिसिटर का है. वह पूछ रहा है. "आज का टाइम्स पढ़ा?"

"कुछ खास?"

"क्या आप कुछ भी नहीं जानते?"

पिछले एक हफ्ते से मैंने कुछ भी नहीं पढ़ा.

सोलिसिटर कहता है: "आज के टाइम्स में खबर छपी है कि आपके तैरते रेस्तरां की योजना सरकार ने कैंसल कर दी."

"अब?" मैं पूछता हूं.

"कोर्ट में लड़ लेंगे."

दूसरे दिन दफ्तर में दाखिल होते ही मेरी नजर गुणवंत पर पड़ती है. स्टेनो के पास बैठकर वह गप्पें लड़ा रहा है. पल भर के लिए उल्टे पांव वापस दौड़ जाने की इच्छा होती है. लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता. वह कमबख्त मेरे सामने बैठा है.

मेरे साथ केबिन में दाखिल होते ही वह औपचारिकता दिखाता है. "आई एम सॉरी." वह कहता है. "आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, यह जानकर मुझे वास्तव में दुख हुआ."

"आप महीने से पहले आ गये."

"काम पंद्रह दिन में खत्म हो गया." बताते हुए नील की फाइल वह मेरी टेबल पर रखता है. साथ में उसका बिल भी है. मैं फाइल को एक ओर खिसकाकर बिल उठाता हूं. पांच सौ रुपये मैंने उसे एडवांस दिये थे. हजार बाकी हैं. चैक साइन कर मैं उसके सामने रखता हूं. वह मेरा आभार मानता है.

कांपते हाथों से मैं लाल रंग के रिबन की गांठ खोलता हूं. फाइल खुल जाती है. उसमें पच्चीस से ज्यादा टाइप किये हुए पन्ने हैं. साथ में तस्वीरों एक लिफाफा भी है.

संक्षिप्त में: नील एक बिखरे परिवार की बेटी भारत-पाक विभाजन के साथ उसके मां-बाप बटवारा हो गया. कौन जाने उसकी मां कहां हो गयी. पिता के साथ वह पाकिस्तान की सीमा दिल्ली आयी. उसके पिता बीवी के गम में पागल होकर गुजर गये. बनवारी लाल नाम के किसी के यहां वह पलकर बड़ी हुई. सत्रह साल की वह एक लड़के के साथ मद्रास चली आयी. कुछ महीने उस लड़के के साथ बिताकर वह फिर बार बेसहारा हो गयी.

तब से अब तक की उसकी जिंदगी कॉलगर्ल थी. कभी वह होटल में रहती थी तो कभी फ्लैट लेकर. आखिरी पन्ने पर उसका आखिरी पता मैं फाइल बंद कर देता हूं. कुछ देर के लिए मेरी आंखें भी बंद हो जाती हैं. नील का भूतकाल के बाद मुझे उससे नफरत न होकर हमदर्दी होती

नील मुझे दिलोजान से चाहती है. लेकिन आत्मा उसे मेरे पास आने से रोकती है. कचोटती उसकी जिंदगी कलंकित है! उसी जिंदगी में मुझे शामिल कर वह मुझे दुखी नहीं करना चाहती. ही सुख की खातिर, मेरी ही आबरू की खातिर मुझसे दूर-दूर-दूर चली गयी है.

ये सब जानने के बाद भी वह एक हकीकत से अनजान है. यारो, उसकी जिंदगी मैली है, उसका मन नहीं. उसके दिल में कहीं भी कोई छलकपट नहीं, दगा नहीं. उसके संस्कार किसी गिरी हुई के नहीं. बस, सिर्फ एक मौके की उसे तलाश है. मौका मिलने पर जिंदगी फिर पवित्र हो सकती है. पाप धुल सकते हैं.

आज का मेरा कार्यक्रम राजू को नर्सरी नील की खोज में जाने का है. नील का मेरी डायरी में लिखा है. नील की तस्वीरोंवाला लिफाफा मेरे कोट की जेब में है. के विचार मेरे दिमाग में घूम रहे हैं. नील मुझे पहचानने से इनकार तो नहीं करेगी? फिर किसी बॉक्सर से हाथापाई तो नहीं होगी? दिमागी तौर मैंने अपने आपको तैयार कर लिया है. हाथापाई लिए भी मैं पूरी तरह तैयार हूं. हाथापाई मेरी है. मेरे जिस्म के घाव इसका सबूत हैं.

पौंडी बाजार रोड पर कार पार्क कर मैं अपनी डायरी में पता देखता हूं. एक सरसरी निगाह पर डालता हूं. यह वही मकान है जिसकी तस्वीर मेरी जेब में है. मैं सीढ़ियां चढ़ जाता हूं.

दूसरी मंजिल के तीन नंबर के फ्लैट का बंद दरवाजा मेरे सामने है. डोर बैल की बटन दबाकर दरवाजा खुलने का इंतजार करता हूं. भीतर की धड़कनें अचानक बढ़ जाती है. न जाने क्यों मेरा जिस्म कंपकंपी महसूस करता है.

आहिस्ता से दरवाजा खुलता है. नील चौखट

मैं एक कमजोर इनसान हूं. मेरी सारी ताकत का मेल जीरो है. विशाल सागर को चित करने का गर्व भले ही मैं लूं, एक आम औरत का मन न जीत पाने का अफसोस भी मुझे कम नहीं

बीच फ्रेम होकर खड़ी है. उसकी आंखें, उसका चेहरा, उसके होंठ, खामोश हैं. एकटक हम एक दूसरे को देखते रहते हैं.

एक भी शब्द बोले बगैर वह अंदर की ओर कदम बढ़ाती है. मैं उसके पीछे दाखिल होकर बैठक के एक सोफे के पास खड़ा हो जाता हूं. वह मेरे सामने सिर झुकाकर एक कुर्सी के सहारे खड़ी है.

मैं शुरुआत करता हूं. "पिंकी कहां गयी?"

"स्कूल."

फिर लंबी और बेदर्द खामोशी हमारे बीच फैल जाती है.

"आपकी तबीयत कैसी है?" नील ने शायद बॉक्सर के साथ हुई हाथापाई को मद्दे नजर रखते हुए यह सवाल किया होगा. मुझे जवाब देने की जरूरत नहीं लगती.

उसका चेहरा करुण हो जाता है. मुझे लगता है वह रो पड़ेगी. उसकी आंखों में गीलापन चमक रहा है. यह पानी की परत धीरे-धीरे शक्ल ले रही है. आंसुओं की बूंदें सिर उठा रही हैं. आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकल उसके गालों पर से नीचे बह रही हैं.

मैं खड़ा होकर उसके बगल की कुर्सी पर बैठ जाता हूं. अपने रूमाल से उसका भीगा चेहरा पोंछता हूं. मेरे गले में अपने दोनों हाथ डालकर वह खुलकर रो पड़ती है. प्यार से मैं उसकी पीठ थपथपाता हूं. वह रोती रहती है. सिसकियों से छलकती खामोशी फिर एक बार हमारे बीच दौड़ जाती है. बाकी रह जाती है, थोड़ी-सी ठंडी आहें और थोड़े से आंसू.

डोरबैल बजते ही वह संभल जाती है. दरवाजा खुलता है. पिंकी दौड़कर उसके हाथों में समा जाती है. पिंकी को गोद में लिये वंह मेरे पास आती है. आया चुपचाप रसोई में चली गयी है. पिंकी मेरे चेहरे को एकटक देख रही है.

"पहचानती है, अंकल को?" नील उसकी हैरत भरी छोटी-छोटी आंखों में देख पूछती है.

पिंकी तुरंत बोल उठती है, "केड्बरी वाले अंकल."

नील हम दोनों को अकेले छोड़ किचन में चली जाती है.

"पिंकी!" मैं पूछता हूं, "तेरी चाकलेट में से मुझे हिस्सा नहीं देगी?"

"नहीं!" वह बोल उठती है, "यह... यह तो मेरे लिए है. नये अंकल ने दी है. कहा है, किसे भी न देना. मम्मी को भी नहीं."

'नये अंकल' शब्द कानों से टकराने पर मेरी आंखें थोड़ी बेचैनी महसूस करती हैं. नील के ग्राहक, जिन्हें वह दोस्त भी कहती है, पिंकी के लिए 'अंकल' समान हैं. पिंकी के लिएं मैं भी एक अंकल हूं. पिंकी की नजर में सभी अंकल बराबर हैं.

नील चाय के दो कप लेकर वापस आती है. पिंकी मेरी गोद से फिसलकर किचन में दौड़ जाती है. मैं और नील चाय के घूंट लेते हुए चुपचाप बैठे हैं. इस बार नील ही मौन तोड़ती है.

"क्षितिज!"

"हूं...?"

"अंजना के बिना राजू को सूना-सूना नहीं लगता?"

मैं चौंक उठता हूं. अंजना के स्वर्गवास की खबर नील तक कैसे पहुंची?

"किसने बताया?" मुझसे पूछे बिना नहीं रहा जाता.

"एक डिटेक्टिव मैंने भी रोका था." जवाब देकर वह मेरी शक्ल टटोलती है. उसकी आंखें चुपके-चुपके हंस रही हैं.

घर पहुंचकर मेरे पैर दरवाजे में रुक जाते हैं. आया और राजू 'चोर सिपाही' खेलते हों, इस तरह डाइनिंग टेबल के आसपास दौड़ रहे हैं.

दूध का कप टेबल पर गिरा है. उसकी धार टेबल पर से बहती हुई फर्श पर टपक रही है. खाने की थाली उल्टी पड़ी है. सब्जी की प्याली का निशाना बनने के कारण दीवार पर चिपकी सब्जी नजर आती है. बाकी प्याली के साथ नीचे पड़ी है.

मुझ पर नजर पड़ते ही आया तुरंत मेरे पास दौड़ आती है. राजू उलटी दिशा में दौड़ जाता है. अब वह बिगड़े शहजादे की तरह दोनों हाथ कमर पर रखकर सामने की दीवार के सहारे खड़ा है.

"पापा!" आया मुझसे कुछ कहे, इससे पहले वह चिल्लाता है, "मैं दूध नहीं पीऊंगा! नहीं पीऊंगा! नहीं पीऊंगा!"

आगे बढ़कर मैं उसके सामने घुटनों के बल बैठ जाता हूं. "बेटा राजू!" अपने दोनों हाथों के घेरे में लेकर मैं उसे प्यार से पूछता हूं, "मैं पिलाऊ तो पीयेगा.?"

वह साफ 'ना' कहता है.

राजू को मैं कोल्डड्रिंक हाऊस में ले जाकर दो गिलास मिल्कशेक का ऑर्डर देता हूं. राजू खामोश बैठा है. लेकिन उसके भीतर काफी उलझनें फैली हों, ऐसा उसका चेहरा जाहिर करता है.

मिल्कशेक के दो गिलास हमारी टेबल पर आने पर राजू के सामने मैं एक गिलास खिसकाता हूं.

"पापा!" वह कहता है, "आप मुझे रोज रात में यहां क्यों नहीं लाते?"

"कल से तुझे रोज ले आऊंगा."

"पापा, आप बहुत अच्छे हैं."

"राजू!" मैं फिलोसफी झाड़ता हूं, "हम भले हों तो हमें सभी लोग भले लगेंगे."

वह बोल उठता है, "अपनी आया अच्छी नहीं.वह मुझे गोद में बिठाकर दूध नहीं पिलाती."

मैं खामोश हो जाता हूं. राजू के चिड़चिड़ेपन और जिद की सही वजह अब मेरे सामने आती है. राजू को मां की जरूरत है. आया अपनी मर्यादा में सब कुछ करती थी. फिर भी आया, आया होती है. मां, मां होती है.

"राजू!" मिल्कशेक का गिलास खत्म करके मैं

नील मुझे दिलोजान से चाहती है. लेकिन उसकी आत्मा उसे मेरे पास आने से रोकती है. कचोटती है. उसकी जिंदगी कलंकित है. उसी जिंदगी में मुझे शामिल कर वह मुझे दुखी नहीं करना चाहती.

खामोशी तोड़ता हूं, ''मैं तेरे लिए एक बढ़िया-सी मम्मी ले आऊं तो तुझे खुशी होगी?''

जवाब में वह सिर झुकाकर रो पड़ता है. मम्मी के बिना उसकी जिंदगी वाकई सूनी है. मुझे उसकी सूनी जिंदगी में फिर खुशियां भरनी होंगी. मुझे दूसरी शादी करनी होगी.

दूसरे दिन राजू को नर्सरी छोड़ मैं नील के घर पहुंच जाता हूं. पिंकी के लिए आज मैंने ढेर सारे खिलौन खरीदे हैं. साथ में कैड्बरी लेना भी मैं भूला नहीं. दरवाजा खुलते ही नील का मुस्कराता चेहरा मेरे सामने आता है. सभी पैकेट तिपाई पर रखकर मैं सोफे पर बैठ जाता हूं.

नील मेरे सामने खड़ी है. बालों में कंघी फेर रही है. खिलौनों के पैकेट मैं एक के बाद खोलता जाता हूं. चाबीवाले बंदर में चाबी भरता हूं. बंदर तालियां बाजाता तिपाई पर नाचने लगता है. गुड़िया कमर हिलाने लगती है. बैंड मास्टर बाजा बजाता है. मोटर तिपाई से कूदकर कछुए की तरह उलटी पड़ी है. ट्रेन को मैं फर्श पर रखता हूं. पटरी बिना ही वह बाल्कनी तक दौड़कर उलट जाती है.

नील मेरी हरकतों को बच्चे की मासूम निगाहों से देख रही है, ''अभी कुछ बचा है?'' जेब से चॉकलेट निकालकर मैं उसके सामने करता हूं.

मेरे हाथ से चॉकलेट लेकर वह तिपाई पर रख देती है. फिर खुद भी मेरे सामने सोफे पर बैठ जाती है, ''इन सबकी जरूरत थी?''

मैं सिर्फ इशारे से 'हां' कहता हूं. ''नील!'' और बोलता हूं, ''तुम्हें कभी ऐसा लगा है कि किसी को तुम्हारी भी जरूरत है?''

एकटक वह मेरी आंखों में देख रही है. उसकी पलकें बार-बार खुलती गिरती जाती हैं, ''किसे जरूरत है?'' वह पूछ बैठती है.

''राजू को.'' मैं बोल उठता हूं, ''मेरे राजू को एक ऐसी मां की जरूरत है जिसकी आंखों से प्यार छलकता हो. जिसका चेहरा ममता से भरा हो. जिसका बदन सुडौल और सपनों में रंगा हो. जिसकी गर्दन सुराही जैसी हो. जिसकी कमर का होना न होना, दोनों बराबर हों. जिसकी मीठी आवाज मेरे सूने घर को फिर हंसता-गाता कर दे. नील, तुम ये सब कर सकोगी, इसमें मुझे जरा भी शक नहीं.

नील अभी खामोश बैठी है. स्थिर नजरों से मेरी आंखों में देख रही है. उसने सपने में भी सोचा न होगा कि अरेबियन नाइट का कोई राजकुंवर अपनी अफलातून कार में सवार होकर उसके द्वार आयेगा.

''क्षितिज!'' उसके होंठ खुलते हैं, ''मुझे एक रात सोचने का वक्त दें.''

अगले दिन चम-चम करती मेरी अफलातून आसानी से दौड़ती बड़े-बड़े रास्तों को पार करती, पोंडी बाजार रोड पर आती है. हाथ में साड़ी का पैकेट दबाकर झटपट सीढ़ियां चढ़ ऊपर आते मुझे ज्यादा देर नहीं लगती.

आया मेरे सामने खड़ी है. वह मुझे बैठने के लिए कहती है. मैं अंदर दाखिल होकर सोफे पर बैठ जाता हूं. नील बाल संवारती मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती है. थोड़ी देर बाद बैठ भी जाती है. हम दोनों खामोश हैं. आज की चुप्पी मुझे न जाने क्यों खटकती है.

उसकी नजर तिपाई पर पड़े पैकेट पर पड़ती है, ''इसमें क्या है?''

मैं सिर्फ 'साड़ी' ही कहता हूं.

''जामुनी?''

''बिलकुल सही.'' फिर जोड़ता हूं, ''तुम्हारे घर खाली हाथ न आने की मुझे आदत-सी हो गयी है.''

वह हंस देती है. टेलीफोन की घंटी बज उठती है.

''हैलो?'' रिसीवर कान से लगा वह शुरुआत करती है, ''आज नहीं, नहीं. नहीं... मिस्टर साहनी... कभी नहीं, भूल जाइए.'' बेदर्दी से क्रेडल पर रिसीवर पटक वह मेरे सामने देखती है.

मैं मतलब की बात पर आता हूं, ''चौबीस घंटे पूरे हुए!''

''हूं.''

''क्या सोचा?''

''काफी कुछ.''

''फिर?''

''जवाब में ना मिली.''

अचानक मुझे अपने आप से ही नफरत हो जाती है. मुझे लगता है. जिंदगी मजाक नहीं. मुझे उसे उसके गंभीर रूप में स्वीकारना होगा. मुझे अपने जरूरत से ज्यादा आशावादी स्वभाव को सुधारना होगा. उम्मीद का एक जर्रा दिखते ही मैं उम्मीदों की इमारत खड़ी कर देता हूं. ये जर्रे बिखर जाते ही इमारत भी धंस जाती है और तब मुझे काफी पीड़ा होती है.

उसकी आंखें मेरी आंखों में घुसकर भीतर के राज जानने के लिए जूझ रही हैं. वह जान गयी है. इस वक्त मेरा दिल चुपके-चुपके सिसक-सिसककर रो रहा होगा.

''क्षितिज!'' अपनी आंखों को फैलाकर वह दबी आवाज में फिर कहती है, ''आपकी भलाई सोचने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंची हूं.''

''मैं भी कैसा बेवकूफ आदमी हूं. ''मेरे होंठों पर फीकी मुस्कान उभरती है, ''अपनी भलाई भी मैं खुद नहीं समझता.''

मैं खड़ा होकर धीरे-धीरे दरवाजे की ओर बढ़ाता हूं.

''नील!'' मेरे पैर दरवाजे तक आकर रुक गये हैं, ''हमेशा तुम मेरी भलाई चाहती आयी और मैं तुम्हें चाहता आया. तुम मुझसे दूर-दूर भागती रही और मैं तुम्हारे करीब आता गया. इतना करीब कि मैं तुम्हें राजू की मां के पवित्र रूप में देखने लगा. मगर नहीं. कई मर्दों की सांसों से खेलनेवाली औरत को एक मर्द का प्यार कैसे खुश कर सकता है.''

मेरी पीठ पीछे उठनेवाली सिसकियां मैं सुन सकता हूं. ''बस, मुझे और कुछ नहीं कहना. हां, इतना

जरूर कहूंगा. गुडबाय एंड गुड लक." नील फफककर रोने लगती है. मैं सीढ़ियां उतर जाता हूं.

मेरी कलाई घड़ी में दोपहर के साढ़े बारह बजे हैं. कहां जाऊं! घर पहुंचूंगा और राजू मुझसे पहला ही सवाल करेगा—'पापा, मम्मी कहां है?' मैं क्या जवाब दूंगा?

मैं चुपचाप मरीना बीच चला जाता हूं. चौकीदार गुरखा शेड के गेट पर बैठा-बैठा बीड़ी फूंक रहा है. मैं अंदर दाखिल हो जाता हूं. अंदर वीराना है.

शेड को खाली करने की मुद्दत पूरी हो चुकी है. उसके बाद दो और नोटिस मिल चुके हैं. इस हफ्ते में मैं अपने बनाये हुए सपने को अपने हाथों टुकड़े-टुकड़े कर समंदर में नहीं बहाऊंगा तो नगरपालिका के कसाई आकर उसकी कब्र यहीं खोद देंगे.

मैं थोड़े से कागज जलाकर इमारत के एक हिस्से के नीचे रखता हूं. थोड़े से और कागज जलाकर दूसरे कोने में फेंकता हूं. धीरे-धीरे लकड़ियां सुलगने लगती हैं. शोर मचाती हवा आग की लपटों को थोड़ी ही देर में चारों ओर फैला देती है. गुरखा "आग-आग" चिल्ला रहा है. मैं पिछले दरवाजे से खिसककर बाहर निकल जाता हूं.

लोग दूर-दूर से दौड़कर आग देखने आ रहे हैं. चारों ओर के मकानों की खिड़कियों और बाल्कनी में खड़े परिवार हैरत से देख रहे हैं. फुटपाथ से दूर हजारों की भीड़ इकट्ठी हुई है. तमाशा है, यारो. मेरे सुलगते दिल का तमाशा और भीड़ से दूर रेत में बैठा-बैठा में सिगरेट के कश ले रहा हूं.

जीने के लिए मेरे पास एक ही वजह है और वह है राजू. जिंदगी में राजू न होता तो शायद अब तक मेरे शेड की तरह मैं भी जलकर राख हो जाता. शायद मैंने नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या कर ली होती.

ऐसे डरावने विचार सूरज की किरणों के साथ आकर मुझे घेर लेते हैं. मैं घबराकर किसी दोस्त की खोज में निकल पड़ता हूं. किसी भी दोस्त के साथ बैठ, देर तक शराब पीता हूं. दोस्त न मिलने पर मैं अकेला ही 'बार' में चला जाता हूं.

शराब मैं अपना दुख भुलाने के लिए नहीं पीता.

मेरा रोजमर्रा का टाइम टेबल अब पहले जैसा नहीं रहा. मैं रोजाना दफ्तर जाता था. अब शायद ही जाता हूं. कभी चंद मिनटों के लिए तो कभी घंटों के लिए. घंटों बैठा-बैठा सोचा करता हूं टेलीफोन की घंटी बज उठती है क्षितिज! तुम्हारे शेड में आग लग गयी, यह जानकर दुख हुआ. हरेक फोन करनेवाला शख्स इसी एक जुमले से शुरुआत करता है. मैं रिसीवर को वापस क्रेडल पर रख देता हूं.

उन दोस्तों से जरूर बातें करता हूं, जो इसके अलावा किसी और विषय पर चर्चा करना चाहते हों. मसलन, आज रात एल्फिंस्टन थियेटर में जाऊंगा या कैबरे देखने? आज वहां बैठकर शराब पीनी है? आज किसी तवायफ के कोठे पर जाने का विचार है या नहीं?

रात बीत जाती है. सुबह घर पहुंचता हूं. आया मुझे अजीब नजरों से देखा करती है. मेरे जीवन में आये परिवर्तन ने उसे चौंका दिया है. वह मुझे बहुत कुछ कहना चाहती है लेकिन मेरे सामने उसकी जबान नहीं खुलती. आजकल राजू का सारा बोझ उसके सिर आ गया है. राजू के प्रति अपने फर्ज में मैं अधिक लापरवाह हो गया हूं. मेरे नशे की वजह भी अब वह नहीं रहा.

दफ्तर में मैं झोंके ले रहा हूं. स्टेनो उबासियां ले रही है. चपरासी कहीं गायब है. शायद वह टेरेस पर बैठी मेहतरानी के साथ बीड़ी फूंकता होगा. यह स्टेनो, भी क्यों कहीं चली नहीं जाती? यहां क्या काम है उसके लिए?

टेलीफोन की घंटी बज उठती है. हाथ बढ़ाकर मैं रिसीवर उठाता हूं, "हैलो?"

फोन किसी दलाल का है. पूछ रहा है, "आज रात का क्या कार्यक्रम है?"

मैं कहता हूं, "कुछ भी नहीं."

वह कहता है एक लड़की का उसने इंतजाम किया है.

शाम को मुझे लेने वह दफ्तर आ पहुंचता है. उसके आने की वजह उसका अपना डर है. कहीं शाम का अपाइंटमेंट मैं भूल गया तो उसका ठोस कमीशन डूब जायेगा.

रात ग्यारह बजे से पहले ही वह मुझे होटल में ले आता है. नशे में लड़खड़ाता मैं एक ओर खड़ा रहता हूं. वह काउंटर पर जाकर मेरा रूम नंबर पता कर आता है. मैं उसके कमीशन के सौ रुपये एडवांस देता हूं. बीस के पांच नोट गिनता वह बाहर निकल जाता है. मैं लिफ्ट में दाखिल होता हूं. होटल नौ मंजिला है. मुझे जिस रूम में जाना है. वह नौवीं मंजिल पर है. नौवीं मंजिल प्यार करने से आत्महत्या करने के लिए ज्यादा बेहतर होती है.

मैं दरवाजा खटखटाता हूं. तुरंत ही दरवाजा खुल जाता है. एक लड़की मेरे सामने खड़ी है. आकर्षक है. जवान है. खूबसूरत है. सुडौल भी है. उसकी आंखें नील की आंखों से मिलती हैं. उसका चेहरा भी नील जैसा है. उसके बाल कटे हुए और कंधों पर बिखरे हैं.

मैं आंखें मिचमिचाता हूं. दस पैग का नशा उतर जाता है. मैं साफ देखता हूं मिनी स्कर्ट में नील मेरे सामने खड़ी है. हम दोनों एक दूसरे के चेहरों को चौड़ी आंखों से देख रहे हैं. हम दोनों अजीब हालात के शिकार हुए हैं और इस बात का हमें एहसास है.

नील पीठ फेरकर, धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई डबलबैड के किनारे बैठ जाती है. मैं दरवाजा बंद कर दरवाजे के सहारे वहीं खड़ा रह जाता हूं. उसकी आंखें सूनी दीवारों को घूर रही है. उन.:. उन आंखों में मैं पानी देखता हूं. आंसुओं की बूंदें आकार लेकर

एहसास

वही शाम. वे ही रंग. वही डूबता सूरज. वही चहलपहल. वही लंबी परछाईयां. वे ही सिर पछाड़ती मौजें. वही गर्जन. इन सबका मैं मजा नहीं ले सकता. कुछ-कुछ कल्पना कर सकता हूं. दिन पर दिन मेरी सोचने की ताकत कमजोर होती जा रही है. अब मैं पहले की तरह लफ्जों को बुन नहीं सकता. □

'नये अंकल' शब्द कानों से टकराने पर मेरी आंखें थोड़ी बेचैनी महसूस करती हैं. नील के ग्राहक, जिन्हें वह दोस्त भी कहती है, पिंकी के लिए 'अंकल' समान हैं. पिंकी के लिए मैं भी एक अंकल हूं.

चेहरे की दोनों ओर बह जाती है. मुझे हैरत होती है. नील रो रही है.

अचानक वह भीगा चेहरा मेरे सामने करती है. भीगी आंखें सीधी ही मेरी आंखों में उतर जाती हैं, ''आपने मुझे खरीदा है. अब सोचना क्या?''

''जिस्म की खोज में मैं यहां नहीं आया.''

''कॉलगर्ल से कोई दिल की उम्मीद नहीं रखता.''

''रो क्यों रही हो?''

''मुझे यहां किसलिए बुलया?''

''किस्मत में शायद...''

''मेरा मजाक उड़ाने?'' मेरे जवाब की परवाह किये बगैर वह बोलती जाती है, ''मैंने शादी के लिए इंकार किया इसलिए? मुझे जलील करने? मुझे अपनी दौलत की ताकत दिखाने?''

''नील!'' मैं उसे रोकता हूं. ''यह तुम्हारी गलतफहमी है.'' आगे बढ मैं डबल बैड पर बैठ जाता हूं, वह मेरे करीब बैठी है. खामोशी उतर आती है. हौले से वह मेरी गोद में सिर रखकर पैर पसार लेती है. देर तक वह चुपचाप लेटी रहती है. मैं उसके घुंघराले बालों से खेलता रहता हूं.

बैरा कॉफी के दो कप के साथ दाखिल होता है. अब नील दीवार की टेक लगाये बैठी है. उसके दोनों हाथों ने घुटनों को बांध रखा है.

''क्या सोच रही हो?'' नये सिरे से मैं शुरुआत करता हूं.''

''जिंदगी के बारे में.'' उसकी आवाज खोयी-सी है, ''कहां जन्म हुआ. कहां पली. क्या बनने के अरमान थे. क्या बन गयी.''

मैं ध्यान से सुनता हूं. मुझे उसकी बातों में दिलचस्पी है. कॉफी का एक कप उठाकर उसके सामने रखते हुए मैं फिर सवाल करता हूं, ''क्या सोचा था?''

''सोचा तो काफी कुछ था. बचपन से ही नर्सिंग की ओर था. लेडी डॉक्टर बनने की इच्छा थी. लेकिन हम सोचते कुछ हैं और किस्मत में कुछ और ही लिखा होता है.

''भारत-पाक का बटवारा हुआ. तब हम लाहौर में रहते थे. लाहौर छोड़ना पड़ा. जहां जन्म हुआ वह जन्मभूमि छोड़ अमृतसर जाती ट्रेन में हम चढ़ बैठे. अचानक पापा को खयाल आया. मम्मी हमारे साथ नहीं थीं. न जाने भीड़ में वह हमसे कब बिछुड़ गयी. ट्रेन चल चुकी थी.

''पापा के साथ मैं दिल्ली आयी. दिल्ली में मेरे अंकल का घर था. हम उनके यहां ठहरे. उनके भरोसे ही हम दिल्ली आये थे. पापा की हालत अजीब हो गयी थी. बीवी की जुदाई वे झेल न सके. दिमागी तौर पर वे बीमार होते गये. आखिर पागल होकर मर गये.

''आर्थिक रूप से मेरे काका ठोस नहीं थे. एस.एस.सी. तक मैं पढ़ सकी. कॉलेज में भर्ती होने के मेरे सपने भीतर ही रह गये. फिर भी मैं निराश नहीं हुई. मैंने नर्सिंग का कोर्स किया और एक सार्वजनिक अस्पताल में भर्ती हो गयी.''

''फिर।''

''फिर.... एक डॉक्टर से प्यार हो गया. मैं बेवकूफ की तरह उसके पीछे पागल बनी थी. मेरे भोलेपन का फायदा उठाकर वह मुझे मद्रास ले आ यहां काफी रंगीनी थी. एक के बाद एक कीमती शराब की बोतलें खुल रही थीं. युवक, युवतियां खु खुलकर पी रहे थे. जिंदगी में पहली बार मैंने व्हिस का स्वाद चखा, इच्छा न होने पर भी मुझे थोड़ी-थो पीनी पड़ी. और उसके कई कारण थे.

''पहला यह कि मेरा बॉय फ्रेंड चाहता था. दूसरा यह कि सभी पी रहे थे तीसरा यह कि मुझे दूसरी युवतियों की तरह दिखावा करना था: नये समाज में नये तरीके से जीना मैं भी जानती हूं. धीरे-धीरे हम बीच का फासला बढ़ता गया. एक साल साथ रहने के बाद मैंने इतना तो जान लिया था कि मेरा बॉय फ्रें मुझे चाहता नहीं. फिर... फिर तो मैं अकेली ही पार्टियों में जाने लगी. मेरे संपर्क बढ़ते गये. बढ़ते-बढ़ते नया रूप लेते गये. मुझे बुलाने के लिए अब पार्टी की जरूरत नहीं थी. बस, थोड़े से नोट और थोड़ी-सी शराब चाहिए.

''शराब की आदत तो मैंने छोड़ दी. लेकिन नोटों को भुलाना मुश्किल था. डॉक्टर को छोड़ने के बाद मैं एक होटल में रूम लेकर अकेली ही रहने लगी. पिंकी मेरे पेट में पल रही थी. और उसके लिए मुझे नोटों की जरूरत थी. आज तक वह जरूरत पूरी नहीं हुई. जब तक पिंकी शादी करके किसी अच्छे परिवा में नहीं चली जाती, मुझे ऐसे ही जीना होगा.''

नील खामोश हो गयी है. उसकी आंखों में खालीपन उतर आया है. उसके सामने वीरानी छल उठी है. उसके चेहरे पर उदासी फैल गयी है.

''नील!'' मुझसे एक सवाल पूछे बिना नहीं रहा जाता, ''अगर तुम्हारी जिंदगी ऐसी ही रही तो पिंकी का भविष्य तुम कैसे सुधार सकोगी?''

''मैं उसे बोर्डिंग स्कूल भेजने की फिराक में हूं. उसके रहने और पढ़ने की व्यवस्था वहां है.''

''सही.'' मैं कहता हूं, ''लेकिन एक दिन तो उसे पता चलेगा ही कि उसकी मां यानी कि तुम कौन हो क्या हो? क्या तुम्हें यकीन है, अपने आपको तुम उसकी नजरों में पवित्र रख पाओगी.''

''क्या करूं?''

''जिंदगी बदल डालो.''

''यह कहना आसान है.''

''और करना भी मुश्किल नहीं.'' मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूं, ''तुम्हारी परेशानी मैं समझ सकता हूं, नील, इसीलिए कहता हूं. तुम्हारी और पिंकी की जिम्मेदारी की फिक्र आज से मेरी है. मेरी दौलत का सही उपयोग हो सके, उससे ज्यादा खुशी की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है?''

नील सोच में पड़ जाती है. वह मेरे सिर पर बोझ बनना चाहती नहीं होगी इसकी मैं कल्पना कर सकता हूं.

"नील!" मैं फिर विनती करता हूं, "मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूं. तुम दोनों को जहां रहना हो वहां रहो. लेकिन सुखी रहो."

नील की जिंदगी नयी धुरी पर चढ़ने की कोशिश कर रही है. जाले के सहारे चढ़ती मकड़ी की तरह वह चढ़ती है. गिरती है. फिर वह नयी कोशिश शुरू कर देती है. उन कोशिशों से झांकती भावनाओं से मैं अनजान नहीं.

रोज शाम हम दोनों मिलते हैं.

नील कहती है: नयी जिंदगी उसे अब तक रास नहीं आयी. मैं कहता हूं: धीरे-धीरे रास आ जायेगी. जिंदगी गलत रास्ते पर चलने के लिए वक्त नहीं लेती, सही रास्ते पर आने के लिए लेती है.

किचन से नील मेरे लिए एक कप चाय लेकर आती है. गर्म-गर्म चाय के मैं घूट भरता हूं. नील फिर कहती है, कभी-कभी उसे ऐसा लगता है जैसे वह किसी बंधन में बंधती जा रही हो. उसकी जिंदगी सिकुड़ती जा रही हो. उसकी सीमाएं मर्यादित होती जा रही हों.

मैं फिर जवाब देता हूं: उन मर्यादाओं में बसी बेतहाशा खुशी को वह एक दिन जान सकेगी. लूट सकेगी. मुझे इसमें जरा भी शक नहीं.

चाय के घूंट पर घूंट भरता हुआ किसी महात्मा की तरह मैं भाषण झाड़ रहा हूं. हजारों की भीड़ मेरे सामने बैठी हो, ऐसा धोखा होता है. शक यह भी है इतनी अकलमंदी मुझमें कहां से आयी?

हम रविवार का कार्यक्रम बनाते हैं. बहुत दिनों से मैं पिकनिक पर नहीं गया. राजू ने भी इस बारे में एक से ज्यादा बार मुझसे शिकायत की है. हम पुंडी डेम जाने का तय करते हैं.

रविवार की सुबह मैं राजू को लेकर नील के घर के नीचे आ पहुंचता हूं. नील खिड़की में तैयार खड़ी है. फौरन वह पिंकी के साथ नीचे आ जाती है. आज उसने गहरे जामुनी रंग की वही साड़ी पहनी है जो मैंने उसके लिए खरीदी थी.

पिंकी को देखते ही राजू रंग में आ जाता है. नील को मैं अपने पास बैठाता हूं. दोनों बच्चे पिछली सीट पर बैठे हैं. कार स्टार्ट होकर गोला-बारूद फोड़ती आगे बढ़ जाती है.

"पापा! पापा!" राजू कह रहा है, "हम मम्मी के साथ पुंडी गये थे, तब आपने कौन-सा गाना गया था?"

अफलातून तेजी से आगे बढ़ रही है. रास्ता खुला और चौड़ा है. कभी रास्ते में गड्ढा आने पर कार के सारे ही स्पेयर पार्ट चीख उठते हैं.

"फिफ्टीन ग्रीन बोटल्स, हैंगिंग ऑन द वॉल..." हकीकत में राजू को यह गीत गाना था इसलिए वह खुद शुरू हो जाता है. "इफ वन ग्रीन बोटल, डेंटली फॉल्स..."

हम सभी एक आवाज में बोल उठते हैं: फोर्टीन ग्रीन बोटल्स..." और कार उछलती, कूंदती, हंसती, गाती आगे और आगे और आगे धंसती जाती है. पिंकी गाते-गाते तालियां बजा रही है. नील चुटकियां बजाकर ताल दे रही है. मैं अपने जूतों से संगीत परोस रहा हूं.

चौड़ी सड़क रेलवे के समानांतर हो जाती है. पीछे से आ रही एक्सप्रेस की सीटी की आवाज हमारे कानों में गूंज उठती है. खटाखट, खटाखट, खटाखट आवाजें करता एंजिन थोड़े से पलों में बाकी डिब्बों के साथ आगे निकल जाता है.

"स्पीड कम क्यों हो गयी?" राजू बोल उठता है.

पिंकी कुछ भी नहीं कहती. मैं ही कहता हूं. "पंक्चर." एंजिन का मोटरमैन हंसता हुआ हाथ हिलाता ट्रेन को दौड़ा जाता है.

हम सभी कार से बाहर निकल चहल कदमी करते हैं. रास्ते के दोनों ओर खेत है. छायादार कुछ पेड़ हैं. नील बास्केट में से चद्दर निकालकर करीब के एक पेड़ के नीचे बिछाती है. फिर आती है. दोनों बच्चों के साथ बास्केट भी खेत में ले जाती है. बच्चों की पिकनिक की शुरुआत यहीं से हो जाती है.

नील फिर मेरे पास आती है. 'जैक' का सहारा देकर मैंने कार थोड़ी-सी ऊपर उठा ली है. टायर के बोल्ट मैं खोल रहा हूं. "मैं कुछ मदद कर सकती हूं?" वह पूछ रही है.

दूर से आती एक फिएट हमारे सामने आकर अचानक रुकने पर मैं चौंक जाता हूं. दनादन कार के दरवाजे खुलते हैं. तीन लड़के बाहर कूदकर नील के पास दौड़े आते हैं.

"हाय मिस लता." पहला कहता है.

"हीईईईईई, मिस लता!" दूसरा कहता है.

"हैलो मिस लता." तीसरा बोल उठता है.

मेरे अचरज का पार नहीं रहता. नील, कभी नील है तो कभी मिस सिमसन, कभी मिस लता है तो कभी मिस घटा.

तीनों नौटंकिये एक साथ झुककर, अपनी फिएट की ओर हाथ बढ़ाकर कहते हैं: "मैम साहब की सेवा में सेवकों की कार हाजिर है."

"ऐ मिस्टर!" मुझसे बर्दाश्त नहीं होता. मैं दहाड़ उठता हूं, "मैं कोई गायब इनसान नहीं."

पहला नील से पूछता है. "यह उल्लू कौन है?"

दूसरा कहता है. "इसने कितने दिये?"

तीसरा तुरंत ही जोड़ता है. "इसके सौदे से हमारा सौ का एक नोट और."

मैं बाहें चढ़ाता हूं. नील मुझे रोककर उन तीनों से कह देती है. "अब मैं मिस लता नहीं रही."

"तब?" तीनों एक साथ बोल उठते हैं.

"मेरा नाम मिस नीलम है."

"लता कहां गयी?" पहला पूछता है.

"मर गयी." दूसरा ही जवाब देता है.

"उसका मुर्दा भी कुछ बुरा नहीं." तीसरा बोल उठता है. और मेरा एक ही मुक्का पड़ने पर वह उछलकर सीधा फिएट के खुले दरवाजे से अंदर धंस जाता है. दूसरे दोनों भौंचक्के रह जाते हैं.

लोग दूर-दूर से दौड़कर आग देखने आ रहे हैं. हजारों की भीड़ इकट्ठी हुई हैं. तमाशा है, यारो. मेरे सुलगते दिल का तमाशा और भीड़ से दूर रेत में बैठा-बैठा मैं सिगरेट के कश ले रहा हूं.

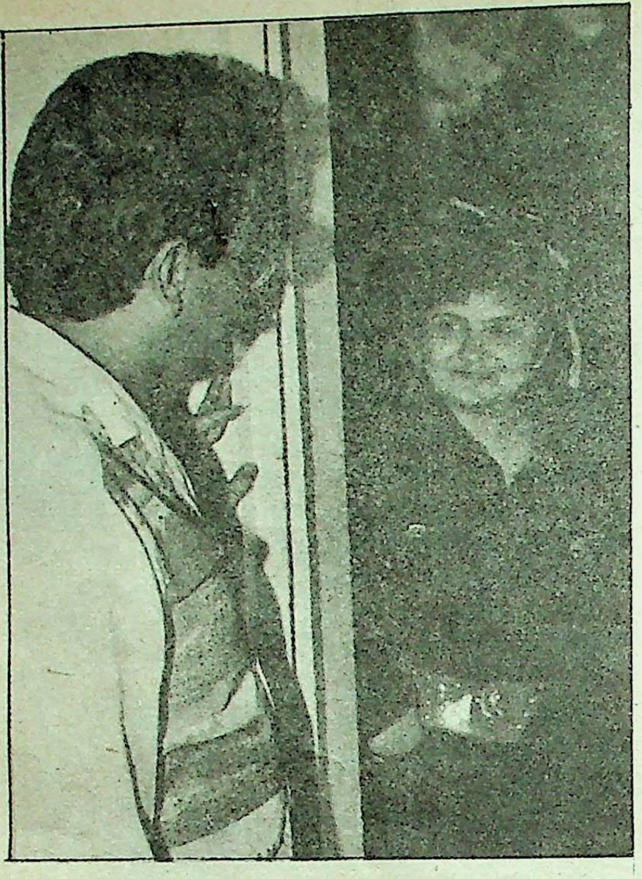

"आई सी." पहला संभलते हुए कहता है, "लड़ना हमें भी आता है."

दूसरा नीचे पड़ा पत्थर उठा लेता है. तीसरा फिएट में से लोहे की सलाख लेकर वापस आ गया है

मनोज! विनोद! फिरोज! नील थोड़ी ऊंची आवाज में उन्हें ललकारती है, "यह तुम्हें शोभा नहीं देता."

"क्या हक था इसे किसी सज्जन पर हमला करने का?" पहला पूछता है.

नील शांति से तीनों को कहती है, "इसे सभी हक हैं."

तीनों फिएट में बैठकर "लांग लिव [illegible]" का नारा लगाते दौड़ा जाते हैं.

"क्षितिज!" दूर जाती फिएट को देख नील कहती है, "मुझे आपकी फिक्र होती है. ऐसे आप बार-बार गुस्सा होंगे तो कोई आप पर हमला कर देगा."

"तो क्या मुझे खामोश बैठा रहना चाहिए?"

"मैं यह नहीं कहती."

"कोई तुम्हें जलील करे और मैं कायर की तरह देखता रहूं. ऐसा तुम्हारा कहना है?"

"आप फिर गुस्सा हो गये हैं."

"तुम्हारी तरह शांत रहना मुझे नहीं आता." नील को मेरी यह बात अच्छी नहीं लगती. उसे जवाब देना है. लेकिन वह चुप रहने में ही अपनी अक्लमंदी समझती है.

हम वापस कार में बैठते हैं. कार पिकनिक स्पॉट की ओर न दौड़ाकर मैं शहर की ओर मोड़ता हूं. फिर भी नील खामोश बैठी रहती है.

राजू और पिंकी चिल्ला रहे हैं.

"पापा! पापा!"

"अंकल!" अंकल!"

दोनों शोर मचा रहे हैं. स्टीयरिंग को काबू में रखने में मुझे काफी तकलीफ हो रही है. फिर भी नील खामोश है. मैं चिल्लाता हूं, "राजू पिंकी!" दोनों बच्चे कांप उठते हैं.

दूसरे दिन मैं अपने सोलिसिटर के ऑफिस पहुंच जाता हूं. इस बार मुझे कोई आलीशान टोटका नहीं आजमाना. अब कि कम से कम पांच सयानों से मशवरा करूंगा और तभी नये धंधे में छलांग लगाऊंगा.

"कहिए मिस्टर, क्षितिज." सोलिसिटर की सिगा बोल रही है, "आज अपॉइंटमेंट के बिना अचानक मेरी याद कैसे आ गयी?"

मैं अपनी नयी योजना पेश करता हूं. मेरा विचा टिनफूड की फैक्ट्री खोलने का है. जिसमें खास कर समुद्री जीवों को टिन के एअर-टाइट डिब्बों में बंद कर देश विदेश एक्सपोर्ट किया जा सके. "आपकी क्या राय है?"

"आपको तजुर्बा है?" मैं 'ना' कहता हूं. सिगार पफ: पफ करती पटरी बदलती है, "मेरी एक बात मानेंगे?"

"कहिए."

"फैक्ट्री के झंझट में पड़ने के बजाय आप एक होटल क्यों नहीं खोलते?"

"होटल?"

"बिलकुल सही. गांधी बीच पर एक प्लॉट खाली पड़ा है. उसका मालिक मेरा क्लाइंट है. उसी ने को शरीफ ग्राहक ढूंढ़ लाने की मुझसे विनती की है."

सच कहूं तो सोलिसिटर का प्रस्ताव मुझे जंच ग है. लेकिन मैं जल्दबाजी करना नहीं चाहता. मुझे अभी और चार सयानों की राय लेनी है. नील शांत स्वभाव की है. मैं उससे सलाह लूंगा. गुणवंत डिटेक्टिव स्वभाव का है. मैं उससे भी मशवरा करूंगा. फिर आइने के सामने बैठक मैं अपने आप सवाल करूंगा. आखिर में राजू के सामने दो उंगलि रखूंगा. एक का मतलब 'हां' होगा. दूसरी का 'ना'.

नील कोई किताब पढ़ती लंबे सोफे पर बैठी है. मेरे चेहरे पर नजर पड़ते ही वह किताब का पन्ना मोड़कर बंद कर देती है. मैं उसके सामने बैठ जाता हूं. एक लंबी उबासी लेकर वह मेरी आंखों में देख है, "आज आपका चेहरा खुशगवार नजर आता है."

"आज मेरे पास एक नया प्रस्ताव आया है. कि अच्छे होटल में बैठकर शांति से सोचें?"

कुछ मिनटों बाद हम कॉर्नर के होटल गीता में चाय पीते बैठे हैं. मैं शुरुआत करता हूं. गांधी बी का प्लॉट और रईसों की बस्ती के बीच ज्यादा फ नहीं. एक छोटा-सा होटल वहां खड़ा किया जाये तो

विदेशी टूरिस्टों के लिए भी वह आकर्षण बन सकेगा.

"पांच तारा एक होटल वहां पहले से है." नील बहस करती है, "उसके अलावा भी कई और होटल वहां बननेवाले हैं."

"हमारे होटल और उन होटलों के बीच थोड़ा-सा फर्क रहेगा." मैं उसे ब्यौरेवार जानकारी देता हूं, "सबसे पहले तो हमारे होटल में रहने की व्यवस्था से अधिक समंदर में मौज-मस्ती करने का प्रबंध होगा. विदेशी टूरिस्ट जो और होटल में ठहरेंगे, वे ही वॉटर स्पोर्ट्स के मजे लेने हमारे यहां सारा दिन गुजारेंगे."

वह कहती है, "आपकी यह योजना प्रैक्टिकल तो लगती है. फिर भी किसी तजुर्बेकार से राय लेने में हर्ज नहीं."

नील का प्रोत्साहन मिलते ही मैं जोश में आ जात हूं, "इस स्कीम के तैयार होने पर तुम्हारे लिए भी काम होगा."

"हलो, मिस सिमसन." लफ्ज कानों से टकराते ही हम दोनों चौंक जाते हैं. बॉक्सर हमारे सामने खड़ा है. वह कब कैफे में दाखिल हुआ और कब से हमारे सामने खड़ा है, यह कहना मुश्किल है. मैं और नील एक दूसरे की ओर देखकर वापस अपनी योजना में मशगूल हो जाते हैं.

"हां, तो आप क्या कह रहे थे?"

"किचन का मैनेजमेंट तुम्हे संभालना होगा. बाद में..."

"सिमसन." बॉक्सर नील से कहता है, "इतनी जल्दी मुझे भूल गयी?"

"मिस्टर." मैं बोल उठता हूं, "आपसे कोई भूल हुई है."

"भूल?" बॉक्सर चौंकता है.

"सही. यह मिस सिमसन नहीं, नील हैं." कहकर मैं नील की ओर मुड़ता हूं.

"ओह नो!" बॉक्सर की आवाज थोड़ी ऊंची हो जाती है, "मिस सिमसन की रगरग से मैं वाकिफ हूं. यह मेरी गर्लफ्रेंड है."

"एक मिस्टर!" नील नया धमाका करती है, "ये मेरे पति हैं और मैं नीलम हूं. नीलम."

मैं करीब की टेबलवाले सज्जनों को संबोधित कर कहता हूं, "बेचारा... प्यार का मारा कोई मंजनू है. हरेक औरत में उसे अपनी लैला नजर आती है."

"नो.नो.नो." बॉक्सर अपनी बाहें चढ़ाता है.

"बैरा!" मेरी आवाज सुनकर तीन बैरों के साथ मैनेजर भी दौड़ आता है. "इन महाशय को जरा समझाकर बाहर ले जायें. वरना..."

तीनो बैरे उसे तीन ओर से जकड़ लेते हैं. बॉक्सर का चेहरा आग उगलता है. लेकिन वह लाचार है. तीनो बैरे उसे कसाई की गाय की तरह घसीटने लगते हैं. वह चिल्लाना शुरू करता है. "मैं पागल नहीं... इस चुड़ैल को मैं अच्छी तरह पहचानता हूं... यह, यह... कॉलगर्ल है. वेश्या है. मेरी सुनो... कोई तो मेरी बात..."

दरवाजे से बाहर फेके जाने पर उसके शब्द बीच में ही टूट जाते हैं. हमारे लिए अब यहां बैठना मुमकिन नहीं. लोग नील की ओर शक भरी निगाहों से देख रहे हैं. नील के जिस्म को नजरों से कुरेद रहे हैं.

बैरे को बिल चुकाकर हम बाहर निल जाते हैं. सीधी फुटपाथ पर एक भी लफ्ज बोले बगैर कुछ कदम भरते हैं. आज की घटना ने फिर एक बार हमें खामोश कर दिया है. ढलते सूरज ने हमारे चेहरों पर कालिख पोत दी है. न जाने हमें कौन से जन्म में शांति मिलेगी? न जाने हमारी किस्मत में कहीं सुख लिखा है या नहीं? न जाने...

आह!

अचानक एक चाकू मेरे पेट में उतर जाता है. मैं दोनों हाथों से पेट पकड़ लेता हूं. नील के गले से चीख निकल जाती है. छलांगें भरता बॉक्सर एक गली में दौड़ जाता है.

मेरी आंखें खुलती हैं. मेरे पेट पर पट्टियां बंधी हैं पलंग पर मैं खामोश लेटा हूं. नील मेरे पास बैठी है. मेरे चेहरे को एकटक देख रही है. मेरी आंखें खुलते ही उसकी आंखें चमक उठती हैं. तुरंत ही वह दवाई की शीशी खोलकर मुझे पानी के साथ एक गोली निगल जाने को कहती है.

मैं उसके घर की दीवारों को देख कुछ कहने की कोशिश करता हूं. कहने के लिए मुझे कोशिश करनी पड़ती है. नील मुझे खामोश लेटे रहने को इशारा करती है. मैं मौन धारण कर लेता हूं.

एक हफ्ता बीत जाता है. अब मैं चल-फिर सकता

हूं. नील के साथ बैठकर ताश खेल सकता हूं. बाल्कनी में खड़ा होकर रास्ते की चहल-पहल में दिलचस्पी ले सकता हूं. बच्चों के साथ शरारत कर सकता हूं. फिर भी नील कहती है अभी मैं पूरी तरह ठीक नहीं हुआ.

एक दिन मैं उससे कहता हूं, "हम मेरे घर रहने चलें."

"क्या, यह घर नहीं?" नील सामने सवाल करती है.

"यह घर है पर तुम्हारा नहीं."

"किसका है?"

"मिस सिमसन का. मिस लता का. मिस घटा का है." मैं शांति से जवाब देता हूं, "और तुम नील हो."

"और नील कौन है?"

"मेरी दोस्त?"

"नील सिर्फ आपकी नहीं, कइयों की दोस्त है. मैं जहां भी रहने जाऊंगी, मेरे दोस्त मुझे ढूंढ निकालेंगे.

एक ही सांस में बोलकर वह भीतर के कमरे में दौड़ जाती है. दोनों हाथों से सिर पकड़कर मैं वापस बाल्कनी में बैठ जाता हूं.

दिनों दिन हमारे झगड़े बढ़ते जाते हैं. नील मेरी एक भी बात मानने को राजी नहीं. नील के साथ सुलह करने की मेरी भी मर्जी नहीं. अब तो हम छोटी-छोटी साधारण बातों में उलझ जाते हैं.

मेरे घाव की पट्टियां खुल गयी हैं. अब मैं सीढ़ियां उतर सकता हूं. रास्ते पर वॉक ले सकता हूं. मैं अकेला नीचे आया हूं. आज मुझे अकेले थोड़ी-सी वॉक लेनी है. मैं थोड़ी-सी तनहाई चाहता हूं. अकेले में सारे झगड़ों का ढेर सुलगाकर मुझे नयी जिंदगी के बारे में सोचना है.

मुझे अंजु याद आती है. न जाने क्यों याद आती है. बस, याद आ जाती है. मैं कभी उसके चिड़चिड़े स्वभाव के बारे में उससे शिकायत करता था. वह चुपचाप सुन लेती थी. कभी वह गुस्सा होकर आग उगलती थी. आज मैं भी उन्हीं हालातों का शिकार हो गया हूं.

कॉर्नर की बुक-स्टॉल के पास आते ही मेरे पैर रुक जाते हैं. बिना वजह मैं किताबों के टाइटल पर नजरें दौड़ाता हूं. पेपरबेक और हार्डकवर की कई डिजाइनें मेरी आंखों के सामने हैं. मेरी नजर एक पॉकेट बुक के टाइटल पर टिक जाती है. किताब किसी भारतीय योगी की लिखी हुई है. मन की उलझनों को दूर करने के उसमें सरल उपाय दिये गये हैं.

ज्यादा सोचे बिना मैं वह किताब खरीदकर घर वापस आता हूं. नील शायद किचन में होगी या बाथरूम में. आया बच्चों को लेकर कहीं बाहर गयी है. मैं किताब पढ़ना शुरू करता हूं. इसमें योग के कई आसन दिखाये गये हैं. खासकर मन को शांति देनेवाले आसन का चैप्टर गौर से पढ़कर मैं फर्श पर लेट जाता हूं. किताब में ऐसे ही लिखा है.

●

चाय के घूंट पर घूंट भरता हुआ किसी महात्मा की तरह मैं भाषण झाड़ रहा हूं. हजारों की भीड़ मेरे सामने बैठी हो ऐसा धोखा होता है. शक यह भी है : इतनी अकलमंदी मुझ में कहां से आयी?

तब मुझे खयाल आता है, इसमें कपड़े पहनकर लेटने के लिए नहीं कहा गया. मैं अपने सारे कपड़े उतारकर सिर्फ अंडरवियर में फर्श पर लेट जाता हूं. दोनों हाथ मेरे शरीर से छह इंच दूर रखता हूं. मेरे दोनों पैरों के बीच एक फुट का फासला है. मेरी आंखें बंद हैं. अब?

मैं बैठकर फिर किताब खोलता हूं. फिर एक बार चैप्टर पर सरसरी निगाह डालता हूं. लेकिन फिर एक बार मैं लेट नहीं पाता. नील हैरत से मेरे जिस्म को देखती सामने खड़ी है.

"यह क्या?" उसके होंठ खुलते हैं.

"योग." मैं जवाब देता हूं, "हजारों साल-पुराने अपने इस शास्त्र में तन और मन की शांति के उपाय दिये गये हैं."

बस, मुझे और कुछ कहने की जरूरत नहीं लगती. फर्श पर वापस लेटकर मैं अपनी आंखें मींच लेता हूं.

डोर बैल बज उठती है. मैं अपनी एक आंख खोलता हूं. नील मुझसे सारे कपड़े झटपट पहनने के लिए विनती करती है. मैं दूसरी आंख भी खोलता हूं. वह कहती है—आया वापय आयी होगी. शायद कोई और भी हो.

मैं सारे कपड़े जल्दी से पहन लेता हूं. नील दरवाजा खोलती है. "गंगाराम!" और बोल उठती है, "यहां कैसे आना हुआ?"

मेरे खयाल से गंगाराम किसी करोड़पति का नौकर है और कोई संदेशा लेकर इस वक्त आया है. नील से वह दबी आवाज में बातें कर रहा है.

मैं सिर्फ एक ही जुमला सुन पाता हूं, "गंगाराम! तू जा. मैं आ जाऊंगी."

गंगाराम जा चुका है. नील मेरे सामने खड़ी है. लाचार नजरों से वह मेरे सामने देख रही है. "क्षितिज", दबी हुई आवाज उठती है, "मुझे जाना पड़ेगा."

मेरा दिमाग चकरा जाता है.

"नहीं, मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगा."

"आप मुझे रोक नहीं सकते, क्षितिज!" वह ठंडे कलेजे से जवाब देती है. "आज मेरा जाना जरूरी है."

नील तिपाई पर पड़ा अपना पर्स उठाती है और मेरी ओर देखे बगैर बाहर निकल जाती है.

~~थोड़ी देर~~ बाद साड़ी बदलकर वह मेरे सामने ~~आती है~~ और सोफे पर ढह जाती है. उसका चेहरा गंभीर है. "क्षितिज" बेदर्द खामोशी के कुछ लम्हों के बाद उसके होंठ कांपते हैं, "मिस्टर साहनी का स्वर्गवास हो गया."

मैं खामोश रहता हूं. मुझे किसी की मौत से दिलचस्पी नहीं. मुझे किसी की जिंदगी में भी अब रस नहीं रहा.

"उनकी इच्छा पिंकी को देखने की थी. आखिरी नजर पिंकी को निहारने की थी. वह... वह अधूरी रह गयी." कड़ाके के साथ बिजली चमकते ही खिड़की के शीशे रोशन हो उठते हैं. मेरे जिस्म में जान आती

है. मेरी आंखें खुल जाती हैं. मैं बैठा हो जाता हूं.

"क्षितिज. पिंकी के पापा का देहांत हो गया." आखिरी जुमला कहकर वह दीवार को ताक रही है. फिर खामोशी से छलकता एक दौर हमारे बीच फैल जाता है. काफी देर तक वह दीवार को घूरती खामोश बैठी रहती है अंधेरों से भरा आसमान बरसता रहता है.

"नील." मैं खामोशी तोड़ता हूं, "तुम शादी शुदा थी?"

वह 'ना' कहती है, "फिर भी मिस्टर साहनी पिंकी के पिता थे. मिस्टर साहनी... जिनके साथ मैंने नर्स का काम किया था, जिनके साथ मैं फरार होकर मद्रास आयी थी. उनके साथ मैंने सभी रिश्ते तोड़ दिये थे.फिर भी मैं उनकी आखिरी ख्वाहिश ठुकरा न सकी. वास्तव में में वे मुझे आखिरी बार मिलना चाहते थे. मैं उनके अपार्टमेंट पहुंची और उन्होंने दम तोड़ दिया." कहते ही नील क़ी आंखों में वीरानी उतर आती है.

"मिस्टर साहनी को तुम चाहती थी?"

"मैं... मैं किसी को नहीं चाहती. आपको प्यार करने के बाद सब कुछ भूल जाना चाहती हूं. आपसे नाता जोड़ने के बाद सभी रिश्ते मैंने तोड़कर चूर-चूरकर डाले हैं. फिर भी भूतकाल सामने आ जाता है. क़दम-क़दम पर टकराता है. न आप बर्दाश्त कर सकते हैं न मैं. मैं जानता हूं, आपको कितना दुख होता होगा. मेरी भी हालत वही है, क्षितिज."

"तुम्हारी बात सही है, नील." मैं होशोहवास में बात कर रहा हूं, "आज मैंने फैसला कर लिया है."

"कैसा?"

"इस घर को छोड़कर चले जाने का."

"कहां?"

"कहीं... दूर. जहां तुम होगी, तुम्हारा भूतकाल न होगा. जहां मैं होऊंगा. अपने बच्चे होंगे. तुम साथ आओगी न?"

"नहीं क्षितिज." वह भरोसे के साथ कहती है. "मैं यही रहूंगी. और एक दिन... एक दिन नया जन्म लेकर आपके पास चली आऊंगी. उस जन्म के साथ भविष्य होगा. भविष्य के सपने होंगे. आप होंगे. राजू होगा. पिंकी होगी."

शायद नील सच ही कहती हो! उसका भूतकाल जब तक जिंदा है, उसका मेरे साथ रहना ठीक नहीं. उसके लिए नहीं. मेरे लिए भी नहीं. सूरज की किरणों के निकलने के साथ घर में फिर एक बार गहरी उदासी घिर आती है. नील का मकान छोड़कर आज मैं अपने घर जानेवाला हूं. इस बात का दुख जितना मुझे है उतना उसे भी है.

नील आज अपने हाथों से ही नाश्ते की टेबल सजाती है. हम सब साथ बैठकर नाश्ता करते हैं कोई एक भी शब्द बोलता नहीं. कोई कुछ कहता नहीं. बच्चे भी खामोश हैं.

"पापा! पापा!" पिंकी खामोशी तोड़ती है. "पापा. पापा." राजू खामोशी तोड़ता है. दोनों पूछ रहे हैं. "इतवार को हम कहां चलेंगे."

पिछले एक महीने से उन्हें मैं कहीं ले जा न सका. नील भी घर से बाहर निकली नहीं. मुझे आज बिलकुल तंदुरुस्त और तैयार देख वे दोनों यह सवाल करें यह बिलकुल मुनासिब है.

"नील." जाने से पहले मैं उससे एक विनती करता हूं, "अगर तुम राजी हो तो मैं पिंकी को अपने साथ लेता जाऊं."

नील आंखें उठाकर मेरा चेहरा देखती है. मैं उसकी आंखों में उभरते आंसू देखता हूं. जैसे कह रहे हों—एक ही सहारा है, जीने का.वह भी छीन लोगे?

मैं उसे समझाता हूं. पिंकी मुझे पापा कहकर पुकारती है, मेरे साथ राजू जितनी ही घुल मिल गयी है. उसे मैं अपने राजू के साथ रखूंगा. राजू के साथ पाल-पोसकर बड़ी करूंगा. उसे पढ़ाऊंगा, लिखाऊंगा. उसकी इच्छा होगी तो मैं उसे कॉलेज में भी भेजूंगा. "डॉक्टर बनने के अपने अधूरे सपनों को तुम खुद उसमें आकार लेते देखोगी. फिर... फिर अच्छे सुसंस्कृत परिवार के लड़के से उसकी शादी रचाऊंगा. तुम भी यही चाहती हो न?"

मेरे सीने पर सिर रखकर वह खुलकर रो पड़ती है. मैं उसकी पीठ थपथपाता हूं. उसे दिलासा देते हुए कहता हूं, "नील, मैं कोई ज्यादा दूर नहीं जा रहा. अपने घर ही जा रहा हूं. जब तुम्हारी इच्छा हो तुम पिंकी से मिलने चली आना."

"पापा. पापा." राजू कहता है. "पापा. पापा." पिंकी पूछती है. "आज हम कहां जा रहे हैं?"

मैं राजू को समझाता हूं—आज हम अपने घर जा रहे हैं. पिंकी भी हमारे साथ आयेगी. "पिंकी. तुझे राजू का साथ पसंद है?"

"राजू. राजू." कहती पिंकी तालियां बजाती है. उसकी खुशी की सीमा नहीं.

"पिंकी. पिंकी." राजू भी खुश हो जाता है. अब उसे भी घर में अकेले जिंदगी बितानी नहीं पड़ेगी.

दरवाजे से बाहर आते ही नील पिंकी को उठाकर सीने से चिपका लेती है. उसके गाल, होंठ, गले, माथे पर आंसुओं से भीगे कई चुंबन बरसा देती है.

हम नीचे आकर रास्ता पार करते हैं. मेरी अफलातून कई दिनों से हमारा इंतजार करती फुटपाथ के पास खड़ी है. बारिश के पानी ने उसे धोकर साफ कर डाला है. सड़क भी धुली हुई और टुकड़ों-टुकड़ों में भीगी लगती है.

अफलातून में बैठने से पहले मैं उंगली उठाकर पिंकी का ध्यान ऊपर की ओर दौड़ाता हूं. नील बाल्कनी में खड़ी है. पिंकी हाथ हिला रही है. राजू अपने दोनों हाथ उठाकर लहराता है. पिंकी भी अब अपने छोटे-छोटे दोनों हाथ दिखाती है.

मैं अगली सीट पर बैठता हूं. दोनों बच्चे मेरे पास ही बैठे हैं. अफलातून को मैं स्टार्ट करता हूं. पहले एक बड़ा धमाका होता है और फिर गोला-बारूद फौड़ती हमारी अफलातून आगे बढ़ जाती है. □

●

गुजराती से
अनुवाद:
नंदा शर्मा

●

छायाकार
पवन महेंद्रू

मॉडल
क्षितिज
जे.डी. बिरला

नील
असलम

अंजू
सरोज अरोड़ा

पिंकी
बेबी मासी

राजू
मास्टर राजू

गुणवंत
सी.एल. अरोड़ा

एक आदमी
अश्विनी कुमार

जिज्जी

विधवा का जीवन एक प्रार्थना की तरह है जो सत्य को अपने भूखे प्यासे रक्त से सींचती है. लेकिन जिंदा रहना किसी प्रार्थना की तरह जरूरी भी होता है क्योंकि आग की जलन आग से ही शांत होती है...

वरिष्ठ कवि-कथाकार रामेश्वर शुक्ल अंचल के जीवन के पचहत्तर वर्ष पूरे होने पर प्रस्तुत है उनकी एक अविस्मरणीय संस्मरण कथा... और एक कविता.

□ रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

जन्म: 1915

प्रमुख कृतियां: 'तारे', 'ये वे बहुतेरे' तथा 'कुंवर की दुलहिन' कथा-संग्रहों सहित चार कथा संग्रह. 1931 से निरंतर लेखन रत. अब तक चार उपन्यास, चार खंडकाव्य, सोलह कविता संग्रह, चार संस्मरण व संस्मरण कथा-संग्रह, एक व्यंग्य संग्रह, एक पत्र संग्रह, दो आलोचनात्मक निबंध संग्रह सहित लगभग चालीस कृतियां.

विविध: दो विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर (हिंदी), विभागाध्यक्ष व डीन रह चुके हैं. हिंदी की दलगत शिविरबद्धता से दूर अंचलजी मानते हैं कि रचनाकार का जीवन उसके निधन के उपरांत प्रारंभ होता है.

उम्र के छियत्तरवें वर्ष में प्रवेश.

सम्मान: जबलपुर विश्वविद्यालय से मानद डी. लिट., मध्य प्रदेश शासन साहि. परिषद, उ.प्र. हिंदी संस्थान, नागरी प्रचारणी सभा काशी और मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति की ओर से सम्मान व अभिनंदन.

संपर्क: पचपेढ़ी, दक्षिणी सिविल लाइंस, जबलपुर, (म.प्र.)

विधवा होकर जिंदा रहना कितना जोखिम भरा होता है— हुलसकर स्वाहा होने जैसा! विधवा का जीवन एक प्रार्थ तरह है जो सत्य को अपने भूखे प्यासे रक्त से सींचती है. जिंदा रहना किसी प्रार्थना की तरह जरूरी भी होता है क्योंकि आग जलन आग से ही शांत होती है. मैं मानता हूं जो न कहा जा सके उसे कहना चाहिए. पर यह आत्मखंड लिखने की प्रेरणा लपट की तरह भीतर उठ रही है. प्रश्नाकुलता की अदम्यावेग पहाड़ी सरिता उमड़न मुझे घेरे है. बहुत से तीक्ष्ण प्रश्न ऐसे भी होते हैं जिन्हें भाषा मिलती. जीवन की जड़ों को सींचनेवाला, विश्वास की फुनगी-फुनगी पिघला द्रव जम भले जाए पर मूकता की उन टपकनों को अपने बहा नहीं पाता. सोचता हू कि जिसे रचना की रेखाएं न कह पायीं हों यह सार्थक शून्य आजीवन क्या धोता मांजता नहीं रहा? शब्दहीनता में क्या मृत्यु और प्रसव दोनों की दंशन-भरी पीड़ा नहीं? जीवन की गहरी आस्था से जुड़ा यह आत्मभोग लिखे बिना आज नहीं जाता. यह सब लिखने की सिरमुंडी चीवरा जैसी तरप्र नहीं हो सकता है तुम वहा चली जा चुकी हो जहा से फिर कोई लौटता नहीं पर मेरा अंत: करण कहता है तुम इस इस संसार में हो—वैसी ही निर निरभ्र तारिका जैसी जो टूटना भूल चुकी है.

अर्थाभाव से पीड़ित मैंने जब तुम्हारे यहा बीस रुपये महीने ट्यूशन पाया तो पढ़ाई की समस्या हल हो गयी. तब तक छपी छै-सात कहानिया पढ़कर प्रभावित हो उठे एक सज्जन ने मुझे तुम्हारे पिता से मिलाया था. मुझे डेढ़ घंटे रोज तुम्हारे छोटे भाइयों को पढ़ा था. यहीं से शुरू हुआ मेरे जीवन का यह विस्मय भरा अध्याय जो भी नया लगता है. धीरे-धीरे मुझे तुम्हारे स्नेह संपर्क में आने का अव मिला. तुम्हारे पिता सचिवालय से अवकाश ले चुके थे. तुम उनकी प संतान थीं. दो छोटी बहनें भी थीं—छह और आठ वर्ष की. तुम्हारे तुम्हारी गोद में एक कन्या छोड़कर तुम्हें लगभग बालविधवा छोड़ थे. मां ने इसके बाद भी प्रजनन-क्रिया जारी रक्खी. तुम्हारी छोटी ब तुम्हारी पितृहीन पुत्री से बरसों छोटी थीं. मां के गर्भधारण से लेकर प्र तक तुम्हीं ने सब संभाला था—पिता का यह गृहस्थ धर्मपालन देखा निबाहा था. जवान विधवा बेटी से अपनी सोवर कराते समय दै परिपूर्ति से लाचार, लज्जा से अधमरी मां का ग्लानि भरा सं भी तुमसे छिपा न रह पाता था. वैधव्य उन दिनों (कमोबेश आज नारी नियति की अनिवार्य गति ही नहीं जीवनव्यापी निग्रह आत्मदमन भी था—एक नित्य उत्फुल्ल होते जीवित अंग को काट फेंक देने जैसा.

घरवालों का तुम्हारे प्रति आदर प्रेम था. तुम्हारी पुत्री पर सब ममता थी. मां द्वारा संतानों के जन्म से लेकर भाइयों की देख-रेख व्यवस्था तुम्हीं पर थी. मातृहीन चचेरे छोटे भाई भी साथ रहते थे. प्रकार से सुखी दो चचेरी बहनें भी नित्य नये दुधमुंहे बच्चों से गोद अपने स्वस्थ युवा पतियों के साथ आती रहती थीं. इन सबके कर्म-कोलाहल से भरी तुम्हारी जिंदगी का नीरस चक्र सधी गति चलता था. तुम्हारे अप्रसाधित शुष्क शीर्णतन और तपे मन की ए पीड़ा सभी को कचोटती थी.

जब-तब तुम्हें हिस्टीरिया के दौरे पड़ते थे. दांत इस कदर भिंच जाते कि लोहे की संड़सी से खोलने पड़ते थे. मुहल्ले में बड़े बाबू के नाम से जाते एक बलिष्ट युवक आते थे और उसे तुम्हारें दांतों के बीच बलपू डालकर उन्हें अलग करते थे—तब तुम्हें तन-बदन की सुधि आती महीने पंद्रह दिन के लिए सभी कुछ फिर सामान्य हो जाता था. तुम प्रकार मुझसे भाइयों की पढ़ाई के बारें में बातें करतीं. यही नहीं बेटी को भी भाइयों के बीच मेरे पास बैठने और पढ़ने के लिए कहतीं. तुम्हारें पिता उसे स्वयं भी पढ़ाते थे. चाय पीना तब तक मैंने न सीखा पढ़ाते समय मुझे नाश्ता, पानी, शरबत, पान, जर्दा सभी कुछ जाता था. माधुर्य से वत्सल तुम्हारी कृपा का ही प्रसाद समझकर

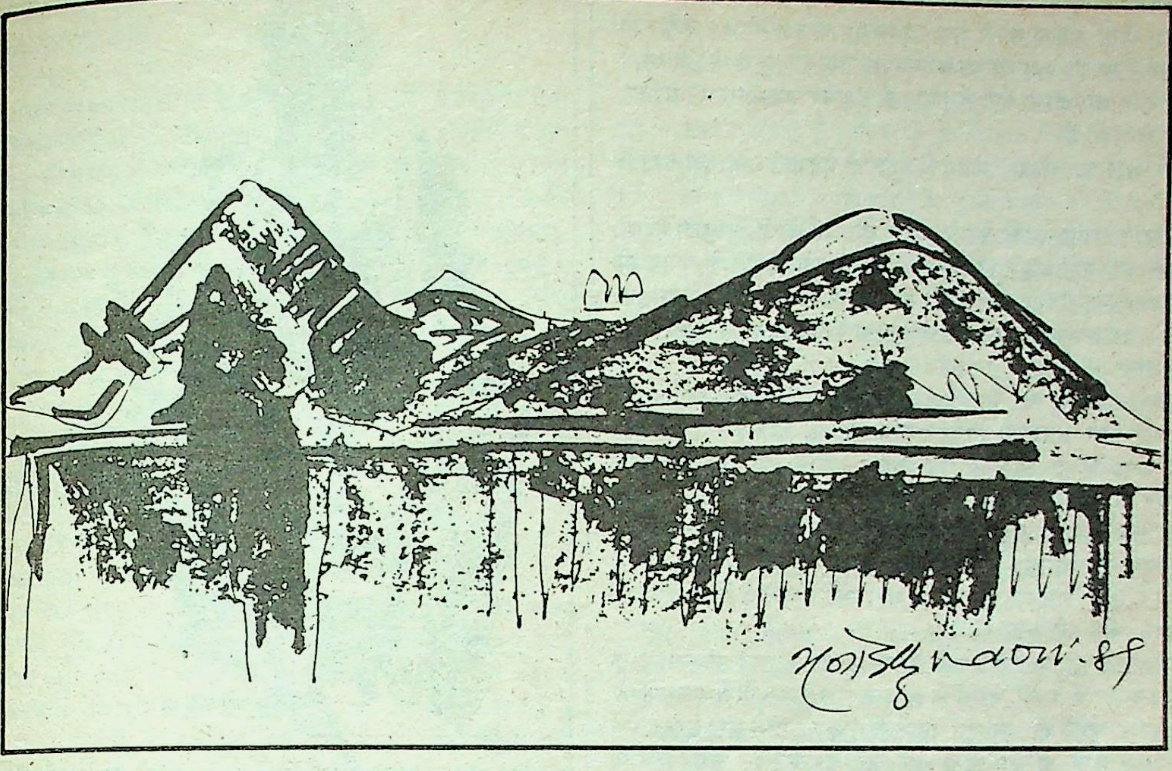

पुलकित हो उठता था. दूसरों पर विश्वास सहजता से कर लेना तुम्हारे परिवार की विशेषता थी, यह मुझे जल्दी ही विदित हो गया.

जब-तब तुम पढ़ाते समय मेरे पास आकर बैठ जातीं. पहली बार ही जब तुम्हें देखा तो मुझे लगा था तुम उनमें हो जिन्हें एक बार देखकर भुलाया नहीं जा सकता. तुम्हारे हृदय में वह अपनत्व-भावना थी जो किसी को भी बांधे रह सकती थी. आज तो जीवन के चित्र-विचित्र अनेक अनुभव मेरे पास हैं—स्मृतियों में रचे-पचे हैं. पर तुमने ही पहली बार अपने पास बैठने देकर और बातें कर मुझे मेरे अपने पुरुष होने का मान दिया था—भले लजीला होने के कारण में अपने को भली भांति प्रकट न कर पाता रहा होऊं. तुम्हारे व्यवहार ने मेरे भीतर आत्मविश्वास की ज्योति जगा दी. अपने विरक्त विचारों और शून्य कल्पनाओं में जीनेवाली तुम जैसी स्निग्धता से भरी भली नारी के मन में क्षुद्रता, लालच, ईर्षा, घृणा और अलगाव के अहं भरे विचार कभी आ ही नही सकते. आज समझ में आता है कि सच्चा स्त्रीत्व यही है. जिस दिन तुम मुझसे बोलतीं—मुझे स्वयं से बाहर उभारकर मेरी झिझक दूर कर देतीं उसी दिन मैं जैसे एक मधुर लय में गूंजता रहता. विश्वविद्यालय की कक्षाओं में रस मिलता—एक विचित्र आत्मसंतुष्टि मिलती. जीवन में पहली बार ट्यूशन किया था. यों भी मन में एक नया उत्साह था: तुम्हारी सरल पूर्णता ने कुछ ऐसा कर दिया कि में पढ़ाता ही रह जाता. अक्सर तुम्हें आकर कहना पड़ता, "आज क्या आपको घर नहीं जाना है?" मैं अपने में लौटकर कहता, "बस जा ही रहा हूं जिज्जी!" घर भर तुम्हें जिज्जी कहता था. मैं भी कहने लगा था. तुम मुझसे दस वर्ष बड़ी थी हीं, भले वैधव्य ने तुम्हें मन की सारी प्रौढ़ता के बावजूद तन का कैशोर्य ही अधिक दे रक्खा था.

एक दिन मेरे पढ़ाते रहते समय हलचल मच गयी. तुम्हारे पिता घर पर न थे. तुम्हें 'फिट' आ गया था. मां के आवाज देने पर छोटा भाई बड़े बाबू को बुलाने गया, पर वे शहर के बाहर थे. तुम्हारी मां की घबराहट की सीमा न थी. "मास्टरजी, मैं क्या करूं! पूजा के कमरे में पड़ी है!" कहती हुई लोहे की संसी हाथ में लिये वे मेरी ओर असहाय दृष्टि से देखने लगीं.

मैंने कहा, "आप कहें तो मैं चलकर देखूं." उन्होंने सहारा पाया. संसी मेरे हाथ में देते हुए बोलीं, "भीतर चलिये. देखिये, इस अभागिन का कष्ट."

पूजा के कमरे में तुम भूमि पर पड़ी अजीब ढंग से छटपटा रही थीं. जया चाची का फिट मैंने देखा था. 'फिट' की विरूपता से परिचित था. पर तुम अजीब ढंग से छटपटा रही थीं. मां पास बैठकर तुम्हारे बेतरतीब पहनावे को ठीक करने लगीं—ऊपर के बिलकुल उघड़े हिस्से को ढांककर. चौड़े लाल पाट की तुम्हारी पूजा की कोसे की साड़ी में अजीब ढंग से छटपट करते तुम्हारे शरीर को संभालने लगीं. धनुष की तरह तुम ऐंठ-ऐंठ जाती थी—मुट्ठी वज्र की तरह सख्त, भवें सिकुड़ी हुई. दांतों के जकड़कर बैठने के पहले निकला, होंठों के पास लगा फेन मां ने अपने आंचल से पोंछ लिया.

मैंने पूछा, "स्मेलिंग साल्ट है?"

मां ने सजल कंठ से कहा, "उससे कुछ नहीं होता. बिना संसी के दांत घंटों नहीं खुलते."

मैंने कहा, "आप शीशी सुंघाती रहिये, मैं संसी से दांत उघाड़ूंगा. होश आयेगा."

मैंने बल लगाकर दांत हुमास दिये, मां की गोद में पड़े तुम्हारे चेहरे की विकृति दूर होकर वही कमनीय अशांति लौट आयी थी. इतनी जल्दी दांत कभी पहले खुले न थे. छाती का जल्दी-जल्दी फूलना-सिकुड़ना देह के विकार के दूर होते जाने का द्योतक था. पर तुम्हारी बुदबुदाहट, चीत्कार जैसी लगती थी. तुम बड़बड़ा रही थी, "कैसे दूर होगा हे भगवान! मन का यह पाप..."

मैंने वहां अधिक रुकना ठीक न समझा. जिज्जी का नारी-जीव किसी अव्यक्त यंत्रणा से जूझ रहा है. मैं उसे क्यों देखूं-सुनूं-साक्ष्य दूं? मां से सिर पर यू डी कोलोन से भीगा कपड़ा रखने को कहकर चला आया. छोटी बहनें, बेटी, भाई सब वहां आ गये थे. तुम्हारे शब्द मेरे भीतर उत्कंठा पैदा कर रहे थे. पढ़ाना वहीं खत्म कर मैंने साईकिल उठायी. किस वेदना ने तुम्हें बिद्ध कर रखा है मैं समझ न पाता था. नारी तन के दमित आवेग से अलग यह कुछ और है—इतना मुझे बराबर लगता रहा.

दूसरे दिन ही तुम्हारा स्वभाव बदल गया. तुम्हारा व्यवहार वैसा सहज, सदा जैसा अकेलेपन से भरा सान्निध्य लिये न रहकर कठोर हो गया. पढ़ाकर जा ही रहा था कि तुमने मुझे रोककर गुस्से के तमतमाये आवेश में कहा था—बिना मेरी अनुमति के तुम मेरे पूजा के कमरे में किस अधिकार से आये थे.

मैं सहम उठा था. बोला, "आपकी मूर्छा से घबराकर मां मुझे बुला ले गयी थीं."

"मेरी मां सरल है—सभी पर विश्वास कर लेने वाली. तुम्हारा इरादा अच्छा नहीं था. मुझे अधखुली अस्त व्यस्त देखना चाहते थे. पुरुष की खुली कामना क्या मैं समझती नहीं! तुमने मेरी देह का स्पर्श किया. मां मौजूद थी—वरना तुम न जाने क्या करते! चले जाओ यहां से—तुमने मेरे स्नेह की हत्या की है...!"

मैं स्तंभित रह गया था. जी में आया कि कुछ करारा सुनाकर विदा लूं पर मुझ पर जैसे अनहोनी विचित्र स्तब्धता छा गयी हो, इस प्रकार चुपचाप चला आया. क्षोभ से मन विद्रोह करता रहा. कई दिन तक तुम्हारे घर के सामने की सड़क से भी नहीं निकला.

पांचवें दिन तुम्हारा भाई सुशील यूनिवर्सिटी में मुझे तलाशता मिला. मेरा घर तुम्हारे यहां कोई न जानता था. बोला, "आप क्यों नहीं आये? जिज्जी ने भेजा है. तबीयत ठीक है या नहीं यही जानने के लिए. रोज की तरह पढ़ाने आने को कहा है."

मैं शाम को पहुंचा तो सबसे पहले तुम्हीं बरामदे के बगल के पढ़ानेवाले कमरे में मिलीं. गालों के आंसू के दाग सूख चुके थे—आंखों की लाली कुम्हला चुकी थी. पर मुझे देखते ही तुम्हारी सांस असाधारण रूप से तेज चलने लगी. मैं चुप खड़ा रहा. जरा देर के लिए कमरे में ऐसी प्रगाढ़ नीरवता कि सुई गिरने की आवाज तक सुनायी दे.

तुम बोलीं, "आपने पढ़ाने आना छोड़ दिया? मुझ पर नाराज होकर!"

"हां—आपने ही तो चले जाने को कहा था."

"मैं कहूं और आप पढ़ाने भी न आयें?"

"आपकी बात कैसे न मानूं? जिसके लिए आदर हो उसकी...."

"नहीं-नहीं. आप मेरी कोई ऐसी बात न सुनें—आप आते रहिये—पढ़ाते रहिये. कहिये, आप यहां आना, पढ़ाना नहीं छोड़ेंगे."

मैं क्या जवाब दूं—कुछ नहीं सूझा था.

तुमने फिर कहा था, "आप आना मत छोड़िये. मैं बड़ी हूं पर मुझसे कसूर हुआ. आइये! जरूर आइये." रुलाई से जैसे तुम्हारा पूरा गला भर आया था.

मेरे आकर बैठते ही तुम जैसे अचानक आयी थी वैसे ही अचानक चली गयी. मेरे सामने आना तुमने छोड़ दिया. जैसे मेरे तुम्हारे बीच एक दीवार खड़ी हो गयी हो. यथार्थ से अधिक सपनों में घूमनेवाला मेरा मन कुछ चकित भले हुआ हो पर दैनिक कर्म-चक्र में और उससे उबरकर अपनी कल्पनाओं में सार्थकता की प्रतीति पाने में यह सब भूल-सा गया था. साहित्यिक रसमयता और मस्ती की बेसुधी में इन बातों के लिए फुर्सत भी कहां थी? इसीलिए एक दिन जब तुम्हें फिर 'फिट' आया तब भी मैं संयोगवश पढ़ाकर जा ही रहा था. घर में शायद कोई बड़ा न हो और मुझे ही आज फिर न बुलाया जाये, यह सोचकर मैं तुरंत साइकिल उठा कर सड़क पर आ गया था. दूसरे दिन बाहर से आये एक साथी कवि के साथ घूमने मैं चला गया. न यूनिवर्सिटी जा पाया न तुम्हारे यहां पढ़ाने ही. अगले दिन अपने समय पर जब पहुंचा तब एकाएक तुमने सामने आकर तमतमाते हुए कहा, "मुझे फिट आते ही आप चले गये? क्यों? रुकना न था?"

मैंने शांत स्वर में कहा, "कहीं मां फिर न बुला बैठे. पिछली बार ऐसे में मेरे सामने पड़ जाने पर आपने मुझे घर आने तक से मना कर दिया था. अच्छी भली आप जो नहीं चाहतीं, वह आपकी बेचारगी में मैं क्यों करूं?"

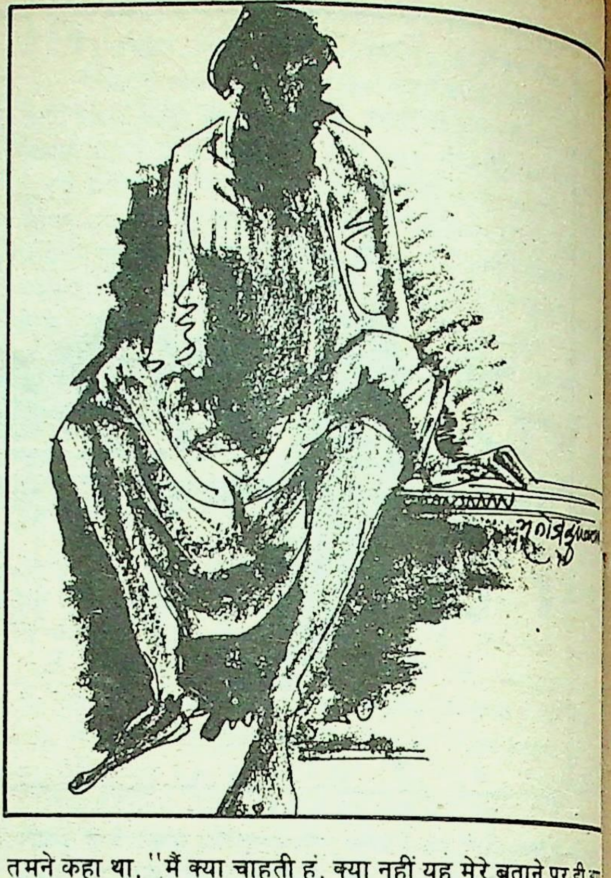

तुम्हारी आंखों की वह शुष्क रुलाई नहीं भूल पाया जिसे बहाते हुए तुमने कहा था, "मैं क्या चाहती हूं, क्या नहीं यह मेरे बताने पर ही समझते हैं? ठीक है... ठीक है." कहते हुए सजल हो आये अभियान फूला हुआ मुंह फेरकर तुम चली गयी थीं. मेरा मन भी उस दिन पढ़ाने तनिक न लगा था. मुझे तुम्हारे तर्क का कोई उत्तर नहीं सूझ रहा बिना आइने के मैं देख रहा था कि मेरा चेहरा भी तुम्हारे जैसा पराजित था. यह तो बहुत बाद में जाना कि नारी के हृदय कितने परिचय पा जाते हैं, कितने बंधु रूप में निकट आ जाते हैं. कितने भाई बन जाते हैं. पर प्रभुता बताने की उसकी आकांक्षा भी इस साथ लगी रहती है. नारी हृदय की गहन आंतरिकता से अपरिचित जिज्जी के आत्मप्रतिवाद को, अपने साथ उनके बात व्यवहार विषमता को देखकर भी कुछ समझ न पाता था. अपनी इकलौती शशि के ऊपर भी उनकी झुंझलाहट मुझे व्यथित करती. तेरह वर्ष हो आयी पितृहीन बालिका को घर में और कोई कभी कुछ न कहता. मां के अपने प्रति अकारण आक्रोश के कारण वह जितनी, जैसी थी, वैसी पढ़ाई भी न कर पाती. छोटे भाइयों, बहनों के प्रति मां माधुर्य शशि देखती तो अपने प्रति उनके व्यवहार की कठोरता से भी बिद्ध हो उठती. बड़े बाबू यों भी जब तक आते तो मैं देखता अपनी दुनिया से निकलकर जैसे उन्हीं की दुनिया में पहुंच जाती. आयु से कहीं अधिक समझदार हो आयी शशि तब मां के सामने पड़ती. उसके चेहरे पर सहमी-सहमी-सी मलिनता छा जाती जैसे मां के चेहरे के चारों तरफ बन गया उल्लसित प्रकाश का घेरा देखा न जा रहा हो.

जिज्जी का पूजा का कमरा मैंने देखा था. भरी तरुण मृत्यु में पति का एक बड़ा-सा चित्र बीचों बीच लगा था. जिज्जी रोज उस माला चढ़ाकर ध्यान में डूबी हाथ जोड़े कुछ देर बैठ जाती—जैसे अतींद्रिय भाव में डूबी हो. घुटनों के बल बैठकर पूजा करते उन्हें मुझे न जाने क्यों लगता कि हाथ जोड़े अर्चना करती भक्तिन और पर लेटकर प्रेम करती प्रेमिका का मूल स्वप्न, स्थायी भाव एक है. मैंने कल्पना भी न की थी कि तुम्हारे भीतर की दैहिक प्रणयिनी

जीवन के इस दुर्घटनाग्रस्त जैसे मोड़ पर ले जायेगी. तुम पूरे परिवार के मन का महल ढहा दोगी.

मैंने अनेक जीवन प्रसंगों के संस्मरण लिखे हैं. पर पहली बार ऐसी संबोधन शैली में—किसी अत्यंत निकट से देखे और श्रृद्धास्पद बने चरित्र से संलाप करती शैली में इसे लिख रहा हूं. इसीलिए कि जितनी समीपता का आस्वादन तुमसे पाया है वैसा अन्यत्र नहीं. आज सब कुछ जानकर भी मेरा वही आदर तुम्हारे लिए है, केवल नियति की त्रासद गति का एक दारुण बोझ जरूर मन को काटता रहता है. अपने से हार मानकर चोर कदमों से वासना के तट की ओर निर्भीक बढ़ना आत्मप्रवंचना नहीं. तुमने जो किया उसकी आलोचना करने का अधिकार किसी को भी नहीं है. तुमने आधे जीवन भर खुद पर जो अत्याचार किये वे तुम्हारे समूचे जन्म को सफल कर देंगे. मृत्यु तक खींच ले जानेवाली, किसी अविगत, अदृश्य हो गये के प्रति आत्मसमर्पण और आत्म-निग्रह की दारुण यंत्रणा का तुमने कर्मभोग भोगा. पर उसी को चरम यथार्थता न मानकर सदा को खोये, जीवन के अर्थ को लौटाया. हां! भव्यता की प्रतिमूर्ति जिस साध्वी को मैंने इसी संदर्भ में देखा और भावाभिभूत हुआ उसी का उल्लेख अब करना है.

दो साल बाद सरकारी दफ्तर में नौकरी पाकर मैं इलाहाबाद चला आया. तुम्हारे यहां का ट्यूशन तो इसके काफी पहले छोड़ चुका था. जब तक तुम्हारे यहां जाता तो लगभग सभी कुछ पहले जैसा पाता. केवल तुम्हारे स्वभाव की वक्रता, तुम्हें अपने को ही कचोटनेवाली चुभन बराबर बढ़ती जा रही थी. माताजी भी उससे पीड़ित रहती—शशि तो नाना-नानी के पास ही रहती. तुम्हारे पास अकेले जाने का साहस न कर पाती. इलाहाबाद आकर बेकारी की हीन भावना से मुक्त हो मैं लेखन के अपने छूटे पड़े क्रम से फिर जुड़ गया. दफ्तर का काम इस में बाधक न होता. नया-नया दफ्तर था—पदोन्नति इतनी जल्दी मिल गयी कि मैं पांच वर्ष में ही सहायक अधीक्षक बना दिया गया.

एक दिन मेरे सेक्रेटरी ने मुझे बुलाया और एक सुंदर सुशील तरुण का परिचय देते हुए कहा, "यह नया लड़का तुम्हारे 'सेक्शन' में भेज रहा हूं. सही अंग्रेजी लिखता है—परिश्रमी है. द्वितीय श्रेणी में बी.ए. है. इसे नोटिंग (आख्या लेखन) ड्राफ्टिंग (प्रारूप लेखन) भली भांति सिखा देना." मैं उसे लेकर अपने कमरे में चला आया. दो ही महीने में मैंने उसकी कर्तव्यनिष्ठा जान ली. एक बार मैं जो संशोधन कर देता, जिस सरकारी कागज पर जैसी 'नोटिंग' बता देता, वैसी ही करता. दुबारा उसे कुछ समझाने की जरूरत पड़ी हो, ऐसा याद नहीं आती. सौम्य, सद्भाषी अपने काम से काम रखने वाला 'सुधाकर' मुझे भाने लगा.

एक दिन सुधाकर ने अनुरोध भरे स्वर में कहा, "सर, आपसे मेरी मां मिलना चाहती हैं, कल रविवार है. आप दोपहर का भोजन हमारे यहां करें ऐसी भी उनकी आपसे प्रार्थना है."

मैंने विस्मित स्वर में कहा, "तुम्हारी मां! क्या नाम है उनका? कहां के हो तुम लोग!"

"उर्मिला शर्मा. लखनऊ से यहां आये हैं. नाम से आप उन्हें न जानेंगे. पहले कभी उनकी आपसे भेंट भी नहीं हुई. पर आपको वे जानती हैं, नाम सुना पढ़ा है."

मैंने समझा साहित्य से परिचित कोई सुरुचिसंपन्न पाठिका होगी. मेरे मन में पहली बार अपने लेखक होने का वैशिष्ट्य-बोध जाग उठा. मैंने कहा, "ठीक है. मैं आ जाऊंगा."

"क्या मैं बारह बजे आपको लेने आऊं?"

मैंने कहा, "नहीं. तुम अपने घर का पता दे दो. मैं स्वयं आ जाऊंगा. तुम्हारे यहां से लूकरगंज जाना होगा."

दूसरे दिन मैं जब सुधाकर के साउथ मलाका स्थित मकान पर पहुंचा तब वह बाहर सड़क पर खड़ा मेरी राह देख रहा था. आदरपूर्वक मुझे अपनी मां के पास ले गया. मैंने ध्यान से उन्हें देखने, पहचानने की कोशिश की पर कुछ भी समझ में न आया. मुझे कुछ आश्चर्य भरी जिज्ञासा में पड़ा पाकर उन्होंने ही मेरा संकोच दूर करते हुए कहा, "आपका सोच ठीक है. मुझे पहले कभी आपने देखा नहीं... मैंने जरूर दैनिक 'भारत' में आपका चित्र देखा है. मिलने का अवसर आज मिला है. आराम से बैठिये. अपना ही घर समझकर—अपने नीचे काम करने वाले सहायक का घर समझकर. बहू, देखो तुम्हारे 'मास्टर साहब' आये हैं. तुम उन्हें घर पर बुलाने के लिए कहती रहती थीं. आ जाओ शशि!"

'शशि' नाम सुनते ही प्रकृतिस्थ हो चला मैं चौंका. मन में वही बरसों पुरानी लहर उठने लगी. पर दूसरी किसी बहू का भी यही नाम हो सकता है.

तब तक जिस 'शशि' ने आकर मेरे पैर छुए और सास के पास जाकर भक्तिभाव से खड़ी हो गयी. वह तो वही शशि है, जिज्जी की इकलौती बेटी, उनके बाल-वैधव्य की आधार-शिखा.

मैंने शशि की सास को ध्यान से देख लिया था. नारी के सांध्य सांवले रूप पर कमनीयता की सरल निष्कपट अभिव्यक्ति ऐसी पवित्रता लेकर खिल सकती है—ऐसा न देखा था, न कहीं पड़ा था. मुझसे कहने लगीं, "मेरी यह इकलौती बहू आपसे मिलना चाहती थी पर सास की आज्ञा से. उन्हीं के आग्रह पर आप हमारे घर आये. आपके बारे में मुझसे न जाने कितनी बातें करती है."

उर्मिला के पास अनुगता छाया-सी खड़ी शशि से मैंने कहा, "तुम भी बैठ जाओ. मां की गोद में सही, 'फ्राक' पहनकर मेरे पास पढ़ने बैठती थी. कितनी बड़ी हो गयी हो बेटी तुम! जिज्जी कैसी है? तुम्हारे नानी, नाना, मामा लोग? एक दो मामियां भी आ गयी होंगी."

शशि का अपने नाम को सार्थक करता मुंह, उसके गोरे ललाट पर झलमलाता सिंदूर, थोड़ी ही देर पहले नहाकर आयी हुई शुभ्रता सब गहरी हल्दी जैसे पीले पड़ गये. मेरी ओर, सास की ओर देख तक न पा

जीवन का प्रतिरूप

□ वीणा श्रीवास्तव

सुप्रसिद्ध साहित्यकार मार्क ट्वेन के एक दोस्त, जो बहुत अमीर था, को अपने चित्र संग्रह पर बहुत घमंड था. वह सुंदर व दुर्लभ मूर्तियां इकट्ठा करने का भी शौकीन था. एक बार उसने कई बहुमूल्य मूर्तियां खरीदी. संयोग से मार्क ट्वेन उसके घर जा पहुंचे. वह अमीर अपनी मूर्तियां मार्क ट्वेन को दिखलाने लगा. ट्वेन मनोयोग से मूर्तियां देखे जा रहे थे.

तभी वे संगमरमर की बनी एक युवती की मूर्ति के निकट पहुंचे. युवती को अपने बाल संवारते दिखाया गया था. दोस्त ने कहा, "देखिए, कितनी नायब मूर्ति. जीवन की प्रतिरूप शिल्पकला का नमूना है यह."

मार्क ट्वेन ने सपाट शब्दों में कहा, "लेकिन, यह तो जीवन के प्रतिरूप कतई नहीं है."

"क्या कह रहे हैं आप, महाशय? ऐसा कैसे?" दोस्त ने विस्मय से प्रश्न किया.

"देखिए, यह तो तब जीवन के प्रतिरूप होती यदि इसका मुख हेयर पिनों से भरा होता." मार्क ट्वेन ने स्पष्ट किया. □

तबादला

□ नवीन पंछी

पति-पत्नी दोनों ही नौकरी पेशा हैं. लेकिन, दोनों की पोस्टिंग अलग-अलग जगहों पर है. बड़ी दिक्कत है. वे चाहते हैं कि उनका तबादला एक ही शहर में हो जाये.

तबादला किसका हो और कैसे करवाया जाये? यह प्रश्न विचारणीय था. काफी सोच-विचार के बाद तय हुआ कि तबादला श्रीमतीजी का ही हो. वे अध्यापिका हैं.

ट्रांसफर की एप्लीकेशन में जेनुइन रीजन देना जरूरी था. इस पर भी बहुत माथापच्ची हुई दोनों में.

''आइडिया!'' पत्नी फिलकीं.

''एप्लीकेशन में हम लिखेंगे कि मेरी सा कैंसर की मरीज हैं और मेरा उनके पास रहना बहुत जरूरी है.'' समझदार बीवी की सलाह थी.

''लेकिन, अम्मा तो...'' यह दबा-घुटा विरोध श्रीमानजी का था. इस सबके बावजूद तबादला ही अहम् मुद्दा था. तरकीब काम कर गयी. और श्रीमतीजी का ट्रांसफर हो ही गया. □

रही थी. उसकी दृष्टि भूमि पर गड़ी ही गड़ी रह गयी. सुधाकर वहां न था. मां ने कहा, ''वही सब सुनने के लिए आपको मैंने बुलाने की धृष्टता की है...''

किसी अविजानित रहस्य से उलझा मैं बोला, ''मेरे बारे में शशि बेटी ने आपसे न जाने क्या-क्या कहा होगा. जिज्जी ने भी...''

''नहीं, उनसे मेरी एक-दो बार छोड़कर कभी भेंट तक नहीं हुई. मेरे पति 'बड़े बाबू' से आप मिले होंगे. आपकी 'जिज्जी' उन्हीं के साथ भाग गयीं.''

मैं अवाक् बैठा कभी सास की ओर, कभी शीश की ओर स्तब्ध देखता रह गया. प्रदोष की पीली, अवसन्न फुल्ल कुमुदिनी जैसा शशि का चेहरा उठाये नहीं उठता था. उर्मिला ने कोमलतापूर्वक उसकी ठोढ़ी को उठाकर उसे प्यार से पकड़कर कहा, ''आप समझ सकते हैं, इतने संभ्रांत परिवार की अधेड़ विधवा का एक गृहस्थ के साथ भाग जाना कितना बुरा अर्थ रखता है! बहू के नानाजी को ऐसा हृदयाघात लगा कि वे मृतप्राय हो गये. नानी अपनी सबसे प्यारी अभागिन बेटी के इस शर्मनाक कुकर्म से कभी अचेत, कभी अर्धचेत पड़ी रहतीं. पूरा मुहल्ला कलमुंही कानाफूसियों से गूंजता रहा. न जाने कैसा जादू कर दिया आपकी जिज्जी के दौरों ने मेरे पर जो मुझे और इकलौते, आंखों की पुतली जैसे प्यारे बेटे को छोड़कर शहर ही छोड़ गये.''

मेरे आश्चर्य के तार उलझते जा रहे थे पर सुधाकर की मां की ईर्षाविहीन अवदात मुखाभा पहेली जैसी अबूझ लगकर भी किसी आलोकमयी विमलता से मुझे उबरने न देती थी. कुछ न कह पाकर मैं सुने जा रहा था.

''मेरे ही नहीं, मेरे पूरे परिवार पर लगे इस लांछन कें कलंकित आघात को आप आसानी से समझ सकते हैं. पूरे घर पर सकता-सा छाया रहा. पर तीसरे ही दिन इस अद्भुत अकल्पित भाग्य के खेल को मेटकर मेरे अंतः कारण में शशि की वेदना की तीक्ष्ण मर्मानुभूति न जाने कैसे आकर घर कर गयी. मुझमें उसके प्रति ऐसी असहनीय ममता जल उठी कि मैं उस रात बिलकुल सो न पायी थी. इसके नाना शिथिल पड़े थे—नानी नीचे जमीन पर बैठी. मुझे देखकर वे ग्लानि से काली पड़ गयीं. मैंने जाकर बिना किसी भूमिका के कहा, 'बाबूजी, मैं अपने सुधाकर लिए शशि को मांगने आयी हूं. उसे अपनी बहू बनाऊंगी.' भविष्य शशि के विवाह की चिंता सबके भीतर-भीतर सालती रही होगी. घटना का सबसे करुण पहलू भी तो यही था. शशि के कमरे में जा मैंने उसे जी भर कर प्यार किया. पहले पुत्र के बाद ही सदा को बांझ गयी मेरी कोख मानो फिर अंकुरा उठी. शशि फूट-फूटकर रो रही मैंने उसे घंटे भर तक हृदय से लगाकर धीरज बंधाया. चलते सम अपनी अंगूठी उतारकर उसे पहना दी और नाना-नानी के पैर छुए. की सांस-सांस मुझे असीस रही थी.''

मैं पूछ बैठा, ''आपके परिवार को सख्त ऐतराज हुआ होगा.''

''सभी ने घोर आपत्ति की. पर मैं अडिग रही. पुत्र ने मेरा कह किया—अपने पिता की ओर से ही नहीं, सारी उस घर-गृहस्थी से वह जैसे विमुख हो गया. बी.ए. पास करते ही भगवान ने उसे जीविका दे मैंने जिद करके उसका आगे पढ़ने का सपना तोड़ दिया. एक सप्ता भांवरें डालकर बहू-बेटे को यहां ले आयी. लड़का तो सुखी है पर बहू जितना उल्लास से चहकती-महकती देखना चाहती हूं उतना कुछ पाती. मेरे पास अपना पैसा भी है—बहू को भी सिंगारने-सजाने नाना-मामाओं ने कसर नहीं रक्खी. पर वह तो अब रोना भूल गयी है हंसना भी. न जाने कहां खोयी रहती है. हमेशा जैसे बिसूर-बिसूरकर अशांत हो रही हो. मां की करनी उनके साथ गयी. जैसी पुन्य पावन इसका संताप क्यों सहो!'' कहते-कहते उन्होंने नीचे निगाह किये बैठी शशि का मस्तक चूम लिया. उनकी बिना काज काली आंखों से श्यामल शोभा का स्रोत झर रहा था. मुझे तब अपने वर्ष के जीवन में कभी ममत्व की ऐसी छटा देखने को न मिली अनिर्वचनीय दिव्यता में डूबी उर्मिला ऐसी रमणी-मूर्ति भी पहले कभी देखी. थी. कह रही थीं, ''आपको बुलाने का साहस मैं न कर पाती. आपके प्रति इसकी एकांत श्रद्धा का परिचय पाकर मैंने आपको बुलाया इसे आप समझाते जाइये कि इसकी मां जहां हो वहां सुखी रहे. यह अपने नारी जीवन की सार्थकता का मुक्त मन से आनंद ले. मैं नवव्याहता की उमंगों को जानती हूं, उनका रास-विलास पहचानती हूं.''

भावातिरेक से मैं इतना ही कह पाया, ''शशि का सौभाग्य है जो आ जैसी सास की शरण उसे मिली, सुधाकर जैसा मातृभक्त पति मिला शशि, दोनों तुम्हें आनंद से जितनी जगमग देखना चाहते हैं वैसी ही उत्फुल्लता का जीवन जिओ. नाना-नानी, मामा-मांसी भी तुम्हें अकुंठित सुखी पाकर संतोष पायें. सच तो यह है कि उर्मिलाजी से आज न मिलता तो एक पुन्य से वंचित रह जाता...''

मेरा आखिरी वाक्य जैसे न सुनकर उर्मिलाजी ने भरे गले से कहा ''नाना-नानी अब कहा? नाना तो विवाह के पंद्रह दिन बाद चल बसे जैसे शशि का विवाह देखने को ही उनके लोकलाज-विडंबित प्राण रुके थे. नानी भी उनके बाद अधिक दिन नहीं रहीं. मामा, मासी, मौसि आते हैं—उनके खत आते हैं. सब मुझे 'जिज्जी' ही कहते हैं.''

मैंने कहा, ''मुझे भी आप यही कहने दें. वैसे आप की गरिमामंडित मातृमूर्ति के लिए यह संबोधन भी छोटा है.''

एक अनेदेखे अपरिचित के मुख से निकली भावभीनी प्रशंसा भी पति द्वारा छोड़ जाने का मूक आत्मदंश सहन करती उस सन्नारी को जैसे भीतर-भीतर पीड़ा ही पहुंचा रही हो, इस प्रकार उन्होंने शशि से कहा था, ''जाकर खाना लगाने में सुधु की मदद करो. बातों-बातों में इतनी देर हो गयी, अब तो तुम्हें अपने और अपने पति के 'सर' से मिलने के अवसर और मिलेंगे... यों आप जैसे जाने-माने साहित्यकार का हमारे घर आना अपने में भी क्या कम है? कृपा बनाये रहिये, ये दोनों सत्पथ पर चलते जायें... जीवन भर. चलिये, खाना खाइये.''

आस्था का नवांकुर मन में सहेजे मैं उनके पीछे चल पड़ा था. □

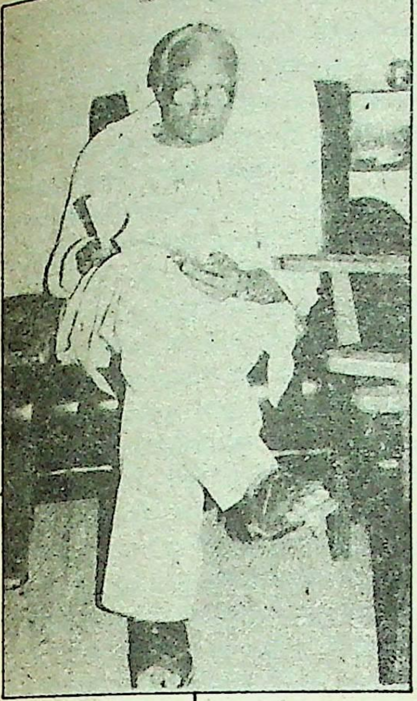

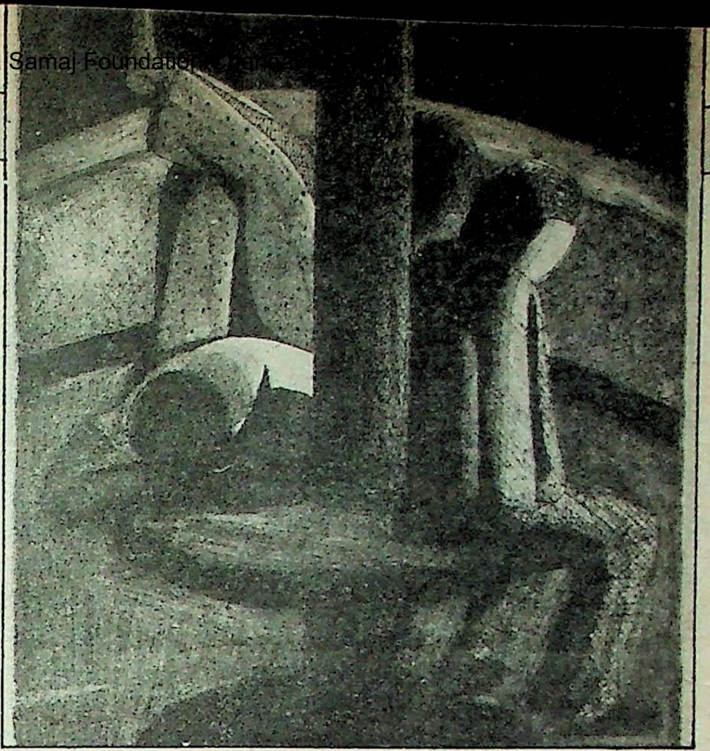

अंतःसलिला

□ रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

नहीं पूरी पड़ीं सारी दिशाएं एक अंजलि को
अधूरी रह गयी मेरी विधा एकांत-पूजन की
बंधी ओंकार की अविराम शैलाकार बांहों में
नहीं पूरी हुई कोई कड़ी मेरे समर्पण की
समूचा सूर्य भी आजन्म पूजा-दीप की मेरे
न बन पाया अंकपित वर्तिका का शुभ नीराजन
जयी अपरान्ह-रंजित स्तब्ध मेरी आयु-गायत्री
न कर पायी अभी तक अंशभर उस दीप्ति का वंदन

विफलता, व्यर्थता इस परिक्रामित, चक्रांत जीवन की
तुम्हीं जानो—न जानो और कोई तो न जानेगा!
नहीं मैंने किया आह्वान करुणा का तुम्हारी जब
क्षमा की पात्रता मुझमें न कोई और मानेगा
रहा विश्वास भावातीत मन की गीतमी लय-सा
नियति मेरी रही केवल उसी संपूर्ति में पकती
भुलाकर स्वप्नदर्शा प्रेरणा की मुक्त राहों को
रही अपनी क्षुधित आराधना की दीनता तकती

सदा टूटा किये सब अर्थ मेरे, शब्द तक मेरे
तुम्हारी दिव्यता की एक रेखाकृति न बन पाई
अव्यंजित ही सदा जो रह गयी अभिशप्त प्राणों में
नहीं असहाय मेरी भावना निस्पंद पियराई
तुम्हारी सर्वचेतन सर्वआभासित असीमा का
न कोई पारदर्शी बोध मेरी प्रार्थना पाती
अथाही चिरविदारक शून्यता में मूक जड़ जैसी
निपट असमर्थ मेरी मुग्धता अभासित रही आती. □

बड़े होते लोग

...जमीन जायदाद और घर का मोह छोड़िये. सवाल तो मां और अन्नो बहन का है न! क्यों न हम लोग दोनों के लिए कोई रास्ता निकाल लें ताकि समस्या ही खत्म हो जाये.'

कैसा है यह रास्ता और इस पर चलते बड़े होते लोग...?

□ रामधारी सिंह दिवाकर

जन्म : 1 जनवरी, 1945 नरपतगंज, जिला : पूर्णियां (बिहार)
प्रमुख कृतियां : 'नये गांव में', 'अलग अलग अपरिचय', 'बीच से टूटा हुआ', 'नया घर चढ़े' (कहानी संग्रह) 'क्या घर क्या परदेस', 'पंचमी तत्पुरुष' (उपन्यास) दो संपादित कहानी संग्रहों के अतिरिक्त कहानियों का विविध भारतीय भाषाओं में अनुवाद.
संप्रति : यूनिवर्सिटी प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सी.एम. कॉलेज, दरभंगा (बिहार)
संपर्क : 2-टीचर्स क्वार्टर, किलाघाट, शुभंकरपुर, दरभंगा (बिहार)

हालांकि कोई लंबा अंतराल नहीं था, फिर भी गांव लौटते हुए अतिरिक्त पुलक महसूस हो रही थी बिंदा बाबू को. पांच-महीने पहले वे गाव तब आये थे जब मा की बीमारी की मिली थी. लेकिन इस बार कुछ विशेष था और उस विशेष पर सो वे आंतरिक आहलाद से भीग से रहे थे. गांव-घर वैसे भी प्रवास में हुए मन को ममत्व के स्पर्श से सहलानेवाला एक एहसास होता है. ही अभावग्रस्तता, बेकारी और टुच्चेपन के कारण गांव से भागना हो, फिर भी सुदूर के उसी गांव-घर के लिए मन में ललक भरा आक बना रहता है. बिंदा बाबू किसी ऐसी भावुकता के कारण अपने गांव- के लिए व्याकुल नहीं रहे. गांव में छूटे हुए अपने परिवार की समस्याएं उनको शहर में व्याकुल बनाती रही हैं. हर दो-चार महीने पर किसी किसी परेशानी के तहत उनको गांव आना पड़ता है.

लेकिन इस बार किसी परेशानी के कारण वे गांव नहीं जा रहे हैं. बरसों बाद गांव में तीनों भाई एकत्र होंगे. मां रहेगी, अन्नो बहन रहे और तीनों भाई अपने-अपने परिवार के साथ रहेंगे. इससे बड़ा सुख क्या हो सकता है बिंदा बाबू के लिए? दोनों छोटे भाइयों को गांव में ए करने के लिए बिंदा बाबू को कितनी मेहनत करनी पड़ी है! डी.एस. कमलेश को कभी फुर्सत ही नहीं मिलती. राजे भी अपनी उ आमदनीवाली नौकरी में इतना रम गया है कि गांव-घर की सुध ही न लेता. बिंदा बाबू अपने दोनों छोटे भाइयों से साल-डेढ़ साल पर मिल लेते हैं, लेकिन गांव में पड़ी मां और बाल विधवा अन्नो बहन तो बरसों तरस रही हैं दोनों के लिए. कमलेश और राजेश तो कभी खोज-खबर नहीं लेते उनकी. बिंदा बाबू ने जब कभी अपने दोनों छोटे भाइयों से और अन्नो बहन की बावत बात की तो दोनों ने अलग-अलग तरह एक ही बात कही, "आप तो हैं ही भैया. रुपये-पैसे की जरूरत हो तो जाइये, लेकिन फुर्सत नहीं है हमारे पास."

अब जाकर फुर्सत मिली है कमलेश और राजेश को. वह भी मह दो-तीन दिनों के लिए. कई बरसों बाद दोनों गांव आ रहे हैं. यह कार्यक्र तय करने के लिए बिंदा बाबू चार-पांच महीने से परेशान थे. कई ब खत लिखे, फिर कमलेश और राजेश से अलग-अलग मिले. कितने आरजू-मिन्नत के बाद दोनों अपने-अपने परिवार के साथ गांव आने लिए तैयार हुए. रामनवमी के अवसर पर गांव पहुंचने की बात लगभ तय हो चुकी थी, लेकिन कमलेश को वह तारीख अनुकूल नहीं पड़ती कहने लगा कि रामनवमी में सांप्रदायिक कारणों से पुलिस विभाग व्यस्तता बहुत बढ़ जाती है. आखिर पांच अप्रैल की तारीख तय हु

आज अप्रैल की पांच नहीं, छह तारीख है और बिंदा बाबू गांव पहु रहे हैं. कमलेश और राजेश कल ही पहुंच गये होंगे. कैसा दुर्योग है उन्होंने ही कार्यक्रम बनाया और वे खुद एक दिन बाद गांव पहुंच रहे लेकिन क्या करते! नगर निगम के स्कूलों में वेतन मिलने की को निश्चितता तो होती नहीं. अंत तक वेतन नहीं मिला तो जहां-तहां उधार-पैंचा लेकर गांव के लिए रवाना हुए. पत्नी, बड़ी बेटी शार और सबसे छोटे बेटे किशोर को भी उन्होंने अपने साथ ले लिया.

रास्ते पर बिंदा बाबू घर पहुंचने की ही बात सोचते रहे. अपने दो छोटे भाइयों को उनकी पूरी हैसियत के साथ अपने गांव के घर में देख का संभावित सुख उनको अभिभूत करता रहा. कितने सम्मानित पद प पहुंच गये दोनों भाई! कमलेश डी.एस.पी. है और सबसे छोटा भा राजेश सीमा-शुल्क अधिकारी. राजेश ने पिछले साल गाड़ी भी खरी ली. कमलेश तो पुलिस की जीप से ही आया होगा. गांव के उस उजड़े दरवाजे पर दो-दो गाड़ियां लगी होंगी. चहल-पहल होगी. दो 'भावहों' और उनके बाल-बच्चों से उस उजड़े से घर में नया जीवन आ गया होगा.

बिंदा बाबू जब भी अपने दोनों छोटे भाइयों पर सोचते हैं, उनका म सात्विक आत्मश्लाधा से भर जाता है. गर्व होने लगता है अपने प

कमलेश और राजेश को पढ़ाने के लिए कितना कठोर संघर्ष किया उन्होंने. आइ.ए. की परीक्षा में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर वे बी.ए. में गये ही थे कि पिताजी का देहांत हो गया. कमलेश कस्बे के हाई स्कूल में हॉस्टल में रहकर पढ़ रहा था—नवें दर्जे में. राजेश ने मिडल पास किया था. घर की आर्थिक हालत डावांडोल थी. छह एकड़ जमीन से तो गुजर-बसर ही मुश्किल से हो पाती थी. संयोग से उसी समय पटना सचिवालय में काम करनेवाले फूफाजी ने पटने में ही नौकरी की व्यवस्था कर दी. नगर निगम के मिडल स्कूल में शिक्षक की नौकरी मिल गयी. बिंदा बाबू ने सोचा कि पटने में रहेंगे तो दोनों भाइयों को किसी तरह पढ़ा ही लेंगे बाहर रखकर पढ़ाने की तो औकात ही नहीं थी. लिहाजा अपने साथ वे कमलेश और राजेश को पटना ले गये. उसके कुछ ही महीने बाद मां की लंबी बीमारी चली. रीढ़ की हड्डी में कोई रोग था. तीन महीने तक पटना अस्पताल में पड़ी रही मां. अस्पताल से निकली तो एक हद तक अपंग हो चुकी थी. लाठी का सहारा लेकर मां लगभग चौपाये की तरह चलने लगी थी. कितनी परेशानी के दिन थे वे बिंदा बाबू के लिए! लोहानीपुर में किराये का छोटा-सा कच्चा घर. खुद खाना बनाना, बर्तन मांजना और पुरानी-सी साइकिल पर कमलेश-राजेश को स्कूल तक पहुंचाना. फिर स्कूल की अपनी नौकरी... पत्नी को तो दो-ढाई साल बाद ले गये वहां. उधर गांव-घर की परेशानी अपनी जगह ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी. वहां मां थी और विधवा अन्नो बहन थी. खेती-बाड़ी का भार अन्नो बहन पर था. कुछ उपज वे गांव से ले आते थे, इसलिए राशन के मामले में एक हद तक निश्चिंत थे. फिर कमलेश और राजेश की पढ़ाई ने कमर तोड़ दी थी. स्कूल का काम और उसके बाद दो-दो घरों में जाकर ट्यूशन पढ़ाना. वह तो पत्नी थी कि कोई दुख कभी बड़ा महसूस नहीं हुआ. बिंदा बाबू को वह बात भुलाये नहीं भूलती. कमलेश बी.ए. की परीक्षा का फॉर्म भर रहा था. अंतिम तारीख बीत रही थी और किसी भी सूत्र से रुपये का इंतजाम नहीं हो पा रहा था. कमलेश खाना-पीना छोड़कर दिन भर कमरे में पड़ा रहा था. रात में पत्नी ने गहने उतारकर उनके सामने रख दिये थे. बिंदा बाबू की आंखों में आंसू आ गये थे उस वक्त. कमलेश भी रोने लगा था...

खैर, कमलेश और राजेश को पढ़ाने का सुफल मिल गया. अब उनको लगता है, कोई भी दुस्सह दुख यदि मीठे परिणाम लेकर आता है तो दुख नहीं रह जाता, बल्कि वैसे दुख को निमंत्रित करने का बार-बार मन करता है. परिवार की स्थिति को देखकर कमलेश बी.ए. ऑनर्स के बाद ही बी.पी.एस.सी. की परीक्षा में बैठा था और डी.एस.पी. के लिए चुन लिया गया था. राजेश ने एम.ए. किया, उसके बाद सीमा-शुल्क अधिकारी के पद पर उसकी नियुक्ति हुई. इस बीच बिंदा बाबू ने कभी अपनी ओर देखा ही नहीं. पत्नी अच्छी-सी साड़ी के लिए तरसती रह गयी. खुद बिंदा बाबू हर जाड़े में बंद गले के ऊनी कोट के लिए जब भी सोचते दूसरी जरूरतें अटल प्रश्न बनकर कोट की इच्छा को खारिज कर देतीं. एक भार तो उतर गया था, लेकिन दूसरा कंधे पर चढ़ बैठा था. बड़ी बेटी शारदा और उसकी पीठ पर तीन बेटे. तीन-चार बरस से शारदा की शादी की चिंता परेशान कर रही है. तेईस बरस की उम्र पार कर चुकी है शारदा. ढंग का कोई लड़का मिलता भी है तो तिलक-दहेज की सुनकर दिन में तारे दिखने लगते हैं. पहले तो उन्होंने सोचा था कि कमलेश-राजेश को चिंता होगी इसकी. वे क्या नहीं जानते कि भैया की औकात क्या है! क्या उनका यह फर्ज नहीं है कि शारदा की शादी करायें? दबी जबान से एक-दो बार उन्होंने इसकी बावत कमलेश और राजेश से बात भी की, लेकिन कोई उत्साहवर्द्धक उत्तर नहीं मिला. तब उन्होंने सोचा, जब तीनों भाई एक साथ होंगे तभी वे इस समस्या को उठायेंगे. लड़कों की चिंता बिंदा बाबू को नहीं है. शारदा से छोटे अनिल और सुनील कॉलेज में पढ़ ही रहे हैं और सबसे छोटा किशोर तो अभी दस साल का ही है. अनिल और सुनील घर का साग-सत्तू खाकर किसी तरह पढ़ ही लेंगे. पटना में रहने के अनेक दुखों में एक यह सुख तो है कि बाल-बच्चे अगर पढ़ने वाले हों तो पढ़ ही लेते हैं किसी तरह. चिंता है तो शारदा की शादी की. बल्कि इसी मूल उद्देश्य से उन्होंने कमलेश और राजेश को गांव में बुलाया है. टूटे-फूटे घर को फिर से बनाने की भी बात होगी और बूढ़ी-बीमार मां की व्यवस्था पर भी विचार-विमर्श हो जायेगा. गांव में मां की देखभाल करने वाली अन्नो बहन के सिवा कोई नहीं है. मां बीमार पड़ती है तो दवा-दारू के लिए अन्नो बहन को जिस-तिस से आरजू-मिन्नत करनी पड़ती है. कितना बुरा लगता है! जिसके तीन-तीन बेटे हों, दो बेटे गजेटेड अफसर हों, उनकी मां भिखारिन की तरह रहे गांव में? बिंदा बाबू अकेले कितना देखें! कोई समस्या उठ खड़ी होती है और अन्नो बहन की चिट्ठी आती है तो उन्हीं को आना पड़ता है. कमलेश और राजेश को तो फुर्सत ही नहीं मिलती. नौकरी से फुर्सत मिले भी तो शायद अपने से फुर्सत नहीं मिलती होगी. बिंदा बाबू के मन में यह बात गर्व या अधिकार बनकर बैठी हुई है कि इस बार दोनों भाइयों को कसकर लताड़ेंगे. अफसर हुए तो क्या, कर्त्तव्यनिष्ठा में त्रुटि के लिए छोटे भाइयों को क्यों नहीं डांट सकते? बेटों की तरह उनको पढ़ाया-लिखाया है, इतने दुख सहे हैं उनके लिए, क्यों नहीं डांट सकते वे?...

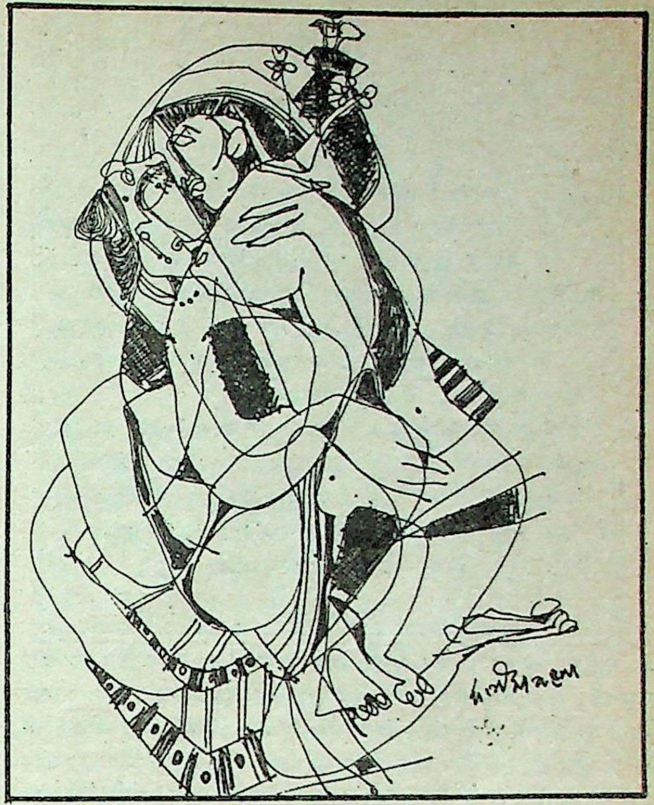

अपने भीतर के माध्यम पुरुष से ऐसे ही संवादों को बनाते-बिगाड़ते वे गांव के पास के रेलवे स्टेशन तक आये थे. पास बैठी बेटी शारदा को वे जब भी देखते, दुश्चिंताओं के बादल से घुमड़ने लगते उनके भीतर. फिर वे सोचते कि इस बार वे कमलेश और राजेश से जरूर कहेंगे.

इक्का दरवाजे के आगे ही था. छोटा बेटा किशोर इक्के से कूदकर नीचे आ गया और दरवाजे की तरफ दौड़ने लगा. बिंदा बाबू ने दरवाजे पर चहल-पहल देखी. एक कार और दो जीपें लगी हुई थीं दरवाजे पर. अलग हटकर एक मोटर साइकिल भी खड़ी थी. कुर्सियों पर कुछ लोग बैठे हुए थे. इक्के को दरवाजे की तरफ आते देखकर सब-के-सब इक्के को ही देखने लगे थे. बिंदा बाबू अपने घर के दरवाजे पर लगी कार-जीप-मोटर साइकिल और लोगों की भीड़ को देखकर प्रसन्नता से

घोड़े

□ वीणा श्रीवास्तव

लोकमान्य तिलक जब विलायत से लौटे तो पूना के अर्कोरेश्वर मंदिर के प्रांगण में उनके तथा तात्या साहेब कलेकर के सम्मान में एक स्वागत समारोह आयोजित किया गया. समारोह संपन्न होने के पश्चात् जब लोकमान्य तिलक अपनी दो घोड़ों की बग्घी में बैठने के लिए चले, तो एक स्वयं सेवक ने आगे बढ़कर उन लोगों को पहनायी गयी मालाएं बग्घी में रखनी शुरू की.

इस पर तिलकजी ने सारे हार बग्घी के कोचवान की ओर बढ़ाते हुए कहा, "लो, यह हम अब अपने दोनों घोड़ों के गले में डाल दो. जिस तरह तुम्हारे ये दोनों घोड़े इस बग्घी को खींचते हैं, उसी प्रकार हम दोनों भी तो देश रूपी बग्घी को खींचते है. इस प्रकार हममें व इन घोड़ों में कोई अंतर नहीं है." □

आप्लावित हो रहे थे. यह सुदिन आखिर देखने को मिल ही गया. यही सब कुछ तो सोचा था उन्होंने.कमलेश और राजेश दरवाजे से उठकर इक्के के पास आये थे. बारी-बारी से दोनों ने अपने बड़े भैया और भाभी के पैर छुए थे. कमलेश और राजेश के पीछे-पीछे पुलिस इंस्पैक्टर और थाने के दारोगाजी भी थे. मालूम हुआ, ये लोग कमलेश से मिलने आये हैं. बिंदा बाबू दरवाजे पर पहुंचते ही एकदम भूल गये कि वे मिडल स्कूल के अदना से हैडमास्टर हैं. आश्वस्ति की एक गहन प्रतीति और आत्मगौरव उनको जगह से बहुत ऊपर उठा चुका था. उनकी पत्नी और बेटी शारदा अंदर आंगन में चली गयी थीं. बिंदा बाबू जब तक दरवाजे पर लगी कुर्सी पर बैठ नहीं गये तब तक कमलेश और राजेश के साथ पुलिस इंस्पैक्टर, दारोगा वगैरह सब खड़े रहे. बिंदा बाबू को इस वक्त बहुत कुछ याद आ रहा था. याद आ रहा था कि बहुत पहले दीवानी से फौजदारी बन गये एक मामले में जब वे अपने पिताजी के साथ थाना गये थे तो दारोगा ने तुम संबोधन से बात की थी और बैठने के लिए भी नहीं कहा था. आज वही घर है. दरवाजे पर पुलिस इंस्पेक्टर और दारोगा चपरासी की मुद्रा में खड़े हैं.

तीसरे पहर की धूप आंगन से खिसक रही थी. बिंदा बाबू खाना खाकर आंगन से आ गये थे. दालान की फटी हुई छांह में वे कुर्सी डालकर बैठे गये और किसी तटस्थ व्यक्ति की तरह अपने पुश्तैनी घर का मुआयना करने लगे. वही बूढ़ी दालान थी. फूस की छप्पर जहां-तहां से दब गयी थी और इस कारण दालान की आकृति एकदम टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी थीं. बांस-बत्तियों वाली मिट्टी की भीत भी गल-गलकर ढह रही थी. खंड-खंड भीत चकत्तों की तरह बांस की खपच्चियों पर चिपकी दिखती थी. आंगन के तीनों ओर की तीनों खपरैलों की हालत भी बिलकुल वही थी. हर साल बारिश की शुरुआत के पहले मरम्मत का काम बिंदा बाबू न कराते होते तो खपरैंलें कब की बैठ गयी होतीं. विचित्र-सा उजाड़पन आंगन-दरवाजे पर पसरा हुआ था, लेकिन अचानक इस टूटे-फूटे घर में जिंदगी लौट आयी थी. वसंत ऋतु में 'भुआ' कीड़े के खाये सहजन के रोगी वृक्ष फूलों के भार से जैसे टूटने-टूटने को हो आते हैं, यह घर भी वैसा ही प्रतीत हुआ बिंदा बाबू को. कमलेश और राजेश के बच्चे धमाचौकड़ी मचाये हुए थे आंगन-दरवाजे पर. गांव के कुछ लोग भी दालान में बैठे हुए थे. बिंदा बाबू को सबसे ज्यादा खुशी दरवाजे के किनारे जीप और कार को देखकर हो रही थी. इस टूट-फूटे घर के दरवाजे पर खड़ी जीप और कार इतनी अस्वाभाविक और अपच-सी लग रही थी जैसे किसी देहाती ने सूट-टाई पहन ली हो... बिंदा बा अपने इस सादृश्य पर मन ही मन हंसते रहे तक. सुंदर और सजी-ध भावहों की चपल आवा-जाही से घर-आंगन का टूटा सन्नाटा कित प्रीतिकर लग रहा था बिंदा बाबू को, इसकी माप वे स्वयं कर रहे थे.

शाम से कुछ पहले लोग दरवाजे से उठकर चले गये थे. कमलेश औ राजेश आंगन की तरफ से निकलकर आये और दरवाजे पर लगी कुर्सि पर बैठ गये. बिंदा बाबू ने सोचा, कुछ बात करनी चाहिए. उन्हों कमलेश से पूछा, "तुम तो आज सवेरे ही पहुंचे यहां न?" दरवाजे आगे भरे हुए कुएं की ओर देखते हुए कमलेश ने धीरे से कहा, "हां, य तो आज सवेरे ही आया, लेकिन कल शाम ही आ गया फारबिसगंज."

"क्यों, फारबिसगंज में क्यों रह गये थे रात में? पांच-छह किलोमीट चलकर यहां नहीं आ सकते थे?" बिंदा बाबू ने अभिभावक वाली अप पुरानी मुद्रा में पूछा तो कमलेश ऊं-आं करने लगा, "वहां कोशी आई.बी. में ठहर गया. साथ में परिवार था. सोचा, यहां सबके रहने व्यवस्था नहीं हो पायेगी. राजेश ने कमलेश के हां में हां मिलाते ह कहा, "भले रात में भैया यहां नहीं आये! आते तो जमीन पर पुआ बिछाकर सोते और रात भर मच्छरों से कटवाते रहते. मैं आया कल औ सपरिवार रात भर जागता रहा. बस एक खाट है सही-सलामत. वही वाली खाट. अन्नो दादी लकड़ी के तख्ते पर सोती है. घर में जाने के दुर्गंध है. प्रत्यूष की मां तो रात भर बेचैन रही. घर भी ऐसा है कि बंद घ में कुत्ता एक तरफ से घुसता है और दूसरी तरफ से निकल जाता है."

बिंदा बाबू ने हंसते हुए कहा, "बस यही सब दिखाने के लिए तो तु दोनों को यहां गांव में बुलाया है मैंने. अपनी आंखों से तुम लोग भी देख ल कि तुम्हारे पुश्तैनी घर की क्या हालत हो गयी है. मां और अन्नो बह किस हालत में रहती हैं यहां..."

कमलेश ने फीकी हंसी हंसते हुए विदा लेती धूप को पेड़ की फुनगियों पर देखा और उधर ही मुंह किये धीरे से बोला, "मां और अन्नो बहन क क्या है भैया. अब तक रह आयी हैं तो रह ही लेंगी किसी तरह." बिं बाबू को अपने भीतर खरोंच-सी लगी, फिर भी वे अपना दर्द पी गये गंभीरता की जड़ पकड़ती बात को उन्होंने वहीं काट दिया, "नहीं कमलेश, मेरा मतलब है कि यहां भी पक्के का एक छोटा-सा घर ह जाये तो कितना अच्छा हो! मां और अन्नो बहन इस टूटती-ढहती खपरैल में रहें तो 'सर-समाज' भी कहेगा न कि... लोग क्या कहकर इ घर का परिचय देंगे? यही कहेंगे न कि यह घर कमलेश बाबू और राजे बाबू का है. मेरा नाम कोई नहीं लेगा, सो जान लो. यह कोई नहीं कहेग कि मिडल स्कूल के हेडमास्टर बिंदा बाबू का घर है यह!"

राजेश की आवाज कुछ तीखी हो गयी थी, "यह सब बेकार की भावुकता है भैया. बेमतलब खर्च करने से क्या फायदा! हम लोगों को त रहना है नहीं यहां..." बिंदा बाबू ने सोचा, बात बढ़ रही है और किसी भ अप्रिय मोड़ पर पहुंच सकती है. उन्होंने इस प्रसंग को यहीं विराम दे दिय और दरवाजे पर बच्चों का खेल देखने लगे. राजेश का नौ-दस साल क बेटा बैलगाड़ी के 'पछुए' पर बंदर की तरह लटका हुआ था. कमलेश के बच्चे भी बैलगाड़ी पर उछल-कूदकर रहे थे. इन बच्चों के साम उनका बेटा किशोर बिलकुल घरेलू नौकर की तरह दिख रहा था. थोड़ी देर बाद आंगन में गये बिंदा बाबू. दोनों भावहों के सामने उनकी पत्नी की भी वही हालत थी. हालांकि उनकी पत्नी ने आज सूती प्रिंट की सा साड़ी पहन रखी थी जिस साड़ी को वह अपनी सबसे कीमती साड़ी मानती थी और खास-खास अवसरों पर ही पहनती थी.

शाम को कमलेश और राजेश के बच्चे पहन-ओढ़कर तैयार थे. यही तैयारी बिंदा बाबू ने अपनी दोनों भावहों में भी देखी. उनकी समझ मे नहीं आ रहा था कि यह तैयारी आखिर कहां के लिए है. क्या किसी के घ

जा रहे हैं सब? आंगन में गये तो मां ने बताया कि कमलेश और राजेश बगल के शहर फारबिसगंज जा रहे हैं. रात में वहीं रहेंगे. बिंदा बाबू भीतर से उबलने लगे थे. बाहर आकर उन्होंने कमलेश से पूछा, "सुना, फारबिसगंज जा रहे हो तुम लोग!" कमलेश ने झेंपते हुए जवाब दिया, "मेरी तो इच्छा नहीं थी भैया, लेकिन बहुत दिक्कत है यहां. बाथरूम है नहीं और बच्चे खेत में पाखाना करने से डरते हैं. वही हालत दोनों 'बहुरियों' की भी है. आज नहाया भी नहीं है दोनों ने. नहायें कहां? इसलिए सोचा कि रात में आइ.बी. में रह लेंगे और कल सवेरे आ जायेंगे यहां. फारबिसगंज की दूरी ही क्या है!" बिंदा बाबू कुछ बोले नहीं. उनके भीतर कुछ बुरी तरह झनझना कर टूट गया था. उठकर वे दरवाजे के आगे भरे हुए कुएं के पास चले गये और कुएं के चारों और उगे हुए जंगली पौधों को देर तक देखते रहे. बगल में नारियल के झंखाड़ पेड़ पर बया के घोसले खाली बटुए की तरह झूल रहे थे.

कमलेश और राजेश को बिंदा बाबू की नाराजगी का एहसास हो गया था. दोनों ने आइ.बी. में रात गुजारने का कार्यक्रम रद्द कर दिया. लेकिन आंगन में उनके इस निर्णय की तीखी प्रतिक्रिया हुई थी. कमलेश और राजेश की पत्नियां जो तैयार हो चुकी थीं, अब मुंह फुलाकर पूरब और पश्चिम वाले घर में लेटी हुई थीं. बिंदा बाबू को उनकी पत्नी ने फुसफुसाते हुए कहा था, "दोनों बहुरिया शहर जाने के लिए तैयार थीं. वहां किसी अफसर के यहां रात का खाना था इनका. रात में पिक्चर देखने की बात थी. आपने सब चौपट कर दिया. क्या जरूरत थी उनको रोकने की? दोनों बहुरिया भुनभुना रही हैं आप पर. मुझको सुना कर वे जो कह रही थीं वह मैं आपसे नहीं कह सकती..."

बिंदा बाबू को लगा, जैसे वे किसी ऊंचे पेड़ से गिर गये हों. अपनी ही गलती से लगी चोट को वे सहलाते रहे. बिना कुछ बोले एक मानसिक तनाव झेलते हुए वे पड़ोस में नंदू भैया के घर चले गये. दो-ढाई घंटे बाद वे लौटे तो देखा चार खाटें, तोसक-तकिये-जाजिम-मच्छरदानी वगैरह दरवाजे पर नंदू भैया के आदमियों ने पहुंचा दिये हैं. दो पेट्रोमैक्स भी आ गये थे मुखियाजी के घर से. आंगन-दरवाजे पर दिन वाली वही उत्सवी वातावरण लौट आया था. पेट्रोमैक्स की उजली रोशनी में खाना पक रहा था. शारदा अपनी मां के साथ खाना बनाने में लगी हुई थी. अन्नो बहन बर्तन मांज रही थी. जरूरत पड़ने पर बीच-बीच में आंगन के दूसरे कोने में चांपाकल से बाल्टी में पानी भर कर रसोईघर के बरामदे पर रख आती थी. कमलेश और राजेश की पत्नियां आंगन-ओसारे पर घूम-टहल रही थीं.

बिंदा बाबू को बड़ा प्रिय लग रहा था घर-आंगन का माहौल. यही तो सपना था उनका. वे कई बार आंगन से हो आये थे. मां रसोईघर के बरामदे पर अपनी छोटी-सी पतली लाटी को खूंटे की तरह पकड़कर चुपचाप बैठी हुई थी. बिंदा बाबू ने मुस्कराते हुए मां की तरफ देखा. मां ने भी मुस्कराने की चेष्टा की, लेकिन मुस्करा नहीं पायी.

रात को तीनों भाई एक साथ खाना खाने बैठे तो मां भी ओसारे पर एक किनारे आकर पांवों के बल बैठ गयी थी. बिंदा बाबू की पत्नी और शारदा खाना खिला रही थीं. मां ने मुंह का लार गटकते हुए धीरे से कहा था, "बहुत दिन बाद अपने तीनो बेटों को एक साथ खाना खाते हुए देख रही हूं. बहुत दिन हुए... बहुत दिन हुए..." मां की आंखों में अनजाने ही आंसू आ गये थे. बिंदा बाबू कुछ देर तक मां के चेहरे को देखते रहे. झुर्रीदार खुरदुरे-मटमैले चेहरे पर आंसू की पतली-सी धारा ऐसी लग रही थी जैसे गर्मियों में सूखी-फटी जमीन पर सोते का पानी आ गया हो कहीं से. मारकीन साड़ी के छोर से आंखें पोंछती रही थी मां. आंखें पोंछते-पोंछते फटी-फटी कांपती-सी आवाज में मां बोली थी, "अब तो शारदा की शादी में ही तुम तीनों भाई यहां आओगे." मां की इस बात से बिंदा बाबू को सहसा याद आया था कि अभी तक उन्होंने कमलेश और राजेश से शारदा की शादी की बाबत कोई बात ही नहीं की है. उसी समय उन्होंने सोचा कि खाना खा लेने के बाद निश्चिंत होकर वे इस समस्या पर दोनों भाइयों से बात करेंगे. हाथ धोने के लिए वे पीढ़े से उठे तो मां भी हुंह की एक अभ्यस्त कराह के साथ लाठी का सहारा लेकर उठने को हुई. मां के कान के पास अपना मुंह करके बिंदा बाबू कुछ जोर से बोले, "तुम बैठी रहो न मां." पता नहीं मां ने क्या अर्थ लगाया. पंजों के बल पूर्ववत् बैठकर वह एकटक बिंदा बाबू को देखती रही. मां की इस कारुणिक स्थिति पर बिंदा बाबू कुछ क्षणों तक जाने क्या सोचते रहे. एक तो बहुत ऊंचा सुनती है मां, दूसरे, आंखें भी काफी कमजोर हो गयी हैं. दिन की रोशनी में तो ज्यादा दिक्कत नहीं होती, लेकिन अंधेरे में कुछ देख नहीं पाती है. वह तो अन्नो बहन है कि मां किसी तरह घिसटती हुई जी रही है.

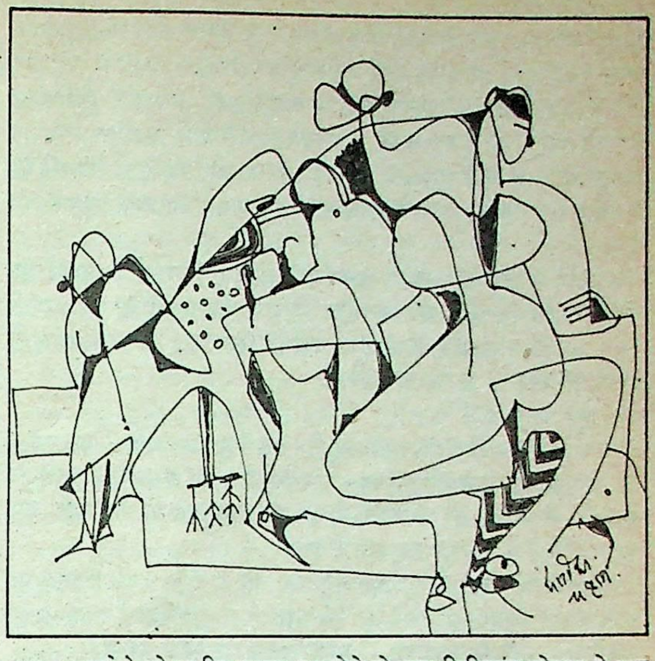

दरवाजे पर पेट्रोमैक्स की रोशनी के दायरे से बाहर काला भभूक अंधेरा था. टोले में जहां-तहां किसी-किसी घर में रोशनी की बूंदें दिख रही थीं. बाहर खुले आकाश के नीचे कुर्सियों पर कमलेश और राजेश बैठे थे. दोनों को शायद सोने की हड़बड़ी थी, लेकिन अपने बड़े भैया को बातचीत की मुद्रा में बैठे देख वे भी बैठे रह गये थे. लाठी टेकती हुई मां भी आ गयी थी और नीचे जमीन पर बैठने लगी. बिंदा बाबू ने मां को सहारा देकर खाट पर बिठा लिया था. मां की यह पुरानी आदत रही है. पिताजी जीवित थे उसी समय से बिंदा बाबू देखते आये हैं. पिताजी चाचा से कोई सलाह-मशविरा करते होते तो मां इसी तरह बगल में आकर चुपचाप बैठ जाती थी और बिना कोई टीका-टिप्पणी किये अंत तक बैठी रहती थी. लेकिन उन दिनों तो मां बहरी नहीं थी. मां को चुपचाप आकर बैठे देख बिंदा बाबू धीरे से मुस्कराये थे. क्या सुनेगी मां? बिंदा बाबू कुछ बोले इसके पहले ही कमलेश ने हंसते-हंसते पूछ लिया, "कहां से आपने खाट-चारपाई वगैरह जमाकर ली भैया? तोसक-तकिये-मसहरी..." बिंदा बाबू मुस्कराते हुए बोले, "अरे, नंदू भैया से कहा कि कमलेश और राजेश कैसे सोयेंगे, कोई इंतजाम—बात तो है नहीं. बस इतना भर कहना था कि नंदू भैया ने अपने बेटों-भतीजों को बुलाया और थोड़ी ही देर में सब इंतजाम हो गया. नंदू भैया बोले कि एक-दो रात हम सब नीचे जमीन पर सोयेंगे..."

उनींदी और भर्रायी आवाज में राजेश ने हल्का-सा प्रतिवाद किया, "फिर भी नींद नहीं आयेगी. एक तो गर्मी इतनी है, फिर घर भी एकदम खुला हुआ है. खपरैल वाली छत को देखकर तो लगता है कि अब गिरी तब गिरी..." बिंदा बाबू हंसने लगे "यही दिखाने के लिए तो तुम दोनों

भाइयों को यहां बुलाता है कि देख लो अपने पुश्तैनी घर को जहां तुम्हारा जन्म हुआ और आज भी जहां मां और अन्नो बहन रहती हैं, वह घर कैसा है." शायद उनींदे होने के कारण कमलेश की आवाज में झुंझलाहट आ गयी थी, "आप घर वाली बात फिर ले बैठे भैया! यहां घर बनाकर क्या होगा, यह मेरी समझ में नहीं आता. मां की जिंदगी ही कितनी है! दो-चार साल और... बच गयी अन्नो बहन तो वह भी किसी तरह रह ही लेगी."

राजेश ने कमलेश का ही समर्थन किया था, "मेरा तो विचार है कि जमीन-जायदाद और घर का मोह छोड़िये. सवाल तो मां और अन्नो बहन का है न! क्यों न हम लोग दोनों के लिए कोई रास्ता निकाल लें ताकि समस्या ही खत्म हो जाये."

"क्या मतलब?"

राजेश ने दूसरी तरफ अंधेरे के पार देखते हुए कहा था, "मतलब... मां और अन्नो बहन को हम लोग बांट लें और यहां की जमीन-जायदाद बेच लें. बेमतलब की परेशानी है यह सब. आपको भी भैया बार-बार आना पड़ता है देखभाल करने के लिए...."

बिंदा बाबू भीतर से एकदम लड़खड़ा गये थे, लेकिन संयत रहते हुए कांपती-सी आवाज में बोले थे, "तो बांट लो." कमलेश ने इधर-उधर देखते हुए धीरे से कहा था, "अन्नो बहन मेरे साथ रहेगी."

"और मां?" बिंदा बाबू डबडबायी आंखों से राजेश की तरफ देखने लगे थे. राजेश निरुत्तर था. उसके पक्ष से कमलेश ने ही क्या कहा था, "क्या हर्ज है, अगर मां आपके साथ रहे?"

"सो तो रहेगी ही मां मेरे साथ. मां ही क्यों, अन्नो बहन भी मेरे ही साथ रहेगी. लेकिन तुम दोनों में से कोई भी मां को रखने के लिए तैयार नहीं हो. अन्नो बहन को तुम दोनों रखना चाहते हो. सोचते हो, दाई का काम निकल आयेगा. क्यों?"

मां अपने बहरेपन की वजह से शायद कुछ समझ नहीं पा रही थी, लेकिन अपने तीनों बेटों के बीच अचानक सैलाब की तरह उमड़ आये इस तनाव में चेतना के स्तर पर ऊब-डूब कर रही थी. बिंदा बाबू सहसा, असहज और गमगीन हो गये थे. पराजित स्वर में, आत्मयातना-सी झेलते हुए वे धीरे से बोले थे, "तुम दोनों तो बाहर रहते हो. मौके-बेमौके मुझे ही आना पड़ता है देखने-सुनने. मां लाठी टेकती हुई बनिये की दूकान तक सौदा-सुलुफ लाने जाती है. लोग हंसते हैं कि देखो, बुढ़िया को. चौपाये की तरह ठकर-ठकर लाठी टेकती अंचरा में दाल-मसाला बांधे सावजी की दूकान से आ रही है. कहां तो बुढ़ापे में सुख मिलना चाहिए था, कहां यह दुर्दशा है.... मैं कहां ले जाऊं इन सब को! मास्टरी में कितना मिलता है यह तो जानते ही हो. वह तो घर-घर घूमकर ट्यूशन पढ़ाता हूं, इसलिए बच्चे भी पढ़े रहे हैं." पेट्रोमैक्स की उजली रोशनी में बैठी मां अकचकायी चिड़िया-सी अपने तीनों बेटों को देर तक देखती रही.

कमलेश और राजेश उठने लगे थे. दोनों अंदर आंगन में चले गये तब तक मां और बिंदा बाबू खाट पर बैठे रहे. पेट्रोमैक्स में सिमट आयी रोशनी अब अंतिम सासें ले रही थी. मां को सहारा देकर बिंदा बाबू खाट से उतारने लगे. उनकी पत्नी बगल में खड़ी थी. मां को वह अंदर आंगन की तरफ ले जाने लगी. बिंदा बाबू खाट पर उसी तरह बैठे रहे. सोचने लगे कि शारदा की शादी की बावत तो कोई बात ही नहीं हो सकी भाइयों से. जाने कैसे पूरा मामला ही गड़बड़ा गया. फिर सोचने लगे कि उन्होंने क्या बुरा कहा! जिन भाइयों को इतनी तकलीफ झेलकर पढ़ाया-लिखाया, क्या उनका इतना भी अधिकार नहीं है कि दो बात कह सकें? वे क्या इतनी-सी बात भी नहीं सह सकते?...

टूटी दालान से टुकड़ा-टुकड़ा काला आकाश और उस पर बूंद-बूंद तारों को देखते-देखते बिंदा बाबू ने रात काट दी. सुबह जब पिछवाड़े के बांस-वन में चिड़ियों का कलरव शुरू हुआ तब थोड़ी देर के लिए झपकी आयी. सूर्योदय के बाद ही वापसी के लिए कमलेश और राजेश की तैयारी शुरू हो गयी थी. बिंदा बाबू ने चाहा कि दोनों भाइयों को रुकने के लिए कहें, लेकिन कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई. मां दहलीज के पास लाठी का सहारा लिये चौपाये वाली आकृति में खड़ी टुकुर-टुकुर देख रही थी. कल का लगा मेला आज उखड़ रहा था. कमलेश और राजेश के बच्चे वापसी के उल्लास में अपनी-अपनी गाड़ियों पर उछल-कूद मचाये हुए थे. बिंदा बाबू की पत्नी एक किनारे मूर्त्तिवत् खड़ी थी. अन्नो बहन मां से लगी खड़ी थी और मुंह पर बायीं हथेली रखे दरवाजे की तरफ देख रही थी. कमलेश और राजेश जब बारी-बारी से मां के पैर छूने लगे तो बिंदा बाबू को मां के चेहरे की ओर देखने की हिम्मत नहीं हुई. बूढ़ी आंखों में निस्सहायता के आंसू देखना सबके बूते की बात नहीं होती. खासतौर से उस मां के आंसू जिसके दो-दो बेटे अफसर हों. कमलेश और राजेश नाटक के पात्रों की तरह बिंदा बाबू के पैर छूने आये तो बिंदा बाबू रोक नहीं सके अपने को. आंसू छिपाने की कोशिश में वे दरवाजे के आगे बूढ़े झंखाड़ नारियल के पत्तों पर लटके बया के घोंसलों को देखने लगे.

कमलेश और राजेश अपनी-अपनी गाड़ी की तरफ बढ़ रहे थे. इधर बिंदा बाबू का सबसे छोटा बेटा किशोर अपनी मां को तंग कर रहा था, "मैं भी कार पर चढ़ूंगा मां. कभी नहीं चढ़ा हूं कार पर." मां समझा रही थी, "कहां जाओगे? वे लोग तो जा रहे हैं." लेकिन किशोर अपनी जिद्द पर अड़ा था, "बस उतर जाऊंगा आगे... स्कूल के पास. कभी नहीं चढ़ा हूं कार पर मां." बिंदा बाबू ने किशोर का यह हठ देखा तो राजेश के ड्राइवर को बुलाकर धीरे से कह दिया, "किशोर को ले लो. आगे स्कूल के पास उतार देना."

कमलेश की जीप आगे थी—दरवाजे के आखिरी छोर पर. राजेश की कार पीछे ठीक दालान के सामने थी. वह अपनी कार में अगली सीट पर ड्राइवर की बगल में बैठ गया था. उसकी पत्नी और दोनों बच्चे पिछली सीट पर थे.

ड्राइवर की सीध में बायें छोर पर बैठा प्रत्यूष गेट बंद करने की कोशिश कर रहा था. किशोर ने अंदर घुसना चाहा तो प्रत्यूष ने झिड़क दिया, "तुम कहां जाओगे? हम लोग तो अपने घर जा रहे हैं." किशोर को हल्का-सा धक्का देते हुए प्रत्यूष ने गेट बंदकर लिया. शरीर का संतुलन बिगड़ जाने के कारण किशोर सीधे जमीन पर गिर पड़ा. राजेश नीचे झुका हुआ था और अपने पैरों के पास पत्नी की कलाई से फिसलकर गिरा सोने का कंगन खोज रहा था. कार आगे बढ़ गयी. बिंदा बाबू ने दौड़कर अपने बेटे को उठाया. अपने घुटनों को पकड़े किशोर ठीक अपनी दादी की तरह चौपाया-सा बना गुजरती हुई कार को डबडबायी आंखों से देखता रहा. बिंदा बाबू इस तरह अविचल खड़े थे जैसे मूर्ति बन गये हों. मां, अन्नो बहन, शारदा और बिंदा बाबू की पत्नी भी निश्चल-निस्पंद आंखों से धूल उड़ाती दोनों गाड़ियों के अंतिम छायाभास को पकड़ने की कोशिश कर रही थीं.

बिंदा बाबू सामने की उस सुनी-उदास सड़क को देखते रहे. फिर जाने क्या सोचकर मुस्कराते हुए उन्होंने अपनी पत्नी की ओर देखा. उनकी पत्नी भी मुस्करायीं. खिलती हुई कली की तरह मुस्कराहट धीरे-धीरे हंसी का फूल बन गयी. पति-पत्नी के बीच इस हंसी की कोई पृष्ठभूमि रही होगी. दोनों शायद उसी पृष्ठभूमि पर सोचते हुए अपने पर एक-दूसरे पर हंसे रहे थे. मां ने अपना चेहरा उठाकर बिंदा बाबू को देखा और मुस्कराने लगी. यह एक विचित्र विसंगत स्थिति उत्पन्न हो गयी थी. किशोर अपने घुटनों का दर्द भूलकर सीधा खड़ा हो गया था और मू की तरह सबको हंसते देख हंसने लगा था. कीचड़ भरे रास्ते पर फिसलकर गिरनेवाला आदमी दूसरों को अपनी स्थिति पर हंसते देख जैसे खुद हंसने लगता है, यह हंसी शायद उसी स्तर की थी.

किराये का इन्द्रधनुष

'सॉरी सर...' वह कुछ कहना चाहती है पर सिर झुका लेती है.

आखिर ऐसा क्या हो गया था कि वही लड़की जो थोड़ी देर पहले उसे आमंत्रित कर रही थी... अब धम्म से आकर उसी के सामनेवाले सोफे पर बैठ गयी थी...!

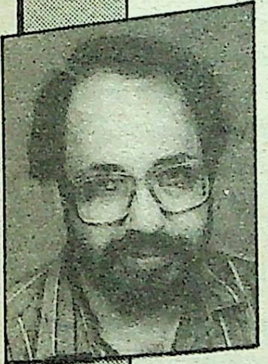

□ सूरज प्रकाश

जन्म: 1952 देहरादून
सूरज के लिए लेखन टूटते हुए जीवन मूल्यों और खोखले हो रहे रिश्तों की तह तक जाने का एक जरिया है. भौतिक सुखों की अंधी दौड़ में जो पिछड़ गये हैं, उन्हें अपना पात्र और प्रिय मानते हैं.

संपर्क: 3 एच [illegible] फ्लैट्स, अंकुर चार रस्ता; नारायण पुरा, अहमदाबाद

बंबई की बरसात भी बस मुसीबत ही है! कहां तो सोचा था कि इन दो-तीन दिनों में पूरी बंबई घूमूंगा. इस माया नगरी को खुद अपनी आंखों से देखूंगा और कहां मैं फंसा पड़ा हूं इस गेस्ट रूम में जब से यहां आया हूं, यह झड़ी जो लगी है, रुकने का नाम ही नहीं ले रही. इस कमरे में चहल-कदमी करते-करते थक गया हूं. लेटने की कई बार कोशिश की है परंतु इतना नरम बिस्तर होते हुए भी तुरंत उठ बैठता हूं. कमरे की एक-एक चीज को कई-कई बार देख चुका हूं. सारी पत्रिकाएं तो कल ही देख ली थीं, लेकिन मन में जो एक अजीब-सी कड़वाहट घर कर रही है—गुस्से की, बेचैनी की, उससे वक्त काटना और भी मुश्किल हो रहा है. और ऊपर से यह बरसात, मेरे भीतर उठते तूफान को और तेज कर रही है. पता नहीं, कब तक इस कैद में रहना होगा.

मैं इसे कैद क्यों कह रहा हूं! यह इतना बढ़िया गुदगुदे मैट्रेसवाला डबल-बैड, आराम कुर्सियों, किताबों से अटी पड़ी अल्मारियों, शो-केस, अटैच्ड बाथरूम, जिसमें गर्म पानी की सुविधा है, सब कुछ साफ-सुथरा. सब कुछ तो यहां है. क्या हुआ जो इस कमरे में समुद्र की ओर खुलनेवाली कोई खिड़की नहीं है. और तो कोई कमी नहीं. फिर बंबई जैसे मंहगे शहर में तीन-चार दिनों के लिए इतनी अच्छी तरह से रहने और साथ में खाने-पीने की सुविधा को मैं कैद कह रहा हूं, जिसे मैं कैद कह रहा हूं, कभी सपने में भी कफ परेड जैसे पॉश इलाके में 20 वीं मंजिल पर इतने आलीशान फ्लैट के गेस्ट रूम में रहने के बारे में नहीं सोच सकता था! क्या मेरी इतनी औकात है या थी कि मैं इतनी खूबसूरत जगह में आराम से पसरा रहूं और चाय, नाश्ता सब कुछ मेरे कमरे में पहुंचा दिया जाये और यह सब सेवा एक ऐसी नौकरानी करे जो मुझसे भी अच्छी अंग्रेजी बोलती है, और स्मार्ट तो इतनी है कि कल जब मैं दिन में यहां पहुंचा था और दरवाजा उसी ने खोला था तो मैं उसे खन्ना अंकल की लड़की रितु ही समझा था और उसे विश भी उसी के हिसाब से किया था.

कल शाम को तैयार होकर जब कमरे से बाहर निकला तो उस वक्त आंटी ड्राइंग रूम में फोन पर किसी से बात कर रही थीं. मैं यही चाह रहा था कि कोई न कोई ड्राइंग रूम में मिल जाये, नहीं तो फिर किसी को बुलवाने के लिए या तो आवाज देनी पड़ती या फिर रूबी को ढूंढ़ना पड़ता. आंटी जब तक फोन पर बात करती रहीं, मैं वहीं सोफे की टेक लगाये खड़ा रहा. फोन रखते ही जब वे मुड़ीं तो मुझ पर नजर पड़ी एकदम चेहरा तुनक गया. अभी तो फोन पर हंस-हंसकर बातें कर रही थीं. "क्या बात है सतीश! कहीं जा रहे हो क्या!" उन्होंने चेहरे की तुनक कम किये बिना साड़ी की सलवटें ठीक करते हुए पूछा था. मैं एकदम सकपका गया था, फिर भी हिम्मत जुटाकर बोला, "वो दोपहर से कमरे में बैठा-बैठा बोर हो रहा हूं. इस समय शायद बरसात रुकी हुई है, सोच रहा था, कहीं घूम आऊं." मैंने जानबूझकर कार और ड्राइवर की बात नहीं की थी.

लिफ्ट आ गयी थी. मैं नीचे आ गया. सड़क पर आने के बाद मैंने आसपास देखा, पानी थमा हुआ था लेकिन लोग तेजी से आ-जा रहे थे. मैंने यह बात सुबह भी नोट की थी, अब भी देख रहा था कि यहां पर लोग और शहरों की तुलना में ज्यादा तेज चलते हैं, कहीं देखते नहीं, बस लपकते से रहते हैं. सुबह चर्चगेट के बाहर तो मैंने कई औरतों को भागते हुए देखा था. औरतों को इस तरह भागते देखना सचमुच मेरे लिये एक नया दृश्य था. एक बहुत मोटी औरत, जिसने स्कर्ट पहना था, भागते हुए बहुत ही अजीब लग रही थी.

अभी मुश्किल से मैंने सड़क पार ही की थी कि एक तेज बौछार ने मुझे पूरी तरह भिगो दिया. लोगों ने फटाफट अपने फोल्डिंग छाते खोल लिये. मुझे आसपास कोई ऐसी जगह नजर नहीं आयी जहां शरण ले सकता. ऊपर वापस जाने का कतई मूड न था. नतीजतन भीगता हुआ बस-स्टाप की तरफ ही चलता रहा. मूड और खराब हो गया था. अब घूमने जाने की भी कोई तुक नहीं थी. तुक तो मुझे पहले ही नजर नहीं आ रही थी क्योंकि

मुझे यहां जगहों के सिर्फ नाम ही मालूम थे, उनकी दिशा या दूरी का कोई अंदाज नहीं था. किसी से कुछ पूछना बेकार लगा. बस स्टाप से पैदल चल पड़ा. यूं ही काफी देर तक भटकता और भीगता रहा. भीगना मुझे अच्छा लगता है, लेकिन आज भीगने से मूड और भी बिगड़ता चला जा रहा था. तभी कोलाबा वाली सड़क पर एक अच्छा-सा बार दिखायी दिया. मुझे इस वक्त अपना अकेलापन काटने का इससे अच्छा कोई रास्ता नहीं दिखायी दिया. बीयर बार में जा घुसा. बीयर पीते हुए मुझे हमेशा इस बात का एहसास होता रहता है कि आसपास कोई है जिससे मैं अपने मन की बातें कह रहा हूं.

बीयर के दो घूंट भरते ही मैं अंतर्मुखी हो गया. मेरे भीतर की सारी सुगबुगाहट बुलबुलों के साथ ऊपर आने लगी. फिर से सारी चीजें दिमाग पर हावी होने लगीं. खुद पर गुस्सा आने लगा—क्यों ठहरा मैं खन्ना अंकल के घर पर. बाऊजी को कम से कम एक बार तो सोच लेना चाहिये था कि इन पंद्रह-बीस सालों में उनका दोस्त कितना बदल चुका होगा. ठीक है उनकी खतोकिताबत होती रहती है, लेकिन वह अलग बात है और फिर मुझे इस बात से क्या मतलब कि खन्ना पर बाऊजी के कितने अहसान हैं या दोनों बचपन के दोस्त हैं और दोनों ने मुफलिसी के दिन एक साथ काटे हैं. बाऊजी किस तरह अपने और खन्ना की दोस्ती के चर्चे किये जा रहे थे. अब मैं अगर बाऊजी को बताऊं कि जिस दोस्त की उन्होंने अपने बच्चों का पेट काटकर मदद की थी, यहां तक कि एक बार हम बच्चों के लिये दीवाली पर पटाखे न खरीदकर उनके लिये बंबई टिकट तक जुटाया था, वह आज इतना बड़ा आदमी हो गया है कि उसके पास उसी दोस्त के लड़के के लिये जरा-सा वक्त नहीं. गर्मजोशी तो दूर, ढंग से बात करने तक की जरूरत ही नहीं समझी गयी. ये बातें सुनकर उन्हें कैसा लगेगा! मैं बीयर पीते-पीते दुखी हो रहा था.

मुंह चलाना

□ राजेश शास्त्री

म्युनिस्पैल्टी का इंस्पैक्टर ज्यों ही मुहल्ले के नुक्कड़ वाले मकान के पास पहुंचा, शिकायती भाव से उस गृहस्वामी ने कहा, "सा'ब, देखिये न मुहल्ले का पाखाना साफ नहीं हो रहा. सारे मुहल्ले में बदबू आती है. आपके कर्मचारी बिल्कुल काम नहीं करते!"

इस पर इंस्पैक्टर तुनककर बोला, "बताइये मैं इसके लिए क्या कर सकता हूं?"

गृहस्वामी ने बड़ी सहजता से जवाब दिया, "सा'ब आप ठहरे बड़े अधिकारी थोड़ा-सा मुंह चलाने की जरूरत है फौरन सारी गंदगी साफ हो जाएगी!" □

बीयर अपना काम कर रही थी. मैं कुढ़ रहा था और सभी को दोषी मान रहा था. मुझे मां पर भी गुस्सा आ रहा था, क्यों उसने इतनी मेहनत करके गाजर का हलवा बना कर दिया था खन्ना के बच्चों के लिये. उसे पता तो चले कि बंबई के बच्चे गाजर का हलवा नहीं खाते. पता नहीं क्या खाते हैं. आंटी हलवे का डिब्बा देखते ही किस तरह मुंह बनाकर बोली थीं, "क्या जरूरत थी इतना सब भेजने की. यहां तो ये सब कोई नहीं खाता. रूबी ये तुम ले जाना अपने घर." और मैं अवाक् रह गया था. मां ने कितनी मेहनत से यह बनाया था. कितने घंटे मेहनत करती रही थी बेचारी और बाऊजी भी तो जिद किये जा रहे थे, खन्ना की ये पसंद है, वो पसंद है. पता नहीं बंबई में उसे ये खाने को मिलते होंगे या नहीं. देख लें न यहां आकर! और रितु को देखो, क्या नखरे हैं. मंजू ने इतना शानदार कार्डीगन बनाकर दिया और वो किस तरह मुंह बनाकर बोली, "मु नहीं पहनना ये सड़ा हुआ कार्डीगन." और वह स्वेटर वहीं पटक अपने कुत्ते को गोद में लिये अपने कमरे की ओर चली गयी थी. सच, उ समय तो मेरा खून ही खौल गया था. मन हुआ था कि अभी अटै उठाकर चल दूं कहीं और. साला यह भी कोई तरीका है बात करने का

मन में हल्की-सी तसल्ली भी हुई थी कि अगर हम रईस नहीं हैं तो कम से कम इंसानी मूल्यों पर तो टिके हुए हैं, तहजीब से बात तो क सकते हैं, अब यही लोग मेरठ आये होते तो इनको बता देते कि मेजबानी क्या होती है. सारा परिवार इनकी जी-हुजूरी में एक टांग पर खड़ा होता क्या मजाल कि कोई जरा ऊंची आवाज में बोल कर तो दिखाये. बाऊजी की यही तो खासियत है. न तो किसी की बेइज्जती करते हैं, न अपनी होने देते हैं. अब उनको मैं ये सब बताऊंगा तो देखना-खन्ना अंकल से बातचीत तक बंद न हुई तो बात है. सवालों के जवाब में बीयर के घूं भरते हुए खुद से पूछता रहा. बीयर के सुरूर में खुद को, सबको कोसने के बाद मैं हल्का महसूस कर रहा था. सोचा, कल स्टेशन जाकर इंटरव्यू वाले दिन की टिकट की कोशिश करूंगा, ताकि फालतू में यहां दिमाग खराब न होता रहे.

दरवाजा अंकल ने खोला था. ड्राइंग रूम हल्की रौशनी थी. उनके हाथ में भरा हुआ गिलास था और ड्राइंग रूम के कोने में बने उनके शानदार बार में बत्ती जल रही थी. बार स्टैंड पर आइस-बॉक्स, सोडा फाउंटेन और खुली बोलत रखी थी. "यस यंग मैन", उन्होंने अपने गिलास में से लंबा घूंट लेते हुए पूछा, "कहां घूमकर आ रहे हो!" "कहीं नहीं अंकल, बरसात की वजह से सारा दिन घर पर ही रहा, अभी जरा नीचे तक घूमने निकल गया था." मैं उनसे नजरें नहीं मिलाना चाहता था, क्योंकि मूड अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुआ था और मैं नहीं चाहता था कि उन्हें पता चल कि मैं बीयर पीकर आया हूं. वैसे भी अपनी और फजीहत करवाने की इच्छा नहीं थी. बेशक अंकल न कोई ऐसी बात नहीं की थी, जिसे मैं अन्यथा लेता, लेकिन वे सुबह हो रहे पूरे ड्रामें में तो मौजूद थे. जब मैंने शहर देखने की इच्छा व्यक्त की थी तो वे भी तो मुझे गाइड कर सकते थे या रितु या ड्राइवर को मुझे घुमा लाने के लिये कह सकते थे, या फिर आंटी और रितु को चीजें रख लेने के लिये कह सकते थे. "तुम्हारा खाना तुम्हारे कमरे में रख है. हमें पता नहीं था तुम कितने बजे तक लौटोगे." उन्होंने गिलास खाली किया और तिपाई पर रखते हुए बोले, "हम डिनर पर बाहर इन्वाइटेड हैं. आंटी वगैरह जा चुके हैं मैं तुम्हारे लिये ही बैठा था." वे उठ खड़े हुए और बाहर जाते हुए बोले, "ओ.के. यंग मैन, सी यू टुमारो, गुडनाइट." मैं गुडनाइट कहकर अपने कमरे में आ गया.

सवेरे से फिर वही रुटीन चल रहा है, बरसात हो रही है और मैं कमरे में बंद हूं. रूबी एक बार सुबह पूछ भी गयी थी—वीडियो पर कोई फिल्म देखना चाहेंगे. लेकिन मैंने मना कर दिया था. फिल्म देखने का मतलब है—ड्राइंग रूम में बैठना और ड्राइंग रूम चूंकि सभी कमरों के बीच में पड़ता है, अतः सबकी निगाहों के बीच बैठना मुझे कतई गवारा नहीं था रितु के कमरे से अब म्यूजिक की आवाज आनी बंद हो गयी है, लगता है किसी किताब वगैरह में मन लग गया होगा. फ़र्स्ट ईयर में है रितु. सुंदर है, पर है अपनी मां की तरह नकचढ़ी. एक ही नजर में आप मालूम कर सकते हैं—मां-बाप की बिगड़ैल और जिद्दी लड़की है. बस ड्राइंग रूम में ही कल जो हैलो हुई थी, उसके बाद नजर तो कई बार आयी है लेकिन आंखें न उसने मिलायी हैं न मैंने ही जरूरत समझी है. खासकर कार्डीगन वाले प्रसग से तो मुझे उसकी शक्ल तक से नफरत हो गयी है.

इस घर में मुझे एक ही आदमी ढंग का लगा है—टीपू. सत्रह साल का टीपू देखने में खास जवान लगता है, स्मार्ट भी है. टैंथ में पढ़ता है. इतना अच्छा लड़का, लेकिन अफसोस कि वह गूंगा-बहरा है. समझता है वह भी सिर्फ अंग्रेजी. लिप मूवमूंट के सहारे. अपनी बात माइमिंग से ही

समझाता है या कभी-कभी लिखकर भी. उससे आज बहुत ही शानदार ढंग से मुलाकात हुई इंटरव्यू के सिलसिले में शाम को कुछ तैयारी कर रहा था कि दरवाजे पर वह दिखायी दिया. पहले तो मैंने पहचाना नहीं लेकिन जब अंदर आ गया और उसने हाथ बढ़ाया तो मुझे याद आ गया. कल जब मैं यहां पहुंचा था तो वह स्कूल जा रहा था. शायद पैसों की किसी बात को लेकर आंटी उसे डांट रही थीं. बाऊजी ने भी मुझे उसके बारे में बताया था कि खन्ना उसकी ट्रेनिंग और पढ़ाई की वजह से काफी परेशान रहते हैं.

उसने बहुत गर्मजोशी से मेरा हाथ थामा. मुझे बहुत अच्छा लगा. कोई तो है जो यहां शब्दों के बिना भी इतनी अच्छी तरह से कम्यूनिकेट कर रहा है. हम हाथ मिलाने भर में एक-दूसरे के मित्र बन गये. मुझे उसका आना अच्छा लगा. वह अचानक उठा और दरवाजा बंद कर आया. हालांकि उस वक्त हम दोनों और रूबी के अलावा घर में कोई और न था. उसने जेब से सिगरेट की डिब्बी और माचिस निकाली और एक सिगरेट ऊपर करके मेरे आगे बढ़ायी. अच्छा तो यह बात थी! सिगरेट कभी-कभार मैं पी लेता हूं. चार्मस मेरा ब्रांड भी है, परंतु यहां अंकल के घर पर रहने के कारण मैंने फिलहाल स्थगित कर रखी थी. अब सिगरेट देखकर तलब तो उठी लेकिन एक सोलह-सत्रह साल के लड़के के साथ इस तरह सिगरेट पीना न जाने क्यों अच्छा नहीं लगा—हालांकि ऑफर वही कर रहा था. मेरे मना करने पर उसे आश्चर्य हुआए उसके सिगरेट सुलगाने और पीने का अंदाज बता रहा था कि वह पुराना खिलाड़ी है.

उससे खुलकर बातें करना चाहता था पर कभी ऐसी स्थिति से वास्ता न पड़ा था कि माईमिंग के सहारे बात करनी पड़े या ऊंची आवाज में अंग्रेजी बोलते हुए होठों की सही मूवमेंट्स के जरिये अपनी बात समझानी पड़े. उसने इशारे से पूछा यहां किस सिलसिले में आया हूं. मैंने बताया यहां एक कंपनी में मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव के लिये इंटरव्यू देना है. कल इंटरव्यू है बेलार्ड पियर में. तभी उसने अपनी जेब से एक लड़की की तस्वीर निकाली. मुझे फोटो दिखाते हुए वह दिल पर हाथ रखकर मुस्कराया. मैं समझ गया कि वह उसकी स्वीटहार्ट की फोटो थी. लड़की निश्चय ही सुंदर और संवेदनशील लगी. मैंने नाम पूछा, उसने कागज लेकर उस पर बहुत सुंदर अक्षरों में लिखा—उदिता माई लव. और कागज को चूम लिया. मुझे हंसी आ गयी. पूछा, "तुम्हारे साथ पढ़ती है क्या!" उसने सिर हिलाया, "नहीं. फ्रेंड की सिस्टर है."

"वह भी तुम्हें चाहती है क्या!" मेरे पूछने पर उसने कुछ नहीं कहा, सिर्फ एक मिनट में आने का इशारा करके चला गया. थोड़ी देर में वापस आया तो उसके हाथ में कई चीजें थीं—दो-तीन किताबें, एक खूबसूरत पेन, सेंट की शीशी और कई छोटे-मोटे गिफ्ट आइटम. वह अपने हाथों में यह अनमोल खजाना लिये बहुत उल्लसित था.

मैंने पूछा, "और तुमने क्या दिया है उसे!" उसने आंख दबाकर कैमरा एडजस्ट और क्लिक करने की माईमिंग की.

"लेकिन इतने पैसे कहां ले लाये तुम?" जो कुछ उसने बताया, वह मुझे चौंकाने के लिय काफी था, "नयी साइकिल बेचकर और घर में बताया कि खो गयी." मुझे उस पर तरस आया. बेचारे को अपना प्यार इजहार करने के लिये क्या-क्या करना पड़ता है! मैंने यूं ही पूछा, "कभी पिक्चर बगैरह भी जाते हो", लेकिन तुरंत ही अपने सवाल पर अफसोस होने लगा—टीपू बेचारा पिक्चर कैसे इंजॉय कर पाता होगा लेकिन मुझे टीपू की मुस्कराहट ने उबार लिया उसने इशारे से बताया कि वे कई फिल्में एक साथ देख चुके हैं. मैं कुछ और पूछता इसके पहले ही टीपू ने मुझे घेर लिया—मेरी कोई गर्लफ्रैंड है क्या! आंखों के सामने मृदुभा का चेहरा उभर आया और याद आयी यहां आने से पहले उससे हुई आखरी मुलाकात. जब मैंने उससे पूछा था, 'तुम्हारे लिये क्या लाऊं बंबई से!' तो उसने कहा था, 'तुम सफल होकर लौट आना! मुझे और कुछ नहीं चाहिये.' मैं अभी उस मुलाकात के खयालों में ही डूबा था कि टीपू ने मेरा कंधा हिलाकर अपना सवाल दोहराया. मैं मुस्करा दिया, "हां, है एक" उसने तुरंत नाम पूछा, क्या करती है, कैसी है! उसकी आंखों में चमक थी. मुझे अच्छा लगा कि मैंने सिगरेट की तरह इस मामले में झूठ नहीं बोला है. मेरी गर्लफ्रैंड की बात जानकर वह खुद को मेरे और करीब महसूस करने लगा था. मैंने उसे बताया कि वह फिजिक्स में एम.एस-सी. कर रही है अभी. "और आप?" मुझसे पूछा.

"हम तो भई, बी.एस-सी. के बाद से ही काम की तलाश में भटक रहे हैं." उसने जेब से डिब्बी निकालकर एक और सिगरेट सुलगायी.

तभी उसे कुछ याद आया. वह सिगरेट छोड़कर अपने कमरे में गया और जब वापस आया तो उसके हाथ में पासपोर्ट था. उसने बताया कि अगली जनवरी में वह एक साल के लिये न्यूयार्क जा रहा है. उसे पापा के क्लब ने स्पांसर किया है स्पेशल ट्रेनिंग के लिये. कमरे में उसके आने से मुझे बहुत अच्छा लग रहा था. हमें बेशक एक-दूसरे की बात समझने में या अपनी बात समझाने में काफी दिक्कत हो रही थी, लेकिन फिर भी हम दोनों का अकेलापन कट रहा था. मेरा अकेलापन तो खैर दो-चार दिनों का था. वह खुद को अभिव्यक्त करने के लिये कितना परेशान रहता होगा! तभी उसने घड़ी देखी. बताया—उसके ट्यूटर के आने का वक्त हो गया है. उसने अपनी चीजें सहेजीं और फिर मिलने का वादा करके चला गया.

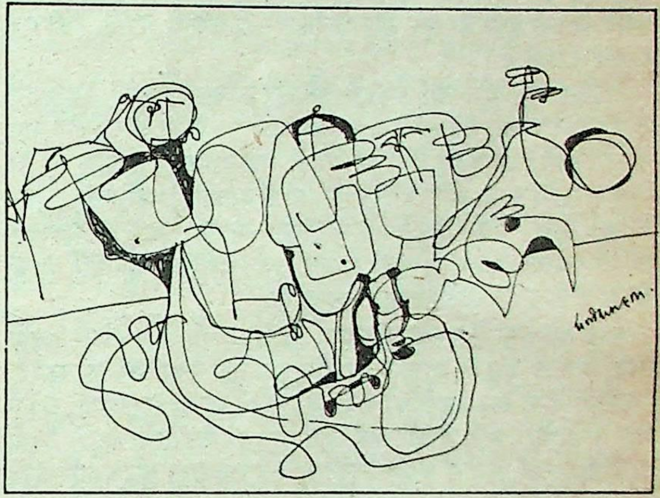

वह अपने पीछे कई सवाल छोड़ गया था. कितना अकेलापन महसूस करता होगा टीपू. क्या रितु इससे उस तरह लड़-झगड़कर लाड़ जताती होगी जिस तरह सामान्य भाई-बहन करते हैं? क्या आंटी अपने क्लब और पार्टियों से फुर्सत निकालकर इसके सिर पर हाथ फेरने या होमवर्क करवाने का टाइम निकाल पाती होंगी? क्या उस तरह के दोस्त होंगे जो इसे अपने खेलों, अपनी दिनचर्या में खुशी-खुशी शामिल करते होंगे? क्या उदिता और ट्यूटर के अलावा भी कोई उससे बात करता होगा? मैं तो यहां दो दिनों के अकेलेपन से ही टूट रहा हूं, बेचारा टीपू तो कब से अकेला है.

इंटरव्यू बहुत अच्छा हो गया है. मैं चुन लिया गया हूं और मुझे मेरे अनुरोध पर दिल्ली हेडक्वार्टर दिया गया है. दिल्ली, पंजाब और हरियाणा कवर करना होगा. अपाइंटमेंट लैटर दस दिनों में भेज दिया जायेगा. तुरंत ज्वाइन करना है और पंद्रह दिन की ट्रेनिंग के लिये फिर बंबई आना होगा. मेरी खुशी का ठिकाना नहीं है. मेरे संघर्ष खत्म हो रहे हैं. मनपसंद नौकरी मिल गयी है. अच्छी पोस्ट, बड़ी कंपनी, अच्छा वेतन और टूरिंग जॉब. मैं इतना उत्साहित हूं कि जी कर रहा है कि किसी भी व्यक्ति को रोककर उसे अपने सेलेक्शन के बारे में बताऊं

बाऊजी को तुरंत तार कर दूं, लेकिन तार तो कल ही पहुंच पायेगा. फोन कर दूं, पड़ोस के सचदेवा के घर, लेकिन उन लोगों से तो आजकल ठनी हुई है. कहीं मेरा नाम सुनकर ही फोन रख दिया तो मेरे तीस-चालीस रुपयों का खून हो जायेगा. मैं तो इसी वक्त और यहीं अपनी खुशी बांटना चाहता हूं. कितनी अजीब बात है असीम दुख के क्षण मैंने तनहा काटे हैं और कभी किसी को अपने दुख का हमराज नहीं बनाया है. आज मैं अपनी खुशी के क्षणों में भी अकेला हूं. कोई हमराज है ही नहीं यहां. हालांकि खुशी बांटने के लिये कब से तरस रहा हूं. घर पर तार डाला. मृदुभा को सांकेतिक भाषा में कार्ड डाला. थोड़ी देर मैरीन-ड्राइव पर टहलता रहा. मन बहुत हल्का हो गया है. समुद्र ज्वार पर है लगा, वह मेरी खुशी में शामिल है और लहरों के हाथ बढ़ाकर मुझे बधाई दे रहा है. बहुत खूबसूरत है शहर का यह हिस्सा. वापस आने का मन ही नहीं था. घर लौटते हुए शाम हो गयी है. जेब भारी है. एक मन हुआ कि, मिठाई का एक डिब्बा ही ले लूं अंकल वगैरह के लिये. लेकिन टाल गया. मुझे पता है मिठाई का भी वही हश्र होना है जो गाजर के हलवे और कार्डिगन का हुआ है. मुझे और फजीहत नहीं करानी अपनी, न ही मूड खराब करना है.

घर पर सिर्फ टीपू और रूबी हैं. मैंने टीपू को खबर सुनायी. वह तपाक से मेरे घले मिला. मैंने खुशी से उसका गाल चूम लिया और उसके बाल बिखरा दिये. वह बहुत खुश हो गया है. मुझे अच्छा लगा है कि घर पर सिर्फ टीपू मिला है. आंटी वगैरह होते तो मैं बताता ही नहीं. रूबी ने चाय के लिये पूछा, लेकिन टीपू ने मना कर दिया. बताता है आज की शाम हम सेलीब्रेट करेंगे. खाना भी बाहर खायेंगे. उसने मुझे हाथ-मुंह धोने का भी मौका न दिया. घसीटकर बाहर ले आया.

आज कोलाबा में घूमना चाहता हूं, थोड़ी शापिंग भी करनी है. सबके लिए कुछ न कुछ ले जाना है पर टीपू पता नहीं कहां लिये जा रहा है. उसने दो-एक बार टैक्सी को दायें-बायें मुड़ने का इशारा किया. टीपू ने मेरा हाथ थामा हुआ है और जैसे किसी धुन पर सिर हिला रहा है. टैक्सी ताज होटल के पोर्च में आकर रुकी है. अब तक ताज होटल और गेटवे को फिल्मों में ही देखा था. कभी किसी फाइव स्टार होटल में जाने का यह पहला ही मौका है. मैं मेरठ के एयरकंडीशंड होटलों में भी दो-एक बार ही कॉफी पीने ही जा पाया था. मैंने टैक्सी के बिल देने की बड़ी कोशिश की परंतु टीपू ने दिया और चेंज लिये बिना मुझे घसीटकर अंदर ले चला. मैंने जेब पर बाहर से ही हथेली के स्पर्श से महसूस किया कि पैसे सुरक्षित हैं हालांकि मुझे यहां के दामों के बारे में कोई जानकारी नहीं है फिर भी मैंने मन ही मन हिसाब लगा लिया है, सौ रुपये तक तो खर्च होंगे ही.

अंदर आते समय मेरा मन मध्यवर्गीय दब्बूपन की वजह से डर रहा है, लेकिन टीपू की चाल में ऐसी कोई बात नहीं है. वह लापरवाही के अंदाज में मेरी बांह में बांह डाले चल रहा है. मेरा सारा ध्यान आसपास की रौनक और शानोशौक्त पर लगा है. मेरी निगाहों में चकित भाव है जिसे मैं छुपाने की नाकाम कोशिश कर रहा हूं.

हम पहली मंजिल पर स्थित रेस्तरां में पहुंचे. इत्तिफाक से ठीक समुद्र वाली खिड़की के पास की एक मेज खाली मिल गयी. समुद्र अपना असीम विस्तार लिये हमारे सामने है. दूर खड़े बड़े-बड़े जहाजों की बत्तियां बहुत अच्छी लग रही हैं. छोटी बड़ी कुश्तियां ऊंची लहरों पर इतरा रही हैं. इससे पहले कि मैं मीनू पर निगाह फेंकू, टीपू ने दो बीयर का आर्डर दे दिया है. हमारी निगाहें मिलती हैं तो दोनों मुस्करा देते हैं. टीपू मुझसे मेरे इंटरव्यू के बारे में पूछता है. मैं बतलाता हूं कि किस तरह सत्ताइस लड़कों में से पांच को इंटरव्यू के बाद में भी रुकने के लिये कहा गया था.

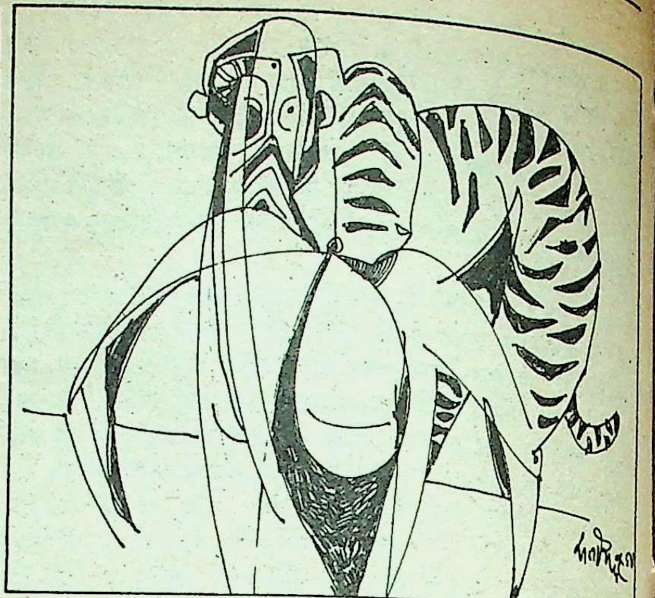

हम धीरे-धीरे सिप करने लगे हैं. मैं टीपू से उसके दोस्तों, उसके परिवारवालों के व्यवहार के बारे में पूछना चाहता था. परिवारवालों का नाम सुनते ही उसने मुंह बिचकाया. मुझे पहले ही आशंका थी कि उसे बहुत अच्छा ट्रीटमेंट नहीं मिलता. वह माइमिंग करके बताता रहा कि किस तरह पापा से बात किये हुए उसे कई-कई दिन बीत जाते हैं, सिर्फ हैलो, हाय से आगे वे कभी नहीं करते. अव्वल तो वे घर पर होते ही नहीं. क्लब, पार्टियां, बिजनेस ट्रिप्स वगैरह और जब घर पर होते हैं तो या तो अपने बैडरूम में बैठे रहते हैं और बिजनेस के फोन वगैरह करते रहते हैं या शाम के वक्त अपने बार में बैठे पीते रहते हैं. मुझे बहुत धक्का लगा जब उसने बताया कि मम्मी अपने कुत्ते को तो गोद में बिठाकर खाना खिलाती हैं लेकिन उससे कभी सीधे मुंह बात नहीं करती हैं. जब भी सामने पड़ती हैं किसी न किसी बात पर डांटने लगती हैं—'पढ़ता क्यों नहीं, बाहर क्यों घूमता रहता हूं, पैसे क्यों मांगता हूं. हर वक्त.' वह बहुत उदास हो गया है. उसका चेहरा बता रहा है कि अर्से से किसी ने प्यार से बात तक नहीं की है. जब मैंने रितु के बारे में पूछा तो उसका चेहरा और विकृत हो गया. वह बुदबुदाया, 'शी इज ए बिच.' तो मेरा अंदाज सही था. वह सचमुच बिगड़ी हुई लड़की थी. टीपू उसके बारे में बात करने तक को तैयार न था. बहुत कुरेदने पर उसने बताया कि वह पता नहीं किन आवारा लड़कों के साथ घूमती रहती है और ड्रग्स भी लेती है.

हम एक-एक बीयर ले चुके हैं. हल्का-सा सुरूर आने लगा है. टीपू ने इशारे से दो और बीयर का आर्डर दे दिया. मेरी इच्छा नहीं है और बीयर पीने की. साथ ही टीपू की उम्र देखते हुए भी डर रहा हूं कि कहीं उसे ज्यादा न हो जाये. थोड़ा-सा ध्यान जेब पर भी है. पर बीयर आ चुकी है. मैं उसका खराब मूड देखकर बातचीत को उदिता पर ले आया. उसका चेहरा कुछ संभला. लगता है, वह उदिता को जी-जान से चाहता है, वह उसकी छोटी-छोटी बातें भी बताने लगा. उदिता की चर्चा करते हुए वह इतना भावुक हो गया कि उसकी आंखों में पानी आ गया. उसके हाथ कांपने लगे. किसी तरह हमने बीयर खत्म की. मुझे डर लगने लगा है टीपू घर पहुंच भी पायेगा या नहीं. जब अंकल को पता चलेगा कि हम दोनों ने दो-दो बीयर पी हैं तो मुझे ही डांटेंगे. मैंने बिल मंगवाया. मैंने सौ का नोट निकालकर बिल के फोल्डर में रखा लेकिन टीपू अड़ गया—यह ट्रीट उसकी तरफ से है, वही 'पे' करेगा. वह हाथ-पैर चलाने लगा. मैं सीन क्रिएट नहीं करना चाहता था. बिल उसी ने दिया. हल्की-सी राहत भी हुई. मैं तय कर लेता हूं, डिनर के पैसे मैं दूंगा. टीपू उठा और लड़खड़ाते हुए मेरे साथ चलने लगा. वह ठीक तरह चल भी नहीं पा रहा है. मेरी चिंता बढ़ती जा रही है. बाहर आये तो दिखा कि नौ बज रहे हैं. मैंने टैक्सी रुकवायी तो उसने मना कर दिया. हम पैदल ही फिर कोलाबा

की ओर चल दिये. हालांकि मैं भी पूरे सुरूर में हूं लेकिन टीपू की वजह से मैं खुद को भूले हुए हूं. टीपू ने मेरा हाथ मजबूती से थामा हुआ है. मेरी निगाह सड़क के दोनों तरफ खड़ी सजी-धजी लड़कियों पर पड़ती है. पहले तो उन्हें देखकर हैरान होता हूं, तभी खयाल आता है, अरे! ये तो धंधा करनेवाली लड़कियां हैं. पर इस तरह सरेआम! उनकी तरफ देखते हुए भी मुझे अजीब लग रहा है. कुछेक लड़कियां तो काफी अच्छी लग रही हैं. टीपू भी अपने खयालों में मस्त चला जा रहा है. मेरे हाथ में कसा उसका हाथ अस्थिर है.

हम धीरे-धीरे कदम बढ़ा रहे हैं. तभी मैंने देखा कि एक खंभे की आड़ में खड़ी एक खूबसूरत लड़की हमारी तरफ देखकर मुस्करायी. निश्चय ही यह मुस्कराहट प्रोफेशनल है. उसके रंग-ढंग से प्रभावित होने के बावजूद मैंने उसकी तरफ ज्यादा ध्यान नहीं दिया है और आगे बढ़ गया हूं. लेकिन टीपू ने मेरे हाथ से अपना हाथ छुड़वा लिया और उसके पास चला गया. मैं चौंका और भौंचक-सा वहीं खड़ा रह गया. टीपू यह क्या कर रहा है? मेरा दब्बूपन मुझे उस लड़की के पास जाने से रोक रहा है. टीपू उससे इशारों से बात कर रहा है. मेरे पांव कांपने लगे हैं, असमंजस में पड़ गया हूं. वहीं बुत-सा खड़ा सब देख रहा हूं. इतनी भी हिम्मत नहीं जुटा पा रहा हूं कि टीपू का हाथ पकड़कर उसे वहां से हटाऊं. तभी टीपू मेरे पास लौटा. उसकी आंखों में एक अजीब-सी चमक आ गयी है. उसने मेरी सहमति चाही. मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूं. उसका हाथ पकड़कर आगे बढ़ना चाहता हूं पर वह वहीं मेरा हाथ पकड़कर अड़ गया है. आज आयी मुसीबत एक तो यह पहले ही होश में नहीं है. उस पर यह सब कुछ. मैं टीपू को प्यार से समझाता हूं, पर टीपू कुछ सुनने को तैयार नहीं है. तभी टीपू ने मुझे अपनी बाहों में भरा और मेरी मनुहार करने लगा. वह कुछ कहना चाह रहा है, पर उसके मुंह से गों-गों की आवाज निकलने लगी है. यह आवाज मैंने उसके मुंह से पहले कभी नहीं सुनी थी. लड़की अभी भी वहीं खड़ी है और कनखियों से हमारी तरफ देख रही है. मैं लड़की की तरफ बढ़कर उससे ही टीपू की हालत पर तरस खाने के लिये कहना चाहता हूं, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाता.

स्थितियां मेरी पहुंच से बाहर हो गयी हैं. मैं कुछ भी करने में खुद को असमर्थ पा रहा हूं. कहां तो हम सेलेब्रेट करने निकले थे और कहां टीपू यह सब नाटक करने लगा. सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र और यह सब धंधे. मैंने हथियार डाल दिये. लेकिन मैंने तय कर लिया है कि मैं इस सब में शरीक नहीं होऊंगा. अपने जीवन में सैक्स की शुरुआत इस तरह बाजारू ढंग से करने के बारे में मैं सोच भी नहीं सकता. टीपू ने टैक्सी रुकवायी है. लड़की आगे बैठी है. हम दोनों पीछे हैं. मैंने कनखियों से लड़की तरफ देखा—तेईस-चौबीस साल की और पढ़ी-लिखी लग रही है जो शायद गलत धंधे में आ गयी है. मैंने आंखें फिरा ली हैं. लड़की ने ही टैक्सी वाले को जगह बतायी. टीपू बहुत गंभीर है. उसकी मुट्ठियां तनी हुई हैं और वह कहीं नहीं देख रहा. हम दोनों ने एक बार भी आंखें नहीं मिलायी हैं.

टैक्सी कहां जा रही है, मुझे कुछ पता नहीं. लगभग 10 मिनट बाद जब हम टैक्सी से उतरते हैं तो टीपू अभी भी लड़खड़ा रहा है. लड़की एक पुरानी-सी इमारत की तीसरी मंजिल पर ले आयी है और बेल दबाकर दरवाजा खुलने का इंतजार करती है. लड़की को फिर कनखियों से देखता हूं. यह लड़की कालगर्ल कतई नहीं लगती. मैं कल्पना करता हूं, अगर यही लड़की मेरठ में होती और खुद को इस धंधे में नहीं डालती तो अच्छी-अच्छी लड़कियां इसके आगे पानी भरतीं. मैं जितना सोचता हूं, उतना ही परेशान होता हूं. मैं इस दलदल में कहां आ फंसा! किसी को पता चले कि सतीश बंबई में कोठे पर गया था तो क्या सोचे. तभी एक बूढ़ी औरत ने दरवाजा खोला. हमें देखते ही वह दरवाजा खुला छोड़कर भीतर चली गयी है. साधारण-सा ड्राइंगरूम, लेकिन साफ-सुथरा. मेज पर कुछेक पत्रिकाएं. लड़की हमें वहीं बैठने को कहकर भीतर चली गयी है.

थोड़ी देर में जब वह लौटती है तो वह गाउन पहने है.पर्दे के पीछे खड़े होकर उसने मुझे आमंत्रित किया. यह आमंत्रण बिल्कुल ठंडा है. मैं सकपका गया हूं.इसके लिये कतई तैयार नहीं हूं. मैं सिर हिलाकर मना करता हूं. कुछ कह ही न पाया. तभी टीपू मेरा हाथ पकड़कर पहले भीतर जाने के लिये मुझसे आग्रह करने लगा है. मैं मना करता हूं और टीपू को ही खड़ा करके भीतर भेज देता हूं. उसके शरीर का तनाव कम हो गया है पर नशा अभी भी बरकरार है. दरवाजा बंद कर दिया गया है और पर्दा फिर अपनी जगह आ गया है. मेरा नशा उड़ चुका है दिमाग शून्य हो गया है. मुझे कतई गुमान न था कि इतनी खुशनुमा शाम का अंत इस तरह से होगा और एक सोलह सत्रह साल का मासूम और अपाहिज लड़का मुझे इस तरह यहां ले आयेगा.

मैंने सोफे की टेक से सिर लगा लिया है और आंखें बंद कर ली हैं. तभी भीतर से टीपू की गों-गों की आवाज सुनायी देती है. मैं डर जाता हूं. दिमाग सुन्न हो गया है. सारी चीजें गडमड़ हो रही हैं. टीपू, अंकल, रितु उदिता, मृदुभा, भीतरवाली लड़की. सबके चेहरे तेजी से मानसपटल पर आ-जा रहे हैं. मुझे टीपू पर तरस आ रहा है. बेचारा इतनी कम उम्र में इन धंधों में फंस गया है. उधर रितु ड्रग्स के नशे में किसी और किसी बाहों में झूल रही होगी. और यह लड़की—उसके बारे में सोचना चाहता हूं पर कहीं लिंक जुड़ता. उसे इस वातावरण, से अलग किसी और वातावरण के फ्रेम में देखना चाहता हूं पर उसका चेहरा बदल जाता है. उसकी जगह कोई और चेहरा ले लेता है. सिर बुरी तरह घूम रहा है. आंखें बंद किये बैठा हूं, कमरे में हल्की रोशनी है, पर आंखों में जलन हो रही है. कम से कम लड़की को तो यह देखना चाहिये था कि वह कैसे मासूम बच्चे को फंसाकर लायी है. तभी गों-गों की आवाज आनी बंद हो गयी. मैंने फिर आंखें बंद कर लीं. जितना सोचता हूं, दिमाग उतना ही खराब होता है.

तभी खटके की आवाज से मेरी आंख खुली. वह लड़की दरवाजे पर खड़ी है निर्विकार-सी. मैं डर गया—तो क्या वह फिर मुझे आमंत्रि करने आयी है, पैसे एंठने के लिये. मैं कुछ कहूं, इसके पहले ही वह धम्म से सामनेवाले सोफे पर बैठ गयी है, ''सॉरी सर,'' वह कुछ कहना चाहती है पर सिर झुका लेती है. ''क्यों क्या हुआ!'' मेरी जान हलक में आ गयी है.

''आपके दोस्त को किसी लड़की की नहीं, मां की गोद की जरूरत थी. भीतर जाइये, वह सो रहा है.'' इतना कहते ही वह मुझसे नजरें चुराने लगती है.

मैं भीतर लपकता हूं. टीपू सोया हुआ है और लड़की उसे कंधों पर चादर ओढ़ा आयी है. मैं कमरे की पीली रोशनी में उसका चेहरा नजदीक से देखता हूं. उसके चेहरे पर तृप्ति का वही भाव है जो मां का दूध पीने के बाद शिशु के चेहरे पर होता है. मेरी आंखों के सामने आंटी का तुनकभरा चेहरा आ जाता है. ☐

प्रमाण पत्र

☐ राजेश शास्त्री

कचहरी के प्रांगण में लगी भीड़ ने एकाएक ध्यान आकर्षित किया देखते समय पीछे से एक बुझा हुआ स्वर सुनायी दिया—'बेचारा... मर... गया!'

यह किस्सा लच्छू भैया से संबंधित है.

लच्छू भैया जो कि म्यूनिसपैलिटी में वैक्सीनेटर पद से सेवानिवृत्त हुए थे, पिछले तीन-चार माह से पेंशन के लिए चक्कर लगा रहे थे... लेकिन अधिकारी हर बार यह कहकर लौटा देते कि अपने जीवित होने का प्रमाण पत्र ले आओ ☐

टाट का कफन

उसके भीतर के बवंडर ने शाम तक माथे की नसें तनतना दीं... वह बुरी तरह थक गया था... जिद इतनी धनी थी कि वह किसी के भी पास जाकर अपनी कैफियत बयान नहीं करना चाहता था... क्या कारण था कि उसे किसी का दया भाव नहीं चाहिए था...?

छाया : सौमित्र मोहन

□ नफीस आफरीदी

जन्म: 1 जून, 1946 कोटा (राज.)

सन् 1964 से निरंतर लेखन.

प्रमुख कृतियां: 'अग्नि कुंड', 'अपनी अपनी सीमाएं', 'धूप का दरिया' और 'विशिष्ट कहानियां' (कहानी संग्रह) 'खुले हुए दरीचे', 'फिर भी अकेले', 'एक थमा सच', 'वायदा खिलाफ' (उपन्यास) 'हमारा कोई नाम नहीं' (नाटक)

विविध: दो कृतियों पर फिल्में निर्माणाधीन.

संप्रति: 'हिंद पॉकेट बुक्स' एवं 'सरस्वती विहार' के संपादक के रूप में कार्यरत

संपर्क: 60, ब्रह्मनान स्ट्रीट, हापुड़, (उ.प्र.)-245101

उसने कभी सोचा भी नहीं था कि उसकी ऐसी दुर्गति होगी. उसके अस्तित्व को भी इतनी आसानी से नकार दिया जायेगा. वह बोझ बन गया था और उसे आगे तक ढो पाना उनके लिए असंभव था, जबकि वे लोग धनी-मानी थे. अच्छी-खासी हैसियत के मालिक थे, उसके लिए कुछ कर भी सकते थे, पर उनकी बातें उसे बेतुकी लगतीं. वे उसे अपनी तरह बना लेना चाहते थे.

उसके साले और भतीजे सब एक हो गये थे. पत्नी ने भी उसका साथ नहीं दिया था. होता भी यही है. औरतें पहले शादी के सपने बुनती हैं, फिर उस पर करोशिये से घर-गृहस्थी के बेल-बूटे काढ़ती हैं. पत्नी के दिल-दिमाग में भी यही समीकरण था.

कई दिन से लगातार सभी सिर जोड़कर बैठ जाते थे और घंटों उसे छठी का दूध याद दिलाने की साजिश रची जाती. हालांकि पत्नी उनके बीच नहीं होती थी, पर मन उसका वहीं अटका रहता. एक दिन उसने कहा भी कि ये लोग उसके बुरे में नहीं हैं, बल्कि उसकी बेहतरी के लिए मंत्रणा करते हैं. उसे बड़ा गुस्सा आया था. उसने पत्नी को बुरी तरह डांट दिया था कि वह उसके साथ गंवारों जैसी बातें न किया करे. यह मूर्ख-मंडली उसे अपमानित करना चाहती है. चूंकि वह औरत है, इसलिए मां जाये पूतों की तरफदारी करती है. बुनियादी तौर पर हर औरत की सोचें यहीं तक सीमित हैं. पत्नी ने बेचारगी से उसे देखा था, फिर उसकी आंखें डबडबा आयी थीं. वह बुरी तरह बौखलाया हुआ था, इसलिए भरी हुई आंखों का उस पर कोई असर नहीं हुआ था. वह सिगरेट सुलगाकर पिछवाड़े की बाड़ी में निकल आयी थी. उसके दिमाग की नसें तनतनाने लगीं थीं और वह भीतर-ही-भीतर बिफरा हुआ चहलकदमी करता रहा था.

उसका भी एक घर था, लेकिन गर्व करने के लिए कुछ भी नहीं था. एक फटेहाल बाप था और दमे से खोखली हुई मां थी, जिन्हें तरसती हुई हालत में छोड़ आया था. वह समझ गया था कि परंपराओं से जुड़ा भाई सब संभाल लेगा. वह छोटा था, तभी ड्राईवरी के पेशे में पड़ गया था. मां और पिता की देह-गंध उसे शुरू से मोहती थी. उन्हें सूंघता हुआ वह घर में घुसता था और रोटी-पानी से पहले मां की गोद में सिर रखकर आंखें मूंद लिया करता था. उसे तसल्ली थी कि इस जमाने में भी उसके घर में एक श्रवण कुमार है, पर जब वह चला तो जरा-सी देर में उसका सोचा हुआ खंडित हो गया. भाई दरवाजा घेर कर खड़ा हो गया था और गुर्रा कर बोला था, ''यह मत समझना कि जिंदगी भर इन्हें अपने कंधों पर ढोता रहूंगा. मेरे भी सपने हैं. नामा कमाना है. घर बसाना है.''

उस समय पिता उसे गलिया रहे थे और मां माथा पीट रही थी. उसे लगा कि श्रवण कुमार और उसके माता-पिता पुरातन नहीं हैं. इसी जमाने की पैदावार हैं और वह जमाना किसी को आसानी से नहीं छोड़ता. उसे कुछ भी गलत नहीं लगा था, लेकिन भाई का तरीका बहुत बेहूदा था. उसे गुस्सा आ गया. उसका हाथ जोर से झटक दिया और तुर्श लहजे में बोला था, ''मुझे अपनी जिम्मेदारी का एहसास है. कुछ सोचकर ही जा रहा हूं, समझे!''

वह झल्लाया हुआ अटैंची उठाये बाहर निकल आया था. पिता की गालियां और मां की आहें दूर तक उसका पीछा करती रही थीं. श्रवण कुमार की तरेरी हुई आंखों की सलाखें उसकी पीठ में चुभ रही थीं, पर उसने पलटकर नहीं देखा. उसके दिमाग में सवालों का ऊंचा पहाड़ था, जिस पर चढ़ना और बहुत कुछ हल करना शेष था.

वह ससुराल में आकर रहने लगा था, लेकिन साल बीतते न बीतते उसे निठल्ला और निकम्मा घोषित कर दिया गया था. उसे पड़े-पड़े संडियाने और मुफ्त में ससुराल की रोटियां तोड़नेवाला नामर्द तक कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी थी. उसने सास को कहते सुना था कि उनकी बेटी के भाग फूट गये. न जाने किस जन्म के कर्मों का फल उन्हें मिल रहा था. वह अपने पति से लड़ती थीं कि सब उन्हीं का किया-धरा

है. कुलीन घर और खूब पढ़े-लिखे लड़के पर ऐसे लट्टू हुए कि उनकी एक भी नहीं सुनी. कहते थे, ननकी जंटलमैन की घरेतन बनेगी. हाकिम बनेगा छोरा. राज करेगी बेटी. अब भुगतो अपनी करनी को! ...और ससुर सिर्फ ठंडी सांस भरकर रह जाते थे. उसके मन में तो आया था कि कहे कि अपनी एक बेवा बेटी को आत्महत्या कर लेने पर क्यों मजबूर होने दिया, जबकि धानसिंह पटेल उससे ब्याह करने के लिए उनके सामने कुत्ते की तरह रिरियाता फिरा था और बड़ा बेटा चौसर खेलने, सुल्फे की चिलम सुटकारने और रामबीरी पुतरिया के पीछे दौड़ने में सठिया गया था. तब सास की झल्लाहटें और ससुर की ठंडी सासें कहां गयी थीं? उसके मन में और भी बहुत सारी बातें सुगबुगाती थीं, पर वह भैंस के आगे बीन बजाने को निरर्थक समझने लगा था.

वह दिन कभी भुलाये नहीं भूलता, जब उसकी अपनी पत्नी ने पहली बार विरोध प्रकट किया था. उसकी आंखें दहक रही थीं. होंठ-टेढ़े पड़ गये थे. खूबसूरत चेहरे पर क्रोध तांडव नृत्य कर रहा था. उसने अटैची खोल डाली थी. सारे कपड़े इस तरह खींच फैंके थे, जैसे द्रोपदी का चीर हरण कर लिया हो. कविताओं की तीन डायरियां निकालकर उसने उसी के सामने चिंदी-चिंदी करना शुरू कर दिया था.

कविताओं का फाड़ा जाना उसके लिए असहय था. हलक के बल चीखा था वह, "रुक जाओ, ननकी! वरना मैं...!"

वह उससे भी अधिक जोर से दहाड़ी थी, "तुम बाड़ी में बैठकर कविता रचो, नद्दी किनारे किताब बांचों, धीरू माली की बेटी से अमराई में हंसी-ठट्ठा करो और मैं चुप बैठी रहूं? घर-कुनबे में सबकी मैं सुनूं और हरेक की चिरौरीं करूं. परमात्मा ने यही रचा है मेरे भाग में और तुमने क्या रचा है मेरे लिए? ...यह ...यह ...और यह!" और उसने लाल डायरी से वे तीनों कविताएं भी फाड़ डालीं थीं, जो उसने बहुत मेहनत से ननकी के नाम लिखकर सुहागरात में उसे सुनायी थीं और अपनी ओर से सौगात के रूप में उसे सौंप दी थीं, क्योंकि ऐसे मौके पर देने के लिए उसके पास इससे बढ़कर और कुछ नहीं था.

पत्नी का एक-एक शब्द उसे फाड़ खाने को दौड़ा था. उसके अपने भीतर बहुत सारी बातें उबली थीं. यह कि उस जैसी औरतें रिश्तों को सिर्फ गंवई ढंग से सोच सकती हैं. यह कि नासूर से मरने जा रही धीरू माली की बेटी को हंसाने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता. यह कि एक दबैल औरत मिन्नत-चिरौरी करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती.

उसे कुछ भी नहीं सूझा था. बौखलाया-सा उसे घूरता रहा और फिर हमेशा की तरह पलायन कर गया. उस रात उसने दारू के अड्डे में बैठकर शराब पी और सारी रात अमराई में गुजार दी थी. वह पेड़ों, पंछियों, अंधेरे आसमान और चमकते सितारों पर न जाने क्या-क्या बकता-झकता रहा था. सवेरा होते-होते उसके भेजे में अच्छी तरह बैठ गया था कि ये मोहिनी सूरत वाली औरतें अपने मामले में मर्द को जन्मजात मूर्ख समझती हैं. उसने जबड़ा भींचकर गर्दन झटकी थी और बड़बड़ाया था कि वह ऐसे मर्दों की जमात पर लानत भेजता है, जिन्हें औरतें इजारबंद डालकर पहने हुए होती हैं.

इधर-उधर भटकने के बाद दोपहर को वह घर लौटा तो और भी लुट चुका था. किसी ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी. बड़ा साला उसकी किताबें ग्राम पंचायत के पुस्तकालय में दान कर आया था. छोटे ने वर्षों से संभालकर रखी दस्तावेजी चिट्ठियां फाड़ डाली थीं. उसने मां की जमा पूंजी से बत्तीस पेजी एक छोटी-सी कविता पुस्तिका छपवायी थी. पुस्तिका की सौ एक प्रतियां बची होंगी. भतीजे उन्हें गांव-भर के बच्चों में बांट आये थे.

उसे भयानक रूप से गुस्सा आया था, पर वह जानता था कि गुस्से का प्रदर्शन व्यर्थ होगा. ये वे लोग थे, जिन्होंने बीच चौपाल में मलवा को नंगा कर सिर्फ इसलिए चमड़ी उधेड़ दी थी कि वह उनके खेत से एक वक्त की रोटी के साथ के लिए बथुवे का साग उखाड़ लाया था. ये दिल खोलकर कर्ज बांटते थे और वसूलते वक्त कफन भी खसोट लेते थे उसका गुस्सा उनके लिए ठेठर-ठिठौली से कम नहीं था, इसलिए हमेशा की तरह पी गया था.

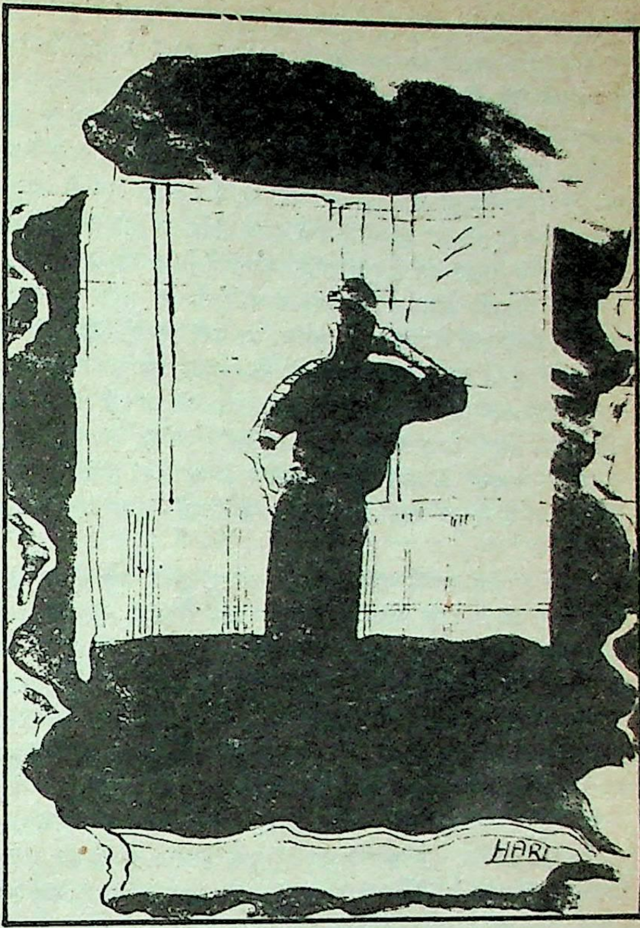

उसका जीना दूभर हो गया था. उसने सोचा, ऐसी अपमान-भरी जिंदगी से तो मर जाना बेहतर है. उसने अगले ही दिन धमकी दे डाली कि वह नदी में कूद कर जान दे देगा. इस पर छोटे साले ने हंसकर कहा था कि नदी तो सूखी पड़ी है. बरसात तक इंतजार करना पड़ेगा. उसने तत्काल संशोधन करके नदी की जगह कुएं की बात कह दी थी. बड़ा साला भी कम नहीं था. हंसी में उसने भाई का साथ दिया था और उससे एक कदम आगे की बात बोला था कि कुएं में कूदकर तो औरतें जान देती हैं. यह सुनकर उसकी मर्दानगी को ठेस लगी थी और उसने तय कर लिया था कि मरेगा, तो मर्द की मौत मरेगा. नतीजा यह निकला कि उसने मरने का इरादा ही बदल दिया. उसने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब इस घर में ही नहीं, गांव में भी एक पल नहीं रहेगा. जहां उसे कुत्ता समझा जाये, वहां लौटकर कभी थूकेगा भी नहीं.

उस रात उसकी पत्नी बहुत रोयी थी और हमेशा अशुभ की कल्पना से कांपते रहने वाले ससुर हनुमान चालीसा का पाठ करते रहे थे. सवेरे उठकर जमाने भर के बूढ़ों की तरह ही ससुर ने तोता रटंत उपदेश देना शुरू कर दिये थे. दुनियादारों की तरह ऊंच-नीच समझायी थी. खेत-खलिहानों में हाथ बटाने की सलाह दी थी, लेकिन अब वह मर्द की तरह जीना चाहता था, इसलिए ससुर को टका-सा जवाब देकर किस्सा तमाम कर लिया था.

इसी के साथ वह जोर-शोर से तैयारी करने लगा था. सबसे पहले उसने अपनी डिग्रियों की धूल झाड़ी, जो दुष्टों द्वारा नष्ट किये जाने से बची रह गयी थीं. इस झाड़-पोंछ के साथ उसने यह जताना चाहा कि

जिसका कोई सहारा नहीं होता, उसे आगे बढ़कर डिग्रियां ही थाम लेती हैं. उसे अपनी वह कविता याद आयी, जो किसी समय उसने डिग्रियों के खिलाफ लिखी थी. पत्नी वह डायरी फाड़ चुकी थी और उस कविता का अब कोई सबूत नहीं था. इस बार उसने अपने कपड़े खुद धोये थे और लोटे के पैंदे से प्रेस भी कर लिये थे. पत्नी को इतना भी नहीं करने दिया था कि उन कपड़ों को तहा कर अटैची में रख दे. उसकी तमाम मिन्नत-चिरौरियों को उसने सिरे से नकार दिया था और कहा था कि दुनिया में ऐसे ढेरों मर्द हैं, जो अपनी मादा के बिना भी जी लेते हैं.

पत्नी उसकी ब्याहता थी एक आम पत्नी की तरह ही. भारी दिल-गुर्दा भी नहीं था उसका, इसलिए डर गयी और रो पड़ी. पांव भी पड़ी और कस्में भी दे डालीं, पर वह तो पलायन की ठान चुका था.

वह बार-बार जतलाता रहा था कि घर छोड़कर जा रहा है, पर कोई भी उसकी तैयारी से आतंकित नहीं हुआ. तीसरे दिन वह चल पड़ा.चलते समय उसने ससुर के चरण छुए. वह खर्चे के लिए कुछ रुपये देने लगे. उसने तैश में आकर कहा कि वह खैरात के टुकड़ों पर पलनेवाला जीव नहीं है.

इस घड़ी उसे अपनी पत्नी विचलित नजर आयी, जैसे उसका सब कुछ लुटा जा रहा हो. वह दरवाजे की आड़ में खड़ी थी. आंखों में मोटे-मोटे आंसू थे और होंठें से सिसकियां बिखर रही थीं. दिल का पथरीला बनाने के बावजूद वह विगलित हो उठा और उसके पास चला आया. उसने मुट्ठी में भिंचे कई छोटे-छोटे नोट उसकी तरफ बढ़ा दिए और अपनी कसम दे डाली कि न लो, तो उसके मरे का मुंह देखो! इस बार उसने कसम मान लेना ही उचित समझा.

डरी हुई पत्नी हिचकियों के बीच उससे लिपटी थी. वह तसल्ली दे रहा था कि उसका विश्वास करे. उसने तो गुस्से में कहा था कि वह उसके बगैर जी सकता है, लेकिन पत्नी का भरोसा डिगा हुआ था. वह उसे सनकी समझती थी और उसका खयाल था कि सनक में कोई कुछ भी कर सकता है.

वह यहां आया तो उसने सबसे पहले ठौर-ठिकाने की सोची और सीधे शिव मंदिर का रास्ता लिया. हालांकि वह शिव भक्त नहीं था. भक्ति-वक्ति से कभी उसका मतलब भी नहीं रहा, पर मंदिर के लंगर और ठहरने के लिए कुठरिया पर उसे भरोसा था. कुछ समय रहने-खाने का जुगाड़ बैठाने का इससे सस्ता नुस्खा उसके पास नहीं था. पंडाजी उसके पिता के गुरु भाई थे. विपद में देखकर उसे हाथों-हाथ ले लिया. वह भूखा था, सो डटकर शिवजी का प्रसाद खाया और लंबी तानकर सो गया.

कुठरिया में बैठकर उसने अपनी उन कविताओं को नयी डायरी में लिखना शुरू किया, जो उसे याद रह गयी थीं. जब-जब भी लिखने बैठता, तो उसे डायरियां फाड़ती हुई एक जाहिल औरत नजर आती या उसका मां जाया श्रवण कुमार और वह मन-ही-मन उन पर कुढ़ने लगता. खाने के लिए लंगर था. पीने के लिए पंडाजी के वचनामृत थे. गांव की काढ़े जैसी दो वक्त की चाय छूट चुकी थी. इधर पैसे भी खत्म हो गये, तो सिगरेटों के सिलसिले ने भी दगा दे दिया. पंडाजी से ही उधार मांगता और बीड़ी के बंडल ले आता. बीड़ी में उसे मजा आने लगा था.

वह पड़ा-पड़ा बीड़ियां धौंकता रहता और उसे याद आता कि उसकी मां घर के काम-काज में खटती हुई सिर्फ एक ही राग अलाप रही होती थी कि हारी-बीमारी में भी बहू का सुख नहीं. ब्याह रचा दिया और आप है कि बहू को मायके में डाले हुए है. उसे यह एहसास नहीं था कि वह अर्जियों के पुलंदे उठाए सवेरे निकलता है और रात को हांफते हुए खाली हाथ लौट आया है. बहू का बोझ वह उठा सकती होंगी, पर वह तो अर्जियां ही ढो रहा था. उसे ठंडी सांसें भरने वाला बूढ़ा ससुर याद आता, जिसने क्लर्की की एक मामूली-सी नौकरी के लिए रिश्वत में दिये जाने वाले सिर्फ पांच हजार रुपये नहीं दिये थे और कह दिया था कि घर का ही इतना कारोबार फैला है, उसे ही देखे-भाले. यानी वह भी उनकी तरह मरखना बैल और कफन खसौट बन जाये. ऐसी ही न जानें कितनी बातें उसे याद आती और वह बड़बड़ाता बीड़ियां धौंकता हुआ थककर सो जाता.

एक दिन पंडाजी भी उकता गये.करते भी क्या? सेठजी बिगड़ने लगे थे. भगवानजी के लंगर पर कोई स्थायी डेरा थोड़े ही डालता है! जवार-पथार से भगत-जन आते हैं, कुछ दिन टिकते हैं, संगतों में बैठते हैं, दोनों समय प्रसाद पाते हैं और चलते बनते हैं. एक यह निठल्ला है कि न भगवत भजन, न आरती-पूजा. दिन भर कविताई करना, बीड़ियां धौंकना, अर्जिया लेकर घूमना और टांगें पसार कर सो रहना. ऐसे भक्तिहीन आदमी को लठिया कर निकाल देने की बात तक कह बैठे थे सेठजी. आखिर ठहरे मंदिर के प्रबंध न्यासी. पंडाजी उनके आदेश की अवहेना कैसे करते! बरसों से मंदिर के मुख्य पुजारी थे. घर-बार चल रहा था. उसे और टिकाए रखकर सेठजी का कोप-भाजन बनने की शक्ति नहीं थी उनमें. उसे लठियाया तो नहीं. बस, कुठरिया से ट्रंक, दरी-कंबल, कागज-पत्तर सब बाहर फेंक कुठरिया में ताला डाल दिया और उसके आगे हाथ जोड़ लिये

उसे पंडाजी पर बेहद गुस्सा आया था और सेठजी के व्यवहार पर लंबा-चौड़ा भाषण झाड़ दिया था. उसने सख्ती से कहा था कि दुनिया बहुत बड़ी है. भगवान के मंदिर में शरण नहीं मिलेगी, तो क्या हुआ? मर तो जायेगा नहीं. अभी उसे मरना नहीं है. मर्दों की तरह जीना है.

उसके दिमाग में गुबार भरा हुआ था. पहले जब भी भरा होता था वह किसी को भी पकड़ लेता और अपनी कविताएं या विचार सुनाकर हल्का हो लेता था, पर अब वह जिद की हद तक चुप था और भीतर ही भीतर उबल रहा था. सभी लोग उसे अकल से पैदल लग रहे थे. किसी भी पैदल को मात देने का उसका मन नहीं था.

वह सड़कों और गलियों में घूमता-भटकता रहा. भूख और प्यास ने उसे दबोच रखा था, पर उसने किसी नलके पर पानी तक नहीं पिया. रोटी के लिए तो जेब में पैसे ही नहीं थे. बीड़ी की तलब बार-बार लगती

घटना कथा

बकरा

□ डा. साम्बे

जाड़े की सुबह थी. अब शहर चैन की सांसें ले रहा था. मोपेड पर हम अपने साथी के साथ भीखनपुर चौक से गुजर रहे थे. सवेरे-सवेरे यहां हरी सब्जियां, मांस मछलियां बिक रही थी. लोग खरीदारी कर रहे थे.

हम लोग तिलककामांझी जा रहे थे. चौक के निकट एक ओटो रिक्शा खड़ा था. चारों तरफ भीड़ थी. लुंगी पहने एक आदमी ओटो रिक्शा के भीतर से किसी को खींच रहा था. इस खींचा-तानी में कई लोग शामिल थे!

जो सुना था, क्या वही हो रहा है? यह सवाल एक साथ हम लोग के मन में उठा. थोड़ा दूर हटकर मेरे साथी ने मोपेड रोकी. यह रेशमी शहर फिरकापरस्ती के प्लेग से चंगा तो हो चुका था, लेकिन 'घिच्चा' की महामारी फैली हुई थी. 'घिच्चा' यानी राह चलते हुए को खींचकर साफ कर देना!

क्या वही हो रहा है? सवेरे-सवेरे! यह सोचकर हमारे रोंगटे खड़े हो चुके थे, चेहरे का रंग उड़ गया था. दम साधकर यह नजारा हम लोग देख रहे थे. और खतरे की स्थिति में जान बचाकर भागने के लिए मेरे दोस्त ने मोपेड को तैयार रखा था.

किसी को ओटो रिक्शा के भीतर से खींचकर निकालने में वे लोग भिड़े हुए थे! हमें ऐसा लगा कि वे लोग अब हमारी तरफ मुड़ेंगे और हमारा भी 'घिच्चा' आज हो जायेगा. यह सब कुछ सोच ही रहे थे कि हमारी आंखों ने देखा कि एक बकरे को हलाल कर दिया गया है और खून का फव्वारा निकल रहा है.

ऐसा लगा कि अब हमारी ही बारी है. थोड़ी देर बाद अब हमें भी यहां बकरे की तरह टांग दिया जायेगा. यह संभावना सच हो, इससे पहले मेरे मुख से ये शब्द गर्भाशय के शिशु की भांति निकल गयी कि... 'भागो'... 'जल्दी से' ... 'सेना को खबर करो!' 'मोपेड क्यों रोके खड़े हो?

मेरा साथी घबरा गया. उसने मोपेड आगे बढ़ानी चाही. परंतु मोपेड आगे नहीं बढ़ी. हम सड़क पर खड़े थे. उसने मोपेड को छोड़ दिया. मोपेड जमीन पर चार-चित्त हो गया. हम लोग दौड़ने ही वाले थे कि ओटो रिक्शा के भीतर से एक काले रंग का बकरा मिमियाते हुए निकला.

एक अरसे बाद ओटो से आदमी नहीं, बकरा खींचा गया!□

इसके साथ ही वह चौकन्ना होकर सड़क पर चलते लोगों को देखने लगता कि कौन व्यक्ति हो सकता है, जो मांगने पर एक बीड़ी पिला सकता है. उसने एक रिक्शेवाले, एक फेरीवाले, एक पालिशवाले छोकरे, एक कुली और एक बेलदार से बीडियां लेकर पीं. उसे तसल्ली हुई कि ये दो पैसे के आदमी सचमुच बड़े आदमी होते हैं, इनका बस चले, तो जान भी निकालकर दे दें.

कुछ दिन से उसे हल्का ज्वर था. दवाई कुछ ली नहीं थी. कमजोरी-सी महसूस होती थी, पर इसकी परवाह नहीं की. वह सोचता, न जाने कितने लोग हैं जो दवाई के अभाव में जी लेते हैं और मर भी जाते हैं. एक वही तो नहीं है, जो अपनी फिक्र में मरता फिरे!

उसके भीतर के बवंडर ने शाम तक माथे की नसें तनतना दी थीं. आंखों के आगे अंधेरा-सा छा गया था और कानों में एक साथ असंख्य झींगुर बेसुरा राग अलाप रहे थे. वह बुरी तरह थक गया था. अधिक भटकने की ताकत नहीं रह गयी थी. जिद इतनी धनी थी कि वह किसी के भी पास जाकर अपनी कैफियत बयान नहीं करना चाहता था. उसे किसी का दयाभाव नहीं चाहिए था.

पैरों में लड़खड़ाहट झूलने लगी, तो वह एक उजड़े हुए पार्क में घुस गया और एक कोने में कटे हुये पेड़ की तरह गिर गया. नीचे सूखे पत्ते तिनके कागज के टुकड़े और दूसरी तरह का कूड़ा करकट चरमराया जिसका उसे एहसास भी नहीं था. उस पर एक जुनून हावी था. आत्म पीड़न ने उसके शरीर को पस्त कर दिया था, लेकिन प्रतिकार का बीज पेड़ बन रहा था. वह सबसे, सारी दुनिया से लड़ना चाहता था. वह बता देना चाहता था कि सारी व्यवस्था ही दोगली है. हर कोई हर किसी को याचक की मुद्रा में खड़ा देखना चाहता है और दूसरे पर अहसानों का बोझ लादकर झूठे अभिमान से भर उठना चाहता है. वह ऐसे लोगों से समझौता नहीं करेगा. अपनी नकेल किसी के हाथ में नहीं थमायेगा. सोचते-सोचते उसे झपकी आ गयी. वह रात भर सोता रहा.

उसकी नींद निर्विघ्न पूरी हुई. आंखें पट से खुल गयीं. जैसे किसी ने बटन दबा दिया हो. वह उठकर बैठ गया. उसे भूख लगी थी, प्यास भी. उसने आंखें मिचमिचा कर देखा. सामने एक हेंडपंप था, जिसका हत्था उखड़ा था. लगता था, जैसे बरसों से बेकार हो. वह हंसने लगा. उसे अपने आप पर हंसी आ गयी थी, क्योंकि वह खुद भी हत्थे से उखड़ चुका था और गिरवी पड़ी जिंदगी जी रहा था. लेकिन अब यह नहीं होगा. वह मर्द की तरह जियेगा, अपने बूते पर, सिर्फ अपने ही. उसके जबड़े भिंच गये थे और एक बार फिर जुनून ने उसका गला पकड़ लिया था.

वह अब सारे शहर में मशहूर हो गया था. सड़कों, गलियों, मौहल्लों के लोग उसे पहचानने लगे थे. बूढ़े, बच्चे, औरतें, पलिसवाले, रात के चौकीदार और कत्ते भी. उसके कपड़े फटकर तार-तार हो चुके थे. दाढ़ी किसी झब्बे की तरह बढ़ गयी थी. बाल झाड़-झंकाड़ की तरह हो गये थे. उसकी लाल-लाल आंखों में गीजड़ भरा रहता और बांछों में झाग. उसे कहीं से एक लठिया मिल गयी थी, जिस पर उसने सुतलियों से गूंथकर बोरी का झंडा बना लिया था.

अपना झंडा लिये वह सवेरे से रात तक चक्कर लगाता रहता. कहीं किसी चौराहे या गली के नुक्कड़ पर झंडा टेककर खड़ा हो जाता और धुआधार भाषण देने लगता. उसके भाषण जबर्दस्त होते. लोगों को उसके विद्वान होने में कोई शक नहीं था, बल्कि उन्हें अफसोस होता कि अच्छा-खासा नौजवान पागल हो गया. उनकी राय थी कि यह इतना अधिक पढ़ने का नतीजा है, जितने को तातकवर से ताक्तवर दिमाग भी नहीं झेल सकता.

उसके भाषण लोग खड़े होकर सुनते. सुनते-सुनते उन्हें लगता कि उनके दिमाग की चूलें हिल जायेंगी. इतनी भारी भरकम बातें उनके भेजे में उतरने वाली नहीं थी. इसी तरह सुनते रहे, तो खुद पागल हो जायेंगे. दो-चार मिनट सुनकर लोग चलते बनते, पर उसका भाषण घंटों की रफ्तार से जारी रहता. भाषण के इन दौरों ने उसका गला बांस की तरह फाड़ दिया था. चिंघाड़ों के कारण मुंह से झाग उफनने लगते. गले में असंख्य कांटे उग आते और प्यास की सलाखें गले पर चुभने लगतीं. कभी-कभी इस दशा में उसे चक्कर आ जाते और वह धड़ाम से गिरकर फैल जाता. वह मरखना बैल नहीं था, इसलिए लोग उसे संभाल लेते, लेकिन जैसे ही उसे होश आता, वह फिर तनकर खड़ा हो जाता, क्योंकि वह दया का पात्र नहीं बन सकता था. उसे मर्द की तरह अपने बूते पर जीना था.

दुनिया को पहले भी उसका नाम मालूम नहीं था और अब भी, अतः सुविधा के लिए उसको झंडा पागल कहने लगे थे. लठिया पर सुतली से बंधी बोरी उसका झंडा था. वह अपना झंडा हिलाता और नारा लगाते हुए कहता, "यह बोरी यानी टाट है, जिस पर गरीब सोता है, जिसे पहनकर अपनी इज्जत ढांकता है और जिसे अपना कफन बनाता है. यह टाट जन्म से लेकर मरण तक गरीब का साथ नहीं छोड़ता, और यह लाठी अमीर की है, जो गरीब पर बरसती है और जिंदगी भर बरसती है. इसीलिए सुतली ने इन दोनों को गूंथा हुआ है. सारी दुनिया में ऐसा ही है. यह देश भी अछूता नहीं है. लोग मुझे पागल कहते हैं, पर मैं पते की बात कहता हूं. कोई मुझे समझता नहीं. एक दिन मैं समझाते-समझाते पागल हो जाऊंगा कि इस दोगली व्यवस्था से कभी समझौता मत करो. अपने बूते पर मर्द की तरह जियो!"

उसे भूख भी लगती थी और प्यास भी. प्यासा होता तो किसी भी नलके पर पी लेता और कहता कि यह जनता का नलका है, किसी की बपौती नहीं. वह किसी के दरवाजे पर पानी मांगने नहीं गया, लेकिन भूख लगती तो जाना पड़ता. उसे झुंझलाहट होती कि जनता के नल से रोटियां क्यों नहीं टपकतीं या जंगली झड़बेरियों में रोटियां क्यों नहीं उगतीं? रोटियों को वह पेड़ से नहीं जोड़ता था, क्योंकि उसे मालूम था कि झड़बेरियों की तरह पेड़ लावारिस नहीं होते. पेड़ सरकार के होते हैं या किसी मालिक के. वह रोटी के लिए किसी दरवाजे पर जाता तो उसकी पहली शर्त होती कि उसका भाषण सुना जाये. कोई उसके भाषण से भागता तो वह उसके दरवाजे से भाग खड़ा होता. उसका कहना था कि

वह श्रम की रोटी खायेगा. उसे खैरात नहीं चाहिए. जो उससे भाषण सुनेगा, उसी से रोटी लेगा. आखिर उसे अपने बूते पर मर्द की तरह जीना है.

एक बार उसका छोटा भाई ट्रक चलाते हुए उधर से गुजरा. वह एक चौराहे पर भाषण झाड़ रहा था. भाई ने उसे देखा तो उसका श्रवण कुमार जाग उठा. ट्रक से माल उतरवाना और आगे के लिए लोड करवाना, सब भूल गया. ट्रक एक तरफ खड़ा करके उससे जा लिपटा. रात-दिन उसके पीछे-पीछे फिरता रहा, पर वह उसे भी भाषण पिलाता रहा कि उसे अपनी जिम्मेदारी का एहसास है. थक-हारकर वह लौट गया, फिर तो उसकी मां आयी, ससुर और पत्नी ने भी आकर हजार तरह के मान-मनौबल कर लिये, पर उसने अपनी मर्दानगी का झंडा ताने रखा. जब किसी का बस नहीं चला तो उसके साले आये और उसे बांध-बूंधकर बैल गाड़ी में डाल ले गये.

लेकिन एक दिन फिर उसे शहर की सड़कों पर देखा जाने लगा. उसका झंडा कहीं खो गया था. नया झंडा बनाने के लिए वह पगलाया-सा फिरता रहा. लड़कों को पता चला, उन्होंने उसका कष्ट दूर कर दिया. आन-की-आन में नया झंडा बन गया. उस दिन वह बहुत खुश हुआ और दिन भर आज के लड़कों पर ही भाषण देता रहा कि बूढ़े व्यर्थ में ही इस पीढ़ी को दोषी ठहराने और उसे बर्बाद करने पर तुले हैं.

वह गांव से चुपचाप भाग आया था. उसके पीछे साले फिर आये, पर इस बार वह इमली के पुराने पेड़ की सबसे ऊंची शाख पर चढ़ गया और उन्हें कूद कर आत्महत्या करने की धमकी दे डाली. उसने यहां तक कहा कि उसके पास मर्द की जबान है, जो कह दिया वह करके दिखा देगा. साले यह हत्या अपने सिर नहीं ले सकते थे, इसलिए चुपचाप लौट गये.

उसके भाषण उसी तरह चलते रहे. अब वह चिड़चिड़ा अधिक हो गया था. बहुत तीखा और सख्त बोलने लगा था. पहले वह दुनिया-जहान की बातें करता था, जिनकी किसी को परवाह नहीं थी. धीरे-धीरे ये बातें स्थानीय लोगों पर केंद्रित होती चली गयीं. धन्ना सेठ, नगर कोतवाल, प्रशासनिक अधिकारी और छटे हुए बदमाशों की बखिया उधेड़ते हुए उसे सिर्फ अपने मर्द होने का एहसास भर होता. उसके बदले हुए तेवरों ने शहर में तहलका मचा दिया. वह धमाकेदार अखबार बन गया था और लगातार धज्जियां उड़ाता जा रहा था. शरीफ शहरी उससे डर गये थे और कतराने लगे थे. बदमाश लाम बंद हो रहे थे और मौके की तलाश में थे.

एक दिन किसी वाहन से कुचली हुई उसकी लाश सड़क पर फैली पड़ी थी. पंचनामे के बाद उसकी लाश और झंडा पुलिस ले गयी. शाम पड़े सड़कों पर रद्दी कागज बीननेवाली बुढ़िया आयी. उसने कागजों का एक पुलिंदा देखा और उठा लिया. सुतली खोलकर लिखावट पर मोटे शीशोंवाली ऐनक के पीछे से आंखें टिपटिपायीं. सभी कागजों पर अर्जियां लिखीं थीं, जिन्हें उसने भेजना बंद कर दिया था. □

लघुकथा

रिश्ते

□ जगदीश कश्यप

जब वह कमरे में दाखिल हुई तो उसने दिन भर के आफिस के बोझ और परेशानियों को चेहरे पर पानी की छींटें डालकर धोया और तौलिए से सुखा डाला. इस तात्कालिक ताजगी वाली उमंग में उसने स्टोव सुलगाया और फ्राइपैन में चाय के अंदाज वाला पानी डालकर कुछ गुनगुनाने लगी. स्टोव की आवाज सुनकर सामने लेटी मां कराहने लगी.

"कैसी हो मां?" उसने चुलबुले किंतु मायूस अंदाज में पूछा. मां ऐसी बातों का जवाब नहीं दिया करती, उसे मालूम था.

"लो मां चाय. राकेश दवाई दे गया था?"

"हां." मां बड़ी मुश्किल से इतना ही कह पायी और अत्यंत पीड़ा से करवट बदल नई-नवेली, उमंगों से भरपूर लड़की की तरफ देख, तनिक मुस्कराई-सी.

"अभी उठती हूं," कहते ही उसने मां को धीरे से उठाकर कमर में कई तकिये लगा दिये.

वह सोचने लगी—उस बीमारी के बारे में जो मां को दस साल से न जिंदा रखना चाहती है और न मरने देती है. सारा घर दवाई, इंजेक्शन और कैपसूल की खाली शीशियों से भरता जा रहा है.

"राकेश पर्चा रख गया है—वहां तेरी अलमारी में." मां धीरे से काफी देर में कह पाती है.

पर्चा पढ़ते ही उसके चेहरे पर मुस्कान फैल गयीं. "आज कितने दिनों बाद राकेश रात में रुकेगा."

"ये बातें तुम मेरे सामने कह सकते थे—पर्चे में लिखने की क्या जरूरत थी?" वह हल्के मूड में थी. "ठीक है, मैं कमाता नहीं हूं. पर इतनी हैसियत तो है कि दवाई ला सकूं. तुम्हारी तो सारी तनख्वाह ही दवाई में चली जाती है. पार्टी पॉलिटिक्स ने मुझे न घर का रखा है, न बाहर का. फिर भी तुमने इस आवारा को जिसे लोग 'शराबी, झक्की कहते हैं, अम्माजी की सेवा करने का मौका दिया, ये क्या कम है?" ऐसे अंदाज पर वह मुस्करा कर रह जाती है.

जीरो वाट का बल्ब जल रहा है. एक ख्याल उसे मां की बीमारी से ज्यादा भयानक लगता है, जो उसे रोज रात को परेशान करता है. उसका गला सूखने लगा. पास रखी सुराही को देखकर वह वितृष्णा लिये उठी और बराबर के पार्टीशन में गयी. खटोले पर सोया राकेश, दाढ़ी भरा चेहरा. सीने के बटन खुले हुए, उससे चार वर्ष छोटा. क्या लगता है. उसका? सब कुछ तो लगता है—उसका. वही है अब उसकी जिंदगी. उसके जी में आया कि यह झिंझोड़ कर कहे—"राकेश तुम मुझे अपना लो. मैं टूट रही हूं. मां ठीक नहीं होगी-मां ठीक नहीं होगी....."

"क्या बात है दीदी?" राकेश हड़बड़ाकर जाग गया. उसने परेशान अरुणा के चेहरे को पसीने से तरबतर पाया.

"कुछ नहीं रे, तू सो जा. मां की दवाई का टाइम हो गया है न." और वह पलट पड़ी. □

बेटी

कौन कहता है कि आज संबंध नाम भर को रह गये हैं! क्या कहा, सोच में पड़ गये हैं आप? तो लीजिए, जरा मुन्नी से ही मिल लीजिए!

□ मैत्रेयी पुष्पा

प्रमुख कृतियां: 'लकीरें' (कविता संग्रह), 'तुम्हारे बिना' (उपन्यास) व 'राह सुगम है.'
संप्रति: जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में कार्यरत.
संपर्क: डी-11/237, किदवई नगर वैस्ट, नयी दिल्ली-110023

धूल नहाये पैरों से जिस रेत भरे रास्ते पर मैं चल रही थी वह तनिक भी अजनबी नहीं था. यहां होकर तो मैं अपने बचपन में रोज स्कूल जाती रही हूं. गांव से सारे विद्यार्थी सुबह सबेरे ही बस्ता लादकर चल देते थे और भागभूगकर स्कूल के घंटा बजने का वक्त पकड़ ही लेते थे. मैं मन ही मन बड़ी दुखी होती थी... 'मेरी मां को भी न जाने क्यों मुझे पढ़ाने की धुन सवार है?' मेरी सहेलियां पढ़ाई से मुक्त गांव में ही उपले थापती, जाड़ों की धूप में बैठी खिलखिलातीं, रोटी बनाना सीखती और गीत गातीं. इन सभी कलाओं से वंचित होने का दुख मेरे नन्हे कलेजे में हर-वक्त सालता था.

जिस राह से मैं स्कूल भागी हुई जा रही होती थी, उसी रास्ते पर मेरी अभिन्न सखी मुन्नी के खेत थे. वह वहीं अपने पिता के साथ खेतों में बुवाई कराती मिलती, कभी पानी लगा रही होती और कभी रहट हांक रही होती. मुझे मुन्नी से ईर्ष्या होने लगती थी कि उसके मजे हैं चाहे जब घर चली जायेगी, रोटी खायेगी और फिर खेलेगी बस. एक मैं हूं... सारे दिन पढ़ाई में लगी रहूंगी, कभी न याद होने वाले इतिहास, भूगोल को मास्टरजी के डर से जोर-जोर से रटूंगी फिर चार किलोमीटर पैदल चलूंगी तब कहीं लौटकर घर का दरवाजा देख पाऊंगी—भूख के मारे अलग बुरा हाल!

लौटकर ही मुन्नी से मिलना हो पाता था. मुझे देखते ही वह भागकर मेरे घर, आ जाती—फिर जिस ललचायी निगाह से मेरे बस्ते की ओर देखती—मुझे आज भी उसकी वह ललक-दृष्टि याद है. लेकिन उस समय वह मुझे निरी मूर्ख लगती—भला पढ़ाई के लिए क्या ललकना? मेरे खयाल से उस समय पढ़ाई से ज्यादा नीरस कोई दूसरा काम नहीं था. लेकिन मुन्नी हमेशा मेरी किताबों की उलट-पलट करती रहती. मेरी और उसकी रुचियां सर्वथा भिन्न होते हुए भी हम न जाने किस सूत्र से एक दूसरे से बंधे हुए थे. उसे छोड़कर मुझे स्कूल जाना जरा नहीं रुचता था. बहुत बार मैं स्कूल के रास्ते में मुन्नी के खेतों पर रह जाती और उसके साथ रहट हंकवाती रहती. कितनी बार उसकी मां से भी मिन्नत की थी...

''चाची मुन्नी को स्कूल भेज दो न!''

''अरी बिटिया क्या कहती हो, वह लड़की जात, कहां जायेगी और क्या करेगी पढ़ लिखकर! तुम्हारी बात और है वसुधा, अकेली औलाद, बेटा बेटी-तुम्हीं हो अपनी मां की, सो जिंदगी भर पढ़ो तो कोई कुछ कहने वाला नहीं, बाप न भइया.''

इतना लंबा तर्क सुनकर मैं भी चुप हो गयी क्या कहती इसके आगे. मैंने भी सोच लिया, मेरे पढ़ने का यही कारण है, नहीं तो मां मुझे भी घर का काम सिखाती. वह लड़कपन था, शिक्षा का लाभ मुझे दिखता भी कैसे.

इतवार का दिन था, मैंने बाल धोये थे... सुखाने छत पर पहुंच गयी. मुन्नी के घर की छत से ही हमारी छत भी मिली थी. कुछ ही क्षण पश्चात मेरे कानों में मुन्नी की आवाज पड़ने लगी...

''अम्मा, तुम मेरे साथ जो कर रही हो, वह कुछ अच्छा नहीं कर रही. तुम पांच-पांच लड़कों को पढ़ा सकती हो, लेकिन मेरे लिए तुम्हारे घर अकाल है... मेरी किताब-कापी के पैसे तुम्हें भारी हैं अम्मा!''

''रोज एक ही बात की हठ करती है तू. हमने कह दिया न, नहीं पढ़ा सकते तुझे...'' उसकी मां ने एक बात खींच के कह दी थी.

''क्यों नहीं अम्मा, मुझे क्यों नहीं?''

''चुप होती है कि नहीं? बहुत जबान चल गयी है तेरी, तू लड़कों की बराबरी करती है. बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं हमारी, हमें सहारा देंगे. तू पराये घर का दलिद्दर. तेरी कमाई नहीं खानी हमें... कह दिया, कान खोलकर सुन ले.'' मुन्नी इसके आगे क्या कहती? एक ही हांक में चुप हो गयी. मैं इतना तो अवश्य समझती थी कि मुन्नी बड़ी चतुर और बुद्धिमान लड़की थी. अगर उसे पढ़ाया जाता तो वह अति प्रतिभाशाली छात्रा साबित होती, अपने भाइयों के मुकाबले वह कुशाग्र बुद्धि बालिका

थी.

पढ़ाई के अतिरिक्त मुन्नी उन सारी विद्याओं में पारंगत हो गयी थी जिन्हें सीखने का जरा-सा भी अवसर वह पा सकी. उसकी जैसी पाक-कला मुश्किल से ही देखने को मिलती. ढोलक पर थाप देकर गाना उठाती तो गली में चलते लोग एक पल को रुक जाते. पड़ोस में पंडितजी के हितेश की शादी में जब मुन्नी नाची थी तो मुझे अपनी सारी विद्या धूल नजर आने लगी थी. कैसी वाह-वाह हुई थी उसकी. उसकी देह में अभूतपूर्व सौंदर्य जगमगा उठा था... कमर की लचक के साथ ही घाघरा ऐसे घूम रहा था मानों जमीन नाच उठी हो. सिलाई-कढ़ाई में अति प्रवीण. वह मेरी सखी पूरे गांव को अपना लोहा मनवा चुकी थी.

वह अपनी अम्मा की सारी जिम्मेदारी उठाकर घर का सारा काम करती रही. मुंह अंधेरे भाइयों के लिए परांठे सेकती रही. उन्हें स्कूल भेजती रही, उनके कपड़े धोती रही, पिता के साथ खेत में काम कराती रही. और बासी-कूसी रोटी खाकर चंद्रकला-सी बढ़ती रही. फिर भी ब्याह के कारण अपने माता-पिता की चिंता का विषय बनती रही. लेकिन चाचा को मुन्नी की शादी के लिए भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ी. वह रूपवती गुणवती बड़ी सरलता से अपनी रिश्तेदारी में ब्याह कर चली गयी

जब वह गयी तो मुझे लगा था कि जैसे मेरा कलेजा आधा कटकर रह गया हो. मुझे जितना कष्ट हुआ था, उसकी मां उतनी ही आश्वस्त हो गयीं थीं. मुन्नी के जन्म से ही जिस भार को उन्होंने महसूस किया था, उससे मुक्त हो जाना अपने में एक अहं काम था. अब क्या था चाचा-चाची के यहां. सिर्फ लड़के रह गये थे... उनका क्या 'चेक' हैं कभी भुना लो... अपनी मनमर्जी पर निर्भर हैं. यही धारणा उनके लिए आनंद-दायिनी थी.

मुन्नी गांव आती-जाती तो थी... मायके आने की रस्म अदा करने बस. चाचा-चाची तो उसे ब्याह कर गंगा नहा चुके थे. वह आती तो एक धोती और डलिया के सामान का वजन ही पड़ जाता चाचा पर... बेटी दे ही क्या सकती है लेकिन उसके मन में मां के प्रति जो लगाव था पिता के वात्सल्य का अथाह सागर था... उस पर किसी की दृष्टि कहां जाती थी. वहां तो पुत्र-मोह का ऐसा ताना-बाना बुना पड़ा था जिसमें से मुन्नी झांक तो सकती थी लेकिन उसके पार माता-पिता के स्नेह आंचल तक नहीं पहुंच सकती थी.

समय बीतने लगा... लड़कों की शादियां होने लगीं. पढ़ाई-लिखाई में ऐसा खास तो कोई लड़का निकला नहीं. एक अवश्य जूनियर इंजीनियर हो गया. वह सबसे बड़ा था. ब्याह भी खूब दान-दहेज के साथ हुआ उसका... चाची के पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे, लेकिन दूसरी बार आकर ही बहू ने सारा सामान समेटा और ऐलान कर दिया कि इस गंवई गांव में वह एक पल भी नहीं रह सकती... लड़का बीबी का सामना कहां कर सकता था... दबी जुबान से उसके समर्थन में ही खड़ा हो गया. अगले दिन ही दोनों हलद्वानी को विदा हो गये. एक बार आया तो वह नकद रुपये भी ले गया, जो चाचा ने उसकी ससुराल से दहेज स्वरूप प्राप्त किये थे... किराये के मकान की मुश्किलें दिखाकर तथा नया फ्लैट लेने की योजना बताकर.

विवाह होते गये, बहुएं आती गयीं, लड़कों के तेवर बदलते गये. दूसरे नंबर का लड़का वहीं गांव में ही दुकान करने लगा था अतः जाता कहां, लेकिन उसकी बहू असल बनिये की बेटी आयी, चाचा-चाची की चाय-चीनी तक का हिसाब बड़ी तंगदिली से रखने लगी. अतः चाची उस कुल वधू से अलग चूल्हा कर बैठी.

इस प्रकार कोई किसी तरह तो कोई किसी बहाने सब अपना-अपना अलग घोंसला बना बैठे. चाचा-चाची निपट अकेले-न्यारे पूत पड़ोसी दाखिल हो गये. मुन्नी के रहते चाची ने तवे पर चंदिया नहीं डाली थी लेकिन बुढ़ापे में तो खटना लिखा था. आंखें साथ नहीं देती थीं. धुंधला दिखने लगा था. घुटने के जोड़ अलग अकड़ने लगे थे. लड़कों के साथ बुढ़ापे ने भी तेवर दिखाने शुरू कर दिये. इसके अलावा पांच-पांच बहुओं की सास अपनी चार रोटी अलग डाले... इस तौहीन का दंश कहीं गहरे टीसता था. आस-पड़ोस में निकलने में भी झिझक लगती थी. अभी तक तो पांच पुत्रों की मां होने के ठसक में अकड़कर रही थीं, सिर उठाकर चली थीं और मुहल्ले में सौभाग्य की प्रतीक बनकर रही थीं. कर भी क्या सकती थीं. कभी-कभी चाचा ही उफन जाते.

"अरे घर-घर चूल्हे मिट्टी के हैं. आजकल कौन किसी की मानता है." कहकर चाचा को शांत कर देती.

बहुत दिनों बाद मैं अब की बार गांव आयी थी. अपने घर थोड़ी देर ही बैठकर चाची की कुशल क्षेम लेने उनके घर पहुंच गयी.

"चाची इ इ," मैंने आवाज दी लेकिन कोई उत्तर नहीं आया हालांकि द्वार में घुसते ही वे मुझे आंगन के पार चौके में बैठी दीख गयी थीं, उन्होंने इधर-उधर देखा लेकिन फिर पूर्ववंत चूल्हे की ओर झुक गयीं.

"चाची इ इ!"

"कौन है?" धुंधआते चूल्हे को प्रज्ज्वलित करने का प्रयत्न करते हुए ही बोल रहीं थीं. पनियाती मोतिया बिंद उतरी आंखें शायद मुझे देख नहीं पा रहीं थीं. वे मुन्नी की मां जिनकी वह कैसी सेवा करती थी आज ऐसी लाचार.

"चाची... मैं वसुधा." कहती हुई मैं उस बूढ़ी काया से करीब-करीब सटकर बैठ गयी.

"वसुधा बेटी कब आयी? आंखें अंधी हो चलीं. दिखायी कहां देता है... बेटी सो तुम्हें देख नहीं पाये हम." इधर-उधर की बातें करती रही उनसे. जल्दी ही मैंने पूछ लिया... "चाची मुन्नी कब से नहीं आयी?"

"मुन्नी....मुन्नी कैसे आवे बिटिया... भाभी भौजाइयों का घर... यहां हम ही निभ जायें यही बहुत है. अरे क्या बतायें बेटी, हमारे बनाये घर में से हमें ही निकालने को फिरती हैं ये बुहएं. खेती-पाती सब बंटा ली, घर भी ले लेंगे तो हम रहेंगे कहां? तुम न्याय की कहना वसुधा."

"लडके कुछ नहीं कहते चाची."

"उनकी क्या पूछो बिटिया, घोर कलजुगी हैं, बहुओं के गुलाम हो गये हैं नासपीटे." चाची क्रोध का लावा उगलते हुए तैश में बोल रहीं थीं. मैं भी उनके साथ दुखी हो उठी, कभी ऐसा सोचा नहीं होगा कि पांचों ऐसे निकल जायेंगे. हमारी उम्मीदें ही हमें कहीं का नहीं छोड़तीं. ये मोहजन्य पीड़ाएं वृद्धावस्था को और जर्जर करके रख देती हैं.

"मुन्नी को चिट्ठी लिखवायी है बिटिया पर अपने घर-गृहस्थी से उसे भी कहां फुर्सत होगी." वे यह कहकर अपने मन को ही तसल्ली दे रहीं थीं. बेटी से किसी प्रकार की आशा उन्हें थी या नहीं, मैं कह नहीं सकती, लेकिन जिस दिन मुझे इस गांव से लौटना था, हितेश दौड़ा-दौड़ा आया था मेरे घर...

"वसुधा, मुन्नी आ गयी है. तुझे पूछ रही थी."

सुनते ही मैं उसके घर की ओर भागी थी—देखा कि वह सामने से चली आ रही है...

"अरे वसुधा, खूब मिली अबकी बार!" कहती हुई वह मेरे गले लग गयी. आंखें छलछला उठीं हम दोनों की. इस साख्य-भाव में भी न जाने कितने सागर समाये होते हैं.

"जब से गांव आयी हूं मुन्नी, तुझे ही याद कर रही हूं."

"मेरे आने का तो था नहीं वसुधा, अम्मा की चिट्ठी पहुंची... तो अपने को रोक नहीं पायी. साथ अपनी बेटी को भी ले आयी हूं. वह यहीं रहेगी अम्मा की रोटियां बना दिया करेगी. अम्मा को दिखायी नहीं देता न..." कहते हुए मुन्नी फफककर रो पड़ी. देर तक खड़ी रोती रही, मैं उसे बहलाती रही..."

"रो मत मुन्नी, अच्छा किया तूने. लेकिन मूर्ख, यह उसके पढ़ने की उम्र है. यहां पढ़ेगी कैसे?"

"वसुधा, तू भी तो यहीं रहकर पढ़ी थी, ऐसे ही वह भी पढ़ लेगी..." कहकर वह अपनी रक्ताभ आंखें पोंछ रही थी. □

कपड़े

□ सुहेल वहीद

नये कलेक्टर ने दो दिन पहले ही पदभार ग्रहण किया था. शहर के बड़े-बड़े उद्योगपति, नेता और अधिकारी उनसे मिलने आ जा रहे थे. एक व्यक्ति साफ सफेद कुर्ता पैजामा सफेद टोपी लगाए कलेक्टर के कमरे में घुसा. कलेक्टर ने एक चुस्त प्रशासक होने का परिचय देते हुए खड़े होकर आने वाले व्यक्ति से हाथ मिलाकर उसका अभिवादन किया फिर पूछा कि कैसे कष्ट किया, कोई काम...?

"नहीं.... नहीं.... हुजूर के दर्शन करने चला आया..."

"अच्छा.... अच्छा... बैठिए..."

"नहीं साहब ऐसे ही ठीक है... अब चलते हैं...."

"अरे नहीं... चाय तो पी लीजिए..." कलेक्टर घंटी बजाते-बजाते रुक गए, फिर बोले, ..."बैठिए पानी तो पिएंगे..."

"नहीं साहब.... अरे बस, आप की कृपा दृष्टि चाहिए...." आने वाला व्यक्ति हाथ जोड़े आगे की ओर ऊपर से झुकता ही जा रहा था.

"अरे आप कैसी बातें करते हैं, अब सेवा का अवसर मिला है, मेरी ओर से कोई कसर बाकी नहीं रहेगी..., अब देखिए न इससे पहले मैं जहां था वहां तीन साल कोई रुका नहीं... मैं था जो तीन साल रहा... और शान से रहा, हर कोई खुश, जब तबादला हुआ तो वहां की जनता जाने नहीं दे रही थी कुछ लोगों ने तो आंसुओं से विदा किया, अब यहां भी आप लोगों का सहयोग रहा तो यहां भी सब अच्छा ही रहेगा..." कहते-कहते कलेक्टर के चेहरे पर सुर्खी दौड़ गयी.

"अरे सा...ब मेरी क्या औकात है... आप जो हुकुम देंगे सो करेंगे... अच्छा जी चलते हैं...."

"अरे वो चाय...."

"नहीं सा....ब..."

"अच्छा फिर आइएगा... आते रहिएगा."

"अच्छा साहब नमस्कार."

"नमस्कार."

उस व्यक्ति के जाने के बाद बूढ़े से कलेक्टर ने चैन की सांस ली. फिर घंटी बजायी. चपरासी आया तो उससे पानी मांगा. अचानक उनको न जाने क्या याद आया कि पानी का गिलास मुंह से लगाए ही उन्होंने चपरासी की तरफ देखते हुए आंखें नचायी और एक हाथ से दरवाजे की तरफ इशारा करते हुए इशारों से हाथ की उंगलियां घुमा-घुमाकर पूछा कि जो साहब अभी आए थे वह कौन थे?

चपरासी ने कुछ समझने और कुछ न समझने वाले अंदाज में एक बार सर हिलाया फिर खामोश रह गया.

कलेक्टर ने गिलास का पानी अपने गले के नीचे उतारते ही लगभग चिल्लाकर चपरासी से पूछा, "अरे मैं पूछ रहा हूं कि जो साहब अभी आये थे कौन थे... इनको जानते हो ?"

इतना सुनना था कि चपरासी के चेहरे पर कई रंग आये और गये... उसने आंखें फाड़कर बड़ा-सा मुंह खोला दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाए और बोला, "हे राम... आप उसको नहीं जानते... अरे साब ये तो अपना कपट लाल है, आपके बंगले का चौकीदार..." कलेक्टर यह सुनते ही कुर्सी से खड़े हो गए.

"क्या....?"

"क्या" उन्होंने इतनी जोर से कहा कि पड़ोस में खड़ा चपरासी दो कदम पीछे हट गया कलेक्टर धड़ से कुर्सी पर गिरे और एक हुंकार भरी.

"हूं.... चौकीदार... बुलाओ उस हरामजादे को."

चपरासी भागता हुआ गया और कंपट लाल को लेकर अंदर आया, वह पहले ही की तरह दोनों हाथ जोड़े ऊपर से आगे की ओर थोड़ा झुका हुआ अपना झुर्रियों वाला चेहरा लिए कलेक्टर के सामने खड़ा हो गया... मुस्कराने की कोशिश में थोड़ा हकलाया.

"....सा...ब.... कोई हुकुम..."

झुंझलाये हुए कलेक्टर की गरजती हुई आवाज निकली, "क्या नाम है....?"

".....सा...ब.... कंपट लाल...."

"तुम्हें बिल्कुल तमीज नहीं... कपड़े जरा ठीक-ठाक पहना करो..." □

टेलीविजन

□ मुज्तबा हुसैन

अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

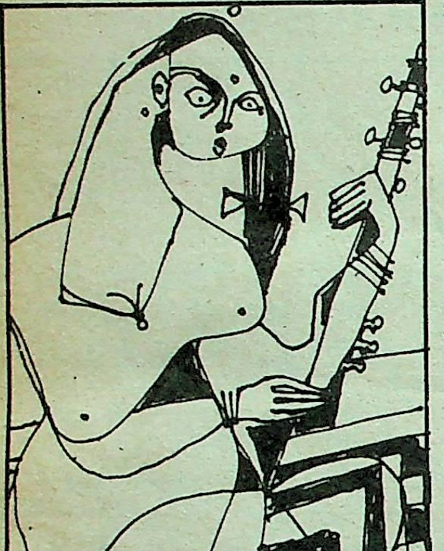

जब हम छोटे थे तो मुल्क में टेलीविजन का चलन नहीं था. लिहाजा हमें घटिया फिल्मों को देखने के लिए सिनेमाघर जाना पड़ता था... लक्ष्मीचंद गुप्त द्वारा अनूदित उर्दू हास्य लेख.

दुनिया में कुछ चीजें ऐसी हैं जिनके होने या न होने के फायदे और नुक्सान दोनों मौजूद होते हैं. खुद हमारे घर में हमारे सहित दो-चार चीजें ऐसी हैं जिनके फायदे और नुक्सान के बारे में हम अब तक फैसला नहीं कर सके कि उनके होने का फायदा कितना है और न होने का नुक्सान कितना है. खुद अपने होने या न होने के फायदे या नुक्सान के बारे में अपने मुंह से क्या अर्ज करें. हम तो अपने होने के फायदे ही गिनायेंगे लेकिन हमारे परिवार के सदस्य जानते हैं कि हम न होते तो वे किस कदर फायदे में रहते!

टेलीफोन, रेफ्रीजिरेटर और टेलीविजन तो खैर हमारे सामने की चीजें हैं जिनसे फायदा हासिल करने की कोशिश में हम लगातार नुक्सान उठा रहे हैं. हमारा टेलीफोन तो खैर अब ज्यादातर हमारे पड़ोसियों के इस्तेमाल में ही रहता है. यही वजह है कि हमें अपना टेलीफोन नंबर तक याद नहीं रहता. लिहाजा कोई जब हमसे हमारा टेलीफोन नंबर पूछता है तो हम अपनी बीमा पालिसी का नंबर बता देते हैं. जो चीज हमारे इस्तेमाल ही में न रहती हो उसका नंबर याद रखने का क्या फायदा?

यही हाल हमारे रेफ्रीजिरेटर का है कि उसमें ज्यादातर पड़ोसियों के सड़े हुए आम, उनकी बदजायका सब्जियां और हमारा शिष्टाचार सुरक्षित रहता है. जहां तक टेलीविजन का संबंध है, इस सिलसिले में यह अर्ज करते चलें कि इस चीज से हम जरा देर से परिचित हुए हैं.

जब हम छोटे थे तो मुल्क में टेलीविजन का चलन नहीं था. लिहाजा हमें घटिया फिल्मों को देखने के लिए सिनेमाघर जाना पड़ता था. टेलीविजन के आने का एक मोटा फायदा तो यह हुआ कि अब हम घर बैठे घटिया फिल्में देख सकते हैं लेकिन नुक्सान यह हुआ कि सिनेमाघर जाते थे तो टिकट की क्यू में ठहरकर हमें खासा शारीरिक व्यायाम करना पड़ता था जिसके कारण हमारी सेहत अच्छी रहती थी. उन दिनों बामुहावरा जबान भी बोल लेते थे, क्योंकि हमने बहुत-सी अनौखी गालियां टिकट-घर की क्यू में ही सीखी थीं. सिनेमा देखने का तो सिर्फ एक बहाना होता था, असल मकसद तो अपनी सेहत और जबान दोनों को बेहतर बनाना होता था.

हमारे घर में टेलीविजन किस तरह आया, इसकी भी एक अलग दास्तान है. आइये, पहले हम आपको उन मुश्किलों से परिचित करायें जो टेलीविजन न होने से हमें दरपेश आती थीं.

यह सात-आठ बरस पहले की बात है. हमें पता था कि, हमारे दो पड़ोसियों के घर टेलीविजन आ चुका हैं. लेकिन इसके बावजूद हम अनजान से बने रहे. एक दिन हम शाम को नियम-विरुद्ध जल्दी घर लौटे तो देखा कि हमारे घर पर ताला पड़ा हुआ है. हम परेशान हुए कि आखिर ऐसी कौन-सी आफत आ गयी कि घर के सारे लोग घर से गायब हैं. घंटे भर बाहर खड़े अपने घर के लोगों की वापसी का इंतजार करते रहे. कुछ देर बाद देखा कि न सिर्फ हमारा पूरा खानदान बल्कि मुहल्ले के बाज और खानदान भी हमारी पड़ोसन के घर में से बरामद हो रहे हैं. पता चला कि पड़ोस के टेलीविजन पर फिल्मी गानों का प्रोग्राम देखा जा रहा था. हमने अपने बीवी को डांटा तो बोलीं, "तुम्हें खुदा ने इतनी सामर्थ्य तो दी नहीं कि खुद एक टेलीविजन खरीदो. अब अगर हम लोग पड़ोसन के घर जाकर टेलीविजन देख आते हैं तो इतना नाराज होने की क्या जरूरत है!" बात माकूल थी, लिहाजा इस घटना के बाद हमने अपनी इज्जत को बचाने की खातिर हमेशा देर से घर आना शुरू कर दिया.

देर से घर वापस आने के बावजूद हमारी जान-बख्शी नहीं होती थी क्योंकि बच्चे प्रायः उस शाम के टेलीविजन प्रोग्राम पर टीका-टिप्पणी करने में व्यस्त रहते थे और हम एक तटस्थ राष्ट्र की तरह खामोश बैठे उनका मुंह तका करते थे. इतवार के दिन तो अजीब हालत होती थी. हम किसी बच्चे को बुलाते तो मालूम होता कि वह बच्चों का प्रोग्राम देखने के लिए पड़ोसी के घर गया हुआ है. कुछ देर बाद दूसरे बच्चे को बुलाते तो मालूम होता कि अब की बार वह नौजवानों का प्रोग्राम देखने गया है. इसी बीच जब किसी मुल्क की क्रिकेट टीम हमारे मुल्क में क्रिकेट खेलने आयी तो हम पर एकाकीपन का यह भयानक दौरा पड़ा कि घर की दीवारें हमें काट खाने को दौड़ती थीं. सारे दिन हमारे परिवार के लोग पड़ोसी के घर में क्रिकेट मैच देखने में तल्लीन रहते और हम अकेले घर में बैठे आंसू बहाया करते थे. इन क्रिकेट मैच के ये वही पांच दिन थे जिनमें न सिर्फ हमारी क्रिकेट टीम हार गयी बल्कि हम भी हार गये. और हमने फैसला किया कि हमारे घर में भी अब टेलीविजन आना चाहिए ताकि हमारे एकाकीपन का कुछ तो इलाज हो. यद्यपि अब तो हर घर में टेलीविजन आ चुका है लेकिन जिन दिनों इसका चलन आम नहीं था, उन दिनों टेलीविजन के होने का एक नुक्सान यह भी था कि चोर टेलीविजन का ऐंटीना देखकर घरों में चोरी करते थे. किसी घर पर ऐंटीना खड़ा होता था तो चोर समझ लेते थे कि इस घर में टेलीविजन के बावजूद खुशहाली भी है. मगर अब यह बात नहीं रही.

टेलीविजन के न होने से जो मुश्किलें हमें

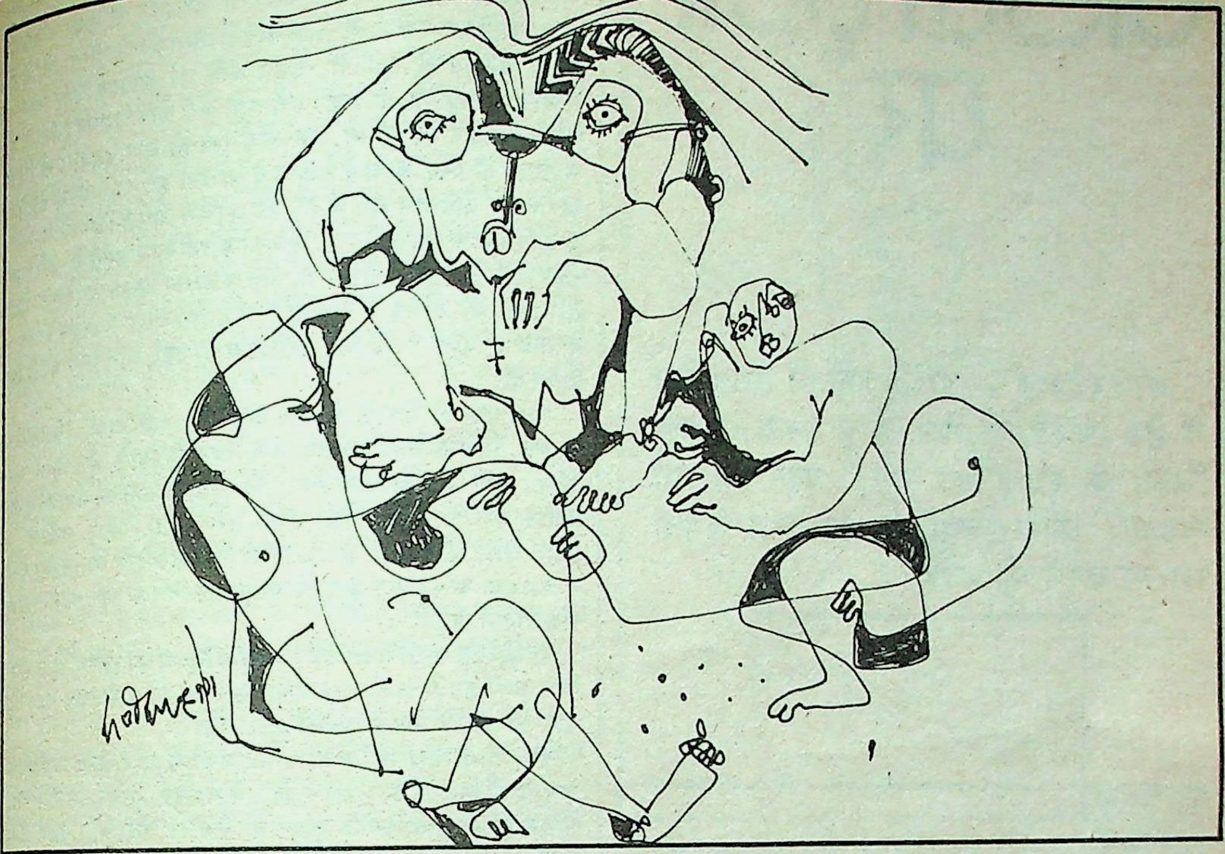

पेश आयी थीं उनका हमने संक्षेप में जिक्र किया है. मगर अब टेलीविजन के होने से हमें जिन मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है उनका हाल हम किस तरह बयान करें. जब टेलीविजन नहीं था तो हम अपने बाल-बच्चों के हालात से इसलिए बेखबर रहते थे कि वे ज्यादातर पड़ोसी के घर में टी.वी. प्रोग्राम देखने में व्यस्त रहते थे, अब जबकि घर मे टेलीविजन आ गया है तो हम तब भी अपने बाल-बच्चों के हालात से बेखबर रहते हैं क्योंकि अब वे ज्यादातर टेलीविजन सैट के सामने पाये जाते हैं. यद्यपि हमें अपने बच्चों के आज के हालात का पता नहीं है लेकिन अब उनका सामान्य ज्ञान खासा अच्छा हो गया है, उन्हें फिल्मी अभिनेताओं और राजनेताओं के जन्म दिन का तो पता होता है लेकिन उन्हें अब यह याद नहीं रहता कि खुद उनके बाप का जन्म दिन कब है, उन्हें किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के बीमार होने की खबर तो होती है लेकिन उन्हें यह मालूम नहीं होता कि खुद उनका बाप इसी घर में इसी बीमारी का शिकार है.

चूंकि हमारा टेलीविजन नया और रंगीन है इसीलिए हमारे पड़ोसी और उनके बच्चे हमारे घर में टी.वी. प्रोग्राम देखना ज्यादा पसंद करते हैं. लिहाजा अब हमारा घर, घर नहीं सिनेमाघर बन गया है और अब हम इसे उसी तरह चला रहे हैं जिस तरह कोई सिनेमा घर चलाता है. हमने अपने घर में टी.वी. प्रोग्राम देखने वालों को श्रेणीबद्ध कर दिया है खुशहाल पड़ोसियों को हम सोफे पर बिठाते हैं, उनसे कम खुशहाल पड़ोसियों को सीधी-सादी कुर्सियों पर बिठाते हैं और जो पड़ोसी उनसे भी गये-गुजरे होते हैं उन्हें फर्श पर बिठाते हैं. यह और बात है कि उन सबको बिठाने के बाद खुद हमारे बैठने के लिए कोई जगह बाकी नहीं रहती. लिहाजा सिनेमा-घर के गेट-कीपर की तरह दरवाजे में से झांककर टी.वी. प्रोग्राम देखते हैं. बात यहीं पर खत्म नहीं होती, हमें प्रोग्राम देखनेवालों की उनकी हैसियत के अनुसार खातिर-तवज्जो भी करनी पड़ती है. जब तक टेलीविजन चलता है, हम कोई काम करने के काबिल नहीं रहते.

एक और समस्या की तरफ भी आपका ध्यान आकर्षित करना जरूरी है कि टेलीविजन का ऐंटीना बहुत नाजुक चीज होता है. जरा-सी हवा चले तो उसका मिजाज-नासाज हो जाता है और परिणाम स्वरूप टेलीविजन पर शक्लें यों दिखायी देती हैं जैसे सारे पात्र नशे में धुत हों, क्योंकि इसके बाद स्क्रीन पर उनकी शक्लें झूलने लगती हैं. समझ में नहीं आता कि हीरो कौन है और हीरोइन कौन? और यह भी कि हीरो हीरोइन से प्रेम प्रकट कर रहा है या उसे डांट रहा है. ऐसे वक्तों में हमें प्रोग्राम देखने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है. कभी-कभी तो यों भी होता है कि टेलीविजन से आवाज गायब हो जाती है और आप खामोश फिल्मों के दौर में दाखिल हो जाते हैं, सिर्फ पात्रों के क्रियाकलापों से आपको पता लगाना पड़ता है कि कहानी किधर को जा रही है. ऐसे वक्त टेलीविजन के होने के नुक्सान आपके लिए अधिक सुस्पष्ट हो उठते हैं.

आखिर में एक बात और अर्ज करते चलें कि जब से टेलीविजन घर में आया है, हमारे बच्चे बहुत जहीन और होशियार हो गये हैं. यह और बात है कि सालाना इम्तिहान में उनके नंबर कम आने लगे हैं. पहले ये जहीन नहीं थे मगर इम्तिहान में हमेशा अव्वल दर्जे में कामयाब होते थे. अब जहीन बहुत हो गये हैं लेकिन इम्तिहान में तीसरे दर्जे में कामयाब होते हैं. हमने भी अब इस मामले में गौर करना छोड़ दिया है. क्योंकि आज की दुनिया में विशेष योग्यता के साथ कामयाबी की कोई अहमियत नहीं है. असली अहमियत तो आम होशियारी और जहीन होने की है. लिहाजा सब कुछ जानते हुए भी हम घर मे टेलीविजन और अपनी औलाद को एक साथ बरदाश्त किये जा रहे हैं. □

जलता हुआ घर

बंगा स्टेशन पर पकड़े जाते ही उसने जेब में हैंड ग्रिनेड का पिन खींच लिया. उसके जिस्म के टुकड़े उड़ गये .. कौन था वह लड़का? आखिर क्या थी इस तरह अपना खात्मा करने की वजह?

☐ तरसेम गुजराल

जन्म: 10 अप्रैल, 1950
प्रमुख कृतियां: 'जलता हुआ गुलाब' (उपन्यास) 'खुला आकाश', 'आजाद गुलाम', 'पंजाबी कहानी: रचना और परिवेश' (संपादन व अनुवाद)
सम्मान: 'प्रेमचंदोत्तर कहानी का वस्तुपरक मूल्यांकन' पर पी.एच.डी. लेने पर 'नवरंग' द्वारा सम्मानित. 'भाषा विभाग: 'पंजाब' की ओर से सर्वश्रेष्ठ निबंध लेखन पर पुरस्कृत तथा उपन्यास लेखन के लिए 'प्रेमचंद महेश सम्मान' प्राप्त.
संपर्क: डबल्यू जी-42, इस्लाम गंज, जालंधर.

सुरजन सिंह की आंखों में धुआं-सा भरने लगा. दोनों कंधों पर जैसे मनों बोझ लद गया हो और पांव संभल न पा रहे हों. दिसंबर की ठंड के बावजूद जिस्म पसीने से तरबतर हो गया. लरजती हुई नजर उसने कमरे में डाली. पीले पर्दों के सिवा कुछ नहीं था. चीजें धुंधली होकर गडमड हो रही थीं. उसने बंती को आवाज देनी चाही परंतु आवाज अर्राती-सी रह गयी. उसे लगा जैसे चोर उसकी जिंदगी भर की कमाई लूटकर जा रहे हों. वह जाग रहा हो और दहशत से किसी को सहायता के लिए आवाज तक न दे पा रहा हो. उसे इसमें इसकी जरा खनक तक नहीं लग रही थी कि वह सुरजन सिंह है जिसके नाम से शहर के तमाम नामी-गिरामी गुंडे, चाकूबाज तक कांप उठते हैं, जब बिलकुल बेहरमी से वह धुनाई करता था, वह चर्चा का विषय था. छोटे-मोटे चोर तो उसके दो थप्पड़ न सह पाते और सब कुछ उगलने लगते. माल बरामद करवाना उसके लिए बायें हाथ का नहीं, बायें हाथ की तर्जनी का काम था.

बीस साल की नौकरी में उसने क्या-क्या नहीं किया... जिसको चाहा बचाया, जिसको चाहा फंसाया. केस तैयार करवाने, झूठे गवाह भुगताने में उसे कभी कोई जटिलता पेश नहीं आयी. गवाह को पेश होने से पहले बयान पढ़वाते वक्त वह आंखें तरेर देता. क्या मजाल, गवाह इधर-उधर बोल जाये. जज के कमरे से निकलते ही न्यायालय के प्रांगण में वह एक थप्पड़ जड़ देता तो गवाह को दिन के तारे, उडनतश्तरियां सब दीखने लगते.

तहकीकात करते वक्त वह मिनटों में किस्से का रहस्य भांप लेता और फिर कसूरवार से या तो पूरा लगान वसूलता या घसीटकर थाने ले जाता और आदमी के अगले-पिछले भुला देता.

इन पिछले कुछ वर्षों में तो छात्रों, मजदूरों और अन्य कर्मचारियों के जलूसों को तितर-बितर करने की उसे महारत हासिल हो गयी थी. पलों में वह समझ जाता उसके ऊपर के अफसर साहिबान क्या चाहते हैं. लाठी चलाने, आंसू गैस छोड़ने और गोलियां चलाने की वारदातों में उसने अच्छी दक्षता का प्रदर्शन किया था. वह जान गया था कि कितना कुछ भी हो जाये, कोई कुछ भी नहीं उखाड़ पाता. ज्यादा से ज्यादा शोर मचने पर एक कमेटी ही बिठा दी जाती है जिसकी रिपोर्ट्स या तो आती नहीं, आती हों तो उनमें कोई दम नहीं रहता. मजदूरों की उस हड़ताल में जब उसने सेठ गोपीचंद के कहने पर कुछ दबंग आदमियों को पकड़कर क्रालिंग करवायी थी तो काफी शोर मचा था, पर कुछ नहीं बिगड़ा था. उसने तो पहले दिन ही खुलेआम कह दिया था, "...तंक जोर लगा लें, कुछ नहीं होनेवाला! सेठ का अच्छा असर-रसूख है. अखबारों में उठा एक धूल का ववंडर है, सब जरा देर में बैठ जायेगा."

वह तो पहली बार नर्स के मामले में गच्चा खा गया. राम औतार एम.एल.ए. परसुराम के साडू भाई हैं. बड़े आदमी हैं. गर्ल्स होस्टल में कभी-कभार आना-जाना लगा रहता है. इसका मतलब यह तो नहीं कि कोई मामूली नर्स उनके दोस्त के सामने उन्हें अपमानित कर दे और धमकी देने लगे कि आगे से अगर उन्होंने उधर कदम रखा तो उन्हें भुगतना पड़ेगा. और उसी शाम को एक दावत में राम औतार उसे और उसके अफसर को घेरकर बैठ गया, "सरकार अपनी हो और इस तरह दो टके की छोकरियां पगड़ी उछाल दें, गर्ल्स होस्टल में आने-जाने पर पाबंदी लगाती फिरें और धमकियां देती फिरें, ऐसी सीनाजोरी भला कहां बरदाश्त की जायेगी! ऐसी धमकियों से दब गये तो चल चुका सब! बेइज्जत होते रहें और दुबककर बैठ जाते रहें... तुम लोगों के रहते... यह लानत सिर्फ मुझ पर नहीं बरसी, तुम्हारे और तुम्हारे आदमियों पर बरसी है... इस खाकी वर्दी पर बरसी है!.... वह छोकरी होस्टल में लीडरी झाड़ती फिरे... पालिटिक्स करती फिरे... उसकी मां की... पंख कतर दो चिड़िया के... बहुत उड़ने लगी है! सुनते हो... मेरा वहां आना-जाना उससे इजाजत लेकर होगा... उस दो टके की छोकरी से... वह होती कौन है बकवास करनेवाली...?"

राम औतार का गुस्सा किसी तरह कम नहीं हो रहा था.

दूसरे दिन सुरजन सिंह ने लड़की को चौकी में बुलवा लिया. उसका इरादा था कि उसे समझा देगा या डांट धमका देगा—तुम्हें क्या पड़ी है इस आंधी में कूदने की! अपना मस्त रहो कैरियर बनाओ. जिस लड़की के साथ जो होता है, भुगत लेगी. हां, उस पर कोई आंख उठाकर भी देखे तो बता दे. दूसरों के होम में अपने हाथ नहीं जलाते फिरते. जब अपना पल्लू बचाना ही प्रतिकूल हो रहा है... इस सब में बहुत चक्करबाजी है. वह कहां उलझती फिरेगी, उसका नौकरी का सवाल है... वगैरा-वगैरा.

वह एक सांवली-सी लंबे चेहरेवाली लड़की थी. बनाव सिंगार के प्रति थोड़ी उदासीन रहते हुए भी आकर्षक लग रही थी लेकिन उसके चेहरे पर मृदुता एकदम गायब थी. उसकी जगह उसके चेहरे पर बदबू में से गुजरने और परेशान किये जाने का भाव था. उस पर उस डर का कोई निशान तक नहीं था जो पुलिस चौकी में आते हुए एक औरत लड़की के चेहरे पर होना चाहिए.

सुरजन सिंह को उस लड़की से इस व्यवहार की कतई उम्मीद नहीं थी बल्कि उसके सोचे से सब कुछ उलट हो रहा था. आते ही उस लड़की ने सवाल किया, ''मैं जानना चाहती हूं मुझे यहां क्यों बुलवाया गया है? देश के जिस अमन चैन के लिए आप तैनात हैं, उसमें मैंने कौन-सा खलल डाला है?''

वह समझ गया था कि लड़की साधारण नहीं है, जितना उसने समझा था, और लड़की का एक-एक शब्द गुस्से और नफरत की आग में झुलसा हुआ था.

"तुम शायद यह नहीं जानती कि तुम क्या और कहां बोल रही हो!''

"मैं खूब अच्छी तरह जानती हूं कि मैं सही बोल रही हूं और घटिया लोगों के सामने दुम हिलाते रहनेवालों के सामने बोल रही हूं."

तभी सुरजन सिंह से मिलने मलकीत आ गया. उसे मलकीत के साथ जाना था. उसने चंदर को बुलवाकर लड़की का ध्यान रखने के लिए कहा और कहा कि वह थोड़ी देर में लौट आयेगा तब तक इसका दिमाग भी ठंडा हो जायेगा. अगर ज्यादा चिल्लपों मचाये तो मामूली-सी डोज दे देना. चंदर ने 'आप जरा भी चिंता न करें' की सूरत में सिर हिलाया.

मलकीत के साथ काम निपटाकर लौटते वक्त उसने एक बोतल ले ली और एक रेस्तरां में बैठकर पीते रहे और गपशप करते रहे इस सबमें तीन-चार घंटे गुजर गये.

उसके चौकी में लौटने पर चंदर ने बताया कि लड़की अंदर कमरे में है. वह जाना चाहती थी लेकिन उसे जाने नहीं दिया गया. ज्यादा प्रतिवाद करने पर उसे एक थप्पड़ मारा गया है.

सुरजन सिंह दूसरे कमरे में गया. लड़की के बाल बिखरे से थे. चेहरे पर अपमान और क्षोभ का भाव था और आंखों में जैसे चिंगारियां दरक रही हों.

"इस सबका क्या मतलब है आखिर? मुझे क्यों परेशान किया जा रहा है? किस बात के लिए मुजरिम-सा सलूक किया जा रहा है?''

सुरजन सिंह ने बताया कि असली वजह क्या थी और कहा कि वह अपनी निपटाये, उसे दूसरी लड़कियों की क्या पड़ी है? उसे आखिर लीडरी करने से क्या मिलने वाला है सिवाय परेशानियों के.

लेकिन लड़की तो जैसे फट पड़ी, ''आप लोग इस हद तक घटिया हो चुके हैं जिसके बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता. दरअसल गुंडागर्दी को तरजीह देनेवाले आप लोग ही हैं—लेकिन इस पूरी साजिश का नकाब उलट दिया जायेगा और हमारे साथी अब चुप बैठने वाले नहीं हैं."

वह सब कुछ जो बाद में अखबारों में छपा है कि सुरजन सिंह ने शराब के नशे में नर्स की अस्मत पर हमला किया और उसका ब्लाउज फाड़ डाला, पूरी सच्चाई नहीं है. यह ठीक है कि सुरजन सिंह के पेट में आधी बोतल से ज्यादा दारू तल्खी पैदा कर रही थी परंतु इतनी में वह होश तो नहीं खो देता और अगर वह होश नहीं खोता-तो यह कहना इतना वाजिब नहीं है कि शराब के नशे में उसने थाने में एक लड़की पर हमला किया. क्योंकि वह इस घटना, जिसे वह पुलिस की नौकरी में किसी ज्यादा बड़ी घटना का दर्जा भी नहीं देता, के बाद भी अपने अफसर से यस सर के लहजे में बातें करता रहा है.

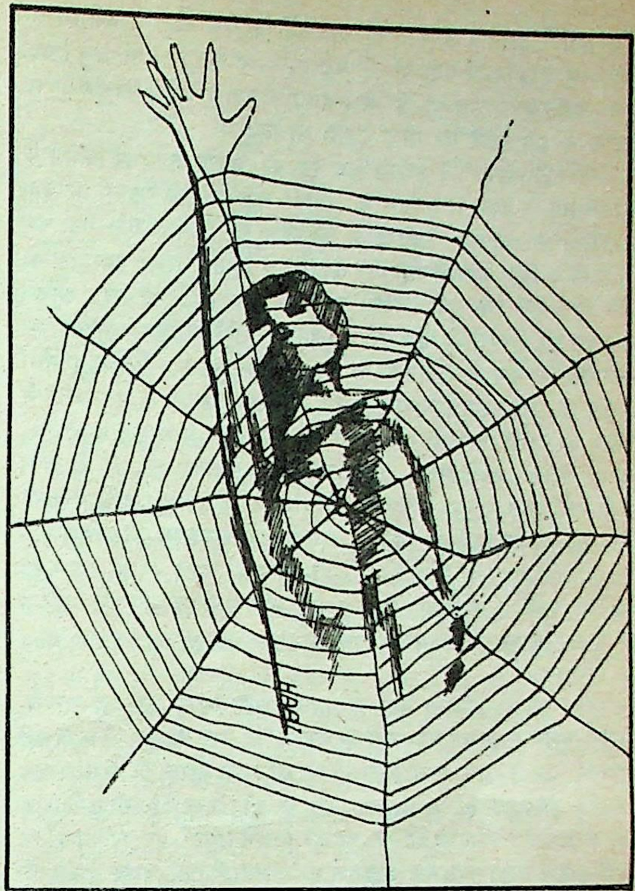

जबकि वास्तविकता यह है कि सुरजन सिंह से यह बरदाश्त नहीं हो रहा था कि एक अकेली जिसे थाने में घंटों बैठना पड़ा हो और जो किसी पुलिस कर्मी से एकाध थप्पड़ भी खा चुकी हो, इस तरह दबंग लहजे में बातचीत करे और उसके चेहरे पर खौफ की जरा छाया तक न हो, वह यही चीज पैदा करना चाहता था. यही वजह है कि जब वह लड़की उर्फ नर्स टस से मस होने को तैयार नहीं थी और चुनौती भरे लहजे में बढ़-चढ़कर बात कर रही थी, उसने चर्र से उसका ब्लाउज खींच डाला उस वक्त उसका इरादा उसे नंगा करने का उतना नहीं था जितना दहशत पैदा करने का.

उस लड़की के होस्टल की चार साथिनें उसकी तलाश में चाय वाले छोकरे के बताये जाने पर कि उसने सिपाही के साथ जाते देखा था, वहां पहुंच गयीं.

सुरजन सिंह को लड़की को डर से पीले पत्ते की तरह कांपती देखने की जिद उस दिन निर्लंबित करनी पड़ी.

सिर्फ होस्टल की लड़कियों में नहीं, दूसरे कालेजों के लड़कों में भी इस घटना को लेकर गुस्से की एक लहर व्याप्त हो गयी. उन्होंने जिलाधीश के दफ्तर के सामने रैली की. कुछ कार्यालयों के कर्मचारियों ने इसके विरोध में एक दिन का सामूहिक अवकाश किया. अखबारों में इस खबर को खूब उछाला गया.

सुरजन सिंह को जिस दिन सस्पेंशन के आर्डर सर्व किये गये, उस दिन तक उसने इस घटना को बिलकुल महत्वहीन समझा था. उसे अपने ऊंचे अधिकारियों पर बहुत गुस्सा आया था जिन्होंने अब पूरी

जिम्मेदारी उस पर डाल दी थी. यहां तक कि राम औतार, जिसके लिए यह सब कुछ किया गया था, भी बदला-बदला लग रहा था. उसे इसके लिए बहुत बुरा लगा था. उसका वह बुरा लगना या दुःखी महसूस करना आज के इस क्षोभ का सौवां दरजा भी नहीं था.

विंदर की डायरी ने उसकी अब तक की जिंदगी के सामने कितने ही सवालिया निशान लगा दिये थे. उसकी अब तक की जिंदगी का क्या मतलब था आखिर? जिंदगी के पैंतालीस वर्ष जिसका एक-एक पल आदमी के लिए बेशकीमती हीरे जैसा होता है, उसके लिए क्या राख का ढेर था? वह क्या पूरी जिंदगी एक अंधे चमगादड़ की तरह खंडित इमारत की दीवारों के साथ सिर टकराता रहा है? ऐसा किस साजिश का हिप्नोटिज्म उस पर सवार था कि वह पूरा वक्त खासकर पिछले पच्चीस बरस जो उसने इस नौकरी में गुजारे हैं, अपनी जिंदगी के मतलब जैसी चीज पर कभी सोच भी नहीं पाया कि उसे अपने आसपास अपने कद, अपने कदम, अपने सफर, यहां तक कि अपने रुतबे तक की भी होश नहीं रही. बस पकड़ना, पीटना, कबूलवाना, छोड़ देना, छाती में किसी चिंगारी को चमकने का मौका तक न देना और शराब की तल्खियों में खलूस को जहर में बुझाते रहने की कोशिश करते रहना. हर वक्त घटिया गालियां, बदबूदार माहौल और खोखले ठहाकों की प्रतिध्वनियों में गुजार अफसरों का हुक्म बजाना और सूअर की तरह पड़े रहना, बदबू में लथपथ.

उस नर्स से सामना होने से पहले उसने लोगों को भेड़-बकरी, भुनगे-बनगे से ज्यादा बड़ा दर्जा या महत्व दिये जाने की जरूरत कभी नहीं समझी. उसमें जाने सच्चाई की लौ की कौन-सी चमक थी जिसका सेंक उसकी उंगलियों को पहली बार लगा था और दिल में किसी ऐसी फांस की तरह उतर गया था कि रह-रहकर सालने लगता. वह पूरा-पूरा दिन उसे नजर आता परंतु वह चाहे पल भर के लिए ही सही, चमक उठता और आज विंदर की डायरी के एक-एक लफ्ज ने उसमें फिर बिजलियां भर दी थीं.

सुरजन सिंह सोचा करता था कि जिंदगी में जो कुछ उसका बनना-बनाना था, बन चुका, लेकिन विंदर जरूर बड़ा आदमी बने. विंदर के लिए जो कुछ वह जुटा सकता था, उसने हर तरह से जुटाया.

एक तरह से उसका हासिल विंदर ही था और वही उसके हाथ से निकल गया था. वह जैसे हाथ से उड़े परिंदे को अब टकटकी बांधकर देख पाने में असमर्थ हो गया हो और अब उन हाथों को घूर रहा हो जिनसे वह निकल गया हो और उसकी उंगलियों में उसकी नर्म छटपटाहट का स्पर्श हो... फांस की तरह यह बात उसके गले में अटकी हुई थी. किसी भी तरह नीचे उतर नहीं पा रही थी कि वही विंदर उसे यानि अपने बाप को किसी अच्छे आदमी का दर्जा नहीं देता रहा. अच्छा आदमी तो दरकिनार, वह उसे आदमी से बदतर समझता रहा है. यह सब कुछ कोई दूसरा अपनी जुबान से कहता तो वह शायद यकीन नहीं करता या शायद उसका मुंह तोड़ देता परंतु यह सब विंदर ने अपने हाथों से कलमबद्ध किया हुआ था और हर बात दस्तावेज के रूप में उसके रूबरू थी.

विंदर की हरकतें उसे अजीब लगती रही थीं. विंदर की नये कपड़ों नयी चीजों, खेल-तमाशों के प्रति उदासीनता ने बंती को भी घायल कर दिया था. रात में जाग-जागकर उसके कमरे की ओर झांकती और दरार से आती पीली रोशनी के धारे को देखती और बुदबुदाती... अभी तक पढ़ रहा है. सो क्यों नहीं जाता. तभी तो सेहत नहीं बनती. हड्डियां निकली हुई हैं इस उम्र में. यह उम्र तो हंसने-गाने-चहकने की है... एक यह है कि हंसता हुआ देखने को तरसते रह जाते हैं.

एक बार जाड़े के शुरू में बंती ने जिद करने उसके लिए तीन सौ रुपया अलग निकलवा लिया था. कालेज जाता है. अच्छे लोगों में उठता-बैठता है... उसके पास काम का कोई गर्म कपड़ा नहीं है. एक ही स्वैटर है पिछले साल की... आप पैसे दे दें अपनी मर्जी का सिलवा लेगा... परंतु जनाब मार्कीट जाकर मां के लिए गर्म शाल ले आये और बाकी का रुपया किताबों में खर्च कर डाला.

उसकी मां की चिंताओं और बुड़बुड़ाहटों से उसे यह तो पता चलता रहा कि वह दूसरे लड़कों से थोड़ा अलग है परंतु वह ऐसा कभी नहीं सोच पाया कि उसके भीतर उसे लेकर इतनी मारकाट मची होगी और जो कुछ आज उसकी डायरी के आइने में अपना एक्सरे फोटो देखा है इसकी तो वह कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था. उसके पास विंदर के साथ बातचीत कर कुछ जान पाने का कभी समय ही नहीं रहा. सुबह जब आंख खुलती तो विंदर जा चुका होता. रात आमतौर पर देर-देर से आता, आता भी तो पी हुई होती और उस हालत में वह उससे बातचीत करने से गुरेज करता. मगर कभी सामना हुआ और बातचीत करने के लिए सोचा भी तो यह सोचकर टाल गया कि अपने आप ठीक हो जायेगा. परंतु ठीक क्या होना था, सब कुछ गलत होता चला गया. और यह उसकी एक खामखयाली से कम नहीं था कि उससे महज बातचीत करने से सब कुछ सुधर जाता. इस सब के लिए जो कुछ दूसरी चीजों पर मुनस्सर करता था वे अच्छी और हक में होने की बजाय कहीं ज्यादा गलत और विरूप थीं. इतनी गलत और बेहूदा होते हुए भी वे सतही नजर से ठीक-ठाक होने का आभास देने लगती थीं.

सुरजन सिंह की नजर कमरे के पीले पर्दों पर टिक गयी.. हमारे घर के दरवाजों और खिड़कियों पर मोटे पीले पर्दे गिरे रहते हैं. मुझे इन पर्दों की रंगत लपटों की रंगत लगती है... ऐसा लगता है जैसे पूरे घर को अपनी लपटों में घेर रखा है. और मेरे घर का मुखिया मेरा पिता आग से बचाव की कोई सूरत पैदा करने की बजाय शराब के नशे में धुत पड़ा है—और यह हालत सिर्फ मेरे घर की नहीं है."

सुरजन सिंह की हालत उस मरीज की थी जिसने थोड़ा वक्त पहले जहर खा लिया था. जहर की मात्रा इतनी ज्यादा नहीं कि उसको मौत की झोली में डाल दे और उस पार लौटाने के लिए संघर्ष चल रहा हो परंतु जहर से उसका पूरा जिस्म जल रहा हो.

डायरी का पन्ना उसके सामने खुला था...

"मेरे बाप ने अपनी जिंदगी में सिर्फ नौकरी की है... नौकरी के अलावा उसकी जिंदगी में किसी सामाजिक, सांस्कृतिक काम की जगह नहीं है. उसके बाद का वक्त उसका नौकरी के दौरान या नौकरी के प्रभाव में पी हुई शराब में ,और पीने में तथा पीकर घर में कोहराम मचाने में गुजरता है."

सुरजन सिंह के सामने डायरी के एक-एक वर्क से विंदर की नये सिरे से पहचान हो रही थी. एक-एक शब्द जैसे दहक रहा था : "वे अगर ऐसा सोचते हैं कि पढ़ाई खत्म करने पर डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रशासन-अधिकारी या व्यापारी बनूंगा. डेढ़ दो लाख रुपया दहेज लेने वाला शो-पीस का मॉडल बनूंगा और गुदगुदी पत्नी के साथ कोठी कार और लंबी रकमों की सुविधाएं अर्जित करूंगा तो वे गलत सोचते हैं. मैं उस पीढ़ी में हूं जिसे पूरा जीवन होम कर देना है आनेवाली पीढ़ी की दासता के जंजाल से मुक्ति और सुख-सुविधा के लिए."

अगले एक सफे पर लिखा था—

"मेरा बाप दलाल साम्राज्य की गाड़ी खींचने वाला रेंडियर है. इसने अंधे हुक्म का पालन करने के लिए कई घरों को उजाड़ दिया है. अगर मुझे कभी पार्टी से इसे उड़ा देने का हुक्म मिला तो संशोधनवादी कहलाने की जगह मैं इसे गोली से उड़ा दूंगा."

सुरजन सिंह को इस बात से बड़ी हैरानी हुई कि उसके बेटे के सामने पार्टी कार्यक्रम के आगे तमाम रिश्ते फीके हैं. यहां तक कि पार्टी के हुक्म के सामने वह अपने बाप की जान की भी जरा परवाह नहीं करता. उसे और उसकी पत्नी को यह बात तब भी समझ नहीं आयी थी जब उसकी पत्नी और विंदर की मां ने विंदर की किताबों की अलमारी में देसी पिस्तौल देखी थी.

वह तो उस दिन जूतों से बात करना चाहता था लेकिन विंदर की मां ने कहा कि किसी दोस्त की होगी. वापस कर देगा. यह दिन-रात

पढ़नेवाला मासूम-सा लड़का ऐसा-वैसा दीखता है? उसे भी कहां पता था कि विंदर के भीतर क्या चल रहा था.

एक दिन विंदर चुपचाप घर से चला गया. वे दिन सुरजन सिह की सख्त ड्यूटी के थे. देश भर में बहुत जगहों पर लडकों ने कुहराम मचा रखा था. अब पजाब में भी वही हवा लगती जा रही थी. सत्ता को गाजर-मूली समझनेवाले इन लड़कों के लिए सख्त आर्डर थे लेकिन वे बांके जवान मौत को हथेली पर लिये फिरते थे. सुरजन सिह को यह समझ न आता कि इतने पढ़े-लिखों की मत कैसे मारी गयी है. कई मामलों में लड़कियां भी बड़ी बहादुरी से काम कर रही थीं. मल्कीत कहता—तितलियां अब तोप से टक्कर लेंगी.

सुरजन सिह रात अढ़ाई बजे लौटा. विंदर की मा रो रही थी. उसे आस थी कि कहीं दोस्तों के साथ फिल्म देखने निकला होगा, आखिरी शो. लेकिन वह तो दुपहर का घर से निकला हुआ था. इतनी देर लगातार वह घर से कभी बाहर नहीं रहा था. सुरजन सिह ने फिर वर्दी पहन ली और बाहर निकल पड़ा.विंदर कहां जा सकता है? कहीं कोई दुर्घटना? सिविल अस्पताल में पता करवाया. गलत शराब पीकर मरा हुआ एक मजदूर मिला. उसकी सोहबत किन लोगों में थी? सुरजन सिह अपनी नौकरी-चाकरी और अफसरों की बेगारी में ही इतना डूबा हुआ रहता कि उसकी अपने पुत्र, अपने इकलौते पुत्र के बारे में जानकारी बहुत कम थी... घर में किताबों की अलमारी में पिस्तौल मिलने के दिन वह कुछ हिला जरूर था लेकिन फिर वह अपनी नौकरी की उथल-पुथल में इतना व्यस्त रहा कि इस पर ज्यादा सोचने की फुर्सत ही नहीं रही.

विंदर की मां बंती भी उसके दोस्तों के बारे में ज्यादा नहीं जानती थी. वह सिर्फ इतना बता रही थी कि जब वह गया उसने वही शाल लपेटी हुई थी जो वह उसके लिए खरीदकर लाया था.

वह पुलिस में था और इसलिए समझता था कि विंदर को एक-दो दिन में ढूंढ लेगा लेकिन उसके सभी प्रयास अधूरे और विफल होते रहे. विंदर की मां को दौरे पड़ने लगे. बेहोशी कितनी देर न टूटती. वह नाक दबाकर पानी मुंह में डालता. मुश्किल से होश आता. वह उसे दोष देती कि पुलिस में रहकर भी वह विंदर को नहीं ढूंढ रहा. दस दिन तक उसने विंदर के रास्तों के पत्ते तक को हिलता नहीं देखा था. वे दिन बड़े उथल-पुथल के दिन थे. पूरे पंजाब में भी जैसे आफत टूट पड़ी हो. कई नौजवान पुलिस मुकाबलों में मारे दिखाये जा रहे थे.

एक दिन सुनने में आया कि बंगा स्टेशन पर एक लड़का पकड़ा गया. पकड़े जाने पर उसने जेब में हैंड ग्रिनेट का पिन खींच लिया. उसके जिस्म के टुकड़े उड़ गये.

फिर विंदर की मां का धैर्य छूटने लगा. उसे ज्यादा तकलीफ इस बात की थी कि पुलिस में रहकर भी उसका पति उसके बेटे की कोई खोज-खबर नहीं पा रहा. रो-रोकर वह बेहाल हो जाती. उसके रोने के सामने सुरजन सिह खुद को बड़ा असहाय और कमजोर-सा समझता. इन दिनों उसे लगता कि वह किसी प्राणरहित पुतले की तरह चल-फिर रहा है.

बंगा में एक लड़के के पकड़े जाने और उसके आत्मघाती प्रहार के दो दिन बाद संध्या के समय एक लड़की सुरजन सिंह के घर में दाखिल हुई. पहले उसने कभी भी संध्या का वक्त घर में नहीं गुजारा था लेकिन विंदर के चले जाने के बाद वह ज्यादातर पत्नी के पास बने रहना चाहता. उसका कुछ पता नहीं था, कब चक्कर खाकर गिर पड़े. डाक्टर को दिखाया था. कहता था मर्ज नहीं है, सदमा है. इसका इलाज सदमे के बाहर निकलना ही है. प्रकाश के घेरे में आते ही सुरजन सिह पहचान गया. कैसे नहीं पहचानता भला. वही नर्स थी जिसका ब्लाऊज चर्र से फाड़ दिया था सुरजन सिह ने. वही बेखौफ आंखें. वही जिसके कारण वह सस्पैंड हो गया था.

"तुम!" उसके मुंह से निकला.

"मुझे पता नहीं था कि आप विंदर के पिता हैं."

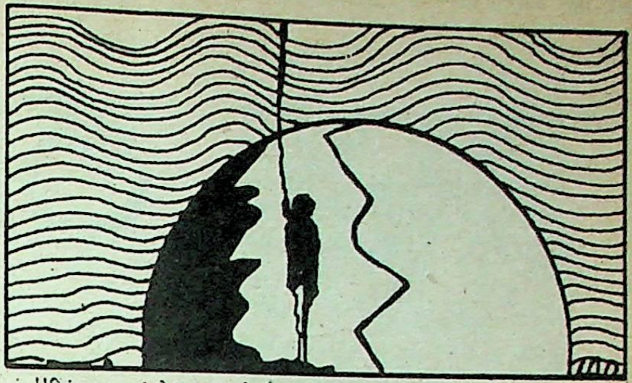

"विंदर कहां है? कहां है विंदर?"

विंदर का नाम सुनकर उसकी मां उठकर बैठ गयी. उसकी निस्तेज आंखें जैसे चमक उठी हों.

"विंदर अब इस दुनिया में नहीं है."

विंदर की मां के भीतर से भोथरी छुरी से काटने जैसा रुदन निकला और वह बेहोश हो गयी. लड़की ने हाथ का पैकेट कुर्सी पर रखा. सुरजन सिह को अभी कुछ भी समझ आ पाता, इससे पहले ही लड़की पानी का गिलास लेकर मां के चेहरे पर पानी के छींटे मार रही थी. उसे कुछ भी बताना नहीं पड़ा कि गिलास कहां है और पानी घर में किस जगह मिलेगा. बेहोशी नहीं टूटने पर उसने मां की नाक दबायी. तब जाकर वे उठीं. उठते ही फिर रोने लगीं. हौसला देने की भाषा लड़की के पास भी नहीं थी. वह पैकेट उठाकर बरामदे में आ गयी और विंदर की तस्वीर देखने लगी. अत्यंत पीड़ा ने अचानक उसे मथना शुरू कर दिया. देश की मिट्टी को पैशाचिक कदमों से मुक्ति दिलाने के लिए कितनी माओं ने अपने बेटे और कितनों ने अपने कुर्बान कर दिये.

सुरजन सिह चार-पांच मिनट बाद आया, "मुझे नहीं पता था कि तुम विंदर की साथी हो." साथी कहने से पहले वह दोस्त कहने लगा था लेकिन फिर उसे खयाल आया कि विंदर लोग आपस में साथी का संबोधन देते होंगे.

"मुझे भी नहीं पता था कि आप विंदर के पापा हैं." लड़की ने कुछ कड़वाहट से कहा.

"विंदर कैसे..."

"उसे आपके कुशल विभाग ने पकड़ लिया था लेकिन हमारा साथी उनकी पकड़ में आकर भी पकड़ा नहीं जा सका. बंगा स्टेशन पर उसने अपनी जेब में..."

"तो क्या बंगा स्टेशन पर दो दिन पहले..."

"जी हां... वह जांबाज बहादुर साथी अमर शहीद विंदर ही था.'

सुरजन सिह के सामने पूरी जमीन लट्टू की तरह घूम रही थी. इसे किसी भी वक्त एक खरबूजे की तरह फोड़ा जा सकता है. उसे लगा.

"विंदर की यह दो चीजें मेरे पास थीं, जो मैं आपको पहुंचने आयी हूं. एक उसकी शाल और दूसरी डायरी."

सुरजन सिह को उसकी आवाज दूर बहुत दूर से आती लग रही थी. उसने जाने कैसे साहस बटोरकर कहा, "तुम कुछ देर रुक जाती."

"जी नहीं. रुकना हमारे बस का नहीं. चील की तरह आपके विभाग की निगाहें हमारा पीछा करती हैं हर वक्त..."

लड़की हवा की तरह आयी और आंधी की तरह चली गयी.

सुरजन सिह शुक्र मना रहा था कि विंदर की लाश को लावारिस लाश घोषित कर जला देने की बात उसकी पत्नी को नहीं मालूम.

वह उसके कमरे में जाने के लिए आगे बढ़ा तो बुत की तरह खड़ी पत्नी को सामने पाया.

उसने उसके कंधों पर हाथ रख दिया. पता नहीं सहारा देने के लिए या पाने के लिए.

घर के पीले पर्दे अब उसे आग की तरह लग रहे थे. ◻

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

पिछले अंकों में आप हरि, रामबरन, परकाश, सहदेव ठाकुर आदि आदि से मिल चुके हैं. इन सबकी अपनी-अपनी समस्याएं तो हैं पर एक समस्या साझी भी है—गोरे मालिकों और उनके सरदारों के अत्याचार से जूझने की समस्या. अब गास्तों की ही बात लें. पांच साल के इस बच्चे के साथ जो दुर्घटना घटी थी उसकी जिम्मेदारी मालिकों की ही थी पर वे कहां तैयार थे उसे निभाने के लिए. काफी सोच समझकर हरि और उसके साथियों ने तय किया कि मजदूर संघ का गठन किया जाये. अब पढ़िये आगे की कथा

सप्ताह बाद उस बरसाती शनिवार को जब आकाश पर काली बदलियां तो थीं पर बारिश शुरू नहीं हुई थी, परकाश काटेज पहुंच आया था. उसका खयाल था कि शनिवार होने के कारण हरि दोपहर में उसे घर पर मिल जायेगा. जब उसे मूसा भी घर पर नहीं मिला तो वह हरि के घर लौट आया था. दो घंटे पहले वह पहुंचा था. इन दो घंटों में वह हरि की उस मोटी-सी बही को लेकर बैठ गया था जिसमें हरि अपने कभी-कभार के कुछ विचारों को लिखता रहा था. परकाश को उन विचारों से कहीं अधिक अच्छे लगे वे सारे रेखाचित्र जिन्हें व्यंग्य शैली में हरि ने बीच-बीच के पन्नों में बनाया था. लगभग सभी चित्र खेतों और कारखानों की उन भिन्न-भिन्न स्थितियों-परिस्थितियों का अंकन लिये हुए थे जिन्हें हरि वर्षों से देखता आ रहा था. सभी चित्र गन्ने के खेतों में मालिकों और सरदारों के जुल्मों की कहानी सुनाते प्रतीत हो रहे थे. कारखानों के चित्रों में मालिकों को पैसे बटोरते और मजूदरों को भूखे मरते दिखाया गया था. अब साढ़े चार बजने को था. इस बीच जोरों की बारिश शुरू हो गयी थी. हरि की मां ने उससे खाने का अनुरोध किया था पर वह यह कहकर टाल गया था कि घर से खाकर निकला था. अलबत्ता तब से अब तक उसने चाय दो बार पी ली थी. हरि की मां ने कहा था कि शायद वर्षा के कारण हरि कहीं रुक गया होगा. परकाश को हरि के इतनी देर तक घर न लौटने के कारण का अनुमान हो चला था.

और जब कोई दूसरे आध घंटे बाद गोनी की घोघी ओढ़ हरि मूनसामी के साथ घर के भीतर दाखिल हुआ तो अपने उसी अनुमान के आधार पर परकाश ने उससे पूछा, "पांच बजने को है, अभी तक काम कर रहे थे क्या?"

हरि ने सिर के घोघी उतारकर देवी को थमाते हुए बस हामी भर दी. अपने अनुमान को सही मानकर परकाश ने आगे पूछा, "कोर्वे कर रहे थे?"

"हां, आप बहुत पहले से आये हैं क्या?"

"आखिर यह कोर्वे का सिलसिला कभी रुकने का नहीं?"

"कैसे रुकेगा?"

देवी के द्वारा ले आये कपड़े को उसने मूनसामी के हाथों थमा दिया. मूनसामी ने उस कपड़े से अपने ऊपर के पानी को पोंछते हुए हरि बेबसी की-सी आवाज में बोला, "अगर दो मजदूर कोर्वे के लिए इनकार करने का साहस कर भी जायें तो उससे क्या हो जायेगा! बाकी तो सभी उसे नियति और कानून माने जिंदगी भर करते रहने को तैयार होंगे."

देवी दो कटोरों में गर्म चाय ले आयी. पहले कटोरे को उसने मूनसामी के हाथ पर रखा और दूसरे को अपने भाई के हाथ. परकाश से जब पूछा तो उसने यह कहकर मना कर दिया कि दो बार पी चुका था. जब परकाश ने चाय पी ली, हरि ने कहा, "यह कोर्वे खेतों के मजदूरों को चूसने लूटने की बहुत बड़ी जमीदारीं साजिश है."

"हमें तो सप्ताह भर के काम के बाद इन मालिकों और सरदारों के लिए चार-पांच घंटे ही मुफ्त में काम करना पड़ता है, पर सुना है कि दूसरी कोठियों में तो रविवार को भी मजूदरों से कोर्वे करवाया जाता है. आखिर यह कोर्वे कौन-सा शब्द है परकाश भैया?"

"यह तो शब्द से कहीं ज्यादा पूंजीपतियों का अपना कानून है. फ्रेंच कोश में इसका अर्थ कुछ है और मालिकों की अपनी किताब में कुछ और. वे इसे मजदूरों का फर्ज और फर्मबरदारी मानते हैं. उनका यह दावा है कि चूंकि उनकी कृपा से मजूदरों को नौकरी करके पैसे प्राप्त होते हैं इसलिए वे मजदूरों के अन्नदाता हैं और कोर्वे अपने अन्नदाता के

प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करना होता है.''

'छह दिन के थके-मांदे होने पर भी हमें विवश होकर उनके लिए मुफ्त में काम करना पड़ता है. ईख काटने लादने से लेकर उनकी गाय-बकरियों के लिए चारा-जुटाकर बाड़े तक छोड़ना पड़ता है.''

"और तुम इस तरह के शोषण करनेवालों तथा अंधा कानून चलानेवालों के साथ होड़ लेने को सोचते हो!''

"अब तो सिर्फ सोचना ही नहीं है, बल्कि कर बैठना है.''

"याने कि...''

"हमने अपना मजदूर संघ बना लिया है.''

"मजदूर संघ बना लिया? क्या मतलब?''

"हम दो-तीन दिनों में इसका पंजीकरण भी करने जा रहे हैं.''

"कितने लोग...''

"हमने आठ सदस्यों से संघ की नींव डाली थी. अब हमारी बही में पंद्रह नाम हैं.''

"पागलों के?''

"नहीं भैया, साहस करके नहीं नहीं कहने वालों के?''

"इस साहस और नहीं का परिणाम?''

"देख लेंगे!''

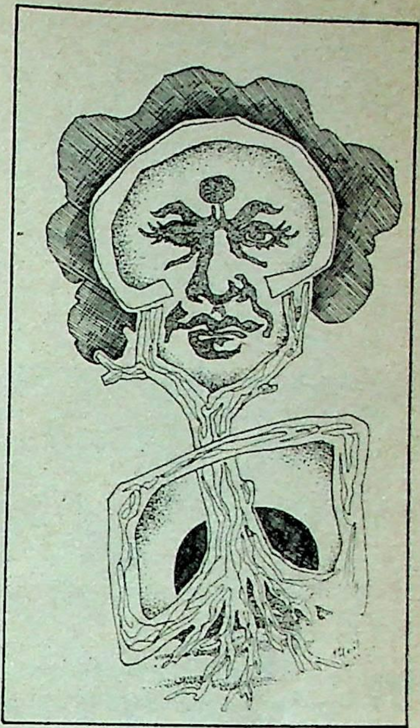

"और तुम्हारे ये भाई-बहन, तुम्हारी मां, इनका क्या होगा जब तुम्हें नौकरी से निकाल दिया जायेगा! बात मालिकों के कानों तक पहुंचने की देर है, तुम पंद्रह मजदूरों को नौकरी से हटाने में दो मिनट की भी देर नहीं होगी. इस पर सोचा है?''

"हमने यह सोच लिया है कि किसी भी हालत में अब शोषण को बढ़ावा नहीं दे सकते. अपना पूरा हक न पाकर तो खामोश ही रहे अब तक लेकिन उधर की मनमानी और जुल्मों के आगे अब चुप नहीं रहा जा सकता.''

चाय पी चुकने के बाद मूनसामी अपनी जगह से उठा. गोनी की घोघी उठायी और बोला, "मैं चलता हूं हरि. कल त्रिओले की ओर जाना है न?''

"हां. तुम घर पर ही रहना. मैं और मूसा उधर ही से निकलेंगे.''

घोघी ओढ़कर वह बाहर निकल गया. हरि ने परकाश को बताया, ''मूनसामी हमारा सबसे सक्रिय सदस्य है.''

बाहर वर्षा और जोर पकड़ चुकी थी. छत दो-तीन जगहों से टपकनी शुरू हो गयी थी. हरि ने एक व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ कहा, ''लोग कहते हैं यह पानी नहीं बरस रहा, सोना बरस रहा है. पर यह कोई नहीं बताता कि किसके लिए!''

"तो बही में इन व्यंग्य चित्रों में तुम यही बताना चाहते हो क्या?''

"आपने मेरी बही देखी क्या?''

"तस्वीरें तो तुम बहुत सटीक बना लेते हो पर उनका करोगे क्या?''

"मैं तो बस उन्हें बनाकर अपने भीतर की खीज को दूर करता रहता हूं.''

"इनमें तो तुमने किसनसिंह और मदन के बारे में भी तस्वीरें बनायी हैं.''

"उनके संघर्षों को दिखाने की कोशिश की है.''

"किनको दिखाने की?''

हरि ने इस प्रश्न का उत्तर न देकर बाहर की वर्षा का खयाल करके कहा, ''अगर यह सोना इसी तरह बरसता रहा तो आपको यहीं रात बितानी पड़ेगी.''

"घर पर लोग चिंतित होंगे.''

"वे जानेंगे कि पानी की वजह से आप यहां रह गये. यों भी आपसे आज बहुत सारी बातें करनी है.''

वर्षा मूसलाधार होती गयी. बाहर समय से पहले अंधेरा फैल चुका था. कुछ ही देर बाद घर में चिराग जलाने ही पड़े. देवी ले आयी वह मिट्टी के तेल का चिराग. रावेनाल की पतली दीवार के उस पार हरि की मां के बार-बार मना करने पर भी घर के दो सबसे छोटे बच्चे हुड़दंग मचाते रहे. देवी कई बार अपने रसोई के काम को छोड़कर उन्हें चुप रहने की हिदायत दे जाती.

बिजली कड़कने और बादल गरजने के कुछ क्षण, घर के भीतर एक भारी खामोशी के क्षण थे जब बिजली थमी और बादल गरजने बंद हुए तो उस दूसरे भाग से बच्चों की अब तक की सहमी हुई आवाजें फिर जोर पकड़े गयीं. रिस रही छत से पानी की कुछ बूंदें संदूक

पर टपकीं जहां चिराग था. हरि ने उस जलते हुए चिराग को उसकी जगह से हटाकर दूसरी जगह पर रख दिया. वक्त से पहले रात हो आयी थी. हरि की मां ने आवाज देकर हरि को बुलाया. हरि जब उसके पास पहुंचा तो उसने दबे हुए स्वर में उससे पूछा, ''क्या पकाना होगा?''

''क्यों? यह तो तुम मुझसे पहली बार पूछ रही हो. जो कुछ पकता रहा है, वही पके. हमसे पूछने की जरूरत कहां से आ गयी?''

''आज घर में पहुना है.''

''क्यों? अच्छा-अच्छा! तो तुम परकाश भैया की बात कर रही हो. लेकिन मां, तुम उसे मेहमान न समझो. वह तो वही खायेंगे जो इस घर में पकेगा.''

''देवी बता गयी है कि भात के साथ सिर्फ मट्टर की दाल होगी. बाहर बारिश है वरना पड़ोस से...''

''पड़ोस से क्या चाहिए, बताओ, मैं मांग लाता हूं.''

''दाल के साथ कोई चटनी तो होनी ही चाहिए.''

''तो?''

''सुग्रीम भाई के यहां इमली और पोदिना मिल जायेंगे.''

''ठीक है, मैं लाये देता हूं. पर क्या देवी उसे इस बरसात में पीस पायेगी?''

''तुम इसकी चिंता मत करो.''

''हरि को अपने बचपन की कई घड़ियां उस कम समय में भी एक-एक करके याद आ गयीं. उस भारी बरसात में जब गोनी की घोघी ओढ़े वह घर से बाहर हुआ तो अतीत की पहली घटना जो बिजली की तरह उसके जेहन में कौंधी, वह थी.... वह अंधेरी रात... उसके बाप की सारी जायदाद के चले जाने के बाद घर में अनाज के खत्म हुए चौथा या पांचवा दिन था. उसकी मां ने उसे एकांत में बुलाकर कहा था. कि वह कहीं से कुछ ले आये ताकि घर के छोटे बच्चे भूख के मारे मरने से बच जायें. एक बार उसकी मां ने अपनी चांदी की हंसुली और बिछिया उसके हाथों में रखकर कहा था कि वह उन जेवरों को रामजी सरदार के यहां गिरवी रखकर कुछ अनाज ले आये. फिर एक दिन जब रसोईघर के चूहे तक उस अभाव से तंग आकर डेरा छोड़ भाग गये थे और घर की जूठन पर पलने वाले कुत्ते भी जब आंगन में आना बंद कर चुके थे तो इसी तरह की बरसाती शाम में हरि को घर से निकलना पड़ा था. उसका सबसे छोटा भाई भूख से चिल्ला-चिल्लाकर अधमरा हो गया था.

''घर के पिछवाड़े में फ्रीआ-पें का जो पेड़ था, उसमें जो बचे हुए फल थे उन्हें हरि की मां उबाल-उबालकर सुबह-शाम अपने बच्चों को खिलाती रहती थी. पर जब वे रोटी-फल भी समाप्त हो चुके थे तो एक दो अवसरों पर उसने कच्चे पपीते पकाकर बच्चों के पेट भरे थे.

पड़ोस के तीसरे घर में जाकर हरि को इमली और पोदिने की पत्तियां मिलीं. उन्हें जब रसोई में छोड़कर हरि परकाश के पास पहुंचा तो उसे उस पुस्तक के पन्नों को उलटते-पलतटे पाया जिसे वह अपनी गोद में लिये बैठा था. हरि के बैठ जाने पर उसने अपने हाथ की उस हस्तलिखित पुस्तक को उसकी ओर बढ़ा दिया. हरि ने पुस्तक को अपने हाथ में थाम लिया. उसे पहले भी देख-चुका था इसलिए उसे खोले बिना ही जान गया था कि वह किसनसिंह की पुस्तक थी. प्रकाश ने कहा, ''इस पुस्तक को हम लोग बारी-बारी से संभाले आ रहे हैं. आज से यह जिम्मेवारी तुम्हारी हो जाती है.''

हरि ने कुछ कहा नहीं. पुस्तक को माथे से लगाया फिर उसके पन्नों को पलटकर उन पर सरसरी नजर दौड़ायी. इतना तो वह जानता ही था कि इस देश के मजदूरों की वह पहली पुस्तक थी. चाहे वह एक ही मजदूर के द्वारा लिखी हुई क्यों न थी, पर उसे अब तक के सभी मजदूर अपनी ही पुस्तक मानते आये थे. चांदनी रातों में जब गर्मी की अकुलाहट अपनी पराकाष्ठा पर होती थी तो कई बस्तियों में मजदूर एक दूसरे को रामायण या आल्हा की कहानियों के साथ-साथ किसनसिंह की पुस्तक की उस दर्दनाक कहानी को भी सुनाते थे. परकाश जहां बैठा था, वहां भी छत से बूंदें रह-रहकर टपकने लगीं. हरि ने उन बूंदों को देखकर छत की ओर देख फिर परकाश से थोड़ा-सा पीछे हट जाने का अनुरोध किया. थोड़ा पीछे हटकर परकाश ने मुस्कराते हुए कहा, ''अभी अपने घर में होता तो अब तक सात-आठ जगह बदल गया होता. तभी हरि की मां पीतल के तीन पुराने कटोरों के साथ भीतर आ गयी. खाट और संदूक के आसपास की टपकनेवाली जगहों पर उसने उन पात्रों

घटना-कथा

ईमान

□ नलिन पांडे

एक गांव में डाका पड़ा था. खून-खराबा लूट-पाट... विपक्ष ने इस मामले को नमक मिर्च लगाकर खूब उछला. विपक्ष के बड़े नेताजी ने दावे के साथ कहा कि डाकुओं द्वारा कुछ लड़कियों के साथ बलात्कार किया गया है. उन्होंने मुख्यमंत्री से इस्तीफे की मांग ऊंचे स्वर में उठायी. मुख्य मंत्रीजी इन खबरों से बड़े उखड़े. वह तुरंत घर में बने तहखाने में डाकुओं के सरदार से मिले. सरदार ने कहा, ''साहिब! अपना कुछ इमान होता है. हमारा गिरोह ऐसी हरकतें नहीं करता और फिर आपके कहे बिना.....'' मुख्यमंत्रीजी आश्वस्त हुए और वापस अपने एयरकंडीशन रूम में आकर कोने में सजी गुलाब की कली मसलने लगे. □

को रख दिया ताकि फर्श और बिछावन गीले होने से बच जायें. उन पीतल के कटोरों में रह-रहकर टपकने वाली बारिश की बूंदों से कभी छन की आवाज आ जाती तो कभी टन की. हरि अपनी योजनाओं पर बात करता रहा. परकाश सुनता रहा. हरि ने जब अपनी बातें समाप्त कीं तो परकाश ने उसे उन दो व्यक्तियों की संघर्ष कथा उसे सुनायी जिन्होंने मजदूरों के हित आवाज उठायी थी. पर जिन्हें पूंजीपतियों और सरकार, दोनों ने मिलकर कहीं का न रह जाने को विवश कर दिया था. हरि के प्रण को जान लेने के बाद परकाश ने उसे हताश करने के लिए सारी बात नहीं बतायीं बल्कि इसलिए बतायीं कि वह उन सारी अड़चनों को पहले से जानकर उसके लिए तैयार रहे. आज वह आया ही था यह कहने के लिए कि हरि, अगर सचमुच तुम्हें विश्वास है कि तुम अपने मजदूर साथियों का कुछ हित कर सकोगे तो मेरी शुभकामनाएं तुम्हारें साथ हैं. उसने कहा, ''तुम्हारा एक आदमी से मिलना बहुत जरूरी है.''

''किससे?''

''डाक्टर मौरिस क्यूरे से.''

''सुना है उसके बारे में?''

''सिर्फ सुनने से काम नहीं चलेगा. तुम्हें उसके अधिक से अधिक करीब पहुंचकर उसके आंदोलन से जुड़ना होगा. डाक्टर मौरिस क्यूरे का मजदूरों के प्रति जो समपर्ण है, वह सचमुच तुम्हारे लिए अपनाने की चीज है. इस लड़ाई को अलग-अलग खेमों से नहीं लड़ा जा सकता. डाक्टर मौरिस को इस समय शक्ति की आवश्यकता है. तुम्हें उससे अपने लिए शक्ति और हौसला हासिल करना है और उसे अपनी ओर से वह शक्ति प्रदान करनी है जिसकी उसे इस समय सख्त जरूरत है. आजकल पोर्टलुई शहर में उसका एक दफ्तर है. शहर का मेरा एक दोस्त तुम्हें उससे मिला सकता है. मेरी जब उससे पिछली भेंट हुई थी, तभी उसने मुझे यह बताया था कि अगर उसे कुछ उत्साही और समर्पित नौजवानों का सहयोग मिल गया तो वह मजदूरों के ट्रेडयूनियन के साथ ही साथ मजदूरों का एक दल, एक राजनीतिक पार्टी भी बना सकता है. मैं चाहता हूं कि इस दिशा में तुम उसके सहयोगी बनो''

हरि परकाश की बात बड़े ही ध्यान से सुन रहा था. बोला, ''मैं अवश्य ऐसा करूंगा परकाश भैया.''

बाहर की बारिश के उस शोर के बावजूद पड़ोस के किसी घर से ओझाई की हांहू-हांकू और ढोलक की आवाजें आ रही थीं. खाने के बाद रात में काफी देर तक हरि और परकाश के बीच बातें होती रहीं. गोनी के उभारे हुए बोरों के एक ही बिछावन पर दोनों सो गये. मुर्गे की पहली ही बांग पर परकाश हरि से पहले जाग गया फिर बिछावन पर उस वक्त तक पड़ा रहा जब तक हरि की नींद नहीं टूटी.

वर्षा सुबह की उस प्रथम घड़ी तक भी होती रही थी. जैसे ही थमी, परकाश घर लौटने के लिए बैसाखी के सहारे उठ खड़ा हुआ. उसने अपनी जेब से एक चवन्नी निकालकर हरि की ओर बढ़ा दी. हरि पूछ बैठा, ''यह किसलिए?''

''मैं जानता हूं कि तुम गाब्रियेल के बेटे के लिए कुछ पैसे जुटा रहे हो. मैं अपना हिस्सा दे रहा हूं.''

''लेकिन...''

''मेरी हालत अभी उतनी बुरी नहीं है कि मैं किसी की मदद के लिए अपनी जेब से चवन्नी न निकाल सकूं.''

हरि ने उस चवन्नी को अपनी मुट्ठी में लेकर कहा, ''ठीक है परकाश भैया, गास्तों के लिए उगाही जा रही रकम का यह सबसे कीमती अंश होगा.''

हरि ने साईकल निकाल ली. परकाश पीछे बैठा था और हरि ने पेडल पर बायां पांव रख दिया. कुछ दूर तक साईकिल को चलाकर फिर दांये पांव को ऊपर उठाकर उस पार के दूसरे पेडल पर रखने में सफल हो गया. रास्ता पानी और कीचड़ से भरा हुआ था. जब साईकिल ने अपनी रफ्तार ले ली तो पीछे से परकाश ने कहा, ''ज्यादा तेज मत चलना, रास्ते में फिसलन है.''

हरि मुस्कराकर बोला, ''मैं तो इसका आदी हूं.''

सूरज काफी देर से ऊपर आया था.

क्रमशः

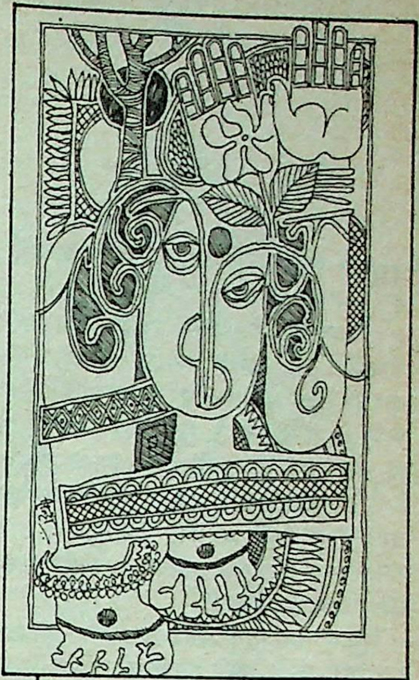

अगले अंक में

डा. मौरिस क्यूरे के साथ हरि की पहली मुलाकात कैसी रही? ...क्या उन्होंने हरि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया?... क्या थी वह चीज जो मुलाकात के बाद डा. क्यूरे ने हरि को सौंपी थी?... ऐसे ही और भी कई सवालों के जवाब...

दहेज की दरकार, बिल का सदाचार

□ गोपाल चतुर्वेदी

हमें खुश होना चाहिए. हम परेशान हैं. अपने अधिकांश देशवासियों से बेहतर होने के एहसास के बावजूद. हमारे पास दो कमरों का मकान है. ज्यादातर के पास घर के नाम पर खुला आसमान. पर तुलनात्मक समृद्धि के नुकसान अधिक हैं. झुग्गी-झोपड़ीवालों को हर दल पटाता है. इतने वोट एकमुश्त हथिया लिये तो जीत पक्की. वहां न बिजली के बिल आते हैं न पानी के. कोई नेता राशन कार्ड बनवाता है. कोई नल लगवाता है. कोई बिजली का आश्वासन देता है.

सफल लोग सिर्फ अपना हित सोचते हैं. कम कामयाब कभी-कभी दूसरों का. हमने अपने आपको धिक्कारा कि दूसरों के बारे में सोचकर हमने वक्त क्यों जाया किया. पर क्या करते. एक पंखे और चार लट्टुओं के चक्कर में बिजली विभाग के निम्नलिखित पत्र ने हमें विवश कर दिया.

प्रिय महोदय,

दस हजार रुपये बिजली का बिल आने के बारे में आपका आरोप पत्र मिला. आपने यह भी सूचना दी है कि औसत के अनुसार आपका अधिकतम बिल चालीस-पचास रुपये होना चाहिए.

आपकी शिकायत विचाराधीन है. आपसे अनुरोध है कि आप एक सप्ताह के अंदर बिल का रुपया जमा करवा दें. नहीं तो मजबूरी में हमें आपकी बत्ती बंद करनी पड़ेगी.

हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि जैसे ही आपकी शिकायत पर निर्णय हुआ, हम अधिक या कम राशि आपके भविष्य के बिलों से एडजस्ट कर लेंगे. कृपया प्रमाण-पत्र तत्काल भेजें कि इस प्रक्रिया से आप सहमत हैं.

प्रमाण-पत्र आने के बाद ही आगे की कार्रवाई की जायेगी.

शुभकामनाओं सहित,

आपका,
चिरागदीन

जब डाकिये ने दस हजार का बिल दिया था तो नये साल का इनाम भी लिया था. बस तब से हमारा और बिजली विभाग का पत्राचार जारी है.

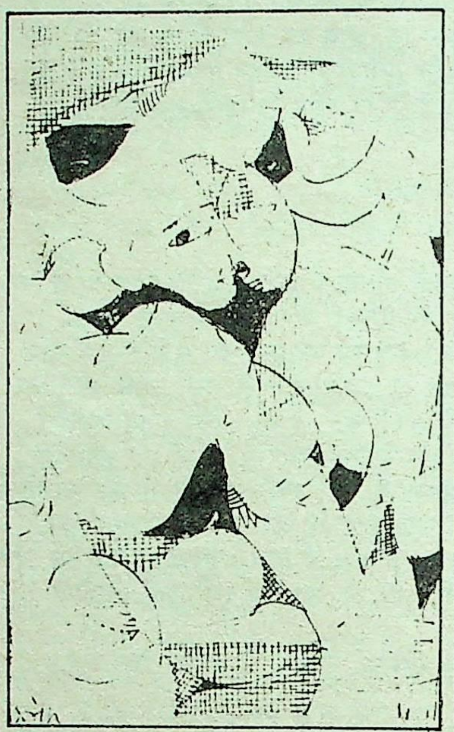

हमारे पड़ोसियों से बड़े मधुर संबंध हैं. वक्त जरूरत राशन का आदान-प्रदान चलता है. ऊपरवालों के लिए नीचे के घर कारपोरेशन के कूड़ेदान हैं. नीचे वाले अर्थात् हम कभी दायेंवाले पड़ोसी को कूड़े से कृतार्थ करते हैं, कभी बायेंवाले को. हमारे आजू-बाजू के पड़ोसी भी यही करते हैं. अक्सर हम लोग एक दूसरे से कतराते हैं, पर सामने पड़ ही जायें तो गले लग जाते हैं. पत्नियां भी हमारे भाईचारे की आदर्श आचार-संहिता का पालन कर अपना कर्तव्य निभाती हैं. जब भी दो मिलती हैं तीसरे की बुराई करती हैं. हमारे बायें पड़ोसी सरकार में हैं. विद्युत विभाग के पत्र ने हमें उनसे सलाह लेने के लिए विवश कर दिया. अपने शहर में बिजली घूमने-फिरने की शौकीन है. सुबह सैर को गयी थी. लिहाजा हमने कुंडी खटखटाकर हांक लगायी, "शर्माजी हैं!"

"कौन?" अंदर से आवाज आयी.

"हम, राधेश्याम," हमने परिचय दिया.

दरवाजा खुला. लुंगी लगाये शर्माजी अवतरित हुए. "क्या जमाना आ गया है! न बिजली है न पानी!" उन्होंने वर्तमान परिस्थि की वजह बतलायी. हमने हां में हां मिलायी. फिर पत्र उनके हवाले किया. हमें हमदर्दी की उम्मीद थी. उन्होंने बधाई दी.

"राधेश्यामजी, आप किस्मत वाले हैं."

"क्यों?" हम खीझे.

"यहां लोगों की जिंदगी रिमांइडर भेजते बीत जाती है. आपको जवाब तो मिला."

"पर दस हजार कहां से लायें."

"यह तो आप जानें. सरकार में ईमानदार भविष्यनिधि से बहाने बनाकर रुपये निकालते हैं, समझदार इधर-उधर से कमा लेते हैं."

"आप ही बताइये क्या करें?" हमने अपील की.

उन्होंने समस्या पर विचार के लिए वक्त चाहा. हमने शाम की चाय की दावत दी. वह पधारे और फिर से पत्र पढ़कर बोले, "आपक मामला 'विचाराधीन' लिखा है. सरकार मे ऐसा तब लिखते हैं जब फाइल गुम जाती है. बिजली के दफ्तर में हमारे गांव का राम राज है. आप हमारा नाम लेकर उससे मिल लो."

दूसरे दिन हम बिजली के बीहड़ में थे. इधर सबसे समान व्यवहार की नीति है. इसी के अंतर्गत वहां भी बिजली नदारद थी. वहां एक बूढ़े चपरासी ने अजनबी पाकर हमें घूरा, "किससे मिलना है?"

हमने 'रामराज' बुदबुदाया.

"लेखावाले कि प्रशासन के?" उन्होंने गुगली फेंकी. हमने अपनी समस्या बयान की.

"तब तो मामला लेखावाले का है. प आजकल दोनों छुट्टी पर हैं."

हमने गुजारिश की, "किसी अधिकारी मिल लें!"

"क्यों नहीं! पर अफसर दिन भर मीटिंग मे रहते हैं."

"हम क्या करें?" हम गिड़गिड़ाये.

"आप इंतजार कर सकते हैं."

"फिर हमें ध्यान आया कि पत्र पर कि चिरागदीन नाम की हस्ती के हस्ताक्षर थे. हमने मौका न चूकते प्रश्न किया, "यह चिरागदीन कौन हैं!"

"चिराग बाबू जन संपर्क अधिकारी हैं."

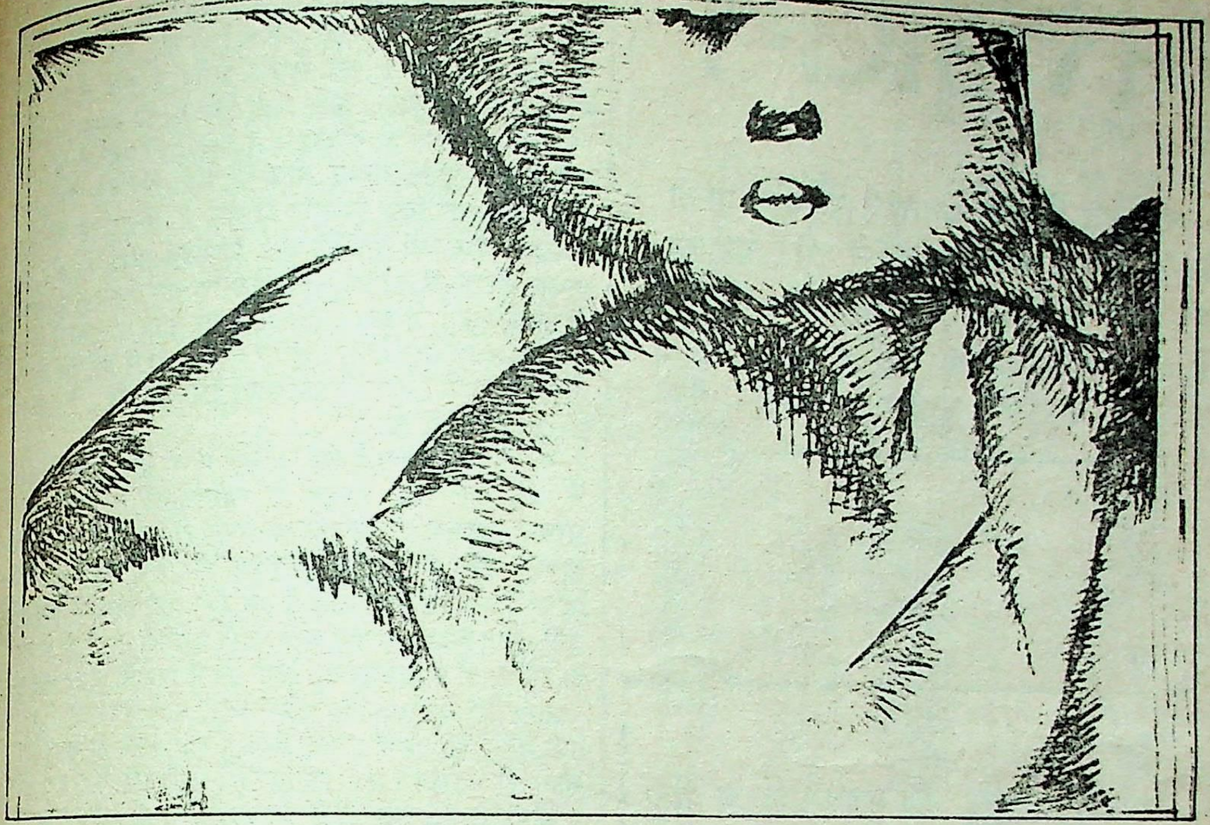

"उनसे मुलाकात मुमकिन है."

"वह तभी मिलते हैं जब बत्ती रहती है. बत्ती जाते ही वह पत्रकारों को चाय पिलाने ले जाते हैं. आपने देखा नहीं! अखबारों में हमेशा हमारी कार्य-कुशलता के कारनामे छपते हैं."

अपनी दशा पानी मांगने की हो गयी. वह हमें कैंटीन ले गये. बेसन की बर्फी खिलायी. बर्फ का पानी पिलाया. हमने पैसे देने की पेशकश की तो इंकार कर दिया, "आप ही लोगों का तो दिया खाते हैं."

"उन्होंने दरयाप्त किया, "आखिर आपकी परेशानी क्या है?"

हमने बिना कौमा-फुलस्टाप दास्ताने-दस हजार सुना डाली. उन्होंने मेज पर कोहनी रखकर अंदाज लगाया और बोले, "लगता है आपकी दहेज वाली डिमांड है."

"यह क्या होती है?" हमने जानना चाहा.

"मोहन सिंह की लड़की का शादी है. उसने पांच लाख में सौदा कर इनकम टैक्स सेवा का दामाद खरीदा है. इसी चक्कर में कहीं दस, कहीं बीस हजार का बिल भेज दिया है. इधर हमारे दफ्तर में लड़कियों-की शादी की बाढ़ आयी है. उसी अनुपात में गलत बिलिंग भी बढ़ी है. आप कितना दे सकते हैं?"

हमने हिसाब लगाया. सौ-दो-सौ होम करने की दरियादिली दिखायी.

"इतना तो अपना रोज का चाय पानी का खर्चा है!" चपरासी ने चाबुक लगायी हमें उन्होंने यकायक जानना चाहा, "आपका अपना मकान है?"

"जी हां." हमने सीना फुलाकर उत्तर दिया.

"आप कार से आये हैं!"

हमने इंकार में सिर हिलाया. उन्होंने हमारी नौकरी के बारे में तफशीश की. "अच्छा तो आप सरकारी नहीं, प्राइवेट हैं. चलिये आपको मोहन सिंह से मिलवा दें."

एक छोटी-सी केबिन में मोहन सिंह दो मोमबत्तियों के बीच बैठे बिलों में घोटाला कर रहे थे. "आइये रामू काका." उन्होंने रामू चपरासी का स्वागत किया. अब तक गर्मी से अपना दिमाग भन्नाने लगा था. हमने चर्चा शुरू की, "सुना है, आपकी लड़की की शादी है!"

"जी हां. आपको कोई एतराज है!"

"इसीलिए आपने बिलों में धांधली की है?'

"देखते नहीं, हम कितनी निष्ठा से काम कर रहे हैं! कुछ के बिल इस बार बढ़ाये हैं, बाकी के अगली बार बढ़ायेंगे."

"लड़की की शादी में हमें मदद से इनकार नहीं है. पर उसूलन हमें घूस देना नहीं स्वीकार है."

"आप बिल के पेमेंट को घूस कहते हैं? घूस तो कांग्रेस के साथ चली गयी. अब तो ईमानदार सरकार है. उसकी नीतियों में हम यकीन रखते हैं. न भ्रष्टाचार करते हैं न बोफाचार. अपनी तो एक ही प्रकार है, जनता ही जनता की मददगार है."

"हम आपके अधिकारी से कमप्लैन करेंगे!" हमने धमकी दी.

"जरूर करिये. आप बिल मत जमा करिये. आपकी मर्जी. हम सिर्फ आपकी बिजली काटेंगे. यों लालटेन-मोमबत्ती में काफी मजा है. आप भी ट्राई करिये प्लीज."

"इस लूट और भ्रष्टाचार के खिलाफ क्या कोई सुनवाई नहीं है!" हम रिरियाये.

"यह आपकी गलतफहमी है. हम सब करप्शन के खिलाफ रोज गेट-मीटिंग में नारे लगाते हैं. पर दहेज की रकम की वसूली तो सामाजिक शिष्टाचार, सहयोग और सौहार्द की बात है. अधिकारियों से हम सहयोग करते हैं, वह हमसे भ्रष्टाचार भ्रष्ट लोग करते हैं, सदाचार सभ्य लोग."

रामू ने बीच-बचाव कर एक हजार पर तोड़ करवाया. हम हताश बस की तलाश में चल पड़े. हमारे पास आकर एक मारुति रुकी. "चलिये आपको घर छोड़ दें!" रामू की आवाज आयी. पता लगा कि उनकी कार ही नहीं कोठी भी है. "सब जनता से कमाई मेवा है. दिलजले इसे करप्शन कहते हैं. हम सदाचारी तो बस जनता की सेवा करते हैं." रामू ने मुझे घर पहुंचाते हुए अपना और बिजली विभाग के मुलाजिमों का फलसफा बताया. □

पुरुषोत्तम

नाम देते भी क्या बनता है उसको? यों तो सैकड़ों नाम दे डाले हैं लोगों ने उसे... पर इन सारे नामों के बावजूद वह अपने मन में कोई भी नाम दे पाये क्या उस अनामा को...? धारावाही कथाखंड की पहली किस्त—

☐ भगवतीशरण मिश्र

जन्म : 27 मार्च, 1939
प्रमुख कृतियां : 'पहला सूरज', 'पवन पुत्र', 'प्रथम पुरुष' (उपन्यास)
कहानी, उपन्यास व संस्मरण लेखन.
संप्रति : निदेशक : राजभाषा विभाग, पटना (बिहार)
संपर्क : 45/60 गवर्नमेंट फ्लैट्स, बैली रोड, पटना

यह भी होना था? माखन-चोर आदि की उपाधि तक तो ठीक. अब मणि-चोर भी बनना लिखा है उन्हें! और दधि-छांछ, घी-मक्खन की चोरी-छीनाझपटी—तो बीते समय की बातें हुई—बाल्यकाल की. उस समय कोई दधि-चोर कहे या चित चोर, मन में कोई बात उठती भी कहां थी? बल्कि उस विनोद-प्रमोद में एक आनंद ही आता था—अनाम, अनजाना. ओह, कहां फिसल गये यमुना पर फिसलती जल-बूंदों की तरह ही गोकुल के वे भले दिन? वहां की चांदनी-भींगी रातें, गोधूली-पूरित संध्याएं, ओस-सने प्रातः और वे रुपहली, अलसायी दुपहरियां? और किस विस्मृति के गर्भ में सोकर रह गये वहां के, निश्छल सरिता-सी गोप-गोपियां, प्राणप्रिय बाबा नंद और स्नेह की साकार सरिता-सी यशोदा अम्मा! विपत्ति और व्यथा के ऐसे क्षणों में ही तो उनकी स्मृति, बरबस मानस-पटल पर नाना आयामों के साथ उभर आती है. सच स्वजन ही याद आते हैं संकट काल में. पर चाहकर भी कहां जाना हुआ उधर? वे तो आ नहीं सकते इधर और वह....? स्मृति की एक सशक्त तरंग-सी उठी है.

नाम देते भी बनता है क्या उसको? यों तो सैकड़ों नाम दे डाले लोगों ने अब तक उसे. गोकुल के ग्वालबालों से लेकर मथुरा के पुरजनों-परिजनों और द्वारिका की अपनी ही अर्द्धांगिनी रुक्मिणी तक ने राधा से लेकर वृषभानुसुता, कनुप्रिया और ईर्ष्या-वश कृष्णार्पिता तथा विक्षिप्ता तक कह डाला लोगों ने उसे. किंतु वही जानते हैं कितनी पवित्र, कैसी पुनीत है वह—चांदनी धुली किसी कालिंदी-तरंग की ही तरह. पर इन सारे नामों के बावजूद वह अपने मन में कोई भी नाम दे पाये क्या उस अनामा को? कोई संज्ञा गढ़ पाये उसकी? भला अपने का भी कोई स्वयं नाम गढ़ता है? पहचान पाता है कोई क्या अपने ही अंदर रची-बसी अपनी ही अंतरात्मा को? शायद नहीं, कभी नहीं. कहां पूर्ण हो पाता है आजीवन; स्वयं से स्वयं का ही परिचय? अपना ही आत्मसाक्षात्कार? तो कैसे नाम दे पाते वह उसे जो केवल उनके अंतर में ही आसन मार नहीं जमी थी बल्कि उनके तन के पोर-पोर रंग-रंग में भी रच-बस गयी थी. कहने में फिर भी अच्छा लगता है आज भी— रा...धा. सारे नामों, सारी संज्ञाओं में आज भी यही अब भी खींचता है चुंबक की तरह मन-प्राणों को. ज्वार जगा जाता है राजनीति-ग्रस्त हो आये—अंतर-मन में आज भी उसका स्मरण. सच सोख ही ले गयी न द्वारिका अंदर के सारे स्नेह-स्रोत को? हिलोरे लेते, राशि-राशि सलिल-संकुल-सागर के कूल बसी यह नगरी कैसे सुखा ले गयी उनके मन के स्नेह-सलिल को ही? और कैसी निष्ठुर विवशता है यह कि चाह कर भी चढ़ा नहीं पाते वह इस नाम को अपनी जीभ पर? चौबीसों घंटे अंदर श्वासों की सीढ़ियों पर चढ़ते-उतरते, हृत-पिंड की धड़कनों से सदा एकाकार होते इस नन्हें किंतु अमृत-रस-सने नाम को वह होंठों की कैद से बाहर भी नहीं ला सकते. कैसी है यह विडंबना?

हां, चोरी की बात चली थी. चोरी तो फिर भी चोरी ही होती है और हर चोर कोई-न-कोई चिह्न छोड़ ही जाता है अपना—कि उसी की छोर पकड़, पकड़ ही बैठते हैं लोग उसे. और पकड़ ही लिया था प्रगल्भा रुक्मिणी ने उस दिन, अत्यंत यत्न से छुपायी इस चोरी को अथवा जान-बूझकर ही चिढ़ा बैठी थी वह उन्हें सदा की तरह. रा...धा का भूत जो सदा सवार रहता था उस पर! पता नहीं कितनों ने कितनी बार अपनी ओर से विष ही बनाकर उगला था इस अमृत-सदृश नाम को उसके कानों में—कहने को ये कृष्ण तुम्हारे हैं. पर आज का यह द्वारिकाधीश कल का वही गोपाल है जो गोकुल की गलियों और करिल-कुंजों में बावला बना फिरता था उस गोपबाला रा....धा के पीछे, ठीक वैसे ही जैसे चांदनी में किसी की परछाई भागे उसके साथ-साथ.

सच, बड़ा विचित्र यत्न ढूंढा था उस दिन रुक्मिणी ने उनकी चोरी पकड़ने का—अपनी ओर से तो चोरी पकड़ने का पर उनकी बात लें तो उनकी सबसे अधिक दुखती रग पर हाथ रख देने का था.

"जरा इधर तो आना द्वारिकाधीश!" इठलाकर कहा था उसने, अपने स्वर में अंतर का सारा स्नेह उड़ेलते हुए. पर संबोधन भी क्यां चुना था इस अवसर के लिए? पीछे, लगा था यह जान-बूझकर उन्हें अधिक-से-अधिक जलाने के लिए ही था—अवमानना के अंधे गर्त में उन्हें अधिक-से-अधिक नीचे उतारने के लिए. यह प्रकट करने के लिए कि आज चाहे तुम भले छत्र धारण करते हो, अपने उन्नत मस्तक पर, पर कभी मयूर-पंखों का मुकुट सजाए तुम गोप-बालाओं के मन हरने में ही अपनी संपूर्ण बुद्धि का व्यय किया करते थे!

"क्या बात है प्राण-प्रिये?" सच इस संबोधन पर झुंझलायी ही होगी रुक्मिणी, जी भर कर, और जो कुछ वह कहने अथवा करने जा रही थी उसके लिए और कृत-संकल्प हो आयी होगी वह.

"इधर आना, और समीप," और कहने के साथ ही वह स्वयं सट आयी थी उनके प्रशस्त वक्ष से. वे कहीं जाने को प्रस्तुत हो रहे थे. शायद आखेट को. कवच आदि से मंडित कर लिया था अपने को. इसी रूप में आलिंगन देना पड़ा था उन्हें पट्टमहिषी को. पर अद्भुत किया था उस दिन रुक्मि-अनुजा ने. कलेजे को नहीं, कानों को सटाया था उनके वक्ष से उसने और जैसे लौह कवच से मंडित वक्ष के अंदर की धड़कन को पढ़ने में भी बड़ी सहजता से सफल हो गयी थी वह.

"कृष्ण!" सहसा उसके मुंह से निकला था. प्रसन्न हुए थे, चलो औपचारिकता का बंधन तो काटा प्राण-वल्लभा ने! हां इससे कम उसे मानते ही कहां थे वे? राधा उनकी विवशता थी तो रुक्मिणी उनकी आवश्यकता. अगर ऐसी बात नहीं होती तो रूप की इस साक्षात् देवी के हरण तक के उस दुस्साहस पर वे उतरे भी कैसे होते जिसे सोच-सोच आज भी उनका मन कई तरह की मिली-जुली भावनाओं के चक्रव्यूह में जा फंसता है. उसके औचित्य-अनौचित्य तक के विश्लेषण पर उतर जाता है. किये पर सोचना कभी उनका सिद्धांत नहीं रहा, उनके द्वारा प्रतिपादित और आचारित जीवन-दर्शन का दूर से भी संबंध नहीं है विगत के रो-मंथन का, उसको लेकर पश्चाताप-ग्रसित होने का. नदी के बह गये जाल की तरह, भूत, समय के अजस्र प्रवाह में प्रलुप्त हो जाता है. उसको लेकर कैसा सोच, अनावश्यक ऊहा-पोह, व्यर्थ का विवेचन-विश्लेषण, प्रश्न-प्रति-प्रश्न? पर रुक्मिणी-हरण-प्रसंग को लेकर कहां अब भी सामान्य हो पाये थे वह? वह तो किसी साही के नुकीले कांटे की तरह अब भी अड़ा पड़ा था उनके अंतर के अंदर. वह सभी के बीच से उसे अंक में भर उठा भागना, रथारूढ़ होना और रथ का रुक्मि और उसके संगी-सहायकों के द्वारा पीछा किया जाना. फिर उनके साथ वह निर्णायक युद्ध. अनावश्यक रक्तपात. कैसी घोर विडंबना है यह उनके जीवन की कि जो नहीं करना चाहते है वह, वही करणीय बन खड़ा होता है उनके आगे. कब मान्यता दी है उन्होंने संघर्ष को, युद्ध को, अपने अंतर-मन में? मानव के रक्तपात से भी कोई अधिक कुकृत्य बन सकता है मानव के हाथों? युद्ध से भी बड़ा, व्यर्थ, अनावश्यक और कुरूप कलंक हो सकता है मानवता के देदीप्यमान भाल का? उस मानवता का जो देवत्व के समकक्ष स्थापित करने को आतुर है अपने को? कब युद्ध पसंद किया कृष्ण ने? पर होता क्या रहा अब तक? वही तो घटित होता रहा बार-बार उनके जीवन में जिसे नहीं घटना था, कभी नहीं घटना था. रुक्मिणी के लिए लड़ा युद्ध तो फिर भी छोटा था—घड़ी-प्रहर का. पर जरासंध के साथ हुए अनेकानेक दीर्घ-संघर्ष? दोनों पक्षों के असंख्य योद्धाओं की पंक्ति पर पंक्ति का बार-बार रण-क्षेत्र के शस्य के कटे पौधों की तरह बिछ जाना और इस सबके पूर्व भी गोकुल में बकासुर, अधासुर और कालिय नाग आदि के साथ के वे युद्ध? पूतना का प्राणोत्सर्ग? क्या यह सब चाहा था उन्होंने? यह हिंसा, यह रक्तपात? मनुष्य के हाथों ही, मनुष्य की निर्मम समाप्ति? नियति, प्रकृति के साथ किया जा रहा यह क्रूर अमानुषिक व्यवहार? किंतु थोपा गया सब उन पर. सब कुछ आरोपित हुआ उन पर अनचाहे, **अनामंत्रित**,

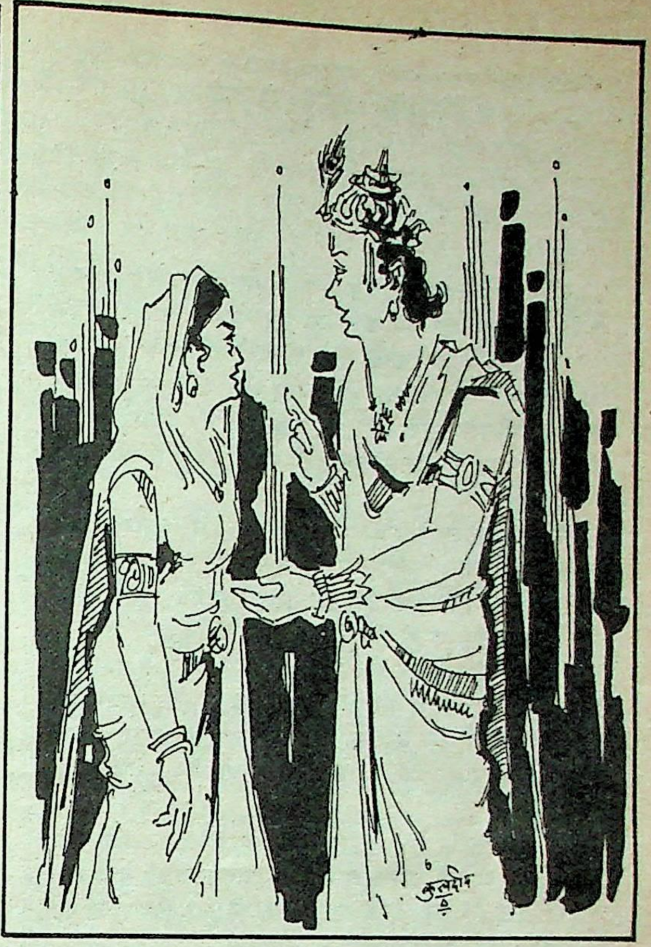

अनाहूत. और तो और अपने ही हाथों अपने ही मामा कंस के बध की बात को कैसे भूल जायें वह—अपने सारे जीवन-सिद्धांतों और स्वयं निर्धारित आदर्शों के बावजूद, विगत के चवर्ण को त्याज्य की संज्ञा देने की अपनी दृढ़ आस्था के आलोक में भी अपने ही रक्त-संबंधी के संहार को समय के इस दीर्घ के बाद भी स्मृति-पटल से धो-पोंछ देना इतना सहज है क्या? सच, नहीं जी पाता है मनुष्य अपने ही आदर्श को न? पर-कटे पंक्षी की तरह ही तो फड़फड़ा कर रह जाता है वह अपनी ही नीतियों-नियमों के पिंजरे में बंद? बार-बार ये बातें आती हैं मन में. नहीं चाहते हुए भी अतीत किसी उद्दंड और ढीठ आईने की तरह आ खड़ा होता है उनके मानस-चक्षुओं के समक्ष और वे सारे कृत्य जिनकी ओर से वे बार-बार आंखें मूंदना चाहते हैं उनकी आंखों के समक्ष अपना कुंठित नर्तन आरंभ कर देते हैं. हां, यही होता है हर बार. जब-तब ऐसी स्थितियां सामने आती हैं, अभी भी होता है. आगे भी होता रहेगा. जब युद्ध की संभावना बनेगी तब-तब वे संतप्त होंगे. युद्ध छोटा हो या बड़ा, उन्हें व्यथित करेगा, भले ही उसे टालने में वे सफल रहें या असफल—भले ही प्रचंड रूप से धधकती युद्धाग्नि में उन्हें अपने हिस्से की भी आहुति देनी पड़े पर वह विशता ही होगी. मन से कभी समर को महत्व न उन्होंने दिया है न कभी देंगे. पर पता नहीं अभी भविष्य के गर्भ में क्या-क्या छिपा है? पता नहीं महाकाल कब किस महाविनाश का सहभागी तो सहभागी, सूत्रधार तक बना छोड़े उन्हें? भगवान कहा जाता है उन्हें. कम—से-कम उसका अवतार. सोलहों अंशों से पृथ्वी पर प्रादुर्भूत परब्रह्म. नहीं समझ पाये अब तक वे इस भेद को. किधर से क्या कुछ असामान्य, अलौकिक और अद्भुत है उनमें कि नर से नारायण बन बैठे वह, लोगों के मध्य? पर कहां समझ पाता है मनुष्य चाहकर भी सब कुछं स्वयं के संबंध में भी? पर बात इतनी तो अवश्य है कि जब तथाकथित अवतार अथवा ब्रह्म भी विवश है वही कुछ करने को जिसे

समय की बात

□ नीना गर्ग

वर्षों पुरानी बात है. एक सुनसान इलाके में एक प्रेमी युगल परस्पर प्रेमालाप कर रहा था. प्रेमिका दुःखी थी कि उसका पिता किसी धनी परिवार के युवक से उसका विवाह करने जा रहा था. वह गरीब और बेरोजगार प्रेमी से कह रही थी कि उसके बगैर वह सुखी नहीं रह सकेगी. गरीब प्रेमी मूक मुद्रा में उसे देखता रहा, फिर अपनी फटेहाली को देखने लगा.

ठीक इसी समय राजशाही पुलिस के कई घुड़सवारों ने दोनों को घेरे में ले लिया. लड़की को पुलिस ने मुक्त कर दिया लेकिन प्रेमी युवक को गिरफ्तार कर वह राजा के सामने ले आये. राजा उसे देखकर प्रसन्न हो उठा और बढ़कर उसने अपने सिर का ताज युवक के सिर पर रख दिया और बनवास चला गया. यह बात युवक को बाद में पता चली कि राजा की कोई संतान नहीं थी. वह किसी उस जैसे ही युवक को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, जो गरीब हो, प्रेमी हो और स्वप्न देखता रहता हो.

अब वह गरीब प्रेमी युवक मुल्क का राजा बन गया और उसके ठाठ हो गये. उसने राज-काज में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी. कई युद्ध लड़े, उनमें वह विजयी भी हुआ और राज्य भर में उसकी जय-जयकार शुरू हो गयी.

एक दिन उसके दरबार में उसकी प्रेमिका उससे मिलने आयी.वह बहुत प्रसन्न थी. उसने बताया कि वह अब भी अविवाहित है. उसने धनी परिवार के युवक से विवाह करने से इनकार कर दिया था. जब से उसे पता चला कि उसका प्रेमी राजा बन गया है, वह खुशी से फूली नहीं समा रही है. बड़े प्रयत्नों से आज वह उसके समक्ष उपस्थित होने में सफल हो पायी है.

युवक ने मूक नेत्रों से उसे देखा फिर गर्दन झुकाकर अपनी शाही पोशाक निहारी फिर प्रेमिका को देखने लगा. प्रेमिका अब तक मौन हो चुकी थी. प्रेमी राजा ने गर्दन घुमाकर अपने महामंत्री से पूछा, ''महामंत्री! यह लड़की कौन है? इसे यहां तक किसने आने की अनुमति दी? क्या यह लड़की कुछ पागल है? □

वह अकरणीय मानता है तो सामान्य मनुष्य नियति के दुष्चक्र से कैसे और क्यों मुक्त कर पा सकता है अपने को?

बात कहां से कहां आ गयी? हां, उस दिन रुक्मिणी के कान आ लगे थे लौह कवच-मंडित उनके वक्ष से और वह एक मंद पर किंचित् कुटिल मुस्कान के साथ बोल पड़ी थी, ''कृष्ण!''

''बोलो!''

''यहां से तो विचित्र ही आवाज आ रही है.''

''कहां से?''

''अब क्यों कौतुक करते हो? तुम्हारे कलेजे से और कहां से?''

''कौतुक मैं कर रहा हूं या तुम?'' उन्होंने रुक्मिणी को अपने और समीप लाने का प्रयास करते हुए कहा था पर वह थी कि अपने बायें कान के अलावा और कुछ सटने ही नहीं दे रही थी उनके वक्ष से. ''कलेजे की धड़कन ही तो पहुंच रही होगी तुम तक? और लौह पदों को छेदकर आयेगी तुम तक तो विचित्र तो होगी ही वह कुछ हद तक.''

''चुप करो. धड़कन थोड़े है यह?'' उसके मुख की वह भंगिमा वैसी ही वर्तमान थी.

''क्या है?''

''नाम है.''

''नाम?'' उन्होंने आश्चर्य से पूछा था.

''हां, नाम.'' अब वह खिलखिला पड़ी थी, होंठों की वह कृत्रिम अथवा अकृत्रिम कुटिल मुस्कान सावनी धूप की तरह गायब हो गयी थी और पावस की निर्झरिणी की मुद्रा में ही खिलखिलाती बोली थी वह, ''हां, नाम ही तो है वह जिसे मैं तुम्हारी हर उठती-गिरती सांस में सुन रही हूं. लो, बता ही देती हूं क्या धड़क रहा है यहां—रा...धे! रा...धे! रा...धे!'' और छिटककर दूर खड़ी हो गयी थी रुक्मिणी. खिलखिलाती, वायु-आंदोलित पुष्करिणी की तरह ही तरंगायित, पुलकित. और वे थे कि उन पर घड़ों पानी पड़ गया था—अब भी नहीं निकला है राधा का कांटा रुक्मिणी के मन से? और सच तो यह है कि वह उन्हीं के मन से कहां निकल पाया है? आज भी जब चोरी का यह कलंक उनके भाल मढ़ा गया है तो उसी बहाने द्वारिका का यह तथाकथित मणि-चोर, माखन-चोर बन वृंदावन के करिल-कुंज में जा बसा है. वृषभानुसुता के क्रोड़ में पड़ा है वह—''लो राधे, एक बार जो तुमने मुझे चित्तचोर कहा तो चोर की यह संज्ञा ही रह गयी मेरे साथ. पर किससे कहूं अपना संत्रास, अपनी मनोव्यथा? तुमने चोर कहा तो मान लिया, गोकुल के गोप-गोपियों ने यह विशेषण दिया तो शिरोधार्य कर लिया उसे. पर अब इस कुटिल सत्राजित् ने लगाया यह आरोप? कैसे पी जाऊं इस विष को? बाल्य काल का वह चंचल चोर इस प्रौढ़ावस्था में भी सच का चोर बन आयेगा क्या? तुम रहती थी तो तुम्हारे कानों में सब दुःख-दर्द उड़ेल खाली कर लेता था अपने को? पर अब किससे कहने जाऊं? इतनी रानियों, पटरानियों से घिरा यह कृष्ण तो आज भी अकेला है, नितांत एकाकी. आज भी तो केवल तुम्हारा है तुम्हारा. और तुम्हारे नहीं होने ही से तो सबका होने और नहीं होने का कोई अर्थ नहीं है. कोई गलत थोड़े कहा था उस दिन रुक्मिणी ने, ठीक ही सांस-सांस में तो बसी हुई हो तुम ही—हां तुम ही, तुम ही तो कनु-प्रिया. तुम्हारे बिना कृष्ण अधूरा है. किधर से पूर्ण है, पूर्ण ब्रहम का अवतार कहा जाने वाला यह भोला कृष्ण, राधा के बिना? और कौन समझेगा हमारे-तुम्हारे इस अद्भुत अलौकिक संबंध को? सदा शरीर के स्तर पर ही सोचने वाला साधारण मनुष्य तुम्हारे और मेरे अशरीरी, अलौकिक संबंध की प्रगाढ़ता को कौन-सी संज्ञा दे पायेगा? है उसकी शब्दावली में ऐसा कोई शब्द तो परिभाषित कर दे हमारे संबंधों की पुनीतता, अलौकिकता और कहो तो इसकी विचित्रता को ही! सांसारिक अर्थों में एक दूसरे के समीप होने की कल्पना-मात्र से भी रहित हम किस तरह एक दूसरे से अभिन्न बने रहे हैं, और रहेंगे यह बात क्या विश्व कभी ठीक से समझ पायेगा?

अंत नहीं था कृष्ण के सोच का—उनके पश्चाताप का. अब यह सत्राजित द्वारा लगाया गया कलंक? इसे तो धोना ही पड़ेगा उन्हें. और चाहे-अनचाहे शायद फिर वही तो नहीं करना पड़े उन्हें जिससे वह सदा बचना चाहते हैं—युद्ध. चाहेंगे कि बिना इसके भी काम चल जाये. सत्राजित के आरोप के अपराध में द्वंद्व युद्ध में उसे समाप्त कर देने से चोरी का कलंक तो लगा ही रह जायेगा उनके माथे पर? और तब जब जीवन के किसी प्रहर में सचमुच वह मिल गयी, वही उनकी प्रेरणा, उनके सारे संघर्षों के साथ ही उनके अनगिनत उत्कर्ष और उत्थान की वह एक-मात्र, उत्स, वह, वह राधा! और वह कह बैठी, 'कृष्ण, तुम तो सच के चोर निकले!' तो क्या उत्तर देंगे वह उसे? नहीं, नहीं इस कलंक से मुक्ति पानी ही होगी उन्हें, स्ययं तक रुकि मणि की चोरी के इस मिथ्या कलंक से. □

राहत की एक सांस

उन्हें ऐसा क्यों लगा कि पत्र पढ़कर वे फंस गये हैं? अगर ऐसा पता होता तो भला वे लिफाफा खोलते ही क्यों!
कैसी है यह मुसीबत और क्या वे इससे बाहर निकल पाये?

□ कुमार अंबुज

जन्म: 1957 ग्राम मंगवार, जिला: गुना, (म.प्र.) विविध पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां व कविताएं प्रकाशित. अपने लेखन के विषय में अंबुज का कहना है–"अभी खुद को पहली ही सीढ़ी पर पाता हूं. कविताओं में काफी रुचि है, पढ़ने में भी और लिखने में भी. 'आसपास की छोटी घटनाएं गहरे तक असर करती हैं और शायद लिखने के लिए बाध्य-कारण भी बनते हैं. चीजें आसानी से पीछा नहीं छोड़तीं, इसलिए लिखना पढ़ना भी नहीं छूटता... कुछ सार्थक हो, इसका प्रयास जरूर करता हूं."

संप्रति: स्टेट बैंक ऑफ इंदौर में सेवारत.

संपर्क: स्टेट बैंक ऑफ इंदौर,
41, स्टेशन रोड, मुंगावली,
जिला: गुना, (म.प्र.)-473443

शादी से पहले मजीद भाई पूरे पांच वक्त की नमाज अदा करते रहे. इस कस्बे में मास्टरी प्राप्त हुई तब भी सही वक्त पर पांच टाईम दुआ करने और मांगने की आदत नहीं छूटी गड़बड़ हुई शादी के बाद. शहनाज के इस घर में आने के बाद ही बहुत सारी तब्दीलियां, घटनाएं-दुर्घटनाएं हुईं. तीन बरस में ही दो औलादें हुईं और अब्बा जन्नत को प्यारे हुए. खर्चों की आफतें आयीं और नौकरी जान से ज्यादा कीमती लगने लगी. धीरे-धीरे खुदा पर यकीन थोड़ा कम हुआ और नमाज अदा करना पहले अनियमित हुआ और फिर एकदम खत्म हुआ. कभी-कभी वे काफिरों की तरह बातें करते नजर भी आ जाते. हालांकि वे अपने इस अंदाज को पूरी तरह तरक्कीपसंद मानते फिर भी उन्होंने अपनी साठ सालाना अम्मीजान और छत्तीस पार कर रही शहनाज की खुदा-परस्ती में कभी इतनी दखलंदाजी नहीं दी कि उनकी भावनाओं को ठेस पहुंचे. यों अपने मन में वे कभी-कभार सोचते थे कि गरीबों का रखवाला खुदा ही होता है और इस विचार से उन्हें क्षणिक राहत भी मिलती कि शायद खुदा की मेहरबानी से दिनों का कालापन एक दिन अपने-आप गायब हो जाएगा और वे अपने पूरे परिवार के साथ खुशहाली में दिन काटेंगे.

खैर, कैसे भी कटे, काफी दिन कट गये थे और बाकी के दिन कट ही रहे थे. शादी को पंद्रह बरस गुजर गये थे और इस बीच उन्हें खुदा की देन के रूप में तीन और औलादें प्राप्त हुईं. शुरू की चार लड़कियों के बाद पांचवीं संतान 'लड़का' आयी, कोई दो बरस पहले ही. मजीद भाई को कई बार समाज को बदल डालने के दौरे पड़ा करते थे. उसी क्रम में, लड़का होते ही उन्होंने विचार बनाया कि नसबंदी करा ली जाये. दुर्भाग्य से यह विचार उन्होंने अपनी प्यारी शहनाज को बताया, शहनाज ने अम्मी को और फिर घर में तूफान आ गया. मजीद भाई झेंपू किस्म के प्रगतिशील थे जो क्रांति करने के पहले कई बार अपने आप से बहस करते थे और उसके सारे 'नेगेटिव' पहलुओं पर सोचते. और हर बार होता यह था कि उन्हें कोई न कोई समझा देता था कि सारी दुनिया का ठेका आपने ही ले रखा है क्या! उनके शांति-प्रिय मन में यह आसान बात आसानी से ही समा जाती और वे सारी क्रांति का दु:ख चुपचाप पी जाते. इस बार भी ऐसा ही हुआ. मैयत का इंतजार करती, खांसती अम्मीजान और खुदा-ओ-कुरान की दुहाई देती बीबी के दिल को वे दु:खा नहीं सके. नसबंदी का विचार त्याग दिया. मन मारकर सोच ही लिया कि जो खुदा चाहेगा, वही होगा. और फिलहाल खुदा ने उनके लिये काफी तंगी और बदहाली का इंतजाम कर रखा था.

सरकारी हिसाब के मुताबिक मजीद खां वल्द मोहम्मद खां आजकल ग्रेन एडवांस, फेस्टीवल एडवांस, सोसायटी लोन और प्राविडेंट फंड के ऋणों से ग्रस्त थे, जो उन्होंने विभिन्न प्रसवों और रिश्तेदारी की शादियों के वक्त लिये थे. इन कारणों से उनकी छोटी-सी तनख्वाह उन्हें और छोटी होकर प्राप्त हो रही थी. इसी तनख्वाह को वे हर महीने शहनाज के सांवले-खुरदुरे हाथों में (जो शादी के वक्त निहायत गोरे और हाय अल्ला करने लायक खूबसूरत हुआ करते थे) नीची निगाह से रख देते. शहनाज ने बीड़ी बनाने का काम शुरू कर दिया तो मजीद भाई को अंदर से बहुत ही खुशी और राहत मिली, ऊपरी तौर पर उन्होंने कहा, "क्यों इल्लत पालती हो!" उन्हें इस बात का जवाब देने की जरूरत शहनाज ने महसूस नहीं की.

स्कूल के सामने नाकेदार के पास आया अखबार वे रेस्ट-अवर्स में चाट जाते थे. स्टॉफ में किसी से कोई बात फालतू नहीं करते और चुप रहकर ही स्कूल का वक्त काट आते. दरअसल, पिछले कुछ सालों से वे इस बात से भी डरते थे कि गपशप या बातचीत में कहीं आर्थिक मुद्दों पर बात आ गयी तो व्यर्थ ही भेजा खराब होगा. उनका उठना-बैठना या गपशप सिर्फ अपने पड़ोसी शकूर मियां से होती जो अपने जमाने में पहलवानी किया करते थे और उमर गुजर जाने पर अपना शौक

आजकल हाथी-घोड़े लड़ाकर पूरा करते हैं. उनकी शतरंज के साथी होते अपनी पसंद के मजीद भाई. मजीद भाई की ओर से कोई पहल, कोई उत्साह या खीझ नहीं होती थी. वजीर मर गया, कोई बात नहीं. जीत गये तो ठीक, हार गये तो मलाल नहीं. चोमोहरी हो गयी तो सबसे अच्छी बात. ठीक अपने जीवन की तरह ही वे शतरंज के साथ पेश आते. इसलिए तो शकूर मियां के लिये मजीद भाई एक आदर्श साथी थे

तो, खुदा की मेहरबानी से मजीद खां सपरिवार अपने दिन इस तरह काट रहे थे. बच्चे बीमार होते, अच्छे हो जाते. कई दिन तंगी के आते, उधारी कर ली जाती. कभी ऊब आती, बच्चों से लाड़ कर लेते. गुस्सा आता तो देश की व्यवस्थाओं पर उसे शालीनता से उतार लेते. और वे इस बात से वाकिफ थे कि इससे बेहतर फिलहाल उनके लिये कछ नहीं. हां, पूरे मोहल्ले में उन्हें 'मास्टरजी' का सम्मान हासिल था और कस्बे के शरीफ मुसलमानों में उनकी गिनती होती थी.

वाकया अचानक यह हुआ कि एक जुम्मे के दिन वे स्कूल पहुंचे. हेडमास्टरजी से हाजिरी-रजिस्टर लेकर दस्तखत किये और डस्टर उठाकर चौथी कक्षा को पढ़ाने चल दिये. अचानक हेडमास्टरजी ने एक लिफाफे की ओर संकेत करते हुए कहा—''खान सा., आपकी चिट्ठी.'' मजीद भाई अचकचाये. पत्रों की दुनिया से उनका वास्ता बहुत कम था. फिर भी लिफाफा देखकर उन्हें अच्छा लगा.

बच्चों का शोरगुल क्षण भर के लिए खान सा. को देखकर थम गया. उन्होंने अभ्यास क्रं. बारह के सवाल लगाने का आदेश बच्चों को दिया और अपनी उत्सुकता को खत्म करते हुये लिफाफा खोल डाला. उसमें से उन्हें छपा हुआ एक छोटा-सा पर्चा बरामद हुआ, जिसके शीर्षक में मोटे अक्षरों में छपा था—''खुदा के बंदों! इस पर अमल करो, पढ़ो, यह हकीकत है.'' नीचे छोटे अक्षरों में छपा था—''मदीना मुनव्बर से शेख अहमद ने यह वसीयतनामा भेजा है, जिसमें लिखा है कि जुमे की रात को मैं रोजा-ए-मुबारक कुरान-शरीफ पढ़ रहा था कि मुझे नींद आ गयी. सपने में देखता क्या हूं कि हजरत सल्लाल्लाहो अलह वसल्लम तशरीफ लाये और फरमाया कि बहुत बुरा वक्त आ गया है. औरतें अपने शौहर की खिदमत नहीं करतीं, पर्दा नहीं करतीं, औलादें मां-बाप का कहना नहीं मानतीं, लोग हज जाते समय खैरात नहीं करते. हजरत ने आगे कहा—शेख अहमद तुम दुनिया के आदमियों को समझा दो कि कुरान में भरोसा रखें, पीर के दिन रोजा रखें, नमाज पढ़ें, गरीबों को जकात दें. कयामत करीब है. जो शख्स इस वसीयत की नकल बांटेगा उसकी हम कयामत के दिन किफायत करेंगे, जन्नत की राह दिखायेंगे. जो शख्स ऐसे एक सौ पर्चे छपवाकर तकसीम करेगा उसे चौदह दिन में खुशी हासिल होगी. आगे मालुम हो कि बंबई में एक आदमी ने पांच सौ पर्चे बांटे तो उसका मरता हुआ लड़का बच गया, एक भाई ने ऐसे सौ खत लिखे तो उसके रुके काम पूरे हुए, एक भाई ने एक खत को गलत मान कर तौहीन की तो उसका जवान बेटा चल बसा. एक दूसरे भाई ने पर्चे छपवाने में टल लगायी तो उसका (खुद का ही) इंतकाल हो गया. इस पर्चे को छपवाकर न बांटने से जरूर गम उठाना होगा. मेहरबानी कर इस खत को झूठा साबित करने की कोशिश न करें वरना नुक्सान उठाना होगा. जिस तरह कुरान पर भरोसा किया, इस पर भी करें, और हजार-पांच सौ पर्चे छपवाकर जरूर बांटें. खुदा हमको नेक सियादत और इस पर चलने की तौफीक अदा करें. आमीन.

पत्र यानी पर्चा पढ़ते हुये मजीद भाई को खीझ आने लगी थी जो पढ़ चुकने के बाद दयनीय हो गयी थी. उन्हें लगा कि वे पत्र पढ़कर फंस गये हैं. यदि कुछ ऐसा अंदाज होता तो वे लिफाफा खोलते ही नहीं, हाय! अब क्या किया जाये. लिफाफे पर उन्होंने पता लिखने वाले के दस्तखत पहचानने की कोशिश की लेकिन नाकामयाब रहे. उस पर लगी सील को देखा, फिर भी अंदाज नहीं लगा. किस नामुराद ने यह दुश्मनी निकाली है! क्या करें, क्या न करें?

हालांकि खुदा की बंदगी करना उन्होंने छोड़ दिया था लेकिन उनके घर में पूरी तरह से खुदा के लिये भरोसा और सहारे का एहसास था. वैसे उनके खुद के मन में भी विरासत में मिला हुआ खानदानी डर अल्लाताला के लिये था. फिर भी यह पर्चा पढ़कर उन्हें कुछ ऐसा लगा जैसे किसी अपहरणकर्ता ने चिट्ठी भेजी हो—''रुपया लेकर हाजिर हो जाओ वरना तुम्हारे लड़के को कत्ल कर दिया जायेगा.'' कुछ देर तक तो वे उस पर्चे को उलटते-पुलटते रहे फिर हिम्मत करते हुए सोचा कि सब बकवास है. फाड़ साले को. हिम्मत इतनी कर डाली कि कुर्सी से खड़े हो गये मगर फिर धम्म से बैठ गये. कहीं बीबी-बच्चों को कुछ हो गया तो,... इस विचार की क्षीण-सी संभावना ने ही उन्हें एकदम कमजोर कर दिया. उन्होंने पर्चे को कुर्ते की जेब में डाल लिया. थोड़ा होश आया तो ध्यान आया कि बच्चे बेहद ऊधम कर रहे हैं. उन्होंने जोर से एक डांट पिलायी तो बच्चे सहम गये, बच्चे खान साहब से तेज डांट की उम्मीद नहीं करते थे. हालांकि वे अपनी तरफ से पूरा धीरज रख रहे थे लेकिन पर्चे की इबारतें उनके दिमाग में आंधी में पत्तियों की तरह चक्कर काट रहीं थीं.

घर पर बड़ी बेटी फरीदा और बेगम शहनाज बीड़ियां बना रही थीं. उनके स्कूल से जल्दी आ जाने को हल्के आश्चर्य से देखा गया. मजीद भाई ने अपनी बेचैनी छिपाने का पूरा प्रयत्न किया और एक गिलास पानी भी पिया. कुछ देर खटिया पर बैठे और शकूर मियां के यहां चल दिये. शकूर मियां भी चौंके. दुआ-सलाम के बाद बाजी जम गयी. मजीद भाई ने अपना वजीर गलती से ऊंट के मुंह में रख दिया और पूरी बाजी नीरस हो गयी. शायद पहली बार उन्हें हार का गम हुआ. शकूर मियां को लगा कि मामला कुछ गड़बड़ है. उनके इसरार पर मजीद भाई ने अपनी बेबसी छिपाने की कोशिश करते हुए परेशानी भरे अंदाज में पर्चे की दास्तान सुना डाली. शकूर मियां संजीदा आदमी थे. उन्होंने पर्चे की दरयाफ्त की और उसे पूरा पढ़वाकर सुना फिर उन्होंने मशवरा दिया कि

पर्चे छपवाकर बंटवाना ही बेहतर होगा वरना खुदा न जाने क्या आफत लाये. वैसे तो खुदा किसी का बुरा करता ही नहीं है लेकिन छपवाने में हर्ज कुछ नहीं.

मजीद भाई घर लौट आये और पर्चे को संभालकर कुरान के जर्जर पन्नों में रख दिया. थोड़ा वक्त गुजर गया था और उन्हें हिम्मत आ गयी थी इसलिए मन ही मन में वे सोच चुके थे कि फिलहाल पर्चे नहीं छपवायेंगे, जो होगा, देखेंगे. शकूर मियां की बात का यह हिस्सा उन्हें अच्छा लगा था कि खुदा किसी का बुरा नहीं करता.

इस वाकये को कोई एक हफ्ता गुजर गया. पर्चे की बात उनके दिल-ओ-दिमाग से लगभग गायब हो गयी. जिंदगी अपने पुराने ढर्रे पर चल निकली. अक्तूबर ढलान पर था. मौसम ने ठंडी करवट लेना शुरू कर दी थी. इधर मजीद भाई के इकलौते साहबजादे को जुकाम हो गया. नाक बहने लगी. ऐसे मौकों पर उनके पूरे परिवार का स्वास्थ्य एक हकीमजी की मेहरबानी पर निर्भर था. बन्ने मियां को लेकर शहनाज हकीमजी के यहां गयी और पुड़ियाएं लेकर लौट आयी. मगर एक दिन... दो दिन... तीन दिन... पूरे पांच दिन हो गये, बन्ने को आराम नहीं आया. जुकाम के साथ अब खांसी भी शुरू हो गयी थी.

इसी स्थिति में जब रात के आखिरी हिस्से में बन्ने को खांसी का लंबा दौर चला तो मजीद भाई की नींद भी खुली. तफसील ली तो पता चला कि पिछले सात-आठ दिनों से बच्चे की तबीयत खराब है और हकीमजी की पुड़ियों का कोई असर नहीं है. खैर, थोड़ी-बहुत थपकियां देने के बाद बन्नेजी सो गये पर मजीद भाई आशंकाओं से भर गये और उन्हें दो हफ्ते पहले मिले उस पर्चे की याद आ गयी. मजीद भाई आखिर एक सीधे-सादे मगर सच्चे पिता और शौहर थे और बन्ने उनका इकलौता बेटा था. रात के बाकी हिस्से में उन्हें नींद नसीब नहीं हुई. इस बीच अपने मन को उन्होंने बहुत समझाया कि यह सब योग-संयोग ही है वरना खुदा को क्या पड़ी है कि वह अपने ही बंदों से बदले की बात करें. लेकिन कुविचार उनके मन में बैठ चुका था. जब वे कोई ठोस निर्णय नहीं ले पाये तो उन्होंने शहनाजो से बात करने का विचार पक्का किया. यों वे इस तरह की कोई बात करने की इच्छा अपनी बेगम से रखते नहीं थे मगर अपनी बेचैनी में कोई और रास्ता उन्हें नजर आया नहीं. पौ फटते-फटते मजीद भाई ने धीरे-धीरे शहनाज को संक्षिप्त रूप में उस पर्चे की बात बतायी और 'कहीं ऐसा तो नहीं' वाक्य पर बात छोड़ दी. बाकी शहनाज समझदार थी. यह किस्सा सुनकर वह चिंतित हो गयी और लगभग रो पड़ने को हो आयी. मजीद भाई अचानक अपने आपको अपराधी महसूस करने लगे. पूरी बातचीत, उलाहने, झुंझलाहट और बेबसी की चर्चाओं के बाद भी शहनाज इस पक्ष में थी कि कम से कम पांच सौ पर्चे छपवाकर बंटवा दिये जाएं... और अब तक तो यह काम हो भी जाना चाहिये था. उतावली में शहनाज ने यह भी बता दिया कि हफ्तेवार बीड़ियों की पगार से उसने पचास रुपये बचाये हैं और इस नेक काम के लिये वे रुपये खर्च किये जाएं ताकि अल्लाताला हमें खुशी दे, बच्चों को ठीक रखें. पचास रुपयों की बात सुनकर मजीद भाई को तसल्ली हुई. उनके मन में अब भी यह बात थी कि पर्चे का चक्कर छोड़कर बन्ने को डॉक्टर को दिखा लिया जाये. निगम अच्छा डॉक्टर है, बस फीस ही ज्यादा लेता है लेकिन इलाज में पक्का है. थोड़ी-बहुत उधारी कर ली जायेगी और साठ-सत्तर रुपयों तक बन्ने ठीक हो जायेगा. लेकिन आशंकाओं से लबालब भरे हुए मजीद भाई इस बारे में न तो ज्यादा सोच पाये और न ही अपनी बेगम से कुछ कह पाये.

हकीमजी की पुड़िएं एक-एक कर घोलकर पिला दी गयीं मगर शाम छः बजे तक भी बन्ने की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ. खर-खर की आवाज और बढ़ गयी थी. आखिर मजीद भाई ने धीरे से कहा, "कहो तो निगम को दिखा लायें. मैं मुल्लाजी से कुछ रुपये मांग लाता हूं. थोड़ी-बहुत मिट्टी पलीद करने वाली बातें सुनाकर दे ही देंगें." शहनाज ने जवाब दिया, "कुछ नहीं होगा मेरे लाल को, आप तो बस पर्चे उठा लाइये." उनकी अम्मीजान ने जोड़ा, "अल्ला मियां के फाजिल से बीमार हुआ है. पर्चे छपते ही ठीक हो जाएगा." पैसे उधार मिलने की कठिन संभावनाओं और तमाम अनिश्चिंताओं के बीच मजीद भाई को शहनाज और अम्मी के इन उम्मीद भरे बोलों से बहुत राहत मिली. वैसे आजकल उधार पैसे प्राप्त करना काफी मुश्किल होता है और गरीब आदमियों के लिये तो लगभग नामुमकिन-सा, इसे एक गरीब और मजबूर आदमी ही बेहतर समझ सकता है. और मजीद भाई, यह सब समझ रहे थे.

वे प्रेस चल दिये. रास्ते में सोचते जा रहे थे कि अजीब आफत आयी है, फिर सोचा ठीक है, मैं भी इन पर्चों को डाक से ऐसी-ऐसी जगह भेजूंगा कि मजा आ जाएगा. प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, अनेक सांसद और विधायकों की सूची उन्होंने मन ही मन बना डाली. हां, कोई भी पर्चा किसी गरीब के पास नहीं भेजूंगा. बस, तनख्वाह भर मिल जाये.

प्रेस पर पर्चे तैयार थे. पैंतालीस रुपये देते समय दुःख तो हुआ लेकिन अब कोई और चारा भी नहीं था. पर्चे लेकर घर लौट आये. पर्चों को देखकर घर में एक इत्मीनान की सांस शहनाज और अम्मी ने ली. एक पर्चा तुरंत कुरआन के सामने रखकर दुआ मांगी गयी. मजीद भाई ने बन्ने की छाती पर हाथ रखा तो ऐसा लगा मानो अंदर कोई आरा-मशीन चल रही हो. उनका जी बैठने लगा. "लायब्रेरी जा रहा हूं" कहकर घर से निकल पड़े. सोचने लगे कि किधर औरतों की बातों में फंस गया. अफसोस यह भी हुआ कि क्यों कर मैंने बेगम से पर्चे वाली बात कही थी. बाजार से गुजरते हुये एक निगाह डॉ. निगम की दूकान पर डाली. हमेशा की तरह वहां काफी भीड़ थी. कुछ सेंकड के लिये ठिठक गये. फिर, लायब्रेरी की ओर कदम बढ़ा दिए.

लायब्रेरी में यों ही अखबार उलटते-पुलटते रहे. करीब पौन-एक घंटे बाद फरीदा भागती आयी और घबराहट में उसने बताया कि बन्ने की तबीयत बहुत खराब हो गयी है. हफ-हफ कर रहा है और पसलियां चल रही हैं. सांस भी ठीक से नहीं ले पा रहा है. सब रो रहे हैं. शकूर चाचा ने कहा है कि जल्दी से डॉक्टर को बुला कर लाओ. सुनकर मजीद मियां एकदम सन्न से रह गये. यह भी नहीं सोचा कि पैसे कहां से देंगें या कितना जलील होना पड़ेगा और भागते हुए निगम के यहां पहुंचे. हाथा-जोड़ी कर डॉक्टर को घर लाये, तुरंत पैसे देने का वायदा भी किया.

रात के नौ बज चुके थे. घर की इकलौती खटिया पर बन्ने फटे कंबल में लेटा हुआ था और शहनाज कंबल में हाथ डालकर सरसों के तेल की मालिश कर रही थी. उसकी आंखों से लगातार आंसू गिर रहे थे. निगम ने बन्ने को आला लगाया और सिर झुका लिया. डॉक्टर ने उनके कंधे पर हाथ रखकर धीरे से इतना ही कहा, "मास्टरजी, सॉरी. डबल निमोनिया था. घंटे भर पहले भी बुला लिया होता तो कुछ उम्मीद होती."

पूरे घर में रोने-पछाड़ने का काम शुरू हो गया. मजीद भाई जोर से फफक पड़े और बन्ने के शरीर को अपने सीने से चिपका लिया. इसी वक्त रोती-कलपती शहनाज गुस्से में उठी और पर्चों का ढेर उठाकर जलते हुए चूल्हे में फैंक दिया जिस पर घंटे भर से दाल पक रही थी और जो अब तक पतीली से चिपक कर जल भी चुकी थी.

जली हुई दाल की बदबू पूरे घर में फैल गयी थी.

इस जली हुई बदबू में मजीद भाई ने राहत की एक सांस लेते हुए सोचा कि चलो डॉक्टर की फीस का झगड़ा तो नहीं हुआ... और फिर वे हिचकी बांध कर रो पड़े. □

ये सनफ़्लावर तेल है डबल रिफ़ाइन्ड
ताकि इसमें हों
सभी क़ुदरती पौष्टिकता.

सनौला-

अब आया है दिल्ली के रसोई घरों में
धूम मचाने के लिए।

अपने रसोईघर में **सनौला** का स्वागत कीजिए.
दक्षिण भारत के सबसे लोकप्रिय पकाने के माध्यम –
सनौला में है भरपूर अनसैच्युरेटेड फ़ैट्स और
विटामिनों का ख़ज़ाना. कोलस्ट्रॉल लैवल को नियंत्रित रखनेवाला है ये.
और इससे बनता है स्वादिष्ट भोजन...व्यंजन ही व्यंजन.
आप भी अब **सनौला** अपनाइए और सेहत का नज़राना पाइए.

सनौला - भोजन को स्वादिष्ट बनाए
सेहत का भी ख़्याल रखे.

निर्माता एवं बिक्री व्यवस्था करने वाले:-
तामिलनाडु एग्रो इंडस्ट्रीज़
कॉर्पोरेशन लिमिटेड

वितरक:-
MSIL **मैसूर सेल्स इंटरनैशनल लिमिटेड**
सी-४, स्टेट एम्पोरिया कॉम्प्लेक्स, बाबा खड़क सिंह मार्ग,
नई दिल्ली ११० ००१. फ़ोनः ३४३८६३/३४३८६६.

५ कि.ग्रा., २ कि.ग्रा., और १ कि.ग्रा.
पैक में उपलब्ध.

SUNOLA
SUNOLA
SUNOLA

कैसे-कैसे लोग : एक

सुरगवासी इमरती का शोक

□ से.रा. यात्री

'कैसे-कैसे लोग' स्तंभ में सुपरिचित कथाकार से.रा. यात्री अपने कुछ विशिष्ट जीवन-अनुभवों के साथ आपकी मुलाकात करवाएंगे कुछ उल्लेखनीय चरित्रों से.. आइए, इस नये स्तंभ में पहली बार मिलें—बाबू सिंह की पत्नी से...

बहुत बरसों तक मेरा यही खयाल था कि गांव देहात के लोग अपने मनो भावों को छिपाना नहीं जानते हैं. उनकी प्रतिक्रिया तुरत-फुरत होती है और वह उसे एक क्षण के लिए भी स्थगित नहीं करते हैं. पर मेरा यह सोचना कितना गलत था. मैं यही बतलाने जा रहा हूं.

हुआ यह कि मेरी पहली नियुक्ति एक गांव के कालिज में ही हुई. शहरी आदमी के लिए गांव में आवास की तो कोई समस्या ही नहीं है. समस्या वहां शहरी ढंग से रहने भर की है. वह सारी सुविधाएं जो नगर में पैसा खर्च करते ही स्वयं आपके पास आकर मंडराने लगती हैं—गांव देहात में कितना भी रुपया खर्च करने पर पास नहीं फटकतीं. हो सकता है गांव के कालिज में आवेदन पत्र भेजते ही, इसी वजह से मुझे नौकरी मिल गयी हो. वैसे मैंने नगरों के कालिजों में कम प्रयास नहीं किया था.

बहरहाल गांव में नौकरी मिली तो वहां बने रहने का प्रयास भी जरूरी था. लेकिन सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि मेरे पास स्टोव तो था पर मैं चाय बनाने के अलावा और कुछ बनाना नहीं जानता था. अब महज चाय के सहारे छह पीरियड तो हर रोज पढ़ाये नहीं जा सकते थे. मेरे साथ विज्ञान के अध्यापक लुगानी की भी नियुक्ति हुई थी. एक दिन मैंने उनसे पूछा, "भई लुगानी साहब, यहां कैसे गुजर होगी? मैं तो खाना बनाना नहीं जानता. स्टोव तो मेरे पास है मगर यहां तो मिट्टी का तेल भी उपलब्ध नहीं हैं. तेल मिल भी जाय पर खाना बनाना तो एक समस्या ही है."

लुगानी बोला, "मैं तो सिवाय बर्नर जलाने के और कुछ जानता ही नहीं. खाना-वाना बनाने की तो कभी नौबत ही नहीं आयी. यह नौकरी मैंने ले तो ली—पर लगता है यह ज्यादा देर तक नहीं चल पायेगी—महीने दो महीने में छोड़नी ही पड़ जायेगी."

मैंने पूछा, "इन दिनों आप खाने पीने का काम कैसे चला रहे हैं ?" लुगानी साहब ने एक छोटी जोत के किसान के घर में मकान के बाहर की एक छोटी-सी अनगढ़-सी कोठरी ले ली थी. वह बोले, "भाई जान मैंने सुरजन सिंह के घर में अपना बक्सा और किताबें लाकर डाल दी हैं. कालिज खत्म हो जाने के बाद ढाई-तीन बजे साईकिल चलाकर सासनी जाता हूं—वहां से रोटी खाकर और शाम के लिए कुछ डबलरोटी वगैरह लेकर लौट आता हूं. कई मील आने-जाने में मेरा तो हुलिया तंग हो जाता है."

मैंने कुछ सोचकर लुगानी के सामने एक प्रस्ताव रखा, "लुगानी साहब, क्या यह नहीं हो सकता कि हम दोनों किसी एक ही मकान में जगह लेकर साथ रहने लगें और जैसे भी हो स्टोव पर कुछ बुरा बावला पकाकर फालतू की भागमभाग से निजात पा जायें?"

लुगानी को मेरी यह तजवीज पसंद आयी और अगले कुछ ही दिनों में हम दोनों एक ऐसे किसान के मकान में पहुंच गये जिसके यहां मकान के बाहर की ओर एक लंबा-सा कोठड़ा खाली था. इस जगह हमें यह सुविधा थी कि हमें किसान के घर में बार-बार आने-जाने की जहमत से छुटकारा मिल गया था.

उस कोठड़े में हमने एक कोने में स्टोव और खाने पकाने के दो चार बर्तन रख कर रसोई का ठाठ जमाया और खाना बनाने के विचित्र प्रयोग शुरू कर दिये. हमारी इस प्रक्रिया को देखने के लिये गांव के कई लौंडे लपाड़े और उम्र दराज निठल्ले भी आ जुटने लगे. मैं और लुगानी बिना टिकट का तमाशा बन गये—गांव वाले हमारा तरह-तरह से मखौल उड़ाकर अपना मनोरंजन करने लगे.

हमारी यह दुर्गति देखकर अंततः मकान मालिक किसान बाबू सिंह एक दिन हमारे पास आया और दया भाव से बोला, "माट्टरजी, आप लोगन की मुस्कल देख के मोय बरो छोभ होत है. याते नीम तो जेई हतै के आप हमाये संग खाय ल्यो करो. जैसी रूकी-सूकी हम खात हैं वा में कछु हुज्जत नाय. तुमन्ने जो रोटी ठेकने को झगरा सरु करो है—जे कऊं मरद को काम हतै? पाय तो बीरबानी ई कर्स्सकत हैं।" फिर उसने अपनी खास ग्रामीण शैली में परिहास किया, "नाय तो ब्याव कल्लेओ और माट्टनी ले आवो."

उसकी बात में दम था इसलिए मैंने और लुगानी ने सलाह करके यही तय किया कि हम लोग बाबू सिंह के घर में ही खा लिया करेंगे और जो वाजिब होगा उसे हर माह चुका दिया करेंगे.

बाबू सिंह के यहां खाना शुरू करते समय दो दिक्कतें दरपेश आयीं—पहली यह कि वह खाना मेरे लिए और अत्यंत नाजुक लुगानी के लिए काफी चुनौती भरा साबित हुआ. दूसरी मुश्किल यह हुई कि बाबू सिंह के घर में खाने के लिए जाते समय अजीब-सी हया महसूस होती थी. पर संतोष यही था कि सुबह शाम के कई घंटे फिजूल के प्रयोगों में गारत होने से बचने लगे थे.

कुछ महीनों में ही मैं और लुगानी बाबू सिंह के घर के सदस्यों की तरह ही हो गये और हम लोगों की शुरू की झिझक भी जाती रही. हम लोगों के लिए कभी-कभार खीर और दूसरी कोई मिठाई भी बनने लगी तथा छोटे मोटे तीज त्यौहारों पर जब हम अपने घर जाना टाल जाते थे तो पूरी पकवान भी तैयार होने लगे. शहर से कोई मेहमान मिलने आ जाता था तो उसकी खातिर तवज्जो में बाबू सिंह का परिवार कोई कसर नहीं छोड़ता था. हम लोग भी छुट्टियों के बाद घर से लौटते समय बाबू सिंह के बच्चों के लिए छोटे-मोटे उपहार लाना नहीं भूलते थे.

एक दिन हम बाबू सिंह के चौके में बैठे खाना खा रहे थे तो बाबू सिंह की पत्नी ने बतलाया कि उसके दोनों बच्चे अपनी मौसी के घर गये हैं

इसलिए उसे आज आधा ही खाना बनाना है. वह सोचती थी कि शाम को खिचड़ी डाल लेगी. हम लोग इस पर कुछ कह पाते कि तभी चिट्ठी रसा आकर हमारे पास ही एक कार्ड डाल गया.

बाबू सिंह की पत्नी के हाथ आटे में सने थे सो उसने मुझसे कहा, "माट्टरजी तन्नक देखियो तो सई कौन को कारड हतै?"

कार्ड का कोना फटा हुआ था इसलिए मैं तुरंत समझ गया कि किसी की कहीं मौत हुई है. मैंने निरपेक्ष भाव से कार्ड पढ़ा और बतला दिया कि अगौता से रामचंदर ने लिखा है कि बीती दोज को इमरती का सुरगवास हो गया है."

सहसा बाबू सिंह की पत्नी के रोटी थपकते हाथ ठहर गये और वह गहरी उसांस भरकर बोली, "हाय ई तो गजब ई है गयो माट्टरजी. मेरी सगी भाभी इमरती गयी ई तो. इब कहा होय गो—वाकी उमर तो कछ बी नाय हती. बड़ी कच्ची गिरस्थी छोड़ गयी पाछे कूं."

मैंने और लुगानी ने खाना बंद कर दिया—हम दोनों के हाथ में जो कौर थे—वह मुंह की ओर नहीं जा सके. मगर उस औरत ने हमारी इस स्थिति पर कोई ध्यान न देकर पूछा, "आप लोगन कूं कैं रोटी और बनाय दऊं?"

हमने एक स्वर में कहा, "नहीं-नहीं अब औरे रोटी मत बनाओ—हम और नहीं लेंगे."

उस औरत के कुछ कहने से पहले ही बाबू सिंह बाहर से आता दिखाई पड़ा. जैसे ही वह चौके की दहलीज पर आया उसकी पत्नी ने अपनी भाभी के स्वर्गवास की सूचना देकर उससे पूछा, "तिहारे लैंया कैं रोटी बनाय दऊं?"

"अरे भागमान—पैले माट्टरनन कूं तो खवा फेर दो-चार मेरे लैंया बी पव दे." यह बात बाबू सिंह ने इतने सहज ढंग से कही गोया कहीं मौत जैसा कुछ घटित ही न हुआ हो और मरना-जीना साधारण रोजमर्रा की बात हो.

हमारे इनकार का बाबू सिंह की पत्नी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा. उसने चूल्हे से निकली रोटियां हम लोगों की थाली में डालते हुए कहा, "नैंक जल्ली निपट लेवो."

इसके बाद उस औरत ने कोने में खड़ी पीतल की थाली हाथ बढ़ाकर खींची और अपने पति का खाना परसने लगी.

बाबू सिंह ने हमें सांत्वना-सी दी, "भूके मत रैयो—खाय के उठियों."

बाबू सिंह की पत्नी ने बाबू सिंह की थाली उसकी ओर बढ़ाकर हमें संबोधित किया, "और का—भूके च्यौं उठे हो? भर पेट खाय लेव-साम् को तो कछु पतो ई नाय है."

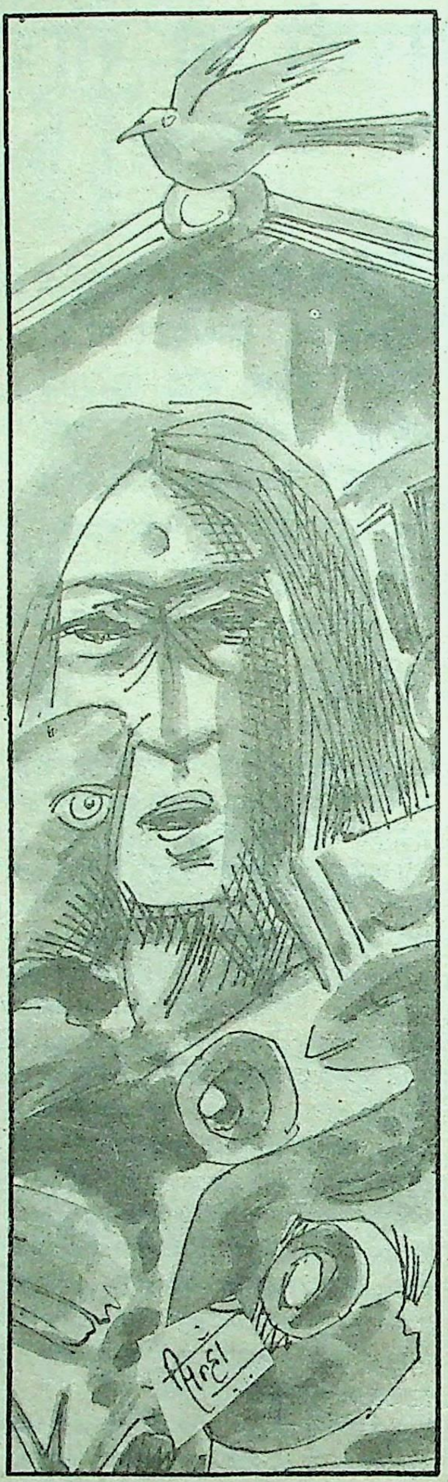

मैंने और लुगानी ने अजीब-सी दबसट में खाना खत्म किया. हमारे देखते-देखते ही बाबू सिंह ने भी दबादब पांच-सात रोटियां दो-तीन मिनट में खा डालीं.

ज्यों ही बाबू सिंह ने खाना खत्म किया उस औरत ने चूल्हे पर लोटा भर पानी डाला और डकराना शुरू कर दिया, "हाय रे मैं मर जाऊं—इमरती तू कित कू गई—मोय च्यौं संग ना ले गयी?" यह रुदन इतना विस्फोटक था कि हम लोगों के बाबू सिंह की ड्यौढ़ी से बाहर आते-आते औरतें उस घर का दरवाजा लांघकर भीतर जाती दीखने लगीं. बाबू सिंह की पत्नी भी चौके से उठकर भीतर दालान में पछाड़ें खाने चली गयी थी.

मैं और लुगानी बाबू सिंह की पत्नी के एक से एक करुण बैन सुनकर सकते में आ गये. यह किसी तरह समझ में घुसनेवाली बात नहीं थी कि जिस औरत ने हमें और अपने पति को अपनी भाभी की मौत की खबर सुनने के बावजूद—इतने धीरज से खाना खिलाया हो और अपने मुंह में एक दाना न डाला हो वह एकाएक इतनी विह्वल कैसे हो उठी कि उसकी वेदना का बांध ही टूट पड़ा?

लुगानी ने फुसफुसा कर कहा, "यार यह औरत का कौन-सा रूप है? यह तो गजब की एक्टिंग करती है. मैं तो यही सोचता था कि गांव के लोग एक दम सीधे-सादे एक चेहरे वाले होते हैं पर आज तो मेरा भरम ही टूट गया. मैं तो बाबू सिंह की घरवाली को बहुत भोली औरत समझता था."

कुछ ही देर बाद बाबू सिंह की घरवाली के हिलानेवाले रुदन में गांव की और भी अनेक औरतों का करुण क्रंदन शामिल हो गया और सारा वातावरण अवसाद की लपेट में आ गया. लुगानी और मैं चुपचाप सारा तमाशा देखते सुनते रहे.

हम लोग घंटे-दो घंटे के लिए घर छोड़कर बाहर खेतों की तरफ निकल गये. जब वापस लौटकर आये तो देखा बाबू सिंह के घर से सारी औरतें और आदमी जा चुके थे. बाबू सिंह की पत्नी भी घर के काम काज में लगी हुई थी.

मैं और लुगानी बाबू सिंह के दालान में जाकर खड़े हो गये और सुरगवासी इमरती की मौत पर शोक प्रकट करने के लिए कुछ शब्द कहने की बात पर सोचने लगे. मैं या लुगानी इस संबंध में कुछ बोलते, इससे पहले ही बाबू सिंह की पत्नी ने हमारी ओर आंखें उठाकर पूछा, "संझा कू कधु तीमन (सब्जी) बनाऊं के खिचरी डार लऊं?"

मैं और लुगानी अचरज से एक दूसरे का मुंह देखते रह गये और यह समझने की कोशिश करने लगे कि क्या यह वही औरत है जो दो-ढाई घंटे पहले अपनी भाभी की मौत पर फूटफूटकर रोकर आसमान हिलाये हुए थी. □

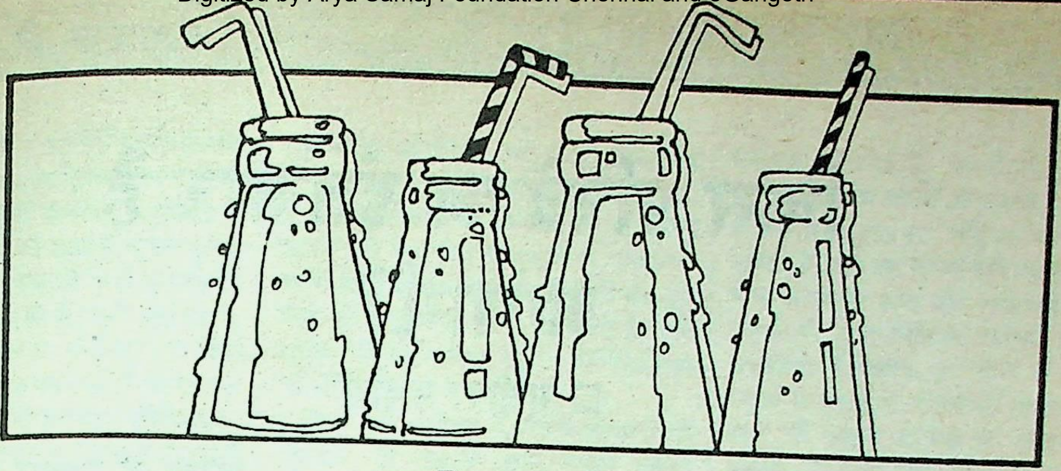

क्या आपको नशे की आदत होती जा रही है?

कार्बोलिक एसिड गैस युक्त पेयों में कैफ़ीन की अच्छी-ख़ासी मात्रा होती है। कैफ़ीन एक नशीली चीज़ है जिसके कारण हृदय-रोग, मनोवैज्ञानिक व्याधियां और जन्म-सम्बंधी खराबियां उत्पन्न हो सकती हैं।

ऐसे पेयों में फ़ास्फ़ोरिक एसिड और अन्य अम्लीय द्रव्य होते हैं जिनसे शरीर में कैल्शियम और फास्फ़ोरस का संतुलन बिगड़ जाता है। अम्लता में बढ़ोतरी, दांतों के इनैमल को क्षति और बच्चों में भूख की कमी, आदि जैसे विकार पैदा हो जाते हैं।

यही कारण है कि ऐसे पेयों के मुकाबले में रूह अफ़ज़ा सदा ही एक अति उत्तम पेय है। क्योंकि यह बनावटी नहीं, बल्कि प्राकृतिक और वास्तविक रूप से ठंडक और तरावट देने वाला शरबत है।

रूह अफ़ज़ा ताज़ा फलों के रस से बनता है। इसमें प्राकृतिक विटामिनों और शक्तिदायक द्रव्यों के साथ-साथ जड़ी-बूटियों और सब्ज़ियों का अर्क भी होता है। इसलिए आपको जब भी ठंडक देने वाले स्वाद-भरे पेय की आवश्यकता हो, तो रूह अफ़ज़ा ही पीजिए। वह शरबत जो 80 वर्षों से भी अधिक समय से अपना नाम बनाए हुए है। और जिसके स्वाद में है पूर्व की परम्पराओं का अनोखापन।

रूह अफ़ज़ा से चुस्त और तन्दुरुस्त रहिए:

रूह अफ़ज़ा शरीर में पानी, कैल्शियम और आयरन की कमी को दूर करता है। यह एक शक्तिदायक पेय है जो रक्त के हेमोग्लोबिन स्तर को बढ़ाता है, और रोग व दुर्बलता के दिनों में शक्ति वापस लाने में सहायता करता है।

रूह अफ़ज़ा कब प्रयोग करें

बचाव और चिकित्सा के लिए :

*शरीर में पानी की कमी *गर्मी से थकावट
*लू लगना *गर्मी से बुखार आना *कै
*दस्त *आमाशय का दर्द

स्थिर रखने के लिए :

*शरीर के आहारिक द्रव्य
*स्वस्थ हृदय-गति
*शरीर में ताज़गी, चुस्ती और शक्ति

रूह अफ़ज़ा
ROOHAFZA
HAMDARD DAWAKHANA (WAKF) DELHI

जड़ी-बूटियों, आवश्यक तत्त्वों और प्राकृतिक विटामिनों का अनोखा मिश्रण

शरबत

रूह अफ़ज़ा

80 वर्ष से अधिक समय से सब का मनपसन्द शर्बत

हमदर्द

किस परिंदे का इंतजार है आचार्य?

□ सुधीश पचौरी

कथा-चिंतन के समसामयिक उजाड़ में खड़े हम लोग पीछे पलटकर देखते हैं तो नामवरजी के कथा समीक्षा संबंधी लेख बहुत महान नजर नहीं आते. वे हद से हद छटपटाहट रहित कहीं से अचानक प्राप्त, अन्य सिद्ध अनुमानों और स्पेकुलेशंस का जोड़ बाकी नजर आते हैं. उनकी अपनी ऐतिहासिकता है किंतु वह उतनी बड़ी नहीं जितने के लोग उन्हें शिकायतें पहुंचाते हैं.

'कहानी: नयी कहानी' नाम से संकलित कथा समीक्षा संबंधी ये लेख कहानी को लेकर शुरुआती स्पेकुलेटिव समीक्षा का नमूना है जो यह खबर देता है कि जिस समय ये लिखे जा रहे थे उस समय सब अंधेरे में टटोल रहे थे और कत्तर को बजाजे की दूकान बता रहे थे. भूमिका में कथा समीक्षा की एक पद्धति निकालने की कोशिश की बात नामवरजी ने की है, वह दरअसल एक 'स्पेकुलेटिव' पद्धति है जो शुद्ध निजी रुचि, निजी अंदाज और इच्छाओं पर चलती हैं उसके लिए रचना की जगह अपनी पहुंच कल्पना और यथासंभव कट्टरता या उदारता का सट्टा खेलना महत्वपूर्ण होता है. हर कहानी एक सट्टा खेलने का विषय होती है. स्पेकुलेशन यानी सट्टा.

भूमिका में वे 'ठोस कहानियों' पर टिकने की बात पर जोर देते हैं. हवाई सिद्धांतों में बहकने की जगह. यहां प्रकट आत्म विश्वास अत्यंत विडंबनापूर्ण हो उठता है क्योंकि हम सभी जानते हैं कि इस ठोस के आग्रह के पीछे निजी रुचियों को सिद्धांत बनाने की 'खेल' मौजूद है. इसीलिए जब-जब आज भी कथा चिंतन की बात होती है तो लोग सिर्फ ठोस यानी अपनी-अपनी कहानियों की वैसी ही समीक्षा कराना चाहते रहते हैं जैसी 'परिंदे' की हुई. यानी 'स्थापित' होने के लिए एक समीक्षा की तलाश. यदि परवर्ती कथाकारों पर इस समीक्षा का यह असर पड़ा तो कहना होगा कि यह समीक्षा, समीक्षा बाह्य साधनों से, किसी कहानी के भाव उठाने चढ़ाने के लिए एक आदर्श समीक्षा मानी गयी. नामवरजी से अब तक रूठे हुए उनके वक्त के कथाकार या कतिपय नये कथाकार यदि उनकी तरफ समीक्षा के लिए देखकर तरसते हैं तो कहना चाहिए कि इस कृष्ण गोपी संबंध को स्थापित करने में नामवरजी की उसी सटोरिये मार्का समीक्षा का हाथ है.

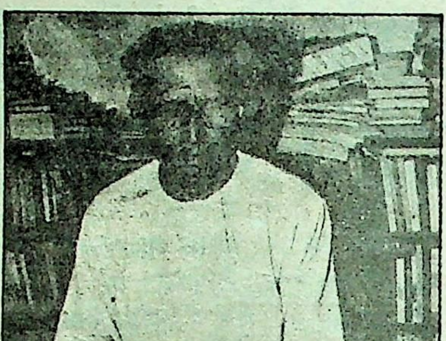

> 'आलोचना की पुनर्यात्रा' का यह क्रम देवीशंकर अवस्थी से प्रारंभ हुआ था. पिछले अंक में कथा आलोचक सुरेंद्र चौधरी की कथा-समीक्षा पर प्रकाशित टिप्पणी के बाद अब पढ़िये डा. नामवर सिंह की कथा आलोचना पर स्तंभकार सुधीश पचौरी के विचार.

सच कभी-कभी अचरज लगता है कि वे उन मर्मों तक तब कैसे आसानी से पहुंचे और अब क्यों नहीं पहुंचते. यदि वह समीक्षा किसी गहन और सर्वाष्लेषी चिंतन का परिणाम या खोज होती तो वह अचानक पड़ी बुरी आदत की तरह भुला देने योग्य तो नहीं होती. बाद में नयी कहानी के राजेंद्र यादव, कमलेश्वर यहां तक कि मार्कंडेय यदि उनकी समीक्षा को 'फतवेवाली' और वैयक्तिक कहते पाये गये तो इसीलिए कि यह सच तो एक न एक दिन उजागर होना था. यदि पाठक उनकी स्थापनाओं निष्कर्षों में एक सर्वांग सूत्रता नहीं पाकर और परस्पर विरोधी बातें पाकर खिन्न होता है तो इसीलिए कि नामवरजी की समीक्षा पद्धति में किसी सर्वाश्लेषी रचना-सत्य को खोजने की विकलता लगभग न के बराबर रही है. उनकी भाषा में लगभग निष्कर्ष पर पहले से पहुंचे हुए बड़े भाई की आश्वस्ति बराबर रहती है. एक तरह की उस्तादी के वे कायल हैं.

'नयी कहानी की पहली कृति: परिंदे' (लेख का शीर्षक इसी नाम से है) पर लिखते हुए नामवरजी एक समीक्षा पद्धति-सा कुछ पेश करते हैं. पद्धति में परिंदे की नायिका लतिका की स्मृतियां, अकेलेपन, अवसाद आदि को वे 'नया' कहते हैं. अभूतपूर्व कहते हैं जो कि ये चीजें थीं भी. किंतु परिंदे की महानता कहानी के भीतर किन कारकों से पैदा होती है यह नामवरजी नहीं बताते. यद्यपि वे निर्मल के संगीत की बात करते हैं. प्रभावान्विति की बात करते हैं, फिर प्रभाव की व्याख्या भी करते हैं, कुल मिलाकर पर्याप्त मेहनत करते हैं. इस मामले में वे अनूठे हैं. बार-बार फेंट-फेंट कर वे निर्मल की कहानियों के मोहन तत्वों को निकालते हैं.

तर्क यों चलता है कि निर्मल मनुष्य की गहन समस्याओं को उठाते हैं हम क्या करें?

क्या वे सब प्रतीक्षा कर रहे हैं? मानव नियति का यह व्यापक विश्व साहित्य में नामवरजी को दिखता है. असली समस्या स्वतंत्रता या मुक्ति की है. निर्मल की कहानी मानव मुक्ति का प्रश्न उठाते हुए स्वयं को हिंदी कहानी की परिपाटी से मुक्त करती है. यहीं स्थापन है.

स्पेकुलेटिव समीक्षा का सर्वोत्कृष्ट अभ्यास है यहां. और शायद नामवरजी के तमाम इस तरह के लेखों में ऐसा लेख दूसरा नहीं मिलता. एक संपूर्ण ललक के साथ वे रचना के भीतर से मर्म प्रसंग उद्घाटित करते हैं. निर्मल के प्रभाव में वे बह जाते हैं. तभी कुछ बेहद रचनात्मक निष्कर्ष निकालते हैं. इन्हीं के आधार पर वे 'परिंदे' को नयी कहानी की पहली कृति कहकर एक महत्त्वपूर्ण सामान्यीकरण करते हैं जिस पर बहस अनिवार्य हो उठती है.

यह भी संभव था कि नामवरजी ने निर्मल की कहानियों को पढ़ने की जो खुली पद्धति अपनायी वह अन्य रचनाओं पर भी लागू की जाती. तब शायद एक पद्धति जैसा कुछ स्थिर होता. किंतु सिद्धांत कथन की ओर शास्त्र निर्माण की ओर आने के बजाय, वे ठोस कहानियों की शरण लेते हुए, अपनी यादृच्छिकता की रक्षा करते हैं. शास्त्र या उससे घृणा है तो एक पद्धति के विकास की चिंता की जगह वे कुछ कथाकारों की कुछ कहानियों को अलग-अलग ढंग से पढ़ते हैं अलग-अलग ढंग से पद्धति निकालते हैं. जैसे कोई विक्रेता सस्ते कपड़े का महत्त्व भी बता देता है और आपका चेहरा देखकर मंहगे का भी महत्त्व बता देता है, लगभग उसी तरह की गत बन जाती है उनकी समीक्षा की. निर्मल की कई कहानियों में जो नामवरजी को 'अद्भुत-अद्भुत लगता है वह एक्सक्लूसिव' भी है. अद्वितीय भी है.

समीक्षा में हमेशा मौजूद रहने वाली तर्क व्यवस्था के अनुसार सोंचे तो यह 'अद्वितीय' का अवगाहन अन्य कथाकारों की कहानियों और 'व्यक्तित्वों' (निर्मल की महानता को वे उनके व्यक्तित्व के भीतर ढूंढ़ते हैं) को खोजने में बाधा नहीं बननी थी किंतु वह बनती है. उदाहरण के लिए राजेंद्र यादव की 'छोटे छोटे ताजमहल' विचारतत्व के कारण ही हास्यास्पद हो जाती है. अनुभूति क्षणों का चित्रण व्यंग्यास्पद हो जाता है. यहां प्रभावान्विति का प्रश्न गौण हो जाता है. निर्मल वर्मा की सूक्ष्मता-प्रियता सभ्यता के भीतर लगने लगती है लेकिन यादव की सूक्ष्मता-प्रियता 'सभ्यता की हदों के पार' अब बिगाड़ लीजिए कुछ. स्पेकुलेटिव या यादृच्छिक आलोचना का दूसरा उदाहरण विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है'. यहां समीक्षक को 'धक्का, देने की युक्ति जुटाने' की लेखकीय भावुकता में 'उतावली' नजर आती है और कहानी दो कौड़ी की. ऐसे और भी उदाहरण जुटाए जा सकते हैं, जहां नामवरजी की समीक्षा पद्धति की केंद्रहीनता परिलक्षित होती है.

किसी भी समीक्षा में, उसके औजारों की पड़ताल की पहली शर्त उसके भीतर अनिवार्य तर्क-व्यवस्था को ढूंढ़ने की होती है क्योंकि कोई भी समीक्षा अपना तर्क स्वयं होती है. वह तर्कातीत नहीं हो सकती. वह तर्क-तिरस्कर्ता नहीं हो सकती. नामवरजी की कथा समीक्षा पद्धति इस नजर से केंद्रहीन समीक्षा पद्धति नजर आती है. यों उसका केंद्र मूलतः निर्मल वर्मा हैं और यह भी सही है कि निर्मल के नयेपन को पहचाने की कोशिश नामवरजी की ऐतिहासिक देन है किंतु नामवरजी की पूरी समीक्षा हर जगह शायद निर्मल को बिना नाम लिए खोजती है और न पाकर कट्टे का निशान लगाती है. हमें तो लगता है कि नामवर आज तक उसी निर्मल और उसी परिंदे को ढूंढ़ रहे हैं.

> समीक्षा को परखने का एक तरीका यह भी है कि समीक्षकों के रचना-चुनाव को भी परखा जाये... और एक चुनाव के कारणों तक, प्रेरकों तक पहुंचा जाये. किसी समीक्षक ने कोई रचना क्यों चुनी, यह सवाल उसकी समूची समीक्षा पद्धति का दरवाजा हो सकता है....

समीक्षा को परखने का एक तरीका यह भी है कि समीक्षकों के रचना-चुनाव को भी परखा जाय और एक चुनाव के कारणों तक, प्रेरकों तक पहुंचा जाये. किसी समीक्षक ने कोई रचना क्यों चुनी, यह सवाल उसकी समूची समीक्षा पद्धति का दरवाजा हो सकता है. तब पूछें कि नामरवजी ने परिंदे' क्यों चुनी होगी? इसका एक उत्तर कमलेश्वर अपनी 'आधार शिलाएं' नामक संस्मरण श्रृंखला में दे चुके हैं कि तब निर्मल सी.पी.आई. के कार्ड होल्डर थे या नजदीक थे. उन्हें उठाना जरूरी था. पी.पी.एच. से उनका छपना इसका ऐतिहासिक प्रमाण है.

किंतु जितने प्रिय भाव से 'परिंदे' की समीक्षा की गयी है, उसमें कोई आंतरिक कारण भी काम करता हो सकता है. वह क्या हो सकता है? क्या वह 'लतिका' का चरित्र हो सकता है. क्या यह संभव नहीं कि कस्बे और गांव से शहरी बना एक समीक्षक पब्लिक स्कूलों के औपनिवेशिक 'स्पेस' का कहीं उपचेतना में कायल हो, दिल में कहीं इन स्कूलों के जगत के रहस्य को समझने, उसमें रहने की प्रसुप्त कामना हो लतिका जैसी अकेली दार्शनिक स्त्री के अकेलेपन के प्रति हमदर्दी हो जो हयुबर्ट की जगह खुद को देखना चाहती हो. आखिर रचना के भीतर हम हमेशा स्वयं को ही खोजते फिरते हैं. कहीं ऐसा तो नहीं कि समीक्षक उस वातावरण पर कुर्बान हुआ जो दूर से पब्लिक स्कूलों के महान साफ ईसाई आकर्षण से भरापूरा था, जहां अभी तक गुलाम भारत के गांव के नौजवान पहुंचने की हसरत लिए बड़े हुए कि वह आजाद हो गया. कहीं ऐसा तो नहीं कि निर्मल की महान कथाओं में अतीत के खत्म हो जाने की गहरी छटपटाहट में और उस अतीत को फिर न उपलब्ध कर पाने की कस्बाई मनोग्रंथि में कोई अंतर्सूत्र काम कर रहा हो. यह इस लिए भी देखा जाना चाहिए क्योंकि निर्मल वर्मा नामवर की कथा समीक्षा की अद्यतन बाधा बने हुए हैं. निर्मल के 'प्रतिक्रियावादी' हो जाने के बाद नामवरजी लगातार उस पाप को धोने की कोशिश में लगे हुए हैं, जो वस्तुतः उनकी एक मात्र मौलिकता थी. यादृच्छिक होने का आत्मदंड है यह.

बहरहाल यह टिप्पणी निर्मल पर नहीं हैं. किंतु इतना तय है कि आज निर्मल अधिक विश्वसनीय लगते हैं और नामवरजी की समीक्षा अधिक अविश्वसनीय. क्या यह सिर्फ रचना की आंतरिक विश्वसनीयता का फल है या आलोचना के केंद्रहीन हो उठने का फल है? हमें लगता है कि नामवरजी की कथा समीक्षा की धुरीहीनता ही उसे अविश्वसनीय बनाती है और कमजोर भी. अन्यथा जिस समीक्षा ने 'परिंदे' को महान कथा उचित ही बताया था, वही आज इसे अपना 'पाप' कहे, यह अंतर्विरोध कैसे मुमकिन है?

निर्मल इसलिए हिंदी के बड़े कथाकार हैं कि एक गिरते हुए, लुढ़कते हुए समय की सबसे मार्मिक खबर उनकी रचनाओं में हमें मिली है. किंतु जिस समीक्षक को उस गिरते हुए समाज की खबर की सार्थकता न मालूम हो, और जो पियानो के संगीत पर कुर्बान हुआ जाता हो, वह आजीवन 'परिंदे' का इंतजार कर सकता है क्योंकि वह निर्मल का नहीं, समीक्षक का अपना परिंदा है. □

कहानी की तीसरी दुनिया के दो तोता मास्टर

□ शैलेश मटियानी

> '...जब लेखक का समाज से नाभिनाल संबंध खत्म हो जाय, और वह समाज की धड़कनों को एकाग्रचित्त होकर सुनने की जगह, किसी संगठन या पार्टी से सैद्धांतिक-वैचारिक खुराक लेना ज्यादा बेहतर समझने लगे, तो कैसी भी महान ऐतिहासिक घटनाएं या उथल-पुथल भरी सामाजिक स्थितियां उसे कोई लाभ नहीं पहुंचा सकतीं... क्योंकि रचना में सामाजिक स्थितियों या ऐतिहासिक घटनाओं के दबावों की अनुगूंज भी सिर्फ वही लेखक उत्पन्न कर सकता है, जिसने इनकी दाब को सिद्धांत नहीं, बल्कि संवेदना के स्तर पर झेला हो...' प्रस्तुत है शैलेश मटियानी का विचारोत्तेजक आलेख

'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित लेख में 'हिंदी कहानी की तीसरी नयी दुनिया' के सद्य:जात मसीहा राजेंद्र यादव तीन-तीन नयी बातें एक साथ कही हैं. पहली यह कि—इतना वो भी अच्छी तरह जानते हैं कि 'साहित्य में मौलिकता-जैसी कोई चीज नहीं होती. किंतु नया जरूर होता है.'

दूसरी, नामवरजी की हिंदी कहानी की आलोचना में अब तक की भूमिका को लेकर 'एक राजस्थानी कहावत' के रूप में इस प्रकार है—'जन-जन का मन राखती, वेश्या हो गयी बांझ!'... और तीसरी के बोल हैं—'कहीं ऐसा न हो कि हम कहानी के सौंदर्यशास्त्र, विश्व कहानी की बारीकियों, सांकेतिकता और आंतरिक लयात्मकता इत्यादि-इत्यादि की शास्त्रीय बहसों में नामवर सिंह से कहानी का भविष्य ही पूछते बैठे रहें और पीठ-पीछे से कहानी अपनी नयी और तीसरी दुनिया के लिए जरूरी यात्रा तय करती रहे...

कुछ हर्ज न होगा, अगर पहले उनकी पहली बात को ही लिया और उनसे ही पूछा जाय कि—क्या सचमुच?

चूंकि राजेंद्रजी का जोर 'साहित्य में' पर है, इसलिये जानना जरूरी होगा उनसे यह भी कि मौलिकता—जैसी चीज क्या सिर्फ साहित्य में ही नही होती? यह तो उन्होंने कहा नहीं है कि कहीं नहीं होती. ऐसे में उनको ही यह बताना भी होगा कि साहित्य को छोड़, बाकी हर जगह मौलिकता होती है, या कि जिन कुछ क्षेत्रों में मौलिकता-जैसी कोई चीज नहीं होती, उनमें साहित्य भी एक हैं? हमें समझाने को एक-दो दृष्टांत देंगे राजेंद्रजी कि मौलिकता-जैसी चीज कहां-कहां होती, या पायी जाती हैं? ताकि हम भी तो जरा मिलान करके देख सकें कि राजेंद्रजी सच ही कह रहे हैं, या झूठ? और जान सकें कि साहित्य में मौलिकता क्यों नहीं होती.

जाहिर है कि कुछ अद्भुत, अपूर्व तथा चमत्कारिक कहने का शौक राजेंद्रजी को नामवरजी से कम नहीं. चौंकाने और अचंभित करने के इरादे में गढ़ी गयी ऐसी तमाम उक्तियां अपनी निष्पत्ति में सिर्फ हास्यास्पद होती हैं, जिनमें धारणा और अवधारणा के बीच कर सकने का विवेक नदारद है. धारणा कोई भी बना ले सकता है, लेकिन अवधारणा सिर्फ वही कर सकता है, जिसमें वस्तु को देश-काल और समाज के साक्ष्य से देख सकने की क्षमता हो. जो किसी बात को दूसरों को चौंकाने या अचंभित करने के इरादे में नहीं, बल्कि सोच-विचार की एक प्रक्रिया से गुजकर कहे.

जिस साहित्य में मौलिकता-जैसी कोई चीज हो ही नहीं, वह अगर नया होगा भी, तो साहित्य की कसौटी पर नहीं, बल्कि 'नया सुपर रिन' के स्तर पर! 'सुपर रिन' अपने लेबिल तथा आकार-प्रकार अथवा गुणवत्ता में भी बहुत-कुछ नया होने के बावजूद, मौलिक कभी नहीं हो पायेगा, क्योंकि मौलिकता किसी भी वस्तु में 'नया' या 'ताजा' होने के तर्क से नहीं, बल्कि दृष्टि अथवा परिकल्पना के ऐसे संस्पर्श से ही आ सकती है, जो उसे देश-काल और मनुष्य के विराट से जोड़ सके. जिसकी गति इनकी आर-से-पार तक की सरणियों तक हो. जिसमें सृष्टि के आधारभूत सारतत्वों के साक्षात्कार की कौंध मौजूद हो. जो वस्तु को सोच-विचार और संवेदन के तंतुओं से जोड़ और हमें यह आभास करा सके कि इसमें ऐसा इससे पहले नहीं था.

'रामचरितमानस' की वस्तु 'रामायण' से ली गयी है और शिल्प ही नहीं, बल्कि भाषा-शैली अथवा बिंब-विधान तक पर 'पद्‌मावत' की छाया साफ देखी जा सकती है, लेकिन इसके बाद भी वह नयी नहीं, बल्कि एक संपूर्ण रूप से मौलिक कृति है, क्योंकि साहित्य में मौलिकता दृष्टि, (या कहें कि वस्तु को देखने की भिन्नता) से उत्पन्न होती है, यदि दृष्टि में मौलिकता, तो भाषा, शिल्प, शैली अथवा बिंब-विधान का कैसा भी नयापन किसी कृति को मौलिक नहीं बना सकता, क्योंकि 'नया' का दायरा काल ही नहीं, बल्कि वस्तु की भी सिर्फ तात्कालिक परिधियों तक ही जाता हैं, जबकि मौलिकता के लिये देश-काल और संवेदन तथा सोच-विचार के उन बुनियादी आधारों की समझ जरूरी है, जहां से कि निराकार को आकार मिलने की शुरुआत होती है... और चूंकि निराकार को आकार देने का साधन एक ही है, भाषा—इसलिये मौलिकता को अगर कहीं किसी क्षेत्र में उसकी पूरी अवधारणा और पहचान में देखा जा सकता है, तो सिर्फ साहित्य अथवा उन अन्य कला-माध्यमों में, जो भाषा अथवा भाषा के कारण उत्सों से जुड़े हों.

अगर राजेंद्रजी का तर्क हो कि जो भी नया हो वह पहले मौजूद से कुछ नया ही होता है और पहले ही मौजूद के नये रूप को मौलिक कैसे कहा जा सकता है, तो तब साहित्य ही क्यों, कहीं किसी अन्य क्षेत्र में भी मौलिकता-जैसी किसी चीज की गुंजाइश कैसे होगी? जब संपूर्ण सृष्टि ही पहले से मौजूद है, तब यहां किसी भी दूसरे मौलिक को स्थान ही कहां होगा! जबकि इस बात को हम फिर जोर देकर कहना चाहेंगे कि मौलिकता वस्तु या रूप-गुण नहीं, बल्कि दृष्टि की भिन्नता का प्रत्यय है. साहित्य में मौलिकता की अवधारणा वस्तु, शिल्प या भाषा-विधान के नयेपन नहीं, बल्कि दृष्टि, अनुभव और सरोकारों की भिन्नता से ही की जा सकती है और यही भिन्नता एक देश-काल ही नहीं, बल्कि एक ही भाषा-माध्यम तक के लेखकों की कृतियों में एक ऐसा अंतर उपस्थित करती है, जिसे हम मौलिक के सिवा और कुछ कह नहीं सकते. साहित्य में अनुभव, सरोकार या दृष्टि की भिन्नता से रिक्त 'नया' सिर्फ नकल-मात्र होकर रह जाता है.

विडंबना है यह कि राजेंद्रजी का 'नया' उधार का है और उधार भी उन्हीं डॉ. नामवर सिंह से जिन्हें राजेंद्रजी वर्षों पहले ही 'प्रतिभा और इमानदारी की जीवित समाधि' घोषित कर चुके थे, लेकिन आज फिर हिंदी कहानी की 'बोफार्स तोप' करार दे रहे हैं और ऐसा करते में हाल उनका भी लगभग वही है, जो श्री राजीव गांधी का! ...संतुलन उनका भी लगभग पूरी तरह गड़बड़ाया हुआ है, क्योंकि अन्यथा वो 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' को नामवरजी पर चस्पा करते हुए, अपना अतीत (या व्यतीत?) भी स्मरण रखते जरूर!

जब नामवरजी 'नयी कहानी' आंदोलन के नामधारी बने हुए, उसे दिगविजय कराते फिरे, तब तो राजेंद्रजी ने कभी नहीं कहा कि उनका मन रखते कहां तक घूमते रहेंगे? लेकिन 'हमारा मन नहीं रखोगे, तो भुगतोगे' की उनकी भभकी उन नामवरजी पर ही कहां चलेगी, जिन्हें राजेंद्र यादव खुद ही यदुवंश शिरोमणि श्रीकृष्ण की भांति 'विराट' अनुभव कर रहे हैं? राजेंद्रजी का कहना है—'सही है कि हम सब नामवर को बहुत प्यार करते हैं, इसलिए बहुत नाराज हैं. हमें गर्व है कि हिंदी साहित्य के पास एक नामवर भी है. इतना विराट, इतना विद्वान, इतना वाग्मी और इतना खुंदकी, एकदम बोफार्स तोप. लेकिन पिछले लगभग 35 बरसों से मैं जान नहीं पाया कि वह हिंदी कहानी से आखिर क्या चाहते हैं?—

'नवभारत टाइम्स' 13 अगस्त 19

हम राजेंद्रजी के वक्तव्य में इतना और जोड़ना चाहेंगे कि—हिंदी के पास एक अदद खुद राजेंद्र यादव भी हैं जरूर! और जैसे कहानी की आलोचना में सिर्फ जोंबबाजी से ही नामवरजी मसीहा बन बैठे हैं, तैसे ही सात वर्षों में 'हनीमून'—जैसी घटिया कहानी लिखकर राजेंद्र यादवजी भी हिंदी के भूत, वर्तमान और भविष्य, तीनों पर हेडमास्टरी गांठ रहे हैं. अन्यथा बनें चाहे जितना, लेकिन इतना तो वे भी भली-भांति जानते हैं कि 'नयी कहानी' का आंदोलन भी नामवरजी की उसी विराट छलना की उत्पत्ति था, जिसे उन्हें अपने 13 अगस्त 89 के 'नवभारत टाइम्स' वाले वक्तव्य में 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' करार देने के बाद भी पूरा संतोष प्राप्त हो नहीं सका. लेकिन 'नयी कहानी' का 'छापा' चूंकि, कहानियों की जगह, आंदोलन से स्थापित त्रिमूर्ति में का एक बनाये रखने में बहुत दूर तक खुद राजेंद्रजी के भी काम आता रहा, इसलिये उसकी छाप छुड़ाना है, क्योंकि छापा अगर देर तक बना रह जाय, तो वह दूर तक भी साथ रहेगा जरूर!

साफ शब्दों में कहें, तो ये दोनों ही—नामवरजी और राजेंद्रजी—हिंदी कथा साहित्य के दो ऐसे तोता मास्टर हैं, जो आलोचक या लेखक की जगह 'मठ' (इंस्टीट्यूट!) बनने की हविश में ऐसे बटुकों की तलाश में रहते हैं, जो अपने कंधों पर इनकी कीर्ति ढोते रहें. दोनों के ही पास कुछ नुस्खे हैं, कुछ तरीके और कुछ हैसियत. दोनों दरबार लगाने के शौकीन हैं. देखा जाय, तो नामवरजी और राजेंद्रजी बीच का द्वंद्व, सैद्धांतिक या वैचारिक असहमतियों का न होकर, अपनी-अपनी हैसियत का द्वंद्व ज्यादा है. नामवरजी अगर इस मामले में 'विराट' पड़ रहे हैं, तो इसलिये कि कहानीकारों में उनके हाथों-बंधे गंडे की मान्यता ज्यादा हैं. 'हंस'—जैसी इस समय की अत्यंत महत्वपूर्ण पत्रिका हाथों में होते भी राजेंद्रजी को अगर नामवरजी 'बोफार्स' या 'विराट' नजर आ रहे हैं, तो इसके सूत्र उनके उसी अतीत में हैं, जिस पर से नामवरजी के हाथों की छाप को मिटाना कठिन है. अन्यथा नामवरजी को एक तरफ (मारक्वेज की) नकल और दूसरी तरफ 'विराट' दोनों एक साथ घोषित करना जरूरी नहीं होता.

यहां, राजेंद्रजी की 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' की प्रेरणा से, एक पुरानी कुमाऊंनी कहावत मुझे भी याद हो आयी है. मुहावरा है-'कबबे जोगी कबके जट्टा!' ...अर्थात सीनियौरिटी ऑलवेज़ काउंट्स!' जिसे जोग साथे 35 साल बीत गये और जिसे जोग लिए हुए हों अभी जुमा-जुमा कुल 3 साल—जाहिर हैं कि दोनों की जटाओं में भी फर्क होगा ही. लंबाई ही नहीं, गुंजलको में भी!

कोशिशें तो राजेंद्रजी ने भी कम नहीं की हैं, हिंदी कहानीकारों को एक नयी दिशा देने की? लेकिन गलती उनसे सबसे बड़ी यही हो गयी कि प्रेमचंद की परंपरा को चुनौती देते हुए 'जनवाद और सेक्स' की जो बहस उन्होंने 'हंस' में चलायी थी, उसका न तो सभारंभ ही नामवरजी से करा पाये और न अंत ही!

चलिये, माना कि शुरुआत को नामवरजी पहले ही घपले में डाल देते और अंत भी कर डालते सब कुछ मिट्टी, जैसी कि राजेंद्रजी ने उनकी प्रकृति बतायी है, लेकिन 'बीच बहस में' तो कहीं फंसा सकते ही थे? अगर यह काम राजेंद्रजी ने कर लिया होता, तो फिर नामवरजी उनके लिए 'विराट' या 'बोफोर्स' नहीं रह जाते, क्योंकि तब यह दबाव बनाया जा सकता था कि जैसे नामवरजी ने उन्हें 'नयी कहानी' के पाखंड में शामिल रखा, वैसे ही आज नामवरजी को भी 'जनवाद और सेक्स' की बेहूदी और बकवास बहस में सानकर दिखा दिया गया! ... लेकिन, जैसा कि पहले ही कहा, अनुभव की कमी में राजेंद्रजी यह सब कर नहीं पाये और परिणाम हुआ यह कि 'जनवाद और सेक्स' की सारी बहस 'हंस' में जनवाद के आवरण में प्रस्तुतद्दीपक किस्म की कहानियों के प्रकाशन का औचित्य सिद्ध कर सकने की निरर्थक ही नहीं, बल्कि वाहियात कोशिशें तक ही सीमित होकर, लगभग हमेशा-हमेशा को समाप्त भी हो गयी. 'जनवादी लेखक संघ' ने राजेंद्रजी पर जितना जनवाद मढ़ा था, बदले में, राजेंद्रजी ने जनवाद पर उतना ही 'सेक्स' थोप दिया!

नामवरजी पर गलतबयानी, गोष्ठी-गाष्ठी और व्यक्ति-व्यक्ति के हिसाब से बोलने के अवसरवाद और अध्यक्ष पद हथियाने के बाद दूसरों के कथनों को मनचाहे ढंग से तोड़ने-मरोड़ने के जितने भी आरोप राजेंद्रजी ने अपने वक्तव्य में लगाये हैं, ये लगभग सभी तथ्यपूर्ण हैं, लेकिन बहस में तो शायद, नामवरजी से कभी पार नहीं पा सकेंगे, क्योंकि इसमें सचमुच संशय की कोई गुंजाइश नहीं कि नामवरजी को राजेंद्र सचमुच बहुत प्यार करते हैं, लेकिन इस प्रीति में 'भय' की भूमिका भी छोटी नहीं. एक हद से आगे वो इस 'विराट' या बोफार्से को छोड़ेंगे ही नहीं! अन्यथा एक तरफ नामवरजी पर 'पुरानी राजस्थानी कहावत' चिपकाना, दूसरी तरफ हिंदी साहित्य का विराट और बोफोर्स करार देना और तीसरी तरफ यह आरोप कि उन्हें कहानी की समझ ही नहीं,—इसे सिवा वाहियात के और क्या कहा जाय?

जैसा कि पहले ही कहा, शब्द और उसके संप्रेष्य के बीच वे अंतस्संबंध के प्रति उदासीनता ही गद्यकार को ले डूबती हैं. चौंकाने की प्रवृत्ति की यह नियति है कि ज्यादा जोर फतहेबाजी पर रहता है. अन्यथा न तो नामवरजी पर 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' ही सही कही जा सकती है और न ही वो हिंदी-साहित्य के विराट ही है! बोफोर्स भी, वो राजेंद्रजी को सिर्फ इसलिये दिखाई पड़ रहे हैं कि नामवरजी के चलाये 'नयी कहानी' ट्रेडमार्क को बहुत दिनों तक इस्तेमाल करने के बाद, अब वो इसके 'बाइंड अप चार्जेज' चुकाने तक से साफ इंकार करना चाहते हैं, क्योंकि इस बीच उन्होंने 'जनवाद और सेक्स' तथा 'कहानी की अपनी और नयी तीसरी दुनिया'—इन दो ट्रेडमार्कों का खुद आविष्कार कर लिया है! अन्यथा जहां तक कहानी की समझ का सवाल है, निश्चय ही, राजेंद्र इसमें नामवरजी से बीस ही नहीं, शल्कि, शायद, तीस पड़ेंगे, क्योंकि नामवरजी की कहानी संबंधी समझ इतनी सतही है कि उनका हिंदी कहानी की आलोचना का मसीहा होने का प्रभामंडल तभी तक टिका रह सकेगा, जब तक कि हिंदी कहानी की आलोचना के क्षेत्र में 'यत्रदेशे द्रुमोनास्ति, तत्रैरंडोपि द्रुमायते' की स्थित कायम रहेगी..

कितने भी समृद्ध पाठानुभव, अध्ययन या कैसी भी निष्णात तर्क-प्रणाली से साहित्य में आलोचना की उन पारदर्शी सरणियों तक नहीं ही पहुंचा जा सकता, जहां कि आलोचना रचना को उसकी पूरी व्याप्ति तथा अर्थवत्ता में समझे जा सकने की अपरिहार्य शर्त बन जाती है. एक आलोचक को सबसे पहले जानना जरूरी है यह कि, किसी भी विधा में, रचना के बुनियादी सारतत्व क्या होते हैं और फिर यह कि विधा का संरचनात्मक ढांचा इनको कहां तक और किस रूप में प्रभावित करता है. साथ ही यह भी कि रचना की प्रकृति ही नहीं, बल्कि प्रक्रिया तक लेखक के जीवन में कैसे अंतर्ग्रथित होती है. लेकिन जाहिर है कि रचना के सारतत्वों की पड़ताल में वक्त लगता है, और जिन्हें तोते पढ़ाने हों, उनके पास न इतना वक्त ही होता है और न ऐसी कोई चिंता ही.

नामवरजी में रचना को उसके मूल उत्सों तक जाकर पकड़ने की चिंता, और ऐसी जिजीविषा या ईमानदारी, कम ही दिखायी पड़ेगी. वो प्रायः आलोचना को रचना की गहराइयों तक ले जाने की जगह, रचना को आलोचना की ऊपरी सतहों तक लाकर, उस पर बोलते, या लिखते हैं. रचना के तलस्पर्शी विश्लेषण की जगह, उदाहृतिपरक व्याख्या की यह पद्धति आलोचक की महत्वाकांक्षा को चाहे जितनी खुराक पहुंचाती हो, रचना के वस्तुगत मूल्यांकन में बाधक ही होती है. नामवरजी की आलोचना की सबसे बड़ी खामी व्यक्तिपरकता में है और यही उन्हें आलोचना के गहरे आवर्त्तों की जगह, उसके उन सतही टोटकों में ले जाती है, जिनकी ओर राजेंद्र ने संकेत किया है. अपने मनोरथ के हिसाब से रचना के अवमूल्यन या अधिमूल्यन के जो भी खतरे हो सकते हैं, उन्हें नामवरजी की कहानी संबंधी आलोचनाओं में साफ-साफ देखा जा सकता है. प्रतिभा के साहित्येतर इस्तेमाल की यह एक स्वाभाविक त्रासदी है कि तब मूल चिंता पढ़नेवालों के गवाक्ष खोलने की जगह, खुद का चौबारा सजाने की हो जाती है. जबकि रचना हो कि आलोचना, उनकी सारी प्रासंगिकता रचना के पाठकों को ओझल अंतःसूत्रों को गोचर करने में है.

नामवरजी को अपनी चिंता हमसे अधिक है. उन्होंने खुद ही कहा है—'अगर आलोचक में बढ़ई की-सी क्षमता हो, तो औजारों के बक्से की कोई जरूरत नहीं हुआ करती, एक पेचकस ही काफी होता है.'

(वाद, विवाद, संवाद, : नामवर सिंह)

हालांकि यह सब उन्होंने अपने बारे में सत्य प्रकट करने नहीं, बल्कि कुछ चमत्कारिक कर रहे होने के मुगालते में ही कहा होगा, लेकिन कम-से-कम जहां तक उनकी कहानी संबंध आलोचना का प्रश्न है, यह उनके सचमुच 'एक पेचकस वाला मिस्त्री' होने की ही गवाही देती है.... कहानी संबंधी उनके सारे लेखों, टिप्पणियों या साक्षात्कारों अथवा वक्तव्यों में एक बड़े आलोचक की कोटि की प्रतिश्रुति, प्रक्रिया या पैठ के अकाल को साफ देखा जा सकता है.

उनसे अगर सिर्फ यही पूछ लिया जाय कि 'नयी कहानी' से उनका मतलब क्या था? या कि काल की अवधारणा चंद लेखकों को केंद्र में रखकर कैसे की जा सकती है? या कि यदि उनके द्वारा बताये गए चिन्हों के आधार पर हिंदी की कहानियां में से नयी कहानियों को. लेखकों के नामो की जगह. अंतर्वस्त

या शिल्पविधान की पहचान से अलग नहीं किया जा सकता, तो 'नयी कहानी' को सिवा पाखंड के और क्या कहा जाय?... तो वो इन सवालों को लेकर 'नयी कहानी' पर बोलने की जगह, खुद ही बोल जाते है

कहानियों की जगह गुटबाजी से खुद का भविष्य चमकाने को लालायित कहानीकारों, आलोचना की प्रतिभा के अकाल के बावजूद साहित्य में अपना भी नाम चलाने को व्याकुल तथा नामवरजी के प्रभामंडल से हतप्रभ प्राध्यापकों के चलते 'नयी कहानी' का झूठ हिंदी कथा साहित्य में अपनी जड़ें जमाता चला गया! ...और आज हालत है यह कि 'नयी कहानी' किसे कहेंगे, उसकी पहचान के चिह्न क्या होंगे—इसका कोई जवाब न 'नयी कहानी' पर दर्जनों शोधप्रबंध तैयार करवा चुके इन प्राध्यापक आलोचकों के पास है और न ही 'नयी कहानी' के आद्याचार्य डॉक्टर नामवर सिंह जी के पास!

झूठ को इतना चला दो कि वह अनेकों को खुद के अस्तित्व की शर्त हो जाय, बस, एक इसी कूटनीति के तहत नामवरजी ने 'नयी कहानी' को एक आंदोलन का रूप दे दिया और जब यह राजेंद्र यादव-जैसे कहानीकारों के वश की बात नहीं कि वो बिना 'नयी कहानी' के झूठ को स्वीकारे नामवरजी को कोई पटखनी दे सकें.

अफसोस कि राजेंद्रजी 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' तो याद रह गयी, लेकिन यह शेर स्मरण नहीं रहा कि—लमहों ने खता की थी, सदियों ने सजा पायी!

अस्तु इतना तो तय है कि नामवरजी को लेकर राजेंद्र अपनी दूर तक कभी नहीं जायेंगे, जहां उनकी बोफोर्सी सचमुच सवालों के घेरे में आ सकती हो, क्योंकि कुल मिलाकर, हैं तो दोनों एक ही जहाज के सिंदबाद!

यह अकारण नहीं कि हिंदी कहानी के ये दोनों ही तोतामास्टर रचना के सारतत्वों और उसकी संभावनाओं को लेखक के समाज के साथ के रिश्तों या झूठ, अन्याय तथा अयथार्थ के विरुद्ध उसके संघर्ष की जगह, सामाजिक स्थितियों अथवा इतिहास में खोजने की सलाह देते पाये जाते है. इतना भली भांति जानते भी कि जब लेखक का समाज से नाभिनाल संबंध खत्म हो जाय, और वह समाज की धड़कनों को एकाग्रचित्त होकर सुनने की जगह, किसी संगठन या पार्टी से सैद्धांतिक-वैचारिक खुराक लेना ज्यादा बेहतर समझने लगे, तो कैसी भी महान ऐतिहासिक घटनाएं या उथल-पुथल—भरी सामाजिक स्थितियां उसे कोई लाभ नहीं पहुंचा सकतीं, क्योंकि रचना में सामाजिक स्थितियों या ऐतिहासिक घटनाओं के दबावों की अनुगूंज भी सिर्फ वही लेखक उत्पन्न कर सकता है, जिसने इनकी दाब को सिद्धांत नहीं, बल्कि संवेदना के स्तर पर झेला हो!

'हंस' की त्रिवार्षिकी वाली संगोष्ठी में भी कहानी की बहस को या 'नेहरू युग' के यूटोपिया, या आर्थिक-सामाजिक क्रांति के बता गये नुस्खों और या दूरदर्शन के रुपहले पर्दे से जोड़ने की कोशिशों के, और किसी बात पर इनका जोर दिखा नहीं. जाहिर है कि इस सबके पीछे कहीं-न-कहीं यह डर मौजूद रहा होगा कि बहस को वहां तक हर्गिज नहीं जाने देना चाहिये, जहां से हमारा छद्म टूटता हो. जहां विचारधारा या जनवाद को साहित्य की कसौटी बनाने को लेकर यह सवाल उठ खड़ा हो कि जब साहित्य की शर्तों पर राजनीति नहीं की जा सकती, जब राजनीति की शर्तों पर साहित्य का तर्क क्या होगा? जहां पूछ लिया जाय कि जब घटनाओं और स्थितियों से ही कहानियां बनती हैं, तो आपको किस डॉक्टर ने कह दिया कि—खबरदार, तुम मत बनाना! जहां नयी पीढ़ी के कहानीकार खुद कहानी लिखने में चुक गये लोगों की हेडमास्टरी में कहानी कला के नुस्खे सीखने से इंकार कर दें...

आज की सचाई है यह कि साहित्य में कलावाद, प्रगतिवाद या जनवाद के नुस्खे पूरी तरह निरर्थक हो चुके हैं और कहानीकारों को जानना जरूरी है यह भी कि कहानी महाविद्यालयों या नामवरजी अथवा राजेंद्र यादवजी—जैसे तोतामास्टरों से सीखने की चीज नहीं. साहित्य की पहली शर्त झूठ को झूठ कह सकने की ताब है और अगर यह ताब नहीं, तो कहानी में आब आना असंभव है. जिन कहानीकारों में डॉ. नामवर सिंह और राजेंद्र यादव के झूठ से लड़ने का ही नैतिक साहस नदारद हो, उनसे व्यवस्था के झूठों के खिलाफ संघर्ष की उम्मीदों का हश्र क्या होगा, इतना अनुमान तो लगाया ही जा सकता है.

इतना तो निश्चित है कि हिंदी कहानी की बहस अब एक कदम भी आगे सही दिशा में तभी बढ़ सकती है, जब खुद लिखने में चुक जाने के बाद, दूसरे कहानीकारों के भविष्य को सेंक रहे होने का भ्रम बनाये रखने में जुटे इन तोतामास्टरों का टेंटुआ जरा कस के दबाया जाय ताकि इतना अहसास तो इन्हें हो ही जाय कि इनकी 'टें-टें' अब उतनी प्रामाणिक रही नहीं!

राजेंद्र की एक त्रासदी यह भी है कि वो बोलने में नामवरजी से बहुत कमजोर है. अन्यथा इलाहाबाद में भैरवजी के सम्मान-समारोहवाली कहानी-गोष्ठी में नामवरजी की अध्यक्षता से गुजर चुकने के बाद, वो 'हंस' वाली संगोष्ठी में नामवरजी को इस नैतिक दबाव में बिलकुल घेर सकते थे कि अवसर को फिर नामवरजी ही न ले उड़े! वो चाहते, तो अंत में 'धन्यवाद' के निमित्त से ही सही, नामवरजी की उस तमाम अवसरवादिता पर वहीं आक्षेप कर सकते थे. तब 'नवभारत टाइम्स' में 'एक पुरानी राजस्थानी कहावत' के जरिये भड़ास निकालना जरूरी नहीं होता. क्योंकि कोई भी व्यक्ति हिंदी साहित्य का विराट और पुरानी रास्थानी की 'जन-जन का मन रखती' नायिका, दोनों एक साथ हो नहीं सकता!

नामवरजी हिंदी कहानीकारों के भविष्य निर्माता की-सी छवि इसलिये पा गये कि कहानियों की जगह गुटबाजी या आलोचकीय फतवों के जरिये स्थापित होने को छटपटाते कहानीकारों की एक पूरी कतार को वो बाकायदे काफी नजदीक से देख और उनकी नब्जें टटोल चुके थे. इसी बूते उन्होंने, बहुत जल्दी ही, यह धाक जमा ली कि कहानीकार को अपने भविष्य की संभावनाएं, कहानियां लिखने से कहीं ज्यादा, नामवरजी द्वारा खुद के कंधे थपथपवाने में खोजनी होंगी.... लेकिन 'हंस' वाली गोष्ठी में तो 'कहानी का भविष्य' विषय, नामवरजे ने नहीं, बल्कि खुद राजेंद्रजी ने प्रस्तावित किया था. तब नामवरजी के 'भविष्यवाचन' पर आपत्ति उठाने का हक उन्हें कैसे होगा?

लगता है, 'हंस' के संपादक की हैसियत से राजेंद्र हिंदी कहानीकारों के भविष्य-निर्माण के ठेके में नामवरजी से 'बड़ी पत्ती' अपनी चाहते हैं, क्योंकि जब उनके पास 'हंस' है! ...और इसी पे 'पशु-पक्षियों के जीवन में सेक्स' की तर्ज पर 'जनवाद और सेक्स' की बहस चलाने के अलावा, 'हंस' की संपादकीय टिप्पणियों में हिंदी कहानी का हेडमास्टर होने की-सी हरकतें उन्होंने जाने कितनी बार की है, ... बिना यह फिक्र किये कि कहानी में 'मार्क्सवाद और सेक्स' के 'टू इन वन' सिद्धांत को तो कौन जाने खुद महाशय फ्रायड भी पचा पाते, या नहीं!

हालांकि 'तिरिया चरित्तर' को 'जनवादी कहानी' माननेवाले राजेंद्रजी ने 'कामरेड का कोट' को 'जनवादी कहानी' कहीं नहीं कहा है, फिर भी इसमें शक नहीं कि राजेंद्र, नामवरजी की तुलना में, कहानी की बेहतर समझ ही नहीं रखते, बल्कि बेईमान भी कम हैं और साहित्य के सवालों के प्रति बेचैनी भी उनमें नामवरजी से ज्यादा है. नामवरजी तो दूसरों को बेचैन करके चैन की वंशी बजाने की कला में दक्ष हैं, हालांकि पलड़ा यहां (यानी वंशी बजाने में) राजेंद्रजी का भारी होना चाहिये था, क्योंकि संगीत में घराने की भूमिका अहम मानी जाती है!

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'हंस' के पूरी भव्यता और स्तरीयता में प्रकाशन का जोखिम उठाकर हिंदी कहानी जगत में राजेंद्रजी ने एक ऐतिहासिक महत्व का काम किया है, और इसके लिये उनको ढेरों साधुवाद भी कम ही पड़ेंगे, लेकिन इसका क्या करे कोई कि कहानी पर बोलने ही नहीं, बल्कि लिखने के मामले में भी उनका नामवरजी से पार पाना कठिन ही होगा. हालांकि जहां तक अध्ययन और स्मृति का सवाल है, और उदाहृतियां उपस्थित करने की क्षमता का, राजेंद्र भी कुछ कम नहीं. गद्य की धार को भी वो खूब समझते हैं और, इसीलिये, उसकी धार को भी, लेकिन उनमें शब्द और विचार को समतोल या समरस करने की चिंता प्रायः नदारद ही मिलती है. तर्क या विचार की बेफांक निरंतरता के अभाव को भी उनके गद्य में साफ देखा जा सकता है, जबकि रचना ही नहीं, बल्कि आलोचना की भाषा में भी शब्द और विचार अथवा शब्द और संप्रेष्य के बीच दरारों का होना इस बात का स्पष्ट सबूत होता है कि अभी दिल्ली दूर है! राजेंद्रजी के पास शब्दों के भंडार में कमी नहीं, लेकिन इतना तय है कि शब्दों के सही इस्तेमाल की चिंता उनमें कम है. शब्दावली और भाषा एक ही चीज नहीं हैं. भाषा में स्फटिकता मन और अनुभव के टटकेपन में से आती है, ऊपरी सतह पर प्रभावी दिखती शब्दावलियों से नहीं.

राजेंद्र यादव बताते हैं कि—'बात यहां होनी चाहिये थी कि जिंदगी और कहानी के आपसी द्वंद्वात्मक रिश्ते क्या है.' कैसे रचनाकार अपनी कला में यथार्थ का अतिक्रमण करता है, या विरूपण के द्वारा वृहत्तर यथार्थ तक पहुंचता है. जाहिर है कि इन पर नामवरजी भी, पान चुभलाते हुए, सिर्फ मुस्कुरा ही सकते हैं.

राजेंद्रजी को क्या इतना भी पता नहीं कि 'जिंदगी और कहानी के आपसी द्वंद्वात्मक रिश्तों'—जैसी कोई चीज कहीं नहीं होती. होती भी हो, तो कहानी से इसका कोई वास्ता कतई नहीं होता. कहानी में द्वंद्वात्मक रिश्तों की भूमिका जरूर होती है, लेकिन कहानी लिख लिये जाने के बाद पलटकर, जिंदगी से खुद के द्वंद्वात्म रिश्ते कायम करते फिरने का काम कभी नहीं करती. कहानी में जिंदगी के द्वंद्वात्मक रिश्तों या रिश्तों के जीवन में उपस्थित होने वाले

द्वंद्वों का चित्रण जरूर होता है, लेकिन यह काम कहानी नहीं करती, लेखक करता है. कहानी तो कृति की जगह व्यक्ति की शक्ल में पेश करना ठीक नहीं. यह एक तरह का छलावा है.

दूसरी बात, रचनाकार अपनी कला में गहराई यथार्थ नहीं, बल्कि यथार्थ की खुद की समझ के सीमित दायरों का अतिक्रमण करके लाता है. यथार्थ की खुद की समझ के सीमित दायरों का अतिक्रमण करके लाता है. यथार्थ के अतिक्रमण का मतलब तो सीधे शून्य (गड्ढे) में जा गिरना ही हो सकता है. कहानी की समझ के मामले में इस तरह के गड्ढे खतरनाक ही कहे जा सकते हैं. यथार्थ कभी भी अलग-अलग, स्वच्छंद टुकड़ों में नहीं हुआ करता. स्वयं के अनुभव को यथार्थ के एक व्यापक फलक से जोड़, या नहीं जोड़ पाने में ही रचनाकार की परीक्षा हुआ करती है. लेकिन विरूपण के द्वारा यह कार्य असंभव है, क्योंकि विरूपण से सिर्फ विकृति उत्पन्न होती है, जबकि यथार्थ के विस्तार को किसी बड़े संदर्भ या प्रसंग में पकड़ने की दृष्टि सिर्फ तभी आ सकती है किसी रचनाकार में, जब वह अपनी समझ, संवेदना और अनुभूति के सीमित दायरों के अतिक्रमण ही प्रक्रिया से गुजर रहा हो.

भाषा को व्याकरण ही नहीं, बल्कि संप्रेषण की दृष्टि से भी संगत, प्रभावी तथा अचूक बनाने के लिये शब्दावलियों की सिर्फ ऊपरी परत को ही देख लेना काफी नहीं होता. बिना अर्थ की स्फटिकता के, शब्दों में, अन्विति कभी नहीं आ सकती. 'वाक्' को 'अर्थ' के समतोल बनाये बिना सही भाषा लिखना असंभव है.

राजेंद्रजी से अब सिर्फ एक सवाल और कि यह कहानी की 'अपनी नई तीसरी दुनिया' कौन-सी होगी? क्या कहानी की भी सचमुच कई-कई दुनियाएं हुआ करती हैं? या कि यह राजनीति के 'तीसरी दुनिया' के नारे की ही प्रतिच्छाया-मात्र है? लेकिन तब नामवरजी पर मारक्वेज की नकल के आरोप का क्या होगा?

राजेंद्रजी इन सवालों का जवाब देने की तैयारी करें, इसके पहले यह एक बात और कह देना जरूरी जान पड़ता है कि मारक्वेज आदि के 'तीसरी दुनिया के साहित्य' का मतलब भी 'साहित्य की तीसरी दुनिया' कतई नहीं होता!

सवाल, लगे हाथों, यह भी कर लिया जाय कि—'कहानी की इस अपनी नयी तीसरी दुनिया' की शुरुआत कहां से मानी जाय? क्या खुद राजेंद्रजी की 'हनीमून' से ही?

सवाल, लगे हाथों, यह भी कर लिया जाय कि—'कहानी की इस अपनी नयी तीसरी दुनिया' की शुरुआत कहां से मानी जाय? क्या खुद राजेंद्रजी की 'हनीमून' से ही?

एक बात और. कहानी की 'अपनी नयी तीसरी दुनिया' की उद्घोषणा करते वक्त, शायद, राजेंद्रजी को ध्यान रहा नहीं कि कहानी की पहली दुनिया हो, दूसरी-तीसरी हो कि आखिरी नयी दुनिया—जहां भी कहानी के साथ 'नयी' शब्द जुड़ेगा, 'नयी कहानी' आंदोलन के तात जनक नामवरजी की छाया भी वहां विद्यमान रहेगी जरूर! वैसे, हमारी राय में इन दिनों की दुनियाओं में ज्यादा फर्म नहीं. एक कहानी की आलोचना में की दुनिया में बांझ होता जा रहा है, तो दूसरा कहानी के लेखन की दुनिया में!

जहां तक हिंदी कहानी पर बहस का सवाल है, इतना तो अब साफ देखा जा सकता है कि सिवा चोंचलेबाजियों के, न गंभीरतापूर्वक आलोचना लिखने में नामवरजी को कोई दिलचस्पी है और न दूसरे कहानीकारों पर हेडमास्टरी गांठने की जगह, खुद कहानियां लिखने में राजेंद्रजी की. ...राजेंद्र भी जानते हैं कि अगर कहानीकारों के द्वारा, कहानी के तोतामास्टरों के गुरुडम में खुद को भी स्थान खोजने की जगह, इसके प्रति सवाल उठने की पहल की गयी होती, तो कम-से-कम चर्चा और बहस की स्रोतस्विनी तो जाने कब की या इन दोनों को किनारे की रेत में फेंक चुकी होती और यह इनके गुरुडम को!... किंतु चूंकि हिंदी कहानी के दुर्भाग्य से ऐसा नहीं है, और चूंकि अपनी-अपनी 'स्रोतस्विनी', यानी दूसरों पर सवारी गांठने की हैसियत, दोनों के ही पास मौजूद है, इसीलिये बरकरार हैं, गाहे-बगाहे अपना-अपना नाम और नेतागिरी चमकाने को मनचाहे भाषण झाड़ते चलने की सहूलियतें भी! अस्तु, इस प्रसंग में, हमारी तरफ से एक और पुरानी कुमाउंनी कहावत इन दोनों तोताचार्यों के 'पेशेखिदमत' है...

कहावत इस प्रकार है—पूंछ झड़ गयी, नाम चंवरिया! □

साहित्य के प्रति चाव

पहली बात तो यह कि साहित्य के प्रति चाव अभी भी है, विरल हो, यह अलग बात है और यह चाव साहित्य के अध्यापकों या साहित्य जीवियों में उतना नहीं, जितना अन्य लोगों में है. मुझे कई डाक्टर मित्र मिले, इंजीनियर मित्र मिले, वकील मिले, अधिकारी मिले, दूरदराज देहातों में काम करने वाले सिंचाई कर्मी मिले, वे पुस्तक खरीदते हैं, बैठकखाने की शोभा बढ़ाकर पुस्तक संपत्ति का भी नजारा प्रस्तुत करने लिए नहीं, पढ़ने के लिए. उनसे मैंने पूछा आपको क्यों साहित्य का चाव है? दूरदर्शन तो सारी जरूरतें पूरी कर देता है, एक अधपढ़ पाठक का उत्तर था दूरदर्शन तो आंख को टिकने नहीं देता, किताब की पंक्ति पर तो आंखें विलम सकती हैं, पीछे पलट कर देख सकती हैं, पढ़ते-पढ़ते आंखें नम हो जायें तो किताब तो प्रतीक्षा कर सकती है, दूरदर्शन यंत्र कहां करेगा! मैंने सोचा, ये बिचारे पाठक महानगरीय चूहा दौड़-की गिरफ्त में नहीं आये हैं. इसलिए इत्मीनान से पढ़ने की बात करते हैं, पर मैंने थी त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी जैसे पाठक को देखा, जो भारत सरकार के महालेखा नियंत्रक होते हुए भी किताब की दूकान पर नयी किताब की खोज में चले जाते हैं, तो लगा कि साहित्य के लिए चाव संस्कार से बनता है, वह संस्कार हमारे देश में अभी भी है, कई वर्ष हुए मेरे एक अमरीकी कवि मित्र ने कहा, (उस समय अमरीका में राष्ट्रपति पद के चुनाव का माहौल गर्म था और समूह संचार साधनों में प्रचार की गंदगी उड़ेली जा रही थी), तुम लोग भाग्यशाली हो, तुम्हारे यहां भाषा की पवित्रता की चिंता है, तुम्हारी स्रोत-भाषा का नाम ही संस्कृत है, तुम्हारे यहां भाषा कॉलगर्ल नहीं होने पायेगी. आज उनकी बात विचारता हूं तो बावजूद भाषा के प्रति अनवधानता के और भाषा के निरूपीकरण के प्रति तथाकथित सर्जनात्मक उत्साह के अभी भी भाषा हमारे देश में पवित्र है, वचन का अभी भी मोल है और इसलिए जो वाचिक परंपरा के जितना ही समीप है, उतना ही वह, कितना ही अनपढ़ क्यों न हो, संस्कारी है. आज भी गांव में एक दो ऐसे प्रश्नकर्ता मिल जाते हैं जो रेडियो पर सुनी मेरी वार्ता से उद्धरण देते हुए अर्थ पूछते हैं, आपका अभिप्राय यहां क्या है. जिस जनता ने कबीर रैदास को अपने धंधे को करते-करते गाया, धंधे को धन्य किया, चक्की पर सूर-तुलसी के पद गाये, खेत खलिहान में ब्रजभाषा के छंद सुनाये, उसकी श्रवण-मनन-स्मरण शक्ति अभी भी क्षीण नहीं है. उसने भारत-भारती अपने कंठ में उतारी थी, जाने कितने राष्ट्रप्रेम के गीत उसके कंठ से मुखरित होकर दिशाओं को निर्भय करते हुए गूंजे थे, वह क्या अज्ञेय, मुक्ति बोध, केदार, नागार्जुन को नहीं रख पायेगी अपने कंठ में? इस पर गहराई से विचार करें तो लगेगा कि चाव पैदा करने के लिए नहीं उपक्रम हम लोग नहीं कर रहे हैं. अंग्रेजों की नौकरशाही के जमाने में प्राइमरी स्कूल तक मध्ययुग का ही साहित्य नहीं, बीसवीं सदी के उत्तम लेखकों कवियों का साहित्य पहुंच सका था, मैंने स्वयं एक प्राइमरी स्कूल से ही 'उद्धवशतक' और 'आंसू' लेकर पढ़ा था, जब मैं दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था. आज बजट की वृद्धि के अनुपात में अच्छे साहित्य को गांव तक पहुंचाने के लिए क्या किया जा रहा है? □

['अक्षरा-15' में श्री विद्यानिवास मिश्र के लेख 'साहित्य का भविष्य' से]

देवनागरी : एक नया प्रयोग

□ डा. रामजन्म शर्मा

'देवनागरी : एक नया प्रयोग'
लेखक-महेश्वर प्रसाद
मूल्य : 75 रुपये
प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

पुस्तक 'देवनागरी : एक नया प्रयोग' नागरी लिपि के वर्तमान स्वरूप की प्रासंगिकता का तर्कपूर्ण विवेचन प्रस्तुत करती है. विद्वान लेखक ने नागरी लिपि संबंधी वर्षों के अपने चिंतन को बहुत ही श्रम पूर्वक लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करने की चेष्टा की है. वस्तुतः देवनागरी लिपि को लेकर उसकी वैज्ञानिकता और प्रयोग आदि पर समय-समय पर विवाद चलता रहा है. इसी क्रम में कुछ विद्वानों ने रोमन लिपि की भी चर्चा की है. रोमन एक विदेशी लिपि है अतः रोमन के पक्ष में बहुत कम भाषा शास्त्रियों ने सहमति प्रकट की है. भारत में ही प्राचीन और आधुनिक लिपियों की संख्या लगभग 22 है जिनका प्रयोग भारत में लिखने के लिए होता है. इनमें ब्रहमी, खरोष्टी, गुप्त कुटिल, देवनागरी, शारदा, बांगला, तेलुगु, कन्नड़, ग्रंथ, कलिंग, तमिल, वहलुचू, मलयालम, गुरुमुखी, गुजराती, मैथिली, मोड़ी, कैथी, महाजनी तथा फारसी और अंग्रेजी की रोमन लिपि आदि प्रमुख हैं.

इन लिपियों में कुटिल, गुप्त,खरोष्टी, ब्राहमी लिपियों का लेखन समाप्त हो गया है किंतु इन लिपियों का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है. महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक शिलालेखों एवं ऐतिहासिक दस्तावेजों को पढ़ने के लिए इन लिपियों के विंशेषज्ञ आज भी हमारे देश में मौजूद हैं.

आज देवनागरी लिपि का संसार में तीसरा स्थान है. देवनागरी में हिंदी, संस्कृत, मराठी और नेपाली भाषा को लिखा जाता है. इस प्रकार दुनिया में करीब 25-30 करोड़ लोग लेखन में देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं. यदि इनमें बोलियों का लिखना भी शामिल कर लिया जाए तो इसके प्रयोग करनेवालों की संख्या काफी बढ़ जाएगी. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि का संसार की लिपियों में अपना एक विशेष स्थान है.

पुस्तक के लेखक महेश्वर प्रसाद ने नागरी लिपि के गुण-दोषों का इस पुस्तक में सम्यक विवेचन करने का प्रयास किया है. बात उन्होंने रोमन से प्रारंभ की है, किंतु इस संदर्भ में उन्होंने न तो नागरी लिपि को अस्वीकार किया है और न रोमन को ही स्वीकार किया है. फिर भी अनुसंधानकर्ता लेखक ने रोमन के पक्ष में कुछ बातों का उल्लेख किया है.

प्रायः विद्वानों ने एक स्वर से रोमन को दोषपूर्ण लिपि बताया है. कहा जाता है कि प्रसिद्ध नाटककार बर्नाड शा ने तो अपनी सारी रायल्टी ही रोमन को अच्छा और वैज्ञानिक बनाने के लिए दे दी थी.

पुस्तक के खंड तीन से नागरी लिपि के विकास एवं गुण दोषों का विस्तृत विवेचन किया गया है. वस्तुतः नागरी लिपि को लेकर समय-समय पर उसके सुधार की संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया जाता रहा है. सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय बात तो यह है कि "क्या नागरी लिपि में सचमुच कुछ विशेष कमिया हैं?"

कमियों के नाम पर जिन बातों का प्रायः उल्लेख होता रहा है उन्हीं की ओर इस पुस्तक में भी संकेत किया गया है. पांचवें दशक के अंतिम वर्षों में नागरी लिपि के संदर्भ में कुछ सुझाव लागू किए गए थे, जिन्हें बाद में वापस ले लिया गया था. जैसे बड़ी ई (की) छोडी इ की. दीर्घ और ह्रस्व के स्थान पर 'कि' के स्थान पर 'की'.

इस पुस्तक में नागरी लिपि की जिन कमियों का उल्लेख किया गया है, उनमें कुछ निम्नलिखित हैं–

"नागरी वर्णों में यह भी कमी है कि कुछ के -रूप दूसरे वर्णों से इतने मिलते-जुलते हैं कि अगर सफाई से लिखे या छापे नहीं जाते हैं तो भ्रम पैदा हो सकता है–जैसे घ, ध, भ, म, ख र व आदि."

"रोमन और विशेषकर फारसी लिपियों की तुलना में यह भी मानना पड़ता है कि नागरी में हाथ से लिखे जाने में गति बहुत कम हो जाती है और केवल एक शब्द लिखने के लिए भी कलम कई बार कागज से उठाना पड़ता है."

इसके साथ ही आशुलिपि और टंकण आदि में असुविधा की ओर संकेत किया गया है.

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार द्वारा देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण 1983 पर विचार-विमर्श किया गया है उसे लागू करने का प्रयास भी किया जा रहा है. उनके सुझावों से नागरी लिपि की कुछ भ्रांतियों का निराकरण भी हो रहा है. पुस्तक के लेखक ने स्वयं ही इस बात को स्वीकार भी किया है.

पुस्तक में नागरी लिपि के सुधारों के बारे में जो प्रश्न उठाए गए हैं, उनमें से कुछ सुझाव इस प्रकार हैं–

"अगर अलग स्वरों के लिए स्वतंत्र चिह्न छोड़कर मात्रा ही लिखें, उदाहरण के लिए 'इ' की जगह 'अी' लिखें और अगर कोई ऐसी प्रथा हम अपनाएं कि मात्रा ऊपर नीचे लिखने की जगह हमेशा व्यंजन के बाद लिखें जैसे अब भी 'ी', 'ा' और 'ो' की मात्रा लिखी जाती है तो नागरी और किसी भी अल्फाबेटिक लिपि में कोई अंतर नहीं रह जाता है."

"सभी स्वतंत्र स्वरों को दर्शाने के लिए अलग चिह्नों को छोड़कर 'अ' के साथ संबंधित मात्रा लिखा जाए. अर्थात 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ', 'झ', 'ए', 'ऐ' की जगह 'आ', 'ओ', 'औ' की तरह 'अि', 'ओ', 'अु', 'अू', 'अृ', 'अे' और 'अै'."

"संयुक्त व्यंजनों की प्रथा को बिल्कुल समाप्त करके हलंत का प्रयोग करें. संयुक्त के स्थान पर संयुक्त, व्यंजनों के लिए व्यंजनों. समाप्त के समाप्‌त और प्रयोग के प्‌रयोग आदि."

उदाहरण स्वरूप इसी पुस्तक में खंड छह, खंड सात, खंड आठ और खंड नौ में लेखक द्वारा सुझायी गयी प्रयोगिक लिपि का ही प्रयोग किया गया हैं–

मात्‌राओं के लिअे नये प्‌रस्‌तावित करने से पहले यह बेहतर होगा कि हम नागरी को आधुनिक, पूर्‌ण विकसित लेकिन फिर भी सरल बनाने के अनुद्‌देशय से अुसमें क्‌या-क्‌या चिह्‌न आवश्‌यक समझते हैं, अुस ओर ध्‌यान दें."

इसी प्रकार के अन्य कई सुझाव नागरी लिपि को अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रस्तुत पुस्तक में दिए गए हैं. पुस्तक में ऐतिहासिक महत्त्व के अनेक चार्ट है. पुस्तक में नागरी लिपि का इतिहास द्रष्टव्य है. पुस्तक पठनीय है. □

चेखव की कहानियां

☐ **काला पुरोहित : चेखव की कहानियां**
☐ **अनुवादक : अमृतलाल नागर**
☐ **प्रकाशक : राजपाल एंड संज**
कश्मीरी गेट, दिल्ली.
☐ **मूल्य : 25 रुपये.**

चेखव की कहानियों के बारे में लिखते हुए गोर्की ने एक जगह कहा है, ''चेखव की कहानियां पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो तुम शरद ऋतु के उदास अंतिम दिनों में टहल रहे हो, जब वायु इतनी पारदर्शी होती है कि उसमें बचे पेड़, तंग मकान और धूमिल से लोग स्पष्ट दिखायी देते हैं.''

गोर्की की यह टिप्पणी कितनी सटीक है इसे चेखव की मृत्यु के 84 वर्ष बाद हिंदी में प्रकाशित हुए उनके कहानी संग्रह 'काला पुरोहित' की कहानियों को पढ़कर हिंदी भाषी पाठक सहजता से जान सकते हैं. ये कहानियां शरद ऋतु के अंतिम दिनों की वायु जितनी ही पारदर्शी हैं, जिनमें जीवन के सच व सच को खोजने की कोशिश को अंतरंगता से महसूस किया जा सकता है.

चेखव की कहानियां आम जिंदगी के इतना अधिक करीब हैं व उससे इतना अधिक जुड़ाव स्थापित करती हैं कि किसी भी देश के किसी भी समाज में उनकी प्रासंगिकता पर कोई विशेष फर्क पड़ता नहीं दीखता. और शायद यही कारण रहा कि उनके जीवनकाल में ही यूरोप की इक्कीस भाषाओं में उनकी कहानियां अनुवादित हो चुकी थीं और आज वे पूरी दुनिया में पढ़े जाते हैं.

'काला पुरोहित' संग्रह के साथ एक खास बात यह है कि इसका अनुवाद हिंदी के वरिष्ठ कथाशिल्पी अमृतलाल नागर ने किया है. एक लंबी व छह छोटी कहानियों को नागरजी ने इस संग्रह में सम्मिलित किया है. हर कहानी अपने एक खास रंग में मौजूद है. एक मामूली घटना के माध्यम से एक बड़े उद्देश्य की पूर्ति कहानी में कैसे की जा सकती है चेखव इसे बखूबी जानते थे. संग्रह में सम्मिलित कहानी '**शिक्षा**' को पढ़कर इस बात को आसानी से समझा जा सकता है. शिक्षा तभी अधिक प्रभावी व आकर्षक हो सकती है जब उसका रूप ग्रहण करने वाले की रुचि व मनोभावों के अनुकूल हो, इस बात को उक्त कहानी में निहायत सादगी व रोचकता के साथ निरूपित किया गया है. पिता अपने पुत्र को जब एक बात उपदेश के रूप में समझाना चाहता है तो पुत्र उसे सुनना ही नहीं चाहता, किंतु वही बात कहानी के रूप में कहने पर वह उसे तुरंत ग्रहण कर लेता है. इसी तरह एक अन्य कहानी '**समस्या**' में कुछ चरित्रों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों का उकेरा जाना भी काफी प्रभावशाली है. इस कहानी को पढ़कर चेखव के शिल्प के इस पहलू पर भी गौर जाता है कि वे खुद कहानी में उपस्थित रहने की कोशिश करने के बजाय पात्रों के मनोभावों को उन्हीं के जरिये प्रदर्शित करवाकर उन्हें अधिक जीवंतता प्रदान करते हैं. '**बिल्ली के बच्चे**' कहानी में यह बात पुनः पुष्ट होती है. निहायत उम्दा कहानी है यह, जो चेखव की व्यापक जीवनदृष्टि को भी चिन्हित करती है.

'**दो घटनाएं**' नाम से चेखव की एक अन्य महान कहानी भी संग्रह में शामिल है. एक डाक्टर, जिसका बेटा इन्हीं क्षणों में मृत्यु का ग्रास बना है, के पास एक व्यक्ति आता है और उससे निवेदन करता है कि वह उसकी प्रेमिका को मौत के मुंह से बचाने के लिए उसके साथ चले. डाक्टर की मनःस्थिति अनुकूल न होने के बावजूद वह मनुष्यता की दुहाई तथा उस व्यक्ति के तमाम प्रयत्नों के फलस्वरूप अंततः उसके साथ जाता है. किंतु गंतव्य पर पहुंचने पर पता चलता है कि व्यक्ति की प्रेमिका उसे छोड़कर उसके ही एक परिचित के साथ चली गयी है. उसके बाद डाक्टर उस व्यक्ति को कोसता है कि उसने उसे उतनी दूर लाकर व्यर्थ ही परेशान किया. सामान्य मानवीय लक्षणों की उम्दा पहचान इस कहानी में लेखक ने की है.. चाहे आदर्शवाद के आईने में देखा जाये अथवा वैज्ञानिक तर्कों की कसौटी पर परखा जाये, किंतु परदुख के समक्ष निजी दुख ही अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध होता है. इस बात को लेखक ने सरलीकृत न करते हुए पूरी ऊंचाई पर जाकर पहचानने की कोशिश की है तथा बिना किसी संदेश अथवा उपदेश की भाषा में कहे एक विचार के रूप में पुष्ट किया है.

संग्रह की सबसे बड़ी कहानी '**काला पुरोहित**' एक दार्शनिक की कहानी है. आसपास के जीवन से निर्विकार अनादि सत्य की खोज में लीन, एकांगी जीवन जीते और खुद के अंतर्द्वंदों से जूझते हुए एक प्राणी की कहानी, जो अंत में एक निहायत एकाकी मौत का शिकार होता है. यह कहानी एक खास समुदाय के संदर्भ में समसामयिक कहानी है, जिसकी एक विशेषता यह है कि यह चेखव की अन्य कहानियों से अलग स्वभाव की कहानी है. कुछ महान बनने के इच्छुक लोगों की कहानी, जिनके लिए सत्य आसपास के जीवन में न होकर कहीं अमूर्तन में विद्यमान है. कहानी के नायक के ऐसे अलौकिक चिंतन से जन्य असहजता ही अंत में उसे नष्ट करती है.

चेखव की कहानियों के इस अनुवाद की एक विशेषता यह है कि अमृतलाल नागर ने इसमें अनुवाद के चलताऊ ढर्रे से बचने की खास कोशिश की है. मसलन शब्दों का चयन कुछ इस प्रकार किया गया है कि पात्रों के नामों के अलावा कुछ भी विदेशी-सा न लगे. किंतु अपने इस प्रयास के लिए नागरजी को भले ही कितना भी परिश्रम क्यों न किया हो लेकिन अपनी इस क्षेत्र में ख्याति के अनुरूप भाषागत् सहजता वे इन अनुवादों में नहीं ला पाये. मगर इसके बावजूद चेखव की कहानियों को पढ़ने का जो सुख है, वह इस संग्रह की कहानियों में ज्यों का त्यों बरकरार है. एकरसता कहीं छू भी नहीं पाती है. ☐

☐ संगम पांडेय

ओरछा में केशव जयंती समारोह

महाकवि केशव की जन्म स्थली ओरछा (टीकमगढ़) में पिछले 3 अप्रैल को केशव जयंती समारोह का आयोजन किया गया. समारोह का उद्घाटन पूर्व मुख्यमंत्री श्री कैलाश जोशी ने किया और अध्यक्षता कृषि एवं सहकारिता मंत्री लक्ष्मी नारायण शर्मा ने थी. खजुराहो क्षेत्र की सांसद कु. उभा भारती ने उपस्थित साहित्यकारों का स्वागत किया.

इस अवसर पर डा. राममूर्ति त्रिपाठी ने केशव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला. मुख्य अतिथि ने साहित्य का पांच सौ एक रुपये का केशव पुरस्कार डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी को उनके बुंदेली शब्द कोष के लिए तथा संगीत का इतनी ही राशि का राय प्रवीण पुरस्कार श्री पन्नालाल जैन को सितारवादन के लिये दिया.

☐ रामस्वरूप दीक्षित

'मिनखखोरी' की कहानियां

कहानी संग्रह : 'मिनखखोरी'
कथाकार : यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'
प्रकाशक : अरुण प्रकाशन, ए-47,
अमर कालोनी , लाजपत नगर,
नई दिल्ली-110 024 मूल्य : 40 रुपये

यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' लंबे समय से कथा लेखन करते चले आ रहे हैं. **'मिनखखोरी'** उनकी राजस्थानी कहानियों का संकलन है. चूंकि यहां अनुवाद का काम स्वयं कथाकार ने किया है इसलिए रचना और एक तरह से पुनर्रचना का, पठनीय आनंद एक साथ मिलता है. यह कहना ठीक नहीं होगा कि सभी कहानियां नारी चरित्रों को करीब से देखती हैं... पर अधिकांश ऐसी ही रचनाएं हैं जो औरत को उसके समूचेपन में समझने की नज़र देती हैं.

'गोमली' जैसी कहानी की औरत अपने पति को छोड़ विधुर प्रेमी की पत्नी बनने का निर्णय लेती है तो इसलिए कि उसका पति उसे 'वस्तु' समझ बैठा है.

यहां धांधू नाम का साईस गोमली से प्रेम जरूर करता है पर गोमली उसे सहज ही में स्वीकार नहीं कर लेती. अपने होने का एहसास बराबर उसके साथ बना रहता है. पर यही चीज **'सतलड़ा हार'** की केसरदे के व्यक्तित्व में नहीं है जिसे विनिमय की वस्तु समझ लिया गया है. सामंती परिवेश की गंध यहां भी मौजूद है पर कथाकार उसके टूटने की ओर भी संकेत करता दिखाई दे रहा है. इस कहानी का सामंत चरित्र ठाकुर भुजसिंह अपनी ही बेटी के बदले तीन विलायती पंखे लेकर समाज में अपनी इज्जत बढ़ी महसूस करता है. बाद में यही व्यक्ति अपनी पत्नी केसरदे को सतलड़े हार के बदले दे देता है. इस कहानी में गौरतलब चीज यह है कि बूढ़ी ठकुरानी को जैसे ही इस गलीज हरकत की जानकारी मिलती है, वह ठाकुर के पास आकर अपना विरोध प्रदर्शित करती है. यह विरोध सफल भले ही न रहा हो, पर इस बात की सूचना तो देता ही है कि औरत पर हो रहे हर तरह के अत्याचार को औरत मुंह सिये बरदाश्त ही नहीं करती चली जायेगी. जिस हार को लेकर ठाकुर फूला नहीं समाता उस पर बूढ़ी ठकुराइन थूकने की बात करती है. सामंती व्यवस्था के भरभराकर टूटने का संकेत कहानी के अंतिम अंश में आया जरूर है पर वह संकेत भर ही है... कहानी का अंग बन कर नहीं छा सका है. जब कि ठीक इसके विपरीत **'दीवारें ही दीवारें'** कहानी में औरत मानसिक तौर पर निर्णय के बहुत करीब पहुंचकर भी सिर्फ सोचकर रह जाती हैं. हां, उसे यह विश्वास जरूर है कि एक दिन, उसे घेर कर खड़ी तमाम दीवारें टूटेंगी अवश्य. उसे हर उस चीज से प्यार की चाह है जो स्वच्छंद है. कहानी का यह अंत इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह उस मानसिक तैयारी की ओर संकेत करता है जो सहज रूप में क्रमशः व्यवहार में बदलेगी. यहां भी औरत पुरुष के उसी सामंती रवैये के विरोध में खड़ी है जो उसे मनचाहे तौर पर इस्तेमाल करना चाहता है.

'एक और नगर में' की पत्नी एक खुशमिजाज औरत है... पर सैडिस्ट पति से निजात मिलने की कोई आशा उसे नहीं दिखती. विद्रोह की चिंगारी उसके भीतर फूटने को है.... पर यथार्थ इसके ठीक विपरीत है.... ऐसे में अपनी ओर से जबर्दस्ती उस पर कोई निर्णय न थोपकर कहानीकार न बड़ा काम किया है.

शीर्षक कहानी **'मिनखखोरी'** एक ऐसी औरत से परिचित कराती है जो हवा और धूप बनकर जीना चाहती है. उसे मरद जात के उस व्यवहार से सख्त घृणा है जो औरत को महज नफे के तौर पर इस्तेमाल करने का रास्ता खोलता है. दरअसल, यह औरत जीवन में समर्पण को विशेष महत्व देती है. वह स्वयं तो प्रेमी के प्रति समर्पिता है ही, उससे भी उसी रूप में समर्पण चाहती है. पर प्रेमी उसकी इस स्थिति में अतिरेक के दर्शक करता है... यही वजह है कि वह घबरा भी उठता है. इस कहानी में औरत अपने आप में स्पष्ट है—न वह झूठ बोलती है, न सतियों का स्वांग रचती है. वह जानती है कि लोगों के बीच उसे जरूर छिनाल माना जाता है.... पर अपने हिये के बीच वह सती है. वह निधड़क साफगोई में यकीन करती है.

कुछ कहानियां संग्रह में महज दृश्य संयोजन करती दीखती हैं.... पर कुछ प्रतीक कथा की तर्ज पर (**'आखिरी पुतली'**) इस बड़े सच को रेखांकित भी करती हैं कि बिना बहुमत के सिंहासन पर कोई नहीं बैठ सकता. **'खोल'** इस संग्रह की ध्यान आकर्षित करने वाली कहानी है. जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूति करने की गर्ज से हिप्पी जीवन-शैली में एक दिन गुजारने के लिए घर से निकले युवक की कहानी है- 'खोल'. बेहद सहज अंदाज में प्रभावित करने वाली यह कहानी इस सच को गहराई से रेखांकित करती है कि संस्कृति ओढ़ लेने की चीज नहीं है.

यादवेंद्र शर्मा चंद्र के पास वह शक्ति तो है ही कि कहानी पाठक को बांधकर रख ले... पर शायद यही कारण है कि उनसे अपेक्षाएं भी बढ़ जाती हैं कथा-जगत की. बौद्धिक बोझिलता से एकदम अलग हटकर उनकी कहानियां यदि अपना विशेष प्रभाव बना सकी हैं, तो यह उनके कहानीकार की सहजता का प्रमाण है. पर साथ ही वे कहीं-कहीं सतह पर चलते भी दीखते हैं... जिससे कहानियों की एकरेखीयता के बढ़ने का खतरा रहता है. **'बदलते संबंध'** और **'ग्रहण करती दृष्टि'** इसी तरह की ही कहानियां हैं. बावजूद इसके, यह भी सच है कि यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' के पास विराट अनुभव संपदा है और अभिव्यक्ति के अलग-अलग अंदाज भी.

संभवामि युगे युगे
गोकुल मथुरा द्वारिका
यानी महाभारत के कथा नायक युग पुरुष
कृष्ण के जीवन, दर्शन और कर्म की
जीवन्त प्रस्तुति

गुजराती के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यासकार
रघुवीर चौधरी का बहुचर्चित उपन्यास
गोकुल मथुरा द्वारिका अब हिंदी में भी उपलब्ध
'राधाकृष्ण' का गौरवशाली प्रकाशन

ऐतिहासिक, अविस्मरणीय, संग्रहणीय

आकर्षक छपाई, मजबूत जिल्द
डिमाई आकार में लगभग 800 पृष्ठ
मूल्य : 250 रुपये

विशेष छूट

30 जून 1990 तक मात्र 150 रुपये भेज कर
यह उपन्यास रजिस्टर्ड डाक द्वारा
घर बैठे प्राप्त करें.
यानी डाक खर्च भी हम देंगे.

राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.
2/38 अंसारी रोड, दरियागंज,
नयी दिल्ली-110002

जहरीले नश्तर की याद

□ अलका पांडे

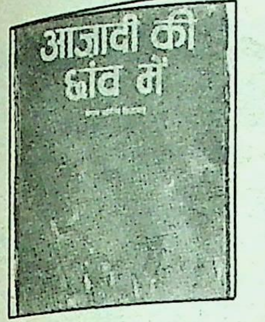

'आजादी की छांव में' : बेगम अनीस किदवाई
हिंदी अनुवाद : नूरनबी अब्बासी
प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली.
मूल्य : पैंतीस रुपये.

'आजादी की छांव में' बेगम अनीस किदवाई की एक ऐसी कृति है जो लंबे रिपोर्ताज की शक्ल में समूचे समय को एक जिम्मेदार नजर से प्रस्तुत करती है. इस रूप में यह उस इतिहास लेखन के करीब भी है कि जिसे पढ़कर समय की तस्वीर आंखों के सामने हू-ब-हू खिंच आती हैं. सन् 1947 के शुरुआती दौर से ही दंगों की खबर के जिक्र से शुरू होने वाली यह किताब दरअसल इतनी पठनीय और प्रभाव पूर्ण है कि पढ़नेवाला घटनाओं के जाल में बंधा महज पढ़ता ही नहीं चला जाता... बल्कि ठहरकर उन सूत्रों के बारे में भी सोचने को विवश हो जाता है जो इंसानियत को बरबाद करके रख देने के लिए भारत की धरती पर जड़ें जमा रहे थे. यह वह समय था जब आजादी हासिल होने को थी, हासिल हुई भी... पर कैसा रहा होगा वह मंजर जब लोगों को जबरन खुश होने की कोशिश करनी पड़ी होगी! आजादी के तुरंत बाद ही, एक पखवाड़े के भीतर हुए दिल्ली के दंगे, शफी अहमद किदवाई (जो तब मसूरी में थे) की शहादत, गांधीजी के हुजूर में और मुस्लिम पनाह गुजीनों के कैंपों की आंखों देखी खबर देते हुए लेखिका जिस तरह उस वक्त की अव्यवस्थित व्यवस्था का जिक्र करती हैं उससे यह जाहिर हो जाता है कि आजादी की खुशी की छांव में किस तरह, कितनों की खुशियां दम भी तोड़ रही थीं. लावारिस बच्चों का जिक्र हो या कब्रिस्तानी माहौल में कव्वाल की अदा, भाईचारा कायम करने के लिए समझदारों द्वारा किये गये प्रयत्न हों या भगायी गयी लड़कियों की दास्तान, राजनीतिक उठा-पटक और पैंतरेबाजी हो या अफवाहों का बाजार, काम करनेवालों की मुश्किलें हों या 'ऊ खेशतन गुमस्त कि रा रहबरी कुनद' (यानी जब खुद ही गुमराह हो गये तो दूसरों को भला क्या दिखायेंगे राह) की स्थिति... बेगम अनीस किदवाई की कलम का कमाल ही है कि दम साधे पाठक किताब के सफों के साथ बढ़ा चला जाता है. हिंदी के पाठकों को नूर नबी अब्बासी साहब का शुक्रिया अदा करना चाहिए कि इतनी मेहनत और संलग्नता से इस किताब का अनुवाद उन्होंने किया. मौजूदा हालात को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि नेशनल बुक ट्रस्ट ने इस किताब का प्रकाशन बहुत जरूरी समय पर किया है. यह किताब हमें न केवल निकट अतीत से जोड़ती है... बल्कि हमारी उन ऐतिहासिक भूलों को भी बेनकाब करती है... जिनके चलते देश कई दशक पीछे चला गया था. स्थितियां आज फिर वही हैं... क्यों न हम इस किताब के चीखते शब्दों की आवाज सुनें! □

नंबर दो का दिल

गोपाल शेखरन
नम्बर दो का दिल

नंबर दो का दिल : गोपाल शेखरन
प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन
मूल्य : पचास रुपये

उपन्यास का कथानक ऐसे व्यक्ति के पतन का है जो जिंदगी के शुरूआती दौर में आदर्शवादी रहा है. नायक, विशाल, महत्वाकांक्षी है, लेकिन उसके पास न तो असाधारण प्रतिभा है और न ही धन जिससे वह अपना मनोवांछित पा सके. कुछ भी न पा सकने की हीन भावना भ्रष्ट समाज में उसे नैतिक पतन के मार्ग पर उस समय धकेल देती है जब वह संयोगवश बिक्री कर इंसपेक्टर बन जाता है. इसके बाद शुरू होता है झूठ, फरेब, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, चापलूसी का वह सिलसिला जिसमें विशाल पैसा कमाने की मशीन बन जाता है. वह पुत्र है न पति, भाई है न दोस्त है... महज बिक्री कर इंसपेक्टर है. सारे मानवीय संबंधों को वह पैसे से ही तौलता है. इस चक्र के चलते कभी उसकी आत्मा धिक्कारती भी है तो उसकी आवाज़ सफलताओं की गड़गड़ाहट में दब जाती है. नंबर दो का पैसा उसके दिल और दिमाग दोनों को पंगु बना देता है.

'नंबर दो का दिल' का कथानक भ्रष्टाचार और अय्याशी से घिरे हुए नायक के आसपास घूमता है. आदमी के पतन का निकृष्टतम रूप लेखक ने इसमें दिखाया है. किसी व्यक्ति के अंदर से नैतिक मूल्यों का क्रमशः समाप्त होते चले जाना सिर्फ उसी व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि सारे समाज के लिए खतरनाक है. उपन्यास में यही ध्वनित होता है कि इसके लिए पूरा समाज, अर्थ व्यवस्था शासन तंत्र सभी कछ जिम्मेदार है. लेखक ने व्यक्ति और समाज के अंदर खत्म होती हुई मानवीयता की ओर इशारा किया है. उपन्यास पढ़ते हुए बेचैनी-सी बनी रहती है. व्यक्ति और समाज के अधःपतन का जैसे का तैसा चित्रण सीधी-सपाट शैली में है अतः रोचकता नहीं रह पाती. सामाजिक आदर्शों के ढकोसलों का जो चित्रण उसमें है इसमें अपनी शक्ल तो दिखायी पड़ती है, किंतु साथ ही उपन्यास के अंत तक मानसिक असुरक्षा हर समय घेरे रहती है. उपन्यास में उस संघर्ष के लिए कतई प्रेरणा नहीं मिलती जो विषम परिस्थितियों में जूझने का साहस दे और जीवन मूल्यों को बचाने के लिए मनोबल भी दे. घटनाओं का यथातथ्य विवरण एवं एकरसता उपन्यास को ज्यादा प्रभावी नहीं बनने देते. प्रारंभ में कथानक और अलग-अलग चरित्रों की आवाजाही बांधे रखती है पर बाद में जल्दी-जल्दी एक के बाद एक दृश्य बदलने से नाटकीयता अधिक आ गयी है. भ्रष्टाचार के हथकंडों की सजीव प्रस्तुति यहां है. विशाल और आरती के प्रेम प्रसंग भी चुटीलेपन के कारण रोचक हैं. उपन्यास में दो प्रमुख नारी चरित्र हैं—नायक विशाल की पत्नी आरती और विशाल से आर्थिक और शारीरिक संबंध रखने वाली विधवा औरत पम्मी. दोनों चरित्र विशाल के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं. अंत में पत्नी आरती के महान त्याग के बावजूद दोनों सशक्त नहीं बन पाए. इस सबके बाद भी उपन्यास आज की दुनिया से निकला हुआ है इसीलिए हमें अपने आसपास आंख खोलकर देखने और खुले दिमाग से सोचने के लिए आगाह तो करता ही है. □

शब्दों के अर्थ को आप पहुंचाना कहां तक चाहते हैं?

'लेखकीय स्वतंत्रता पर मीडिया के दबाव' विषय को केंद्र में रखते हुए **'साहित्यिकी'** के तत्वावधान में एक दिवसीय विचार संगोष्ठी प्रबुद्ध वक्ताओं व उत्साही श्रोताओं की उपस्थिति के कारण चर्चा का विषय बनी रही. दो सत्रों में विभाजित यह संगोष्ठी, पहले सत्र से ही, विचारोत्तेजक चर्चा के साथ आगे बढ़ी. **डा. रणवीर रांग्रा** के स्वागत भाषण के बाद **डा. मोतीलाल जोतवाणी** व **चित्रा मुद्गल** ने आलेख पाठ किया. मोतीलाल जोतवाणी का कहना था कि जो लेखक दबाव में न आकर स्वतंत्र लेखन करते हैं, उन्हें फर्क नहीं पड़ता. दबाव को महसूस करते हुए भी वे उसके प्रभाव से अपने को बचा ले जाते हैं. रास्ता यह लंबा सही, पर है सही रास्ता. चित्रा मुद्गल का आलेख दृश्य माध्यमों से उत्पन्न खतरे को रेखांकित कर रहा था. प्रकाशन माध्यम में तो विकल्प हैं भी पर दृश्य माध्यम ऐसी छूट नहीं देता. क्या अपने शोषण के विरोध में हिंदी के लेखक एकजुट हुए हैं? जो अपने प्रति हो रहे शोषण का विरोध नहीं कर सकते वे जन-मानस के शोषण के विरुद्ध क्या आवाज उठाएंगे!

विषय प्रवर्तन करते हुए **जोगिंदर पॉल** ने कहा लिखने वाला वही लिखता है जिसे समाज डिजर्व करता है. कहानी तो संघर्ष से ही बनती है, यदि क्राइसिस है ही नहीं तो लिखना क्या! अखबारों में साहित्य को 'फिलर' बतौर इस्तेमाल किये जाने का उन्होंने विरोध किया. **डा. नरेंद्र कोहली** ने स्पष्टतः कहा कि खतरा मीडिया से नहीं, उसमें काम कर रहे अक्षम लोगों से है. प्रचार प्रसार से अलग रहकर साहित्यकार को सृजनरत रहना चाहिए. स्वतंत्र यदि रहना चाहता है लेखक, तो उसे मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा. **हिमांशु जोशी** ने इस बात पर जोर दिया कि मीडिया चूंकि सार्वजनिक होता है अतः उसे व्यक्ति हित में काम करना चाहिए. शॉर्टकट संस्कृति से साहित्य का अवमूल्यन होता है. इतना समर्थ हमने स्वयं को नहीं बनाया कि हम अपनी शर्तों पर जी सकें. **डा. कमल किशोर गोयनका, कांति चंद्र सौनरिक्सा** और **पद्मा सचदेव** ने भी अपने विचार व्यक्त किये.

सत्र के अध्यक्ष **डा. रामदरश मिश्र** ने दूरदर्शन को प्रभावी माध्यम बताया. पत्र-पत्रिकाओं के साथ लेखक का पूरा सरोकार बताते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि इस रूप में तो लेखक स्वतंत्र है ही कि वह अपनी रचना दृश्य या श्रव्य माध्यम के दे या न दे. अतः वह दबावमुक्त है.

भोजनोपरांत दूसरा सत्र प्रारंभ हुआ **डा. मस्तराम कपूर** के आलेख से. लेखकीय स्वतंत्रता के वर्तमान अर्थ को प्राचीन काल की अवधारणा से अलग स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सतत यातना को सहना हर किसी के वश का नहीं होता. लेखक, चिंतक व कलाकार की भूमिका के महत्व को रेखांकित करते हुए डा. कपूर ने रेडियो, टी.वी. व फिल्म के साहित्य का माध्यम न होने की बात सामने रखी. उनका कहना था, साहित्य लिखित शब्द का माध्यम है. बाजारू संस्कृति में साहित्यकार अपनी अस्मिता की रक्षा कैसे करेगा! दूसरा आलेख **मनमोहन चड्ढा** का था. उनका कहना था कि पिछले कुछ वर्षों में रचनात्मक लेखन पर टेलीविजन का दबाव बढ़ता ही जा रहा है. उन्होंने दृश्य श्रव्य माध्यमों के भीतरी अंतर को समझने की जरूरत पर भी बल दिया. महत्वपूर्ण बात उन्होंने यह सामने रखी कि हिंदी का रचनात्मक लेखन तभी जीवित रह सकता है जब विश्व के रचनात्मक लेखन के पैमाने पर खुद को तोलता रहे. एक संपूर्ण रचनात्मक विधा को घटिया करार दे देने वाले रवैये की भी उन्होंने निंदा की. विधा विशेष को अछूत या अपने स्तर से नीचा मानकर चलने का भी विरोध करते हुए उनका कहना था कि इससे हम समाज से कटते चले जायेंगे. विषय प्रवर्तन करते हुए **सुधीश पचौरी** ने मीडिया को सामाजिक प्रक्रिया के पर्याय के तौर पर समझने को कहा. उनका कहना था कि संस्कृति की कोई भी बातचीत माध्यम से कटकर नहीं की जा सकती. आप इस मीडिया को पुराने ढंग से नहीं भरमा सकते. **चिरंजीत** ने कहा कि कौन लेखक है जिसकी स्वतंत्रता पर चोट हो रही है! 'दूरदर्शन को तीसरी दुनिया पर थोपा गया है' कहना भी सही नहीं है.

ब्रजेश्वर मदान ने इस खतरे की ओर संकेत किया कि मीडिया का पूर्ण स्वीकार कहीं उपभोक्तावाद का स्वीकार तो नहीं है! फोक कल्चर पर टेक्नोलॉजी के दबाव को भी उन्होंने स्पष्ट किया. लेखक की स्वतंत्रता को अलग से देख पाने में उन्होंने असमर्थता जाहिर की. वे इस बात पर जोर दे रहे थे कि दूरदर्शन से डरने की जरूरत नहीं है. प्रदीप पंत ने लेखक के लिए प्रिंट मीडिया को सबसे बड़ा मीडिया बताते हुए कहा कि लेखकीय स्वतंत्रता का हनन भी वहीं ज्यादा होता है.

वक्ताओं के वक्तव्यों का गंभीर व संक्षिप्त सार प्रस्तुत करते हुए संगोष्ठी के संचालक **सुरेश उनियाल** ने अंत में दूसरे सत्र के अध्यक्ष कमलेश्वर को आमंत्रित किया.

कमलेश्वर ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भाषा को समझने की सलाह देने के साथ-साथ ही कहा कि लेखक चाहे तो वह किताबों के कब्रिस्तान में दफन हो सकता है. साहित्य में बौद्धिकता के बढ़ाव को उन्होंने गलत और अहितकर बताया. उनका कहना था कि इस तंत्र में लड़ाई शब्दों की नहीं है... सवाल यह है कि आप शब्दों के अर्थ को कहां तक पहुंचाना चाहते हैं. क्या आपने लिखने की आजादी अब तक और की है... माध्यम का इस्तेमाल हम करना नहीं चाहते... सीखना नहीं चाहते... यह माध्यम आपके लिए रुकेंगे नहीं! आते हुए औद्योगिकरण को एक जागरूक लेखक के रूप में हमें समन्वित करना होगा. अभी ये माध्यम क्रियेटिव नहीं हैं. उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि दूरदर्शन को शब्दों के इस्तेमाल की तमीज लेखक ही देंगे.

साहित्यिकी
संगोष्ठी
लेखकीय स्वतंत्रता पर मीडिया का दबाव

लघुकथा लेखक समीक्षक सम्मेलन

बिहार की राजधानी पटना से लगभग चालीस कि.मी. पूरब स्थित रा.उ. विद्यालय, फतुहा (पटना) के प्रांगण में 13 एवं 14 अप्रैल, 1990 को महान कथाशिल्पी अमृत लाल नागर को समर्पित तृतीय 'अ.भा. लघुकथा लेखक-समीक्षक सम्मेलन 1990' का भव्य आयोजन किया गया.

सम्मेलन का उद्घाटन 'सारिका' के संपादक अवधनारायण मुद्गल द्वारा दीप जलाकर संपन्न हुआ. इस अवसर पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए अवध नारायण मुद्गल ने कहा, ''वर्तमान में लघुकथा का कोई प्रवक्ता नहीं है, यही कारण है कि लघुकथा एक लंबी यात्रा तय करने के पश्चात् भी हाशिये पर जी रही है. आगे उन्होंने कहा कि मैं 'सारिका' के द्वारा इस विधा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास कर रहा हूं. पहले भी 'सारिका' में लघुकथाएं प्रकाशित होती रही हैं, जब कमलेश्वरजी इसके संपादक थे.

उद्घाटन के पश्चात् श्री मुद्गल द्वारा लघुकथा संबंधी कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकों का विमोचन किया गया. विमोचन के बाद अ.भा. प्रगतिशील लघुकथा मंच के महासचिव डा. पुष्करणा ने अपने स्वागत भाषण में कहा, ''हमारा प्रयास व्यर्थ के विवादों को जन्म देना नहीं, बल्कि व्यर्थ के विवादों को मिल-बैठकर सार्थक विचारों के आदान-प्रदान द्वारा समाप्त करके लघुकथा को एक सही दिशा देना है.''

इस सत्र में जहां मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथि पद की जिम्मेवारी को क्रमशः डा. कमल किशोर गोयनका एवं जिया लाल आर्य तथा प्रो. निशांतकेतु ने निभायी, वहीं अध्यक्ष पद को सुशोभित किया डा. भगवतीशरण मिश्र ने. धन्यवाद ज्ञापन किया बाबूनंद प्रसाद ने और संचालन से विमुग्ध किया युवा कवि-कथाकार शिवनारायण ने.

द्वितीय सत्र की शुरुआत में डा. पुष्करणा ने 'हिंदी लघुकथा की रचना-प्रक्रिया' विषयक आलेख पढ़ा. पढ़े गये आलेख पर देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आये हुए प्रतिनिधि विद्वानों ने अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की तथा मुद्दों पर सहमति-असहमति भी व्यक्त की. इस सत्र के मुख्य अतिथि एवं विशिष्ट अतिथि पद को गौरवान्वित किया सर्वश्री राजकुमार निजात एवं डा. स्वर्ण किरण ने. अध्यक्ष पद की गरिमा को बढ़ाया शिवेंद्र नारायण (सम्पादक 'ज्योत्स्ना') ने. अपने अध्यक्षीय भाषण में शिवेंद्र नारायण ने कहा, ''जब कोई विधा साहित्य की मुख्य धारा से जुड़ने की प्रक्रिया में होती है तो ऐसे समय में सम्मेलनों का महत्वपूर्ण योगदान हुआ करता है.'' इस सत्र का संचालन युवा आलोचक निशांतर ने किया और धन्यवाद ज्ञापन बांके दास ने.

तृतीय सत्र में प्रतिष्ठित एवं नवोदित लेखकों ने अपनी-अपनी प्रतिनिधि लघुकथाओं से श्रोताओं को बेहद प्रभावित किया. इस सत्र का संचालन युवा कथाकार रामयतन प्रसाद यादव ने किया तथा पढ़ी गयी लघुकथाओं पर समीक्षात्मक टिप्पणी प्रस्तुत की डा. स्वर्ण किरण ने. सम्मलेन के चतुर्थ सत्र में युवा आलोचक निशांतर ने 'समकालीन लघुकथा की प्रवृत्तियां' शीर्षक आलेख पढ़ा. पठित आलेख पर जमकर बहस हुई जिसमें अनेक रचनाधर्मियों एवं समीक्षकों ने हिस्सा लिया. इस सत्र में मुख्य वक्ता का दायित्व डा. स्वर्ण किरण ने पूरा किया. किंतु महेंद्र जायसवाल के विचारों ने श्रोताओं को बेहद प्रभावित किया. इस सत्र के अध्यक्ष प्रो. निशांतकेतु ने ऐतिहासिक महत्व के अपने भाषण में बहुत ही विद्वता व शालीनता से मुख्य वक्ता डा. स्वर्ण किरण द्वारा लघुकथा में स्थापित मान्यताओं की नींव को जड़ से हिलाकर रख दिया. इस सत्र का सफल संचालन डा. पुष्करणा ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन की औपचारिकता का निर्वाह करते हुए डी.के. राय ने कहा, ''लघुकथा की रचना प्रक्रिया, उसकी प्रवृत्तियां तथा अन्य अनेक शास्त्रीय पहलुओं पर आज प्रोफेसर निशांतकेतुजी ने जो विचार व्यक्त किये हैं उससे निसंदेह रचनाधार्मियों की काफी लाभ होगा.''

इस सत्र की समाप्ति के तुरंत बाद पंचम सत्र की शुरुआत हुई जिसमें डा. सतीशराज पुष्करणा के संपादन में प्रकाशित वृहद लघुकथा संकलन 'कथादेश' की लघुकथाओं पर खुलकर चर्चा हुई. इस सत्र के मुख्य वक्ता राधिकारमण अभिलाषीजी ने कहा, ''कथादेश एक मानक लघुकथा ग्रंथ है. इसके अध्ययन से निश्चय ही रचनाधार्मियों को काफी लाभ पहुंचेगा.'' पंचम सत्र का संचालन निशांतर ने तथा धन्यवाद ज्ञापन डा. ए.के. सुमन ने किया.

इस भव्य सम्मेलन का समापन सत्र रात्रि के आठ बजे से प्रारंभ होकर एक बजे तक चला. इस सत्र में पूर्णियां के ख्यातिलब्ध हास्य कवि डा. परमेश्वर गोयल की अध्यक्षता में एक भव्य कवि सम्मेलन हुआ जिसमें इस सत्र के उद्घाटन कर्त्ता डा. तेजनारायण कुशवाहा तथा भागलपुर के ही महेंद्र जायसवाल, सुनिल कौशिक, अनिरूद्ध प्रसाद विमल, विक्रमादित्य विहंगम, पाकुड़ के इ. केदारनाथ, मुंगेर की श्रीमती सुशीला सितारिया, पाकुड़ की श्रीमती आशा किस्कू एवं अर्जून मंडल अनुरागी, सिरसा के राजकुमार निजात, चुनार के रामदुलार सिंह 'पराया' पटना के सिद्धेश्वर, निशांतर एवं डा. पुष्करणा तथा जमालपुर के विनोद कुमार आदि ने अपनी कविताओं, गजलों और गीतों की सरस फुहार से श्रोताओं के मन को सराबोर कर दिया. इस सत्र का संचालन युवा शायर कासिम खुरशीद ने किया. अंत में धन्यवाद ज्ञापन तृतीय अखिल भा. लघुकथा लेखक समीक्षक सम्मेलन 1990 के संयोजक रामयतन प्रसाद यादव ने किया. छः सत्रों में विभक्त इस सम्मेलन में राजकुमार चौधरी के सौजन्य से 'लघुकथा पोस्टर प्रदर्शनी' और अयन प्रकाशन द्वारा 'पुस्तक प्रदर्शनी' का आयोजन भी किया गया. □

□ रामयतन प्रसाद यादव

कहानी की दशा-दिशा

□ कृष्ण कुमार

राजस्थान की प्रमुख साहित्यिक संस्था भारतेंदु समिति (कोटा) की ओर से बिहार के चर्चित हिंदी कथाकार रामधारी सिंह दिवाकर का सम्मान किया गया. इस अवसर पर 'समकालीन हिंदी कहानी की दशा-दिशा' विषय पर विचार गोष्ठी आयोजित की गयी. विषय प्रवर्तन समिति के साहित्य मंत्री प्रुरुषोत्तम पंजोली ने किया. परिचर्चा को आगे बढ़ाते हुए प्रो. कृष्ण कुमार ने समकालीन हिंदी कहानी की इस विडंबना की ओर संकेत किया जिसमें दो-चार कहानियां लिखकर नये लेखक स्वयं को स्थापित मानने लगते हैं. दलगत राजनीतिक दृष्टि को उन्होंने साहित्य मात्र के लिए घातक बताया. स्थानीय कवि व आलोचक महेंद्र नेह ने किंचित प्रतिवाद करते हुए कहा कि बिना स्पष्ट दृष्टि और तत्ववादी चिंतन के अच्छी कहानियां लिखी ही नहीं जा सकतीं. कहानी का कंटेंट यदि राजनीतिक है तो कहानीकार की राजनीतिक विचारधारा का होना भी आवश्यक है. लगभग आधे दर्जन अन्य वक्ताओं ने रचना और विचारधारा पर अपने-अपने विचार व्यक्त किए. ऐसा लगा, जैसे समकालीन हिंदी कहानी की दशा-दिशा पर आधारित 'विचार गोष्ठी' हिंदी कहानी और राजनीतिक विचारधारा पर केंद्रित हो गयी.

मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए समकालीन हिंदी कथा के ख्याति प्राप्त हस्ताक्षर रामधारी सिंह दिवाकर ने समकालीन हिंदी कहानी की प्रवृत्तियों पर विस्तार से चर्चा की. गुलशननंदावादी प्रवृत्ति को उन्होंने व्यावसायिक प्रवृत्ति बताया और कहा कि यह प्रवृति फार्मूलावादी गौणधारा है. लाल कहानियों की समाप्त प्राय प्रवृति के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने ऐसी कहानियों मे जीवनाकांक्षा की दहकती आग को स्वीकार किया. इस संदर्भ में उन्होंने काफ्का, सार्त्र और खासतौर से लैटिन अमरीकी लेखक मार्क्वेज के प्रभाव से लिखी जानेवाली जादुई यथार्थवाद की कहानियों की चर्चा करते हुए प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' और क़िस्फेट कहानियों की विशेष रूप से चर्चा की और कहा कि लगभग तमाम कथारूपों की कहानियां लिखनेवाले प्रेमचंद ने कहीं भी अपने को जादुई यथार्थवाद का लेखक नहीं कहा.

जनसंघर्षों से जुड़ी समकालीन हिंदी कहानी की वामपंथी धाराओं-उपधाराओं के विभाजन को दिवाकर ने दलगत विभाजन से दूर रखने पर जोड़ दिया. समकालीन यथार्थ के प्रवक्ता और कलाकार को और कलाकार को युग यथार्थ का प्रवक्ता होना चाहिए. कोटा के ऐतिहासिक चंबल उद्यान में आयोजित उक्त संगोष्ठी में अध्यक्ष पद पर बोलते हुए डा. प्रेमचंद वर्गीय ने शाश्वत मानव मूल्यों और यथार्थ वादी युग सत्य के बीच संतुलन बनाए रखने पर जोर दिया □

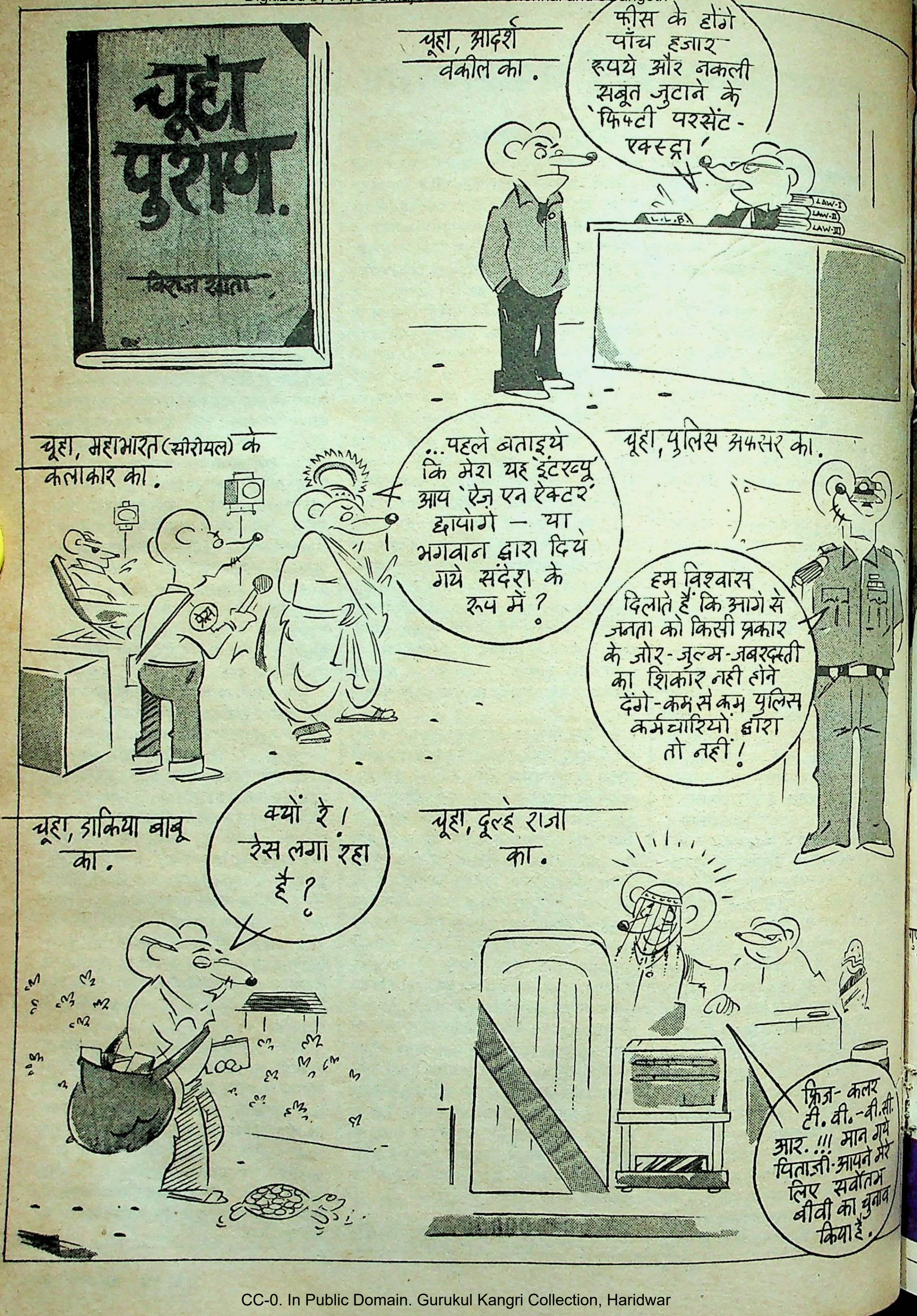
चूहा पुराण.
किरण खाता
चूहा, आदर्श वकील का.
फीस के होंगे पाँच हजार रुपये और नकली सबूत जुटाने के 'फिफ्टी परसेंट-एक्स्ट्रा'
L.L.B.
LAW-I
LAW-II
LAW-III
चूहा, महाभारत (सीरीयल) के कलाकार का.
...पहले बताइये कि मेरा यह इंटरव्यू आप 'ऐज़ एन ऐक्टर' छापोगे – या भगवान द्वारा दिये गये संदेश के रूप में ?
चूहा, पुलिस अफसर का.
हम विश्वास दिलाते हैं कि आगे से जनता को किसी प्रकार के जोर-जुल्म-जबरदस्ती का शिकार नही होने देंगे-कम से कम पुलिस कर्मचारियों द्वारा तो नहीं!
चूहा, डाकिया बाबू का.
क्यों रे! रेस लगा रहा है ?
चूहा, दूल्हे राजा का.
फ्रिज-कलर टी.वी.-वी.सी.आर.!!! मान गये पिताजी-आपने मेरे लिए सर्वोत्तम बीवी का चुनाव किया है.

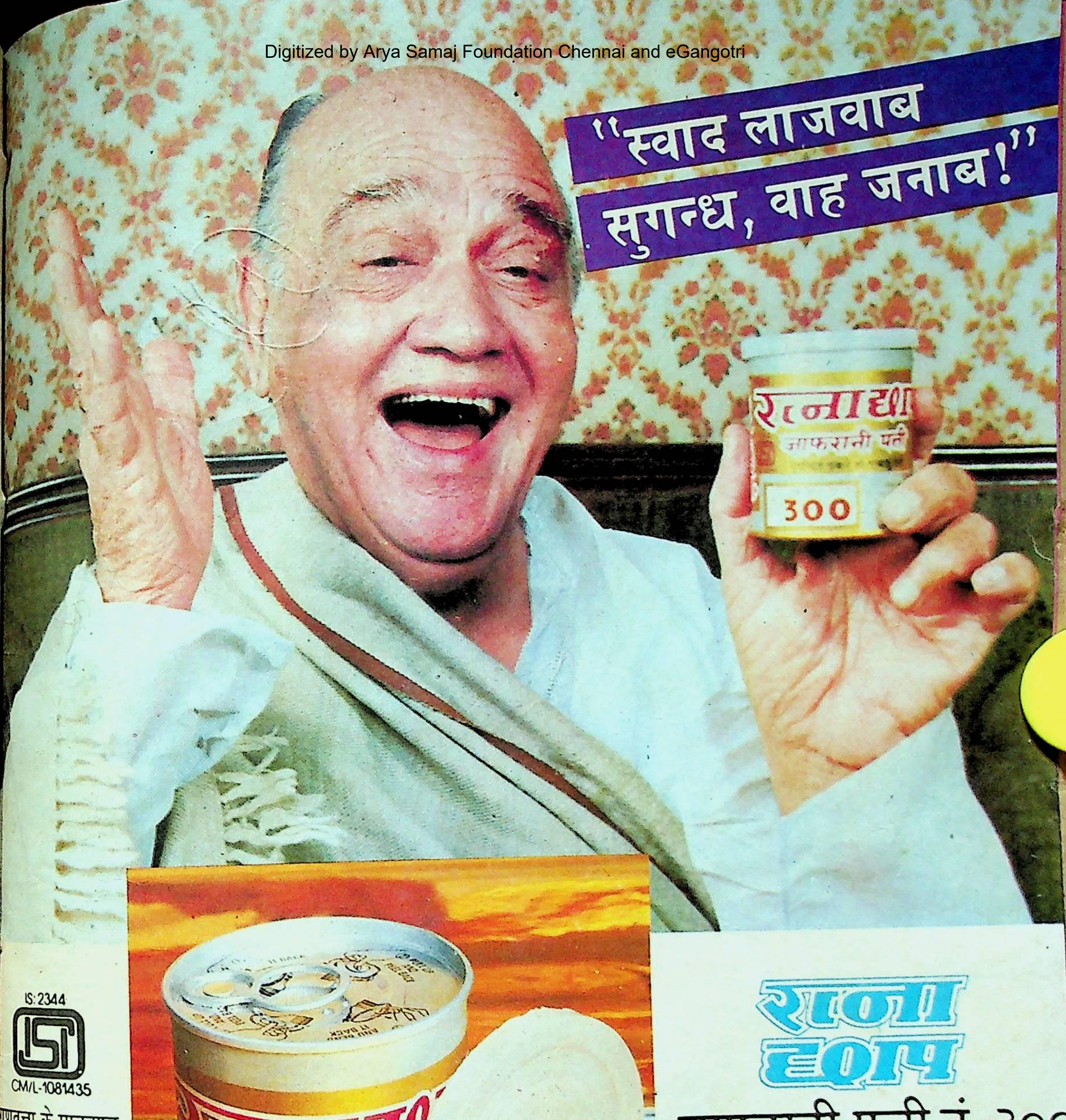
"स्वाद लाजवाब
सुगन्ध, वाह जनाब!"
रत्ना छाप
ज़ाफरानी पत्ती
300
रत्ना छाप
ज़ाफरानी पत्ती
सुगन्धित चबाने की तम्बाकू
शुद्ध वज़न 50 ग्राम
300

IS:2344
ISI
CM/L-1081435

गुणवत्ता के मानदण्ड
पर एकदम खरा
ज़ाफ़रानी जर्दा

रत्ना छाप

जाफरानी पत्ती नं:-300

TRADE MARK
REGD. NO. 295532

प्रभात ज़र्दा उत्पादन

अब नई शानदार पैकिंग में

वैधानिक चेतावनी : तम्बाकू चबाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है

बैनेट कोलमैन एंड क. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेश चंद्र [illegible] कार्यालय [illegible] नौरोजी रोड, बम्बई-400001. शाखाएं. 7 बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139 आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7 ए. एस.एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014; एस.एंड.बी. टावर्स, 88, महात्मा गांधी रोड, बंगलोर-560001; 8-9 अनुपम चैम्बर्स, टोंक रोड, जयपुर- 302004.

शुल्क के बिना डाक में डालने
अनुमति सं. U-89

RNI No. 6254/60

Regn. No. KRN/BG
RJ 2954

11/6/90

17/6/90

524
22-3-91

चुटकी में मस्ती
Chutki
अब जर्दा पान मसाला में भी उपलब्ध।
Chutki
Chutki
Chutki
Chutki

चुटकी
पान मसाला

प्यार के रिश्तों में एक अनोखी ताज़गी और मीठी-मीठी महक लाता है। हर मौके, हर महफिल में रंग जमाता है । सौंफ छुआरा और इलायची वाला चुटकी पान मसाला

वैधानिक चेतावनी: जर्दा चबाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

नवभारत टाइम्स प्रकाशन

जुलाई, १९९० मूल्य : दस रुपये

सारिका

इस बार

- गोविंद मिश्र
- यासुनारी कावाबाता
- शशिप्रभा शास्त्री
- अभिमन्यु अनत
- रामदरश मिश्र
- प्रदीप पंत
- सुदर्शन नारंग
- गौरीशंकर कपूर
- दानिश और प्रबोध जोशी

आदि की रचनाएं.

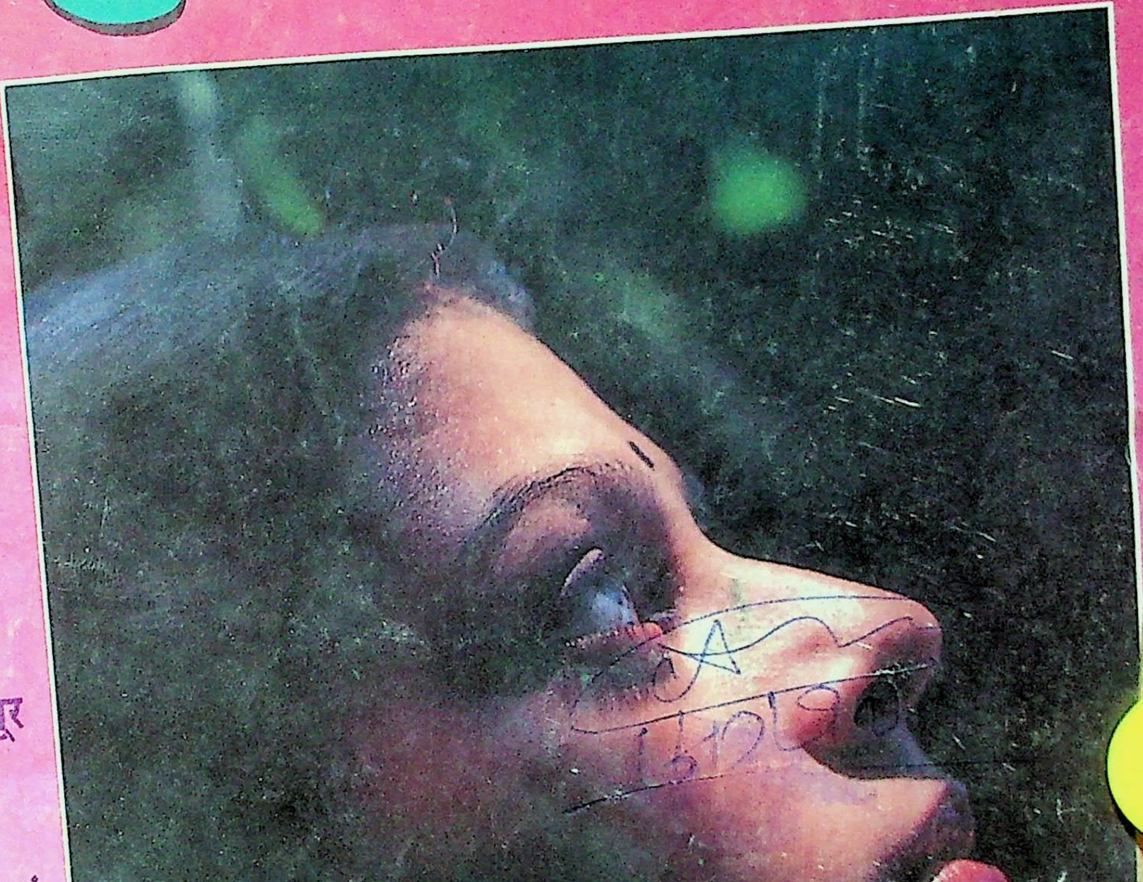

- कुसुम चतुर्वेदी की उपन्यासिका

पड़ाव

हमारे उत्कृष्ट उत्पादन

भोला छाप
ज़ाफरानी पत्ती
खाने का खुशबूदार तम्बाकू
सुगंध स्वाद व ताजगी के लिए
केसरवानी जर्दा भण्डार
पो. सहसों. जि. इलाहाबाद
Bhola
SPECIAL
ZAFRANI PATTI
भोला
स्पेशल
जाफरानी पत्ती
उत्तम
सुगन्धित
तम्बाकू
SAHSON DIST. ALLAHABA

प्रस्तुतकर्ता
भोलानाथ केसरवानी

Bhola
Zafrani Zarda
भोला
जाफरानी ज़र्दा
325
उत्तम सुगन्धित
तम्बाकू

पान
ट्रेड मार्क
रजिस्टर्ड
रजि.न. २२०७५६ बी
रजि. नं. २४६७०२
चाँदनी पत्ती
वर्कदार
पान में खाने का रूपम मिश्रित मूर्ती
केसरवानी जर्दा भण्डार
पो. मु. सहसों जि. इलाहाबाद

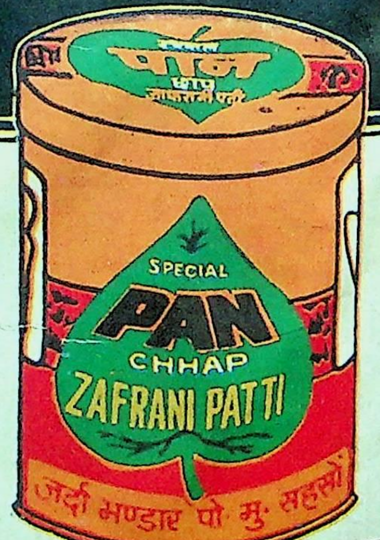
पान
छाप
जाफरानी पत्ती
SPECIAL
PAN
CHHAP
ZAFRANI PATTI
जर्दा भण्डार पो. मु. सहसों

जर्दा तो हर कोई
बना सकता है लेकिन
जिसकी क्वालिटी बेमिसाल
और जायका लाजवाब है
वह केसरवानी
जर्दा भंडार वाले
ही बनाते है

निर्माता
केसरवानी जर्दा भंडार
सहसों इलाहाबाद

बैधानिक चेतावनी :—तम्बाकु चबाना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है

डायमंड पाकेट बुक्स में

बंगला साहित्यकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के अविस्मरणीय उपन्यास

दुर्गेशनंदिनी	10.00
कपाल कुण्डला	10.00
मृणालिनी	10.00
देवी चौधरानी	10.00
सीताराम, राधारानी	10.00
विषवृक्ष	10.00
चन्द्रशेखर	10.00
रजनी	10.00
कृष्णकांत का वसीयतनामा	10.00
राजसिंह	10.00
आनंदमठ	10.00

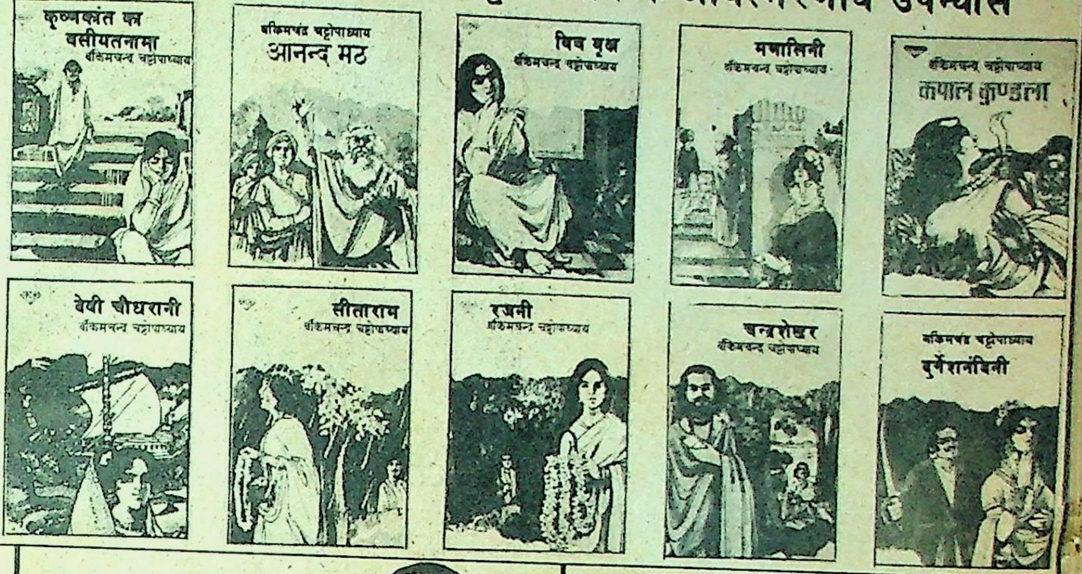
कृष्णकंत का वसीयतनामा
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय
आनन्द मठ
विष वृक्ष
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
मृणालिनी
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
कपाल कुण्डला
देवी चौधरानी
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
सीताराम
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
रजनी
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
चन्द्रशेखर
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय
दुर्गेशनंदिनी

प्रेमचन्द साहित्य

उपन्यास

निर्मला	10.00
वरदान	12.00
प्रतिज्ञा व मंगलसूत्र	12.00
सेवासदन	20.00
गोदान	25.00
प्रेमाश्रम	20.00
कर्मभूमि	25.00
रंगभूमि-I	20.00
रंगभूमि-II	20.00
कायाकल्प	20.00
मनोरमा	12.00
रूठीरानी व प्रेमा	12.00
गबन	20.00

नाटक

कर्बला	12.00
संग्राम	12.00

कहानी संग्रह

मानसरोवर भाग-1	20.00
मानसरोवर भाग-2	20.00
मानसरोवर भाग-3	20.00
मानसरोवर भाग-4	20.00
मानसरोवर भाग-5	20.00
मानसरोवर भाग-6	20.00
मानसरोवर भाग-7	20.00
मानसरोवर भाग-8	20.00
कफन	12.00
प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	15.00

जयशंकर प्रसाद साहित्य

प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (काव्य)-I	40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (नाटक)-II	40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (उपन्यास)-III	40.00
प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड (कहानी-निबन्ध)-IV	40.00

'प्रसाद' की अलग प्रकाशित पुस्तकें

उपन्यास

कंकाल	15.00
तितली	15.00
इरावती	6.00

निबन्ध

काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	15.00

कहानी संग्रह

छाया	6.00
इन्द्रजाल	8.00
आकाशदीप	7.00
प्रतिध्वनि	5.00
आंधी	6.00

काव्य

लहर	5.00
कामायनी	8.00
आंसू	5.00
झरना	5.00
महाराजा का महत्व	2.00
प्रेम पथिक	3.00

नाटक

स्कंदगुप्त	10.00	कामना	5.00
अजात शत्रु	6.00	एक घूंट	5.00
ध्रुवस्वामिनी	3.00	चन्द्रगुप्त	10.00
जनमेजय का नाग यज्ञ	6.00	राज्य श्री	5.00
		विशाख	6.00

शरत साहित्य

विप्रदास	15.00	चरित्रहीन	20.00
शुभद्रा	12.00	शेष परिचय	15.00
पथ के दावेदार	15.00	बिराज बहू	10.00
देवदास	10.00	काशीनाथ	10.00
पंडित जी	10.00	चन्द्रनाथ	10.00
मंझली दीदी	10.00	परिणीता	10.00
दत्ता	10.00	गृहदाह	15.00
शेष प्रश्न	15.00	कमला	10.00
देना पावना	10.00	श्रीकांत	20.00

बैकुंठ का वसीयतनामा	10.00
देहाती समाज	10.00
समाज का अत्याचार	10.00
ब्राह्मण की बेटी	10.00
शरत के नाटक	25.00

देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास

चन्द्रकांता	15.00
चन्द्रकांता सन्तति I	15.00
चन्द्रकांता सन्तति II	15.00
चन्द्रकांता सन्तति III	15.00
चन्द्रकांता सन्तति IV	15.00
चन्द्रकांता सन्तति V	15.00
चन्द्रकांता सन्तति VI	15.00

संस्कृत के महान ग्रन्थ

मृच्छकटिकम्	10.00	हर्षचरित	12.00
कादम्बरी	10.00	मुद्राराक्षस	12.00
नलदमयन्ती (नैषधचरितम्)	10.00	किरातार्जुनीय	12.00
		वेणीसंहार	12.00

कालिदास साहित्य

अभिज्ञान शकुन्तलम्	10.00
कालिदास के नाटक	10.00
रघुवंश	10.00
मेघदूत	10.00

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

कथा पहेली
मई:1990

सर्वशुद्ध हल

1. I हजारी प्रसाद द्विवेदी II प्रेमचंद III शहंशाह आलम IV विजय किशोर मानव V द्विजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' VI यह सही प्रकाशित नहीं है. कृति का सही नाम है—'वासंती चारोड' और इसके रचनाकार हैं—सिजगुरुमयुम नीलवीर शास्त्री.
2. 'उम्मीद'
3. 'रंगबिरंगे लोग' के पात्र राजू के संवाद से है. इसमें वह कुंज को दिलासा देने की कोशिश करता है.
4. राजेंद्र यादव.
5. 'लाडली' में लाडली
6. विजयकिशोर मानव की कहानी 'युद्धविराम'.
7. सीढ़ी.
8. 'लाडली'

2608 प्रतियोगियों में इस बार केवल छः प्रतियोगी ऐसे हैं जिन्होंने लगभग सही हल भेजे हैं. लगभग इसलिए कि 'वासंती चारोड.' का उल्लेख किए बिना इन सभी प्रतियोगियों ने सही रचनाकार का नाम दे दिया है. 'वासंती चारोड' गलत प्रकाशित हुआ है. बहरहाल, पुरस्कार राशि इन सभी को बराबर—बराबर भेजी जा रही है. प्रतियोगी हैं—

1. राजनारायण वर्मा, लखनऊ.
2. गीता देवी, फैजाबाद.
3. शरदेंदु शेखर, नयी दिल्ली.
4. हर्षा दवे, बिलासपुर.
5. मीना दुबे, गोरखपुर.
6. अभिमन्यु प्रसाद, पटना.

सारिका कथा पहेली

सारिका गौर से पढ़िए और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए!

'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों से अनुरोध है कि वे पूर्तियां इसी पृष्ठ पर भेजें. इस बार के प्रश्न जून: 1990 के अंक पर आधारित हैं. पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि 25 जुलाई है. जिन इलाकों में पत्रिका देर में पहुंचती है. वहां के पाठक 25 तारीख के बाद भी पूर्तियां भेज सकते हैं.

कथा पहेली: जुलाई 1990

निर्देशानुसार खाली स्थान भरिए.

1. ....कहानी का शीर्षक व्यंग्यार्थ लिए है.
2. 'आकाश के उस पार' मूलतः...........भाषा का उपन्यास है. हिंदी में इसका अनुवाद...........ने किया है.
3. परिस्थितियों से टूटकर भावुक क्षणों में कम उम्र के युवक से संबंध बना लेने की बात सोचना...........शीर्षक रचना में आया है.
4. अंधविश्वासों पर चलने वाले परिवार की नियति...........शीर्षक रचना में है.
5. संस्मरण के माध्यम से कथाकार...........हमारी मुलाकात एक यादगार चरित्र स करातें हैं.
6. रचनाकार जहां आलोचक की अद्यतन बाधा बन जाता है वहां संदर्भ आलोचक...........और कथाकार...........का है.
7. ....के लेख का अंत एक कुमाऊंनी कहावत से हुआ है.
8. 'किराये का इन्द्रधनुष' कहानी में मुख्यचरित्र इन चारों में से कौन है? कहानी का नैरेटर आंटी, पेशा करने वाली लड़की, या टीपू. नीचे दिए खाली स्थान में लिखें.
....
9. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ रचना है—...........

नाम..
पता..
....

®रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स

एक रिकार्ड

3,00,00,000 तीन करोड़ से अधिक पाठकों द्वारा अपनायी गयी भारत की बारह भाषाओं में प्रकाशित सबसे अधिक बिकने वाली पुस्तक

उर्दू
पंजाबी
गुजराती
हिन्दी
रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिंग कोर्स
मराठी
कन्नड़
मलयालम
तमिल
तेलुगु
उड़िया
बंगला
असमी

सभी कोर्सों में बड़े साइज़ के 400 से अधिक पृष्ठ

मूल्य:
36/- प्रत्येक
डाकखर्च: 5/-

'डैक्स' कोर्स
प्रमुख बुकसैलरों, रेलवे
न एवं बस अड्डों पर स्थित
स्टॉलों पर मिलते हैं।
.पी. द्वारा मंगाने के लिए
:-

श्रेष्ठता की कसौटी

देशभर के प्रसिद्ध अखबारों की सम्मितियों में से कुछ के अंश:-

●....वार्तालाप शैली में लिखी हुई यह पुस्तक अंग्रेजी बोलना आसानी से सिखा सकती है... अंग्रेज़ी का सारा आवश्यक ग्रामर भी इस पुस्तक को पढ़कर स्वत समझ में आ जाता है। **—नवभारत टाइम्स, दिल्ली**

●....बहुत दिनों से एक ऐसी पुस्तक की तलाश थी, जिसको पढ़ते-पढ़ते ही अंग्रेजी बोलचाल का अच्छा-खासा ज्ञान हो जाये और इस कसौटी पर रैपिडैक्स इंगलिश स्पीकिं कोर्स खरी उतरी। **—बम्बई समाचार, बम्ब**

●....इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें चुने हुए, दैनिक उपयोग में आने वाले शब्दों की उपयोगी सूची अर्थ सहित दी गई है।... प्रत्येक पाठ के अन्त में भाषा व व्याकरण सम्बन्धी कु आधारभूत बातें अलग से समझाने का प्रयास भी निस्संदेह प्रशंसनीय है। **—जुगान्तर, कलकत्ता**

●....इसमें अंग्रेजी सिखाने की अभ्यास सामग्री इतने बढ़िया ढंग से दी गई है कि कान्वेंट स्कूलों में भ यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। **—दिनामानी, मद्रास**

●....अंग्रेजी भाषा को शुद्ध और प्रभावपूर्ण ढंग से जितना लिखना जरूरी है, उतने ही प्रभावपूर्ण ढंग से उसके शब्दों का सही उच्चारण तथा सही बोलना भी जरूरी है और ये सब गुण पुस्तक के क्रमवार अभ्यासों मे मौजूद हैं। **—गुजरात मित्र, सूरत**

●....आकर्षक आवरण एवं सुन्दर छपाई से सुसज्जित, यह पुस्तक अल्प समय में ही अंग्रेजी सिखाने में सक्षम होने के कारण सभी स्त्री-पुरुषों, विशेषकर गृहिणियों के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगी। **—डेक्कन क्रोनिकल**

●....वास्तव में यह एक बहुत ही उपयोगी कोर्स है। इसमे तमिल जानने वाले बगैर किसी परेशानी के ग्रेजुएट जैसी अंग्रेजी बोल सकते हैं। **—सण्डे स्टैण्डर्ड, मद्रास**

●....रैपिडैक्स कोर्स ही एकमात्र ऐसा विस्तृत कोर्स है, जो हर किसी को 60 दिन में अंग्रेजी बोलना व लिखना बिना किसी शिक्षक या स्कूल में गये, सिखाने में सक्षम है। **—नागपुर टाइम्स, नागपुर**

●....अंग्रेजी सिखाने के लिए इसका क्रमवार अभ्यास अपनी एक विशेषता है। **—गुजरात समाचार, अहमदाबाद**

स्तक महल
री बावली, दिल्ली-110006.
-B, नेताजी सुभाष मार्ग,
गंज, नई दिल्ली-110002.
2, मिशन रोड, बंगलौर-560027

अगला अंक

''तरह-तरह की यादें, अनगिनत अधूरे चित्र. इन्हीं अधूरे चित्रों, संस्कारों, अनुभवों की पूंजी को लेकर मैं साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ था. शायद सभी ऐसे लोग जो परिस्थितियों द्वारा धकेले जाते हैं, जो व्यवहार की दुनिया में निकम्मे साबित होते हैं, अपने अरमान पूरे करने के लिए साहित्य का दरवाजा खटखटाते हैं...''

चौंकिये नहीं, यह कहना है उम्र के पिचहत्तर वर्ष पूरे कर छिहत्तरवें वर्ष में दस्तक दे रहे हिंदी के वरिष्ठ कथाकार भीष्म साहनी का. इस विशिष्ट अवसर पर सारिका की ओर से प्रस्तुत है एक संग्रहणीय अंक....

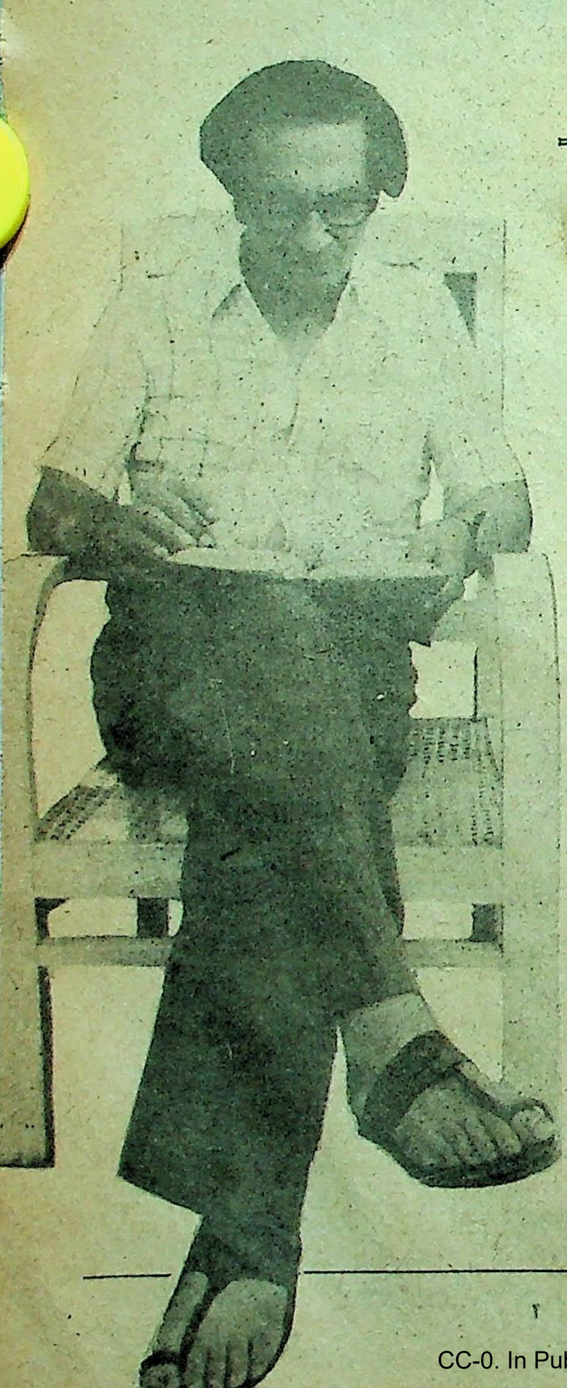

भीष्म साहनी की हीरक जयंती पर विशेष

इस अंक में आप पढ़ेंगे....

- ☐ **उम्र के इस पड़ाव पर आकर अपनी जिंदगी के पिछले सफों को पलट रहे हैं भीष्म साहनी, इस अंक के लिए खास तौर पर लिखी आत्मरचना में.**
- ☐ **हाल ही में भीष्म जी से लिया गया महत्वपूर्ण साक्षात्कार.**
- ☐ **पहली कहानी की दास्तान जो फिर न मिल सकी.**
- ☐ **कथाकार भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, शानी और डा. नामवर सिंह की नजर में.**
- ☐ **'मेरे पति भीष्म साहनी' : श्रीमती साहनी से बातचीत.**
- ☐ **भीष्म जी की पहली कहानी.**
- ☐ **कहानी जो अविस्मरणीय बन गयी....**
- ☐ **भीष्म साहनी की कथायात्रा पर राजकुमार सैनी का आलेख.**
- ☐ **भीष्म साहनी की कृतियों के मंचन के दौरान हुए अनुभव सुना रहे हैं निर्देशक, अभिनेता व अभिनेत्रियां.**
- ☐ **बलराज साहनी की कलम से.**
- ☐ **अलबम से : दुर्लभ चित्रों का मोहक संसार**

यानी एक रचनाकार से सीधा साक्षात्कार

साथ में

श्रवण कुमार की संपूर्ण उपन्यासिका

गणित

सारिका

अगस्त : १९९०

समय, समाज, साहित्य और संस्कृति की पहचान

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान

वर्ष : ३०, अंक : ४५८, जुलाई, १९९०

प्रकाशक:
रमेश चंद्र

संपादक:
अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक:
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

सीनियर मैनेजर विज्ञापन :
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिस्पांस :
डा. राजेंद्रपाल जैन

सीनियर ऑफीसर रिस्पांस :
शबनम अग्रवाल

रिस्पांस सहयोगी :
अशोक माथुर

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
उदेश कुमार

अंक सज्जा
हेम ज्योतिका

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था :

10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय :

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग, बंबई-400 001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर

33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट, कलकत्ता-700 062

'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6 डी नवामवक्कम हाई रोड, मद्रास-600 034

88 महात्मागांधी रोड, बंगलूर

407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411 002

उपन्यासिका

१२. पड़ाव :
कुसुम चतुर्वेदी

उस दिन सीमांत के जाने के बाद अन्विता को लगा कि उसका अस्तित्व जैसे समूचा हिल गया है. सीमांत के एक वाक्य ने उसे भीतर तक पिघला दिया है. देवी चोट, अपना अकेलापन, भविष्य की अनिश्चितता, निकटतम संबंधियों के व्यवहार ने उसे अनुभूतिशून्य सा बना दिया था. यह बच्चा उसके जीवन की समूची जड़ता को अपने एक वाक्य से तोड़ कर चला गया है. रात तक वह कितनी बार रोती रही... बहुत दिनों बाद उसे इतना रोना आया था.

यह लड़का भी अजीब है. एक ओर तो इतनी संवेदनपूर्ण और समझदारी की बातें करने वाला और दूसरी ओर बेहद चुलबुला. कॉलबेल बजाकर छिप जायेगा या लगातार बजाता रहेगा. एक दिन तो अन्विता खीज गयी थी, ''बजाते रहो घंटी. मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी.. शैतान कहीं के.''

कथा रचनाएं

२६. मस्सा :
यासुनारी कावाबाता
३४. पहली बार / आखिरी बार :
शशिप्रभा शास्त्री
३७. अवरुद्ध :
गोविंद मिश्र
४०. सात समुद्र पार
सुदर्शन नारंग
४५. गाजी :
गौरीशंकर कपूर
५०. कोई दूसरा चाणक्य :
केवल सूद
५२. संघम् शरणम् गच्छामि :
दानिश
५८. यह बंबई है :
प्रबोध जोशी
६०. छल :
प्रदीप पंत
७८. छोटा बकुलपुर का यात्री :
मानिक बंद्योपाध्याय

धारावाही आयोजन

६६. लाल पसीना :
अभिमन्यु अनत
७५. पुरुषोत्तम :
भगवतीशरण मिश्र

कविता

३१. गुलमुहर :
रामदरश मिश्र

विशिष्ट आयोजन

३२. फाइल पढ़ि-पढ़ि....:
गोपाल चतुर्वेदी
६३. आधे पहुंचकर :
गोविंद मिश्र
७१. कैसे-कैसे लोग :
से. रा. यात्री
७२. आलोचना की पुनर्यात्रा :
सुधीर पचौरी
७४. पुस्तक प्रेमी :
गोपाल शेखरन
८२. माटी की धड़कन को...
डा. नारायणदत्त पालीवाल

स्थायी स्तंभ

४. कथा पहेली
८. आपकी बात
८४. कृतियां
८५. पत्रिकाएं
८८. हलचल

आवरण पारदर्शी
एस.एस. रतन
आवरण सज्जा
सुधीर गुप्ता

कॉपीराइट ©1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

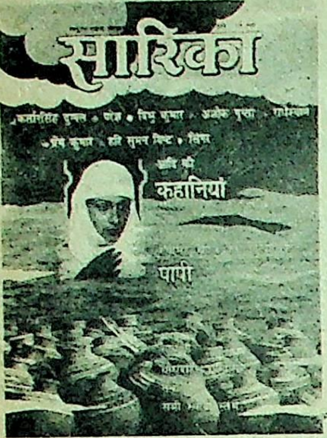

शहादत और शहादत

सारिका का मई ९० अंक कुछेक रचनाओं के कारण अच्छा बन पड़ा है, जिनमें रूपसिंह चंदेल की उपन्यासिका 'पापी' और हरिसुमन बिष्ट की कहानी 'फिर से' खासतौर पर उल्लेखनीय हैं. वैसे 'पापी' का कथ्य कोई नया नहीं है, फिर भी भाषा, प्रवाह और प्रभाव के कारण यह नवीनता का एहसास दिला जाती है. ग्रामीण शब्दों एवं परिवेश का चित्रात्मक वर्णन इस उपन्यास को विशिष्ट बनाता है.

अंक की जिस कहानी ने सर्वाधिक संतोष दिया, वह है 'फिर से'. पंजाब समस्या पर इन दिनों कहानियों की बाढ़-सी आयी हुई लगती है. ऑपरेशन ब्लूस्टार के प्रसंग को, इस कहानी में चीन की लड़ाई से जोड़कर एक तुलनात्मक कथा भूमि दी गयी है. सेना के जवानों की मृत्यु अगर चीन और पाकिस्तान की लड़ाई में हुई थी, तो आपरेशन ब्लू स्टार में भी, मगर दोनों मौतों में फर्क था. देश की रक्षार्थ चीन की लड़ाई में लड़ते हुए जवानों की जब मृत्यु हुई थी, तब वे जवान शहीद कहलाये थे, मगर ब्लू स्टार में दिवंगत हुए जवान?...क्या भाई के हाथों भाई की मौत को भी शहादत कहा जा सकता है? यही कहा है 'फिर से' के कथाकार ने. कहने का अंदाज, भाषा और ऑपरेशन ब्लू स्टार में दिवंगत हुए जवानों के प्रति अपनी गहरी भावना को व्यक्त करते हुए रचनाकार सही अर्थों में इस कहानी के माध्यम से उन जवानों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और खालिस्तान समर्थक तमाम लोगों को यह एहसास दिलाने की चेष्टा करते हैं कि अगर मारना ही है, तो दुश्मनों को मारो ताकि तुम्हारी मौत भी हो जाय तो वह शहादत कहलाये...भाई की हत्या करके तो तुम हत्यारे ही सिद्ध हो सकते हो.

● **रतन वर्मा,**
हजारीबाग (बिहार)

विपन्न पापी

सुषम बेदी ने वर्तमान समाज का अक्स अपनी कमनीय रचना 'चिड़िया और चील' के जरिए बड़ी नफासत से उकेरा.

घर अब सराय में रूपांतरित हो चले हैं. सभी अभिभावक बच्चों में अपनी अभिरुचियां बलात थोपते हैं, उन्हें एक लीक पर चलने को बाध्य करते हैं. उनकी मंशाओं को ढांपते हैं तो फलतः उसी तरह के व्यक्तित्व का सृजन होता है जो बेदी ने अपनी रचना 'चिड़िया और चील' में किया है. यह रचना रूमानियत, असुरक्षा व ख्याली पुलावों के वृत्तों में आबद्ध कुंठित चिड़िया की मनोदशा हेतु एक घर की टूटती जिम्मेदारियों को अपराधी ठहराती है जो बजा है. वीडियो, टी.वी. की नायाब पैठ घर के सदस्यों को घर के प्रति प्रतिबद्धता, निष्ठा से उत्तरोत्तर दूर ले जा रही है. परपराएं, रूढ़ियां, मेलजोल, स्नेह सब कुछ न जाने कहां उड़न छू हो गये. रिश्ते-नाते की मिठास इंसान के व्यक्तित्व को संबल देती है उसे आत्मविश्वास से परिपूरित रखती है पर अब तो सारे रिश्ते इन संचार माध्यमों में समा गये हैं. वैसे हमारी शिक्षा प्रणाली की खामियां, जर्जर सामाजिक ढांचा, नैतिक मूल्यों का पराभव का समवेत बल क्या इतना ताकतवर नहीं कि वो किसी चिड़िया को परवाज करने से महरूम रखे?

इसी अंक में अशोक गुप्ता की 'त्रिभुवन गाथा' काबिल-ए-दीद रही. उनका यह पृष्ठांकित करना कि ''यूनियन मामूली आदमियों के हित में मामूली आदमियों के ही दम पर चलती है. भले ही उसे चलाते हैं गैर मामूली मक्कार लोग...'' उक्त कथन क्या वर्तमान राजीनतिक दलों व वर्तमान शासन के परिप्रेक्ष्य में भी समीचीन नहीं? त्रिभुवन कथा कथनी और करनी के भेद को लोप करने को प्रेरित करती है पर क्या ऐसा होना संभव है? रूपसिंह चंदेल का उपन्यास 'पापी' आद्योपांत जीवंत बना रहा, इसका शीर्षक कितना गजब का रखा है—ठीक ही तो है—हर विपन्न 'पापी' होता है, उसे ताउम्र अपनी मुफलिसी के अपराध की तल्ख सजा भुगतनी होती है.

● **ललिता कुमारी शर्मा,**
शेखावटी (राजस्थान)

जीवन से जुड़ी कथा

प्रेमकुमार महोदय ने अपनी कहानी 'श्रद्धा के ताजमहल' में संवेदनाओं को आदर्श का चोला पहनाने का सफल प्रयास किया है. इस कहानी का यकीनन या तो स्वयं लेखक के या उनके किसी निकट संबंधी के जीवन से गहरा संबंध है. परिस्थिति के चरम पर पहुंच जाने की स्थिति में कोई क्या कर सकता है उसे महज एक व्यक्ति के निर्णय व कृत्य के माध्यम से प्रतिबिंबित करना पूर्वाग्रह ग्रस्तता व स्वयं के फैसले का आभास कराना है और वैसे भी कहानी का नायक समाज के एक बहुत छोटे से अंश का प्रतिनिधित्व कर रहा क्योंकि गतिकी ने तकरीबन बड़े से बड़े कर्तव्यनिष्ठ एवं बुद्धिजीवी को संवेदन पर नियंत्रण खोने को विवश कर दिया है. फिर ऐसी परिस्थितियों में किये गये फैसले पर स्थानीय परिस्थिति, सामाजिक मूल्यों की तीक्ष्णता, संबद्ध व्यक्ति व उसके ऊपर प्रभाव रखनेवालों के तत्वों से भी बेतरह प्रभावित होती है. प्रोफेसर भी यदि अहंवादी या हवस का पुजारी हो तो इस परिस्थिति का फैसला बिल्कुल अलग हो सकता है. आदर्श को प्रतिबिंबित करने वाला फैसला सर्वदा सबके लिए सम्माननीय नहीं होता क्योंकि यदि प्रेमिका के अव्यक्त प्रेम को शांत करने के लिए (भले ही यह उसके कल्याण के लिए हो) यदि ये फैसला किया जाये तो भी दो राहें बनती हैं. पहली यदि प्रेमिका भविष्य में कहीं और सुखी है तो वह फैसले की आदर्शवादिता का मूल्यांकन कर सकती है परंतु यदि भविष्य में परिस्थितियां उसके लिए नासूर बनने लगें तो फैसले के मूल में कारण तलाश करते हुए वह फैसले को बेहूदा करार दे सकती है. तात्पर्य यह है कि लेखक ने एक आम परिस्थिति में एक खास व्यक्ति के निर्णय को उजागर किया है.

● **जयंत चक्रवर्ती,**
पटना सिटी

संस्कारों पर प्रहार

'सारिका' कई वर्षों से पढ़ रही हूं, कई बार प्रतिक्रिया व्यक्त करने का विचार आता रहा पर यह अंक पढ़ने के बाद अपने विवेक को अधिक दबा न सकी.

इसमें डा. परेश की 'दीपिका' में परिवेश में सर्वत्र व्याप्त युद्ध की कसक है तो दूसरी ओर अंतर्मन के द्वंद्व की मंद-मंद लौ प्रज्ज्वलित हो रही है और साथ ही नारी के प्रति सम्मान भाव की अभिव्यक्ति है.

'पापी' उपन्यासिका में गरीब बंधुआ मजदूर के जीवन की विवशता की छटपटाहट है. 'श्रद्धा का ताजमहल' जहां एक ओर नारी हृदय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है तो साथ ही अध्यापक का यह कहना—''मेरे एक कदम के आधार पर मेरे पूरे वर्ग का मूल्यांकन तुम उम्र भर करती रहोगी. मेरे कारण तुम्हें सारी अध्यापक जाति से घृणा या श्रद्धा हो सकती है.'' पुरुष या अध्यापक वर्ग को सचेत करता है.

'चिड़िया और चील' कहानी में पाश्चात्य परिवेश में पली विस चिड़िया को इस प्रवासी लेखिका ने दर्शाया है, उसका वह सूक्ष्म विवेचन, भारतीय संस्कारों को झंझोड़ देता है. लेखिका ने अंत में उसे फुदकती नन्हीं चिड़िया से चील

बनाकर, उस परिवेश की अवश्यंभावी परिणति की ओर संकेत दिया है. इसके अतिरिक्त लघुकथाएं रोजमर्रा की जिंदगी से रूबरू कराती कथाएं हैं.

● प्रेमदुआ 'सुधा',
नयी दिल्ली

सारिका मेरी प्रेमिका

जब मैंने सारिका की कीमत १७.५० नेपाली रुपयों में अदा की तो हमें लगा सचमुच इसकी कीमत बढ़ चुकी है.

हमें तब अफसोस हुआ जब पूरी अप्रैल की सारिका पढ़ने के बाद मेरे दिल में कोई स्थायी छाप नहीं बनी. जबकि अक्सर इसे पढ़ने के बाद एक नायाब सुकून मिलता था. पुरस्कृत कहानियों के बावजूद इसमें पता नहीं कौन-सी कमी महसूस होती है, फिर भी दो-चार कहानियां एवं लघुकथाएं पढ़कर बुझते दिलों को एक नया रस मिला. केदारनाथ सिंह की कविता 'नमक' मेरे मन को काफी भायी जिसे हम दुबारा पढ़ने से भी नहीं चूके.

संपादक महोदय, शायद 'सारिका' मेरी एक प्रेमिका है, इससे लगाव मेरा हमेशा रहा है. मैं चाहता हूं आप बदलती दुनिया की बिखरती मधुर गजलों और कहानियों को इसके आगोश में एक छोटी-सी जगह दें. फिर भी हमें पूरा यकीन है कि आनेवाला हर एक अंक काफी रोचक और मनोरंजन से भरपूर होगा.

● अनंत छिमेकी,
रत्ननगर (नेपाल)

लघुकथाएं छायी रहीं

मैं स्पष्टत: कहना चाहूंगा, जहां सारिका को लेकर कुछ प्रसन्नताएं है, अपनी सुखद अनुभूतियां हैं और अपनत्व है वहीं दूसरी ओर पिछले कुछ महीनों से शिकायतें भी हैं. 'सारिका' से पाठकों का (मैं समझता हूं एक अच्छा-खासा बौद्धिक समाज है.) जो पारिवारिक लगाव है, वह क्रमश: धूमिल होता जा रहा है. प्रथमत: मुख पृष्ठ को लेकर ही मेरे एक मित्र ने मेरे हाथ में सारिका देखकर दूर से पुकारते हुए कहा, ''भाई मनोहर कहानियां है क्या, जरा दिखाना,'' मैं झेंप गया. जब हम इसे समय समाज संस्कृति और साहित्य की कहें तो इसका मुख पृष्ठ भी लघु साहित्यिक पत्रिकाओं की तरह कुछ कलात्मक रेखाचित्रित या बिल्कुल सादा होना चाहिए. भीतर के पृष्ठों में आप जो बौद्धिक रेखाचित्र छापते हैं वैसा ही मुखपृष्ठ भी हो.

मई, ९० अंक की कहानियां लो स्टैंडर्ड की रहीं. मात्र दो तीन कहानियों को छोड़कर. परंतु इस माह लघुकथाएं छायी रहीं. 'देवी की मौत', 'चड्डियां', 'जुर्म', 'सिर्फ एक रोटी' आदि कथाएं पूर्णतया जीवंत बन गयीं. मेरा विश्वास है आप अगले अंकों में मुखपृष्ठ और कहानियों पर ध्यान देंगे.

● कुंदन सिद्धार्थ,
नरकटियागंज (बिहार)

नामों का ढोल

सारिका का अप्रैल ९० अंक पढ़कर बहुत निराश हुआ. रचनाओं में दम कम था रचनाकारों के नामों की, भारी-भरकम मोहर अधिक थी. अधिकतर रचनाओं में लेखनी से अधिक माडलों के चित्र ही हावी थे फिर इन चित्रों के ऊपर नीचे अगल बगल इतना स्थान छोड़कर उसे बर्बाद करने का क्या तात्पर्य है. आजकल तो कागज की कीमत बहुत बढ़ गयी है. पूरे अंक में एक भी लघुकथा स्तरीय नहीं है और पूर्व में ऐसी लघुकथाएं सारिका में कभी स्थान न पातीं. अगर सारिका ऐसी पत्रिका की यह हालत है तो हिंदी साहित्य का वर्तमान और भविष्य अंधकारमय ही लगता है. पूरी पत्रिका में एक ही कहानी अच्छी दिलचस्प और स्तरीय है. 'बहका हुआ आदमी'. 'दिशाहीन' तो वास्तव में दिशाहीन रचना है. लगता है केवल नाम से प्रभावित होकर आपने प्रकाशित कर दिया है. शैली और ट्रीटमेंट बचकाना ही कहा जायेगा.

स्थायी स्तंभ गनीमत है कि सभी अच्छे और ज्ञानवर्धक हैं. नागार्जुन से बातचीत रोचक है. 'कथा समीक्षा की पुनर्यात्रा' और 'परिचर्चा' गंभीर सामयिक विषयों पर यथोचित प्रकाश डालते हैं. रवींद्रनाथ त्यागी तो खैर जाने-माने व्यंग्यकार हैं ही. गनीमत है कि उनकी कलम में अभी भी वही पैनापन है. ये केवल औरों की भांति नाम की मोहर से ही नहीं काम चला रहे हैं.

अनुरोध है कि केवल नामों का ढोल न बजाकर कुछ अन्य लेखकों, युवा प्रतिभाशाली लेखकों को भी प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहित करें जो खासा अच्छा लिख रहे हैं, पुरस्कृत लेखकों से अधिक अच्छा लिख रहे हैं.

● डॉ. प्रमोद कुमार सिंह,
पटना (बिहार)

एक पठनीय पत्रिका

सारिका एक पठनीय पत्रिका है बीस बाईस वर्षों से मैं इसका पाठक हूं. गत साल दिसंबर तक तो यह दुर्लभ पत्रिका राजधानी में 'नालंदा' पुस्तकालय से प्राप्त हो जाती थी मगर फिलहाल वह वहां भी अप्राप्य है. यदि आप से कहूं कि 'सारिका' पढ़े बिना मैं अपने आप को यतीम-सा महसूसता हूं तो आप मेरी इस भावना को अतिशयोक्ति कहेंगे. इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए अब बस एक ही उपाय है कि उसे सीधे कार्यालय से ही मंगाया जाय.

● लोचन विदेशी, मॉरीशस

शराब
छुड़ाइए

हमारे देशी नुस्खे को शराबी को बिना बताए दाल, सब्जी, दही आदि किसी नमकीन चीज में मिलाकर खिलाने से पुराने से पुराने शराबी भी शराब से नफरत करने लगते हैं और सदा के लिए शराब छोड़ देते हैं।

मिलने का पता:-

हर शनिवार
9 से 3 बजे तक
एकांत होटल
पंचकुइयां रोड, नई दिल्ली
(नजदीक बनवारीलाल अस्पताल)

शेष दिन
डा० विरेन्द्र सिंह
चोनी अस्पताल
दत्त रोड, मोगा पंजाब

प्रेमचंद के बहाने दूरदर्शन की बीमार मानसिकता

युवा पत्रकार श्री राजेश कालिया ने पी-११ दीवान पुरम् कोओपरेटिव हाउसिंग कालोनी, कोट्टयम, केरल से एक पत्र भेजा है. पत्र में हिंदी के महानतम कथा शिल्पी स्वर्गीय मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' के केरल दूरदर्शन द्वारा प्रसारित नाट्य रूपांतर का हवाला दिया गया है. इस नाट्य रूपांतर ने दूरदर्शनीय अश्लीलता की तमाम सीमाएं तोड़ दी हैं. हम उस पत्र को ज्यों का त्यों अपने पाठकों और दूरदर्शन अधिकारियों तथा भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्री तक पहुंचाना चाहते हैं;

पत्र इस प्रकार है :—

''महोदय,

मैं आपकी सम्मानित पत्रिका द्वारा केंद्रीय प्रसारण मंत्री एवं दूरदर्शन अधिकारियों का ध्यान तिरूवनंतपुरम दूरदर्शन द्वारा घटिया एवं विकृत मानसिकता के नाट्य कार्यक्रमों पर आकर्षित कराना चाहता हूं. दूरदर्शन द्वारा प्रसारित नाटक न केवल दर्शकों को ही दिग्भ्रमित कर रहे हैं वरन् महान लेखकों के नाम पर घटिया प्रस्तुतीकरण कर उन पर भी कलंक आरोपित कर रहे हैं.

२१ मई को केरल दूरदर्शन द्वारा मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' पर आधारित एक नाटक प्रसारित किया गया. उसकी शुरुआत इस प्रकार थी—दो युवा लड़के दिखायी पड़ते हैं. एक दूसरे से कहता है—

पहला — तुम्हें पता है इस कारखाने में काम करने वाले सभी लोग अपनी बहनों के साथ करते हैं.

दूसरा — हां वे सभी किस्मत वाले हैं. हम लोग तो गये गुजरे हैं. तुम्हारे घर में सुभांगी दीदी हैं. तुमने उनके साथ किया है....

पहला — नहीं. तुम जानते हो कि वह मेरे पिता के भाई की बेटी है.

दूसरा — मैं कोशिश करूं.

पहला — हां, कर लो.

दूसरा — मैं उन्हें आवाज देता हूं.

[पहला घर की सीढ़ियों के नीचे छुप जाता है]

दूसरा — सुभांगी दीदी... सुभांगी दीदी.

[एक लड़की घर से बाहर निकलती है. उसके हाथ में लैंप है.]

सुभांगी — कौन है? ओह तुम हो...मैं देख रही हूं कि आजकल तुम बहुत बिगड़ गये हो. मैंने तुम्हें कारखाने के मजदूरों के साथ घूमते और बीड़ी पीते देखा है. यह अच्छी बात नहीं है. यह सब आदतें छोड़ दो.

दूसरा — [चेहरे पर वासनात्मक उत्तेजना दिखायी जाती है] लेकिन दीदी मैं बड़ा हो गया हूं.

[लड़की आंगन में बैठ जाती है. दूसरा लड़का पीछे से एक-एक कदम रखता उसके पास आता है और अपने हाथ उसके कंधे पर रख देता है.]

दूसरा लड़का — [उत्तेजना में कांप रहा है] सुभांगी दीदी....

सुभांगी — हां, क्या बात है?

दूसरा लड़का —[बहुत अधिक उत्तेजित हो गया है. उसकी आवाज में वासनात्मक उत्तेजना है] सुभांगी दीदी.

लड़की को उसकी उत्तेजना का आभास हो जाता है. वह झटके से खड़ी होकर उस पर चिल्लाती है और घर में अंदर चली जाती है.

[पहला लड़का बाहर आ जाता है]

दूसरा लड़का — मैं घर के भीतर जाकर उसके साथ कर लूं.

दूसरा लड़का — हां, चले जाओ और कर लो.

[दूसरा लड़का घर के अंदर जाता है—पहला बरामदे में खड़ा होकर खिड़की से अंदर झांकता है]

[अचानक अंदर से शोर सुनायी पड़ता है. दूसरा लड़का भागता हुआ निकलता है और उसके पीछे सुभांगी गालियां देते हुए पीछा करती है.]

इसी समय दो व्यक्ति आते हैं. एक लड़की का पिता है. उसे जब पता चलता है कि क्या हुआ है तो वह लड़के को पकड़ कर मारता है. इस दौरान लड़के की मां आ जाती है—वह अपने लड़के को निर्दोष कहती है और लड़की को गाली देती है कि यह तो वेश्या है. इस बीच लड़के का बाप आ जाता है. वह भी लड़की को वेश्या कहते हुए लड़के को प्यार के साथ घर के अंदर ले जाता है.

सो यह थी नाटक की शुरुआत. क्या इससे अधिक अश्लील प्रदर्शन दिल्ली के सिनेमाहालों में सुबह के शो में चलने वाली फिल्मों में भी होता है! और तिरूवनंतपुरम दूरदर्शन द्वारा कहा गया कि यह नाटक श्री प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' पर आधारित था. जहां तक मेरी सोच है कि उपरोक्त वर्णन 'रंगभूमि' में है ही नहीं.

क्या आप

अपने घर को कम खर्च में सजाना चाहते हैं. कमरों में सही प्रकार की फर्नीचर सैटिंग चाहते हैं. परदों, दीवारों व फर्नीचर में सही तालमेल चाहते हैं. हर कमरे में बहुपयोगी अलमारियां चाहते हैं. सही प्रकार की योजनाओं की जानकारी चाहते हैं तो हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं हॉबी कोर्स)

गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें.
सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें.
आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं.
कोर्स फीस कम आसान किश्तों में भुगतान
कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नहीं.
अपनी योग्यता बढ़ाएं तथा घर भी सजाएं
बेडरूम, ड्राइंग/डाइनिंग, रसोईघर, आंगन आदि की सजावट स्वयं कम खर्च में करें.
हिन्दी में पत्राचार द्वारा इन्टीरियर डेकोरेशन का एकमात्र कोर्स
महिलाओं, गृहिणीयों, एवं छात्र-छात्राओं के लिए सर्वोत्तम.
रंगयोजनाओं, बहुपयोगी बिल्ट-इन फर्नीचर, परदे, प्रकाश व्यवस्था, नयी सजावट सामग्री, पौधों, फर्नीचर-अरेन्जमेन्ट, कपबोर्ड तथा अलमारियों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :—

AID
एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007

यह पत्र हमें १९ जून, ९० को मिला है और इसका प्रकाशन जुलाई अंक में ही सबसे उपयुक्त लगा है क्योंकि ३१ जुलाई को प्रेमचंद जी का ११०वां जन्मदिन है. और हम चाहते हैं कि 'सारिका' के विचारवान पाठक, भारत सरकार और दूरदर्शन के अधिकारीगण हिंदी के इस महानतम कथा शिल्पी और भारतीय संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों के सशक्त पक्षधर की केरल दूरदर्शन द्वारा की जा रही इस अपराधपूर्ण छीछालेदर को देख और समझ सकें तथा दूरदर्शन की इस घटिया प्रवृत्ति के खिलाफ हमारे समस्त पाठक और लेखक सामूहिक रूप से अपनी सम्मिलित और जोरदार आवाज सरकार तथा दूरदर्शन अधिकारियों तक पहुंचा सकें.

शत प्रतिशत साक्षर और सबसे अधिक शिक्षित कहे जाने वाले प्रदेश केरल का दूरदर्शन यह व्यवहार सिर्फ हिंदी साहित्य और उसके साहित्यकारों के प्रति ही नहीं अपना रहा अपितु वहां की निजी भाषा मलयालम के साहित्य को भी विकृत और बीमार मानसिकता के ढंग से प्रस्तुत कर रहा है. इस संबंध में श्री कालिया ने एक उदाहरण इसी पत्र द्वारा और भी भेजा है. उसे भी आप देख पढ़ और समझ लीजिए.

''इसी प्रकार मलयालम धारावाहिक 'देवा मनोहारी नी' की कथा कहानी कुछ इस प्रकार थी—कुछ लोग एक लड़की के साथ बलात्कार करते हैं और बाद में अपनी राजनीतिक पहुंच और पैसे के बल पर खुद तो छूट ही जाते हैं—लड़की को पागल करार करवा कर पागल खाने में बंद करा देते हैं.

एक महिला पत्रकार पूरी कहानी अखबार में छपवाती है और एवज में न केवल नौकरी से निकलवा दी जाती है बल्कि एक शाम जब वह समुद्र के किनारे बैठी है वही बदमाश जाकर उसे गोली मार देते हैं.

दूरदर्शन के इस धारावाहिक से क्या युवा धनाढ्य को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा कि जो मर्जी हो कर लो—बिगड़ेगा कुछ नहीं.

संपादक महोदय, केरल भारत में अकेला ऐसा प्रांत है जो शतप्रतिशत साक्षरता के बहुत करीब है. क्या ऐसी उपलब्धि के समय इसे दूरदर्शन का षड्यंत्र नहीं कहा जायेगा कि घटिया कार्यक्रम दिखलाकर पूरी मानसिकता को ही विकृत बना दिया जाये ताकि साक्षरता का व्यक्तित्व विकास से कोई लेना-देना ही न रह जाये.''

हम श्री कालिया के अंतिम पैराग्राफ में व्यक्त निष्कर्ष विचारों से पूरी तरह सहमत हैं. हमारी भारतीय संसद से भी प्रार्थना है कि वह दूरदर्शन की इस बीमार, घटिया और विकृत मानसिकता की भर्त्सना करे. यदि दूरदर्शन जैसे सशक्त संचार माध्यम साहित्य को इस तरह विकृत करते रहे तो भारतीय साहित्य का जो अहित होगा उससे कहीं अधिक अहित भारतीयता तथा भारत की महान दार्शनिक विचार-परंपरा का होगा.

—संपादक

साहित्यिक कृति पुरस्कार

दिल्ली के उपराज्यपाल एयर चीफ मार्शल (रि.) श्री अर्जुनसिंह द्वारा हिंदी अकादमी, दिल्ली की ओर से राजनिवास मे आयोजित एक समारोह में वर्ष ८७-८८ के लिए २८ लेखकों को उनकी कृतियों के लिए पुरस्कार भेंट किए गये. इस अवसर पर उन्होंने लेखकों को बधाई देते हुए कहा— 'समाज की छवि में निखार लाने और उसे नया रूप देने में साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान होता है. इसलिए साहित्यकारों का सम्मान करने तथा उनकी कृतियों को पुरस्कृत करने से हमारा ही मान बढ़ता है. 'इस समारोह में उपराज्यपाल द्वारा कहानी की ५, कविता की ६, ५ उपन्यास, ३ हास्य-व्यंग्य और ९ विविध विषयों पर लिखी गयी कृतियों को पुरस्कृत किया गया. प्रत्येक पुरस्कृत लेखक को ११,१०१/- रु. की पुरस्कार राशि तथा एक प्रतीक चिह्न भेंट किया गया.

वरिष्ठ पत्रकार श्री अक्षय कुमार जैन ने सभी पुरस्कृत लेखकों को बधाई देते हुए कहा कि अकादमी की यह पुरस्कार योजना लेखकों की प्रतिभा की पहचान के रूप में बड़ी लोकप्रिय हुई है, इसे सभी ओर से सहयोग मिल रहा है.

प्रो. विजयेंद्र स्नातक ने सभी साहित्यकारों को बधाई दी और कहा कि हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में आप सभी लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है. अतः आपको पुरस्कृत कर अकादमी ने अपने कर्तव्य का ही निर्वाह किया है.

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री भीष्म साहनी ने कहा कि इस प्रकार का सम्मान या पुरस्कार लेखक के उन मूल्यों और आदर्शों का होता है, जो उसके सृजन से संबद्ध हों. ऐसे कार्य से विशेष कर युवा पीढ़ी निश्चित रूप से प्रोत्साहित होती है.

इस अवसर पर जिन कृतियों को पुरस्कृत किया गया उनमें प्रमुख हैं: भीष्म साहनी, नरेंद्र कोहली, रमेश उपाध्याय, रामदरश मिश्र, रणवीर रांग्रा, प्रदीप पंत, जयदेव तनेजा, वीरेंद्र जैन, पद्मा सचदेव, डा. विनय, प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय, विजयकिशोर मानव, बलराम, रूपसिंह चंदेल और भगवान सिंह. □

सद्य प्रकाशित नवीन ग्रन्थ

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहां जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इस सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक एवं परलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपरोक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछबि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साइज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य— बीस रुपया।

प्रकाशक:
श्रीरामकृष्ण वेदांत मठ
१९-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००६

नोट : पुस्तक मंगाने के लिए अपना पूरा नाम और पता पिनकोड सहित साफ-साफ अंग्रेजी में लिखें तथा रजिस्ट्री डाक खर्च समेत रु. २५ अग्रिम भेजें ।

पड़ाव

☐ कुसुम चतुर्वेदी

विविध पत्र-पत्रिकाओं में लगभग सौ कथा-रचनाएं प्रकाशित. कविताएं रेडियो रूपक भी लिखे हैं.

संप्रति: हिंदी विभागाध्यक्ष, महादेवी कॉलेज, देहरादून, (उ.प्र.)

संपर्क: 7/3, उग्र रोड, डालनवाला, देहरादून—248001

इतने दिनों
मध्य अने
तक नहीं
सुबह उठते ही
प्रतीक्षा...
सीमांत को
थी. अनमने-अ
नहीं है, जहां क
विशेषोक्ति, द्वं
कुछ पढ़ा दोगे?
"मुझे तुम
ही पूछोगे, इंद्र
इस बीच टी.वी
है.
सीमांत ने तु
वह नहीं है. उ
देगी तो उसका
हफ्ते भर सी
अभ्यास उसे न
भक्ति से पढ़ता
पाकर अन्विता
चाहिए था."
अन्विता हंस
कहकर अनि
उसने थोड़ा
वे मेरी नेबर
है. मेरा उनसे
"मैं उनका
अन्विता को
जारी रखा.
"मैं घर में
व्यवहार के कार
अन्विता ने
"मेरा घर
करूंगा. आ सक
अब अन्वित
समय तो पढ़,
कर बैठकर...
बतायी थी.
"मेरे यहां
अन्विता ने
रखूं...पर मैंने
किताब बंद
उन्होंने मेरा का
डाइनिंग रूम मे
तो उनकी शादी
घटना हो.
"तेरे जैसों
होंगे...अच्छा है
करती है."
वह बातों में

इतने दिनों से अन्विता ने अखबार देखा तक नहीं. पत्रिकाएं एकत्र हो गयी थीं. सहकर्मियों के मध्य अनेक खबरों की चर्चा से उसने जाना कि इतने दिनों उसने टेलिविजन पर समाचार तक नहीं सुने हैं. केवल एक काम उसके मन-प्राण पर इन दिनों छाया रहा. उसी के लिए सुबह उठते ही ४.३० शाम की प्रतीक्षा, फिर उस शाम से अगले दिन शाम के ४.३० बजने की प्रतीक्षा...

सीमांत को किसी परिचिता ने उसके पास भेज दिया था. उसे इंटर परीक्षा के लिए हिंदी पढ़नी थी. अनमने-आधे मन से वह उससे कहती रही थी कि नियम से रोज पढ़ाने का समय उसके पास नहीं है, जहां कहीं उसे कठिनाई होगी, वहां वह बता देगी. सीमांत लाटानुप्रास, विभावना, विशेषोक्ति, द्रुतविलंबित, वंशस्थ जैसे नामों से चकरा गया था. पूछ रहा था, "आप मुझे यह सब कुछ पढ़ा दोगे?"

"मुझे तुम इंगलिश मीडियम वालों को पढ़ाना नहीं आता. 'इंद्र जिमि जंभ पर'—प्रारंभ करते ही पूछोगे, इंद्र कौन था—?" किसी संदर्भ को याद करके अन्विता ने कहा. वह यह भूल गयी कि इस बीच टी.वी. पर आने वाले पौराणिक सीरियलों से छात्रों के तत्संबंधी ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि हुई है.

सीमांत ने तुरंत इंद्र के बारे में बताकर अन्विता को जैसे भरोसा दिलाया कि वैसा अज्ञानी छात्र वह नहीं है. उसे परेशान देखकर अन्विता को दया आ रही थी. सोचा, खाली ही तो है, उसे पढ़ा देगी तो उसका अकेलापन ही दूर होगा...कुछ दिनों के लिए ही सही.

हफ्ते भर सीमांत को पढ़ाकर अन्विता थक गयी. एक दिन में कितना पढ़ाना चाहिए इसका अभ्यास उसे नहीं था. कॉलेज में पढ़ाने का तो निश्चित समय होता है. शिष्य निस्संदेह रुचि और भक्ति से पढ़ता है. एक दिन पढ़ाने के बीच से दृष्टि उठाने पर उसे अपने को श्रद्धापूर्वक देखते हुए पाकर अन्विता के कुछ पूछने के पूर्व ही सीमांत से कहा, "आपको कुछ बहुत बड़ा व्यक्ति होना चाहिए था."

अन्विता हंसी, "बड़ी नहीं हूं क्या? उम्र में, कद में, अभाग्य में...सभी में तो..."

कहकर अन्विता को लगा अपने छात्र के सामने अभाग्य की बात उसे नहीं कहनी चाहिए थी.

उसने थोड़ा-सा पढ़ाया. वह फिर बोला, "मिस सेनगुप्ता को आप कैसे जानते हो ?"

वे मेरी नेबर मिसेज जलोटा के पास आती रहती हैं. कभी-कभार मुझसे भी उनकी भेंट हो जाती है. मेरा उनसे खास परिचय नहीं है."

"मैं उनका बहुत थैंकफुल हूं कि उन्होंने मुझे आपके पास भेज दिया."

अन्विता को मुंह पर अपनी प्रशंसा सुनने में अजब-सा लगा. थोड़ा हंसकर उसने आगे पढ़ाना जारी रखा.

"मैं घर में भी आपकी बात करता रहता हूं. इतने बड़े घर में आप अकेले रहते हो...आपके व्यवहार के कारण लोग आपके पास आते रहते हैं...आप इतनी मुसीबतों में हंस सकते हो..."

अन्विता ने क्षण भर रुककर उसकी बात सुनी और पढ़ाती रही.

"मेरा घर भी काफी बड़ा है, हम तीन-चार लोग ही रहते हैं. मैं बाद में भी आपके पास आया करूंगा. आ सकता हूं?"

अब अन्विता को उत्तर देना आवश्यक-सा हो गया, "जब तेरा जी करे, तब आ जाना. इस समय तो पढ़, तू बातें ज्यादा बनाता है, पढ़ता कम है. घर में तो तू बिल्कुल नहीं पढ़ता होगा? पढ़ा कर बैठकर...गाने सुनता रहता होगा..." सीमांत ने ही अपने संगीत-प्रेम की बात अन्विता को बतायी थी.

"मेरे यहां आने के बाद मिस सेनगुप्ता मिली थीं? मेरे बारे में कुछ कह रही थीं?"

अन्विता ने किताब बंद कर दी, "हां, वे कह रही थीं कि तू बहुत शैतान है. तुझे डांटकर रखूं...पर मैंने तो तुझे सिर पर चढ़ा रखा है..."

किताब बंद देखकर उसके चेहरे पर स्वस्ति उभरी, "मिस सेनगुप्ता बड़ी सख्त हैं. स्कूल में उन्होंने मेरा कान ऐसा खींचा था कि डॉक्टर को बुलाना पड़ा था. मेरा कसूर सिर्फ इतना था कि मैं डाइनिंग रूम में धीरे-धीरे खा रहा था, जबकि और बच्चे खाना खाकर चले गये थे...ऐसी हैं, तभी तो उनकी शादी नहीं हुई..." बचपन की बात वह ऐसे दुखी होकर बता रहा था मानों कल की घटना हो.

"तेरे जैसों को पढ़ाकर यही तो होगा. पहले तो शैतानी करते होगे, पिटने पर बद्दुआ देते होगे...अच्छा है जो मुझे इंगलिश मीडियम स्कूल में नहीं पढ़ाना पड़ा. मेरी छात्राएं मेरा सम्मान तो करती हैं."

वह बातों में अन्विता से आगे निकल जाना चाहता था, "डॉ. अन्विता श्रीकांत, आप अपने मुंह

◆

अपने वैधव्य को झेलते, अपनी इकलौती संतान से दूर रहते उसके एकाकी जीवन में आया है यह नन्हा मित्र, आयु के इतने अंतर के बावजूद.

मियां मिट्ठू बन रही हो."

अन्विता चिढ़ गयी, "तू ऐसे तो कहेगा ही, वाह रे कलियुगी चेले!" माना आजकल एकलव्य तो कोई हो नहीं सकता पर तू तो सारे ज्ञान का रौब मेरे ही ऊपर डालने में लगा रहता है."

सीमांत मुस्कराता रहा, "मैं तो आपको चिढ़ा रहा था. आप भी महाभारत सीरियल की एक्जांपुल बहुत देते हो."

अन्विता द्वारा महाभारत सीरियल की अपने संदर्भ में की बात उसने उसी पर पलट दी थी. वह दिनोंदिन मुंहलगा होता जा रहा था.

कल रात को सीमांत ने उसे घर से फोन किया था. किसी बूढ़े की-सी आवाज बनाकर बोल रहा था, "हलो, थ्री एट ट्रिपल थ्री..."

"हां, कौन साहब बोल रहे हैं?" अन्विता ने पूछा.

"बताओ कौन?"

'बताइये' को 'बताओ' कहने से अन्विता समझ गयी सीमांत है. बच्चा है, आवाज बदलकर उसे धोखा देने का आनंद ले रहा है. अन्विता जान-बूझकर कुछ देर तक न समझने का अभिनय करती रही थी.

पढ़ने के दौरान बीच-बीच में वह बोलता बहुत है. महाभारत सीरियल की बातें करना उसका खास शौक है. वह उसे सूरदास पढ़ा रही थी—'मोहन मांग्यो अपनो रूप...'

राधा का जिक्र आते ही उसने अपनी जानकारी बघारी, "महाभारत में राधा को कृष्ण से बड़ा दिखाया गया है. कहते हैं कृष्ण पैदा हुए थे, तब राधा पालने के पास खड़ी थी. वे विवाहिता थीं और वे कृष्ण की शायद कुछ रिश्तेदार भी लगती थीं...कृष्ण की शादी तो रुक्मिणी से हुई थी, राधा तो कृष्ण से फिर कभी मिली भी नहीं थीं..."

अन्विता दो-तीन पद पढ़ा देना चाहती थी, "तूने तो राधा के बारे में अच्छी-खासी रिसर्च कर रखी है! यह भी कहते हैं कि राधा कोई थी ही नहीं, यह नाम आराधना शब्द से निकला है."

"होंगी तो जरूर.'—उसने जोर देकर कहा, "ऐसा तो हो नहीं सकता कि राधा एकदम न हों..." राधा के बारे में उसकी व्यग्रता अन्विता को बड़ी रोचक लगी.

"तू ऐसा कर...मुझे पढ़ा दे." अन्विता ने किताब उसके सिर पर धमक दी.

सीमांत खिसिया गया, "नहीं, मैं क्या पढ़ाऊंगा आपको! आप पढ़ाओ, अब मैं बात नहीं करूंगा."

इसी बीच बराबर के कमरे में अन्विता के फोन की घंटी बजनी शुरू हुई. वह फोन रिसीव करने गयी तो वह आकर दरवाजे पर खड़ा हो गया था, "आपका बैडरूम तो काफी बड़ा है. आप इतने बड़े घर में अकेले कैसे सोते हो? डर नहीं लगता?"

अन्विता चुप रही.

"आप ढंग से खाते-पीते नहीं हो, तभी इतने कमजोर हो."

"बिना खाये कोई रह सकता है?" अन्विता ने उत्तर देने के लिए कहा.

"आपको खाने में क्या पसंद है?" सीमांत ऐसे पूछ रहा था, जैसे उसकी पसंद की चीज़ लेकर आयेगा.

"फल..." जब तक वह कुछ और पूछे अन्विता ने स्पष्ट किया, "क्योंकि उन्हें पकाना नहीं पड़ता."

"आप आलसी भी हो." उसने तुरंत अपनी राय दी.

फोन पर बातचीत से वह समझ गया था कि अन्विता की चचेरी बहिन का था, "आप अपनी दीदी के यहां जाते

"इकलौती संतान को इतनी दूर भेज देना आसान नहीं है." सीमांत ने कहा था, "वे गयी कहां हैं? वे तो आपकी याद में हरदम आपके साथ हैं."

नहीं हो?''

''कभी-कभी जाती हूं. उनका घर कुछ दूर पड़ता है.''

''मैं छोड़ दूंगा. मेरे घर से उनका घर पास है.''

अन्विता को ध्यान आया, ''मैं कल सुबह तेरे घर की तरफ गयी थी. २६ नंबर बंगले में मुझे किसी आदमी से जरूरी काम था.''

''मेरे घर आ जाते.''

''सुबह के सात बजे थे जनाब! वह टाइम था किसी भले आदमी के घर जाने का?''

''मैं 'किसी आदमी' हूं आपके लिए?''

''चल भला आदमी तो तुझे माने लेती हूं. सात बजे सुबह सड़क पर सिर्फ मॉर्निंग वॉक करने वाले लोग दिख रहे थे. घरों में लोग सोये पड़े थे. जिससे मेरा काम था उसके गेट में ताला पड़ा था. 'बिवेयर ऑफ डॉग्स' की तख्ती अलग लगी थी. उनसे मिल भी नहीं सकी.''

''हमारे यहां सब सुबह जाग जाते हैं. मैं जॉगिंग के लिए जाता हूं.''

''तब तो तेरे घर में कोई मुझे जरूर पहचानता!''

आप बता देते. एक दिन मैं आपको अपने घर ले जाऊंगा. इतवार को महाभारत दिखाकर पहुंचा जाऊंगा. आपका टी.वी. खराब है न.''

अन्विता को उसके भक्तिभाव का पता है. एक दिन अपनी मित्र के साथ बाजार से लौट रही थी. सुनंदा कांपलेक्स के सामने सीमांत मिल गया, ''मैं आपको घर छोड़ देता हूं'' उसने तुरंत कहा था.

अपनी मित्र के साथ के कारण उसने मना कर दिया. थोड़ी दूर जाकर मित्र का रास्ता बदल जाता था. अन्विता उनसे पृथक होकर घर की तरफ बढ़ी थी कि सीमांत दुबारा मिल गया. वह घूमकर वापस उसी रास्ते पर आ गया था. अपनी मोटर साइकिल पर वह उसे घर तक छोड़ गया था.

अन्विता को सीमांत के आने, उसे पढ़ाने, उससे बातें करने का व्यसन-सा होता जा रहा है. अपने वैधव्य को झेलते, अपनी इकलौती संतान से दूर रहते उसके एकाकी जीवन में आया है यह नन्हा मित्र, आयु के इतने अंतर के बावजूद. सीमांत भी उसे एक वेतनभोगी ट्यूटर मात्र समझता होगा क्या? वह सोचती रही थी.

एक दिन मोटर साइकिल गेट के बाहर खड़ी करके आया. पीली शर्ट पहने, कंधे पर पीला स्वेटर पड़ा हुआ, बेहद आकर्षक लग रहा था. अन्विता से उसने इंगलिश के टीचर डॉ. महेश्वरी का पता पूछा. तुरत चला गया. लगभग आधे घंटे में लौट आया...महेश्वरी जी नहीं मिले थे. सामने वाली कुर्सी पर वह बैठ गया...पानी मांगा...पानी पीकर उठा अन्विता के बराबरवाली कुर्सी पर बैठ गया. पढ़ाते हुए अन्विता ने लक्ष्य किया कि वह कुछ सुन नहीं रहा है, उसका ध्यान न जाने किधर है. खोया-खोया-सा बैठा है.

''सीमांत!'' अन्विता कुछ आगे कहती, उसके पहले ही उसने बड़ी जोर से 'हां' कहा, जैसे किसी ने उसे दूर से, जोर से पुकारा हो.

''इतने जोर से क्यों बोले?'' अन्विता ने डांटा, ''सो रहे थे क्या?''

''आज पढ़ाई समझ में नहीं आ रही,'' सीमांत ने किताब बंद कर दी, ''आज बातचीत करते हैं.''

''बातें करने के लिए पैसे खर्च करोगे?'' अन्विता ने परिहास किया, ''तू तीन दिन तक मुझसे ट्यूशन फीस पूछता रहा था. मैंने तो कभी किसी को ऐसे पढ़ाया नहीं मुझे पैसे मांगने में संकोच हो रहा था. तभी मैं कह देती थी कि मिस सेनगुप्ता से पूछ लेना. तू कैसे भाव-ताव

वह हमेशा अन्विता के हृदय के कोमल-झीने तंतुओं को छू देता है. जब आया था, बाहर निकलते समय कहता था, ''बाहर बैठा करो न. आप शाम को कमरे में क्यों रहते हो?''

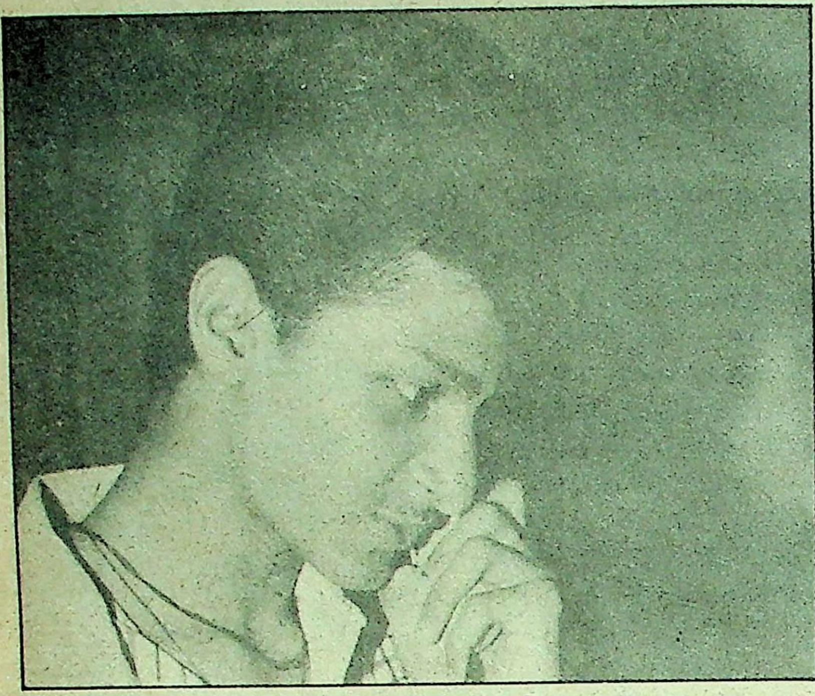

कर रहा था, बिजनेसमैन जो ठहरा.''

वह शरमा गया, ''संकोच तो मुझे भी हो रहा था पर मैंने पूछ ही लिया था.''

''तुझे बहुत पैसे देने पड़ेंगे. चंद्र कश्यप को तो एक ट्यूटर डेढ़ सौ रुपयों में तीन विषय पढ़ा रहा है, तूने बताया था न!''

''आपको नाम याद है,'' सीमांत का गोरा चेहरा झेंप से लाल हो गया, ''आपने मुझसे कहा था, तुम भी उसी ट्यूटर से पढ़ लो. मुझसे पढ़ना है तो या तो मुफ्त में पढ़ लो या अच्छा पेमेंट करो. नयी मोटर साइकिल पर घूमते हो, अध्यापक को पैसे देने में कंजूसी करना चाहते हो!''

''कभी-कभी तो तेरी याददाश्त मुझे काफी तेज लगती है,'' अन्विता हंसी, ''पैसे ठहराने में मैं तुझे अपना गुरू मान सकती हूं. मैं तो इतनी बड़ी होकर भी एकदम व्यवहारज्ञान शून्य हूं. पैसे कमाने-बचाने में मैं हमेशा मूर्ख रही.''

''ऐसा कहकर आप अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो.''

अन्विता हंसी, ''तू मुहावरों का ज्ञान मत छांटा कर. सारे मुहावरे मेरे ऊपर फिट कर देता है...अपने लिए भी कुछ रखा कर...''

''अधजल गगरी छलकत जाये,...'' उसने तुरंत कहा.

थोड़ा पढ़ा, फिर बोला, ''आपकी मेहमान आ गयीं?''

''हां, आज आयीं, कुछ दिन मेरे साथ रहेंगी, तभी तो मैंने तुझे देर से बुलाया था, सब्जियां बनाकर रख दी थीं, जब वे आ गयीं, तब पूरियां बनायीं...''

''...फिर बेटे को याद किया...'' उसने वाक्य पूरा किया.

वह हमेशा अन्विता के हृदय के कोमल-झीने तंतुओं को छू देता है. जब आया था, बाहर निकलते समय कहता था, बाहर बैठा करो न! आप शाम को कमरे में क्यों रहते हो? आप बहुत काम करते हो. कभी गाने वगैरह सुना करो. गजलें सुनते हो आप?''

''नहीं, गज़लें मुझे उदास करती हैं. दूसरे मेरी समझ में उर्दू अधिक नहीं आती.''

''इतनी मुश्किल कविताओं का अर्थ तो आप बता देते हो. उर्दू कैसे समझ नहीं आयेगी? मुझे गुलामअली की आवाज बहुत अच्छी लगती है, आपको मैं उसके कैसेट लाकर दूंगा. कैसेट प्लेयर तो होगा आपके पास?...हर समय आप काम में मत पिसा करो. चेहरे से आप कमजोर नजर आते हो.''

''इकलौती संतान को इतनी दूर भेज देना आसान बात नहीं है,'' अन्विता का दुखों से लबालब भरा मन इतने छोटी आयु के व्यक्ति के संवेदन से भी छलक जाता है.

सीमांत के चेहरे पर दर्द उभरा. उसके चेहरे पर भाव बड़ी पारदर्शिता से उभरते हैं.

एक दिन अन्विता ने उससे कहा भी, ''तू एक्टर क्यों नहीं बन जाता, तरह-तरह की आवाजें भी बना लेता है.'' अन्विता का संकेत उसके फोन-वार्तालापों की तरफ था.

''घरवाले नहीं मानते.'' उसने शरमाते-शरमाते उसे बताया कि स्कूल के साथ वह टूर पर गया हुआ था, वहां उसे कोई पार्टी मॉडलिंग का ऑफर दे रही थी.

''कर लेता...'' अन्विता ने उसके होमवर्क का करेक्शन करते हुए कहा, ''तू कोई लड़की तो था नहीं. अच्छे से पैसे मिलते, कपड़े भी मिलते. पर तू दुबला हो गया है. पहले आया था, तब अच्छा था. बहुत पढ़ता है क्या?...तुझे फिल्मों में चले जाना चाहिए, तब पढ़ना भी नहीं पड़ेगा.''

वह नाराज-सा हो गया, ''पढ़ना तो मुझे अच्छा लगता है.''

''हिंदी तेरे किस काम आयेगी, ट्रकवालों से बातचीत करने के?'' सीमांत के पिता के ट्रांसपोर्ट के व्यापार को लक्ष्य कर अन्विता ने कहा.

''हिंदी मुझे अच्छी लगती है. मातृभाषा जो है. आप अच्छे हिंदी के प्रोफेसर हो जो हिंदी पढ़ने को मना करते हो. मैं हर समय थोड़े ही पढ़ता हूं!'' सीमांत ने सुबह व्यायाम, दिन में पढ़ाई, शाम को बिलियर्ड सीखने का अपना व्यस्त कार्यक्रम बता डाला.

पड़ोसी गीता कमरे में आ गयी थी. मॉडलिंग वाली बात उसने भी सुन ली थी, बोली, ''तुम एकदम आमिरखान जैसे लगते हो, पिक्चर में चले जाओ. 'कयामत से कयामत तक' देखी है तुमने?''

वह मुस्कराया. अन्विता ने कहा, ''यह वैसे ही अपने को हीरो समझता है. परसों काली शर्ट पहनकर पूरे हीरो के स्टाइल में आया था. तुमने उसे आमिरखान बता दिया, अब तो यह जो पढ़ाई-लिखाई करता होगा वह भी छोड़ देगा!''

यह बच्चा उसके जीवन की समूची जड़ता को अपने एक वाक्य से तोड़कर चला गया है. रात तक वह कितनी बार रोती रही.. बहुत दिनों बाद उसे इतना रोना आया था.

संगीता के जाने के बाद उसने पूछा, ''आपको याद रहा कि मैंने कल काली शर्ट डाली हुई थी?''

''काला रंग होता ही स्ट्राइकिंग है,'' अन्विता ने उसे छंद पढ़ाने प्रारंभ कर दिये, जो उसे सबसे अधिक कठिन और उबाऊ लगते थे. उसकी काली शर्ट की बात से वह उतरा गयी. अपने बेटा न होने से अन्विता को समझ नहीं आता कि लड़के की प्रशंसा कैसे की जाये. दूसरे अध्यापिका होने से एक बड़प्पन उसे हमेशा बांधे रखता है.

''आपका इनकमटैक्स का काम हो गया?''

उसे स्नब करने की बजाय अन्विता ने कहा, ''आज जब मैं ऑफिस पहुंची तो देखा पहले वाले अफसर का ट्रांसफर हो गया है. उनकी जगह दूसरा व्यक्ति बैठा हुआ था. ही वाज ए हैंडसम फेलो. जो सुंदर होता है, वह व्यवहार में भी अच्छा होता है.'' एकाएक बात बीच में रोककर अन्विता ने कहा, ''पर तू ऐसा नहीं है.''

वह मुस्कराया. अन्विता द्वारा की गयी अपनी व्याजस्तुति वह समझ गया था.

अन्विता सोफे के साथ की कुर्सी पर बैठी हुई थी. सोफे पर बैठे सीमांत ने एक कुशन सिर के नीचे लगा रखा था और एक गोद में रख रखा था. अन्विता ने 'वाह लाटसाहब!' वाली दृष्टि से देखा तो उसने चटपट कुशन अपने सिर के नीचे से निकालकर अन्विता के सिर के पीछे लगा दिया. अन्विता ने कुशन निकालकर कार्पेट पर फेंक दिया, ''इतनी नक्शेबाजी तेरे लिए ठीक है. मैं वैसे ही ठीक हूं. पढ़ता-वढ़ता तो ध्यान से है नहीं, मैं बकवास करती रहती हूं.''

उसने कुशन उठाकर यथास्थान रख दिया और पढ़ने लगा. सिर झुकी होने से उसके घने, सुनहले, कोमल बाल अन्विता की बांह के एकदम पास थे बच्चे के जन्म के बालों की सुगंधि देते हुए. अन्विता ने कितनों को शिक्षा दी है. सीमांत को पढ़ाना एक नया और प्यारा अनुभव है.

सीमांत के प्रति उसके मोह का कारण उस लड़के की संवेदनशीलता है. अन्विता के यह कहने पर कि 'इकलौती संतान को इतनी दूर भेज देना आसान नहीं है.' सीमांत ने कहा था, ''वे गयी कहां हैं? वे तो आपकी याद में हरदम आपके साथ हैं.''

उस दिन सीमांत के जाने के बाद अन्विता को लगा कि उसका अस्तित्व जैसे समूचा हिल गया है.

सीमांत के एक वाक्य ने उसे भीतर तक पिघला दिया है. दैवी चोट, अपना अकेलापन, भविष्य की अनिश्चितता, निकटतम संबंधियों के व्यवहार ने उसे अनुभूतिशून्य-सा बना दिया था. यह बच्चा उसके जीवन की समूची जड़ता को अपने एक वाक्य से तोड़ कर चला गया है. रात तक वह कितनी बार रोती रही...बहुत दिनों बाद उसे इतना रोना आया था.

यह लड़का भी अजीब है. एक ओर तो इतनी संवेदनपूर्ण और समझदारी की बातें करने वाला और दूसरी ओर बेहद चुलबुला. कॉलबेल बजाकर छिप जायेगा या लगातार बजाता रहेगा. एक दिन तो अन्विता खीज गयी थी, ''बजाते रहो घंटी, मैं दरवाजा नहीं खोलूंगी...शैतान कहीं के!''

डाइनिंग टेबुल पर बैठकर पढ़ता है तो बिना हत्थों की कुर्सी में अधलेटा-सा हो जाता है. अन्विता ने डांटा, ''तुझसे ठीक से बैठा नहीं जाता! तू वह कुर्सी ले ले जिस पर कुशन है. रईस जो ठहरा!''

वह दो कुर्सियां उठा लाया.

''मेरे लिए रहने दे. तू ही इधर-उधर करवटें-सी बदलता रहता है. मुझे तो कष्ट सहने की आदत है...सारा फर्नीचर उलट-पुलट करने से तो अच्छा है सोफे पर बैठ जाते हैं.'' वह उठकर सोफे पर जा बैठी.

सीमांत बराबर में सोफे पर बैठ गया. अन्विता को आमने-सामने बैठकर पढ़ाने की अपेक्षा पास बैठे सीमांत को पढ़ाना अधिक ठीक लगा. बिना उसका मुंह देखे बिहारी और घनानंद के रसमय पद्य उसने बिना किसी हिचकिचाहट के पढ़ा दिये.

''मुझे घनानंद अच्छे लगे.'' वह अपनी राय दे सकता था.

अन्विता ने रीतिमुक्त कवियों के बारे में उसे बताते समय बोधा की प्रेमिका सुभान के बारे में बताया था. दूसरी बार उसके मुंह से बोधा की प्रेमिका का नाम सुजान निकल गया. सीमांत ने उसकी त्रुटि तुरंत पकड़ी, ''आप घनानंद की प्रेमिका बोधा को दिये दे रहे हो.''

हंसकर उसकी टिप्पणी को उड़ा देने के सिवा अन्विता और क्या कहती.

''आप सोने की चेन नहीं पहनते?'' अन्विता के गले में चांदी की चेन देखकर उसने पूछा.

दूसरी बार उसके मुंह से बोधा की प्रेमिका का नाम सुजान निकल गया. सीमांत ने उसकी त्रुटि तुरंत पकड़ी, ''आप घनानंद की प्रेमिका बोधा को दिये दे रहे हो.''

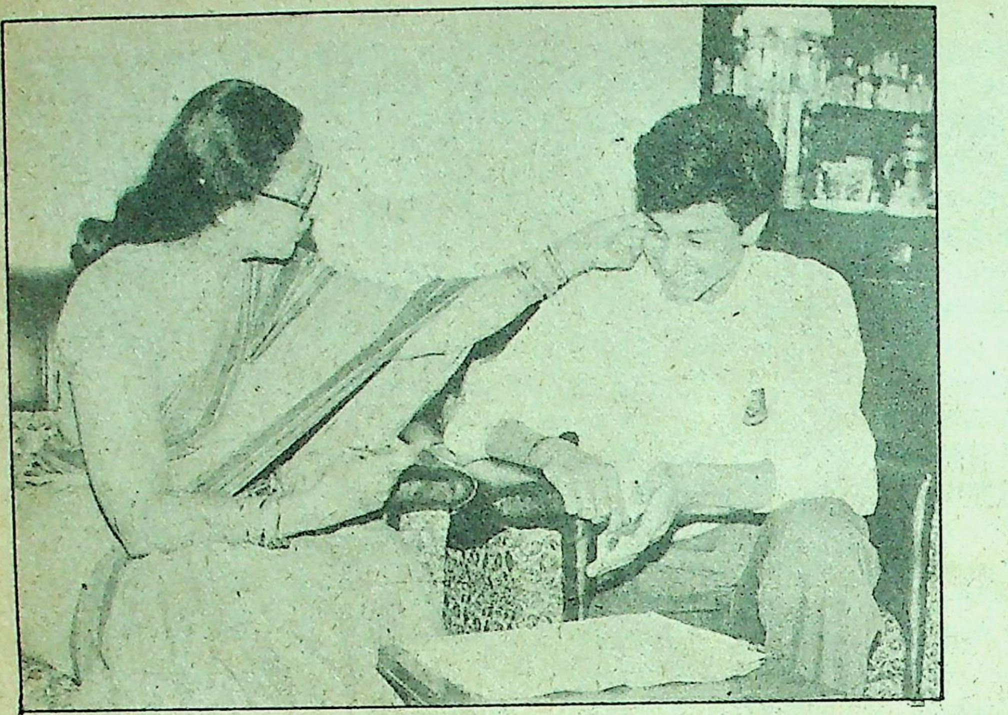

''मेरी चेन कोई दिन में खींच ले गया था. तबसे मैंने चेन पहनना छोड़ दिया है. दूसरे जेवर भी उतार दिये तभी से...''

''...सब जेवर संभाल कर रख दिये, बेटी की शादी में काम आयेंगे, फिर मैं संन्यास ले लूंगी...''

अन्विता ने उसके सिर पर चपत जमायी, ''तू मेरे शब्दों को मत दोहराया कर... बदतमीज कहीं का!''

वह अन्विता को घर में एक स्कूल खोलने की सलाह दे रहा था. तब अन्विता ने कहा था, ''बहुत कमा-खा लिया, तू मुझे मोह-माया के जाल में फंसने को कह रहा है, मैं संन्यास लेने की सोच रही हूं. क्या करूंगी मैं रुपये-पैसों का?''

''पैसों से बहुत काम हो सकते हैं. आप रंगीन टेलिविजन ले सकते हो. सोना खरीद सकते हो, कार रख सकते हो, अपनी बेटी से मिलने जा सकते हो.''

''यह सब कुछ अब मेरे लिए नहीं, मैंने अपनी जिंदगी जी ली जैसी कुछ भाग्य में थी...''अन्विता ने बेटी से मिलने जा सकने वाली बात सारे प्रलोभनों में से छांट ली थी मन ही मन.

सीमांत ने किसी का शेर कहा, ''कुछ पी ली कुछ छलका दी, यूं ही हमने जिंदगी बिता दी.''

अन्विता चुप रही. कुछ कहने-सुनने की जरूरत भी नहीं थी.

एक दिन दोपहर में वह जल्दी आ गया. अन्विता सोकर उठी थी. मुंह धो रही थी. घंटी बजाने के ढंग से समझ गयी, सीमांत होगा. दरवाजा खुलने तक लगातार बजाता रहेगा. दरवाजा खोलने पर उसके भीगे मुंह को देखकर सीमांत ने पूछा, ''सो रहे थे?''

''हां, तू बैठ, हाथ-मुंह पोंछकर मैं स्वेटर पहन लूं, बिस्तर से निकलकर ठंड लग रही है.'' अन्विता ने झुरझुरी ली, सीमांत को खाली शर्ट पहने देखकर उसने पूछा, ''तुझे ठंड नहीं लग रही?''

''नहीं!'' वह मुस्कराया, ''बच्चों को मैं छेड़ती नहीं, बूढ़ों को मैं छोड़ती नहीं, चाहे ओढ़े सात रजाई....पर आप तो बूढ़े नहीं हो.''

''बूढ़ों के क्या सींग-पूंछ होते हैं? बूढ़ी तो हो ही रही हूं.''

''आपको तो सौ साल जीना है. ग्रैंड चिल्डरैन खिलाने हैं.'' उसने आशीर्वाद की मुद्रा में कहा.

''अच्छा-अच्छा दादाजी धन्यवाद! तू बोलता बहुत है.''

''क्योंकि मैं शठ और धूर्त हूं.''

तुलसी लिखित ''अंगद-रावण-संवाद'' में प्रयुक्त इन शब्दों को सीमांत द्वारा अपने लिए प्रोग करने पर अन्विता को हंसी आ गयी.

''मैं आपको काफी हंसाता हूं.''

वह अपने बारे में अन्विता की राय जानना चाहता है. अन्विता उसकी तरह मुखर नहीं हो सकती. उसने चुपचाप उसे पढ़ना प्रारंभ कर दिया. मन में विगत वर्ष घूमते रहे—पति की बीमारी के दिनों की दुश्चिंताएं, परिश्रम, आशंकाएं, परेशानियां, तत्पश्चात उनकी मृत्यु का शोक, अकेले जीवन की अनेकानेक समस्याएं. वह सोचती थी कि वह कभी हंस नहीं सकेगी. सीमांत की बात ने उसकी आंखों में आंसू ला दिये.

आंखें चश्मे में छिपी थीं, सीमांत बराबर में बैठा था. अन्विता ने हल्के से नाक सुड़की तो सीमांत ने सिर उठाकर देखा. पर बोला कुछ नहीं. अन्विता उसकी इस भावप्रवणता और समझदारी पर हैरान रह गयी. उस दिन उससे सीमांत को ठीक से पढ़ाया नहीं गया.

सीमांत उसके जीवन में एक निश्चित बदलाव लेकर आया है. उसने अपनी मित्र वंदना को सीमांत के बारे में बताया था. यह भी कहा था कि सीमांत के आने के बाद से

वंदना उसके खिले चेहरे को देखकर कह रही थी, ''तुम ऐसे ही हंसती रहा करो, कितनी अच्छी लगती हो हंसते हुए... मैं तुम्हारे सीमांत को देखना चाहती हूं.''

वह हंस सकी है. वंदना उसके खिले चेहरे को देखकर कह रही थी, "तुम ऐसे ही हंसती रहा करो, कितनी अच्छी लगती हो हंसते हुए...मैं तुम्हारे सीमांत को देखना चाहती हूं."

उसका सीमांत के बारे में सोचना सकारण है क्योंकि निकटस्थ और कोई व्यक्ति सोचने के लिए जो नहीं है. सीमांत को तो ऐसा कोई अभाव नहीं है. फिर भी वह उसके बारे में सोचता है, प्रयत्न करता है वह खुश रहे, उसे अच्छी तरह तैयार देखकर प्रसन्न होता है. अन्विता की बेटी भी मां को नार्मल देखकर प्रसन्न होती है, पर वह तो अपनी आत्मजा है. सीमांत से तो यह ले देकर महीने भर का गुरु-शिष्य संबंध है.

सीमांत उसके लिए होली की मिठाई लेकर आया था. होली के दिन आने को कह गया था, आ नहीं पाया, उसके बहुत से मित्र आ गये थे. शाम को उसने फोन किया था. मिठाई का डिब्बा अन्विता के हाथ में पकड़ाकर वह चरण-स्पर्श करने को झुका. फिर थोड़ी देर बाद आने को कहकर वह कहीं चला गया. अन्विता ने देखा, मिठाई के डिब्बे के साथ एक कागज पर लिखा है—"डीयरेस्ट मैडम, विद लव एंड रिगार्ड्स." पुनश्च करके लिखा था, "होप यू आल्वेज कीप स्माइलिंग."

अन्विता ने वह कागज सहेजकर अपने महत्वपूर्ण कागजों में रख दिया. सीमांत की शुभाकांक्षाओं ने उसे भीतर तक छुआ. पिछले अगस्त में डॉक्टर ने उसे गले में कैंसर का शक बताकर चेकप के लिए दिल्ली भेजा था. आसन्न अंत की संभावना में उसने पहली बार अपने लिए सोचा था. वंदना कहती है, "तुम सोचो जब तुम्हारी शादी नहीं हुई थी, तब तुम क्या बनना चहाती थीं, वही बनने की कोशिश करो."

सीमांत आधे घंटे में लौट आया. कल होली के दिन भर के हुड़दंग के कारण वह थका हुआ लग रहा था. उसे उबासियां आ रही थीं. अन्विता ने पढ़ना प्रारंभ कर दिया थ. सीमांत ने पूछा, "आने होली खेली थी?"

"नहीं, मेरा आठ आने का गुलाल भी बच गया."

सीमांत ने कोई उत्तर नहीं दिया. अपने युवा साथियों के साथ होली की धींगामुश्ती की स्मृतियों में वह खोया हुआ था. अन्विता को लग रहा था कि वह बहुत उखड़ा-उखड़ा सा पढ़ा रही है. सीमांत ने राय दी, "मुझे भूषण अच्छे नहीं लगे, घनानंद अच्छे लगते हैं, जायसी ने भी अच्छा लिखा है..."

"तू ध्यान से पढ़ता तो है नहीं, टिप्पणी करने को तुला बैठा रहता है. मैं तुझे शिवाजी के बारे में कुछ बता रही थी तो तूने मुझे मुसलमानों के खिलाफ ठहरा दिया था. निष्कर्ष तो तू एकदम निकाल लेता है."

गीता पूछ रही थी, "आपका स्टूडेंट होली के दिन नहीं आया?" अन्विता को यह खोज-बीन अच्छी नहीं लगी. वह आये न आये गीता को क्या लेना-देना है? मन में कसका—सीमांत को आना चाहिए था.

सीमांत थकान के कारण एकाग्र नहीं हो पा रहा था. होली के दिन के अन्विता के अकेलेपन को ध्यान आने पर उसने पूछा, "आपके पास लोग आते तो रहते हैं, कल कोई नहीं आया?"

"शाम को मेरे रिश्तेदार आ गये थे. एक लड़का भी आया था, रशियन भाषा का इंटरप्रेटर है, साहित्यिक अभिरुचि वाला है. मुझे पूछ रहा था कि मैं कभी-कभी आपके यहां आ सकता हूं? मैंने कहा, क्यों नहीं, यू कैन कम, यू आर जस्ट लाइक माई सन."

"गीता जी नहीं आयीं?"

अन्विता ने कहा, "कल वह यहीं तो थीं, तुमने फोन पर आवाज बदलकर मुझे और गीता को डराया क्यों था?"

"आप डरते बहुत हो. आपने मुझे पहले दिन नहीं

अन्विता ने देखा, मिठाई के डिब्बे के साथ एक कागज पर लिखा है—"डीयरेस्ट मैडम, विद लव एंड रिगार्ड्स." पुनश्च करके लिखा था, "होप यू ऑल्वेज कीप स्माइलिंग."

डरा दिया था. अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, न जाने क्या-क्या कह-कह के..."

"वो सब तो तेरे कोर्स में था. मैं तो तुझे भगाने वाली थी. जब तू मुझसे पैसे ठहरा रहा था. पता नहीं क्या सोचकर मैंने तुझे अपने शिष्यत्व में ले लिया."

"सब काम ईश्वर की मर्जी से होता है." उसने अन्विता के इस भाग्यवादी वाक्य को दोहराया. "आप किस भगवान को मानते हो?' अन्विता के बारे में जानने की उसे बड़ी उत्सुकता रहती है.

"किसे बताऊं? अपने यहां ढेर सारे देवी-देवता हैं. तू किसे मानता है?"

"मैं तो सुबह नहाकर यह प्रार्थना करता हूं—"क्यों व्यर्थ चिंता करते हो, किससे व्यर्थ डरते हो? आत्मा न पैदा होती न मरती है—" थोड़ा बता कर वह रुका और अचानक विषय बदलकर कहने लगा, "एक लड़की आपसे पढ़ना चाहती है."

"रहने दे, मैं ट्यूशन कभी नहीं पढ़ाती. तू ही मेरा पहला और आखिरी शिष्य है. क्लास में दूर बैठी छात्राओं को पढ़ाना आसान है. तुझे मैं पास बिठाकर पढ़ाने लगी तो मुझे पहले दिन पढ़ाना नहीं आ रहा था."

"पर आपने अच्छा पढ़ा दिया."

"तू मुझे एक सर्टिफिकेट दे देना."

"अभी लो." उसने अन्विता का हाथ पकड़कर हथेली पर लिखा—'आप महान हैं.' फिर बोला, "आपकी हथेली में पसीना आ रहा है, लिखा नहीं जा रहा. आपने "ऑयल ऑफ ओले' ज्यादे लगा रखा है."

अन्विता ने उसके सिर पर चपत जमायी. उसकी बेटी के प्रसाधनों में ऑयल ऑफ ओले रखा हुआ उसने देख लिया था. वही जानकारी जता रहा था.

"तुझे पढ़ने के सिवा सब कुछ याद रहता है, तुझे पढ़ाकर, फोन नंबर देकर मैं पछता रही हूं. पढ़ना है तो पढ़, बकवास बंद कर..."

"बत्तमीज!" उसने वाक्य पूरा किया. '.मुझे आपका पढ़ाया सब कुछ याद है," मनो चली आंगन कठिन-तातें रातें पांय—उत्प्रेक्षा अलंकार का उदाहरण उसने सुना डाला. बीच में वह हकला गया था. अन्विता को वह अपनी विद्वत्ता से आक्रांत लगता है. फोन पर साफ बोलता रहता है, सामने अक्सर हकला जाता है. अन्विता को उसे छेड़ना अच्छा लगता है, "कोई अंग्रेजी ऐसे अटक-अटककर बोले तो लोग कहें इसे आती नहीं. हिंदी चाहे जैसे बोलो."

"मैं अटकता कहां हूं—सुनिये—सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है..." संदेह अलंकार का यह उदाहरण उसे बहुत अच्छा लगता था.

हिंदी पर उसका अधिकार भले न हो, पर कहीं भी अस्पष्ट अर्थ बताकर उसे टाला नहीं जा सकता. अन्विता जो पढ़ाती है उसे ध्यान से सुनता है. किसी पंक्ति का अर्थ वह दुबारा बताने लगे तो वह मना कर देता है. अन्विता एक दिन नाराज हो गयी, "मैं पूरी पंक्ति का अर्थ दुबारा बताऊंगी तभी तो अर्थ की कड़ियां पूरी बैठेंगी."

वह खिसिया-सा गया तो अन्विता का लगा कि वह उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करता रहता है, वह उसे मजाक में ही सही, हमेशा नीचा दिखाती रहती है. अन्विता ने कहा, "वैसे तु है समझदार, एक बार में अर्थ समझ लेता है."

दो-चार पंक्तियां पढ़ाकर अन्विता ने जैसे वाक्य पूरा किया, "मुझे समझदार लोग अच्छे लगते हैं."

सीमांत ने उसके दो अलग-अलग वाक्यों को जोड़ दिया था, वह संतुष्ट दिखा. अन्विता के प्रशंसा करने के ढंग को वह जान गया था.

अन्विता काफी देर से लगातार भावार्थ बताती रही थी. उसने किताब बंद कर दी थी, "अब मैं एक कप चाय पीकर पढ़ाऊंगी."

"आपकी नौकरानी तो चली गयी जो चाय बना लाती थी. आप मिसेज जलोटा से कहो."

"अरे वे क्यों बनायेंगी!" अन्विता ने मिसेज जलोटा के रुखे स्वभाव को ध्यान में रखकर कहा.

"तो आप अपने किरायेदार से कहना वह चाय बनाया करेगा. उसके किराये में पच्चीस रुपये कम कर देना.

शक्ति

श्रीकान्त चौधरी

अभूतपूर्व लोमहर्षक दृश्य था. स्वयं श्रीराम भी बहुत धैर्य और कुछ आश्चर्य से देख रहे थे. मेघनाथ का गर्जन और उससे भी प्रबल उसके तरकश से निकले तीर.

मेघनाथ गरजा, 'लक्ष्मण, सावधान! ये है जेड एन जी बिजन का बनाया हुआ, चलने में बेजोड़, निशाने में अचूक—सुपर सानिक बाण, अब तुम नहीं बच सकते."

मेघनाथ ने बाण चलाया. लक्ष्मणजी घायल होकर गिर पड़े. □

कहना मेरी चाय बना दिया कर."

"रुपये कम करने की क्या जरूरत है, वह वैसे भी मुझे चाय ऑफर करता रहता है, पर उसके कप बहुत छोटे हैं."

सीमांत मुस्कराया, "आप एक दिन दो बड़े मग खरीदकर उसे प्रेजेंट कर दो, कहना—बेटा बाजार में पसंद आये थे तो तुम्हारे लिए भी लेती आयी थी."

सुबोध जोशी जैसे सीधे-सादे किरायेदार को दो मग उपहार में देकर अपने चाय पीने की तिकड़म बिठाने की बात पर अन्विता के हंसी के कारण पेट में दर्द हो गया.

जब से सीमांत पढ़ने आता है, अन्विता को लगता उसके पास मेहमान बहुत आने लगे हैं. (पढ़ाने में व्याघात शायद ऐसा लगता हो.) एक दिन कोई सेमवालजी आ गये. किसी और के घर का पता पूछने आये थे पर पूरे दो घंटे जमे रहे. सीमांत पूरे समय शैतानी करता रहा. अन्विता को उसकी शैतानियों पर हंसी भी आ रही थी और डर भी लग रहा था कि सेमवालजी नाराज न हो जायें. उन्होंने जाते समय कहा, "मैंने आपका बहुत समय लिया, मुझे आपसे बातचीत करके बहुत अच्छा लगा. यह पता ही नहीं चला कि कब दो घंटे निकल गये. और मुन्ना, तुम्हें भी धन्यवाद जो तुमने मुझे दो घंटे बर्दाश्त किया."

"बर्दाश्त की क्या बात है? इट वॉज़ माय प्लेज़र." वह बाहर तक सेमवालजी को पहुंचा आया. आते ही उसने अन्विता से शिकायत की, "आप भी खूब बातें करते हो, तभी तो वे जम गये थे. अब मैं जा रहा हूं, घरवाले फ़िक्र करेंगे...कल पढूंगा."

बाहर बरामदे में खड़े होकर उसने जींस कमर पर चेक की, "मैं मोटा हो गया हूं?"

"मैंने तुझे पहले नहीं देखा."

"आप कह रहे थे तू दुबला हो गया है, पढ़ता बहुत लगा."

अन्विता समझ गयी कि वह अपने बारे में कुछ सुनना चाहता है. उसने पूछा, 'तेरी लंबाई क्या होगी?"

"पांच फीट नौ इंच!"

"तब तो नाटा हुआ. फाइव नाइन भी कोई हाइट हुई? मोटा जैसे होने लगा है. पढ़ते समय लेट-सा जाता है, ऐसा आलसी रहा तो और क्या होगा!" अन्विता ने उसे छेड़ा.

वह अपने शारीरिक श्रम की बात बताने लगा. आवेश या तेजी में वह हकलाने लगता है.

अन्विता ने उसे आश्वस्त किया, "अभी तो तू बढ़ेगा. बीस साल तक लंबाई बढ़ती रहती है. इनक्रीमिन पिया कर."

वह मुस्कराकर मोटर साइकिल की ओर बढ़ गया.

दो-तीन दिन वह देर से आया था. पिता के साथ व्यापार-संबंधी कोई काम देखना था. तीसरे चौथे दिन साढ़े तीन बजे कालबेल सुनकर अन्विता ने समझा पोस्टमैन होगा. दरवाजा खोलकर उसने बरामदे के सिरे पर जाकर पोस्टमैन को झांका, वह नहीं था, पीछे मुड़ी तो सीमांत को देखकर वह चौंक गयी. घंटी बजाकर वह खंभे के पीछे छिप गया था. उसने काली शर्ट पहन रखी थी. "आज मि. महेश्वरी ने मुझे देर में बुलाया है, कल तो बताया नहीं. आप पढ़ा दोगे अभी?"

"हां, पढ़ लो."

"आपने सोने के टॉप्स पहन रखे हैं."

अन्विता कमरे में आ गयी थी.

"मैंने देख लिया न!" वह सोने के टॉप्स को संकेतिक कर रहा था.

"ऐसी जासूसी तो तू काफी कर सकता है. मैं कहीं गयी हुई थी, अभी-अभी लौटी हूं. तुझे बताया तो था."

"हां, याद आया, आप कब गये थे?"

"गये थे नहीं, गयी थीं."

वह झेंपा, "हां, गयी थी, आपकी फ्रेंड भी गयी होंगी साथ में? आपकी साड़ी बहुत अच्छी लग रही है. और लोगों ने भी तारीफ की होगी. अच्छी लगेगी तो सभी कहेंगे. आप ऐसे ही चौड़े बार्डर पहना करिये."

अन्विता ने प्रशंसा के लिए धन्यवाद भी नहीं दिया, चुपचाप सुनती रही. बच्चों को भी मां-बाप का अच्छा

गौ सेवा

□ दुर्गेश

वे मरणासन्न थे. अंतिम क्षणों में उन्होंने अपने बड़े पुत्र को बुलाकर कहा,"संसार में गौ सेवा से बड़ी कोई सेवा नहीं है. तुम तो अच्छी तरह से जानते हो मैं बरसों तक पैसे-पैसे के लिए तरसता रहा. घर में संपत्ति नाम की कोई चीज नहीं थी. लेकिन विभिन्न गौ सेवा समितियों का कार्य संभालते ही मेरा भाग्य चमक गया. फिर गाय बेचारी खाती भी क्या है? पूले में से एक तिनका..." लड़के ने अपने पिता को आश्वस्त किया. □

'थोड़ी देर बाद उसने सूंघने का अभिनय करके कहा, ''आपने सेंट लगा रखा है?''
अन्विता ने झुककर अपनी साड़ी सूंघी, ''हां, बेटी ने भेजा था.''
''लिखो कि और भेज दें.''
''तुझसे पूछकर ही तो लिखूंगी! तुझे हर बात में दखल क्यों रहता है? पढ़ने-लिखने में तो मन लगता नहीं, इधर-उधर की बातें करवा लो.''

दिखना भाता है. बेटी के स्कूल में फाउंडर्स डे के दिन वह पेरेंट्स के साथ दौड़ी थी तो बेटी कह रही थी, ''और लड़कियों की मम्मी लोगों से, मेरी मम्मी कितनी अच्छी लग रही थीं.''

अन्विता किताब उठाकर झटपट पढ़ाने बैठ गयी. सीमांत ने थोड़ी देर में पूछा, ''आपको मिस सेनगुप्ता मिली थी? क्या कह रही थी?''

''तू अपने को इतना महत्वपूर्ण क्यों समझता है कि वे जब भी मिलेंगी तेरे बारे में बात करेंगी.''

''नहीं, बताओ, आप कह रहे थे कि वे कहती हैं मोटर साइकिल पर हीरो बना घूमता है.''

अन्विता ने किताब पटक दी, ''पढ़ने में तेरा मन कभी नहीं लगता. मैंने तेरी मैडम को कहा कि आपने सीमांत के कान खींच-खींचकर उसे इसकी आदत ही डाल दी है.''

''मैडम को क्या याद होगा! उन्होंने तो पचासों बच्चों के कान खींचे होंगे. बच्चा इनडिविजूअल होता है. वह सोचता है किसने कान खींचे, किसने केनिंग की, किसने डांटा...(हकला कर) किसने सिर पर चढ़ाया.''

अन्विता मुस्करायी. उसके शब्दों को सीमांत ने किस खूबसूरती से उसी पर घुमा दिया. उसने कहा, तेरे कानों को खिंचने की याद आती होगी, आदत जो पड़ी हुई है.''

''लो खींचो.'' उसने अन्विता का हाथ पकड़कर अपने कान पर टिका दिया.

अन्विता ने किताब उठा ली, ''बातें काफी कर चुका, अब पढ़! जायसी तो तुझे अच्छा लगता है.!''

''बनजारा खंड की पंक्तियां—गुनी न कोई आपु सराहा-पढ़कर अन्विता ने कहा, ''तोता तेरी बात कह रहा है कि अपने मुंह मियां मिट्ठू नहीं बनाना चाहिए.''

सीमांत ने अन्विता के लिए यह मुहावरा प्रयुक्त किया था. आज वह चुप रहा.

थोड़ी देर बाद उसने सूंघने का अभिनय करके कहा, ''आपने सेंट लगा रखा है?''

अन्विता ने झुककर अपनी साड़ी सूंघी, ''हां, बेटी ने भेजा था.''

''लिखो कि और भेज दें.''

''तुझसे पूछकर ही तो लिखूंगी! तुझे हर बात में दखल क्यों रहता है? पढ़ने-लिखने में तो मन लगता नहीं, इधर-उधर की बातें करवा लो.''

''आपके एक बेटा भी होना चाहिए था,'' उसने न जाने क्या सोचकर कहा, आप लोगों ने सोचा होगा, बेटी की शादी करके आराम से रहेंगे.''

अन्विता सोचती रही—होना तो न जाने क्या-क्या चाहिए था. सब कुछ वही तो नहीं होता जो हम चाहते हैं. तेरे जैसा खूबसूरत ही होता मेरा बेटा यदि पिता पर जाता तो. तू भी तो मेरे बेटे जैसा ही है. वह चुपचाप सोचती रही, बोली कुछ नहीं. जिस तरह प्रारंभ में उससे रुपये का भावताव कर रहा था, उससे पक्का व्यापारी लग रहा था. उसका निश्छल स्नेह भी अन्विता को कभी-कभी बनावटी को लगता है. व्यापारी वर्ग में एक अतिरिक्त कृत्रिम नम्रता और शिष्टता होती है. अन्विता का अनुभव यही रहा है.

किताब पर निगाह डालते हुए उसने कहा, ''तू बोलता बहुत है.''

''आप नहीं बोलते क्या? जो भी आपसे मिलने आता है, पूरे दो घंटे बैठा रहता है.''

''तू मुझे शिक्षा मत दिया कर. गुरु की श्रद्धा-भक्ति करना सीख. मैं अपने सारे काम रोककर तुझे यही पढ़ाती है?''

उसने हल्के से कहा, ''पता नहीं आपने या किसने पढ़ाया है! मैंने आपको कितना हंसाया है.''

अन्विता ने उसकी बात को अनसुना कर दिया. पढ़ते समय वह किताब के ऊपर कोई आकृति बनाता रहा था. अन्विता ने देखा तो बोला, ''अपने-आप एक शक्ल बन गयी है.''

अन्विता ने उसकी बात का उत्तर न देकर पढ़ाना चालू रखा. देखा कि उसका ध्यान नहीं है. वह पेन से लकीरें खींचने में लगा है, झटके से अन्विता ने काफी खींच ली.

''मैं आपका चित्र बना रहा था.''

अन्विता ने देखा उसके माथे और बालों को उसने काफी सही बनाया है. वह किताब बंद करके उठ गयी. ''तेरा क्या, तू मेरी शक्ल की जगह कोई कार्टून बना देगा. तेरा पढ़ने का मन नहीं है. मुझे भी कुछ काम है. अभी लौटकर कपड़े भी नहीं बदले हैं.''

''कहीं जाना हो तो मैं छोड़ दूंगा.''

''जाना नहीं है. डाक्टर मुझे देखने आयेगा, मेरा परिचित है. दस-बारह दिनों से मेरी तबीयत खराब है.

कंजेशन है, रात को नींद नहीं आती. सांस चढ़ती रहती है."

"मुझे भी डाक्टर को कनसल्ट करना है."

"क्यों तुझे क्या हुआ है?"

"मेरा दिमाग खराब हो गया है."

"यह तो मुझे पहले दिन से ही मालूम है कि तेरे दिमाग का कोई स्क्रू ढीला है. इसमें क्या नयी बात हुई?"

गीता आकर खड़ी हो गयी थी, उसे दरवाजे की तरफ देखते पाकर सीमांत ने पूछा, "आप किसका इंतजार कर रही हो?"

"किसी का नहीं. मैं क्यों किसी का इंतजार करूंगी. तू मुझसे बेकार के मजाक मत किया कर." गीता झूठमूठ नाराजी दिखा रही थी. सीमांत के मसखरे स्वभाव से वह भी परिचित थी.

गीता के जाने के बाद सीमांत ने कहा, "आपने काफी बड़े होकर पी-एच.डी. किया, गीताजी ने कितनी कम उम्र में कर लिया."

"तो क्या हुआ?"

"गीताजी काफी होशियार हैं. आपसे भी ज्यादा."

"तू उन्हीं से पढ़ लेना." अन्विता ने किताब बंद कर दी.

वह अचकचाया, "मुझे तो बस आप ही पढ़ा देना. मैं तो उनकी बुद्धि की प्रशंसा कर रहा था. उन्होंने आपसे कितनी कम उम्र में डाक्टरेट ले ली. आप आप उन्हें शोले पिक्चर की बसंती बता रही थीं. मैं किसी दिन उनसे कहूंगा."

अन्विता सचमुच नाराज हो गयी, "तू अभी बता दे, तू चढ़ा सके तो मुझे सूली पर चढ़ा दे. कैसा शिष्य है कि गुरू को ब्लैक-मेल कर रहा है!"

"मैं तो गीताजी का गुण गा रहा हूं."

अन्विता ने किताब पटक दी, "तू मुझे जला मत!" उसका अभीष्ट सिद्ध हो गया था. अब वह मन लगाकर पढ़ने लगा था.

सात तारीख को सीमांत को अन्विता से पढ़ते महीना पूरा होना था. वह समय से कुछ पहले आ गया और एक मिठाई का डब्बा मेज पर रख दिया, "मैं बाजार से आ रहा हूं आपके लिए थोड़ी मिठाई लेता आया हूं."

"तू मुझे मिठाई परीक्षा देने से पहले ही खिलाये दे रहा है, खैर पास तो हो ही जायेगा."

"आप सारी मिठाई खुद खाना, (उसने अन्विता के मेहमानों को मिठाई खिला डालने की आदत देख रखी थी) कुछ रुककर उसने कहा, "आप मिठाई खाकर थोड़े मोटे होना, पर हम देखने नहीं आयेंगे" वह अन्विता के पास बैठ गया. भावुक-सा हो रहा था, "मैं बचपन से ट्यूशन पढ़ता आ रहा हूं. आपके पास पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगा..."

अन्विता चुप रही.

"आपको कैसा लगा मुझे पढ़ाकर? मैं तो आपका

पहला और आखिरी स्टूडेंट हूं."

"टीचर की कभी पॉजिटिव राय नहीं होती...वह हर अभिव्यक्ति पर लाल निशान लगाने का आदी होता है. उसका अपरहैंड ही रहना चाहिए." अन्विता समझ न सकी कि वह और क्या कहे? वह तो भोला-भाला बच्चा है, अपनी बात भी सरल-सीधी शब्दों में कह सकता है. अन्विता कुछ कहने लगेगी. तो उसके जीवन के दर्दों की लंबी पंक्ति बिखर जायेगी.

"आप कैसे गुरू हो? मैं लिख रहा था तो आप कह रहे थे, भगवान करे गलत लिखा जाये....आप अपना बड़प्पन बनाये रखना चाहते हो."

"नहीं, बच्चे ऐसा नहीं है. अन्विता ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, "माता-पिता और गुरू तो बच्चे को अपने से आगे बढ़ा देखकर प्रसन्न होते हैं.

सीमांत ने तुरंत अपने पहले आग्रह को दोहराया, "मैं आगे भी हिंदी पढ़ना चाहता हूं, आप पढ़ा देना."

"जिंदा रही तो पढ़ा दूंगी." अगले सालों की योजना बनाते समय अन्विता की अगस्त महीने की अपनी बीमारी याद आ जाती है, जो भयंकर भी हो सकती थी.

"आप हमेशा यही जवाब देते हो. ऐसे तो मैं भी मर सकता हूं!"

"ऐसा मत कह," अन्विता विचलित हो उठी, "तू तो बच्चा है, खुश रहे, जिंदा रहे, फले-फूले...मैं तो..."

"...अपना जीवन जी चुकी," उसने अन्विता के पहले कभी कहे शब्द दोहरा दिये, "पर आपकी बेटी को तो आपकी जरूरत है."

"क्या जरूरत है, कह रही थी मुझे फोन करेगी, पर

गीता आकर खड़ी हो गयी थी, उसे दरवाजे की तरफ देखते पाकर सीमांत ने पूछा, "आप किसका इंतजार कर रही हो?"

"किसी का नहीं. मैं क्यों किसी का इंतजार करूंगी. तू मुझसे बेकार के मजाक मत किया कर." गीता झूठमूठ नाराजी दिखा रही थी. सीमांत के मसखरे स्वभाव से वह भी परिचित थी.

किया ही नहीं.''

''आप बच्चों की सी बात करते हो, पिछले हफ्ते ही तो आपने फोन किया था.'' एक वयस्क पुरुष की तरह उसने अन्विता की अनावश्यक व्यग्रता का तिरस्कार किया.

''मैं कल से दूसरे विषय पढ़ूंगा. बाद में हिंदी पढ़ूंगा. कोई चीज समझ नहीं आयी तो पूछने आऊंगा. आ सकता हूं?''

''फोन करके आ जाना, आजकल कॉलेज में परीक्षाएं चल रही हैं. मेरे घर में रहने का समय निश्चित नहीं है.''

गीता आ गयी थी. अन्विता ने उसे मिठाई दी तो देखा डब्बे के साथ सौ-सौ के पांच नोट हैं. इतने रुपये ही अन्विता ने सीमांत को पढ़ाने के लिए बताये थे. उसने रुपये उठाकर सीमांत से कहा, ''तू इतने ढेर रुपये ले आया? मैंने तुझसे बहुत ज्यादे रुपये ले लिये शायद! तू कह रहा था डेढ़ सौ में...''

''आप बार-बार यह बात मत कहो...आप इनसे अपने लिए साड़ी लेना...चौड़ी बार्डर की...''

अन्विता को उसकी प्रशंसा याद आयी जो उसने उसे कानों में सोने के टॉप्स और चौड़े बार्डर की साड़ी को देखकर की थी. अन्विता के भीतर बहुत गहरा सूनापन उभरने लगा...एक महीना सुंदर स्वप्न की तरह बीत गया. आपनी अस्वस्थता, एकाकी जीवन की चिंताएं और व्यस्तताएं, इकलौती संतान का अनिश्चित भविष्य, अन्य ढेर से सोच...सभी कुछ भूली रही वह. एक सुगंधित झोंके की तरह वह उसके संतप्त जीवन में छाया रहा.

''मैं कल आपको अपने घर ले जाऊंगा.''

''तेरे पास होने पर आऊंगी.''

''तब दुबारा आ जाना.''

''नहीं, आजकल मैं बहुत व्यस्त हूं. जब काम नहीं रहता. तब मुझे बहुत सूना लगता है, तब तेरे यहां जाकर लगेगा. अभी मेरे आने से तेरी पढ़ाई में भी हर्ज होगा. जब आऊंगी तो खूब जमकर बैठूंगी. दो-तीन बार चाय पीयूंगी. तेरा कमरा देखूंगी.''

''कमरा देखकर क्या होगा?''

''कमरे को देखकर व्यक्ति का पता चलता है, तूने मेरा कमरा देखा है न, फोन रखा है जिसमें.''

''अधूरी जानकारी के आधार पर निष्कर्ष निकालने की तेरी इस आदत से मैं बहुत तंग रही. हर बात में क्यू.ई.डी. ...''

''मैं आज अपना एलबम भी लाया हूं. आपसे मैंने कहा था न कि किसी दिन दिखाऊंगा.''

एलबम के कवर पर उसने अपने हाथ से बनी पेंटिंग लगा रखी थी काली पृष्ठभूमि पर गुलाबी हेबिसकस!

''तू पेंटिंग जानता है?''

''मेरे घर में मेरी बनायी काफी पेंटिंग्स लगी हैं. आप आना, तब देखना.''

''एक मेरे लिए भी बना देगा.'' कहकर अन्विता उसके चित्र देखने लगी. शुरू के चित्रों में सात-आठ साल का वह बरामदे की सीढ़ियों पर बैठा हुआ है. दूसरे चित्र में समुद्र से नहाकर निकला है, नंगे बदन बैठा कुछ खा रहा है.

''क्या खा रहा है? लॉलीपॉप?'' अन्विता ने मजाक किया.

अगली फोटो देखकर अन्विता ने कहा, ''इसमें तो तू एकदम हीरो दिख रहा है.''

वह प्रसन्न दिखा.

एक फोटो दिखाकर उसने कहा, ''यह पेशोला झील के किनारे की है.''

''इसमें तूने मुंह क्यों खोल रखा है?''

''कहां खोल रखा है!'' उसने इठलाती-सी शिकायत की, ''आप हमेशा कुछ-कुछ कहते रहते हो!''

कुछ किशोरों-युवाओं के मध्य वह नाच रहा है एक किशोरी ठीक उसके सामने है. अन्विता के पूछने से पहले ही उसने बता दिया, ''नये साल के दिन क्लब की फोटो है यह.''

बचपन से किशोरावस्था तक उसके अनेक चित्रों को अन्विता रूचि से देखती रही, कुछ न कुछ टिप्पणी करती रही. एक चित्र में वह अमिताभ बच्चन के साथ खड़ा हुआ था, दो सुंदर व्यक्तित्व. अन्विता ने मुक्त प्रशंसा की, ''इसमें तो तू ग्रेट लग रहा है.''

शाम के सात बज गये थे. अन्विता ने उसका शेष कोर्स समाप्त करवा दिया था. सीमांत ने एलबम उठा लिया, ''अच्छा, अब चलूं. दोपहर को आप क्या किया करोगी? सोती तो आप हो नहीं.''

''अभी तो कॉलेज की परीक्षाएं चल रही हैं. तेरे कारण इयूटी नहीं लगवायी थी...अब शुरू कर दूंगी.''

''इस धूप में? आप मत जाना.''

''नहीं, वह पार्ट ऑफ दी सर्विस है.''

''अच्छा, अब चलता हूं,'' उसने झुककर अन्विता के पांव छुए. अन्विता को वह बेहद छोटा और प्यारा लगा. उसके बालों पर हाथ फेरकर उसने आशीर्वाद दिया, शुभकामनाएं दीं.

''आशीर्वाद लेने तो अभी आऊंगा.''

अन्विता बाहर उसकी मोटर साइकिल तक उसे पहुंचाने आयी. वह चला गया! अन्विता को भीतर कुछ दुखा...गहराई में दुखा. वह लौटी क्योंकि शीतल झरने के किनारे से उठकर उसे जीवन की रेगिस्तानी यात्रा में फिर से चल पड़ना था... □

पड़ाव
छायाकार
पवन महेंद्रू
मॉडल
अन्विता : कमाक्षी शर्मा
सीमांत : लहर

उत्तर

शिव कुमार शिव

बहू की सास ने पुकारा, ''बहू, थोड़ा दूध हो तो दे दो, मैं रोटी उसी के साथ खा लूंगी.''

''नहीं मांजी. दूध कहां है? सेर भर दूध को चम्मच भर भी आने-जाने वालों की चाय में डालूं—तो भी कम पड़ जाता है. अगर होता तो दूध क्यों नहीं देती?'' बहू ने सास से कहा.

सास ने फिर पुकारा, ''अच्छा बहू, न हो तो जरा सी दही का ही लगावन दे दे.''

''दही? पहले क्यों नहीं कहा मांजी. मैंने अभी-अभी तो गिट्टू को लस्सी बनाकर दी है.'' बहू ने कहा.

सास ने फिर कुछ नहीं कहा और, कोरी रोटी ही मुंह में डालकर गुनगुनायी.

''चाय डालता खाली दूध डाल भी दीयो रोटी देता जोर आवे उत्तर देवो कोरो''. □

हिन्दी अकादमी, दिल्ली
का महत्वपूर्ण प्रकाशन

'इन्द्रप्रस्थ कहानी संग्रह'

- इस संग्रह में वरिष्ठ पीढ़ी के एवं युवा पीढ़ी के कहानीकारों की रचना-दृष्टि एक साथ ही पाठकों के लिए उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है ।

- लगभग 300 पृष्ठ के इस कहानी संग्रह में 35 कहानियां संकलित की गई हैं ।

- ये कहानियां जहां आज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का आईना प्रस्तुत करती हैं, वहीं जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने अंक में समेटते हुए मानवीय रिश्तों, संवेदनाओं और परिवेश से भी जुड़ी हुई हैं ।

- कृपया अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए ।

- रॉयल डिमाइ आकार में पक्की जिल्द सहित संग्रह का मूल्य केवल 100/- रु, जिसे सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा नीचे दिये गये पते पर भेजा जा सकता है ।

- अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

—डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव,
हिन्दी अकादमी,
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरैंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110 002.

733950
730274

मस्सा

'जिस समय तुमने मुझे देखा था, मैं पत्नी की अपेक्षा बच्ची ही अधिक थी. शर्म के मारे कैसी तो घबरा गयी थी मैं. मेरी उस मन:स्थिति की तुम या तुम-सा कोई पुरुष कल्पना भी कर सके तो आश्चर्य ही होगा मुझे...' क्यों हुआ होगा ऐसा?

रेखांकन : बागान सरकार

☐ यासुनारी कावाबाता

१९६८ के नोबेल पुरस्कार विजेता जापानी साहित्यकार. 'इजू नर्तकी' और 'हाउस ऑव द स्लीपिंग ब्यूटीज' जैसी कथा-रचनाओं के कथाकार.

इस मस्से को ही देखा मैंने सपने में भी.

तुम्हें परेशान करने के लिए वैसे तो ये दो अक्षर ही काफी है—मस्सा. इसी की वजह से तो न जाने कितनी बार तुमसे क्या-क्या सुन चुकी हूं.

मेरे दाहिने कंधे पर या फिर कह लो गर्दन पर है यह मस्सा.

''छेड़-छेड़कर इसे मटर जैसा तो कर ही लिया है. अब भी हाथ वहीं का वहीं रहता है. देखना किसी दिन यह अंकुवा जाएगा. बस, फिर मटर ही मटर...'' तुम मुझे चिढ़ाया करते थे. जैसा तुम कहते थे, सामान्य मस्सों से कुछ बड़ा तो था ही यह...अच्छा खासा गोल-मटोल, उभरा हुआ दाना.

बचपन में बिस्तर पर लेटी-लेटी मैं इसके साथ खेलती रहती थी पहलेपहल जब तुम्हारी नजर इस पर पड़ी तो मैं एकदम ही सकुचा गयी थी. रोना ही आ गया था मुझे. तुम्हें भी इसे देखकर आश्चर्य हुआ था न?

''बस कर सायोको. जितना छेड़ेगी, उतना ही बढ़ता जाएगा यह हांऽ ऽ ऽ'' मेरी मां भी मुझसे कहती रहती थी. उस समय मैं बारह-तेरह वर्ष की किशोरी ही रही हूंगी. बस, तभी से मैंने सबकी नजर बचाकर इसे सहलाना शुरू कर दिया था. फिर तो अनजाने ही मेरी यह आदत जड़ पकड़ती चली गयी.

जिस समय तुमने इसे देखा था, मैं पत्नी की अपेक्षा बच्ची ही अधिक थी. शर्म के मारे कैसी तो घबरा गयी थी मैं. मेरी उस मन:स्थिति की तुम या तुम-सा कोई पुरुष कल्पना भी कर सके तो आश्चर्य ही होगा मुझे. उसमें शर्म और संकोच के अलावा भी कुछ विशेष भाव था. लगा था, यह तो बहुत ही भद्दी बात हो गयी है और तभी से मुझे लगने लगा कि विवाह कोई खतरनाक चीज है.

इस मस्से के कारण, हां इस मस्से के ही कारण, अब तक के मेरे सारे रहस्य जैसे एक-एक करके उद्घाटित हो गये थे. मैं स्वयं जिन लज्जास्पद बातों से अब तक अनभिज्ञ थी, तुम जाने कहां कहां से खोज-खाजकर इसी प्रकार की बातों को उघाड़ा करते और मेरे पास तो जैसे सहारे के लिए कोई तिनका भी नहीं बचा था.

तुम तो उस सबके बाद खर्राटे लेने लगते थे. मुझे भी कुछ राहत मिलती थी उस स्थिति में, लेकिन अकेलापन भी कचोटने लगता था. फिर एकाएक ही हड़बड़ाकर मस्से की तरफ जाते हुए अपने हाथ को मैं खींचकर रोक लिया करती. कई बार मन होता कि मां को लिख दूं. अब तो मस्से की तरफ मेरा हाथ बढ़ता ही नहीं है. फिर यह विचार आते ही चेहरा शर्म से लाल हो उठता था.

तुमने एक बार कहा था, ''पगली, एक मस्से को लेकर इतना परेशान हुआ जाता होगा.'' सुनकर मैं कितनी खुश हुई थी. आज जब उन बातों पर विचार करती हूं तो लगता है कि मस्से से खेलने की मेरी इस कुटेव को तुमने इतना तूल न दिया होता, सहज मन से झेल लिया होता तो कितना अच्छा होता?

इस मस्से की आखिर बिसात ही क्या थी? लोगों की नजरें ऐसी बातों की टोह में स्त्रियों की गर्दनें थोड़े ही टटोलती रहती हैं. किसी कुबड़ी या विकलांग लड़की के संदर्भ में कोई भले ही कुछ कह देता हो, लेकिन एक मस्सा...भले ही कितना भी बड़ा क्यों न हो, इसे विकलांगता या कुबड़ेपन की निशानी तो नहीं माना जा सकता. पता नहीं कैसे, तुम्हारे मन में बैठ गया था—कि मुझे इस मस्से से खेलने की लत पड़ गयी है. उसके बाद तो मेरी यह आदत तुम्हारी नजरों में शूल की तरह गड़ने लगी थी.

''बस करो, बहुत हो गया.'' तुम चिढ़कर झल्ला पड़ते थे. तुमने मुझे जाने कितनी बार इस तरह डपटा होगा,'' आखिर तुम्हें इसके लिए अपना बायां हाथ ही क्यों काम में लेना पड़ता है?' एक दिन कुछ ज्यादा ही

चिढ़कर तुमने कहा था.

"बायां हाथ?" तुम्हारे प्रश्न से एकदम चौंक कर पूछा था मैंने. हां सच, इससे पहले कभी मेरा ध्यान ही नहीं गया था कि मैं इसके लिए हमेशा अपने बायें हाथ का ही प्रयोग करती थी.

"यह मस्सा तुम्हारे दाहिने कंधे पर ही तो है, फिर दाहिने हाथ से ही क्यों नहीं वह सब करती हो?"

"ओह." मैंने अपना दाहिना हाथ उठाकर कोशिश की थी. फिर कहा था, "ऊं हूं ऐसे तो बड़ा अटपटा लगता है."

"अटपटा क्या है इसमें?"

"मुझे तो बाएं हाथ से ही ठीक लगता है."

"और तुम्हारा दाहिना हाथ ज्यादा पास पड़ता है, सो?"

"पर इसे यों पीछे मोड़ना मुश्किल है."

"मोड़ना मुश्किल...?"

"और क्या? इस हाथ को तो फट से बढ़ाकर वहां तक ले जा सकते हैं और दाहिने हाथ को तो पीछे घुमाकर वहां तक पहुंचना पड़ेगा."

उन दिनों, वैसे तो मैं सहजता से तुम्हारी हर बात मान लिया करती थी, इस बात पर भी मन में आया तो था कि आलिंगन के समय कहीं ऐसा तो नहीं लगता था तुम्हें कि मैं वैसा करते हुए अपने उस तरह बढ़े हुए हाथ की कोहनी से तुम्हें परे धकेल रही हूं? यह भी लगा कि मैं तुम्हारे प्रति कुछ अधिक ही कठोर होती जा रही थी.

मैंने ठंडे स्वर में प्रति प्रश्न किया था कि बायें हाथ से यह सब करने में आखिर ऐसी क्या बुराई है? तुमने कहा था, "बायां हो या सीधा, यह आदत ही बकवास है."

"तो मैं कहां इनकार कर रही हूं."

"कितनी बार कह चुका हूं कि डाक्टर से कटवा-कुटवूकर छुट्टी कर डालो. सो नहीं हो सकता तुमसे."

"न, मुझे शर्म आती है."

"शर्म की क्या बात है इसमें?"

"मस्सा कटवाने के लिए भी कोई डाक्टर के पास जाता होगा?"

"क्यों नहीं? कई लोग जाते हैं."

"जाते हैं, लेकिन चेहरे पर हो तो भी समझ में आता है. गर्दन या कंधे के मस्से के लिए कौन जाता होगा डाक्टरों के पास? डाक्टर भी सुनकर हंसेगा कि जरूर इसके श्रीमानजी के गड़ा होगा यह मस्सा.

"तुम डाक्टर से साफ-साफ कह देना कि मुझे इससे छेड़-छाड़ की गंदी आदत पड़ गयी है इसलिए इसे हटाना जरूरी लग रहा है."

"सच ? पर यह बेचारा मस्सा, ऐसी जगह पड़ा है जहां शायद ही किसी की नजर जाती हो. फिर भी तुम...? इससे तो तुम ही थोड़ा सह लिया करो तो...?"

"अरे बाबा, इस मस्से से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है. बस, तुम यह हर समय की छेड़-छाड़ बंद कर दो तो...?"

"क्या करूं? ध्यान ही नहीं रहता कुछ भी."

"झक्की हो तुम तो. मैं कुछ भी क्यों न करूं, तुम अपनी आदत से बाज आने वाली नहीं हो."

"कोशिश तो करती हूं कि वहां हाथ न जाय, इसीलिए तो बंद गले के कपड़े पहनने शुरू कर दिये हैं."

"फिर भी कोई फर्क तो पड़ा नहीं है."

"पर इसे छूने में तुम्हारा बिगड़ता क्या है?"

"बिगड़ेगा क्या? बस तुम्हारी यह लत मेरी आंखों में खटकती है बुरी तरह. इसीलिए छोड़ने को कहता रहता हूं."

"अच्छा. लेकिन इसमें खटकने वाली बात क्या है आखिर?"

"वह सब छोड़ो. मुझे अच्छा नहीं लगता तो नहीं लगता और इसीलिए तुम्हें अपनी यह बेहूदी हरकत छोड़ देनी चाहिए."

"मैं कहां कह रही हूं कि नहीं छोड़ूंगी!"

"मुंह से ही कहोगी लेकिन हाथ वहीं का वहीं पहुंचता रहेगा. और यदि उस समय तुम्हारे चेहरे के भाव देखो तो लगेगा कि जैसे बिलकुल ही बेखबर और अनजान हो, मुझे इसी बात से तो और ज्याद कोफ्त होती है."

तुमने शायद बिल्कुल सच कहा था लेकिन इन शब्दों ने जैसे मेरा हृदय चीरकर रख दिया था. चिढ़कर मैंने कहा था, "ठीक है, जब भी तुम मुझे इसे छूते देखो तो फटाक से मेरे हाथ पर लगाना एक खींचकर, बल्कि थप्पड़ भी जड़ देना मेरे मुंह पर."

"ओफ्फो तुम खुद ही क्यों नहीं समझतीं कि दो तीन साल से यही कि यही बात सुननी पड़ रही है तो इस बेकार-सी आदत को छोड़ ही दो?"

मैं बिना कुछ बोले तुम्हारे पिछले शब्दों में ही उलझी जा रही थी, "मुझे - इसी बात से तो ज्यादा कोफ्त होती है."

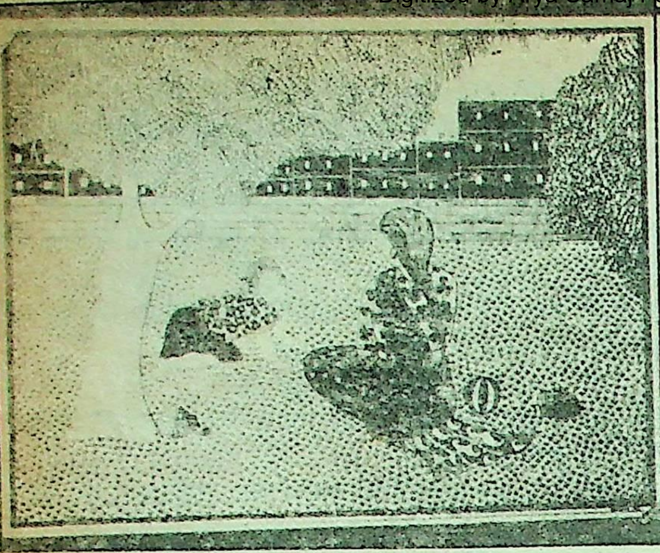

अपना बायां हाथ गर्दन पर लपेटे खड़े होते समय मेरी स्थिति कितनी उदास और करुण लगती थी. अपनी उस स्थिति के लिए एकाकीपन जैसा भारी भरकम शब्द प्रयोग में लाते हुए मुझे कुछ संकोच होता है. मैं उस स्त्री की तरह दीन-हीन प्रतीत होती थी जो मात्र अपने आप को ही बहलाने की कोशिश कर रही हो. और मेरी मुखमुद्रा तुम्हारे कथनानुसार एकदम बेखबर और अनजान...ऐसा क्यों?

क्या तुम्हें ऐसा कुछ लगा कि तुम्हारे प्रति समर्पण के समय मैंने तुमसे कुछ छिपाये रखा था? कि अपनी इसी आदत के कारण मस्से को छूते समय मैं किसी दिवास्वप्न में डूब जाती थी और मेरे अंतर की वास्तविकता मेरे चेहरे पर उभर आती थी?

कहीं इस समझ के पीछे यह तो कारण नहीं था कि तुम स्वयं मुझसे असंतुष्ट थे और उसी वजह से मेरी इस न कुछ-सी आदत को इतना तूल दे रहे थे? सोचती हूं, मेरे हाथ को उस दिशा में बढ़ते देख यदि तुम जरा-सा हंसते हुए ही मेरी ओर देख भर लेते, इससे आगे कुछ भी न सोचते तो क्या वह तुम्हारे प्यार का प्रतीक नहीं होता?

मेरे मन में उगा यह विचार कितना भयंकर था कि क्या दुनिया में कहीं कोई ऐसा भी पुरुष हो सकता है जिसे मेरी यह आदत प्यारी लगे, लगती रहे...?

आरंभ में तो प्यार के कारण ही तुम्हारा ध्यान इस ओर गया था, इसमें मुझे लेशमात्र भी शंका नहीं है. लेकिन क्या ये छोटी-छोटी बातें ही बढ़कर वैवाहिक जीवन को कटु नहीं बना देतीं? सच्चे सुखद दांपत्य में इस तरह की बातें दृष्टि से ओझल हो जाती हैं. ऐसे लोग भी होते हैं जो एक दूसरे में मीन-मेख निकालते कुछ न कुछ खोज ही लेते हैं. मेरा मतलब यह नहीं कि जो दंपती एक दूसरे के मनोनुकूल ही व्यवहार करते हैं वे ही एक-दूसरे को अधिक प्यार करते हैं और जिनके बीच खटपट चलती रहती है, वे एक दूसरे के शत्रु ही होते हैं. मेरा आशय मात्र इतना ही है कि तुमने मेरी इस आदत को अनदेखा कर दिया होता, इतना तूल न दिया होता तो बहुत अच्छा रहता.

आखिर नौबत यहां तक आ पहुंची कि तुम मुझ पर हाथ उठा बैठे, तुमने मुझ पर लात तक चला दी. तड़पकर मैंने कहा था, ''अपने आप को जरा सीमा में रखोगे? एक मस्से को छूने के बदले मुझे यही सब झेलना पड़ेगा?''

अब कुछ भी नहीं किया जा सकता. तुमने कांपते स्वर में कहा था. तुम्हारी मन:स्थिति मैं भांप रही थी अस्तु मुझे तुम पर क्रोध नहीं आया. लेकिन मैं यह बात किसी को भी बताती तो वह यही सोचता कि तुम बेहद क्रोधी स्वभाव के हो. सच तो यह कि हमारा संबंध उस बिंदु पर पहुंच गया था जहां छोटी से छोटी बात भी हमारी विसंगति को बढ़ाने लगी थी. उसी स्थिति में तुम्हारा हाथ मुझ पर उठ गया था,. इससे हमारे बीच एक खुलापन भी आया.

मैंने आवेश में कहा था, ''नहीं, मेरी यह आदत कभी नहीं छूट सकती, किसी तरह नहीं छूट सकती. चाहो तो मेरे हाथ बांध दो.'' कहते हुए मैंने दोनों हाथ तुम्हारे सामने बढ़ा दिये थे. तुम भी घबरा गये थे. तुम्हारे क्रोध का उबाल ठंडा पड़ गया. तुमने कमर में लटकती डोरी खींच कर मेरे हाथ बांध दिये और उन्हीं बंधे हाथों में मेरे बिखरे बालों को संवारते हुए तुम मेरी ओर ताकते रहे. उस समय तुम्हारी दृष्टि का भाव देखकर मुझे बहुत-बहुत अच्छा लगा था. लगा था, अब मेरी यह आदत छूट ही जाएगी.

उसके बाद तो यह हुआ कि किसी के मुंह से मस्से का नाम भी सुनाई देता तो गुस्सा आने लगता था. लेकिन थोड़ा समय बीतते न बीतते मेरी आदत फिर सिर उठाने लगी. क्या इसलिए मैं तुम्हारा रहा-सहा प्यार भी खो बैठी थी? तुम्हारी भंगिमा मानो यह कहने लगी थी कि मैं तो तौबा मान गया, अब जो मन में आए, करो! उसके बाद तो मुझे मस्से से छेड़-छाड़ करते देखकर भी तुम ऐसे बन जाते थे मानो कुछ देखा ही न हो. फिर कभी तुमने एक शब्द भी इस विषय में नहीं कहा.

और फिर न जाने कैसे, जो आदत इतने कुछ के बाद भी नहीं छूट सकी, एकाएक गायब हो गयी.

''देखा तुमने, मस्से से मेरा खेलना एकदम ही छूट गया है?'' ध्यान में आते ही मैंने कहा था.

''ऊं...'' करके तुम चुप रह गये थे. तुमने मेरी ओर ऐसी खाली दृष्टि से देखा था जैसे इस सबसे तुम्हारा कभी कोई सरोकार ही न रहा हो.

मन हुआ. पूछूं कि यह बात तुम्हारे लिए इतनी गौण थी तो इतना सब मेरे साथ क्यों किया था तुमने? लगा—कि तुम भी शायद ऐसा ही कुछ कहना चाहते होगे कि तुम्हारी यह कुटेव बिना कोशिश यूं ही छूट सकती थी तो तुम इतने दिन तक इसे पकड़े क्यों बैठी रहीं. लेकिन तुम तो जैसे मुझसे कुछ भी न कहने की कसम खाए बैठे थे, कुछ नहीं बोले. तुम्हारे चेहरे के भाव यह कह रहे थे कि ऐसी आदत जो न औषधि थी न विष...गयी तो क्या और रही तो क्या? मुझे इस सबसे क्या? भले न सारे दिन इसी में लगी रहो. मेरा मन एक दम बुझ गया और तुम्हें खिझाने के लिए ही तुम्हारे सामने खड़े-खड़े एक बार उसे छू लेने की इच्छा हो आयी. पर

ग़ज़ल

☐ राम बहादुर सिंह भदौरिया

जलते-जलते बचा आशियाना मेरा,
भा गया उनको फिर गुनगुनाना मेरा.

बिजलियों से अदालत कभी थी नहीं,
हाँ, [illegible] था बहुत मुस्काराना मेरा.

जिंदगी घूमती है बियाबान में,
लोग आप पूछते हैं ठिकाना मेरा.

अश्क से हाले दिल सब बयां हो रहे,
मुख्तसर हो गया है फसाना मेरा.

बुलबुलें बाग में चहचहाने लगीं,
काम आया जिगर का जलाना मेरा.

आश्चर्य, हाथ ही नहीं उठा. गर्दन झुकाये मैंने अपने होठ काटे. मेरे कान तुम्हारे मुंह से ये शब्द सुनने को तरसते ही रहे कि अरे तुम्हारे मस्से का क्या हुआ? अब तो 'मस्सा' शब्द ही हमारी शब्दावली से गायब हो गया था.

मां के यहां आने पर मैं एक दिन मां के साथ नहा रही थी. मां ने टोका, "सायोको, कैसी हो गयी है तू? अभी से यह हाल है तो आगे क्या होगा!" मैंने चौंककर मां की तरफ देखा. हां, वह तो अब भी वैसी ही थी, पहले जैसी. वही गठा हुआ शरीर और ताजादम चेहरा.

"और तेरा मस्सा, कितना सुंदर लगता था!"

मन हुआ, कह दूं मां से कि इसी मस्से की वजह से तो मुझ पर जाने क्या-क्या बीती है! लेकिन कहा इतना ही कि वह तो कहते हैं कि 'डाक्टर के यहां जाकर कटवा डालती तो ठीक रहता.'

"कटवा देती? और वहां घाव का दाग रह जाता, सो? हम तुझे कितना चिढ़ाते थे कि सायोको ससुराल जाकर भी इसी के साथ खेला करेगी."

"खेलती तो थी."

"सो तो हम जानते ही थे."

"पर मां, यह आदत थी तो खराब ही न? मैंने कब शुरू किया होगा इससे खेलना?"

"अब कैसे बताऊं? मुझे तो यह भी ध्यान नहीं कि मस्से किस उम्र में निकलते होंगे. जन्म के समय तो होते नहीं हैं शायद."

"मेरे किसी भी बच्चे के नहीं है कोई मस्सा."

"अच्छा? तब तो बड़े होने पर ही निकलते होंगे. और एक बार दिखाई देने के बाद तो इससे चिपक ही जाते होंगे. सायोको, इतना बड़ा मस्सा मैंने किसी के भी नहीं देखा. तू बहुत छोटी थी, तभी से देखती आ रही हूं मैं इसे." कहते हुए मां मेरे कंधे की ओर देखते हुए हंसने लगी.

मुझे याद है, बचपन में मां और बहनें मस्से को छेड़ा करती थीं. तब तो यह छोटा ही था. शायद बार-बार छेड़ने के कारण ही मेरा ध्यान इस तरफ जाने लगा होगा. बाद में मेरी आदत ही बन गयी इससे खेलने की. आज एक बार फिर इससे खेलते हुए अपने बचपन और जवानी की स्मृतियों को पीने की कोशिश कर रही हूं. इससे खेले हुए मुझे न जाने कितने वर्ष हो गये हैं.

तुमसे दूर... अपनी मां के यहां.. जहां मैंने जन्म लिया था, वापस आ गयी हूं. जितना चाहूं इससे खेलूं. मुझे कोई रोकने-टोकने वाला नहीं है. लेकिन अब कोई तुक नहीं रह गयी है. जब भी मेरी अंगुलियां इसे छूती हैं, आंखे बरसने लगती हैं. मैं अपने बचपन के उन दिनों के याद करना चाहती हूं किंतु मस्से की ओर हाथ बढ़ाते ही तुम मेरी दृष्टि के सामने आ खड़े होते हो. बेहया पत्नी के रूप में बदनाम हो चुकी हूं मैं और शायद मुझे तलाक भी मिल ही जाएगा. मैंने कभी भी नहीं सोचा था कि यहां बिस्तर पर पड़े-पड़े मुझे तुम्हारे ही ख्याल आते रहेंगे. आंसू से तर तकिये पर मैं करवट बदलती हूं और यह मस्सा मेरे सपने में भी आ खड़ा होता है.

नींद उड़ने पर यह तो समझ में नहीं आया कि वह कमरा कहां था. लेकिन उस कमरे में हम दोनों के अलावा एक और स्त्री थी. मैं पी रही थी. खूब पी चुकी थी. किसी बात पर तुम्हारे सामने गिड़गिड़ा रही थी. मेरी वह आदत फिर शुरू हो गयी थी. हमेशा की तरह हाथ सामने से ले जाकर मस्से तक ले गयी थी कि मस्सा उखड़ कर मेरी चुटकी में आ गया. जरा भी दर्द नहीं. एकदम अनायास. मेरी चुटकी में जैसे कोई भुना हुआ मटर का दाना ही हो.

सिर चढ़े बच्चे की तरह मैंने उसे तुम्हारी नाक के पास के गड्ढे में रखने की जिद पकड़ ली. खूब रोना धोना और पैर पटकना शुरू कर दिया. तुम्हारे हाथ खींचे, गर्दन में झूल गयी. सबेरे जागने तक मेरा तकिया भीग चुका था. मैं तब भी रोये ही जा रही थी. थककर मैं चूर हो चुकी थी लेकिन मन कुछ हल्का लग रहा था जैसे कोई भारी बोझ हट गया हो. मेरे होठों पर क्षणिक मुस्कान कौंधी. मैं उसी तरह पड़ी रही. सोचा, सचमुच ही तो मस्सा गायब हो गया? सुनिश्चित करने को मस्से की ओर हाथ ले जाते हुए मन जाने कैसा होने लगा.

अब बात इतनी-सी है कि मस्सा जस का तस है, मटर के काले दाने जैसा. तुम्हारी नाक के पास भी एक मस्सा है जिसके लिए मेरे मन में कभी भी कोई ऐसी वैसी बात नहीं आयी. मैंने उसके विषय में कभी एक शब्द तक नहीं कहा था, फिर भी लग रहा है कि शायद उसका भार रहा ही होगा. अपने मस्से को तुम्हारे मस्से में रखने पर वह फूलकर खूब मोटा हो जाता और उसमें से एक सुंदर परी-कथा जन्म लेती. तब मेरी जगह तुम मस्से का सपना देख रहे होते,यह सब ध्यान में आते ही मैं कितना खुश हो रही थी.

एक बात तो मैं भूल ही गयी. उस दिन तुमने कहा था, "मुझे इसी बात से तो ज्यादा कोफ्त होती है." तुम्हारी इस बात का मर्म मैं अच्छी तरह समझ गयी थी. मुझे लगा था कि तुम्हारे शब्दों में अब भी लगाव का कोई अंश शेष रह गया है. मस्से को छूते समय मेरे मन का प्रतिबिंब मेरे चेहरे पर झलक आता होगा क्या? इतने पर भी मन पूछता है कि मैंने जो

ग़ज़ल

□ लक्ष्मीशंकर बाजपेयी

जिनके माथे पे कामयाबियों के सेहरे हैं,
ऐसे लोगों में कई ख़ौफ़नाक चेहरे हैं.

जिनके दरबार में फ़रियाद सुनी जाती है,
ये सुना जाता है, वो लोग जरा बहरे हैं.

कैसे पहुंचेगी मेरे दर्द की बू उनके करीब,
उनके डर और खुशबुओं के कड़े पहरे हैं.

हमको मालूम नहीं उनकी हकीकत क्या है,
वो जो दिखलाते हैं वो ख्वाब तो सुनहरे हैं.

आपकी झूठी तसल्ली से भला क्या होगा,
यूं न भर पाएंगे, ये ज़ख़्म बहुत गहरे हैं.

दादाजी, चिड़िया और भिखारी

☐ सुधीर सक्सेना 'सुधि'

घर में दादाजी की मृत्यु हो गयी थी. वह चार साल की आंखों से टुकुर-टुकुर देखता रहा था. मां, पिताजी, बुआ, चाचा सभी रो रहे थे. वह भी रोने लगा था. फिर उसने देखा कुछ लोग आये थे और दादाजी को 'रामनाम सत्त है' कहते हुए ले गये थे.

कई सप्ताह बाद एक दिन उसने देखा कि घर के आंगन में बनी नाली में चिड़िया का बच्चा मरा पड़ा है और दो चिड़ियां कपड़े सुखाने वाली तनी पर बैठी जोर-जोर से चीं-चीं कर रही हैं. उसने सोचा, 'अब फिर कुछ पक्षी आयेंगे और इसे ले जाएंगे. वह वहीं बैठा रहा. आखिर उसने मां से पूछा, ''मां, वो चिड़िया का बच्चा...''

''हां बेटे, अभी मेहतरानी आयेगी, तब बाहर फिंकवा देंगे.''

''लेकिन क्यूं? कोई मरता है तब तो...मां दादाजी की जब मृत्यु हुई थी तब तो खूब लोग आये थे और...''

मां, बेटे की भोली जिज्ञासा समझ गयी. बोली, 'नहीं रे, इनसान का ही दाह-संस्कार किया जाता है जैसे तुम्हारे दादाजी का किया था.'' उसकी समझ में यह बात आ गयी थी.

तीन दिन बाद ही उसने सुना कि गली के नुक्कड़ पर एक बूढ़ा भिखारी कल रात मर गया है. मुहल्ले के कई बच्चे उसे देख आये थे. वह भी देखने गया. उसने देखा, भिखारी पर मक्खियां भिनभिना रही हैं. लोग मुंह बिचकाकर आगे बढ़ रहे हैं. कोई-कोई दूर से ही सिक्का फेंक रहे हैं. वह एकटक देखे जा रहा था. अचानक उसने देखा कि दो कुत्ते उस भिखारी के फटे कुरते को अपनी ओर खींच रहे हैं. वह घबरा गया. भागता हुआ वापस घर लौट आया.

''मां! मां!! वो बूढ़ा बाबा....''

''हां बेटे वो भिखारी था, मर गया है.''

''लेकिन मां, कुत्ते उस बाबा के कुरते को खींच रहे थे...''

''हां बेटा, लावारिस था न!''

''अब?''

''अब क्या? कमेटी वाले आयेंगे और उसे ठेले में डालकर ले जायेंगे बस!''

''बस!'' उसकी आंखों में दादाजी, चिड़िया का बच्चा और भिखारी बार-बार घूमने लगे. वह सोचने लगा, दादाजी इनसान थे. चिड़िया? चिड़िया थी, लेकिन वो बूढ़ा भिखारी? वो भी तो इनसान था! ☐

इतनी बातें कही हैं, क्या उनमें से कोई भी मुझे उस हीनत्व से मुक्त करने के लिए काफी नहीं है? मैंने तुमसे कहा था कि मेरी मां व बहनों ने बचपन में बहुत ही सहलाया है, इसीलिए बाद में मेरी भी आदत पड़ गयी.

मैंने मां से एक दिन पूछा भी था कि उसने मुझे एक बार इस बात के लिए खूब डांटा था न?

''हां, डांटा तो था पर उस बात को तो कई साल हो गये.''

''लेकिन तुमने मुझे डांटा क्यों था?''

''क्यों क्या... आदत ही एकदम बेकार थी.''

''फिर भी. देखकर तुम्हें लगता कैसा था?''

''अब कैसा क्या... अच्छी बात तो नहीं थी.''

''सो छोड़ो, उस समय कैसा लगता था? क्षोभ होता था? बदतमीजी लगती थी? आंखों में खटकता था?''

''अब क्या बताऊं. बस जब तू नींद की-सी खुमारी में जब तब हाथ को वहीं घुमाती रहती थी तो मन में आता था कि ऐसा न करे तो ठीक.''

''तुम्हें बेहद गुस्सा आता होगा न?''

''हां, कई बार बड़ी चिढ़ चढ़ती थी.''

''फिर भी तुम लोग मुझे चिढ़ाना बंद नहीं करते थे न?''

''सो तो है.''

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अपने उसी बचपन को अवचेतन में याद करते हुए अन्यमनस्क भाव से ही मस्से की साथ खेलने लगती हूंगी.

अब मुझे तुमने यही पूछना है कि कहीं तुम आरंभ से ही किसी गलतफहमी में तो नहीं रहे? कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हें लगता रहा हो कि मैं किसी अन्य पुरुष को याद करते हुए वह सब करती थी? मस्से से खेलने की आदत कोई ऐसी बात तो नहीं थी कि मुझे बहाने की जरूरत पड़ती. एक ही प्रश्न है मन में कि मुझे पत्नी रूप में अयोग्य सिद्ध करने के लिए जिन बातों का सहारा लिया गया, उन सबका आरंभ इसी तरह तो नहीं हुआ था?

आरंभ में जो बातें हमारे प्यार का संकेत थीं, उनकी ओर से तुम्हारा ध्यान हट गया और फिर वे ही सब बातें पत्नी रूप में मेरी अयोग्यता का प्रमाण लगने लगी थीं न तुम्हें? यह सब लिखते समय मेरे मन में यह आशंका भी है कि कहीं कोई यह न कह बैठे कि अब मैं अपने पति को गलत सिद्ध करने की कोशिश कर रही हूं. खैर जो भी हो, यह सब एक बार तुमसे कहे बिना रह नहीं पा रही हूं. ☐

अनुवाद : मनमोहिनी

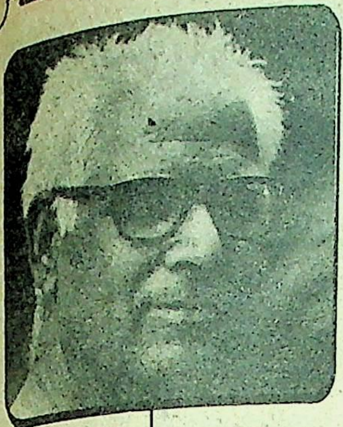

गुलमुहर

□ रामदरश मिश्र

जन्म : १५ अगस्त १९२५.
हिंदी के प्रमुख कवि कथाकार.
प्रमुख कृतियां : 'जुलूस कहां जा रहा है' 'पथ के गीत', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया' सहित अनेक कविता संग्रह. 'इकसठ कहानियां', 'दिनचर्या', 'सर्पदंश', 'वसंत का एक दिन' [कहानी संग्रह]. 'अपने लोग', 'दूसरा घर' और 'पानी के प्राचीर' [उपन्यास]
संप्रति : स्वतंत्र लेखन.
संपर्क : आर-३८, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली-११००५९.

दहक रहा है गुलमुहर
जलती हुई मई की दोपहरी में
पोर-पोर से फूट पड़े हैं
लाल-लाल फूलों के गुच्छे
और रंग रहे हैं जलता हुआ सन्नाटा.

चलते-चलते लोग
यहां आकर ठहर जाते हैं
भर जाते हैं ये फूल—
किसी की आंखों में
मई के क्रांति-दिवस की तरह
किसी की आंखों में
प्रेयसी के दहकते कपोल की तरह
किसी की आंखों में
कल के खूबसूरत सपनों की तरह
किसी की आंखों में
आज की जलती भूख की तरह
ये फूल
बच्चों की आंखों में
गुब्बारे बन जाते हैं
बूढ़ों की आंखों में
पूजा के फूल
और युवतियों की आंखों में
जूड़े में सजाये जाने की कामना बन
कसमसाते हैं

इसे मैंने अपने एक जन्मदिन पर लगाया था
अपने मकान में, फाटक के पास
इसकी छांह
मकान के बाहर सड़क पर फैल गयी है
गर्मी से घायल आते-जाते लोग
इसके नीचे आकर ठहर जाते हैं
कुछ देर के लिए
और अंग-अंग से पीने लगते हैं
इसकी आत्मीयता शीतल जल की तरह
काम से थकी कोई मजदूरनी
दोपहर को
यहां आकर लेट जाती है
और अपने शिशु को दूध पिलाती है
छाती से चिपकाये हुए
केंअ...केंअ...रोता हुआ बच्चा
धीरे-धीरे सो जाता है
और किसी सुंदर सपने से
उसके होंठ फरफराने लगते हैं

हांफती-डांफती गायें
इसके नीचे आकर बैठ जाती हैं
और पगुराने-रंभाने लगती हैं
पेड़-विहीन मकानों के इस जंगल में
न जाने कौन-कौन से पंछी
कहां-कहां से आते हैं
डाल-डाल पर फुदकते हैं
चहचहाते हैं, गाते हैं
और भर देते हैं आदिम राग से
मेरा पक्का मकान

धूल भरी आंधियां आती हैं
मेरे घर की ओर
प्रतिरोध में लड़ता है यह पेड़
सिर और बांहें हिला-हिलाकर
दिन भर धूप में खिलखिलाता है
रात भर चांदनी में नहाता है
वर्षा में मस्त होकर भीगता है
और देर तक
उसके शरीर से बूंदें टपकती हैं
टप...टप...टप,...
हां, मैंने इसे अपने जन्म दिन पर
लगाया था
अन्य जन्म दिन तो महज भोग बनकर
आये थे
और न जाने कहां विलीन हो गये
यह जन्मदिन तो दान बनकर आया था
और एक मूर्त रचना बन गया है
गुलमुहर के रूप में
मेरे घर और सड़क के बीच
एक लय-सा तन गया है. □

प्रशासन में मूंछ प्रिंसिपल

□ गोपाल चतुर्वेदी

सच है. समय बलवान है कभी मुख्य मंत्री बदलता है, कहीं गवर्नर कभी पूरी की पूरी सरकार. हमने आजादी के बाद से देखा है. हर अहम परिवर्तन के साथ शिक्षा नीति में इंकलाब ज़रूर आता है. पढ़ाई कभी 'बुनियादी' हो जाती है, कभी 'तकनीकी'. गनीमत है कि ट्यूशन, टूटी स्लेट और टाट-पट्टी की कक्षाएं कुत्ते की दुम-सी वैसी की वैसी रहती हैं. हम अपने विद्वान मित्र आतताई जी की शरण में जाते हैं.

''ऐसी क्या ख़ास बात है कि हर सरकार तालीम के दायरे में सुधार पर उतारू रहती है?''

''बिना ढंग के एजुकेशन के अच्छे नागरिक, बेहतर इंसान और रुपये-पैसे या चने-चबैने की तरह जनसेवा की कसम खाने वाले लोग कैसे उपलब्ध होंगे. तस्करी में तरक्की, मतदान में मारपीट, हर क्षेत्र मूल्यहीनता का माहौल कड़ी मेहनत और गहन चिंतन से बना है. शिक्षा जैसी महत्वपूर्ण चीजों पर ध्यान नहीं दें तो क्या बढ़ती कीमतों जैसे मामूली मामलों से मगज़-पच्ची करें.''

हम प्रभावित हुए. आतताई फिलहाल लैक्चरर तक नहीं हैं. किसी न किसी रोज़ शिक्षा मंत्री अवश्य बनेंगे. हमने उनके साथ का पूरा फायदा उठाया:

''भाई साब, अंग्रेजों के पलायन के पश्चात सब कुछ बदला है. पर हमने अपनी प्रशासनिक व्यवस्था को प्रजातंत्र की जरूरतों के मुताबिक क्यों नहीं ढाला?''

''आपके विचार से सरकार कौन चाहता है?'' आतताई जी मुस्कराये.

''यह भी कोई पूछने की बात है, जनता अपने नुमाइंदे चुनती है, चुने लोग अपना नेता. मुख्य मंत्री-मंत्री बनते हैं. वही सरकार की नैया खेते हैं.''

''बड़े अफसोस का मसला है कि इतने सालों के अनुभव के बावजूद आपकी गलतफहमी अब भी बरकरार है.''

''क्यों?'' हमने आश्चर्य जताया.

''सरकार चलाना गंवार जन प्रतिनिधियों की नहीं, जानकार अफसरों की जिम्मेदारी है.''

''फिर तो कोई बदलाव आना नहीं. अफसर कोई कालिदास हैं जो व्यवस्था की यथास्थिति की डाल काटेंगे.''

''आप ग़लत समझते हैं. अफसर वक्त के साथ अपने को लगातार बदल रहे हैं.''

''वह कैसे?'' हमने उनसे पहेली न बुझाने का अनुरोध किया.

''आई.सी.एस. का नाम आई.ए.एस. हो गया. नये विभाग बन गये. नयी सेवाओं का गठन हो गया. क्या यह सुखद बदलाव नहीं है?''

''मेरा मतलब जनता के प्रति दृष्टिकोण से है. राज गये, अफसर आ गये. रिआया तो वहां की वहीं है.'

''अधिकारी तो अंग्रेजों के साथ देश दौड़ गये. अब तो सरकार में सेवक हैं. जमकर जनता की सेवा कर रहे हैं.''

हम अपने नायाब सार्वजनिक नौकर का सोचने लगे. मिलने की कोशिश करो तो मीटिंग में व्यस्त हैं. फोन करो तो किसी दूसरे अधिकारी से चर्चा में. घर पर सताओ तो या तो नहाता है या पूजा करता है. हमारा सेवक ऐसी सेवा करता है कि जिससे साबका पड़े उसे ठिकाने लगा दे.

पहले कभी नहीं मिलते थे. रिटायर होकर पहली बार हमारे चाचा हमसे आदमी की तरह मिले.

''भतीजे! पहले क्यों नहीं आये? हमने तो हमेशा अपनों का ध्यान रखा. कुछ काम ही करवा देते. अपने आखिर होते किसलिए हैं.!''

''कोई काम ही नहीं पड़ा सर!''

''यह तो कहने की बातें हैं. तुम्हें क्या पता. जब हम राज्य सरकार में थे तो तुम्हारी चाची के मौसेरे भाई के भांजे का साला इंजीनियर था. उसके ऊपर बारह लोग थे. प्रमोशन की पोस्ट एक., अब अपने तो अपने होते हैं न, हमने बारह के बारह सस्पेंड कर दिये और अपने को तरक्की दे दी. हल्ला मचा. सिफारिशें आयीं. हमने दरियादिली दिखायी. 'सस्पेंशन' वापस ले लिया.''

''अंग्रेजों का रूल रहा होगा चाचा!''

''नहीं भतीजे. अंग्रेज मेरिट और सीनियरिटी का बड़ा कायल था. अपनों का भला तो अपने आज़ाद भारत में ही मुमकिन है. ताऊ लोग राजनीति में करते हैं, चाचा लोग प्रशासन में.''

हमने चाचा से शिकायत की कि प्रशासन में अब भी वही अंग्रेजों का तौर-तरीका जारी है. उन्होंने हमें उदाहरण देकर बताया कि ऐसा नहीं है. अंग्रेज इंग्लैंड की कालोनी में काम करते थे. हम अपने देश में आराम करते हैं. उन्होंने प्रशासन को पूरी तरह इंसान-निरपेक्षकर आधुनिक विज्ञान नहीं बनाया था. हमने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत को फाइल के निपटान में अपनाया है. साइंस के अनुसार ऊपर की चीज का नीचे आना लाज़मी है जैसे सचिव या मंत्री को लिखा गया पत्र. ख़त ख़रामा-ख़रामा सीढ़ी-दर-सीढ़ी सहायक तक आता है. अंग्रेजों के राज में अकसर गैर-साइंटिफिक काम हो जाते थे. हमारे आजाद प्रशासन में ऐसा कभी नहीं होता है. नीचे आकर कागज नीचे ही रहता है. कोई सुविधा-शुल्क की गुलेल से उसे ऊपर उछाले तो बात दीगर है.

हमारे दोस्त प्रशासन के देसी उसूल हैं. अपना यकीन है कि हर असुविधाजनक मामला अनिर्णय से स्वयं अपना हल निकाल लेता है. जैसे किसी ने अपने जूनियर के प्रमोशन के खिलाफ अर्जी दी. प्रशासन में विज्ञान के नियम के अंतर्गत अर्ज़ी नीचे गयी. उतने नीचे वालों को पटाया. उन्होंने अप्राकृतिक हरकत की. फैसले के लिए केस अफसर तक आया. उसने अनिर्णय के सिद्धांत के तहत उसे ठंडे गोदाम में डाल दिया. अब सवाल बर्दाश्त का है. पहले कौन थकता है. कर्मचारी स्मरण पत्र भेजकर या अधिकारी उनको देखा-अनदेखा कर. संभव है, इस दौरान कर्मचारी भगवान को प्यारा हो जाये या सेवानिवृत्त. अगर जिंदा बचा और उसका पौ भारी हो तो उच्च अधिकारी

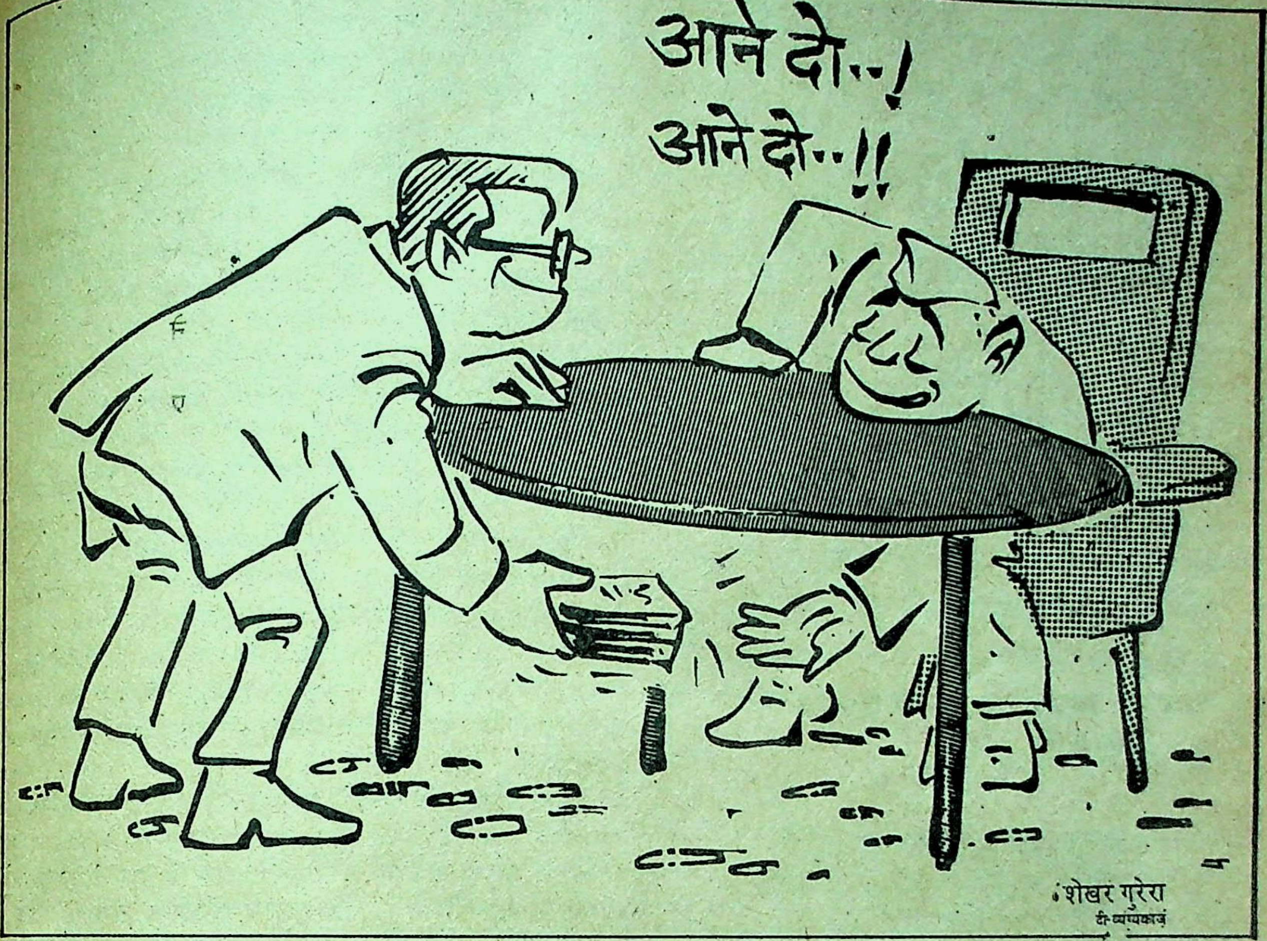
आने दो..!
आने दो..!!
शेखर गुरेरा

या मंत्री से दबाव डलवाये. तब अफसर न्यायप्रिय होने का अभिनय कर ऊपरवालों पर अहसान कर सकता है. फैसले को रोके रखना कार्यकुशल और कारगर प्रशासनिक पद्धति का आवश्यक और अनिवार्य अंग है. आर्थिक क्षेत्र जैसे लाइसेंस-परमिट में अनिर्णय से अर्थलाभ भी होता है. पर हमारी ईमानदार अफसरशाही निर्णय किसी लाभ या हानि के चक्कर में नहीं, उसेल की वजह से टालती है.

"हम प्रशासन में मूंछ-प्रिंसिपल का प्रयोग करते हैं." चाचा ने सूचित किया.

"पर अधिकतर अफसर तो मूंछ नहीं रखते." हमने शंका जतायी.

"क्यों रखें भतीजे! कोई पुलिस-फौज वाले हैं! हमें अपनी ताकत का पता है. नेता के पेट में दाढ़ी होती है, हमारे मन में मूंछ."

"आप मन की मूंछ से शासन कैसे चलाते हैं?"

"मन-माफिक काम कर मूंछों पर ताव देते हैं."

चर्चा से निष्कर्ष यह निकला कि देश का प्रशासन किसी मैनेजमेंट-प्रिंसिपल से नहीं, मूंछ के उसूल से चलता है. मूंछवाले सिद्धांत से तटस्थ और सत्ता से जुड़े रहते हैं. वह हर पार्टी में अपना आका खोज लेते हैं. मूंछवाला बोलता सिर्फ सार्वजनिक हित का और सोचता बस अपनी सुख-सुविधा का है. स्वतंत्रता के बाद. तादाद से लेकर तरक्की तक, असली आज़ादी सिर्फ मूंछवालों को मिली है.

चाचा हमें ज्ञान देते हैं. "प्रशासन के लिए कुशल प्रशासन ज़रूरी है. इसीलिए संकट में हम अपना मनोबल बढ़ाये रहते हैं.

"ब्लड प्रैशर जांचने की मशीन की तरह कोई मशीन है क्या?"

"मशीन की जरूरत अज्ञानियों को होती है. हम तो शक्ल देखकर माप लेते हैं कि मनोबल कमज़ोर होने का मर्ज क्यों है. फिर कभी हम अपना पद बढ़ाते हैं, कभी वेतन."

"दूसरे एतराज नहीं करते क्या!"

"करते रहें. डाक्टर, वैज्ञानिक इंजीनियर तो दुम-छल्ले हैं. उनका क्या. मनोबल हो तो चलेगा, न हों तब भी चलेगा. ऐसे इधर वह भी हमारी टोल में आ रहे हैं."

"यह किसलिए! उनकी पढ़ाई-लिखाई पर तो देश इतना खर्च करता है. सब कहते हैं कि मुल्क का विकास उन्हीं पर तो मुयस्सर है."

"बहुत दिनों बाद उन्होंने असलियत जानी है. ज्ञान, योग्यता और रिसर्च की पूंछ व्यर्थ है. सत्ता-सुविधा और सामाजिक प्रतिष्ठा हासिल करने के लिए असली बस मन की मूंछ है."

हमें यकीन हो गया है. अब मुल्क में स्वार्थी अंग्रेजों की मतलब-परस्त प्रशासनिक विरासत कतई नहीं बची है. फिलहाल मूंछ-व्यवस्था है, जो संकल्प के साथ अपने से कमज़ोर की 'सेवा' में जी-जान से जुटी है. □

पहली बार आखिरी बार

उसकी पसंद की कसौटी पर खरे उतरने वाले लड़कों की अदाएं अनोखी होती थीं. उनकी नजरें, उनके अंदाज, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-बतलाना—कुछ अजीबोगरीब ही होता था. किसी के भी सीने को चाक कर देने वाले उस तरह के युवकों को वह पहली नजर में ही भांप लेती थी...

□ शशिप्रभा शास्त्री

१९५६ से निरंतर लेखन. प्रमुख कृतियां : 'नावें', 'सीढ़ियां', 'परछाइयों के पीछे', 'बरसों के बाद', 'क्योंकि', 'कर्क रेखा' [उपन्यास]. 'धुली हुई शाम', 'दो कहानियों के बीच', 'अनुचरित', 'जोड़ बाकी', 'पतझड़' [कहानी संग्रह] संपर्क : ६/६, भगवान नगर, देहरादून (उ.प्र.)

छोटी उम्र के लड़के उसे अच्छे लगते थे. हमउम्र पचपन बरस की उम्र के आदमी उसकी ओर हाथ बढ़ाते, दोस्ती का, प्रेम का, पर हम उम्र होते हुए भी उनसे दूर छिटकी रहती, डरती, खौफ खाती, कहीं उनका पंजा उसके कंधे-पीठ को न छू ले. हैरान होते, उसे सती-साध्वी समझते. कभी बच्ची जैसी समझ वाली, जो अपनी गायकी में लहरा लेने में माहिर होती हुई भी, हर हाव-भाव की बारीकी को अपनी खूबसूरत आवाज में और ज्यादा पैना बनाकर उजागर करती हुई भी (मानो के लफ्ज नहीं, उन घुनों औरतों के साथ वह खुद-ब-खुद साक्षात उड़ी चली जा रही हो) व्यावहारिक दुनिया में वह उसे अजीबोगरीब अंदाज में भला क्यों पेश आती है? वे लोग सोचते, उसके भाव-भनके क्या उसके संगीत की गतों में पुराने के लिए ही हैं? आवाज के अलावा उसके दिल का बांध कभी और कहीं क्यों नहीं टूटता?

अधेड़ उम्र के लोग कहां जानते थे, कि उनकी बेरहम भौंडी शरारतें नहीं, उसको तो मासूम-नादान लड़कों की नासमझ नजरें मात्र ही मोहती हैं. उन अधपके-अधबुझे, सूखे-चुचके अंग-प्रत्यंग वाले, लुचपुचे अधपकी उम्रों के लोगों की गंदी हरकतें, उछाला लेती हुई उनकी नटखटी हरकतें, उसे एकदम बनावटी लगती हैं. महफिलों में बने-संवरे, कायदे-कानून को पहचानने वाले, नैतिकता के चश्मे चढ़ाये बैठे हुए उन सफेदपोश लोगों के सामने उसे कच्ची-हरी अंबियों की तरह नादान-नासमझ उजड़ी-बिखरी जुल्फों वाले मामूली ढंग के लिबास में ढके-मुंदे कमसिन लड़के ही जादू बिखेरते प्रतीत होते हैं, वही उसकी दिल की क्यारियों में फूल खिलाते हैं, भले ही उसके मन के भीतर झांककर देखने की (भोली उम्रों वाले वे) चाहे हिम्मत जुटा पाने की बात भी न सोच पायें, जुटा पाना तो बहुत दूर की बात है.

उसकी पसंद की कसौटी पर खरे उतरने वाले लड़कों की अदाएं अनोखी होती थीं, उनकी नजरें उनके अंदाज, उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-बतलाना कुछ अजीबोगरीब ही होता था, किसी के भी सीने को चाक कर देने वाले उस तरह के युवकों को वह पहली नजर में ही भांप लेती थी, सिर्फ वह नहीं, उसके हम उम्र और कम उम्र वाले भी इस तरहँ के लड़कों की उन खासियतों को पहचानते होते, पर उन पर मर मिटने, अपने मन के बेमालूम तारों से उन्हें घसीटकर लाने की ताकत, बस उसमें ही होती, बाकी लोगों को उनमें सिर्फ बचपना नजर आता, वे उस बचपने को दुलारते, पर वात्सल्य का हाथ फेरते.

वात्सल्य का प्याला उन पर वह भी छलकाती, पर साथ-साथ अपनी खास पैनी निगाहों की नोंक से वह उन युवकों के दिलों में पत्थर बनी पड़ी हसरतों को धीमे-धीमे पिघला देने की सामर्थ्य भी रखती और पिघला भी देती. उसके बाद उसे कुछ न करना होता. पिघली हुई गरम लावे की तरियों की अपनी हसरतें लिये वे युवक ही उसके पीछे दौड़ते लपलपाते. वह पीछे मुड़कर उनकी ओर देखती, फिर आगे बढ़ जाती और अपने दिलों की धड़धड़ाती धड़कनें लिये उसके पीछे भागते रहते, तब तक जब तक कि वे उसे अपनी हम उम्र महबूबा मान अपनी बाहों को उसके गले का हार न बना लेते.

बाहर से सीधी शांत-प्रशांत दिखने वाली सीधी-सात्विक शालीनता और सौम्यता की प्रतिमूर्ति वह तब उनके लिए वो वो साज सजाती, उनके साथ वो अठखेलियां करती, सागर की छाती पर उमड़-घुमड़ मचाने वाली लहरियों की तरह उनके साथ वह इस तरह के खिलवाड़ करती, कि उसके बाद वे किसी दूसरी स्त्री, यहां तक कि अपनी पत्नी को पाकर भी वह नशा न भूल पाते, जिसके आसव से उसने उन्हें किसी दिन सराबोर किया था. मदमस्त करनेवाली उस भाव-लहरी को बस वे दोनों ही जानते होते, तीसरा कोई उनके बीच में वहां होता ही न था. उसके संगीत में

मिठास बस इसी सबसे आती, प्रेमी बनकर उसके हमउम्र जन कहां जानते होते, कि वह मस्ती अपनी अदाओं में वह नुनखारापन—जिसके बल पर महफिल में बैठकर वह उन सबको मदमस्त बनाती है, उसका स्रोत बहुत गहरा है, कहीं बहुत दूर नीचे तल में की किन्हीं नशीली दरारों से चुराया हुआ.

वह खुद भी कहां जानती थी कि उसके भीतर उस तरह की ललक (आग) उस बेतरह छिपी हुई है, उसने तो एक सात्विक कुल में जन्म लिया था, सनातनी पूजापाठी थे वे लोग, दान-पुण्य करने वाले, ईश्वर से डरने वाले, अनेक तरह के विश्वासों में डूबे हुए— वे भी कहां जानते थे, उनकी वह सीधी-सादी-सी दिखने वाली छोकरी किन्हीं मासूमों पर किसी दिन उस तरह के छुरे घोंपेगी और यह भी कि वह उबड़ खाबड़-सी नजर आने वाली खेलखड़ी की कठपुतली-सी लड़की, किन्हीं जनों के लिए किसी दिन उतनी सलौनी नमकीन जान बन जायेगी.

छुटपन में सर्दी के दिनों में उसके पैरों में बिवाइयां फटी रहती थीं, बरसात के मौसम में जामुन बीनते हुए नाखूनों के बीच कीचड़ी मिट्टी-धंस जाती. हथेलियां बड़ी-बड़ी पर पत्ते की तरह कमजोर दिखतीं, नाक दबी हुई, बाल छोटे कमर नाड़ा बंधनी जगह पर गहरा निशान लिए हुए—पर तरुणावस्था के कल्ले फूटते ही उसका वह ऐंडाबेंडापन न जाने कहां विलीन हो गया, आंखें कितनी काली कर्ण-विचुंबित और नुकीली हो उठीं, नासिका का चपटापन न जाने कहां विलीन हो गया, गालों पर चमेली के फूल कैसे खिल उठे, बाल लहराकर कमर तक कैसे झूल आये और वह कमर पंद्रह बरस की उम्र के बाद तो चौड़ाई में जैसे बढ़ना ही भूल गयी थी, हाथ की उंगलियों में लंबाई और नरमाई न जाने कहां से आ गयी, वह सब उसे कुछ पता ही न चला—वह तो उस समय तक स्वर के लोच में कैद हो चुकी थी, स्वर रातदिन कूकता. काले तवों पर रेंगते गानों की आवाजों को उसके होंठ और गला ज्यों का त्यों समेट लेते. कैसे? उसे कुछ चेत नहीं था. वह तो अपने में ही डूबी हुई थी झूठी-बनावटी साज-सिंगार से कटकर स्वर के साथ-साथ देह को भी अपनी मेहनत और लगन से पुष्ट बनाती हुई. औरतें उसकी देह को देखकर ईर्ष्यालु हो उठतीं. वे नादान कहां जानती थीं कि स्त्रियों को भी अपनी देह को मेहनत और हम्माली से कमाना होता है, उस दिशा में उनके लिए भी त्याग-तपस्या और खास तरह की साधना की दरकार होती है.

वही देह अब सुगंध की लपटें बखेरने लगी थी, देह की पुष्टता और लचक के साथ-साथ स्वर में भी खुशबू गमक उठी थी, गोलाइयों में गोलपन और अधिक मजबूत बनकर समा गया था. मर्द के हाथ के स्पर्श की गरमाई का एहसास उसे बरसों बाद पहली बार अपने प्रेमी से ही मिला था. उस क्षण,प्रेमी की सांस भी एकाएकी रुक-सी गयी थी. बाद के दिनों में प्रेमी ने ही बताया था बच्चों की किताबों-कापियों के नीचे रखे वे दो हाथ जैसे एक-दूसरे से चिपक गये हों और सारा संसार उन्हें देख रहा हो. संसार को देखने की उन्हें तब सुध-बुध ही कहां थी. उसके यौवन में सेंध लगाने वाली उम्र की चोरन को जानता-बूझता भी वह उसके पीछे लट्टू हो उठा था. उसके साथ किसी दूसरे को मुस्कराकर बात करते देखता, और उससे अकेले में पूछ बैठता, ''यह मेरा राइवल तो नहीं है?'' वह भी मुस्कराकर कहती.

''हां हां हां, कहो क्या कहते हो?'' और फिर दोनों उस झूठ से आंख-मिचौली खेलते हुए एक-दूसरे से सट जाते. वह उसे बच्ची की तरह थामकर चारों ओर फिरनी की तरह घुमा देता और वह बच्ची की तरह घूमती हुई भी उसे बड़ी बहन की तरह चपतिया देती. दोनों के खेल-खिलवाड़ न बनावटी लगते, न अनूठे. दो प्रेमी जनों के बीच सनातन काल से चले आते खेल-खिलवाड़ों की तरह वे एकदम स्वाभाविक प्रतीत होते.

यों वह सचमुच उससे डरती थी, कहीं वह सचमुच उसे बेवफा न समझ बैठे. वह बेवफा थी भी नहीं, पर प्रयत्नपूर्वक अपने को उस तरह का सिद्ध करने के लिए वह स्वयं को उसके सामने जिस तरह से प्रस्तुत करती, उस आयास से वह थकने लगी थी—थकने और घुटने, सांस लेने की जैसे तमाम खिड़कियां ही बंद हो गयी हों.

एक खिड़की नहीं, एक छोटा-सा झरोखा तब अचानक खुला था—संगीत के उस विराट अधिवेशन में वह एकाएकी मिल गया था. बल्कि उससे पहले उस ट्रेन के डिब्बे में ही जिसे अधिवेशन में भाग लेने के लिए आने वाले प्रतिनिधियों के लिए आरक्षित किया गया था, वही पुरानी कुलन, फिर जगी थी और इस बार दोनों के हाथ नहीं, दिल चिपक गये थे: एकाएकी अचानक वह तो उससे कहीं छोटी उम्र का था फिर वह

अभिनय

रूस के एक महान अभिनेता को गूंगों और बहरों की एक संस्था में बुलाया गया, जहां उन्हें अपनी प्रसिद्ध फिल्मों के खास-खास दृश्य पेश करने थे.

जब वे विभिन्न पात्रों की भूमिकाएं करके दिखा रहे थे, तो एक व्यक्ति उनके पास खड़ा होकर गूंगे-बहरे दर्शकों को अपने दोनों हाथों की अंगुलियों के संकेतों द्वारा समझा रहा था कि वे किस पात्र की भूमिका कर रहे हैं और संवाद बोलते हुए क्या कह रहे हैं!

अभिनेता ने कुछ एक बार उस व्यक्ति की ओर देखा. फिर, जब उन्हें पता लगा कि वह अंगुलियों की हरकतों द्वारा दर्शकों को क्या बता रहा है, तो उन्होंने अपने मन में कहा, ''मैं तो व्यर्थ ही अभिनय पर जोर देकर खुद को थका रहा हूं, जबकि यह व्यक्ति सिर्फ अंगुलियों के संकेतों द्वारा ही उन्हें सारी बात समझाये जा रहा है.'' □

—सुखबीर

उससे जुड़ गया था—उसकी पत्नी और उसकी अपनी दोनों की उम्रों का जो जोड़ बैठता था, उस उम्र की उस अजीबोगरीब औरत से. उस संगीत अधिवेशन में उस महिला के कितने ही परिचित जन तो आये थे, उस कला में उससे अधिक माहिर, अधिक नामी-गिरामी, उसको प्रशंसा और प्रेम की निगाहों से देखने वाले भी, पर वह तो वहां किन्हीं सांपों नहीं, उस नन्हें सपोले के द्वारा डस ली गयी थी, नहीं नहीं, डसने की पहल उसने ही की थी या दोनों ने ही—कुछ सुधबुध कुछ चेत नहीं था दोनों को ही—दो भिन्न ठिकानों पर रहते हुए भी दोनों के दिलों को किसी ने एक ठिकाने ही बांधकर डाल दिया था. अधिवेशन के मध्य होने वाले भिन्न-भिन्न सत्रों में से उस रात के सत्र के उपरांत उस ठंडी रात मे वह उसे उसके ठिकाने पर पहुंचाने गया था, ऑटोरिक्शे में दोनों एक-दूसरे का हाथ थामे यों बैठे रहे थे, जैसे वे दोनों क्षितिज के अंतिम छोर को छूने के लिए निकल पड़े हों और तब उन्हें उस वाहन में से उतरना ही न हो, जब तक वे अपनी मंजिल पर न पहुंच जायें.

बरसों गुजर गये थे उस हादसे को भी, जब वह एक दिन अचानक उसके यहां आ पहुंचा था. वह उसे भूली नहीं थी. घटनाओं के सिलसिलों के बीच वह नन्हीं-सी चिनगारी बस दब भर गयी थी. उसके आगमन ने स्मृति की राख को छिटका कर उसे एकाएकी नग्न कर दिया था. हैरान रह गयी थी. वह उस रात उसकी उस मांग को सुनकर. जिस आश्रम में वह कुछ बरसों पहले प्रविष्ठ हुआ था शायद उसकी प्रक्रियाओं ने ही उसे उस दिशा में पटु और प्रगल्भ बना डाला था. उम्र में अधूरा होते हुए भी उस पर हावी होने की कला में भी वह कहीं अधिक प्रवीण हो चुका था. उस मांग और उसको उसने तब एक नादान बच्चे की तरह थपथपाकर शांत कर दिया था, "नहीं, वह डगर तो अब मेरे लिए बहुत कठिन है, एकदम प्रतिबंधित. उस समय जब तुम मुझे पहली बार मिले थे, तब तुम कितने बच्चे थे, कितने नासमझ, अगर तब तुम कुछ कहते तो..."

सुनकर वह अफसोस में डूब गया था.

हे भगवान मैं जिसे चाहती हूं, जो चाहती हूं मुझे वही मिल जाता है, खुद दौड़कर आ जाता है मेरे पास. पर अब नहीं बिल्कुल नहीं, न जाने कितनों को याद करती रही थी वह उस दिन.

और तभी वह आया था उसकी जिंदगी में, उसकी जिंदगी में नहीं, उसकी निगाहों के बीच. वह था उसकी मामा की बेटी की बेटी का पति. कितना मोहक-भोला-नादान और अपनी उन खूबियों से अचेत. बात करने में पटु-शिष्ट-सभ्य-शिक्षित जो उसे देखता, उससे बंध जाता. हैरान थे सब उसे देखकर. औरतों के झुंड के बीच खड़ी उसका टीका करती वह—उसने कभी सोचा भी नहीं था, कि उस युवक ने उसे देखा भी होगा, पर उसने उसे देखा था, फिर अलग से उसकी ख्याति सुनी थी, उसके बोलों की खनक उस उम्र में भी बरकरार थी, उम्र ने काफी लंबा रास्ता तय कर लिया था, पर महफिल में वह अब भी सराही जाती, लोग उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखते, उसकी आवाज लोगों को अब भी निःशब्द कर देती. समूह में उनकी आभारी होती, अपनी तारीफा को जर्रानवाजी कहती; पर एकांत में उन हमउम्र वालों से वह अब भी आतंकित रहती, उनका ऊदबिलावी लंपटपन उस उम्र में भी उसे आशंकित बना जाता.

कुछ नहीं रह गया है अब उसमें—वह प्राय: सोचती..लोग सोचते, अपनी उस उम्र में उनकी उस तक पहुंच को वह उनकी कृपा मानेगी, पर उनकी अपने प्रति कोई भी हरकत उसे लुच्चापन नजर आती. वह कमजोर हो गयी थी, समय-असमय बीमार रहने लगी थी. भीतर से जिंदादिल ऊपर से टूटी और विश्रृंखलित. लेटे-लेटे उसकी याद्दाश्त में प्राय: वे सब सरकते रहते, जिनके लिए लोलिता के प्रेमी सदृश होने की

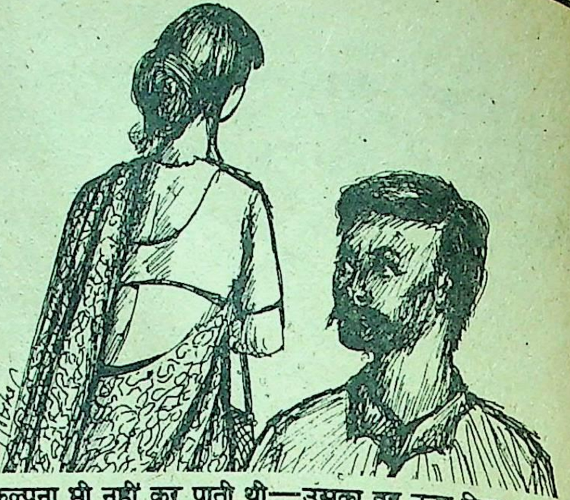

वह कल्पना भी नहीं कर पाती थी—उसका वह नन्हा शिष्ट बंधु कभी उससे मिलेगा, कभी सोचा भी नहीं था हालांकि उसे वह प्राय: याद करती, उसके बारे में सोचती, जानना चाहती, वह उन दिनों क्या कर रहा होगा, किस व्यवसाय में लगा होगा. उसके मामा की बेटी की बिटिया कुमुद उसके साथ कैसे रह-बस रही होगी, कहां होगी वह? इतने अर्से से मामा से उसका कोई पत्राचार भी नहीं हुआ था.

तभी सूरज की पहली किरण की तरह वह उदित हुआ था—वह लेटी हुई थी, थकित थी, आंखें मूंदे कुछ सोच रही थी कि तभी कुछ महसूस हुआ, वातावरण में किसी की आकस्मिक उपस्थिति की सुगंधमय सरसराहट जैसा एहसास—उसने आंखें खोल दीं—वह उसके सामने खड़ा था, दहलीज के उसपार. अविश्वास से उसके होंठ चिपक रहे थे, फिर एकाएकी खुले थे, "अरे! आओ न ! कैसे कहां से तु S S म!!"

"मैं आपके ही शहर में आ गया हूं, आजकल यहीं बस रहा हूं." जैसे वह समझ न पा रहा हो, कैसे शुरू करे.

"ओह, तो कुमुद ने कहा होगा..." स्मृति की दरारों से भानजी की बिटिया का जो नाम फिसल गया था, क्षण के उस नन्हें-से खंड में ही वह न जाने कैसे सरक आया, "जाकर नानी को देख आओ ठीक है न?"

"नहीं नहीं, कुमुद को तो मालूम भी नहीं, कि मैं इधर आया हूं."

"तब तुम्हें मेरा पता कहां से मिला?"

"क्योंS S क्या मुश्किल था, आपका पता तो हमेशा से मेरे पास था कS S ब ..."

"सच रे! अरे कैसे?" वह विस्मय विमुग्ध थी. "अच्छा तो कैसे आये?" उसने यों ही फिर वाक्य बनाया.

"बस ऐसे ही....आपकी गायकी और आपका स्वरूप खींच लाया मुझे."वाक्य उचारकर उसने अपने होंठो को सहला लिया, एकदम सकपकाते हुए.

"हाS Sय राS Sम ! मैं तुम्हारी आभारी हूं." उसने उसकी आंखों में झांका था—कितनी कच्ची उम्र थी उसकी, कितनी निर्दोष अबोध थीं उसकी आंखें. चेहरे पर की मासूमियत, कितना नादान है यह, एकदम नासमझ अनजान—और उसकी अपनी आंखें, इस उम्र में भी मद के प्याले छलकाती उन आंखों में इस समय अचानक किरकिरी भर आयी थी : तो कतार में यह भी खड़ा है, यह नन्हीं-सी जान. अपनी आवाज को साधकर बड़े संयमित ढंग से उसने कहा, "अच्छा किया बेटे, तुम आये, तुम्हें देखकर मुझे बहुत खुशी हुई है, पर अब मैं इस घर से कुछ दिनों के लिए बाहर जा रही हूं, लौटूंगी तो तुम्हें खबर दूंगी जरूर और पहली बार उसने उसे समूचा ही छोड़ दिया था. ☐

उस सिलसिले का वह आखिर ही था निश्चित रूप से.

अगवाई

'उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा जरूर लिया पर न वे स्वतंत्रता का मतलब समझे न संग्राम का. जरूरत ही नहीं समझी, क्योंकि वे तो अंग्रेजों के लिए नफरत में झुलसते रहते थे...' फिर उस दिन ऐसा क्या हुआ कि उनकी आंखें खुल गईं...?

☐ **गोविंद मिश्र**

जन्म : १९३९ अतर्रा, बांदा (उ.प्र.)

प्रमुख कृतियां : 'लाल पीली जमीन', 'वह अपना चेहरा', 'तुम्हारी रोशनी में', 'धीर समीरे' [उपन्यास], 'धांसू', 'खाक इतिहास', 'मुझे घर ले चलो', 'पगला बाबा' [कहानी संग्रह]. 'लेखक की जमीन' [साक्षात्कार].

संपर्क : २२ बैलवेडियर, भूलाभाई देसाई मार्ग, बंबई-४०००३६.

टहलने के लिए निकले थे रामेश्वर भाई, सुस्ताने को एक पुलिया पर बैठ गये थे...

देखा, कि सड़क पर एक छोटा-मोटा जुलूस बढ़ा चला आ रहा है. जुलूस में ज्यादातर आदमी थे, सभी खादी की धोती-कुरता पहने और टोपी लगाये हुए. नारे लगाते हुए वे मुख्यमंत्री के निवास की ओर जा रहे थे—

"हमारा नेता...छक्की पांडे..."

"छक्की पांडे आगे बढ़ो, जनता तुम्हारे साथ है..."

वे मुख्यमंत्री की पार्टी के लोग थे और यह प्रचार करने के लिए सड़क पर उतरे थे कि जनता मुख्यमंत्री के साथ है. शायद उससे भी ज्यादा मुख्यमंत्री को यह दिखाना चाहते थे कि वे उनके लिए कितना कर रहे हैं. उन दिनों मुख्यमंत्री के खिलाफ अखबारों में काफी निकल रहा था. हवा बांधने के लिए मुख्यमंत्री के किसी चाटुकार-सलाहकार की यह तजवीज थी कि रोज ऐसे छोटे-मोटे जत्थे मुख्यमंत्री की जयजयकार करते उनके घर जायें. जत्थों को मुख्यमंत्री अपनी कोठी के बाहर आकर संबोधित भी करते थे जो टी.वी. पर दिखाया जाता.

हम कहां से कहां आ गये...रामेश्वर भाई सोचने लगे. जब वे राजनीति में थे तब जुलूस विरोध करने, जान की बाजी लगाने के लिए निकलते थे, आज चापलूसी में कुछ पाने के लालच में निकलते हैं. कहां आजादी की लड़ाई के समय के नेता, जो जन-समुदाय में उतरकर भीड़ के साथ चलते थे, कहां अब के ये नेता जो सुरक्षाकर्मियों की आड़ में अपनी बड़ी-बड़ी कोठियों में दुबके बैठे रहते हैं और घर पर ही अपनी पार्टी के लोगों को संबोधित करके खुश हो लेते हैं. जनता को कुछ कहना हो तो वीडियो-कैसेट बनवाकर जगह-जगह बंटवा दिया. कहां गये रामेश्वरभाई के समय के लोग...ज्यादातर तो उस पार चले गये होंगे, कुछ इधर-उधर छितरे अपना बुढ़ापा जी रहे होंगे. रामेश्वरभाई भी तो सत्तर पार निकल आये! वह तो कहिए कि बयालीस के आंदोलन में इतना पैदल चलना हुआ, इतनी लाठियां खायीं कि आज भी शरीर बुरा भले गया हो, छड़ी की तरह खड़ा है. आदत सीधा खड़े रहने की डाली थी.

एक मामूली-सी घटना रामेश्वरभाई को गांधीजी के आंदोलन में खींच ले गयी थी. रामेश्वर तब दस-बारह के रहे होंगे. उस रोज आतीपाती खेलते वे अकेले नगर के बाहर निकल गये. वह खेल ही ऐसा था...एक टीम को किसी खास पेड़ की पत्ती लाने को कहा जाता, पत्ती लाने के बाद वह टीम दूसरी टीम के लड़कों को खोजने-पकड़ने निकलती. अंधेरा होने तक अगर नहीं पकड़ पाये तो फिर पदना पड़ता—माने अगले दिन फिर कोई पत्ती लाने जाना और उसके बाद दूसरी टीम को ढूंढ़ना. इस तरह खेल कभी-कभी तीन-तीन दिन लगातार खिंचा चला जाता. रामेश्वर नीम की एक डाल पर छिपे बैठे थे कि शरीर की घिसटन से एक छोटी-सी खपच्ची पेड़ से अलग होकर नीचे घूम रहे एक अंग्रेज बच्चे के सिर पर जा गिरी. बच्चा पांच साल का होगा. खपच्ची में वजन ही कितना था, और बच्चे ने अनायास ही उसे अपने बालों से झाड़कर हाथ में ले लिया और थोड़ा अचरज से उसे देखने लगा...लेकिन बच्चे को घुमाने लायी दो औरतें वे आग-बबूला हो गयीं. एक अंग्रेज थी जो बच्चे की मां दिखती थी, दूसरी काली-कलूटी हिंदुस्तानी नौकरानी थी. दोनों औरतों ने जो तरेरकर देखा कि रामेश्वर की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी, नौकरानी तो एकदम ढेला चलाने लगी. रामेश्वर सरपट पेड़ से उतरा और अपने घर की तरफ भागा. उसे तब ध्यान आया कि खेलते-खेलते वह सिविल लाइंस में घुस आया था. सिविल लाइंस अंग्रेजों का एरिया था.

अंग्रेज औरत बच्चे के साथ रह गयी पर नौकरानी रामेश्वर के पीछे-

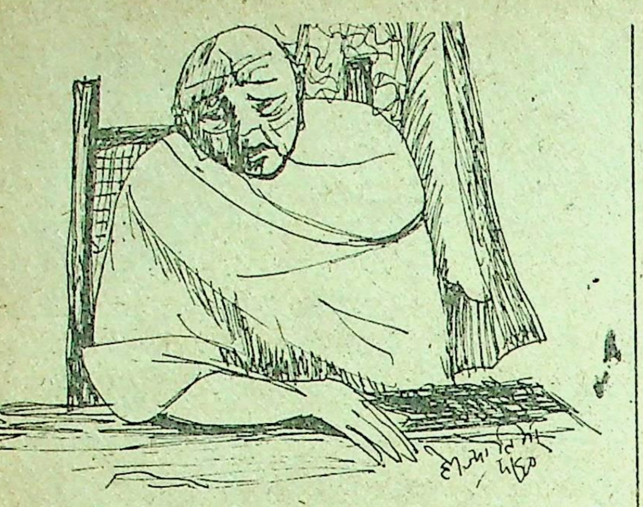

पीछे ठेला चलाती हुई, उसे खदेड़ती हुई रामेश्वर के घर तक पहुंच गयी. रामेश्वर तो तपाक से घर के भीतर घुस गया, नौकरानी बाहर खड़ी गरियाती रही, रामेश्वर के पिता से न जाने कितना भला-बुरा कहती रही. पिता चुपचाप सुनते रहे. शाम को मां ने पिता से शिकायत की, "एक छोटी-सी खपच्ची ही गिरी थी, वह भी रामेश्वर के अनजाने...उस पर वह मामूली औरत दरवज्जे पर आकर इतना सुना गयी, कैसी-कैसी गंदी गालियां बक रही थी और हम सुनते रहे, एक नौकरानी!"

"हां नौकरानी...पर वह अंग्रेज की नौकरानी है." पिता ने सिर्फ इतना कहा और बाहर निकल गये थे.

अपमान और बेबसी में सुलगता पिता का चेहरा कैसा...राख-सा हो आया था उस समय...जब एक पूरी की पूरी कौम की बेइज्जती एक चेहरे पर आकर पैठ जाती है. उस क्षण ही अंग्रेजों के लिए जबर्दस्त घृणा रामेश्वरभाई के मन में बैठ गयी. गांधीजी के 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' की गूंज उठी कि वे पढ़ाई छोड़कर बिना किसी को बताये आंदोलन में कूद गये, लेकिन चूंकि ऐसा उन्होंने सिर्फ अंग्रेजों के प्रति अपनी नफरत की वजह से किया था, इसलिए उधर अंग्रेज भारत से गये, इधर रामेश्वरभाई अपनी दुनिया में लौट आये...जैसे कि उनके भीतर जो भी आग सुलग रही थी, वह फिरंगी झंडे के नीचे आते ही शांत हो गयी थी...

पुलिया पर बैठे रामेश्वरभाई देख रहे थे—जुलूस अब काफी करीब आ गया था. कुछ ही मिनटों में वह पुलिया से गुजरता...कि एकाएक नौजवानों का एक गिरोह कहीं से आकर प्रकट हो गया और जुलूस का रास्ता रोककर खड़ा हो गया. सिर्फ दस-बारह लड़के-लड़कियां जो पानी की अलग-अलग धाराओं की तरह इधर-उधर से बहते हुए आये और सड़क पर आ मिले थे.

युवक-युवतियों के उस दल ने जुलूस को आगे बढ़ने से रोक दिया था. उधर जुलूस की तरफ से नारे और जोर से चल पड़े—

"हमारा नेता...छक्की पांडे..."

"देश का नेता...छक्की पांडे...

"छक्की पांडे संघर्ष करो, जनता तुम्हारे साथ है..."

नारों के शोर के सामने नवयुवकों का दल दृढ़ता से खड़ा था. यह दल विरोधी पार्टी का भी हो सकता था, लेकिन रामेश्वर भाई को एक बात अजीब दिख रही थी—जितना जुलूस वाले चिल्लाते, उतनी ही शांति पर दृढ़ता से उनकी तरफ देखते हुए इधर युवक-युवतियां खड़े थे. स्थिति विस्फोटक थी—जैसे कि दो सेनाएं आमने-सामने खड़ी थीं और कभी भी युद्ध छिड़ सकता था.

जब जुलूस के लोग नारे लगाते-लगाते थक आये तो उनका नेता आगे बढ़कर नवयुवकों के दल से बोला, "आप लोग रास्ते से हट जाइए!"

"जवाब में इधर से कोई नहीं बोला.

"रास्ते से हट जाइए...वरना..."

दूसरी तरफ अब भी मौन, जो ज्यादा ताकतवर साबित हो रहा था.

"आप हमारे विरोधी नहीं हैं. पढ़ने-लिखने वाले लड़के हैं. जाइए, पढ़िये-लिखिये. आप राजनीति में क्यों पड़ते हैं!"

उस पर भी नवयुवकों की तरफ से कोई कुछ नहीं बोला तो खादीधारी नेता करीब-करीब बौखला गया, "आखिर हमने आपका क्या बिगाड़ा है? क्या परेशानी है आपको हमसे, क्या चाहते हैं आप?"

"आप अपनी टोपियां फेंक दीजिए." इस बार नवयुवकों में से एक आगे बढ़कर खासी संजीदगी से बोला.

"क्यों?"

"क्योंकि खादी और टोपी से हमें नफरत है. हमने इस पोशाक के खिलाफ जंग छेड़ रखी है."

"वाह साहब! यह भी क्या बात हुई! हमें आपकी पोशाक अच्छी न लगे तो इसके माने हम आपके काम में विघ्न डालें?"

"आपकी यह पोशाक झूठ पर पर्दा डालती है. ढोंगियों और मक्कारों की पोशाक है यह. इसने हमारे देश को चूसा है."

जाहिर था कि जो विरोध कर रहे थे, वे विद्यार्थी थे. उनका विरोध न तो किसी पार्टी का था और न ही वह किसी स्वार्थ से प्रेरित...इसीलिए उसमें दृढ़ता थी. दूसरी तरफ चापलूसों का झुंड था. अवसर के अनुसार अपने को बदल लेने की आदत इन लोगों का स्वभाव बन चुकी थी. हिम्मत वहां कहां!" नौजवानों के दबे हुए ईमानदार क्रोध से जुलूस वाले साफ डरे हुए दिख रहे थे.

रामेश्वर भाई को रोमांच हो आया...तो नैतिकता अब भी शक्ति है! वे अपने आपको टटोलने लगे...वे क्या हैं, क्या रह गये हैं...पहले जो थे, उसका छूंछ मात्र, खोखा! बाहरी चोला, जिसे वे छू सकते थे—वही नजर आया उन्हें. वे भी खादी पहने हुए हैं, सफेद बारीक खादी नहीं, खुरदुरी और डिजाइनदार...इतनी साधारण कि खादी ही मालूम न दे. सिर पर टोपी नहीं थी. उनके बाल लंबे और पीछे झूलते हुए थे. दाढ़ी भी बढ़ी हुई थी. वे राजनेता तो एकदम नहीं, गृहस्थ कम, बाबा ज्यादा लगते होंगे...उन्हें कोई खतरा नहीं था!

"फेंकिये अपनी टोपियां..." विद्यार्थियों में से एक आगे बढ़कर और थोड़ा तमककर जुलूसवालों से कह रहा था.

दूसरी तरफ भी थोड़ा-थोड़ा तैश चेहरों पर उतराने लगा था. आखिर वे मुख्यमंत्री की पार्टी के लोग थे, उनके निवास पर जा रहे थे! वातावरण खासा गरमा गया था...बस, एक तगड़ी बात किसी तरफ से उठी कि मारपीट शुरू हो जाना थी...

रामेश्वर भाई के भीतर कुछ चटक रहा था...उन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम में हिस्सा जरूर लिया पर न ही वे स्वतंत्रता का मतलब समझे, न संग्राम का. जरूरत ही नहीं समझी क्योंकि वे तो अंग्रेजों के लिए नफरत में झुलसते रहते थे. अंग्रेजों के पार भी एक संग्राम हो सकता था, मूल्यों के लिए किया जाने वाला सतत संग्राम...इस तक वे उठ ही नहीं पाये. अंग्रेजों के जाते ही उन्होंने अपने आपको खींच लिया—बाहर कुछ भी होता रहे, वे अपनी छोटी-छोटी जरूरतों को पूरा करने में व्यस्त हो गये. वे भूल गये कि अपने नेताओं को रास्ते पर रखने की जिम्मेदारी भी उनकी थी. उन्होंने हाथ झाड़ लिये और एक किनारे जा बैठे, जैसे कि अब बैठे हुए हैं, एक तरफ पुलिया पर...उठो रामेश्वर भाई अब तो उठो, देर भले ही हो गयी हो पर जब समझ में आ जाये तभी उठ जाओ, उठो...

दंगा

☐ अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन'

ठंडक अपनी चरम सीमा पर थी. सुबह-सुबह हनुमान मंदिर के सामने सड़क के किनारे एक अच्छी खासी भीड़ जमा थी. आफिस को जा रहे मेरे पैर अनायास ही उस ओर मुड़ गये. पास गया तो देखा कि एक बूढ़ा भिखारी ठंड से अकड़कर मर गया है. उसके शरीर पर एक मैली सी धोती और तार-तार फटी चादर के सिवा और कुछ न था. लाश को घेरे ढेर सारे लोग खड़े थे और तरह-तरह की बातें चल रही थीं. एक बुजुर्ग ने सुझाया कि सभी को मिलजुल कर इस लाश का क्रिया-कर्म कर देना चाहिए.

भीड़ में खड़े एक मौलवी ने दाढ़ी खुजलाते हुए कहा, ''यह आदमी अक्सर नमाज के वक्त दोपहर को मस्जिद के बाहर खड़ा रहता था. मैं सोचता हूं यह मुसलमान रहा होगा. हम मुस्लिम तौर-तरीके से इस लाश को दफनाने के लिए तैयार हैं.''

''खबरदार जो इस लाश को छूकर इसका परलोक खराब किया...यह मंदिर के सामने मरा है इसलिए हिंदू है...इसका क्रिया-कर्म हिंदू रीति से होगा...'' मंदिर के पुजारी ने मौलवी को ललकारा और भीड़ को चीरते हुए आकर लाश के पास खड़ा हो गया.

''अरे वाह...! मैंने दर्जनों बार इसे मस्जिद की सीढ़ियों पर सिजदे करते देखा है...तुम्हारे कहने से मान लूं कि यह हिंदू है...'' यह कहते हुए मौलवी भी लाश के करीब बढ़ आया.

''अगर है हिम्मत तो छूकर देखो इस लाश को!....तुम्हारी दाढ़ी के एक-एक बाल न नुचवा लिया तो मैं भी ब्राह्मण का बच्चा नहीं....'' पुजारी ने पुनः ललकारा.

भीड़ में एक पादरी भी खड़ा था. उसे शक था कि मृतक भिखारी ईसाई है क्योंकि अक्सर सुबह-सुबह वह चर्च के मेन गेट के पास कटोरा लिये बैठा रहता था. लेकिन पुजारी और मौलवी को झगड़ते देखकर पादरी ने चुप रहना ही बेहतर समझा.

पुजारी और मौलवी के बीच तू-तू-मैं-मैं बढ़ती जा रही थी और भीड़ भी धीरे-धीरे दो गुटों में बंटती जा रही थी.

शहर में सांप्रदायिक दंगा भड़कने और अनिश्चित कालीन कर्फ्यू लगने की खबर अगले दिन अखबारों के मुख्य पृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरों में छपी. ☐

पुलिया से कूदकर रामेश्वरभाई करीब-करीब भागते हुए दोनों दलों के बीच सड़क पर जा पहुंचे. सांस फूल आयी थी, पर हांफते हुए ही वे विद्यार्थियों से बोले—

''गांधीजी के समय विदेशी पोशाक फेंकी जाती थी, विदेशी कपड़ों की होली जलती थी, खादी, स्वदेशी को आदर से देखते थे. आप लोग ये टोपी फेंक देने की कैसी मांग कर रहे हैं?''

''खादी और टोपी के नीचे धोखा छिपा होता है...भ्रष्टाचार है!''

''बच्चो,'' रामेश्वरभाई के स्वर में मिठास उतरा आयी, ''तुम्हारा रोष एकदम सही है लेकिन खादी और टोपी का क्या दोष? खादी अपने देश में ही बनती है, इससे कितनों की जीविका चलती है और टोपी...उसे तो धूप और गर्मी से बचने के लिए अपने देश में जगह-जगह लोग पहनते हैं...''

''लेकिन ये टोपीवाले...''

''हां, ये...तो ऐसा कहो न. खादी और टोपी तो वही हैं जो पहले थीं, हमीं उसे पहनने के लायक नहीं रहे. तुम्हारी मांग होना चाहिए कि जो टोपी और खादी पहनने के काबिल हों, वही उन्हें पहनें...ठीक?''

एक तो रामेश्वरभाई का सौम्य व्यक्तित्व, फिर बात बेहद तल्लीनता से कही गयी थी...नवयुवकों का दल जुलूस का रास्ता छोड़ एक किनारे हो गया.

जुलूस जा सकता था लेकिन सामने रामेश्वरभाई थे जो अब जुलूस की तरफ मुखातिब हो गये थे—

''भाइयो, ये बच्चे कोई गैर नहीं, आपके-हमारे बच्चे हैं. इन्हें तेज बोलना ही चाहिए, विरोध करना ही चाहिए. ये सच और साफ भी बोल रहे हैं...जैसाकि इनकी उम्र में होना चाहिए. घर के भीतर ये इस तरह बोलते तो शायद हम इनकी बात मान भी लेते. देश भी तो घर ही है...तो इनकी बातों को सोचिये—खादी और टोपी आजादी के सिपाही का यूनीफार्म थे, क्या हो गया कि हमारे बच्चे खादी और टोपी से नफरत करने लगे? कुछ हममें गड़बड़ी हो गयी. अगर हम इन्हें पहनने के लायक हैं तो पहनें, पहने हुए गर्व से जायें, नहीं तो...

आत्मचिंतन शुरू हो जाना चाहिए, यहीं से इसी वक्त से, ताकि हमारे इन बच्चों का विश्वास हममें बना रहे...''

रामेश्वरभाई भी जुलूस का रास्ता छोड़ एक तरफ हट गये.

रास्ता अब खाली था. जुलूस फिर भी आगे नहीं बढ़ा. पहले नारों, फिर दोनों पक्षों की जिरहबाजी...इनके शोरगुल की जगह अब सन्नाटा था. जुलूस के सभी सदस्य सहसा मौन और गंभीर हो गये थे. दरअसल उस मायने में वे खुर्राट राजनीतिक लोग नहीं थे कि रामेश्वरभाई जैसे की बात का भी वहां कोई असर नहीं होता. रामेश्वरभाई जैसे निश्छल व्यक्ति के सामने वे जैसे अपनी जगह जकड़ कर रह गये थे.

कुछ क्षणों तक ऐसा ही रहा. फिर जुलूस के पीछे से एक व्यक्ति कुछ धीरे-धीरे चलता हुआ आगे आया. उसने अपनी टोपी उतारी और उसे रामेश्वरभाई के हाथों में थमा कर आगे बढ़ गया. फिर उसकी देखा-देखी, बाकी सदस्य भी एक के बाद एक वैसा ही करने लगे—अपनी टोपी उतारना, उसे बड़े ही आदर से दोनों हाथों में लिये हुए रामेश्वरभाई तक आना और उनके हाथों में सौंपकर आगे बढ़ जाना.

अब नारे नहीं थे...जैसे जुलूस में सभी के मुंह सिल गये थे, चेहरे संजीदा थे. जुलूस के सब लोग अपनी टोपियां रामेश्वरभाई को सौंप सड़क पर चल दिये. वे धीरे-धीरे जा रहे थे. आगे चलकर उन्होंने मुख्यमंत्री के घर का रास्ता छोड़ दिया और अपनी-अपनी दिशाओं में चले गये.

हाथ में टोपियों की गड्डी लिए रामेश्वरभाई कुछ देर यों ही ठिठके खड़े रहे, फिर वे एक तरफ रुके हुए विद्यार्थियों की तरफ बढ़ गये. ☐

सात समुद्र पार

जिन घोड़ों को हजारा सिंह जी-जान से चाहता था वही उसके लिए एक दिन इतनी बड़ी मुसीबत का कारण बन जायेंगे... उसे क्या पता था! कैसी थी यह मुसीबत... कि न भागते बनता था न ठहरते...

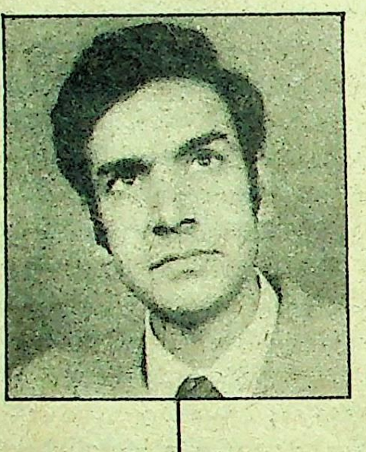

□ सुदर्शन नारंग

जन्म : २८ अप्रैल १९४०. कमों की मंडी, गुजरांवाला में.
पहली कहानी : 'मोड़ पर रुकी जिंदगी' [१९५७ 'साप्ताहिक हिंदुस्तान']
प्रमुख कृतियां : 'कटे हुए दायरे', 'उस पार का अंधेरा', 'दायां हाथ', 'एक था केसोराम', और 'अपने विरुद्ध' [उपन्यास]. 'हमशक्ल', 'इतना बड़ा पुल', 'सिर्फ एक आकाश', 'गंगा घाट' [कहानी संग्रह]
संपर्क : ८६/४ राधापुरी, हापुड़-२४५१०१

मध्य पंजाब का अधिकांश भाग घने जंगल से घिरा था. यह जंगल लाखी के नाम से जाना जाता था. वहां लाखों की संख्या में पेड़ थे. बारिश के मौसम में ऐसे झाड़-झंकाड़ पैदा हो जाते कि उनमें से होकर गुजरना मुश्किल हो जाता. क्या आदमी और क्या जानवर, भटककर रह जाते.

बाप और भाईयों से निपट सुलतान निश्चिंत राजकाज चलाने लगा था. परंतु चैन की नींद सो पाना उसके नसीब में नहीं लिखा था. कोई मनसबदार या सरदार सिर उठाने को होता तो भनक मिलते ही घोड़े दौड़ने लगते. धूल-धक्कड़ फांकती फौज विद्रोहियों का सर कुचलने निकल पड़ती. घोड़ों के बिना वह लड़ाईयां जीतना मुमकिन नहीं था. अच्छी नस्ल के घोड़ों की भनक पाते ही शाही फौज के दस्ते और सिपहसालार धावा बोल देते. दे-फूट नाम की उन गुरिल्ला लड़ाईयों से नावाकिफ एक ऐसा आदमी भी था जिसे राजकाज के झमेलों से कोई वास्ता न था. हजारा सिंह नाम का यह आदमी मनी माजरा का रहने वाला था. उसका एक मात्र शौक था घोड़ों की नस्ल सुधारना और अपने अस्तबल के लिए इनकी संख्या बढ़ाना. उसका जन्म जगरावां में हुआ था. पर पिता की मृत्यु के बाद वह मनी माजरा में अपनी ससुराल में आ बसा था. विरासत में उसे तो कुछ नहीं पर पत्नी को एक हवेली और कुछ घोड़े मिले थे. हजारा सिंह धुन का पक्का और जिद्दी मिजाज का आदमी था. गांव के लोग पीछे अक्सर उसकी अलोचना करते पर प्रत्यक्ष उसकी सनक के आदी हो गये जान पड़ते थे.

हजारा सिंह मेहनती आदमी था. भाग्य ने भी उसका पूरा साथ दिया. जब वह मनी माजरा आया था उसके पास सिर्फ दो घोड़े थे. मनी माजरा की भोगौलिक स्थिति का लाभ भी उसे मिला था. घोड़ों से उसने घोड़ा गाड़ी बनायी जो एक से बढ़कर तीन हो गयीं. तीर्थ यात्रा पर निकले लोग, काम-काज और तहसील कचहरी जाने को निकले लोग और माल-असबाब पहुंचाने को उतावले लोग. हजारा सिंह का काम बढ़ता ही चला गया. जैसे-जैसे उसका काम बढ़ता गया घोड़े पालने का उसका शौक भी. उसके अस्तबल में सबसे कीमती जानवर सात सफेद घोड़े थे जिन्हें हजारा सिंह जी जान से ज्यादा चाहने लगा था. उन घोड़ों को वह गाड़ी में भी न जोतता. कभी-कभी सवारी कर लेना या आने-जानेवालों को चाव से दिखाना और उन घोड़ों के गुणों का बखान करना.

कुदरत का कमाल. हजारा सिंह की सात बेटियां थीं. हर बेटी के जन्म पर उसने एक सफेद घोड़ी खरीदी थी. संभवत: हर दामाद को वह बेटी के साथ-साथ भेंट में घोड़ी भी देना चाहता था. पर लड़कियों के ब्याह की उसे कोई चिंता नहीं थी. उसकी पत्नी ने एक भी बेटा न जना था. पर उसके अस्तबल में एक से एक बढ़िया घोड़े-घोड़ियां थे. हुआ यह कि सात में से एक सफेद घोड़ी बीमार पड़ गयी. उसने खाना-पानी भी छोड़ दिया. हजारा सिंह बहुत दुखी था. पूरा दिन वह अस्तबल में बैठा रहता. घर आने पर वह उस बेटी को घूर-घूरकर देखता जिसके जन्म पर उस घोड़े को खरीदा था. एक भी बेटा न होने से हजारा सिंह अंदर ही अंदर कठोर और रुखाई से भर गया था. उसकी हंसी-ठट्ठा मंद पड़ गयी थी और कोमल भाव दर्शाना भी उसने बंद कर दिया था. घर आता तो उस लड़की को, जिसके जन्म पर बीमार पड़ने वाली घोड़ी खरीदी थी, उठा सीने से चिपका लेता. फिर बेचैनी से उसे पटक वापस अस्तबल पहुंच घोड़ी की पीठ पर हाथ फेरने लगता. घोड़ी ने खाना-पीना छोड़ दिया था. नाल में सरसों का तेल और दवाई भर जबर्दस्ती वह घोड़ी के मुंह में उंडेल देता. तमाम दवा-दारू के बावजूद घोड़ी को बचा पाना संभव नहीं हो पाया था और उसका शरीर अकड़ गया था. पर दूसरी छह बहनों की तरह ही वह लड़की चंपा-चमेली की तरह खिलकर खूबसूरत जवान सुंदरी में बदल गयी. मरी घोड़ी के स्थान पर हजारा सिंह बैसाखी के मेले से नयी

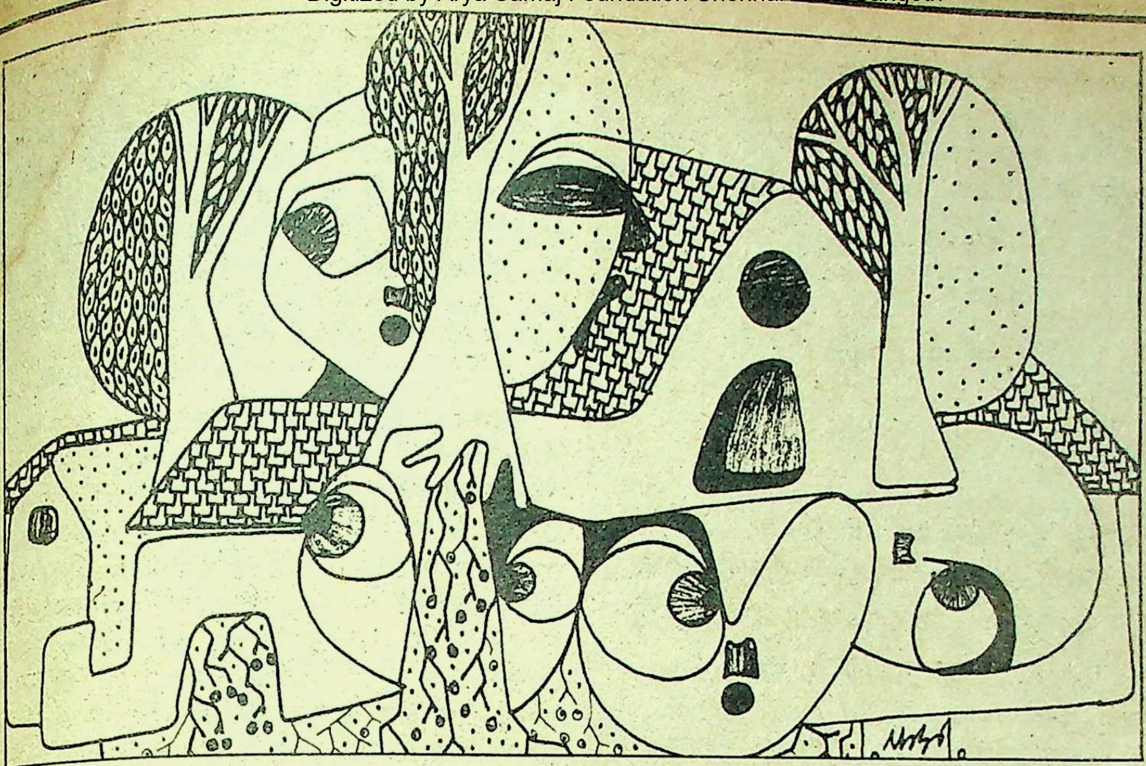

खूबसूरत सफेद घोड़ी, महंगे-सस्ते दामों में खरीद लाया और कुछ ही दिनों में सात घोड़े और सात बेटियों के गौरव में मगन हो गया. मरे का ज्यादा दिन तक अफसोस मनाना हजारा सिंह की प्रकृति में नहीं था.

खुंब की तरह बढ़कर लड़कियां जवान हो गयीं और एक के बाद एक प्रसव के कारण पत्नी थक-टूट संसार से विदा हो गयी. लड़कियां सुंदर थीं. खुश मिजाज, ताड़ से लंबे कद ओर सन जैसे घने लंबे काले बाल. गोरा-चिट्टा रंग और गुलाबी गाल. पत्नी के गम ने हजारा सिंह के मिजाज को चिड़चिड़ा बना दिया था. लड़कियों के साथ वह कठोरता से काम लेता और उन्हें घर से बाहर निकलने की अनुमति भी नहीं थी. छुट्टी के दिन सजधज के साथ उन्हें गुरुद्वारे अवश्य ही वह अपने साथ ले जाता. उस दिन सड़क के दोनों ओर मर्दों की कतारें लग जातीं. जवां, बूढ़े सभी उन लड़कियों की एक झलक पा लेना चाहते और फिर हफ्ते भर का इंतजार. गुरु के आगे मत्था नवा हजारा सिंह देर तक न जाने क्या, मन्नत मांगता रहता. सफेद लंबी दाढ़ी वाले ग्रंथी जी भी लड़कियों को एकटक देखते रह जाते और मुट्ठी भर प्रसाद हर एक की हथेली में उड़ेलते चले जाते. लड़कियां खिलखिलाकर हंस देतीं.

हर एतवार हजारा सिंह ग्यारह रुपये की अरदास करवाता और गुरुद्वारे के द्वारा पर ही सातों लड़कियों के हाथ में तांबे का एक-एक सिक्का मत्था टेकने के लिए थमा देता. मनी माजरा के लोग हर हफ्ते ग्यारह रुपये की अरदास सुन आवाक रह जाते. बाकी लोग लड़कियों को एकटक देखने में लग जाते.

मनी माजरा से लेकर जगरावां तक के अनगिनत युवक उन लड़कियों में से एक न एक का हाथ थामने को मचल रहे थे. कुछ लोग यह भी आस लगाये बैठे थे कि लड़की के साथ-साथ एक घोड़ी भी दहेज में प्राप्त होगी. पर हजारा सिंह के कान पर जूं भी न रेंगती. लड़कियों और घोड़ों में से कोई भी चीज वह अलग करने को तैयार न था. लड़कियों को सांत्वना देने के लिए वह कहता—जब समय आयेगा मैं स्वयं तुम्हारे लिए वर ढूंढ लाऊंगा. उसे ताज्जुब होता, एक-एक कर लड़कियां सात समुद्र पार चली जायेंगी. मन को समझाने के लिए वह सोचता-लड़कियों ने तो जाना ही है. पर घोड़े-घोड़ियां तो हमेशा उसके पास रहेंगे. उन्हें ही वह बच्चों की तरह मान लेगा.

हजारा सिंह हालांकि प्रभावशाली व्यक्ति था और मनी माजरा में उनका दबदबा भी बहुत था पर उससे ईर्ष्या करने वालों की भी लंबी कतार थी. बहुत सारे लोग बूढ़े और जवान जो उसकी एक न एक लड़की का हाथ स्वयं अपने लिये या अपने किसी पुत्र-पौत्र के लिए मांगना चाहते थे और जिन्हें वह घास नहीं डालता था, हजारा सिंह से असंतुष्ट थे. मनी माजरा में यह आम धारण बन गयी थी कि हजारा सिंह आसपास के इलाके के युवकों को अपनी लड़कियों के लिए उपयुक्त वर नहीं मानता. ईश्वर जाने वह उन ढेर सारी लड़कियों को कहां ढोना चाहता था. हजारा सिंह जानता था कि लड़कियां पराया धन हैं और एक न एक दिन बारी बारी उन्हें विदा करना ही होगा. पर वह टाल करता रहता. लड़कियों और घोड़ों से अपने लगाव के मध्य दामाद नाम के व्यक्ति से ही उसे चिढ़ होने लगी थी. अपनी मान मर्यादा अनुसार प्रत्येक लड़की को दिये जाने वाले दान-दहेज का हिसाब फैलाने पर भी घबराहट उसे आ घेरती. अजीब-सी ऊहापोह के मध्य उसे एहसास ही नहीं हो पाया कि समय की क्रूर चक्की कितना बारीक पीसती है और किसी को नहीं छोड़ती.

हजारा सिंह की हवेली और अस्तबल कस्बे के बाहर और सड़क से दूर बसे हुए थे. रात-बेरात उधर जाने का साहस कोई न जुटा पाता. और फिर हजारा सिंह का बंदूकदारी चौकीदार और डब्बू कुत्ते. हवेली के पिछवाड़े दो-तीन फरलांग के बाद लाखों-करोड़ों पेड़ों और खूंखार जानवरों से भरा लक्खी का जंगल शुरू हो जाता. गर्मी की एक सुबह हजारा सिंह अपनी सबसे छोटी लड़की की उम्र का हिसाब बिठा रहा था. जो चौदह पार कर गयी. अचानक हजारा सिंह को घोड़ों की टाप सुनाई दी जो गांव की दिशा से सरपट भागते हुए हवेली की ओर बढ़ रहे थे. दूर से ही हजारा सिंह ने पहचान लिया. आगे के घोड़े पर गांव के एक किसान बलवंत सिंह का लड़का तारा सिंह और पीछे के घोड़े पर उसका कोई साथी था. तारा सिंह की नजर हजारा सिंह की सबसे छोटी लड़की पर थी. हजारा सिंह कई बार उसे फटकार दे चुका था पर तारा सिंह ने उम्मीद नहीं छोड़ी थी.

घुड़सवारों को देखकर हजारा सिंह हवेली के मुख्य द्वारा पर आ गया. उसे देखते ही तारासिंह ने अपने घोड़े की लगाम खींची और हड़बड़ाहट में

बोला, ''सुलतान के आदमी हैं. यार मोहम्मद और उसकी फौज. जंग के लिए घोड़े जब्त कर रहे हैं...अपने दोनों घोड़े लेकर जंगल में छिपने जा रहा हूं...तुम भी अपने घोड़े छिपा लो...''

हजारा सिंह सोच में पड़ गया. तारा सिंह ने घोड़े को ऐड़ लगायी और लगाम ढीली छोड़ी और आगे बढ़ गया

बा अदब बा मुलाहजा

☐ रंदी सत्यनारायण राव

मैं अपने मित्र के होटल काउंटर पर बैठा हुआ था. उसी समय एक नये बने युवा नेता तथा उनके सींकिया पहलवान सरीखा बॉडी गार्ड का होटल में आना हुआ. नेताजी हट्टे-कट्टे, किंतु मुस्तंद प्रतीत हुए. उन्होंने प्रवेश करते समय मुझे ऐसे देखा, जैसे मैंने उनका अपमान किया हो, वे नाश्ते से निपटकर पैसे देने काउंटर पर आये और फाड़ खाने के अंदाज में बोले, ''तुम अपने को क्या समझते हो—तुम जैसे दो टकिये के आदमियों को मैं (अपने खादी के कुर्ते के झोलीनुमा जेब की ओर इंगित करते हुए) इसमें रखता हूं.

मैं आश्चर्य और विस्मय से उन्हें देखने लगा कि आखिर ऐसी क्या बात हो गयी जो नेताजी के गले नहीं उतर रही. मैंने विनम्रता से पूछा, ''हमसे ऐसी क्या गुस्ताखी हुई जनाब जो आप इस तरह से पेश आ रहे हैं.''

जवाब में नेताजी का पारा और चढ़ गया. बोले, ''तुमसे पहले एक आदमी यहां बैठता था, मैं जब भी यहां आता, वह 'फौजी-सुल्यूट' से मेरा स्वागत करता था. और गर्मागर्म नाश्ते की व्यवस्था करता था. जबकि तुमने ऐसा कुछ नहीं किया. यह हमारा ही नहीं, इस देश का अपमान है.''

उनकी नाराजगी का कारण जानते ही मैंने क्षमा मांगना उचित समझा, ''क्षमा करेंगे साहब...मैं नहीं जानता था कि आप वही नेताजी हैं, जिनके आगमन पर यहां 'फौजी सेल्युट' की प्रथा है...आईंदा फिर कभी ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा तो बकायदा, 'बा अदब बा-मुलाहजा होशियार...' ताकीद के साथ आपका स्वागत करूंगा...लेकिन अभी तो बख्श दीजिये...'' वे मेरी गुहार सुन कुछ नरम पड़े और उपस्थित भीड़ की ओर देख, इस अंदाज से चल पड़े, जैसे एम. पी. का चुनाव जीत गये हों... ☐

सहसा हजारा सिंह मुड़ा और हवेली का मुख्य द्वार बंद कर बंदूकधारी चौकीदार को चौकस किया, ''अंदर कोई न आ पाये. मैं बाहर आकर बात करूंगा.''

अंदर पहुंच हजारा सिंह ने हवेली में मौजूद अपने तीनों सईस इकट्ठे किये और उन्हें हुक्म दिया कि सातों सफेद घोड़ों को फौरन जंगल में छिपाने के लिए ले जायें. खतरा टल जाने पर वह स्वयं उन्हें वापिस बुलवा लेगा. कुछ घोड़े गाड़ियों में सामान लाद दूसरे कस्बों की यात्रा पर थे. इसके बावजूद पांच घोड़े अस्तबल में बंधे थे. हजारा सिंह ने सोचा, उन पांचों को भी छिपा दें. सुलतान के आदमियों से कह देगा सभी घोड़े गाड़ियों के साथ बाहर दूर दराज के इलाके में गये हैं. उसे लगा झूठ पकड़ा जायेगा...और फिर यह घोड़े उतने कीमती भी नहीं थे. सात सफेद घोड़ों को बचाने के लिए इन घोड़ों की कुर्बानी देना कोई बड़ी बात न थी. यह भी संभव है कि सुलतान के आदमी घोड़ों की खरीदारी पर निकले हों. ऐसी कौन-सी जंग चल रही है जो सुलतान जबर्दस्ती घोड़े उठवाने चला हो.

चौकीदार को द्वार बंद रखने की हिदायत दे कर हजारा सिंह भीतर के कमरे में जा दीवान पर लेट गया. अनर्थ की शंका से अंदर ही अंदर वह बेचैन हो उठा. सहसा उसे लगा लड़कियों के ब्याह कर देने चाहिए. मनी माजरा में बैठे उसे क्या खबर कि दुनिया-जहान में क्या हो रहा है. जंग लगते ही सिपहसालार और सिपाही कैसे खूंखार भेड़ियों की तरह टूट पड़ते हैं. लड़कियों अपने अपने घर चली गयी होतीं तो लोगों की नजर भी न पड़ती उन पर. अब पछताये क्या होत? घबराकर वह उठ गया. लड़कियों को पुकारने लगा—''संतो...अरे...बिमला...रानो... सुमित्रा...सब इधर आओ!'' यार मोहम्मद और उसकी फौज की नृशंसता के किस्से उसने पहले भी सुन रखे थे. सातों बहनें सहमकर पिता के सामने खड़ी थीं. लड़कियों को देखते ही हजारा सिंह ने हिदायत की, ''सुलतान के आदमी घूम रहे हैं. तुम घर से नहीं निकलना.'' फिर आश्वस्त करने की मुद्रा में बोला, ''वाहे गुरु का शुक्र है...हवेली कस्बे के बाहर है. हो सकता है यार मोहम्मद कस्बे से ही लौट जाये...''

कुछ सोचते हुए उसने अपने नौकर बलदेवा को कस्बे में भेज दिया ताकि वह पूरी खोज-खबर ला सके.

बलदेवा कोई ठोस सूचना नहीं ला सका. अफवाहें, शंकाएं और लोगों की धारणाएं. लोगों का कहना था जो छापामार घोड़े इकट्ठे कर रहे थे, वह सुलतान के आदमी नहीं हैं. वे लूटमार करनेवाले डकैत थे जो निर्दयता से लोगों से मारपीट करते, औरतें उठाकर ले जाते और सर्वत्र विनाश करते निकल जाते. लोगों का विचार था ऐसे छापामार किसी एक इलाके में लूटमार मचा दुम दबाकर भाग जाते हैं. सरकारी मदद आने से पहले ही अपना काम करके वह फूट लेते हैं. उनकी संख्या के बारे में भी किसी को सही जानकारी न थी. दस-बीस को तो हजारा सिंह हवेली की मुंडेर से गोलाबारी कर खदेड़ सकता था. इतना तय था कि वे हर जगह से घोड़े खोल रहे थे और घोड़ों का लश्कर लेकर इलाके के कई गांव और कस्बे रौंद चुके थे.

''इसका मतलब है हमारे लिए खतरे की कोई बात नहीं. घोड़ों का इतना बड़ा काफिला लेकर वह यहां तक नहीं पहुंच पायेंगे. कस्बे तक आ भी गये तो इतनी गद्दारी क्यों कोई करेगा कि हवेली का पता बता दें...'' हजारा सिंह ने स्वयं को ढाढस बंधाते हुए बलदेवा से कहा.

इससे पहले कि बलदेवा हजारा सिंह की हां में हां मिलाता, मुख्य द्वार पर जोर की दस्तक हुई थी. यंत्रवत हजारा सिंह मुख्य द्वार की ओर हो लिया था. उद्विग्न था वह छोटे द्वार के पास जाकर रुक गया जो बड़े द्वार के अंदर जड़कर बनाया गया था. मुख्य द्वारा पर दोबारा जोर की दस्तक हुई. घर के नौकर और लड़कियां घबराहट, उत्सुकता और भयवश गलियारे में इकटठे हो गये थे. मुख्य द्वार पर और तेज दस्तक हुई थी. हजारा सिंह ने छोटा द्वारा खोला और बाहर हो लिया. बाहर क्या बातचीत हुई अंदर सुनायी नहीं दी. पर हजारा सिंह वापिस अंदर आया और मुख्य

द्वार के दोनों पट खोल दिये. शाही वर्दी में सुसज्जित यार मोहम्मद, उसके मातहत फौजदार और दस सिपाही हजारा सिंह की परवाह किये बगैर अंदर घुस आये थे.

पहले यार मोहम्मद और फिर फौजदार समेत सभी तुरत-फुरत घोड़ों की पीठ से उतर नीचे खड़े हो गये थे. यार मोहम्मद और फौजदार को छोड़ सारे सिपाही अस्तबल में घोड़ों की तलाश में बिखर गये थे.

यार मोहम्मद एक ओर चुप खड़ा था. फौजदार ने अपनी रौबीली आवाज में घोषणा की, ''सिपहसालार सफेद घोड़ों की खातिर स्वयं चलकर आये हैं.''

हजारा सिंह ने यार मोहम्मद की ओर आंखें घुमायीं. वह मंद-मंद मुस्करा रहा था. हजारा सिंह को समझते देर न लगी कि कस्बे के लोगों ने गद्दारी की है. यह काम उसके किसी शरीफ का है या उसकी लड़कियों पर नजर रखने वाले किसी बदमाश का.

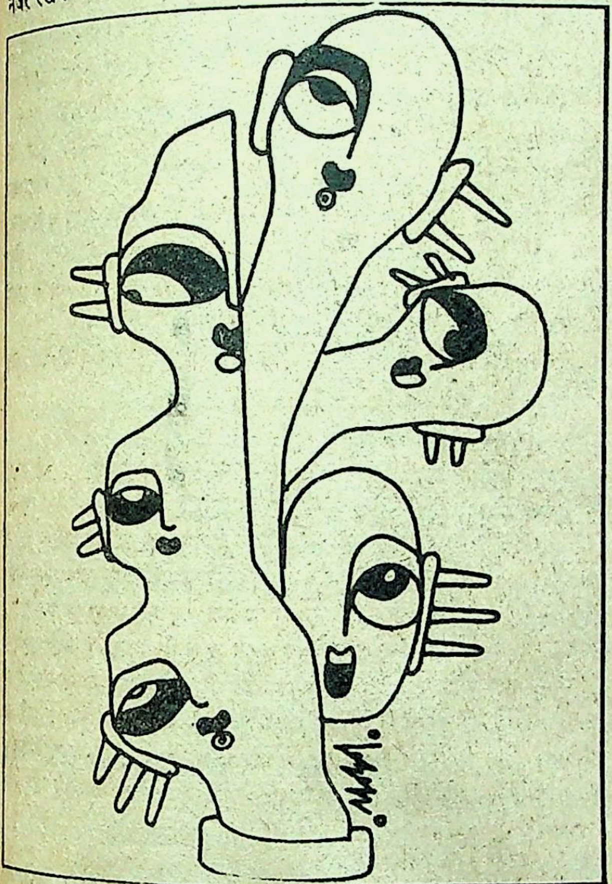

प्रत्यक्ष उसने यार मोहम्मद से बैठक में चलने का आग्रह किया, ''थककर आये हैं. कुछ जलपान कर लें. हम तो सुलतान की रिआया हैं.''

यार मोहम्मद जो कस्बे से छककर आया था, जलपान में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी—''हमें घोड़े चाहिए.''

सबके सब अस्तबल में हैं. जितने चाहें ले जायें. हजारा सिंह ने चतुराई से कहा था. घोड़ों की तलाश में अस्तबल गये सिपाही लौट आये थे. तलाश की रपट देते हुए सब से आगे चल रहे सिपाही ने कहा था, ''सबके सब बेकार. एक भी ले जाने लायक नहीं...''

यार मोहम्मद ने पहली बार जुबान खोली थी, ''सफेद घोड़े कहां हैं?''

इनसे पहले कि हजारा सिंह कोई स्पष्टीकरण देता, यार मोहम्मद ने कुटिलता से कहा, ''लड़कियों को बुलाओ. हमने सुना है, सात घोड़ों के अलावा तुम्हारे यहां सात लड़कियां भी हैं...''

''यह मेरी बेटियां हैं...''

यार मोहम्मद मुख्य द्वार तक पहुंच चुका था— ''हमारी भी...'' तिरछी निगाह फेंकते हुए वह रुका था, ''हमने वाडदनी पर डेरा डाला है. हमारे काफिले के लोग और फौज के लिए रिआया द्वारा पेश किये गये सभी घोड़े वहीं जमा हैं. जंग में सुलतान का साथ देना रिआया का फर्ज है. हम इंतजार करेंगे. घोड़ों के पहुंचते ही तुम्हारी बेटियां वापिस आ जायेंगी...''

हजारा सिंह अवाक् देखता रह गया था. बोल उसके हलक में अटक गये थे. सहसा फौजदार ने यार मोहम्मद को संबोधित किया था,

संक्रमण

□ कमल चोपड़ा

यह छठा मरीज था. एक बाद एक. अभी दो पेशेंट और थे जिन्हें एनेस्थीसिया दिया जा रहा था उन्हें तत्काल आपरेशन की जरूरत थी...छोटी-मोटी चोटों के लिए जूनियर डॉक्टर मुस्तैदी से काम कर रहे थे. इस पेशेंट की जांघों और पेट में बम के फटने से बारूद के टुकड़े घंस गये थे....डाक्टर साहब के अभ्यस्त हाथ अपना काम बखूबी कर रहे थे...

अभी तक जितने पेशेंट आये हैं...सब के सब गरीब मजदूर है जिन्हें रोजी-रोटी से फुरसत नहीं...इन्हें दंगों से क्या लेना-देना...

शहर में भयकर दंगा हुआ था. डाक्टर साहब को इमरजैंसी में पुलिस की हिफाजत में हस्पताल लाया गया था...लेकिन...रास्ते में उनकी कार के ऐन आगे दंगाईयों ने बम फेंक मारा था. डाक्टर बाल-बाल बच गये...वर्ना...आज...अब तक कितने आपरेशन कर चुका हूं...उनमें हिंदू, मुस्लिम,, सिख थे उनके अंदर ऐसा कुछ तो था नहीं कि जो उन्हें हिंदू, मुस्लिम, बनाता हो. सब में वही रक्त-मांस-मेद-अस्थि...वही मैटीरियल, दवाईयों का वही रेस्पोंस...एक जैसे इंटरनल सिस्टम्स...डाईनैस्टिव (पाचन) रेस्परेट्री (श्वास), सरकुलेटी (रक्त संचार), नर्वस (तांत्रिका) रीप्रोडक्टिव, सिस्टमस क्या वाकई ये हिंदू, मुस्लिम...सिख...वगैरह-वगैरह हैं...कहीं उन्हें कोई मुगालता तो नहीं है...ये ईश्वर, अल्ला, गॉड की रचनाएं है या ये ही इनकी कल्पनाएं हैं...? वो धर्म जो इंसानों को अपाहिज बनाये...गरीबों को लुटे...मारे...जलाये,औरतों को विधवा, बेसहारा बनाये, बच्चों को यतीम बनाये...उस धर्म को अपनाये रखना! ही गुनाह है...धर्म क्या अणुबम है जो इंसानों ने अपने दिमाग के लिए बना लिया है....धर्म क्या इनफकेक्शन डीजीज है.

मैं इस रोग से छूट जाना चाहता हूं. मेरा जो भी धर्म है, मैं उसे आज से छोड़ रहा हूं...इंसान....हूं...इंसान की तरह इंसानों के लिए इंसान बन कर रहूंगा... □

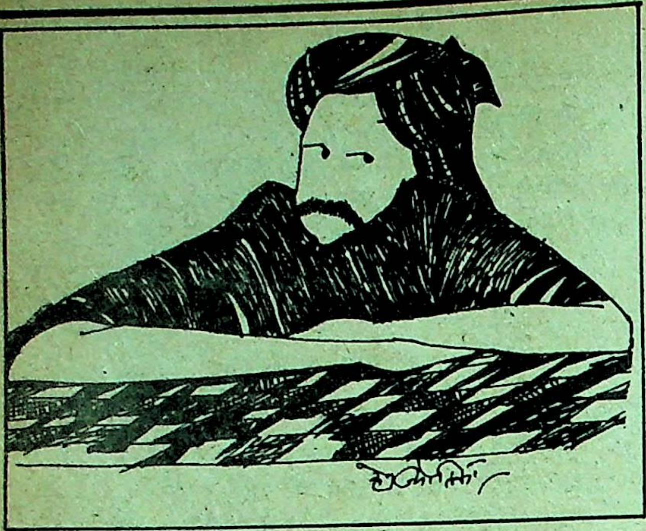

"लड़कियों को कहां संभालते फिरेंगे. दो सिपाही यहां तैनात कर दें. घोड़ों के आते ही कब्जे में ले लेंगे.

यार मोहम्मद की भृकुटि तन गयी थी, "लड़कियों को कब्जे में लो और हुक्म की तामील करो! यहां छोड़ने के लिए हमारे पास फालतू फौज नहीं है." फौजदार जस का तस खड़ा रह गया था. सिपाही लड़कियों को हांकते हुए बाहर ले आये थे.

सांझ होने से पहले ही हजारा सिंह ने स्वयं को वाहदनी के किले के बाहर पाया था. चारों तरफ खेमे ही खेमे दिखाई दे रहे थे.

बरछी-भाला थामे सिपाही जगह-जगह तैनात थे. हजारा सिंह सुबह छापा मारनेवाले किसी सिपाही या फौजदार को खोज रहा था. जिस किसी सिपाही को रोक उसने फौजदार का पता पूछा सभी टाल गये. तभी उसकी नजर किले के खानसामा पर पड़ी. हजारा सिंह ने झट जेब से सोने की मोहर निकाल उसकी मुट्ठी में रख प्रार्थना की, "मुझे यार मोहम्मद के डेरे ले चलो."

हजारा सिंह की उम्मीद के विपरीत यार मोहम्मद तुरंत डेरे के बाहर आ गया था, "घोड़े आये?"

हजारा सिंह ने नजर बचाते हुए कहा, "सरकार, रात उतरने को है. मैं गुजारिश करने आया था: लड़कियों को घर जाने की इजाजत हो."

यार मोहम्मद ने अट्टहास किया. "तुम्हारा खयाल था, यहां गांव-गांव में लंगड़े-लूले घोड़ों के लिए खाक छान रहा हूं."

हजारा सिंह ने सोने की मोहरों से भरी थैली पेश करते हुए फिर गुजारिश की, "नजराना कबूल फरमायें. मेरी इज्जत बख्श दें." थैली को झटकते हुए यार मोहम्मद बोला, "तुम्हारा नज़राना सुलतान की खिदमत में पहुंच जायेगा." घोड़े ले आओ और लड़कियां ले जाओ."

"घोड़े भी आते ही होंगे." हजारा सिंह बोला.

"हम इंतजार करेंगे." यार मोहम्मद घूमकर अपने खेमे में दाखिल हो गया था.

आधी रात का समय रहा होगा. हजारा सिंह के सईस सातों सफेद घोड़े लेकर आखिरकार वाहदनी के किले आ पहुंचे. हजारा सिंह पैदल हुआ यार मोहम्मद के खेमे के बाहर पहुंच जोर-जोर से चिल्लाने लगा, "आ गये...घोड़े आ गये!"

अंदर खेमे में यार मोहम्मद फौजदारी के साथ शतरंज की बाजी जमाये बैठा था. उसकी आंखें लाल सुर्ख हो रही थीं. लाल शराब और गोश्त से बची हड्डियां खेमे में बिखरी पड़ी थीं.

आगे-आगे यार मोहम्मद और पीछे-पीछे फौजदार खेमे से बाहर आये थे.

"तो घोड़े आ गये!" यार मोहम्मद ने लड़खड़ाती आवाज में कहा था.

"जी हजूर." हजारा सिंह बोला था.

"लड़कियों को पेश किया जाये!" यार मोहम्मद ने आदेश दिया था.

अंधेरी रात में लड़कियों के चेहरे पीले पड़ गये थे. हजारा सिंह को लगा एक ही दिन में उसकी दुनिया उजड़ गयी है.

पास खड़े सिपाही को सहसा यार मोहम्मद ने आदेश दिया, "फरमान सुनाया जाये..."

सिपाही ने फरमान को खोला और पढ़ना शुरू किया, "सुलतान के हुक्म से हजारा सिंह साकिन मनी माजरा के सात घोड़े वास्ते इस्तेमाल जंग जब्त किये जाते हैं..."

हजारा सिंह ने सर झुका फरमान को कबूल किया था.

तभी यार मोहम्मद बोल उठा, "यह फरमान का आधा हिस्सा है...बाकी हम जुबानी सुनाते हैं...और तुम्हारी यह लड़की अपने हरम के लिए हम जब्त करते हैं..."

"यह नाइंसाफी है." यह आवाज फौजदार की थी.

यार मोहम्मद का हाथ बगल में लटकी कटार पर गया था "इस बेअदबी की हम तुम्हें सजा देंगे."

कटार के हाथ में जाने से पहले ही फौजदार की बर्छी यार मोहम्मद के सीने में घुस गयी और यार मोहम्मद वहीं ढेर हो गया. फरमान पढ़नेवाले सिपाही और फौजदार यार मोहम्मद को घसीटकर खेमे में लिटा दिया था. पूरे किले में खामोशी छा रही थी.

फरमान पढ़नेवाले सिपाही ने चुस्ती से फौजदार को सलाम किया था, "जालिम का खात्मा करना ही ठीक था."

हजारा सिंह हतप्रभ खड़ा रह गया था. फौजदार ने उसके कंधे पर हाथ रखा था, "घोड़ों से बहुत लगाव है न तुम्हें. सातों घोड़े और लड़कियां लेकर रातों-रात भाग जाओ. यह आठवां घोड़ा मैं दे रहा हूं...तुम्हारे लिए. लाखों में जा छिपना. और हां...मनी माजरा से जगरावां तक कितने युवक तुम्हारी लड़कियों का हाथ थामने को उतावले हैं. परसों हमारा डेरा उठ जायेगा. उसके बाद मनीमाजरा लौट जल्द से जल्द लड़कियों के हाथ पीले कर देना...खुदा हाफिज."

हजारा सिंह की आंखों से बहने वाली अश्रुधारा रुक ही न रही थी. □

गोली

लड़ाई के दिनों की बात है. अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति रुजवेल्ट को एक सभा में भाषण करना था. अखबारों के प्रतिनिधियों को उस सभा में राष्ट्रपति की सीट के एकदम पास बैठने के लिए सीटें दी गयी थीं. कार्यक्रम अच्छी तरह हो जाने के बाद पत्रकार लोग राष्ट्रपति के सचिव के पास पहुंचे और इतनी अच्छी सीटें देने के लिए धन्यवाद दिया.

इस पर सचिव ने मुस्कराते हुए कह ही तो दिया—"इसमें धन्यवाद की कोई बात नहीं. दरअसल आप लोगों ने बैठने का इंतजाम इस ढंग से किया गया था कि श्रोताओं में से यदि कोई राष्ट्रपति महोदय पर गोली चलाता, तो वह पहले आप लोगों में से किसी को लगती." □

प्रस्तुति : वीणा श्रीवास्तव

गाली

'बंसीधर घबरा गया. उसने सोचा था, मालिक को काम की बात बताकर शाबाशी लेगा, पर आखिन देखी न होने से मामला उलट रहा था...' कैसा था यह मामला जिसने बंसीधर को पशोपेश में डाल दिया था...?

गौरी शंकर कपूर

पहली कहानी 'अणिमा' में १९५६ में प्रकाशित. कहानियां, कविताएं, रेडियो रूपक, टी.वी. नाटक व उपन्यास लेखन में समान रूप से सक्रिय.
प्रमुख कृतियां : 'नींद से पहले', 'नचिकेता' और 'सचमुच सच' [उपन्यास], 'स्मृति के ओर छोर' [कविता संग्रह]
संप्रति : दूरदर्शन केंद्र के समाचार विभाग से संबद्ध.
संपर्क : १८९ आकाशदर्शन अपार्टमेंट्स, प्लाट न.-१२, पटपड़ गंज, दिल्ली-११००९२.

लाला मेघराज को विश्वास नहीं हो रहा था, ''क्या कहा? खन्नों के मकान के चबूतरे पर मंदिर बना हुआ है?''

अधेड़ उम्र के नौकर बंसीधर ने अपने हाथ में झूलती डोलची की तरफ लालाजी का ध्यान खींचते हुए अपनी बात पर बल दिया, ''आहोजी, दुध लेने आये सारे आदमी यही कह रहे थे...''

लाला मेघराज का उखड़ा सांस जैसे लौट आया हो, उन्होंने करीब-करीब फटकारते हुए पूछा, ''हरामिया, आंखों से देख के आया है या सुनी-सुनायी है?''

बंसीधर घबरा गया. उसने सोचा था, मालिक को काम की बात बताकर शाबाशी लेगा, पर आंखिन देखी न होने से मामला उलट रहा था. उसने अपना बचाव पेश करते हुए कहा, ''लालाजी, देखी तो नहीं, पर सरदार संतोख सिंह, लाला हरदयाल चंद...सारे ही कह रहे थे...''

''कंजरा, वापसी में पासियां दे कटरे होता आता...'' लाला मेघराज ने असंतोष जताया.

बंसीधर के चेहरे पर कुछ क्षण पहले की व्यग्रता का स्थान दीनता ने ले लिया था. वह चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा.

''जा, भाग और छोटे को नीचे भेज!'' लाला ने झल्लाकर कहा.

सामने खुले अखबार के पहले पन्ने पर आम दिनों की तरह पंजाब में आतंकवादी गतिविधियों का लेखा-जोखा था. कुछ देर पहले तक लाला मेघराज आतंकवादियों, सरकार और हिंदुओं के दब्बूपन को कोसते हुए हत्याओं और गिरफ्तारियों का ब्यौरा तथा सरकारी दावों को पढ़ रहे थे. पिछले कुछ बरसों से उनकी सुबह इसी तरह शुरू होती थी. पर आज उनका मन बुरी तरह उखड़ चुका था.

पासिया कटरे में लाला मेघराज ने हाल ही में एक पुरानी जायदाद खरीदी थी. इस पुश्तैनी जायदाद के सभी वारिस अमृतसर छोड़कर दिल्ली, बंबई और कलकत्ता में जा बसे थे. पिछले कुछ बरसों में इस उजाड़ तिमंजिली इमारत के आस-पास कपड़े की थोक मार्केट बननी शुरू हो गयी थी. लाला मेघराज के दोनों बड़े लड़कों के पास अपने-अपने मकान और दुकानें थीं. वही छोटे रमेश चंदर को यह मकान को खरीदवा कर जायदाद के भावी झगड़े अभी से निपटा देना चाहते थे. उन्होंने पुरानी जायदाद के मुख्य वारिस से सौदा तय करके उसे पेशगी बयाना भी दे दिया था. और चार-पांच रोज बाद रजिस्ट्री भी करवा लेनी थी. उन्होंने सोचा, रजिस्ट्री के बाद जायदाद पर कब्जा कर लेंगे, तथा कोई छोटा-मोटा वारिस आया तो उसे औने-पौने छुटकारा पा लेंगे. अमृतसर के वह पुराने बाशिंदे थे, वह हिंदुओं के जाने-माने हितचिंतक जरूर थे पर उनका रसूख सभी जगह था. अब तक सारा काम निर्विघ्न हुआ था और न ही किसी गड़बड़ की उन्हें उम्मीद भी थी.

छोटे रमेश चंदर ने पिता के चिंतित चेहरे को फौरन पढ़ लिया, ''क्या बात है, लालाजी?''

लाला मेघराज ने अपनी विचलित स्थिति पर काबू पाने का प्रयास करते हुए कहा, ''बेटाजी, पासियां कटरे जाकर पता लगाओ, खन्नों के मकान के चबूतरे पर किसी ने मंदिर बनाया है?''

रमेश चौंक गया, ''मंदिर बनाया है! आपको किसने बताया? परसों मैं उधर गया था, ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं था...''

''बंसी ने लोगों से सुना है. नौकर है न, कंजर ने यह नहीं सोचा, वापसी में मौके को खुद आता...'' लालाजी नौकर के गैर-जिम्मेदार बरताव से अभी तक क्षुब्ध थे.

''आप भी चलोगे!'' रमेश को यकायक असुरक्षा का भान हुआ था. उसे लगा जैसे खन्नों के चबूतरे पर मंदिर बनाकर किसी ने चुपके से उनके परिवार पर हमला बोल दिया हो.

लाला मेघराज ने कुछ क्षण विचार कर जवाब दिया, ''मेरा जाना ठीक नहीं है, बेटाजी. क्या पता, कौन-सा कदम उठाना पड़े!''

रमेश अपने पिता का मतलब समझ गया था. लाला मेघराज के पहुंचते ही स्थिति जरूरत से ज्यादा गंभीरता पकड़ सकती थी. मामला उसके जैसे मुंडे-गुंडों (लौंडे-लपाड़ों) तक सीमित रहे तो किसी भी तरह की गुंजायश बनी रहती थी. उसने हामी भरी और फौरन स्कूटर दौड़ाता हुआ पासियां कटरे पहुंच गया.

उसकी आशंका सच थी : खन्नों के मकान के चबूतरे पर ताजी चिनाई किया एक 'आला' बना हुआ था. 'आले' पर अभी पलस्तर नहीं था और उस पर गेंदे की दो-चार मालाएं लिपटी पड़ी थीं.

आले पर निगाह गड़ाए रमेश कुछ देर तक विचारहीन अवस्था में रहा. गर्मियों की सुबह का वक्त था. महल्ले में दूधियों, अखबारवालों तथा सैर-फरोशों की इक्का-दुक्का आमदरफ्त थी. वह किसी परिचित को ढूंढने की नीयत से कुछ देर तक इधर-उधर भटरगश्ती करता रहा. उसका दिल जोर से धक-धक करने लगा था और वह अपने डर और असुरक्षा को छिपाने के लिए भरसक प्रयास कर रहा था. गली के कई चक्कर लगाने के बावजूद उसका किसी परिचित से टकराव नहीं हुआ. चबूतरे पर बना 'आला' देख-देखकर उसमें अजीब-सी नपुंसक चिढ़ पैदा हो रही थी. स्थिति असहनीय हो जाने पर वह कटरे के बाहर खड़े अपने स्कूटर के पास आ गया. वहीं एक रिक्शेवाला भी सुस्ता रहा था.

रमेश बात किये बगैर रह न सका, ''क्यों भइया, अंदर के उजाड़ मकान पर आला कब बन गया, पता है?''

भइया ने अपने सिर पर अंगोछा घुमाया और भावहीन स्वर में कहा, ''रात को बगलवाला अग्रवाल लाला बनवाए रहा था वो आला...''

रमेश का माथा ठनक गया : तो कुड़ी...बाणिया खन्नों की जायदाद हड़पने के चक्कर में है. उसने रिक्शेवाले से यूं कहा जैसे अग्रवाल को सुना रहा हो, ''परायी जायदाद पर नजर रखनी बुरी बात है, भय्या! इसके नतीजे अच्छे नहीं निकलेंगे!''

''अब अच्छे निकलें या बुरे. हमें का.'' कहकर रिक्शेवाला टांगें पसारकर लेट गया.

रमेश ने भी स्कूटर पर किक मारी और चल दिया. रिक्शेवाला भय्या दो-चार से बात तो जरूर करेगा. हो सकता है, अग्रवाल तक पहुंच जाये....एक दफा तो वह भड़केगा ही...रमेश धड़ाधड़ स्कूटर दौड़ता घर पहुंच गया. तब तक बड़ा भाई नरेंद्र भी वहां पहुंच चुका था.

जब तक रमेश बोलना शुरू करता, लाला मेघराज उसके उतावलेपन से अंदाजा लगा चुके थे. उन्होंने गुरु गंभीर स्वर में पूछा, ''है!''

रमेश का उत्साह कुछ मंद पड़ा था, ''हां जी! पर मंदिर-वंदिर नहीं है...आला है. लोग कह रहे हैं, बंगला वाला अगरवाल है न, उसी ने यह शरारत की है.''

नरेंद्र ने तीखी आवाज में टोका, ''वो बाणिया...कंजर को गालियां तो निकाल आता!''

रमेश को लगा, यह कहने से कि वह गालियां निकालकर नहीं आया उसकी हेठी हो जायेगी. उसने सचमुच का उत्साह दिखाया, ''उसके मकान के नीचे खड़े होकर गालियां निकालीं, पर कोई कुत्ता नहीं आया....''

इस बार लाल मेघराज ने टोका, ''बेटाजी, गालियां निकालकर आपने बहुत गलत काम किया है. यह मामला नाजुक है. कोई भी कदम उठाने से पहले खूब सोच-विचार करना पड़ेगा.''

नरेंद्र झटके से खड़ा हो गया, ''तो फिर आप सोच-विचार कर लो. मैं फैक्ट्री खुलवाकर दोपहर को आऊंगा...हमें तो काम बताओ, लालाजी, काम!''

''ठीक है, परंतु सरदार सोहन सिंह को फोन तो कर देना,'' लाला मेघराज ने ताकीद की.

नरेंद्र सिर हिलाकर चला गया.

अब लाला मेघराज रमेश की तरफ मुखातिब हुए, ''तो वो आला है!''

रमेश अभी आला---रूपी हमले के आतंक से मुक्त नहीं हुआ था. बचाव में उसके व्यवहार की उग्रता सहज ही व्यक्त होने लगी थी. उसने उत्तेजित आवाज में आले की लंबाई-चौड़ाई का ब्यौरा पेश किया.

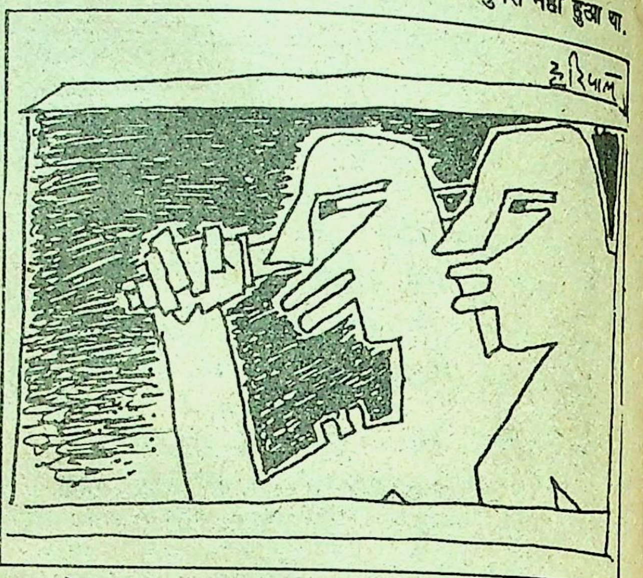

''उसमें कोई प्रतिमा है...? या कोई दीवा या फूल-मालाएं...''. लाला मेघराज ने पूछा.

''...मूर्ति-वूर्ति तो नहीं है...!...मेरा खयाल है, दीवा भी नहीं है पर फूल मालाएं चढ़ी हुई हैं.'' रमेश ने सोच-समझकर बताया.

''हूं,'' कहकर लाल मेघराज सोच-विचार में डूब गये. थोड़ी देर बाद उन्होंने रमेश से सलाह ली, ''बेटा जी, अगर हम इस जायजाद का सौदा ही न करें तो...''

रमेश को बुरा लगा था. उसने क्षुब्ध स्वर में कहा, ''अब हम अपना कदम कैसे पीछे उठा सकते हैं....सब को मालूम है, लाला मेघराज इस जायदाद को खरीदने वाले हैं. अगर हमने पैर पीछे किया तो पूरे शहर में हमारे परिवार की मदद उड़ जायेगी. और फिर रहना भी इसी शहर में है...''

''तुम ठीक कहते हो, बेटा जी. ठीक है, करते हैं कुछ.'' लाल ने दृढ़ शब्दों में कहा.

रमेश उत्साहित हो उठा, ''जिन्होंने आज वहां आला बनाया है, कल वे लोग यहां इस घर में बना लेंगे!...''

लाला मेघराज बेटे के बुजुर्गाना लहजे से चिढ़ गये. उन्होंने सख्ती से लगाम लगायी, ''बेटाजी, तुम फौरन हंसराज खन्ना को टेलिफोन कर दो कि तुम्हारी जायदाद हड़पने की जबरदस्त कोशिश की गयी है... नहीं तो कहेगा, हमें बताया नहीं...फिर इसी बहाने बीस-बाईस हजार और कम करा लेंगे.''

बाल किशन अग्रवाल के घर की बैठक में राजकुमार मेहरा उत्तेजित मुखमुद्रा से बोल रहा था, ''...फिर लाला मेघराज हिंदुओं का लीडर है...दस मंदिरों की परबंदक कमेटियों में है, हर

इलेक्शन में हिंदुओं के नाम पर वोट डलवाता है...तो फिर कैसे खन्नों के चबूतरे का मंदिर ढहा देगा..."

साहनी ने आदतन हवा में हाथ नचाते हुए कहा, "कोई घर का राज है! हमने भी कोई चूड़ियां पहनी हुई हैं!...चार आदमियों से लाला मेघराज की जान-पहचान है तो दो से अपनी भी है. जरूरत पड़ी तो दो-चार अतंकवादी (आतंकवादी) यूं ही खड़ा कर दूंगा..."

अग्रवाल ने नाक पर चश्मे का संतुलन ठीक किया, "मैंने तो आप भाइयों के जोर पर यह काम करवाया है. आप लोगों का हाथ पीठ पर बना रहे तो मैं इससे भी बड़ा काम कर सकता हूं. फिर इसमें फायदा भी सभी का है."

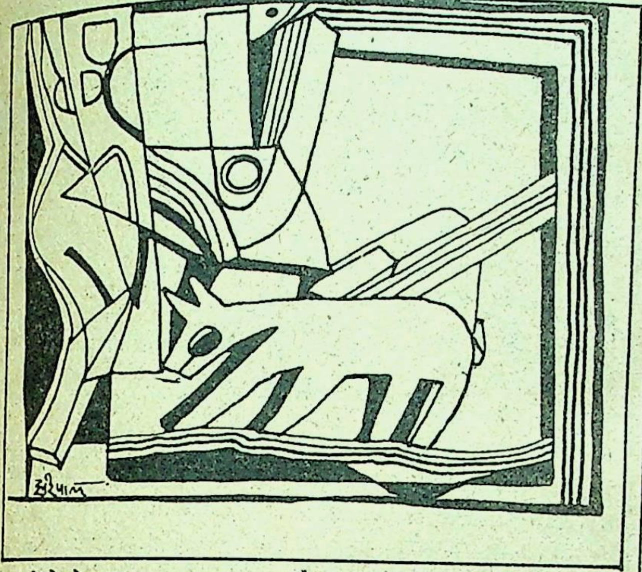

"लालया, फिक्र न कर! हमने हुक्म का चक्का चला है, लाला मेघराज के पास इसका तोड़ नहीं है." राज ने आत्मविश्वास का फुल बटा फुल प्रदर्शन किया.

अग्रवाल को दरवाजे के पीछे से इशारा करती पत्नी दिखाई दी. वह फौरन उठ खड़ा हुआ और 'मैं अभी आया' कहकर बाहर की तरफ लपका.

पत्नी कुलदीप का चेहरा गुस्से से तमक रहा था, "...आपको यह सब करने की क्या जरूरत थी! मैं रात को भी समझाती रही, तब कुछ समझ नहीं आया, अब रिरियाकर मदद मांग रहे हो....इन लोगों को साफ-साफ क्यों नहीं कह देते कि मुझे अब और चक्कर में नहीं पड़ना."

उसको धैर्यपूर्वक सुनने के बाद अग्रवाल दांत पीसते हुए बोला, "हरामजादिये, अपना काम कर! मर्दों के कामों में औरतें टांग नहीं अड़ातीं! कुत्ती...!!"

"ज्यादा मर्द-मर्द न बोल, समझया! मर्द होता तो सारी रात टट्टियों में न बैठ रहता..." कुलदीप ने फौरन हिसाब बराबर कर लिया.

"तू जाती है या नहीं..." अग्रवाल ने गुस्से में पत्नी को धक्के देकर पीछे धकेलना शुरू कर दिया," कुत्ती काम-धंधे की बात में जरूर आयेगी..."

कुलदीप ने उसे पीछे धकेल दिया, "ज्यादा मर्दानगी न दिखा, मैं खुद जाती हूं. अब रोता आया तो मेरी भी जूती खायेगा..."

अग्रवाल भुनभुनाता हुआ बैठक में प्रविष्ट हुआ ही था कि मेहरा बोलने लगा, "अग्रवाल परछाईं एहतियात बरतने के लिए कह रही हैं तो गलत नहीं है. उसे बता देना था कि कोतवाली थाने के एस. एच. ओ. वशिष्ठ से बातचीत हो चुकी है."

बुजुर्ग रामरितामल ने कहा, "जनानियों को मर्दों के काम-धंधों से दूर ही रखना चाहिए. इनकी मति उलटी चलती है."

साहनी ने इस संदर्भ को छेड़े बगैर बातचीत का सार पेश किया, "मेरा खयाल है, यह ठीक रहेगा कि हम लोग लाला मेघराज की चाल का इंतजार करें. और इस बीच अग्रवाल आले में दीया जलाया करेगा और फूल-मालाएं चढ़ाया करेगा. अगर दस-बारह रोज यूं ही निकल जायें तो किसी दिन वहां हनुमानजी की मूर्ति स्थापित कर देंगे. फिर देखते हैं, लाला मेघराज हनुमानजी से कैसे लड़ता है!"

पर लाला मेघराज हनुमानजी से कहीं पहले उसके भक्तों से दो-दो हाथ करने की तैयारियों में जुटा हुआ था.

गिल ट्रांसपोर्ट कंपनी का मालिक अवतार सिंह गिल दरबार साहब मत्था टेककर दफ्तर में दाखिल हुआ तो वहां लाला मेघराज पहले से मौजूद थे.

"सत सिरिअकाल, लालाजी," गिल ने चारों तरफ लगी गुरुओं की तस्वीरों की तरफ सीस नवाते हुए, "क्या हाल है?"

"बस, सच्चे पातसाह की मेहरबानी है!" लाला मेघराज ने आदर का प्रदर्शन करते हुए कहा. वह खड़े हो गये थे.

गिल ने गद्देदार कुर्सी पर पसरते हुए कहा, "सुना है, लालाजी, खन्नों की जो जायदाद खरीदने वाले थे, उस पर किसी ने मंदिर बनवा दिया है?"

लाला मेघराज को कमर सीधी रखने के लिए कुछ फालतू ताकत लगानी पड़ी थी. पर उनका चेहरा भावहीन बना रहा, "मंदिर-वंदिर तो नहीं, किसी ने आला जरूर बनवा दिया है. किसी शरारती अनासर की कारस्तानी है. उसी बाबत कुछ जरूरी मशविरा आपसे करने आया था."

गिल ने अपनी चमकती आंखें लाला के चेहरे पर टिका दीं, "लाला जी मेरी तरफ से किसी भी तरह की मदद आपको चाहिए तो बेझिझक मुझे बता देना. कप से कम मेरी तरफ से किसी गलत आदमी को शह नहीं मिलेगी."

लाला मेघराज ने राहत की सांस ली और क्षणांश में हलका-फुलका महसूस करने लगे, "सरदार साहब, मुझे आप पर सदा से ही पूरा भरोसा रहा है. कुछ गलत लोगों ने हमें ललकारा है तो इस मामले में अपने बेलियों (हितचिंतकों) से राय तो लेनी ही चाहिए."

"आपने सोचा क्या है...? क्या करेंगे अब आप?" गिल बात को सीधी लाइन पर ले आया. आधे घंटे बाद उसे किसी और से मिलने जाना था.

लाला मेघराज ने भावहीन चेहरे पर से पसीना पोंछा और मद्धम आवाज में कहा, "करना क्या है, आला ढहाना है."

गिल मुस्कराया, "कैसे ढहाओगे, लालाजी? आप तो हिंदुओं के नेता हो!"

"सरदार साहब, आप भी जानते हो, मामला हिंदुओं का नहीं, धर्म की आड़ में गुंडागर्दी और लुच्चेपन का है." लाला मेघराज कुछ आपा खो बैठे.

"मुझे तो सब मालूम है, लालाजी. मैं लोगों की बात कर रहा हूं." गिल लाला मेघराज के धर्मसंकट का मजा ले रहा था.

"वो आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं," लाला ने खुद को फौरन संभाल लिया था, "मैं सोच रहा था, आज या कल रात दस-साढ़े दस बजे इसे ढहा दिया जाये." उसने धीरे से बात सरकायी.

गिल लाला के चेहरे की तरफ देखता हुआ उंगलियों से मेज थपथपाता

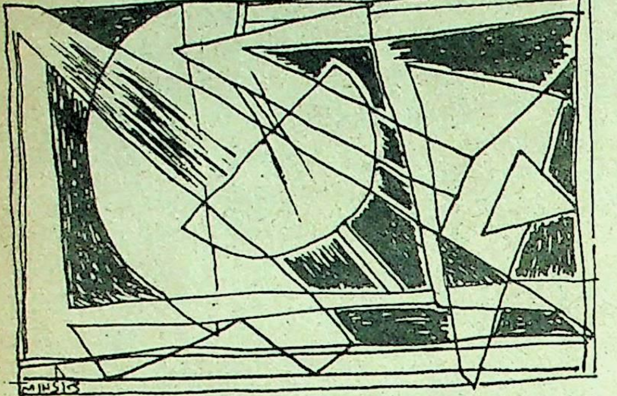

रहा, ''कैसे करोगे आप?'' उसने ब्यौरा मांगा.

लाला आगे झुक गया और अपनी स्कीम के बारे में बताने लगा, ''पंदरह-बीस जवान ढहाने का सामान लेकर रात साढ़े दस बजे वहां पहुंच जायेंगे. आले का मसाला अभी कच्चा ही है, दो-चार मिनट में ढह जायेगा. साथ में दो-एक ठेले भी ले जायेंगे ताकि मलबा भी साथ में उठवाकर कहीं दूर फिंकवा दें. इस तरह वहां न आला बनने का सबूत बचेगा और न ढहने का. मेरा खयाल है, दस नहीं तो पंदरह मिनट में सब निबट जायेगा.''

''और पुलिस आ गयी तो?''

''डी.एस.पी. अपना आदमी है. उससे पहले बात कर लेंगे.'' लाला ने पूरे आत्मविश्वास से कहा.

गिल को मन ही मन लाला की प्लानिंग की दाद देनी पड़ी. ''इसमें, बताओ, मैं आपकी मदद किस तरह करूं?'' उसने अपना रोल पूछा.

''आपसे मुझे पीले पटके वाले पांच-छह जवान चाहिए.''

गिल ने लाला को एकटक देखते हुए पूछा, ''बंदूकों वाले या सादे?''

''बंदूकोंवाले संभालने मुश्किल पड़ सकते हैं. सादे ही ठीक रहेंगे.''

गिल ने सोचते हुए कहा, ''आप तीन-चार दिन तक रुको तो वैरोंवाल का रंजीतसिंह तब तक पाकिस्तान से लौट आयेगा. उसका गैंग तगड़ा भी है और असरदार भी.''

''इतने दिन रुकना नामुमकिन है. कमबख्तों ने वहां मूर्ति स्थापित कर दी तो मामला पूरी तरह हाथ से निकल जायेगी.'' लाला मेघराज ने सिर हिलाते हुए कहा.

''लालाजी, यह तो रहने दो. खालसे अपनी आयी पर आ गये तो...'' गिल ने गर्व से कहा.

लाला ने फौरन टोका, ''वो मुझे मालूम है, सरदार साहब. पर जिन्होंने शरारत की है, मैं उनकी औकात जानता हूं. बेहथियार जवान ज्यादा मुफीद रहेंगे.''

गिल ने असरदार ढंग से बात को अंतिम रूप दिया, ''तो ऐसा करो, लाला आपने जब भी आला ढहाने जाना हो, मुझे टेलीफोन कर दो, घंटे भर में मेरे आदमी आपके ठिकाने पहुंच जायेंगे.''

लाला ने तसल्ली व्यक्त की, ''मुझे मालूम था, मैं बेउम्मीद नहीं लौटूंगा''. उन्होंने वहां से चलने की मुद्रा बनायी ही थी कि गिल ने इशारे के साथ उनसे बैठे रहने के लिए कहा.

''हुकम करो.'' लालाजी ने आशंकित स्वर में कहा.

''लालाजी, आप खन्नों की जायदाद ढहाकर नीचे मार्किट बना रहे हैं?''

लाला मेघराज ने हामी में सिर हिलाया.

''उसमें एक दूकान मुझे चाहिए.''

कुछ क्षण वहां सन्नाटा रहा.

फिर लाला ने कमजोर आवाज में कहा, ''दो लाख पगड़ी है वहां इस वक्त.''

''मैं आपसे मुफ्त नहीं मांग रहा. आपका जो खर्च लगता है, वो मुझसे ले लो...और चाहो तो बारह परसैंट ब्याज भी लगा लो.'' गिल ने कारोबारी अंदाज में कहा.

इस बार लाला मेघराज अपनी कमजोरी छिपाने की गर्ज से कुछ ऊंची आवाज में बोले, ''मैं तो व्यवहार की बात कर रहा था. आप तो मेरे भाई-समान हैं. आप जिस दूकान पर उंगली रख देंगे, आपकी हो जायेगी.''

सहसा गिल ने आगे झुककर कहा, ''देखिए लालाजी, हिंदुओंवाला मामला आप संभाल लें तो खालसों को संभालने की जिम्मेदारी हमारी रही. पिछले ५० बरसों से कौम की सेवा की है, वाहे गुरु की मेहरबानी से, कुछ तो अपनी भी इज्जत है.''

लाला मेघराज के चेहरे पर पहली बार हलकी मुस्कराहट उभरी. ''सरदार साहेब, आला ढहाने के मौके पर मैं आपसे दस आदमियों की उम्मीद करूं?''

''आप दस का हुकुम करेंगे तो दस पहुंच जायेंगे.'' गिल ने खड़े होते हुए कहा, ''मैं अब बख्शीश—सिंह ढाईवाल से मिलने जा रहा हूं. कोई सियासी मदद चाहिए हो तो बताओ.''

''आपके—हमारे इकमुठ रहते जरूरत है?''

''सैंटर का आदमी है. चारों तरफ सुनी जाती है उसकी.''

''बात कान से निकालकर देख लीजिए. बस, कोई वादा न करो आप.''

गिल जोर से हंस पड़ा, ''लाला, क्यूं अंबरसर में जिंदगी खराब कर रहा है. तू नेशनल सियासत में जा!''

अग्रवाल अपने बिस्तर पर करवटें बदल रहा था. उसके पास गिल ट्रांसपोर्ट कंपनी के गिल का फोन आया था, जिसमें उसे सा चेतावनी दी गयी थी कि इस बार के आले को तो हम निबट लें

ईमान

☐ रंदी सत्यनारायण राव

पिछले दिनों की बात है.

मैं टाटानगर' रेलवे स्टेशन से अपनी ससुराल 'नोआमुंडी' के लिए प्रस्थान करनेवाला था, निश्चित समय पर गाड़ी तीन नंबर प्लेटफार्म पर आयी. मैं उसमें सवार हो गया तो देखा कि एक आवारा-सा दिखनेवाला लड़का, लोगों के बैठने के स्थान साफ कर, बदले में दीनता पूर्वक अपना हाथ फैला रहा था. कोई उसे दुत्कार देता, तो कोई कुछ पैसे दे देता, इसी क्रम से वह मेरे पास भी पहुंचा, गाड़ी छूटने को अभी कुछ ही मिनट शेष होंगे कि मुझे एकाएक स्मरण हो आया, कि मैंने 'रेलवे टाईम' लिया ही नहीं है.

सामान छोड़, एक नंबर प्लेटफार्म पर जा भी नहीं सकता था,

अतः डूबते को तिनके का सहारा सदृश्य वह बालक दिखाई दिया. मैंने उसे तुरंत बीस रूपये का एक नोट देकर कहा, ''भाई, जरा तेजी से जाकर एक रेलवे टाइम टेबल ले आओ...तुम्हें एक रुपया दूंगा...''

इतना सुनना था कि वह बालक नोट ले, तेजी से चला गया, उसके जाते ही मेरे बगल वाले यात्री ने कहा, ''उस लफंगे छोकरे पर विश्वास कर आपने रुपये दे दिये...ये साले चोर होते हैं..'' मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, यह श्रीमान ठीक कह रहे हैं.

गाड़ी..सीटी बजाकर धीरे-धीरे सरकने लगी तो मेरी चिंता बढ़ गयी, किंतु, यह देख खुशी का ठिकाना न रहा, जब वह बालक तेजी से मेरे पास आ नोट वापस करते हुए बोला, ''बाबूजी, किताब नहीं मिला.'' मैंने फुर्ती से एक रुपये का सिक्का उसकी ओर बढ़ाया तो उसने इनकार करते हुए कहा, ''बाबू जी, आपका काम नहीं हुआ, हम अपना काम का पैसा मांगता है फोकट का नहीं.'' उसकी ईमानदारी पर मुग्ध हो उसे दूर होता देखता रह गया. ☐

पर आगे से कोई शरारत की तो वाहेगुरु भी, शायद तेरी मदद नहीं कर सकेगा.

फोन सुनते ही अग्रवाल के हाथ-पैर फूल गये थे. आतंकवादियों के साथ गिल के रिश्तों की मशहूकी पूरे अंबरसर शहर में फैली हुई थी. अग्रवाल ने फौरन अपने हिमायतियों से सलाह-मशविरा किया था. सब दुस्साहसियों को जैसे सांप सूंघ गया. सबने बेशर्मी से अपने हाथ खींच लिये और अग्रवाल को सलाह दी कि वह भी खुद को इस झंझट से अलग रखे.

''अब सो भी जाओ.'' पत्नी कुलदीप ने उसका सिर अपनी तरफ मोड़ा.

''सोने देगी तो सोऊंगा.'' अग्रवाल की आवाज में झुंझलाहट थी.

''मेरे पर तो गुस्सा न उतार! मौके पर तो किसी की सुनता नहीं है.'' कुलदीप को अभी तक अपमान का दुःख साल रहा था.

अग्रवाल तमककर उठ बैठा, ''हरामजादी, जबान बंद रखती है या नहीं...''

कुलदीप कुछ क्षण तक उसे आहत गर्व के साथ घूरती रही और फिर करवट बदल ली.

अग्रवाल को लगा भी कि वह ज्यादती कर रहा है, पर वह खुद अपने काबू से बाहर था. वह बिस्तर पर लेटकर बुड़बुड़ाता रहा. बुड़बुड़ाहट बंद होते ही उसके कानों में गिल की धमकी गूंजने लगती और वह बेचैन होकर फिर से बुड़बुड़ाने लगता.

तभी ठक...ठाक की तेज आवाज नीचे से आने लगी. उसका मानसिक क्लेश एक झटके से छूमंतर हो गया और वह बेहद चौकन्नी मुद्रा में उठ बैठा. पास में कुलदीप भी आतंकित मुद्रा में एकदम पड़ौस से आ रही तोड़-फाड़ की आवाजों को सुन रही थी.

पति-पत्नी ने एक-दूसरे की तरफ प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा. आतंक और भय से दोनों की आंखें फैली हुई थीं.

अग्रवाल ने मर्दानगी के सिर पर जबरदस्ती गरगराती आवाज निकाली, ''शायद लोग खन्नों के चबूतरे का आला तोड़ रहे हैं!''

कुलदीप जैसे कुछ नहीं सुन रही थी, ''हमें तो कोई डर नहीं.'' उसे सिर्फ अपने परिवार की चिंता सता रही थी.

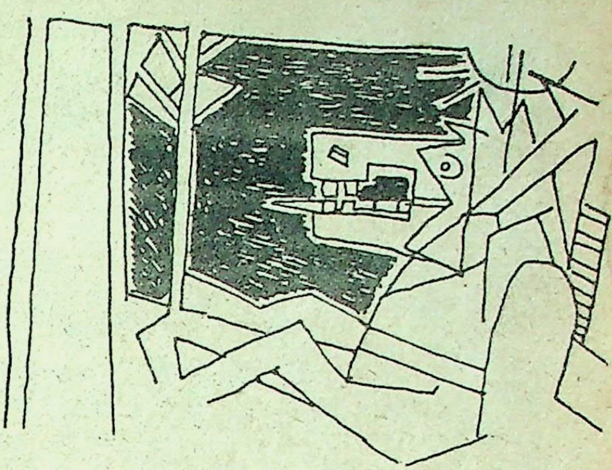

अग्रवाल कुछ क्षणों तक बहुत गौर से आवाजों को सुनता रहा. सब आवाजें एक ही जगह से आ रही थीं. वह समझ गया, खन्नों के मकान के चबूतरे पर बना आला तोड़ा जा रहा है. अपने तथा परिवार की हिफाजत के बारे में उसका तनाव कुछ कम हो गया और वह खड़ा हो गया.

''कहां जा रहे हो?'' कुलदीप बौखला उठी थी.

''हमारे डरने की बात नहीं है...देखें तो आला तोड़ने कौन आया है,'' अग्रवाल ने उसकी हिम्मत बढ़ाते हुए कहा. अग्रवाल के साथ रहने की जिद से कुलदीप भी उसके साथ चल पड़ी थी.

दोनों ने डरते-डरते छज्जे से नीचे झांककर देखा : पंदरह-बीस आदमी मुस्तैदी के साथ टूटे हुए आले के मलबे को रेहड़े में लाद रहे थे.

लाला मेघराज के बेटे नरेंद्र ने मलवा रेहड़े पर लदवाने के बाद इधर-उधर निगाह घुमायी. छतों पर से कुछ लोग चोरी-छिपे नीचे झांक रहे थे. गली का चौकीदार भी कहीं इधर-उधर दुबका हुआ था. आला ढहाने के दौरान इक्का-दुक्का राहगीर इधर आया भी तो फौरन जैसे जान बचाने भाग खड़ा हुआ था. नरेंद्र अपने अभियान की सफलता पर गर्वित हो रहा था. उसने रोबदार आवाज में पूछा, ''सारा मलबा लद गया?''

''हां जी.'' मजूर की आवाज आयी.

नरेंद्र ने रेहड़े वाले से फुसफुसाकर कहा, ''जा, तू तो भाग! ध्यान से, यह सारा मलबा हाथी गेट के पास वाले गढ़े में फेंकना है.'' और कुछ नोट उसके हाथ में सरका दिये.

रेहड़े वाले ने लगाम ढीली की और वह अपने रास्ते लग गया.

नरेंद्र ने बाकी साथियों की तरफ इशारा किया और वे सब नजदीक के मोड़ पर तैयार रिक्शों में सवार हो गये. रिक्शा पर सवार होते समय नरेंद्र ने घड़ी देखी : सारा मामला छह-सात मिनट में निबट गया था.

आधे घंटे बाद लाला मेघराज को गिल का टेलीफोन आया, ''लालाजी, और कोई सेवा!''

बेहद विनम्र लहजे में लाला ने कहा, ''सरदारजी, भगवान की कृपा से सब ठीक-ठाका संपन्न हो गया है. अब तो मुझे आप की सेवा करनी है.''

''लालाजी, भूलना नहीं!''

अगले दिन शहर भर में आतंकवादियों द्वारा मंदिर तोड़े जाने पर तनाव था. उसके अगले रोज अखबारों में घटना का जिक्र करते हुए सरकार की सख्त आलोचना की गयी थी. देखते-देखते कुछ धार्मिक संगठनों ने दिल्ली तथा पंजाब के कुछ शहरों में एक दिन के बंद का आह्वान भी दे दिया था. ☐

कोई दूसरा चाणक्य

रोशनी घेरों में घूमती है. कभी थम जाती है तो जो आकार उसकी ओर पीठ कर खड़ा हो जाता है, लंबी परछाई में बदल जाता है—एक ऐसा साया जिसकी ज़द में कोई दीवार या कोई भी व्यवधान आ जाये तो कभी उसकी गर्दन कट जाती है, कभी कंधे और कभी कमर. पर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता, परछाइयां कांपती रहती हैं. मुंडेरों पर पड़े गमलों में केक्टस लगे हों या गुलाब के पौधे, उससे शामों की उदासी में कोई फर्क नहीं पड़ता. भले ही थोड़ा-सा सहारा उनसे मिल जाये पर खोये हुए रिश्तों की यादें उससे और गहरी हो जाती हैं.

नाटक की रिहर्सल में कभी 'राक्षस' स्टेज पर आता है तो 'चंद्रगुप्त' उस ओर पीठ किये बाज़ार की रौनक देखने में व्यस्त रहता है, या इस इंतजार में कि उसकी गर्ल फ्रेंड कब राक्षस के पंजे में से निकल उसके पास आती है, और वे छत के एक कोने में चले जाते हैं. फिर से अकेला पड़ जाने के खयाल से वह यानी 'चंद्रगुप्त' कैंपा-कोला का आर्डर दे देता है और आ जाने पर उसे सुड़कने लगता है. उधर मोटी औरत 'स्नेह चार्मर' बनने से खाली हो अपना वैनिटी बैग उठा फिर लौट आने के लिए अंधेरे में गुम हो जाती है. नाटक के दूसरे पात्र तरह-तरह की मुद्राएं बनाएं बैठे 'बोर' होते रहते हैं. और निर्देशक बालों में उंगलियां फिराता कुछ रिहर्सल में बना रहता है और कुछ कहीं और. पंद्रह-सोलह या कुछ कम-अधिक आदमी 'राक्षस' के डायलाग में 'मडलड-अप' हुए ग्रुपों या इकाइयों में बंटे बिटर-बिटर ताकते रहते हैं. एक सारहीनता सबके ऊपर से मंडराती हुई कभी इस कोने, कभी उस कोने उड़ती रहती है.

सब रिश्ते माडर्न आर्ट के चित्रों में उतर क्यूबों, घिसे-नुकीले कोनों, बेसिर-पैर की शक्लों, गडमड हुए घिनौने जिस्मों और ऊल-जलूल आकारों में बदल जाते हैं. नाटक का एक साधारण पात्र 'एस्केप' की बात करता रहता है और 'एस्केप' की कोई राह कहीं दिखाई नहीं देती.

आदमी बेशुमार टांगोंवाला जानवर बन गया है. उसके चेहरे पर हाथी की लंबी सूंड निकल आयी है, जो कुत्ते की दुम की तरह सदा हिलती रहती है. कहीं उसकी नाक आगे से कट गयी है और उसकी बत्तीसी सदा बाहर निकली रहती है. कुछ शक्लें बिलकुल समझ में नहीं आती हैं; पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे केवल रंगों के बेसुरे धब्बे मात्र हैं. औरतों के कुछ नंगे जिस्म बेजार हुए लेटे हैं; जो हो सकता है 'लेस्बियन' हों. कुछ चेहरे बुझ गये भी लग सकते हैं. कुछ नेगेटिव फिल्म की तरह या उसमें से भी खाली रह गये. पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने अंधेरे की कोख में से बाहर आने की कोशिश ही नहीं की. नाकाम ही सही.

पर सोचने की बात तो यह है कि नाटक की रिहर्सल में उनका स्थान कहां रखा जाये? पैकेट में से एक या अधिक सिगरेट निकाल उन्हें माचिस दिखाने से तो कुछ नहीं होगा. किस पात्र को कहां खड़े होना, उठना या बैठना होगा, इसके लिए ठीक तरह से सोचने या समझने से भी शायद कुछ न होगा.

आदमी के कंधे उसके सिर से भी ऊंचे उठ गये हैं और वहां से उगी हुई टांगें बांहों की तरह फैल गयी हैं. मेज के नीचे फैली टांगें बांहों की तरह सिकुड़ गयी हैं. आदमी या औरत को नीचे से देखो तो उसका ऊपर का 'कुछ' भी नहीं दिखाई देता. और ऊपर से देखो तो नीचे का 'कुछ'.

ऊपर टैरेस पर रिहर्सल करना तो पिकनिक हो जाता है, साहिब! जगह बदलनी होगी.

पर आप जगह बदलने की ही क्यों सोच रहे हैं, पात्र बदलने की नहीं सोच रहे!

निर्देशक महोदय! आपने यह खबर पढ़ी है—एक रिक्शा चालक सारा दिन खुद को रिक्शा के आगे हांकता रहता है, रात को थकान उतारने के लिए डेढ़ रुपये की शराब पीता है, और सुबह उठता है तो अंधा हो चुका होता है. और शराब... और शराब अब टैटों में बिकने लगी है.

दूसरी खबर है—एक आदमी एक बूढ़ी औरत की मुर्दा लाश को (मुर्दा लाश इसलिए क्योंकि कुछ जिंदा लाशें भी होती हैं) ग्यारह महीने बिस्तर में लिटाए उसकी पेंशन खाता रहता है, क्योंकि अकेलापन उसके लिए भारी हो रहा था, उसे काटने को दौड़ता था. और

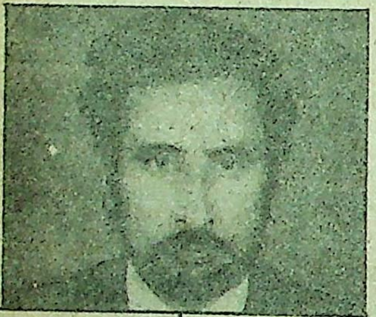

□ केवल सूद

जन्मस्थान : बरनाला, पंजाब.
प्रमुख कृतियां : 'चंद गलियां सूनी दरगाहें', 'मुर्गीखाना', 'विभाजन रेखा' [उपन्यास]. 'युग के गाड़ीवान' व 'सर्पदंश' [कहानी संग्रह]. 'कटा हुआ बापू' [नाटक].
पंजाबी व हिंदी में समान रूप से लेखन.
संपर्क : सी-१ . ए/६०२, जनकपुरी, नयी दिल्ली-५८

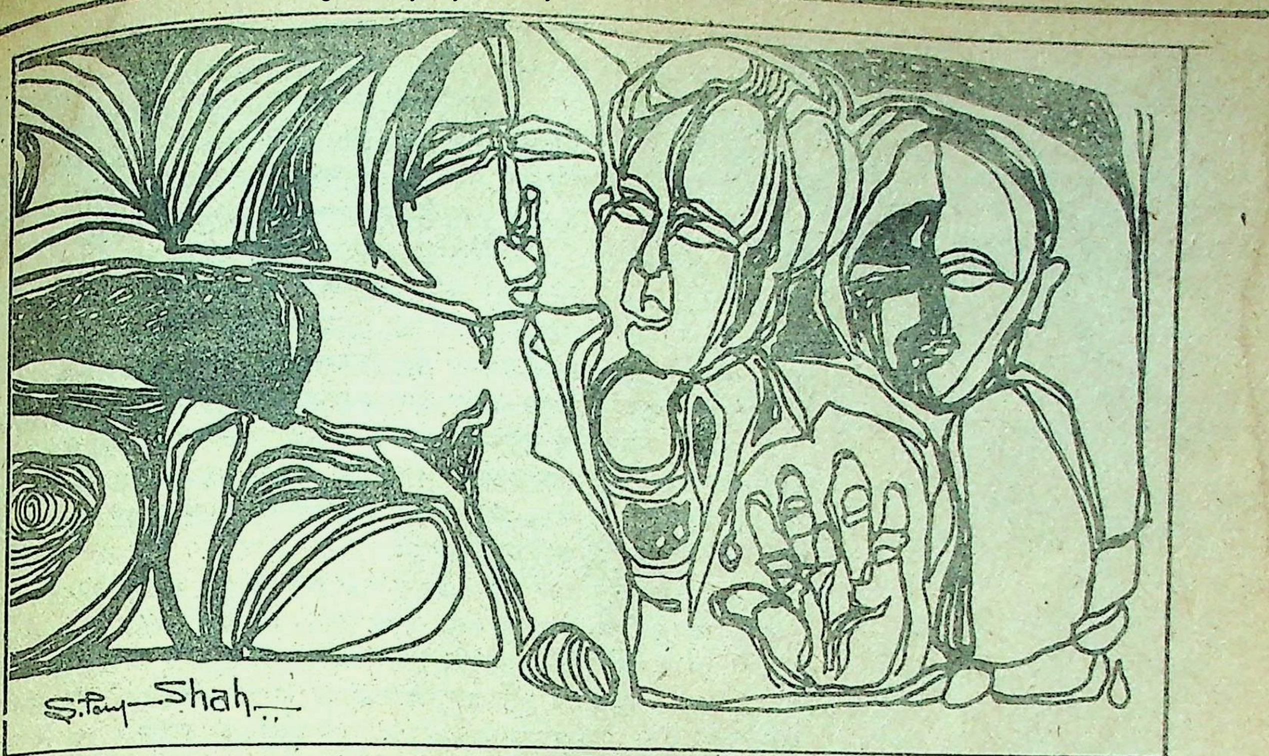

अब...साइकेयट्रिस्ट उस आदमी का एनैलेसिस करेगा...

खबरें तो बहुत हैं, पर एक और सुन लीजिए. हिंदुस्तान में कहीं चूहों का एक मंदिर है. वहां लाखों की तादाद में चूहे हैं. रोज हजारों की गिनती में उनके भोजन पर रुपया खर्च किया जाता है. उधर असेंबली में प्रश्न उठा है. कि महंगाई के कारण मंदिरों के देवताओं को बासी लड्डू खाने पड़ते हैं, और उनका तन ढकना कठिन हो गया है.

अब बताइए, क्या किया जाये. हिंदुस्तान में आदमी तो भूखे मरते ही आये थे, अब देवता भी भूखे मरने लगे हैं...

निर्देशक साहब से पूछा जा सकता है कि वे अपने नाटक में यह सब क्यों नहीं डाल लेते. या सिर्फ इतना ही करें कि कबाड़ी की दूकान का एक सीन डाल लें. सारा हिंदुस्तान नजर आ जायेगा.

पर वे कुछ बदलना चाहें तब ना! नहीं तो हस्पताल की उस बुढ़िया को भी पात्र बनाया जा सकता था, जिसके जिस्म पर गोदनों के बेशुमार निशान हैं. और जो बूढ़े पहलवान की तरह अपना लहंगा नेफे में घुसेड़, अकड़कर चलती है. उसके पास के कल के डाक्टर (लड़के भी, लड़कियां भी) आपस में छेड़-छाड़ करते हुए दिन के उजाले में भी हाथों में टार्चें लिये बरामदों में इठलाते हुए घूमते रहते हैं. पर उनकी टांगें उसकी कयामत जवानी को नहीं ढूंढ़ सकती. वे तो उसकी बूढ़ी आंखों में हंस भी सकती हैं.

यह सब नाटक में डाला जा सकता है, बाबा.

सीढ़ियां

वकील ने एक गवाह से जिरह में पूछा, ''हां, तो यह बताओ कि उस घर की सीढ़ियां कहां जाती है?'' गवाह की कुछ समझ में न आया और वह सिर खुजलाने लगा.

वकील ने वही प्रश्न दोहराया गवाह अब कुछ सचेत हो बोला, ''अगर मैं ऊपर खड़ा होऊं तो सीढ़ियां ऊपर जाती है...''

—कमल सोगानी

पर वे मानें तब ना! नहीं तो वह पागल भी क्या बुरा है जो सड़क के किनारे चुपचाप बैठा हर वक्त लकीरें खींचता-मिटाता रहता है.

उनसे कोई पूछे भला, इन लगभग चौबीस सौ साल पुराने पात्रों में अब क्या रखा है! निर्देशक साहब, आप चाणक्य और शांति की बात करते हैं, मज़ा तो तब है अगर चाणक्य को स्टेज पर से उतार पब्लिक में ले आयें. दुनिया में आज जो कत्लो-गारत हो रही है, अब उसे कोई दूसरा चाणक्या ही रोक सकता है.

आपको मालूम ही होगा, 'पियोव्लो मैन' ने एक रोमन कैथोलिक पादरी के सामने सारी बात बता खुद को दोषी मान लिया था.

निर्देशक साहब, क्यों न सब राजनीतिक नेताओं को आत्म-स्वीकृतियां लिखने पर मजबूर कर दिया जाये. जो हिटलर के वंशज होंगे, खुद ही सामने आ जायेंगे.

यह सब संभव नहीं तो आप दिन के उजाले में टार्च हाथ में पकड़े, गलियों-बाजारों में घूमते फिरिए. शायद कुछ अधिक जोरदार चीज मिल जाये. पर अब तो शो की तारीख तय हो चुकी है. अब आप भाग नहीं सकते. आप रिहर्सल करते रहिए. रोशनी घेरों में घूमती रहे या स्थिर हो जाये, इससे क्या फर्क पड़ता है. परछाइयां लंबी भी हो सकती हैं, छोटी भी. ये डोलती हुई परछाइयां अंधे जिस्मों की नुमाइश भर हैं. जब भी कोई रुकावट इनके बीच आयेगी, ये कभी सिर से, कभी कंधों से और कभी कमर से कटती रहेंगी. और खोये हुए रिश्तों की यादें गहराती जायेंगी... □

संघम् शरणम् गच्छामि

मास्टर हरचरन ने ऐसा नाटक किया कि जो सुने वही दंग... कौन सोच सकता था कि ऐसा हो जायेगा...?

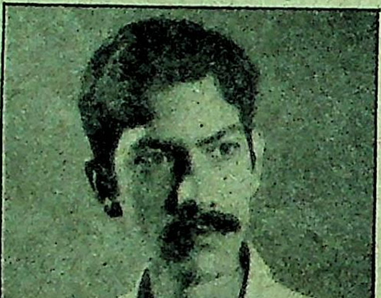

□ **दानिश**

युवा कवि एवं कहानीकार. नाटकों के अभिनय व निर्देशन में संलग्न. कतिपय टेली फिल्मों में भी अभिनय.
एक गजल संग्रह प्रकाशित.

कालिदास कैसे मरे. कोई नहीं जानता. मगर मास्टर हरचन ने तो ऐसा नाटक किया कि जो भी सुने वही दंग. कौन सोच सकता था कि ऐसा हो जायेगा. मास्टर की यह कला तो किसी ने न देखी थी. लोग अगर जानते कि ऐसा हो जायेगा तो मास्टर को रोकते भी और रोकते भी क्यों नहीं. मास्टर पर लोग-बाग कितनी जान देते थे. खैर, जो हुआ सो हुआ. पीछे तो मास्टर की कथा ही कही जानी है.

रोज का अमल. मास्टर के कमरे पर चार लोग जमा थे. राजा भर्तृहरि की कहानी चलने लगी. बाबा गोरखनाथ राजा का मोहभंग किस प्रकार करते हैं. राजा देख रहे हैं, रानी की सुंदर काया आंखों के आगे है. व्याकुल होकर राजा आगे बढ़ते हैं तो क्या देखते हैं कि रानी का रूप तो गायब हो रहा है. राजा के आगे रानी का हाड़ आ जाता है. राजा चिल्लाते हैं. इसी समय फैक्ट्री का सायरन मास्टर के कानों में जाने क्या बोल गया. मास्टर कहने लगे, "फैक्ट्री से कामगार बाहर आते होंगे जैसे शरीर से आत्मा निकलती है. मरते हुए आदमी का रोना कभी सुना है! देखो बिल्कुल ऐसे."

मास्टर के मुंह से सायरन की तरह का रोना सुनायी पड़ा और देह कांपकर धरती पर आ गिरी. लोगों ने समझा यह नाटक कर रहा है, खुद ही उठ जायेगा. मगर जब देरी हुई तो लोगों को शंका हुई.अब तो छूकर देखा तो कारखाना खाली था. फैक्ट्री से सारे मजदूर निकल चुके थे. सब हक्का बक्का हैं. मास्टर ने किस समय पर्दा गिरा दिया.

'मास्टर गुजर गये', जिसने खबर सुनी सीधा दौड़ा आया. और हड़बड़ काकी ने फिर घुटना तुड़ा लिया. अब जो भी आता है मास्टर का दर्शन कर बाहर जम जाता है.

"अरे, यह कैसे हुआ?"

"पहले सुना तो विश्वास ही नहीं हुआ. उसके पास मरने की फुर्सत ही नहीं थी."

"यह तो अजब धोखा हुआ. अल्ला मियां भी आसमान धुलने भेजते होंगे. उसके पास करने की फुर्सत ही कहां थी. मास्टर का तंबू तो..."

"सदा तना रहा था. अचानक उखड़ गया."

"देख लेना. एक दिन न, इसी तरह कयामत आ जायेगी."

"सबको खबर हो गयी क्या?"

"इत्तला के वास्ते रिक्शा भेजा गया है."

"रिक्शे पर लाउड स्पीकर भी लगवा देते."

"अजब आदमी हो यार! वही भेजा गया है. कहो तो बुरा मान जाओगे. वही किस्सा हुआ कि हुज्जते बंगाल और कुक्कुर झौंझों वाला..."

"मास्टर की मशहूरी सारे शहर में है. सबको खबर हो जानी चाहिये."

"इंतजाम बात में कोई कसर नहीं है."

"मास्टर के वास्ते सभी लोग एक पैर से खड़े हैं."

"अरे भाई वो कहते हैं...न, आदमी का काम आदमी से आ...धिक बड़ा होता है."

"कहां पढ़ा था भा....ई?"

"देखो मजाक मत करो. यह मजाकबाजी का मौका नहीं. न हो तो मास्टर से जाकर पूछ लो."

"नहीं पढ़ने का क्या! आंखों के आगे है. आदमी मर जाता है मगर ताजमहल अभी तक खड़ा है कि नहीं."

"मास्टर बड़ा आदमी था."

"बिलकुल देवता आदमी. बिलकुल गऊ."

"और जब भाषण देता तो गजब कर देता. किसी को छोड़ा उसने?"

"बड़ी खूबियां थीं मरने वाले में. जिला अधिकारी हो तो

तहसीलदार सबसे बेखौफ बात कहने में माहिर था, कागज लिखाई में तो उसका सानी नहीं. नगर पालिका वाले बाबू भी हड़कें. मुंशी पेशकार की गिनती किस चीज में. मास्टर ने कितनों को मास्टर बना दिया.''

''नगर पालिका वाली बात पर एक बात आती है मेरे मन में. क्यों न इस सड़क का नाम 'मास्टर हरचन रोड' रखवाया जाये.

''भाई वाह, बात तो लाख टके की कही. भाई सोलहों आने सच मगर एक शंका मन में आती है. नेताजी भड़केंगे.''

''यह तो कोई बात नहीं.''

''लेकिन यही बात है. देखा नहीं हिंदी के कितने बड़े आदमी की प्रतिमा हटा कर नेताजी ने अपने भाई की प्रतिमा लगवायी थी!''

''खैर इसे छोड़िये, मास्टर ने लोगों की कम सेवा नहीं की. अब लोगों के मन से उसे कौन हटा पायेगा?''

''मास्टर के काम का कोई हिसाब नहीं. वैसे भी इस समय इसका लेखा जोखा चित्रगुप्त बाबा के आगे दखलबाजी है.''

''हाय उसके नाटक से मन नहीं अघाता था. किस्सा गुलबकावली हो या दास्ताने हाकिम हो. लोगों से जोड़कर ऐसी चुटकी लेता कि सुनने वाले की तबियत फड़क उठे.''

अजब मुसीबत है. मास्टर की याद में दो मिनट का मौन भी रखना संभव नहीं. सोच रहा था कि सब जन आ जाते तो अर्थी उठायी जाती. नहीं तो घड़ा फोड़ कर भाई के चौरे पर सड़क सभा करना भी उचित नहीं लगता है. लोग बैठे-बैठे आसमान भी क्या देखेंगे. दूर-दूर तक बादल छाये हैं किसी तरफ कोई नखत भी नहीं दीखता. ओस भी नहीं गिरती. थोड़ी देर चुप रहता तो यह मौन कुछ शक्ति तो जुटाता ही. मगर कोई बोल पड़ा. मास्टर के बारे में कौन नहीं जानता. मैं कहूं तो लोग जुबान पकड़ने दौड़ें. नहीं तो मास्टर के बारे में मुझसे ज्यादा कौन बता सकता है.

परसों नरसों की बात, मास्टर ने झाड़ू अभियान चला रखा था. साथ-साथ थोड़ी बातचीत भी जारी थी. कपड़ा हड़ताल टूट रही है. इस पर

लोगों में मास्टर की कितनी कदर बाकी है यह तो उनकी बातचीत से ही पता चलता है. अब कोई बुक्का फाड़ कर रोने से तो रहा. सब कोई हड़बड़ काकी तो है नहीं कि आधी रात बीत गयी. तब से लगातार बैन किये जाती है. हड़बड़ाकर रोने से सारा दुख बरसाती नाले-सा बाहर निकल जाता है. लोग अपना दुख अपने भीतर बचाये हुए हैं.

इतने लोग जमा हैं जो जाहिर है दुखी हैं. लेकिन उस तरह नहीं. जिस तरह से मरनी पर आदमी का चेहरा कुछ लटक-वटक जाता है. शायद इसका कारण यह भी हो सकता है कि लोगों के वास्ते यह यकीनी बात नहीं. वैसे भी लोगों को इसकी आदत नहीं. मास्टर कोई रोज-रोज थोड़े मरते थे. आज मरे हैं बस. यूं तो हरचन मास्टर कभी मंच पर नहीं गया पर उसके नाटक से कोई अपरिचित नहीं. यह भी हो सकता है कि लोग सोच रहे हों कि वह अभी उठकर बाहर आ जायेगा और कोई नया तमाशा शुरू कर देगा. तो भाइयों, मुझे माफ करो. शंका और मौत का कोई इलाज नहीं. धनवंतरी वैद हों या हकीम लुकमान दोनों की पिटारी में इसकी दवा का जिक्र नहीं मिलता है. हां एक बात है कि जहां दवा काम नहीं करती वहां दुआ काम करती है: सब मिल कर दुआ करो शायद बात बन जाये संघ में ही शक्ति है. सब मिलकर गाइये. संघम् शरणम् गच्छामि संघम शरणम् गच्छामि संघम् शरणम् गच्छामि. तब तक मैं दो मिनट का मौन भी रख लेता हूं.

माधव ने कहा, ''भाई मजदूरों का कोई ठिकाना नहीं कब ये साथ छोड़ दें कुछ पता नहीं चल्ता इनके साथ काम करना बिन पानी मरना है.''

''बस्ती में कितना कचरा फैला रहता है. चार आदमी भी अगर अंदर आ जाते हैं तो पूरा कमरा कबाड़खाना नजर आता है. देखो अब कितना साफ सुथरा लग रहा है.'' मास्टर ने झाड़ू कोने में डाल दी और हाथ पैर धोकर चौकी पर आ गये, ''माधवजी तुम पूरे मिट्टी के माधो हो. जानो यह काम तीसरे का बिलकुल नहीं. तीसरा आदमी तो मारा ही जाता है. गेहूं की पिसायी में घुन भी पीसा गया तो किसका कसूर है. तीसरे आदमी का तो यही हाल होता है. नहीं और कुछ नहीं. मैं अपना किस्सा ही आगे रखता हूं. मास्टर हरचन ने दुनिया जहान की बहुत किस्सागोई की. अब उनके किस्से की बारी भी आ गयी. लेकिन जरा ठहर कर. पहले कुछ चना चबैना भी हो जाना चाहिये. असल चीज तो यही है. पेट नहीं चलता तो पैर भी नहीं चलते. आंखों की जोत भी धुआंयी हो जाती है. सो पहले पेट सूजा तो बिलकुल जरूरी है. देखिये, गणपति महाराज को भी भोग की जरूरत है सो भी पहले नंबर पर और थाली में एक भी लड्डू कम नहीं... न हो तो कलेंडर में जाकर देख लो. बात तोला माशा राई-रत्ती सही निकलेगी. रुकिये जरा मैं परसादी ले आता हूं. गुड़ चना चलेगा भाई?'' मास्टरजी उठकर सब जुटाने में जुट गये. पानी का लोटा स्टूल पर बिठा दिया और गुड़ चना लेकर चौकी पर आ जमे, ''हां तो संतों सुनो, मास्टर

हरचन की आपबीती की ओर जरा ध्यान दो कि इसमें कुछ बात है. चक्की के पाट की, गेहूं की जात की, घुन की औकात की. तो हम कहां पर बैठे हैं? हम यहां पर बैठे हैं. यानी आप इसे घर भी कह सकते हैं लेकिन यह तो सोचें घर किसको कहते हैं. घर का मतलब है पनाह. मतलब जहां आकर आदमी सुरक्षा महसूस करे. आदमी की जिंदगी बड़ी चीज होती है सो उसको पीसना या पिस जाने देना बहुत बड़ा जुर्म है, जो इसे समझ गया, अपना घर कुछ ऐसी जगह बनाता है कि पिसने-पिसाने से अकसर बच जाता है. हालांकि पाटन चाहे तो दौड़कर पीस दे. मगर यह किस्सा और है. अब यह अखबारों का कहना भी गलत नहीं कितने लोग हैं जो कि नाहक मारे गये. इसको क्या कहियेगा! आ गये पाटन के बीच. बिजली का गिरना और आफत का टूटना किस जगह नहीं होता! भिक्षा तो बहुत है पर कौन-सा ऐसा घर है जहां कोई नहीं मरा? तो भी आदमी अपने घर में ही रहता है. घर छोड़कर कोई कहां भाग सकता है. इसलिए जरूरी है कि घर कहां बनाया जाय, किनके बीच रहा जाय पहले ही सोच लें. यानी अब बात सीधे पटरी पर आ गयी...कि मास्टर हरचन ने अपना घर क्यों बदला! इस कूचा बदल के पीछे क्या भेद था?

मास्टर हरचन का असल नाम है. हरिश्चंद्र. मतदाता सूची और राशन कार्ड की गवाही को छोड़ दें तो कुछ ऐसी जगहें हैं जहां कोई सूचना सही-सही मिलती है. वर्ना राजकाज में कैसी गड़बड़ियां हैं सबको मालूम है कि स्कूलों के मास्टर कायदे कानूनों के कितने पाबंद होते हैं सो उनका नाम वहां ठीक-ठाक दर्ज हो गया. दसवें दर्जे की सनद इसकी गवाह है. परीक्षार्थी हरिश्चंद्र पुत्र श्री के बाद दीमकों का राज्य...तीसरा श्रेणी फिर अंग्रेजी मास की पंद्रह अगस्त फिर दीमकों की कारीगरी साफ नजर आती है. वैसे हरिश्चंद्र ने बी. ए. भी किया और एम.ए. भी पास किया, और अपने नाम को सार्थक करते हुए—

'अव्वल आया दोयम आया देखो सकल समाज.
तीसरा दर्जा पारन जायें हरिश्चंद्र महराज...' का नारा दिया. और शिक्षा जगत को तिलांजलि दे दी. इस नारे से दुखी होकर दुनिया के तमाम

विश्वविद्यालयों ने भी उनके शोधकार्य की आशा भी छोड़ दी और तो और ठीक इसी समय उनकी उम्र के घंटाघर ने तीसवें वर्ष का घंटा बजा दिया तो सरकारी सेवा की भी कोई राह नहीं थी. निजी सेवाओं में सौ सवा सौ से ज्यादा कुछ मिलने वाला नहीं यह सोचकर हरिश्चंद्र ने जिंदगी की गाड़ी को ट्यूशन की पटरी पर दौड़ाना तय किया. हां उनके मन में यह शिकायत हमेशा बनी रही कि सरकार अगर 'बायें से चलिये', 'परिवार नियोजन ही सुख का आधार है' आदि सूचनायें देती है तो स्कूली लड़कों को क्यों नहीं बताती कि अठ्ठाइस बरस से पहले रोजगार प्राप्त करो, नहीं तो तुम्हारी बरसी मना दी जायेगी.

खैर, यह तो हुआ कि वे ट्यूशन पढ़ाने लगे. तृतीय श्रेणी का इतना लाभ कम न था कि उन्हें पता चल गया था फेल कैसे होते हैं और किस तरीके से नंबर कम आते हैं. सो उनके छात्रों ने गांधी डिवीजन से पहलू बचाना भी आसानी से सीख लिया. कइयों ने मेहनत से 'एक डंडा' भी पाया और उनकी शोहरत में डंडा लगाया. आदमी की शोहरत उसे ऊंचा उठाती है तो बड़े तबके से भी मिला देती है. सो हरिश्चंद्रजी भी ऊंचे जाने लगे. धनी-मानी जन कहते— हरिश्चंद्र जी देखिये, मेरी लड़की का गणित कितना कमजोर है! मेरे लड़के की अंग्रेजी वीक है आदि-आदि. अब धंधा क्या चाहे, हरिश्चंद्र जी कहते, ''आपका बच्चा अब मेरा भी बच्चा है. आप चिंता छोड़िये.'' और बाकी बातें तो छोटी-मोटी बातें थीं खुद हो ही जाती थीं. इन छोटी बातों में हरिश्चंद्रजी के पास मोपेड भी आ गयी. बालों के गिरने और सफेदी की गति में भी काफी अंतर आ गया. और तो और उनकी चाय का लेबल भी हरा हो गया. शुरू शुरू में उनको काफी ही अच्छी लगती. मगर बड़े लोगों की देखा देखी वे भी काफी की जगह चाय ही मंगाने लगे. इस तरह जो हरिश्चंद्रजी का कायाकल्प हुआ तो उनकी उम्र जो बत्तीसही जगह बयालिस नजर आती थी ली, हरजाई औरत-सी वापस घर आ गयी. अब उनकी दिलचस्पी अपने हमउम्रों का साथ खोजने लगी. उधर के जवानों में उनकी जमने लगी. फैशन और फिल्मों की चर्चा चलने लगी.

''हरी भाई आपकी नायिका कौन है?''

''मैं तो भाई पाटिल को ही पसंद करता हूं.''

''मुझे तो शबानाजी ही अच्छी लगती हैं.''

''हां उस पर गहरे और शोख रंग भाते हैं.''

''वह ज्यादा सोबर है.''

हरिश्चंद्रजी को जब वे हरी भाई कहते तो उनका मन अंदर ही अंदर खिल जाता था. चमन लाल से उनकी ज्यादा ही पटती थी. वे उसके साथ बहुत अंतरंग हो गये.

''हरी भाई आज इतना थक गया कि क्या कहूं. नौ बजे सो कर उठा तो नावेल उठा लिया. अच्छा आपके कभी एनानिनस नहीं पढ़ी. ओह आप अच्छा मजाक कर लेते हैं. रियली यू आर ए किड. मतलब आप बौड़म मार्का व्यक्ति हैं.''

इस तरह की बातें हरिश्चंद्रजी को पता नहीं कैसी कैसी लगती थीं. वे तो बस गर्दन ही हिलाकर रह जाते थे. किसी दिन चमनलाल लाड़ में आकर कहते, ''देखिये न आज फिर ड्राइवर छुट्टी पर था, खुद ही गाड़ी चलाकर बाजार जाना पड़ा. ओह माई गॉड कितनी भीड़-भाड़ थी! ये लोग कितना शोर करते हैं. इतनी जोर से हार्न बजाया पर कोई सुने तब न. यहां के लोग कितने गंवार हैं.'' चमनलाल कहता तो पता नहीं क्यों उसकी आंखें एक बारगी हरी भाई पर रुकतीं. यहां गौर कीजिये, ऐसा क्यों होता था! यही तो वो बातें हैं जो यह बताती हैं कि आदमी को अपना घर यहां बनाना चाहिए! खैर, तो आगे सुनिये....

जी हां, बहुत ही उजड्ड लोग रहते हैं. चोर और उचक्के तो गली

गली फिरते हैं अभी कल ही तो...इतना कहते-कहते हरी भाई का मन होता कोई गाली बक दें मगर क्या करें शिष्टाचार एक चीज है सो जब्त किये जाते थे. वैसे उनको खुश करने के लिए केवल हुंकारी ही काफी हो जाती थी. अजब बात है भाई, खाना नहीं होता तो भूख बहुत लगती है और जब हाजिर है तो इच्छा नहीं होती. इन लोगों के कुत्ते पूंछ भर हिला दें तो खुशी का ठिकाना नहीं. धीमे से मुस्का दें.

ज्यादा नहीं हंसते कि लड्डू बांटने लगें. यह सब तो अपने ही बूते की बात है. शायद डरते होंगे ज्यादा खुश हो गये तो धड़कन रुक जायेगी फिर इतना सारा सब कौन उठा ले जाये. और वसीयत भी खूब करते हैं. और तो और दुखी होना भी मुश्किल है. इसका तो दावा है सज्जनो, एक बार ऐसे ही जन के घर पर एक मरनी हो गयी तो हरिश्चंद्रजी ने अपनी आंखें सुजा डालीं. तब उनके दोस्त ने झुककर धीरे से कह दिया, "अधिक नहीं रोना चाहिए. जुकाम हो जाता है."

"अच्छा अब मैं चलता हूं. आज हड़ताल है. कर्फ्यू लग जाने का पूरा अंदेशा है. देखिये मजदूर लोग कितने बदमाश हैं!" हरी भाई ने कहा और चुपके से चल दिये. वास्तव में उनके पास काला सूट नहीं था.

एक बार चमनलाल का ड्राइवर घर पर आया तो गाड़ी का भोंपू सुनकर हरी भाई ने अपना दरवाजा खोल दिया. उस दिन उन्हें काफी बुखार था. बारिश हो रही थी. मगर दोस्ती भी कोई ऐसी वैसी चीज नहीं. अपनी ऐसी-तैसी करके गाड़ी में बैठ गये. दोस्त बीमार था.

इस दोस्त की शादी पर नून तेल लकड़ी से दुल्हन के कपड़ों तक कौन-सा प्रबंध बाकी रह गया था जो हरी भाई ने नहीं किया. इसी बीच हरी भाई को पता चला. शादी के बाद कुछ खास मित्रों का सम्मान किया जाना है. जिसका प्रबंध भी हरी भाई के हाथों होना है. मगर शादी के बाद जब दोस्तों को पूछा गया तो दोस्तों की सूची में उनका नाम नहीं था. हरी भाई को धन्यवाद भर देने की सुध किसी को नहीं थी. इसका दुख तो हरि भाई को काफी हुआ मगर उन्होंने शादी पर केवल मेहनत की थी. देते क्या कीमत के लिहाज से शर्म उठानी होगी इतना सब सोचकर वे भारी हो गये थे. लेकिन यह दोस्ती से बड़ी चीज नहीं थी. भूल भी तो सकते हैं. आंखों के आगे की ओट बड़ी होती है. सभी भूल जाते हैं. एक बात और भी, कि शादी के मौके पर दोस्त की बहन जो किसी महानगर में ब्याही थी, मायके आ गयी थी. हरी भाई उसके साथ मेवा लाने लगे. उस दिन उसने नाभिदर्शन साड़ी और गहरे गले का ब्लाउज पहन रखा था और मोटर गाड़ी में हरी भाई से कितना लगी-लगी बैठी थी. मेवा बाजार में मोलतोल करते हुए वह मेवा उठा कर खाती भी जाती और हरी भाई को खिलाती भी जाती थी. तभी एक घटना हुई. उधर बाजार में एक पागल बैठा था. पागलों का क्या! कब क्या गाने लगें! अचानक गाने लगा, "चल चमेली बाग में मेवा खिलाऊंगा," इस पर दूकानदार और उसका नौकर कुछ इस तरह हंसने लगे कि हरी भाई सिगरेट पीने के बहाने वहां से हट गये. उनको बुरा लगा आखिर वह लड़की दोस्त की बहन ही थी. शादी के बाद जब उन्हें यह पता चला कि लड़की उन्हें पिछड़ा और गंवार आदमी कहती है तो उन्हें अपनी शराफत पर खेद हुआ. मगर बाद में अपने दिल को समझा लिया. हां, तो बात यह थी कि दोस्त बीमार था. दोस्त की बीमारी ने हरी भाई को काफी चिंतित कर दिया था. डाक्टर ने फौरन आपरेशन की राय दी, मामला गंभीर था. दोस्त का खून भी अजब ढंग वाला था. कितने ही लोगों से मिलाकर देखा गया. मगर उसका मिजाज किसी से भी मिलता नजर नहीं आता था. सो हरी भाई ने भी बाहें कर दीं. और अजब बात थी कि वह खून, बिलकुल वही खून दोस्त की रगों में जाकर बैठा था जो उनकी रगों में बसेरा किये हुए था. उन्हें फिल्म देखने के लिए जाना था इसलिए चले गये. हरी भाई ने पूरे ढाई बोतल खून दे

गो भोजनम् कथा

बलराम अग्रवाल

"याद आया." गऊशाला से भी निराश निकलते इंदर ने पत्नी को बताया, "अपना बशीर था न...वही...जो हाल के दंगों में मारा गया. शायद उसकी गाय गर्भिणी है."

"छि: !"

"कमाल करती हो!" इंदर तमतमा गया, "बशीर के खूंटे पर बंधकर गाय...गाय नहीं रही...बकरा हो गयी? याद है...दंगाइयों के हाथों उस गाय को हलाल होने से बचाने के चक्कर में ही जान गयी उस बेचारे की."

"...'चुप्पी.

"दो-चार, दस-पांच दिन का समय बीच में दिया होता तो कहीं और भी तलाश कर सकते थे हम." उसकी उपेक्षापूर्ण चुप्पी से क्षुब्ध होकर वह पुन: बोला, "शुभ मुहूर्त है...आज ही से शुरू करना होगा. पड़ गयी साले ज्योतिषी के चक्कर में."

चुप रही माधुरी. क्या कहती. संतान प्राप्ति जैसे भावुक मामले में बेजान पत्थर और अव्वल अहमक तक को पीर-औलिया मानकर पूजने लगते हैं लोग. यह तो गाय थी-सजीव और साक्षात्. बशीर की ही सही. घर पहुंचकर उसने हाथ-मुंह धोये. लबालब तीन अंजुरी भर गेहूं का आटा एक बरतन में उल्टा, तोड़कर गुड़ का एक टुकड़ा उसमें डाला और साड़ी के पल्लू से उसे ढांपकर चल पड़ी बशीर के घर की ओर.

गाय बाहर ही बंधी थी लेकिन गर्भिणी होना तय करने से पहले उसको कुछ देना माधुरी को ज्योतिषी की सलाह के अनुरूप नहीं लगा. सो सांकल खटखटा दी. सूनी आंखों और रूखे चेहरेवाली बशीर की विधवा ने दरवाजा खोला. देखती रह गयी माधुरी—यह थी ही ऐसी दुबली या...इंदर तो एक बार यह भी बताते थे कि बशीर का बच्चा इसके पेट में है.

"क्या हुक्म है?"

"मैं...माधुरी हूं...इंदर की पत्नी." कभी गाय को तो कभी बशीर की बीबी के पेट को परखती माधुरी जैसे तंद्रा से जाग उठी, "आटा लायी हूं...ज्यादा तो नहीं, फिर भी—अपनी हैसियत भर...तुम्हारे लिए जो भी बन पड़ेगा—हम करेंगे बहन." बरतन के ऊपर से पल्लू हटाकर उसकी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा, "संकोच न करो... रख लो...बच्चे की खातिर."

बशीर की विधवा ने चूनर को अपने पेट पर सरका लिया और फफककर चौखट के सहारे सरकती हुई धीरे-धीरे वहीं बैठ गयी. □

दिया. खून दे कर उन्होंने ऐसा महसूस किया जैसे वे उस कुल के दीपक के रक्षक हों या ऐसा ही विचार उनके सीने में था जो उनके चेहरे पर लप्प-लप्प करता था. हो सकता है यह कोई शहीदाना रंग रहा हो. भाई मन की बात का तो एक्सरे नहीं मिलता. स्वस्थ होने पर दोस्त ने उनसे कहा, ''तुमने बेकार ही अपना खून दिया. दो ढाई बोलत तो ऐसे ही मिल जाता है. नब्बे रुपये बोतल था.'' दोस्त उनकी सेहत को लेकर काफी चिंतित था, ''तुम भी कितने बुखार में चले आये. तुम को कोई गंभीर बीमारी तो नहीं...अब तो दोस्ती के बीच के जान से प्यारे थे. और कैसे प्यारे थे, इसे समझना होगा. दोस्त प्यार से कहते, ''हरी भाई आप बंबई जरूर जाइये. देखिये, जब आप खून दे रहे थे तो बिलकुल हीरो नजर आते थे. शायद आप की किस्मत उस तरह चमक जाये.'' यह एक हल्का फुल्का मजाक था. जिसे हरी भाई भी इसी तरह लेते थे. एक बात जरूर थी कि अपनी तरफ से हरी भाई कभी मजाक नहीं करते थे.

एक दिन जब बाहर से नयी फिल्म आयी तो फ्रायड डे हरी भाई को भी बुलाया गया. हरी भाई फ्राएड का फलसफा पढ़ने लगे. किसी ने कहा, ''मुझे ऐसा लगता है कि मेरे भीतर भी कोई हीन भाव है.'' छूटते ही हरी भाई ने कहा, ''हर आदमी के भीतर कुछ ऐसी बात होती है अब यही देखिये कि मुझे पूरा यकीन है, आप मेरे मजाक का बुरा नहीं मानेंगे. लेकिन क्या बात है कि अपनी तरफ से मैं मजाक नहीं कर पाता. जिस पर वे सब अजीब ढंग से हंसने लगे और हरी भाई का फिल्मी किस्सा चल पड़ा...''हरी भाई आप बंबई नहीं जाते तो यहां पर ही कोई गरमागरम फिल्म हो जाये. आपकी तरफ तो हीरोइनें भी कितनी आसानी से मिल जाती हैं.'' तब तक वे लोग घर से बाहर चले गये. जिनके कारण फिल्म शो पर रोक थी. और हाय हुई शुरू हो गयी.

यानी इस तरह से हरिश्चंद्रजी के दिन कटने लगे. अपने मोहल्ले में अब वे कम रहते थे. लोगों से बोलचाल और आना-जाना भी कम हो गया. दूर से ही लोग उन्हें नमस्कार कर लेते. शादी-वादी की नहीं सो औरतों के बीच भी उनके घर-बार की कोई बात नहीं थी. हां, यह जरूर था कि रसोई और सफाई के वास्ते मास्टर हरिश्चंद्र ने एक महरी रख ली थी. तीस रुपये मासिक और खाने-कपड़े पर वह घर पर ही रहती. जैसे बोनस का मौका आ गया तो वे उसे बोनस भी देते थे. जैसे किसी दिन फ्रायड डे मनाकर आये तो सिर फटने लगता था.

उनका मिलना-जुलना अब अगर किसी से था तो वह लाल जनरल मर्चेंट वाले थे. अपना सामान वे वहीं से लेते थे.

कारण

□ कमल सौगानी

''मम्मी! मैं पांच दिन तक दफ्तर के काम से बाहर था वापिस लौटने से पहले तार द्वारा आने की सूचना दी, लेकिन जब घर पहुंचा तो उसे एक अनजान व्यक्ति की बाहों में पाया. तुम भी स्त्री हो मम्मी, तुम बता सकती हो कि ऐसा क्यों हुआ?''

उसकी मां ने थोड़ी देर तक बेटे की बात पर गौर किया फिर गंभीरता से बोली, ''संभव है, उसे तुम्हारा तार न मिला हो...'' □

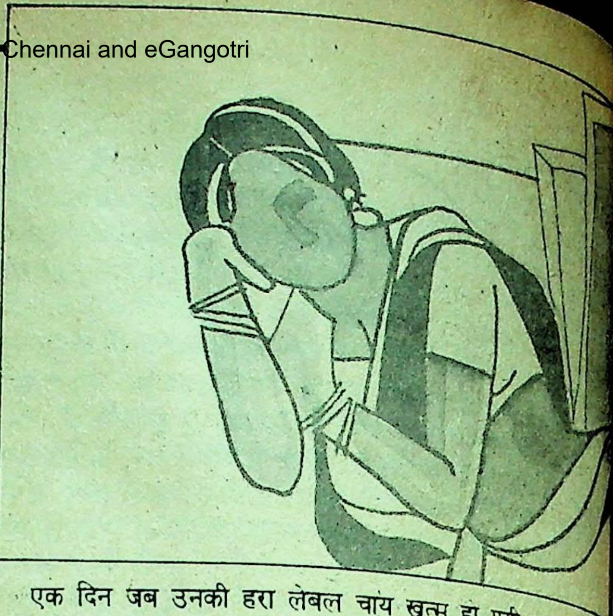

एक दिन जब उनकी हरा लेबल चाय खत्म हो गयी तो उठे कि लालजी से भी मिल आयें. दरवाजे पर पहुंचे तो सामने से गुजरता हुआ मजदूरों का जुलूस दिखायी दिया. हरिश्चंद्रजी का तो खून ही खौल गया. ''गंदे, मजदूर, देखो कैसा हंसते हैं. इनके शरीर से कैसी बास आती है. गुस्से में वे उनके नारे पढ़ने लगे. पोस्टर पढ़ने लगे, 'मई दिवस अमर रहे, दुनिया के मजदूरों एक हो, महंगाई रोको...अच्छा तो केवल इन्हीं की महंगाई है. और जो टूथपेस्ट महंगा हो गया, सेंट महंगी हो गयी, पेट्रोल महंगा हो गया तो हमें कोई परेशानी नहीं है. हम तो हड़ताल नहीं करते. हम शरीफ लोग हैं इसलिए कायदे से रहते हैं. दफा एक सौ चव्वालिस लगी हुई है और ये कानून तोड़ रहे हैं. अब तो बाहर निकलना भी मुश्किल है.

जुलूस चला गया तो बाजार की तरफ निकले. लाला ने उन्हें सीढ़ियां चढ़ते देखा तो कहा, ''नमस्ते हरिश्चंद्रजी.'' मगर हरिश्चंद्रजी तो मजदूरों पर लाठी चार्ज करवा रहे थे. उनके मुंह से निकला, ''मारो..'' फिर जैसे सोते से जगे और लाला से बोले, ''क्षमा कीजिये लालाजी, देखिये इन लोगों ने अंधेर मचा रखा है. देश की तरक्की तो इसीलिए रुकी है. ये बदमाश आगे बढ़ने को राजी नहीं. अब जरा देखिये, देश क्या हम लोगों के आगे बढ़ने भर से आगे बढ़ जायेगा. कितने गंदे रहते हैं. पेस्ट तक नहीं करते. आखिर ये लोग चाहते क्या हैं. बाहर के लोग आते हैं तो इनकी तस्वीरें ले जाते हैं. कितनी बेइज्जती होती है. इन सब को तो देश से निकाल ही देना चाहिए.'' मास्टर हरिश्चंद्र झोंक में बकते गये. और यह भूल गये उनको लेना क्या था.

उधर जुलूस थाने पर अड़ा था. थानेदार ने सोचा दफा एक सौ चव्वालिस के बाद भी ये 'मई दिवस' मनायेंगे. जुलूस निकल गया तो पुलिस की जो नाक कटेगी सो कटेगी, विभाग में उनकी भी इज्जत भी क्या होगी! थानेदार ने जुलूस को थाने पर रोक दिया. मजदूरों में इस पर काफी हड़कंप मची. नारेबाजी से मामला पत्थरबाजी तक पहुंच गया. लाला ने दुकान अंदर से बंद कर ली तो मास्टर हरिश्चंद्र बाहर खड़े रह गये. उनका झोला झंक्कड़ तो अंदर ही रह गया. रुकें या चले जायें इसी उधेड़बुन में थे कि पुलिस ने उनका कालर भी धर लिया. खींच-खांच कर उनको थाने लाया गया. थाने में कितने ही लोग गिरफ्तार थे. जो बात-बेबात नारे लगाने लगते. वर्दी और नारों के बीच हरिश्चंद्रजी के प्राण सूखने लगे. उनहें लगा अब वे जीवित नहीं बचेंगे. नारों से थानेदार और ज्यादा चिढ़ा तो पिटायी का एक दौर थाने में चल पड़ा. बड़ी मारा मारी हुई, हरिश्चंद्रजी को भी आठ दस डंडे पड़े. जिस पर वे बुक्का फाड़ कर रोने लगे और उनकी नलकी भी जोरों से खुल गयी. मजदूरों के लिए यह मुफ्त का तमाशा था या युद्ध विराम का प्रतीक. हंगामा रुक गया. लोग-

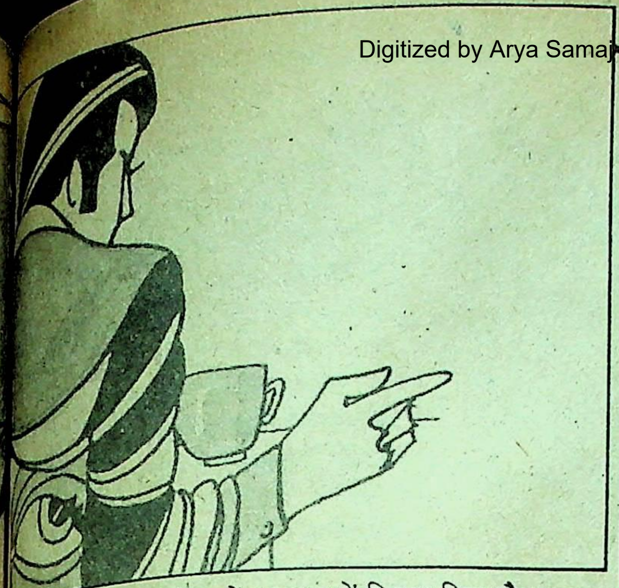

[illegible] हंसने लगे. थानेदार ने उन्हें हवालात में भिजवा दिया और मास्टर हरिश्चंद्र पर बुरी तरह गुर्राया, "बदमाश, सब गंदा कर दिया...देखिये, यह मजदूर लोग बदमाश है."

"मैं मजदूर नहीं हूं. मैंने हड़ताल नहीं की है जी देखिये. "हरिश्चंद्रजी बुरी तरह बौखला गये." हम तो चाय की पत्ती लेने आये थे."

"अच्छा तो तू चाय पियेगा रे हराम खोर." दरोगा ने सिपाही को कोई संकेत किया, "चाय पिला साले को."

"नहीं, मैं रेड लेबल चाय नहीं पीता. मैं तो हरी लेबल जी...हरी लेबल चाय पीता हूं. आप देखिये मत मंगवाइये जी..." मास्टर ने थोड़ा संयत होने की कोशिश की. जिस पर दीवान और थानेदार हंस पड़े. इनको हंसता देख हरिश्चंद्रजी की जान में जान आयी. और वे धीमे से बोले, "देखिये मुझे फ़ोन करने दीजिये, मैं चमनलाल जी का दोस्त हूं."

दरोगा ने बात को दिलचस्पी से सुना और पता नहीं क्या सोचकर फ़ोन सरका दिया, 'किलाफतह' मास्टर ने सोचा और कुछ शान से नंबर मिलाने लगे. दूसरी तरफ चमनलाल खुद मौजूद था, "कौन?"

"मैं हरी...आज जो हड़ताल हुई उसमें मैं भी पकड़ लिया गया हूं." हरिश्चंद्रजी को लगा वे कुछ गलत बोल गये हैं.

"तो तुम भी हड़ताली हो! अच्छा जी बहुत खूब. इधर आने की कोई जरूरत नहीं. गंदे कम्युनिस्ट." चमनलाल ने उधर से अभयदान दिया और चोंगा पटक दिया. अब तो हरिश्चंद्रजी की हालत पतली हो गयी. उन्हें लगा धरती घूम रही है. सिर पकड़कर हरिश्चंद्र धरती पर बैठ गये. थानेदार ने उनको ठोकर मारी और दीवान ने हवालात में ठूंसा.

अब क्या हो सकता था! मास्टर को जेल की हवा खानी पड़ गयी. मास्टर जब से जेल में आया था किसी ने उसे बोलते हुए नहीं सुना. मजदूरों ने उसका पैजामा धो दिया. और पहनने के लिए धोमी भी जुटा दी तो पता नहीं मास्टर ने इस पर क्या सोचा कि ठठाकर हंसने लगा. तब से वह लगातार इस तरह मुस्कुराता रहा. लोगों का कहना है कि दुश्मन अगर देखे तो सात पुश्त खौफ खायें, दोस्त अगर देखे तो आठ पुश्त मुस्कायें. लोगों को लगा अब यह पागल हो जायेगा.

मजदूर छूटे तो मास्टर भी छूट गये. नहीं, वह जो छूटा था, हरिश्चंद्र नहीं था. वह तो मास्टर हरचन था. जेल के फाटक पर लोग उन्हें लेने आये थे. बाहर निकलते ही मास्टर हरचन जोर से चिल्ला पड़े.

"इन्कलाब."

जाहिर है इसका क्या उत्तर आना था! सो आया.

मास्टर ने कहा, "मजदूर एकता."

मास्टर ने कहा, "दुनिया के मजदूरो."

मास्टर ने कहा, "मई दिवस."

मास्टर ने कहा, राजा भर्तृहरि का मोहभंग हो गया. राजा अब सारी जिंदगी मजूरी ही करेंगे. मजूरी ही खायेंगे. मजूरी ही पहनेंगे. मजूरी ही ओढ़ेंगे. मजूरी ही बिछायेंगे. अब हरचन मास्टर ने ऐसा भाषण दिया, "भाइयो, यह अमीर लोग किसी के नहीं होते. आपने सुना होगा बरफी का सब रस ले गयी रे पिंजरे वाली मुनिया. तो हमारी जिंदगी का सब रस चुराकर खून, बिलकुल असली खून चुराकर बदले में कुछ नहीं देने वाले लोग अमीर लोग हैं. धन्यवाद भी नहीं देते भइया. सच्ची बात तो यही है कि इनकी नजरों में हम आदमी ही नहीं हैं. हो ही नहीं सकते. कुत्ता दुम हिलाये तो ये खुश हो जाते हैं, और अगर गरीब आदमी मुस्कुराता है तो ये जल जाते हैं. यह तो साला गरीब है. यह हंसा क्यों! वगैरह-वगैरह. मास्टर हरचन खूब बोले. लोगों को तो मजा आया ही. मास्टर हरचन को भी बड़ा मजा आया. यानी तब से छूटने का दिन और आज का दिन मास्टर पहले मजदूर हुए और कार्यकर्त्ता बाद में. और बाकी हालचाल तो सबको मालूम है. सभी जानते हैं कि अब भी ठीक-ठाक है. मास्टर ने अपने कूचा बदल की कथा यूं समाप्त की. आगे के हाल का बयान इस प्रकार है—

आसमान साफ है. बादल रातोंरात इस शहर से कहीं दूर चले गये हैं. पंछी आते हैं और अपने प्यारे मास्टर हरचन का अंतिम दर्शन करके बायें मुड़ जाते हैं ताकि पीछे आने वाली चिड़ियों को कोई दिक्कत न हो. जहां तक मैं देख रहा हूं सूरज का रंग कुछ सुनहला हो चला है. लगता है सभी लोग आ चुके हैं जिनकी प्रतीक्षा में शवयात्रा रुकी हुई थी. नउवा ने घड़ा दोनों हाथों से अपने सिर तक उठा रखा है जैसे सलामी दे रहा है. अर्थी तैयार है. सायरन बज रहा है. लोग अर्थी उठाने को आगे झुक रहे हैं. आश्चर्य, घोर आश्चर्य, अर्थी तो खुद उठ रही है. कफनी खोलकर मास्टर निकलते हैं और एक आदमी का गमछा लपेट कर छाती पीट रहे हैं. नउवा के हाथ से घड़ा फूट गया है. और मास्टर हरचन अपनी छाती पीट रहे हैं—हाय, गगरिया फोड़ डारी, हाय, अब जीकर क्या करेंगे, हम जीकर क्या करेंगे. और दौड़ कर अपनी टिकटी पर लेट रहे हैं. लोग बड़े प्रेम से अर्थी उठा रहे हैं. 'रामनाम सत्य है'—मास्टर चिल्ला उठे.

'संघम् शरणम् गच्छामि' लोगों ने जवाब दिया है.

रामनाम सत्य है! संघम् शरणम् गच्छामि ! !

रामनाम सत्य है! संघम शरणम् गच्छामि! ! □

दीठ

□ राकेश कुमार

निखिल का ध्यान सामने के झुंड की बातचीत की ओर था. नये-नये कपड़े पहने वे संभ्रांत परिवार के लड़के लग रहे थे. बातचीत का मुद्दा धीरे-धीरे जन्मदिन के उपहार पर आकर सिमट गया था. तभी एक लंबे से लड़के ने कहा कि पिताजी ने उसे जन्मदिन पर एक घड़ी दी. यह कहते हुए उसने अपनी कलाई को जरा ऊपर उठा दिया. सूर्य का प्रकाश घड़ी के चमकीले डायल से टकराकर निखिल के चेहरे पर कौंध गया. निखिल ने मन ही मन कहा, 'हुंह...घड़ी से क्या लाभ. समय तो किसी से पूछा भी जा सकता है...' उसके जी में आया कि वह जाकर कह दे कि अपने जन्मदिन पर उसने भरपेट भात खाया. पर वह ठहर गया. उसे डर हुआ कि कहीं किसी की दीठ न लग जाए... □

यह बम्बई है

प्रबोध जोशी

संपूर्ण विश्व में बंबई जैसा अनोखा और बेजोड़ कोई नगर नहीं.

यों बंबई चारों तरफ से पानी से घिरी है लेकिन इस शहर जैसी पानी की तकलीफ दूसरे नगर में नहीं. इस शहर में पैसे का पानी हो जाता है तो पानी के भी पैसे बनाये जाते हैं.

यहां जितने मंदिर हैं उतनी ही मस्जिदें हैं और उतने ही चर्च. लेकिन यहां उतने ही अधर्म और अनीति के अड्डे और अखाड़े भी हैं. यहां अनेक साधु-संत हैं जो निजी जिंदगी में मवाली और गुंडे हैं. यहां ऐसे भी मवाली और गुंडे देखने को मिलते हैं जो असली जीवन में दिल के साफ और दयालु होते हैं.

यहां अमीर हैं जो दिल के गरीब हैं तो गरीब भिखारी भी हैं जो दिल के अमीर हैं.

यहां भाषा का झगड़ा है लेकिन यहां की अपनी भाषा ही अलग है. यह भाषा बंबईया कहलाती है. ऐसी कोई भाषा नहीं जो यहां बोली न जाती हो या सिखायी न जाती हो. फिर भी यह एक भावी भाषी राज्य की राजधानी है.

यह शहर एक बड़ा बंदर है यानी बंदरगाह है. शायद इसी कारण यहां के निवासी बंदर जैसा व्यवहार करते हैं. इस समय बंदर शब्द का अर्थ बदल डालने की जरूरत है.

यहां डाक्टर हैं, कंसलटेंट हैं. बड़े-बड़े आयुर्वेद के वैद्य हैं, होमियोपैथी के खां हैं तो यूनानी तिब के जानकार भी हैं और चमत्कारों से इलाज करनेवालों की संख्या भी यहां हजारों में हैं. यहां नास्तिक भरपूर मात्रा में हैं तो धर्म के कट्टर अनुयाइयों की तादाद उनसे चार गुना ज्यादा है. चमत्कार की बात सुनकर दरगाह पर जाने वाले हिंदुओं से तकलीफ में फायदा पाने के लिए हिंदुओं के मंदिरों में जाने वाले मुसलमान कुछ कम नहीं. यहां भजनों के कार्यक्रम हॉल में आयोजित किये जाते हैं तो कव्वाली भी हॉल में गायी जाती है.

यहां मकान के अभाव के कारण लोग फुटपाथ पर सोते हैं तो कितने ही रात की आखिरी ट्रेन में कल्याण वगैरा जाते हैं और सवेरे की गाड़ी पकड़कर फिर वापस बंबई आ जाते हैं. कुछ के पास एक कमरे में ही दस लोगों के सोने की सुविधा हैं तो अनेक ऐसे भी हैं जिन्हें अपने अकेले जीव के लिए भी दस-दस कमरों का फ्लैट कम पड़ता है.

> आखिर कैसा है यह शहर जहां इतनी ज्यादा फिल्में लगती हैं कि आम बोलचाल में भी लोगों की फिल्में उतर जाती हैं... कैसा है यह शहर जहां आने के हजार रास्ते हैं तो जाने के दो हजार...?

यहां कोई होटल खाली नहीं रहता. ऊसल-पाव बेचने वाले, छोटी राइस प्लेट बनाने वाले रेस्तोरां भी यहां हैं तो रोज के पंद्रह सौ वसूलने वाले फाइव स्टार होटल में भी जगह नहीं मिलती.

यहां बहुत से विवाहितों को कुंवारों की जिंदगी बितानी पड़ती है तो अनेक कुंवारे इनसे उल्टा जीवन गुजारते देखे जाते हैं.

यहां एक ही व्यक्ति किसी के सम्मान-समारोह या स्वागत समारोह से आकर तुरंत किसी की शव यात्रा में शामिल होने के लिए चल पड़ता है और फिर हस्पताल में किसी का हालचाल पूछकर वापस दोस्तों के साथ किसी बार में जाम पर जाम चढ़ाता पाया जाता है.

यहां बहुत से लोग जिस मकान में रहते हैं, वह असल में उनके काका का रूम होता है और काका से पहले उसका बहनोई उसमें रहा करता था. बहनोई को वह रूम उसके एक दोस्त ने दिया था और उस दोस्त के पास यह रूम कैसे आया, इसका अता-पता कहीं से मिल नहीं सकता.

लोटा-डोर लेकर आने वाले लोग आज यहां करोड़पति हैं तो यहीं लोटा-डोर लेकर आने लोग ऐसे भी हैं जो अपना लोटा बेचकर किसी तरह एक दिन गुजारकर दूसरे दिन उसी डोर से फांसी लगाकर अन्यों के लिए मिसाल कायम कर जाते हैं.

यहां मां-बाप की सहमति से होने वाले विवाह के स्वागत समारोह के सालभर पहले वाड़ी या हॉल बुक कराना पड़ता है तो इन विवाहों से अधिक संख्या में भागकर गुपचुप विवाह किये जाते हैं.

यहां कल नौकरी करने वाले आज सेठ बने बैठे देखे जाते हैं तो सेठ के रूप में धंधा करने वाले आजकल दो-चार जगह पार्ट-टाइम नौकरी करते भी पाये जाते हैं. यहां का अमीर अपने दादा की गरीबी की कथा सुनाता दिखाई पड़ता है तो आज का मामूली आदमी अपने दादा की माल-मिल्कियत का बखान करता पाया जाता है.

इस नगर में कालेज में ऐडमीशन मिलना किसी फिल्म के प्रीमियर शो के टिकट मिलने जैसा मुश्किल है और स्कूल में एडमीशन लेना उतना ही कठिन है जितना विधान सभा में से राज्य सभा के लिए चुना जाना. यहां के होटलों में कमरा मिलना ऐसा ही है जैसे सीधे स्टेशन पहुंचकर टी.टी.को पैसे दिये बगैर स्लीपर में जगह मिलना और यहां शाम के समय टैक्सी मिलना फुटपाथ पर रहकर पांचवीं मंजिलवाली लड़की से मुहब्बत करने जैसा कठिन है.

इस नगर जितनी सजग पुलिस कहीं अन्यत्र नहीं मिलेगी तो यहां की पुलिस जितना हफ्ता खानेवाली पुलिस भी कहीं दूसरी जगह नहीं

होगी. यहां की नगरपालिका कर्मचारी ५० प्रतिशत घूस खाने वाले हैं तो उसके सदस्य ७५ प्रतिशत लाभ लिये बगैर न लौटने वाले बनिये वैसे हैं. यहां जितना कर कहीं अन्यत्र नहीं लगता लेकिन यहां के कर विभागवालों जैसी आमदनी भी दूसरों को नहीं होती; वेतन ऊपर से मिलता है. यहां पैसे से सभी कुछ खरीदा जा सकता है, जड़ वस्तुओं की तरह यहां मनुष्य और मनुष्यता भी बिकती पायी जाती है.

यहां मेटर्निटी हॉस्पीटल या साधारण हॉस्पीटल में खाली बेड नहीं मिलते, मतलब यह कि यहां जितनी बीमारी और यहां जितने जन्म अन्यत्र नहीं होते.

इस शहर में रोज जितनी दारू पी जाती है और रोज की जितनी सिगरेट पी जाती हैं, इसका अंदाजा आप दारू की दूकानें और पान-तमाखू की दूकानें देखकर लगा सकते हैं. यहां जितने सिद्धांतवादी हैं उतने कहीं नहीं मिलेंगे और यहां जितने झूठे भी कहीं और नजर नहीं आयेंगे.

खेलकूद के यहां असंख्य मैदान हैं. क्रिकेट का यह मक्का है. हॉकी की यह काशी है. टेनिस, बेडमिंटन, टेबल टेनिस, कराटे-जूडो, केरम, वॉली बॉल, फुटबॉल, ब्रिज, रमी-फ्लैश-वगैरा सभी खेलों के यहां चैंपियन रहते हैं. यहां खेलों में जितनी राजनीति चलती है उतनी कहीं और नहीं तथा राजनीति में जितना खेल खेला जाता है, उतना दूसरी जगह कहां खेला जाता है.

यहां कंजूसों जितने ही दानवीर हैं, ईमानदारों जितने ही बेईमान हैं. यहां एक महालक्ष्मी के पास लोग पैसा माने के लिए प्रार्थना करते हैं तो दूसरी महालक्ष्मी के मैदान में लखपति होने की आशा में लोग घोड़ों के पीछे गांठ का रहा-सहा भी गंवा बैठते हैं.

बंबई से मराठी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के अखबार भी निकलते हैं जिनकी संख्या बहुत अधिक है. इसका कारण यह है कि इस शहर जितने शिक्षित लोग अन्य शहरों में नहीं जबकि इस शहर जितने अशिक्षित भी कहीं नहीं मिलेंगे.

इस शहर जैसी मोटर टैक्सियां अन्यत्र नहीं तो यहां जितनी बस, रिक्शा या लोकल ट्रेन भी कहीं नहीं, फिर भी यहां जितने पैदल चलनेवाले हैं, उतने कहीं अन्यत्र नहीं.

यहां जितनी व्यवस्था है, उतनी दूसरी जगह नहीं मिलेगी. लेकिन इस शहर जैसी अव्यवस्था भी कहीं और देखने को नहीं मिलेगी. यहां हाउस-फुल थियेटर के बाहर पुलिस की हाजिरी में ब्लैक में मिल सकते हैं तो रेलवे स्टेशन पर रिजर्वेशन न होने पर भी थोड़ी रकम लेकर पुलिस की आंखों के सामने रिजर्व स्लीपर बेचे जाते हैं.

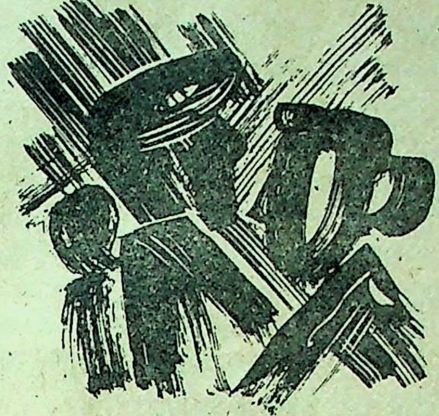

यहां सबसे अधिक कॉलेज, सबसे अधिक स्कूल ओर सबसे अधिक कोचिंग क्लासें हैं और इसके बाद भी पैसा लेकर आपको मनचाहे अंक दिलवाने वाली दूकानें भी यहीं है.

यहां के हरेक रास्ते और हर गली के दो नाम हैं और नये नाम की खबर टैक्सीवालों को तो छोड़ो, पोस्टमैन या बस के कंडक्टरों को भी नहीं होती.

हथकंडा

□ अतुल मोहन प्रसाद

चुनाव सिर पर आने लगा था. अपने क्षेत्र से मिली गोपनीय रपट मंत्रीजी के पैरों की जमीन को खिसका रही थी. 'इस बार चुनाव वैतरणी पार करना मुश्किल है? मंत्रीजी ने गोपनीय रपट को ध्यान से पढ़ा और बुदबुदाते हुए रपट अलमारी में रख दी.

"हर बार तो यही होता है. प्रत्येक बार कोई न कोई नया हथकंडा चुनाव जीतने के लिए अजमाना पड़ता है. इस बार... इस बार..." अचानक एक विचार कौंधा. और दूसरे ही दिन गरीबों की बस्ती आग में धू-धू कर जल गयी. मंत्री महोदय ने जली हुई बस्ती का दौरा किया और बैंकों पर दबाव डालकर अग्निकांड से प्रभावित प्रत्येक परिवार को एक सप्ताह के अंदर ऋण मुहैया कराया एवं सरकार से भी राहत दिलवायी. ऋण कार्य एवं उनके द्वारा राहत दिलाने की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी जिसके कारण चुनाव आते-आते उनके पक्ष में जबर्दस्त हवा बन गयी. □

इस शहर में कुछ ऐसा जादू है कि लोग इसके दुर्गुणों को जानते हुए और यहां की तकलीफों को सहते हुए भी इसे छोड़ नहीं सकते. मनुष्य दारू छोड़ सकता है, सिगरेट छोड़ सकता है, नौकरी छोड़ सकता है, संबंध तोड़ सकता है, पर बंबई नगरी नहीं छोड़ सकता. पहले लोग दादर से बंबई नौकरी करने आते थे, फिर अंधेरी से आने लगे, इसके बाद बोरीवली से, फिर विरार से, फिर पालघर से, आज दहाणु रोड से आते है. इसके बाद लोग सूरत से रोज सबेरे बंबई आकर सांझ को वापस लौटेंगे. इस तरफ पूना से आनेवालों की तरह भविष्य में लोग घोड़े तक से आया-जाया करेंगे.

चालीस वर्ष पहले जितने में कोई दूर उपनगरों में बंगला बनवा सकता था, आज उतनी तनखा पाते हुए भी वह शहर में एक कमरा तक नहीं पा सकता.

इस शहर के रहनेवालों का वेगभरा जीवन जितना खराब है, इसका एक नमूना है कि सवेरे काम पर जानेवाला और बोरिवली से डेढ़ मील दूर रहनेवाला व्यक्ति सवेरे साढ़े चारे बजे के लगभग उठता है तो उसकी ऊंघती हुई पत्नी कहती हैं—"उठ गये, नहा लिये, जा रहे हो." और जब वह व्यक्ति रात को ग्यारह बजे घर पहुंचता है तो ऊंघती हुई पत्नी पूछती है—"आ गये, खा लिया. सो गये." बच्चों को बाप तो देख लेता है पर बाप को बच्चे नहीं देख पाते. रविवार को जो मिलना होता है तो बच्चे मां से पूछते हैं—"यह कौन है?" जवाब मिलता है—"पप्पा." इस पर बच्चे आजु-बाजू वालों से पूछते हैं—"पप्पा...मतलब...क्या हमारा सगा बाप?"

इस बंबई में इतनी अधिक फिल्में लगती हैं और इतनी अधिक फिल्में उतरती हैं कि यहां की आम बोलचाल में लोग कहते-सुनते पाये जाते हैं. कि—"यार, अपनी तो फिल्म उतर गयी."

इस शहर में आने के हजार रास्ते हैं तो जाने को दो हजार.

यह बंबई है. यह बंबई एक चूहा है जो यहां वाले को कुतर-कुतरकर खा जाता है. लेकिन 'मेरा नाम जोकर' का एक गीत: 'जीना यहां, मरना यहां, इसके सिवा जाना कहां...' यह मूल रूप से बंबई के लिए ही लिखा गया लगता है. □

● गुजराती से अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त

छल्ला

□ प्रदीप पंत

जन्म : १९४१
प्रमुख कृतियां : 'किसके लिए', 'महामहिम', 'एक असंभव मृत्यु' [उपन्यास]. 'कुत्ते की मौत', 'आम आदमी का शव', [कहानी संग्रह]. 'प्राइवेट सेक्टर का व्यंग्यकार', [व्यंग्य]
विविध : हिंदी अकादमी, (दिल्ली), उत्तर प्रदेश शासन, जर्नलिस्ट वेलफेयर फाउंडेशन से सम्मानित व पुरस्कृत. यूरोप के कई देशों की यात्राएं और एक दर्जन कठपुतली नाटकों का सृजन.
संप्रति : 'समाज कल्याण' मासिक के संपादक.
संपर्क : डी-२/४१, ईस्ट ऑफ कैलाश, नयी दिल्ली ११००६५

स्कूल से लौटते हुए जब मेरा बेटा रोमिल फ्लैट की सीढ़ियां चढ़ता ऊपर आया तो उसकी पीठ में बस्ता था, मुड़े-तुड़े सफेद पैंट-कमीज़ पर पीली हरी स्ट्रिप्स वाली टाई थकी-हारी हुई सी लटक रही थी और उसके एक हाथ में लिफाफा था—हल्का आसमानी, जिसके चारों ओर लाल-नीले तिरछे स्क्वायर बने हुए थे. मैं अपने बचपन से देखता आ रहा हूं कि आम लिफाफों से भिन्न ऐसे लिफाफे ज्यादातर विदेशों से आते हैं. मेरा कोई मित्र, परिचित या रिश्तेदार विदेश में नहीं है, इसलिए मुझे पता था कि ये लिफाफा मेरा या मेरी पत्नी का नहीं हो सकता.

मुझे आभास था कि ये लिफाफा किसका हो सकता है?

दरअसल रोमिल जिस समय स्कूल से लौटता है, उससे थोड़ी ही देर पहले डाकिया हमारे फ्लैट वालों के लैटर बाक्सों में चिट्ठियां डाल कर जाता है. यह हमारे बगल के फ्लैट वाली 'आंटीजी' को भी पता था. पचपन-छप्पन वर्ष की बूढ़ी आंटीजी दुबली-पतली होने के बावजूद गिलहरी की तरह फुदकती रहती थीं, लेकिन सबसे नीचे की मंजिल में लगे अपने लैटरबॉक्स में चिट्ठी देखने वह नहीं जाती थीं. कहना चाहिए कि नहीं जा पाती थीं. या शायद इसलिए कि उन्हें पता था, अगर उनकी चिट्ठी होगी तो रोमिल लेता आयेगा.

और इसलिए रोमिल के स्कूल से लौटते समय मेरी पत्नी के साथ वह भी रोजाना सीढ़ियों के पास आ खड़ी होतीं—पत्नी रोमिल की प्रतीक्षा में और आंटीजी चिट्ठी के इंतजार में.

उस दिन भी आंटीजी खड़ी थीं जिन्हें देख दूसरी मंजिल पर बने इस फ्लैट की आखिरी सीढ़ी पर कदम रखते ही रोमिल ने कहा, ''आंटीजी, आपकी चिट्ठी!''

तेजी से लपक कर आंटीजी ने आसमानी रंग का वह लिफाफा रोमिल से ले लिया और लिफाफे को छाती से लगाते हुए सदा की तरह इस बार भी उन्होंने दुहराया, ''ओह, मेरे गुड्डू की चिट्ठी.''

गुड्डू—यानी उनका पुत्र.

फिर रोमिल के बालों पर हाथ फेरते हुए बोलीं, ''जुग-जुग जियो, बेटा!'' रोमिल मुस्कराया.

मेरी पत्नी की ओर देखते हुए आंटीजी ने कहा, ''देखो जी, कैसा संजोग है, गुड्डू की चिट्ठी नीचे से ज्यदातर आपका ये रोमिल ही लेकर आता है. भगवान करे, मेरे गुड्डू की तरह होशियार बने. उसी की तरह एक दिन मरिक्खा जाये!''

आंटीजी अमेरिका को हमेशा 'मरिक्खा' कहकर मन ही मन हंसती, पर रोमिल अक्सर सामने ही टोक देता, ''आंटीजी, मरिक्खा नहीं अमेरिका होता है. ज्यादा से ज्यादा आप अमरीका कह सकती हैं.''

''हां-हां, वही मरिक्खा! जहां मेरा गुड्डू रहता है!'' आंटीजी फिर कहतीं और गिलहरी की तरह उछलते हुए बतातीं, ''बड़ा सुंदर देश है. हर बार चिट्ठी में लिखता है, खूब खाने-पीने को मिलता है वहां, जल्दी ही हमें भी बुलाने वाला है.''

''अच्छा!'' मानो आश्चर्य प्रकट करते हुए होंठों पर सहज मुस्कराहट ला रोमिल कहता, ''आप हमें भी ले चलेंगी न, आंटीजी?''

''अरे, ये बी कोई कहने की बात है, बेटे!'' आंटीजी कहतीं और फिर चिट्ठी को छाती पर लगा अपने फ्लैट के अंदर दाखिल हो जातीं—अंकलजी को दिखाने और उन्हीं से पढ़वाने के लिए.

हमारे बगल वाले तीन कमरों के फ्लैट में करीब चार साल पहले किरायेदार के रूप में आये थे अंकलजी और आंटीजी. अंकलजी का नाम रामलाल था और आंटीजी का श्रद्धादेवी, पर दोनों को कोई नाम लेकर न पुकारता. कोई न उन्हें मिस्टर रामलाल कहता और न उन्हें मिसेज श्रद्धादेवी. बच्चों से लेकर बड़ों तक सभी उन्हें 'अंकलजी' और 'आंटीजी' कहते; यहां तक कि उनसे अधिक उम्र वाले बड़े-बूढ़े भी.

अंकलजी सरकारी नौकरी से रिटायर होकर आये थे इस फ्लैट में. उनके एक ही लड़का था जो कई बरस पहले अमेरिका चला गया था. मतलब कि अंकलजी और आंटीजी वर्षों से उसके बिना अकेली जिंदगी बिता रहे थे. तीन कमरों के इस फ्लैट में भी बस वे दो प्राणी ही आये थे. अंकलजी शांत प्रकृति के, ज्यादातर चुप रहने वाले व्यक्ति थे, पर आंटीजी उनके ठीक विपरीत बेहद बातूनी और जैसा कि मैंने कहा, कृशकाया के बावजूद गिलहरी की तरह फुदकनेवाली महिला थीं. हो सकता है, अंकलजी भी कुछ बरस पहले तक मिलनसार और आंटीजी की तरह बातूनी रहे हों. पर यह सब महज अंदाज़ लगाने वाली बात है.

रोमिल चूंकि स्कूल से लौटते समय हमारी चिट्ठियों के साथ ही आंटीजी की चिट्ठियां भी लैटरबॉक्स से निकाल लाता था, इसलिए उनकी हमारे परिवार से कुछ ज्यादा ही निकटता हो गयी थी. यों भी हम एक-दूसरे के अगल बगल में रहते थे, हालांकि आज के व्यस्त जीवन में अगल-बगल के फ्लैट में रहने से निकटता हो जाना जरूरी नहीं. बहरहाल चूंकि हमारे और

उनके बीच निकटता हो गयी थी, इसलिए वह अक्सर हमारे फ्लैट में आ जातीं. हाथ में प्रायः एक एलबम भी लिए होतीं जिसमें उनके गुड्डू के बचपन से लेकर विवाह तक के ढेर सारे चित्र थे. कुछ चित्र उन दिनों के भी थे जब वह शुरू-शुरू में अमेरिका गया था. उनका एलबम देखते-देखते केवल मेरी पत्नी और रोमिल ही बोर नहीं हो चुके थे, बल्कि मैं भी खासा बोर हो चुका था, क्योंकि उन्हें ही-नहीं, मुझे भी वे कई बार ये एलबम दिखा चुकी थीं. एक-एक चित्र पर उंगली रखकर बतातीं कि वह कब लिया गया, तब गुड्डू की कितनी उम्र थी, और वह कैसी-कैसी शैतानियां करता था. गुड्डू के विवाह-प्रसंग की वह अक्सर विस्तार से चर्चा करतीं. कितने दिन पहले से लोग आ गये थे, कितनी दूर-दूर के रिश्तेदार आ गये थे, आदि-आदि. कुल मिलाकर उनके वर्णन से ऐसा लगता मानो एक राजकुमार की तरह भव्य विवाह हुआ था आंटी जी के पुत्र गुड्डू का.

एक दिन जब वह गुड्डू के विवाह के फोटो दिखा रही थीं, तो रोमिल भी वहीं पर खड़ा था. उन्होंने दिल्ली के एक पांच-सितारा होटल का जिक्र करते हुए कहा, ''वहां की थी हमने अपने गुड्डू की शादी. वहीं महीने भर को गुड्डू के लिए एक कमरा भी बुक करा दिया था.''

इसके बाद वह शादी के समय खींचे गये फोटोग्राफों के बारे में सविस्तार बताने लगीं. तभी रोमिल ने एक चित्र की ओर इशारा करते हुए बाल-सुलभ जिज्ञासा से कहा, ''आंटीजी, आप तो कहती हैं कि आपने बहुत बड़े होटल में गुड्डू की शादी की, लेकिन इसमें तो टैंट तना हुआ दिखाई पड़ रहा है.''

''हां-हां, बेटे, तूने बिलकुल ठीक कहा.'' आंटीजी जरा भी विचलित हुए बिना बोलीं, ''वो क्या है कि हमने वहां मैदान में टैंट भी लगवा लिया था. लगवा क्या लिया था, समझ ले कि लगवाना पड़ा. बहुत लोगों को बुलाया था न. हमें पता था, होटल के हॉल में उतने लोग समायेंगे नहीं, इसलिए पहले से ही टैंट का इंतजाम कर लिया था.''

हमें शक तो पहले से ही था कि आंटीजी गप्पी हैं, लेकिन प्रमाण पहली बार मिला. पांच सितारा होटल में टैंट लगने की बात सुनकर ही मुझे हंसी छूट गयी. बहरहाल इसके बाद आंटीजी ने कई बार अपने गप्पी होने का प्रमाण दिया. एक बार पड़ोस के किसी बच्चे की जन्मदिन पार्टी थी. पार्टी में उछल-उछलकर खाने की तरह-तरह की चीजें अपनी प्लेट में रखते हुए आंटीजी मेरी पत्नी के पास आकर धीरे से बोलीं, ''ये पार्टी तो ठीक-ठीक ही है, पर हमारे गुड्डू की जन्मदिन पार्टी तुम देखतीं तो बस. बिजलियां तो ऐसी लगवाते थे कि पूछोई मत. एक बार तो बिजलीवाला बोला—अब हमारे पास बिजली की झालरें खतम. इन्होंने कहा—कोई बात नहीं, दूसरे बिजली वाले से ले आओ. और फिर वो भागा-भागा गया और दूसरे बिजली वाले से झालरें लाया. लोग आये तो कहने लगे—आपने तो ऐसी सजावट करवा दी है जैसे जन्मदिन की नहीं, शादी की पार्टी हो रही हो.''

एक दिन आंटीजी ने नयी चमकती हुई साड़ी पहन रखी थी. पड़ोस की किसी औरत ने पूछा, ''बड़ी सुंदर साड़ी है! कहां से खरीदी, आंटी जी?''

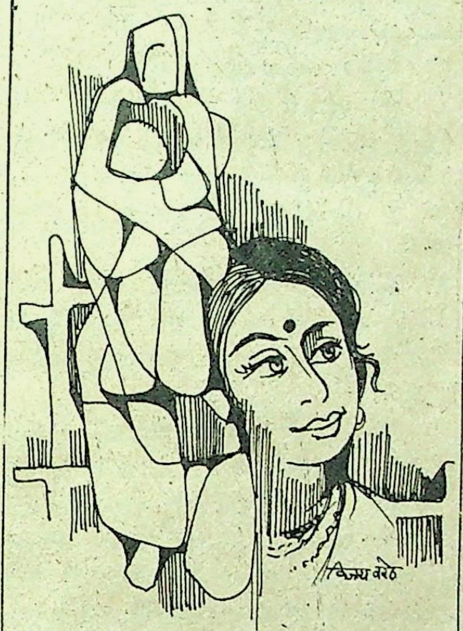

आंटीजी तुरंत बोलीं, ''इंपोर्टेड है. मरिक्खा से हमारे गुड्डू ने भेजी है.''

एक दिन हमारे घर आये हुए एक मेहमान-कुछ दिन रहकर वापस जा रहे थे तो पास ही खड़ी हमारी महरी को उन्होंने पांच रुपये दिये. अपने फ्लैट के दरवाजे पर खड़ी आंटीजी यह सब चुपचाप देख रही थीं. जब मेहमान-दंपति सीढ़ियां उतरते हुए नीचे चले गये तो आंटीजी मेरी पत्नी के पास आकर इधर-उधर की बातें करने के बाद मुख्य विषय पर आते हुए बोलीं, ''मेरा गुड्डू जब मरिक्खा से आकर वापस जाने लगता है न, तो महरी-धोबी जो सामने पड़ता है, उसी को सौ-सौ के नोट लुटा देता है.''

''अच्छा!'' मेरी पत्नी ने आश्चर्य से कहा.

आंटी जी उत्साहित होकर बोलीं, ''टैक्सी से उतरता है तो मीटर पर आते हैं चालीस रुपये, लेकिन गुड्डू है कि सौ का नोट पकड़ाकर आगे बढ़ लेता है. कितनी बार कहती हूं, 'बेटा, ये हिंदुस्तान है, यहां ऐसा मत किया कर. मरिक्खा की बात और है, यहां लोगों की आदत बिगड़ जाती है,' लेकिन गुड्डू है कि मानता ही नहीं.''

''ऐसा!'' पत्नी ने फिर आश्चर्य प्रकट किया.

आंटीजी होंठों पर मुस्कान लाते हुए बोलीं, ''हां, और क्या! कहता है—वहां मरिक्खा में इतना कमाता हूं; यहां दो-चार सौ लुटा भी दिये तो क्या फर्क पड़ता है!''

''क्यों नहीं! क्यों नहीं!'' मेरी पत्नी ने होंठों पर आती मुस्कान को किसी तरह रोकते हुए कहा, ''आखिर आपका बेटा जो है न! आप भी तो आखिर दिल खोलकर खर्च करती हैं!''

आंटीजी गदगद हो उठीं, हालांकि अपनी कंजूसी के लिए वह ऊपर से नीचे तक एक-एक फ्लैट में चर्चा की पात्र रहा करती थीं.

कुछ क्षण बाद उन्होंने कहा, ''अब देखना तुम, थोड़े दिनों में मरिक्खा से मेरा गुड्डू आने वाला है. इतनी चीजें लायेगा कि संभालकर रखना मुश्किल हो जायेगा. रखे कौन जी, मैं तो महरियों-जमादारिनों में बांट दूंगी सब कुछ. आज तक बांटती रही हूं तो अब बुढ़ापे में क्या कंजूसी करना.''

लेकिन जब तक आंटीजी हमारे बगलवाले फ्लैट में रहीं, तब तक गुड्डू नहीं आया. हां, हर डेढ़-दो हफ्ते में आंटीजी के नाम उसका हल्का आसमानी लिफाफा जरूर आ जाता. और आंटीजी उस लिफाफे में रखे खत को पढ़-सुन कर भावविभोर हो उठतीं. चिट्ठी को दो-तीन दिन तक आठ-दस बार पढ़ने-पढ़ाने के बाद वे अंकलजी से अपनी एक संदूकची में रखवा देतीं, जो खास तौर पर गुड्डू की चिट्ठियों के लिए ही थी.

और फिर एक दिन सवेरे-सवेरे अंकलजी ने बताया, ''अगले हफ्ते हम यह फ्लैट छोड़ रहे हैं.''

''क्यों?'' मैंने पूछा, ''अमेरिका जा रहे हैं क्या?''

''नहीं.'' वह बोले, ''हमने रिटायर्ड लोगों की कैटेगरी वाले फ्लैट की बुकिंग करायी थी. पश्चिमी दिल्ली में आ गया है वह फ्लैट. किराया देते देते थक गये थे. आखिर कोई रिटायर्ड आदमी कितना किराया दे सकता है! अब वहां—फ्लैट की किस्त देंगे तो कम से कम यह तो सुकून होगा कि अपने फ्लैट में रह रहे हैं.''

''हां, सो तो है ही!'' मैंने कहा.

तभी आंटीजी भी आ गयीं. वह बोलीं, ''अगले

महीने मरिक्खा से गुड्डू आने वाला है न! अब देखो जी, थोड़े दिन के लिए तो वो आयेगा. मरिक्खा में बड़ी कोठी में रहने की आदत है उसे, यहां तीन कमरों के इस छोटे से फ्लैट में कैसे रह सकता है वो!''

''हां, ये बात तो है ही!'' मैंने कहा.

''वो हमारा जो फ्लैट आया है, इतना बड़ा है. इतना बड़ा है, इतना बड़ा है कि आप देखने आओगे तो दंग रह जाओगे.'' आंटीजी ने बताया.

'आप बुलायेंगे, तभी तो!'' मैंने हंसते हुए कहा.

''क्यों नहीं, क्यों नहीं!'' मुस्कराते हुए आंटीजी बोलीं.

और अगले हफ्ते उन्होंने हमारे बगल का फ्लैट छोड़ दिया. अंकलजी के साथ आंटीजी गिलहरी की तरह फुदकती हुई अपने फ्लैट में चली गयीं. उनके साथ उनकी गप्पें भी चली गयीं. जाते समय अपने फ्लैट का पता देते हुए वह बोलीं, ''किसी दिन आना जरूर!''

''हां, जरूर आयेंगे!'' मैंने और मेरी पत्नी ने एक स्वर में कहा.

''गुड्डू जिस दिन आयेगा, बहुत बड़ी पार्टी करेंगे हम लोग. उसमें भी आना होगा तुम्हें.'' वह बोली.

''हां, तब तो जरूर आयेंगे हम लोग.'' मैंने कहा.

''आप बुलाना भूल जायेंगी, तब भी आयेंगे.'' पत्नी बोली. और इस प्रकार हमने उन्हें विदाई दी.

हर छुट्टी को पत्नी कहती, ''चलो, आंटी जी से मिल आयें. बहुत दिन हो गये उनकी गप्पें सुने.''

लेकिन मुझे छुट्टी के दिन भी फुरसत न मिलती. निरर्थक व्यस्तता में डूबा रहता. पत्नी से कहा, ''इस हफ्ते नहीं, कई काम निबटाने हैं, अगले हफ्ते जरूर चलूंगा.''

पत्नी खीझते हुए कहती, ''लगता है, तुम्हारा वो अगला हफ्ता कभी नहीं आयेगा.''

''ऐसी बात नहीं. अगले इतवार कोई काम नहीं करूंगा, सिवा तुम्हारे साथ आंटीजी के घर जाने के.'' मैं किसी तरह एक हफ्ते की मुहलत पाने के इरादे से कहता.

और सचमुच पत्नी का कहना ठीक था—निरर्थक व्यस्तताओं के कारण पूरी बरसात और सारी सर्दियों में आंटीजी के घर जाना टलता रहा.

इसके बाद गर्मियों में हम लोग पहाड़ घूमने चले गये—सब कुछ भूलकर कश्मीर की खूबसूरत वादियों में.

और जब हम पहाड़ से लौट कर आये तो फ्लैट के दरवाजे खोलते ही जो पहली चिट्ठी फर्श पर पड़ी मिली, वह कोना कटा हुआ एक पोस्टकार्ड था. एक वाक्य के पत्र में सूचित किया गया था कि लगातार एक सप्ताह के ज्वर के बाद श्रद्धादेवी की मृत्यु हो गयी. श्रद्धादेवी—यानी,आंटीजी. नीचे अंकलजी के हस्ताक्षर थे.

पत्र पढ़कर मैं पत्नी की ओर देखने लगा और पत्नी मेरी ओर. रोमिल ने हम दोनों की ओर देखते हुए पूछा, ''क्या हो गया?''

मैंने पोस्टकार्ड उसे नहीं दिया. बस इतना कहा, ''कोई खास बात नहीं.''

मुझे बच्चों को किसी की मृत्यु की खबर सुनाना कभी अच्छा नहीं लगता. मुझे लगता है, उनके कोमल बाल-मन पर ऐसी खबरों का भयपूर्ण प्रभाव पड़ता है.

चिट्ठी दो सप्ताह पहले लिखी गयी थी.

कुछ सामान्य होने पर पत्नी ने मेरी ओर देखते हुए कहा, ''तुमसे कितनी बार कहा था, चलो आंटीजी के घर हो आयें, लेकिन तुम...''

मैं अपराधी की भांति चुपचाप उसे सुनता रहा.

दूसरे दिन हम संवेदना प्रकट करने अंकलजी के पास गये और बताया कि पहाड़ गये हुए थे, इसलिए पहले नहीं आ सके, कल ही लौटे हैं.

अंकलजी की आंखें नम हो आयीं. मैं सोच रहा था, आंटीजी की मृत्यु के बाद से इन दिनों में वे जाने कितनी बार रोये होंगे. अब वे बिलकुल अकेले पड़ गये थे. मैं उनसे लगातार बातचीत करता रहा. उन्होंने बातचीत के दौरान एक बार भी गुड्डू की चर्चा नहीं की. बड़ा अजीब-सा लगा. फिर यह सोच कर मन को दिलासा दे दिया कि क्या पता गुड्डू अमेरिका में अपने परिवार के साथ गर्मियों में कहीं घूमने निकला हो, इसलिए उस तक आंटीजी की मृत्यु की खबर ही न पहुंच पायी हो.

मालकिन,तीनों बच्चे आप के साथ बाहर जाना चाहते हैं किसे तैयार करूं?
जो मेरी पहनी हुई साड़ी के साथ मैच करे
ओम

इधर-उधर की तमाम बातचीत के बाद आखिर मैंने उन्हें सुझाव दिया, ''अब तक तो आंटी थीं, आप दोनों का साथ-साथ वक्त गुजर जाता था, पर वह नहीं रहीं तो अब आपके लिए यहां रह ही क्या गया है! आप गुड्डू के पास क्यों नहीं चले जाते!''

उनकी नम आंखों से एकाएक आंसू छलक पड़े, ''कैसा गुड्डू किसका गुड्डू! जायें उसके पास जिसका हमसे कोई वास्ता हो.''

''क्या मतलब?'' मैंने आश्चर्य से कहा.

मुझे उनकी बात का अर्थ समझ में नहीं आ रहा था.

''अमेरिका जाने के कुछ साल बाद ही गुड्डू ने हमें भुला दिया था. जाने कितनी बार मैंने चिट्ठियां लिखीं, लेकिन कोई जवाब नहीं आया—न उसका, न उसकी पत्नी या बच्चों का.'' अंकलजी बड़े संतुलित स्वर में बोले.

''तो फिर वे चिट्ठियां जो आंटीजी के नाम हर डेढ़-दो हफ्ते में आती थीं?'' मैंनें आश्चर्य से पूछा.

इस बार मानो लंबी बीमारी से उठते हुए थकी-बुझी आवाज में बोले अंकलजी, ''उसे कोई दुख न हो, और वह उस हादसे की वजह से प्राण न गंवा बैठे, यह सोचकर मैं हर डेढ़-दो हफ्ते में डाल दिया करता था चिट्ठियां.''

''क्या मतलब?'' पत्नी ने पूछा.

अंकलजी उठे, एक मेज की ड्रावर से ढेर सारे आसमानी लंबे लिफाफे निकाल लाये और बोले, ''मैं ही अपनी लिखावट थोड़ा बदलकर गुड्डू के नाम से ये चिट्ठियां लिखता था, उसकी पुरानी चिट्ठियों पर लगे टिकटों को निकालकर इन लिफाफों पर लगा देता था और फिर चुपचाप लिफाफों को चिट्ठियों वाले बक्से में डाल आता था...''

मैं हतप्रभ उनकी ओर देख रहा था. पत्नी चकित भाव से उनके चेहरे पर खिंच आयी झुर्रियों को निहार रही थी, और वे छोटे-छोटे कमरों के उस सूने फ्लैट में कहीं दूर खोए हुए अंकलजी कह रहे थे, ''जिसे पालपोसकर बड़ा किया उसने हमसे ही छल किया, जिसे ब्याह कर लाया और जिसके सामने मैंने कभी झूठ नहीं बोला, उससे जीवन के अंतिम वर्षों में मैं ही छल करता रहा, लेकिन...लेकिन अब तो छल करने के लिए भी कोई नहीं रहा—सिवा खुद के.''

और मैं मन ही मन सोच रहा था—कोई खुद से भला कब तक छल कर सकता है! □

आगे पहुंचकर

□ गोविंद मिश्र

> लेखन ने मुझे तो कुछ करके रख ही दिया—मैं अब किसी से दुश्मनी महसूस नहीं कर सकता, लगता है जीवन बहुत छोटा है ...

कहानी, कहानियां.....पिछले पच्चीस वर्षों से लिखता चला आ रहा हूं, दूसरी चीजों—उपन्यास, निबंध, यात्रा, डायरी आदि के साथ-साथ. अब थोड़ा ज्यादा मेहनत करना पड़ती है. दूसरी विधाओं में भी ऐसा हुआ है कि उत्तरोत्तर मेहनत की मांग ज्यादा होती चली गयी, लेकिन यात्रा और निबंध अब भी आसानी से लिख जाते हैं, उपन्यास मुश्किल होता है....और कहानी बेहद मुश्किल. 'अनायास लेखन' तो खैर कहने की चीज है, बिना प्रयास लेखन जो पहले होता था, वह अब नहीं होता. सायासता है, निश्चित है.

लेकिन ऐसा लगता है कि यह सायासता कहानी को गढ़ने, अलंकृत करने के क्षेत्र में नहीं है. ऐसा होता तो कहानियों में बनावटीपन झलकता, उनका शृंगार पक्ष अधिक उजागर होता चला गया होता. मेरे कुछ समकालीनों के साथ यह हुआ कि उनके एक-एक जुमले, उनमें प्रयुक्त शब्द ऐसे बोझिल होने लगे कि हर जुमले पर अर्थ समझने के लिए ही रुकना पड़ता है, भाग्य से मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ. मेरी कहानियों का ग्राफ कुछ अजीब-सा बनता है. एक ही समय में छोटी कहानियां हैं, लंबी कहानियां है; उलझी कहानियों के साथ कहीं-कहीं इतनी सरल कहानियां हैं कि उन्हें चाहें तो कोई सपाट कह डाले और श्रेष्ठता देखें तो ग्राफ ऊपर चढ़ता चला गया हो—ऐसा नहीं है. अच्छी कहानियों के बीच ही कहीं कोई कहानी, करीब-करीब अनगढ़-सी. कौन-सा सूत्र छूट गया, चेतना के उस धरातल तक क्यों नहीं उठा जा सका....सोचते रहिये ! मेरी धुन रही—लिखते चलो....चलते चलो, क्योंकि कितना दुःख-दर्द अभी पड़ा है जिसके रूबरू होना है, अपने में लेना है. तो एक तरफ तो चलते रहने की यह जिद जिससे एक हद तक कहानी-लेखन में निरायासता रही आयी, दूसरी तरफ सायासता बढ़ती चली गयी—सायासता, जो कहानी के काया-अलंकरण के बजाय दूसरी उलझनों को लेकर ज्यादा थी.

पिछले पच्चीस वर्षों में कहानियां जो लिखीं, उनकी संख्या सौ के करीब तो पहुंच रही होगी. सालाना तीन-चार का औसत रहा, जो आज भी है. सभी वर्गों की कहानियां है लेकिन मध्यवर्ग ज्यादा है. मैं उस वर्ग का हूं, मिलना-जुलना इसी वर्ग से होता है और पाठक भी इसी वर्ग का है....शायद इसीलिए. धनाढ्य वर्ग की भी दो-चार कहानियां हैं, इसी तरह निम्नवर्ग की हैं. एक छोर पर है 'प्रतिमोह'—झोपड़पट्टी में भी जलती आदमीयत की मशाल, दूसरे पर 'इंद्रलोक'—वैभव की बदहवासी की कहानी. इत्तफाक नहीं कि ये दोनों कहानियां बंबई में लिखी गयीं क्योंकि हमारी आर्थिक विषमता जैसी बंबई में दिखाई देती हैं, वैसी कहीं और नहीं. मैं चाहता हूं कि आर्थिक रूप से निम्नवर्ग की कहानियां और लिखी जायें—यह फैशनपरस्ती नहीं है, इसलिए कि निम्नवर्ग पर लिखना लेखकीय चुनौती है. मध्यवर्ग तो अपने महसूसने और सोचने में इतना पारदर्शी होता है कि एक तरह से प्लेट में रखकर कहानी लेखक को पकड़ा देता है. निम्नवर्ग में पहमते हुए मामला उतना आसान नहीं होता—अनुभूति के किस विशिष्ट कोण की कचोट वहां दरअसल हो रही है और कहां लेखक अपनी तरफ से किसी विलक्षण कोण को आरोपित किये दे रहा है—यह सीमा-रेखा बेहद महीन है. इसलिए अप्रामाणिकता में सरक जाने की शत-प्रतिशत गुंजाइश है. पर यही चैलेंज है.... 'प्रतिमोह' कहानी लिखने के दौरान उस पात्र से मैं और ज्यादा सटता चला गया, यहां तक कि उसे अपने घर ले आया, रखा. 'सुनंदो की खोली' लिखने के दौरान उन लोगों से बढ़ी आत्मीयता ज्यादा ही बढ़ने लगी, तब कोशिश करके मैं लौट आया....क्योंकि यह आशंका हुई कि उस लड़की में मैं आकांक्षाएं जगा रहा था, उस परिवार में मैं दूसरी तरह की उलझनें पैदा कर बैठता.

इसी तरह अनुभव के शेड्स जो कहानियों में आये हैं, वे खासे विविध हैं. कोई जीवन-पक्ष जो मेरे लिए अब तक अनदेखा, अछूता रहा हो....वह मुझे आकर्षित करता है. कह सकता हूं कि कहानी लिखने की प्रेरक शक्ति यहीं से उपजती है. 'रगड़ खाती आत्महत्याएं', जिसमें मेरी एकदम शुरू की कहानियां हैं, भावुकता से लिजलिजाती —उन्हें छोड़ दें तो शेड्स की दृष्टि से ऊपर को जाता ग्राफ बनता है. घिनौनापन-पात्रों का, जीवन का, जो कहानियों में सीधे-सीधे उतरा, क्रमशः छनने लगा और उन्हीं के बीच जीवन का सुंदर, सकारात्मक पक्ष आने लगा. यहां पहुंचकर मुझे लगा कि यथार्थ को लेकर तो मैं बराबर चला हूं, उसे कभी छोड़ता नहीं.....उस पर कैसी रोशनी-सी फैल गयी है. कहानी-संग्रहों को लेकर चलूं तो 'नये-पुराने मां-बाप', 'अंतःपुर' और 'धांसू' तक अनुभवों के घिनौने शेड्स हैं.('चुगलखोर', 'अजीबीकरण', 'गिरफ्त', 'दोस्त' जैसी कहानियां), 'खुद के खिलाफ' संग्रह से आर्द्रता, करुणा उभरने लगती है ('गिद्ध' जैसी कहानियां) जो 'खाक इतिहास', 'मायकल लोबो', 'पगला बाबा' में पहुंचकर अपने पूरे रंगों में खिली है. 'पगला बाबा', मायकल लोबो', 'अर्थ ओझल'...जैसी कहानियों में वह रोशनी, उदात्तता है जो कहानी को आंच-सी देती है. यह आदर्शवादिता लग सकती है (हो भी तो उससे परहेज क्यों) लेकिन इससे पाठकों को कितना संबल मिलता है....इसके सबूत मेरे पास पत्रों के रूप में मौजूद है.

लेकिन इधर इससे भी अलग छिटक रहा हूं—ऐसा लगता है. हाल की कहानियां—'यों ही खत्म' में तो है यह, पर उसके बाद की 'इंद्रलोक' और उसके पहले की 'निष्कासित' में नहीं है. जैसे मैं दोहराव से फिर बचने की कोशिश कर रहा हूं.....या किसी और तलाश में हूं. 'निष्कासित' और 'इंद्रलोक' जैसी कहानियों में करुणा है, पकी हुई करुणा...तो क्या यथार्थ और आदर्श से अधिक करुणा ही साहित्य का मुख्य अवयव है, जिस ओर मैं अनायास अग्रसर हूं? यह भी हो सकता है कि जैसे उस समय, जब मैं घिनौनेपन को उतारने में लगा हुआ था, तब भी अपवाद स्वरूप कुछ बेहद मानवीय, कोमल-कोमल कहानियां आयी थीं; जैसे 'कचकौंध', 'खंडित'...., वैसे ही ये, जिन्हें मैं पकी हुई करुणा की कहानियां कहता हूं. हो सकता है ये कहानियां अपवाद-स्वरूप हों और दरअसल मैं उदात्तता वाली पटरी पर ही चला जा रहा हूं. यह भी हो सकता है कि मैं किसी नये दौर में प्रवेश कर रहा हूं और इसे सही-सही विश्लेषित करने का समय अभी नहीं आया है..

वित्त मंत्रालय, राजस्व विभाग

केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड

'प्रत्यक्ष कर साहित्य पुरस्कार योजना'

प्रत्यक्ष कर संबंधी विषयों पर हिंदी में मूल लेखन के लिए पुरस्कार वर्ष 1990-91 के लिए पुरस्कार

राजस्व विभाग, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड ने प्रत्यक्ष कर की चारों शाखाओं अर्थात् आय कर, धन कर, दान कर और कंपनी लाभ अति कर से संबंधित विषयों पर हिंदी में प्रामाणिक साहित्य के लेखन और प्रकाशन को बढ़ावा देने के लिए 'प्रत्यक्ष कर साहित्य पुरस्कार योजना' नामक एक पुरस्कार योजना आरंभ की है।

पात्रता:

इस योजना के अंतर्गत पुरस्कार के लिए कोई भी भारतीय नागरिक, चाहे वह सरकारी सेवा में हो या गैर-सरकारी सेवा में हो या किसी भी अन्य व्यवसाय में लगा हो, अपनी मूल पुस्तक भेज सकता है।

पुरस्कार

इस योजना के अंतर्गत निम्नलिखित पुरस्कार प्रदान किये जायेंगे:

प्रथम पुरस्कार–2	**10,000/- रु. प्रत्येक**
द्वितीय पुरस्कार–2	**7,500/- रु. प्रत्येक**
तृतीय पुरस्कार–2	**5,000/- रु. प्रत्येक**

मूल पुस्तक की परिभाषा:

इस योजना के अंतर्गत मूल पुस्तक से अभिप्राय उस पुस्तक से है जो (क) प्रतियोगी अथवा लेखक द्वारा स्वयं मूलत: हिंदी में लिखी गयी हो (ख) स्वयं प्रतियोगी अथवा लेखक द्वारा किसी अन्य भाषा में लिखी गयी पुस्तक का स्वयं उसके द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद हो।

अवधि:

इस योजना के अंतर्गत नकद पुरस्कार गत वित्तीय वर्ष अर्थात् 1 अप्रैल, 1989 से 31 मार्च, 1990 तक लिखी गयी पांडुलिपियों तथा प्रकाशित पुस्तकों के लिए वर्ष 1990-91 में दिये जायेंगे।

विशिष्ट आकर्षण:

पुरस्कार के लिए जो पुस्तकें चुनी जायेंगी, प्रकाशित होने पर उनकी दो हजार प्रतियां विभाग स्वयं खरीदेगा।

प्रविष्टियाँ:

पुरस्कार के लिए विचारार्थ पुस्तकें मुद्रित या टंकित किसी भी रूप में स्वीकृत की जायेंगी।

अंतिम तारीख:

इस योजना के अंतर्गत आवेदन पत्र के साथ प्रविष्टियाँ प्राप्त होने की अंतिम तारीख 31 जुलाई, 1990 है।

इस प्रयोजन के लिए निर्धारित आवेदन पत्र तथा योजना के संबंध में विस्तृत जानकारी डाक द्वारा या स्वयं आकर श्री राम शंकर सिंह, सहायक निदेशक (राजभाषा) (प्रशासन), राजभाषा प्रभाग, केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, आयकर निदेशालय (गवेषणा, सांख्यिकी, प्रकाशन व जन संपर्क), छठी मंजिल, मयूर भवन, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-110001 (टेलीफोन नं. 3313823) से प्राप्त की जा सकती है।

davp 90/70

लेकिन इस पर तो विचार कर ही सकता हूं कि कहानी-लेखन में अनुभूति के कौन से शेड्स जो छूट गये और जिनसे भविष्य में सटने की ललक मेरी है. एक ऐसा शेड है आर्थिक विपन्नता का. बिलबिलाती भूख, उसके आसपास की अनुभूतियां मुझसे छूटी हुई हैं. बिल्कुल मानता हूं कि जहां यह दुःख है, वहां पर सबसे बड़ा यही दुःख है. यह ठीक है कि सभी अनुभव किसी लेखक के रास्ते नहीं आते, जैसे कि प्रेमचंद प्रेम के अनुभव से वंचित रहे और एक भी जिसे विशुद्ध प्रेम-कहानी कहते हैं, वह नहीं लिख पाये. आर्थिक विपन्नता में मैं अपने बचपन में जरूर रहा, लेकिन भुखमरी से कभी गुजरना नहीं हुआ. तो वह मेरी कहानियों में छूट गया है. 'स्वर लहरी'—एक कहानी भूख पर है, लेकिन उसे प्रतीक बनाकर कुछ और कहने की कोशिश में, विशुद्ध भूख की पीड़ा कहानी में नहीं उतर सकी. इसी तरह गरीबी के आसपास तो मंडराया हूं, लेकिन सीधा उसकी पीड़ा में जाना नहीं हुआ. मैं सोचता हूं....वह जो लेखक के अनुभव क्षेत्र में सीधे-सीधे न रहा हो, उसे भी आना चाहिए रचना-क्षेत्र में. मेरे साथ ऐसा हो सके तो मुझे संतोष होगा कि जीवन को एक छोर से दूसरे छोर तक थोड़ा-थोड़ा देख तो सका; सभी पक्षों को उठाने की सामर्थ्य अगर मिलती होगी तो विरलों को ही.

इसके बावजूद कहानी-लेखन की अपनी यात्रा का एक संतोष तो मुझे मिला है. जीवन के विविध रंग मिल जायेंगे यहां. बच्चों, नौजवानों, बूढ़ों की कहानियां. तरह-तरह के संबंधों की कहानियां, कैसे-कैसे दुःख-दर्द की कहानियां. कहा जाता है कि मेरे यहां नारी की कहानियां ज्यादा हैं, तो नारी तो पृथ्वी है. सब उम्र की नारियां मिलेंगी. इसी तरह घृणा, आक्रोश, ईर्ष्या-द्वेष से लगाकर प्रेम (उफनता हुआ प्रेम), निष्काम प्रेम, उदात्तता से होते हुए आत्मिकता तक. गांव, कस्बे, महानगर और विदेश ('पैंतालीस अंश का कोण', 'खाक इतिहास', 'शापग्रस्त' जैसी), यहां तक कि परलोक से संबंधित कहानियां हैं. यह भी संतोष मेरा है कि कहानियां पठनीय हैं....उनमें रस है जो पढ़ा ले जाता है उन्हें. इनके पाठक बौद्धिकों से लगाकर अपढ़ से थोड़ा ऊपर वाले लोग हैं, एक ही कहानी को वे उसी चाव से पढ़ लेते हैं. जो भयंकर असंतोष है वह यह कि कहानियों का स्तर-श्रेष्ठता, साहित्यिक श्रेष्ठता, जिसमें पाठकों को हिलाकर रख देने की शक्ति भी शामिल है—यह बराबर नहीं बनाये रख सका. दरअसल जिन कहानियों में उत्कृष्ट स्तर आया है, वह मेरे बावजूद आया पता नहीं कहां से—जैसे 'मायकल लोबो' 'खाक इतिहास' या 'पगला बाबा'. क्यों ऐसा नहीं हुआ कि कम-से-कम इनके बाद की लिखी कहानियां—उसी स्तर की हुई होतीं? शायद कहानियों का स्तर काफी कुछ उनका विषय तय करता है....और वैसे विषय हर बार हाथ नहीं आते. यह भी हो सकता है कि स्तर को लेकर मेरा यह भ्रम हो, दरअसल यह मुग्धता है—किसी विशेष अनुभूति या विशेष श्रेणी की अनुभूति के व्यक्त होने पर महसूस की गयी मुग्धता जो फिर हमें छोड़ती ही नहीं. 'मायकल लोबो', पगला बाबा' जैसी अनुभूति ....उनकी आत्मिकता के लिए मुग्धता. लेकिन इन कहानियों में भी आत्मिकता से अधिक उसके नीचे दबी मानवीयता मेरे आकर्षण का केंद्र रही है. 'पगला बाबा' में मानवीयता धर्म से भी ऊपर उठ जाती है. 'पगला बाबा' को बाबा विश्वनाथ के दर्शन कर सकने के लिए समय न मिल पाने की पीड़ा सालती तो रहती है, पर कर्म उनके लिए मुख्य है. पता नहीं कब कौन कहां उनकी प्रतीक्षा में पड़ा है, देहांत के बाद. 'मायकल लोबो' के लिए वह स्त्री जिसकी पीठ पर घाव थे, ईशूमसीह का प्रतीक बन जाती है.

मुझे यह मानने में बिल्कुल हिचक नहीं कि मैं अब तक यह नहीं जान सका कि कहानी क्यों होती है, और अच्छी कहानी किसे कहेंगे. कभी-कभी कल्पना किया करता हूं कि कहानी को एक चीख की भांति होना चाहिए, अंधेरे में उठती कोई चीख और यह चीख रोशनी की लकीर-सी उठती चली जाये. अनुभूति इतनी अंतरंगता से महसूस की जाये कि चीख जैसी लगे और वह चीख हमें मानसिक रूप से अधःतल की ओर न ले जाये बल्कि उठाये....उदात्तीकरण को.कभी यह भी महसूस किया है कि किसी कहानी को लिखना झाड़-झंखाड़ के बीच किसी पगडंडी की खोज में भटकना जैसा होना चाहिए. कुछ भी पूर्व निर्धारित नहीं, यों ही मानवीय गुत्थियों, उलझनों में प्रवेश किया जाये....उसके बाद जैसा भी भटकना हो, जो भी हाथ आये, जीवन की उर्मियों के बीच जो भी झलक जाये, उसे पकड़कर रेखांकित किया जाये. कहानी में सबसे मुख्य चीज भावना को मानता हूं, भावुकता से दूर रहते हुए भी कहानी भावनात्मक रूप से सघन हो. मुश्किल यही है कि इस मुख्य तत्व को अक्सर लेखक के अनजाने ही, उसका ही कोई मोह—कथा-रस, भाषा का रचाव, आंचलिकता, नित-नयी शैली, आधुनिकता....किसी के लिए भी मोह सोख डालता है. तब कहानी सिर्फ मस्तिक से रची हुई लगती है, उसमें हिलाने की शक्ति नहीं रहती. अक्सर तो वह सहज पठनीय भी नहीं रह जाती. एक भावना का तार ही है जो जब लेखक के हृदय में बजता है तो पाठक के मन में भी स्पंदन पैदा करता है. कहानी का ताना-बाना क्या और कैसे होना है, उसे कहां कसना और कहां ढीला छोड़ना है—यह सब सिर्फ वही मुख्य लक्ष्य सामने रखकर तय करता हूं, कैसे जीवन का वह टुकड़े में जिसे मैंने उठाया है, वह भावना से स्पंदित हो सके. अपने अनुभूति खंडों पर लिखते समय तो ऐसा सहज हो सकता है, दूर-दराज के जीवन को उठाते हुए यह मुश्किल होता है. केवल भोगे हुए यथार्थ पर लिखना—यह तो मात्र एक नारा है जो लेखक क्या, लेखन-कर्म को ही संकुचित करके रख देता है. जीवन तो बहुत छोटा है. हमारी अनुभव-परिधि में तो इत्ता-सा यथार्थ ही आयेगा.....तो क्या उत्ते-भर को ही लिखेंगे आप? दूर-दराज का यथार्थ भी मन में उतारकर भोगा हुआ यथार्थ क्यों नहीं बनाया जा सकता? अक्सर हम नये-नये यथार्थ को जीने के भ्रम में मात्र उसके ब्यौरे इकट्ठे करते हैं और उन्हें कहानी में डालकर तृप्ति अनुभव करते हैं.

तीन-चौथाई यात्रा पूरी करने जैसा नहीं लगता अभी, पर आधा तो आ ही गया हूं. कैसा लगता है यहां पहुंचकर? लेखन ने मुझे तो कुछ का कुछ करके रख ही दिया—मैं अब किसी से दुश्मनी नहीं महसूस कर सकता, लगता है जीवन बहुत छोटा है कि नफरत जैसी चीज पालकर उसे जाया किया जाये. इन कहानियों के रास्ते कितने तरह के संबंध बने.....उन पात्रों से जिन पर लिखा और वे पाठक जिनसे अभी मिलना भी नहीं हुआ पर संबंध बन गये (एक तो हाल ही में मेरी बेटी बन गयी है—रांची की कलावंती). लिखने ने जो यह खूबसूरती बिखेरी है मेरे जीवन में, उसके लिए प्रकृति का कृतज्ञ हूं.

तभी कमियां बेतहाशा दीखती हैं....अपने में और लेखन में भी. लेखन-कर्म जितना बड़ा है, उस अनुपात से मेरा कद नहीं. घबराहट होती है—अब तक जो नहीं आया, वह आगे क्या आयेगा. यह वह समय भी है जब आगे आप मनुष्य और लेखक दोनों ही रूपों में अकेले होते चले जायेंगे.

एक बात बराबर महसूस करता हूं—दिये जलाते चलो, यह तुम्हारे हाथ में नहीं कि किसका प्रकाश कितना होगा, कहां तक जायेगा या कि कब तक रहेगा! पर हां, मात्र लिखना, वह दीप जलाना ही हो, पूरी आस्था और समर्पण के साथ.

बुझते जाते हैं चिराग दहरो-हरम,
दिल को जलाओ कि रोशनी
है कम!
—फिराक

अभिमन्यु अनत

लाल पसीना

पिछले अंक में आपने पढ़ा

पिछले अंकों में आप रामबरन, परकास, सहदेव ठाकुर और उनकी सारी समस्याओं से मिल चुके हैं. अब पढ़िये मूसा को अपने साथ लिये जा रहे हरि की दास्तान...

अगले शनिवार की सुबह मूसा को अपने साथ लिए हरि शहर के लिए निकल पड़ा था. उसने सुन रखा था कि शनिवार के दिन डाक्टर मौरिस क्यूरे बारह ही बजे तक अपने दफ्तर में लोगों से मिलता है इसलिए छह बजे की गाड़ी दोनों ने पकड़ी थी. पुद्रदोर तक दोनों पैदल आये थे. शहर में होनेवाली घुड़दौड़ के कारण स्टेशन पर काफी चहल-पहल थी. फिर भी दोनों को जगह मिलने में दिक्कत नहीं हुई. पास-पड़ोस की कोठियों के मजदूरों को घुड़दौड़ देखने जाने की इजाजत तो थी नहीं. पर आज वाली घुड़दौड़ उन बाकी घुड़दौड़ की तरह नहीं थी जो केवल बड़े और सभ्य समझे जानेवालों के लिए हुआ करती थी. यह तो साल की आखिरी घुड़दौड़ थी जिसके लिए टापू भर के शक्कर उद्योग के मजदूरों को खास छुट्टी दी जाती थी. स्टेशन पर बहुत भारी भीड़ थी जिसमें औरतें और बच्चे भी भारी संख्या में थे.

घुड़दौड़ के इस मैदान के बारे में हरि बहुत कुछ सुन चुका था पर वहां जाने का उसे कभी अवसर नहीं मिला था. वर्ष के अंतिम सप्ताह में होने वाली इस दौड़ में कोठी के मजदूरों के लिए अलग से मरियल घोड़ों की दौड़ का आयोजन होता था. देश के संपन्न और पढ़े-लिखे लोग उस घुड़दौड़ को 'लेकूर्स मालबार' कहकर भारतीय मूल के मजदूरों की खिल्ली उड़ाते थे. उस घुड़दौड़ के बारे में हरि ने इतना कुछ सुन रखा था कि एक बार अपनी आंखों से उस जिल्लत को देख लेना चाहता था. इसीलिए शाम में जब मूसा के साथ बात हो रही थी तो दोनों ने यही तय किया था कि डाक्टर क्यूरे से मिल चुकने के बाद एक बार वे लोग उस नजारे को भी देख लेंगे.

रामबरण चाचा ने एक-दो अवसरों पर वह घुड़दौड़ देखी थी. उसके बारे में हरि और उसके साथियों को बताते हुए कहा था, ''जानवर! कुत्ता! सुअर के हालत होवेला गांव के लोगन के! के लोगन गभिया त मारे लन स ही. लोगन के ठग-ठग के सभी कुछ हड़प लेवल जाला. रामदरसवा के अपन औरत के बिना गांव लौटे के परल बा. आज तलक ओके ओकर औरत ना मिलत. घोड़दौड़ पर हारे लोगन के त पड़ल बा पटरी पर सूते के और पीते ओला लोग शराब पी के एतना चूर हो गइल कि कुत्ता मुंह के चल गईल और जीभी लपलपाते रहल.''

गाड़ी में बैठे हुए धक्कमधक्का और रेलपेल के बीच दोनों यह तय करते रहे कि डाक्टर मौरिस से कौन-कौन-सी बात होनी जरूरी थी. कम से कम एक बात के लिए तो हरि निश्चिंत था. उसे फरीद मियां का घर ढूंढने में किसी तरह की परेशानी का सामना करना नहीं था. वह तो जीवन में पहली बार शहर जा रहा था. पर मूसा कई बार जा चुका था. यही नहीं, फरीद मियां उसका खालू था, चरहे रिश्ते से ही सही, उसका घर उसके लिए अनजाना तो था ही नहीं. दो बार वहां जा चुका था. एक बार ईद के अवसर पर और दूसरी बार मोहर्रम का ताजिया देखने. उसने हरि से कहा था कि अगर वह स्टेशन से जुम्मा मस्जिद तक पहुंच गया तो फिर वहां से अपने खालू का घर ढूंढ निकालने में उसे दिक्कत नहीं होगी. वहां से सीधे उत्तर को जानेवाली आम सड़क से कुछ आगे जाना था, फिर वहां से दांयी ओर को मुड़ना था. उसके बाद वहां से वह सीधे पहुंच सकता था, हरे रंग के घर तक.

रेलगाड़ी के जिस डिब्बे में दोनों को जगह मिली थी, उसमें कुछ ऐसे भी मजदूर थे जो अच्छे कपड़ों के अभाव में अपने काम के मैले-कुचैले, पुराने फटे कपड़ों में ही अपने पूरे परिवार के साथ घुड़दौड़ देखने निकल पड़े थे. उस आपाधापी और शारीरिक गंधों के बीच कुछ लोग बीड़ियों और गांजे के दम लेकर उस माहौल को और भी बोझिल और अकुलाहट दे रहे थे. वे केवल बच्चे थे जो माहौल की उस अकुलाहट और भारीपन की परवाह किये बिना अपने आप में चहक रहे थे. कुछ

और सहमे हुए भी थे. हरि और मूसा सभी कुछ खामोशी के साथ देख रहे थे. हरि की नजर एक ऐसी लड़की पर पड़ी जिसकी मासूमियत उसे अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करती रही.

डिब्बे के भारी कोलाहल के बावजूद दोनों अपनी बातें करते रहे. रेलगाड़ी से छोटी-मोटी यात्राएं तो हरि ने कोई सात-आठ की थीं लेकिन पुखरोर से शहर की लंबी यात्रा वह पहली बार कर रहा था. इसलिए बातें करते हुए भी वह खिड़की से बाहर के दृश्यों को देख लिया करता था. गाड़ी जिस स्टेशन पर भी रुकती लोग बाढ़ की तरह भीतर आते जाते. हर भीतर आने वाले के भीतर घुड़दौड़ का असर था. लोगों को खड़े होने तक की जगह मिलनी मुश्किल होती गयी. हरि ने अपने सामने के उस हुजूम के बीच से भी उस लड़की को एक आखिरी बार के लिए देखा. वह उसी तरह चुपचाप सिमटी सी बैठी थी. एक-दो बार उसने भी अपने आगे की भीड़ के बीच से हरि की ओर झिझकती नजरों से देखा. हरि बस यही सोचता रहा कि काश वह लड़की भी शहर के स्टेशन पर उतरे पर शहर पहुंचने पर उसे अपने बाप की बगल में उसी तरह निश्चिंत बैठे पाकर वह जान गया कि उसकी यात्रा समाप्त नहीं हुई थी. हरि को अपनी यात्रा के समाप्त हो जाने का भारी दुख हुआ.

गाड़ी शहर के स्टेशन पर रुकी. अपनी दिलो-दिमाग में भारी बोझ लिये हरि उस नर्क की हस घुटन से अपने को बड़ी कठिनाई से बाहर कर सका. मूसा के साथ-साथ वह पहले जुम्मा मस्जिद की तलाश में निकला. पूछने पर कभी कोई जवाब दे जाता और कभी कोई दो गंवारों की सुनी अनसुनी करके चुपचाप आगे निकल जाता. मूसा को थोड़ा-थोड़ा याद था कि अपने बाप के साथ जब वह रेलगाड़ी से उतरा था तो वहां से उत्तर की ओर ही चला था. उसे यकीन था कि मस्जिद की मीनार उसे दूर ही से दिख जायेगी. उसने हरि से भी कह दिया था कि वह सफेद मीनार की ही ताक में रहे. दोनों उत्तर की ओर चलते हुए भीड़ से अलग आ गये थे. बाजार के पास से गुजरते ही उनका हौसला बढ़ा. गलियां जानी-पहचानी लगने लगी थीं. किसी चाय की दुकान से के.सी.डे के गाने की आवाज सुनाई पड़ी—

"...मन की आंखें खोल रे बाबा मन की आंखें खोल..."

दूसरे ही कदम पर उसे जुम्मा मस्जिद की मीनार दिखाई पड़ गयी. मस्जिदवाली गली में पहुंचकर वहां से दोनों उत्तर की ओर सीधे चल पड़े. मूसा ने तेल के कारखाने को देखते ही कहा कि अब वे लोग पहुंचने ही वाले हैं. थोड़ा आगे जाकर वे दायीं ओर मुड़े. नान बेचने वाला जोरों से आवाज़ देता हुआ निकल गया. एक घर में ग्रामोफोन पर जोहरा का गाना चल रहा था. चौराहे पर आकर मूसा खड़ा हो गया. आगे की गलियों की ओर देखा. बगल की एक गली में बच्चे कांच की गोलियां खेल रहे थे. उसकी बगल में जो तंग गली थी, उसी में दोनों घुसे. कुछ ही कदम चलने के बाद मूसा बोला, "आ गये. वह रहा खालू का घर."

आम सड़क पर से ही मूसा ने उस घर की ओर संकेत किया था. मूसा के साथ हरि ने भी एक लंबी सांस ली. जल्दी-जल्दी अपने कपड़ों को ठीक किया. माथे के पसीने को पोंछा. अपनी दसों उंगलियों,से बालों को ठीक किया और मूसा के पीछे-पीछे चल पड़ा. पहली बार वह किसी शहरी के घर जा रहा था.

दोनों एक हरे रंग के घर के आगे पहुंचे. सफेद पत्थरों की दीवार के बीच लकड़ी का छोटा-सा दरवाज़ा था जिसके साथ एक घंटी लगी हुई थी. मूसा ने घंटी बजायी. पहले तो कुत्ते ने भूंकना शुरू किया फिर भीतर से आवाज आयी, "कौन है भाई?"

दरवाजा खोलनेवाले को देखकर मूसा हैरत में पड़ गया. सोचा कहीं गलती से किसी दूसरे के घर तो नहीं पहुंच गया था. जो आदमी उसके सामने खड़ा था, वह तो धोती पहने हुए था और उसके माथे पर चंदन का टीका था. थोड़ी-सी घबराहट लिए हुए मूसा ने कहा, "हम लोग फरीद मियां जी का घर तलाश रहे हैं."

"यही है. वह तो दूध बेचने गया हुआ है."

सपूरा बाहर आ गयी. मूसा को पहचानकर सहदेव ठाकुर से बोली, "हमारा भतीजा है भाई जान."

वह दोनों को भीतर ले गयी. सहदेव ठाकुर फिर से अपने 'मक्का मदीना' को चमकाने में लग गया. सपूरा खाला से यह सुनकर कि उसका खालू लौटने में देर नहीं करेगा, मूसा ने राहत की सांस ली. और सचमुच दोनों अभी चाय पी ही रहे थे कि फरीद मियां अपनी साईकिल के साथ आ गया. मूसा को देखकर सुखद आश्चर्य के साथ उसने पूछा, "तुम्हें घर ढूंढने में परेशानी तो नहीं हुई?"

"नहीं तो."

"हनीफ कैसा है?"

''ठीक है.''

''और तुम्हारी मां.''

''वह भी अच्छी है. आप लोगों की बातें आये दिन होती रहती हैं.''

''हम लोग भी तुम लोगों के बारे में बातें करते रहते हैं. अभी तो पिछले ही हफ्ते तुम्हारी चाची तुम लोगों की ओर जाने की बात कर रही थी. मेरे अपने काम ही कुछ इस तरह उलझे हुए थे कि उन्हें सुलझाये बिना मेरा इधर-उधर निकलना संभव नहीं था. यह खुदा की कुदरत है कि उसने तुम्हें भेज दिया.'' मूसा ने फरीद मियां को हरि का परिचय दिया और आने का मकसद बताया. अपने कोट की जेब से चांदी की चैन से बंधी घड़ी को निकालकर फरीद ने वक्त देखा फिर पूछा, ''आज ही तुम्हें डाक्टर साहब से मिलना है?''

''हां खालू, हमें उनसे आज ही मिला देंगे तो बहुत बड़ी बात होगी.''

''ठीक है, हम तुम्हें डाक्टर साहब से मिला देंगे. अभी तो दस बज रहा है. तुम लोग खा-पी लो, फिर चलेंगे.''

इस पर हरि बोल उठा, ''नहीं चाचा जी, आप हमारे खाने की चिंता न करें.''

''क्यों न करें भाई! इतनी दूर से आये हो. आज घुड़दौड़ है, सवारी की मुसीबत होती है, पर नहीं तुम लोग कब शहर छोड़ पाओगे!''

''हम लोग रास्ते में कुछ खा लेंगे.''

''आज की इस भीड़-भाड़ में और रास्ते पटरियों का खाना नहीं नहीं, ऐसा नहीं हो सकता.''

उसने अपनी बीवी को आवाज देकर बुलाया. वह जब आ गयी तो उसने कहा, ''फातमा से पूछो खाना कब तक तैयार हो जायेगा? अगर देर होती है तो हम पहले इन्हें डाक्टर क्यूरे से मिला आते हैं.''

अपने बाप की आवाज सुनकर दूसरे कमरे से फातमा ने धीमी आवाज में कहा, ''खाना लगभग तैयार ही है, बस पंद्रह मिनट और.''

हरि ने एक बार फिर आपत्ति करने की कोशिश करनी चाही कि बीच में ही मूसा बोल गया, ''खालू मेरा दोस्त...'' पर उसे भी फरीद मे अपना वाक्य पूरा करने नहीं दिया, ''तुम्हारा दोस्त मांस-मछली नहीं खाता, यही बताओगे न.'' जब मूसा ने सिर हिलाकर हामी भरी तो फरीद मियां ने मुस्कराकर कहा, ''अरे बेटे हमारे घर भी दो-दो जने हैं जो बस घास-फूस खाकर जीते हैं. फातमा तुम्हारा चाचा जाने क्या कर रहा है उधर? उससे कहो आने को.''

फरीद मियां ने सहदेव ठाकुर के बारे में दोनों को बताया.

जब सहदेव ठाकुर भीतर आ गया तो फरीद मियां ने अपने अब तक के दिये परिचय को आगे बढ़ाते हुए कहा, ''जब हमारे घर के एक कमरे में कुरान की आयतें पढ़ी जाती हैं तो ये दूसरे में रामायण की चौपाइयां गाते हैं.''

डाक्टर मोरिस क्यूरे का दफ्तर देफोर्ज गली में था. एक कमरा दवाइयों की बोतलों और शीशियों से भरा हुआ था और दूसरा कागजातों से. कागजातोंवाले कमरे में डाक्टर ने हरि और मूसा को बिठाया था. कमरे में तीन ही कुर्सियां थीं इसलिए फरीद मियां कोने में पड़े हुए साबुन के खाली डिब्बे पर बैठ गया था. दोनों नौजवानों की बातों को डाक्टर क्यूरे ने बड़े ही ध्यान से सुना. हरि ने मदन की चिट्ठी उसे दी. आयतें उसने उसे पढ़ने के बाद कहा था. ''मुझे बहुत खुशी हो रही है तुम लोगों से मिलकर. उत्तर प्रांत में यूनियन की नींव डालकर तुम दोनों ने सचमुच ही बहुत बड़ा काम किया है. अभी दो ही दिन पहले जब दक्षिण और पूर्वी इलाकों में मैं मीटिंग कर रहा था तो एकाएक यह खयाल आया था कि उत्तर प्रांत उतना शिथिल कैसे! अब तो लगता है कि मेरा ऐसा सोचना एकदम गलत था. इस पत्र में मदन ने जो विश्वास तुम दोनों पर दिखाया है, उससे मुझे भी पूरा यकीन है कि तुम दोनों उस प्रांत के मजदूरों को संगठित करने और संघ के कार्यों को अधिक गतिशील बनाने में कुछ भी बाकी नहीं छोड़ोगे. मेरा दफ्तर तुम लोगों के लिए सदा खुला रहेगा और मेरा सहयोग बराबर बना रहेगा.''

तब तक उस दूसरे कमरे में दो-तीन रोगी आ गये थे. घुंघराले बाल वाली परिचारिका से इस बात की सूचना पाकर डाक्टर क्यूरे ने कहा, ''मैं इन रोगियों को देख आता हूं.'' कोई आधे घंटे बाद जब तीनों व्यक्ति डाक्टर को छोड़ने को हुए तो उसने उससे कहा, ''इन रोगियों को दवा-दारू से अच्छा करने में उतनी कठिनाई पेश नहीं आती जितनी कुछ अच्छे-खासे लोगों को यह समझाने में आती है कि वे बीमार नहीं हैं. वे जिस जगह पर पड़े हुए होते हैं, वहां से उनको यह विश्वास देकर

लघुकथा

आंदोलन

☐ दास वीरेंद्र चैतन्य

दूर तक फैला वन, सुरक्षित क्षेत्र होते हुए भी सांझ ढलते ही पास के गांवों के निवासी शिकारियों की बंदूकों से निकलने वाली तेज आवाजों से तड़फ-तड़फ कर कराहते हुए से लगते. बंदूकें, भाले, लाठियां जिसके पास जो भी हथियार होता, लेकर वन में निकल जाता. धीरे-धीरे वन के सभी हिरन, चीतल, बारहसिंघे और खरगोश जैसे जानवर मारे जा चुके थे.

अपने आहार के अभाव में वन के शेर, चीते संयम खोकर वन में घास और लकड़ी के लिये आती महिलाओं और गांव के पशु बाड़ों पर आक्रमण करने लगे.

इन हिंसक जानवरों से सुरक्षा पाने के लिए गांव-गांव में प्रदर्शन और आंदोलन होने लगे थे, वहशी कह-कहकर इनको मारा जाने लगा था, मिटती नस्ल को बचाने के लिए संबंधित विभाग ने आहार की कमी को ही मुख्य समस्या मानकर शेर-चीतों के आहार के लिये अन्य वनों से काफी संख्या में हिरन, चीतल एवं अन्य सभी प्रकार के पशु लाकर इस वन में छुड़वा दिये. वन की रातें फिर से चमकने लगी थीं, वही शिकारियों का नंगा नाच, सीमित संख्या के पशु चंद दिनों में ही गांव वालों के चूल्हों पर पक चुके थे.

साथ ही हिंसक और वहशी जानवरों से सुरक्षा पाने के लिए स्थगित आंदोलन पुनः जोर पकड़ने लगा था. ☐

ड़ करना और चलने के लिए तैयार करना बहुत कठिन काम होता है. मजदूरों को आयोजित-गठित करते समय यह जान लेना आवश्यक है कि जो लोग इन बातों को नहीं जानते, इसकी ठिनाइयों के लिए पहले ही से तैयार नहीं होते, वे ऐसी स्थितियों के आ जाने पर हताश हो जाते हैं. ल की बात है, पंडित सहदेव बता रहा था कि दक्षिण प्रांत की कुछ आयोजनकर्ता मजदूरों के झिझक और असयोग के कारण वह बड़ा निराश है. तुम दोनों को अपने इलाके के मजदूरों के भीतर बैठे हुए को सबसे पहले मिटाना होगा.''

हरि ने कहा, ''हम वैसा ही करेंगे डाक्टर साहब जैसा कि आप चाहेंगे.''

जब हरि अपने साथ आये दोनों व्यक्तियों के साथ डाक्टर क्यूरे से विदाई लेने के लिए खड़ा हुआ तो डाक्टर ने कहा, ''ठहरो एक मिनट.'' दफ्तर की अलमारी को खोलकर उसने ट्रेडयूनियन संबंधी कुछ पत्र-पत्रिकाएं निकालीं और हरि को थमाते हुए कहा, ''इन पत्र-पत्रिकाओं से तुम्हें ट्रेडयूनियन जगत की बहुत-सी बातें जानने को मिलेंगी.''

उन्हें लेते हुए हरि ने कहा, ''मेरसी दोक्तेर!''

फरीद मियां को किसी काम से निकलना था. हरि ने उसके सामने घुड़दौड़ में उन दृश्यों को देखने की इच्छा व्यक्त की थी, जिनकी दर्दनाक चर्चाएं वह सुनता रहा था. इसलिए घर पहुंचकर फरीद ने सहदेव ठाकुर से कहा कि वह हरि और मूसा के साथ हो ले. सहदेव ठाकुर आज बच्चों को खेल दिखाने इसलिए नहीं निकल सका था क्योंकि उसकी मशीन की चाबी के अटक जाने के कारण तस्वीरें चल नहीं पा रही थीं. खाने के समय उसने हरि के साथ जो थोड़ी-बहुत बातें की थीं उनसे वह उसके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह पाया था. उन दोनों से कुछ अधिक बात कर सकने के उस लोभ से वह अपने को नहीं रोक सका. वह जब दोनों को अपने साथ लिए शां-दे-मार्स पहुंचा तो पहली दौड़ होने ही वाली थी. पर हरि घुड़दौड़ देखने तो आया नहीं था. वह तो गांव से आये हुए मजदूरों की उस जिल्लत को देखना चाहता था जिसकी चर्चा करते समय परकाश की आंखों में बरबस ही एक दर्द का-सा भाव झलक आया था. उस दिन परकाश ने दर्द भरे स्वर में कहा था कि यह सही है कि मजदूरों को उस तरह अपमानित करने की यह मालिकों की साजिश थी लेकिन अगर मजदूरों को अपने मान-अपमान का भान होता और अपने स्वाभिमान की पहचान होती तो वे खुद अपनी बेइज्जती के लिए उस तरह दौड़ नहीं पड़ते.

शां दे मार्स के उस विस्तृत मैदान को उस तरह आदमियों से खचाखच भरे देख हरि को आश्चर्य हुआ. उसने अपने आप से सवाल किया कि क्या ये वे ही लोग हैं जिनमें से कितनों के घर दो वक्त चूल्हें नहीं जल पाते, जिनके पास अपने बच्चों को स्कूल भेजने की हैसियत नहीं? औरतों और मर्दों के उस हुजूम में बच्चे भी उस धूप में झुलस रहे थे. जिनके पास हैसियत थी उनके बच्चे अपने बाप के कंधे पर सवार मिठाइयां या बतासे खा रहे थे. पर ऐसे बहुत कम थे. प्रायः सभी बच्चे अपने मां-बाप से कुछ न कुछ खरीदने की मांग करते हुए ठुनकते-रोते दिखाई पड़ रहे थे. उन बच्चों के बदन पर न ढंग के कपड़े थे न चेहरे पर कोई रौनक थी. मां-बाप उसके तकाजों के कारण उन ठोरों पर भी नहीं ले जा रहे थे जहां चर्खियां चल रही थीं और दूसरे हैसियतवाले बच्चे काठ के घोड़ों पर सवार मस्ती से झूम रहे थे.

शां दे मार्स के उस मैदान के बीच खड़े होकर हरि ने एक बार चारों ओर देखा. मैदान खचाखच भरा हुआ था. बगल की पहाड़ी पर भी लोगों की भीड़ थी. उस दूसरी ओर की ऊंचाई पर जो पुराना किला था, उसके इर्द-गिर्द जो लोग खड़े मैदान की भीड़ का लुफ्त उठा रहे थे, उसी इलाके के शहरी लोग रहे होंगे. हरि ने ऐसा ही सोचा. गोरे और काले धनपतियों की सुविधा के लिए बनी वह सफेद इमारत भी भरी हुई थी. उस पर अंग्रेजी और फ्रांसीसी झंडे फहर रहे थे.

सहदेव ठाकुर के साथ उस भीड़ के बीच घूमते हुए हरि ने एक जगह पर कुछ शहरी मनचलों को एक गंवार परिवार को छेड़ते हुए देखा. वे एक लड़की के दुपट्टे को खींच-खींचकर उसके साथ छेड़खानी कर रहे थे. हरि ने जब वहां रुकना चाहा तो सहदेव ठाकुर ने यह कहकर उसे आगे खींच ले गया, ''ये लोग जेब में चाकू-खंजर लिये होते हैं. कहां वे दस कहां हम तीन.''

एक दूसरी जगह पर हरि ने तीन-चार गुंडों को एक औरत के गले से चांदी के हार को नोचकर भागते देखा. उनके पीछे दौड़ने की उसकी इच्छा तो हुई पर वे देखते ही देखते भीड़ में खो गये. एक शराबी उन मजदूरों के बीच इस तरह गालियां बके जा रहा था गोया कोई गाना गा रहा हो.

पहली दौड़ शुरू होते ही लोगों का चीखना-चिल्लाना शुरू हुआ और जैसे-जैसे घोड़े आगमन रेखा के करीब होते गये, वैसे-वैसे लोगों का वह चीखना-चिल्लाना बढ़ता गया. घोड़े पर दांव लगानेवालों में से जीतनेवाले तो पागलों की तरह चिल्लाते रहे पर जिनके घोड़े पीछे रह गये थे,

उनका चिल्लाना एकाएक बंद हो गया था.

परकाश ने हरि से कहा था कि इन मरियल घोड़ों की दौड़ के समय बड़े लोग ठाठ से भवन के भीतर बैठकर घोड़ों की दौड़ से कहीं अधिक गांव से पहुंचे उन हजारों मजदूरों के पागलपन को देखकर आनंद उठाते हैं. उसने यह भी बताया था कि घोड़े दौड़ानेवाले गोरे कई डिब्बे कागजों से भरे ले आते हैं. जिन पर घोड़ों के नंबर लिखे होते हैं. दांव लगानेवालों से उन लॉटरियों को बेचकर जब आखिरी दौड़ के बाद घर लौटते हैं तो कागजों की जगह डिब्बों में नोट ही नोट भरे होते हैं.

आखिरी दौड़ तक सहदेव ठाकुर और मूसा के साथ इधर से उधर टहलता हुआ हरि धनपतियों के मनोरंजन के साधन बने गांव से पहुंचे उन मजदूरों को देखता रहा. वहां पहुंचे वे तमाम मजदूर खुद दूसरों के लिए तमाशा बने हुए थे. हरि को अपने ही गांव के तांबी, महादेव और दादिबल मिल गये. तांबी ने हरि को देखकर धीरे से कहा, ''एक चवन्नी दे सकते हो?''

''क्यों घर से बिन पैसे के आये थे क्या?''

''पैसा तो था पर...''

''घोड़े पर हार गये?''

''साले तीनों घोड़े बेकार निकले. रेल के टिकट का पैसा भी चला गया.''

हरि ने उसके हाथ में चवन्नी रख दी. तांबी, दादिबल और महादेव के बीच चला गया.

सहदेव ठाकुर ने मुस्कराकर कहा, ''ऐसे सैकड़ों लोग अभी टिकट के किराये के लिए छटपटा रहे होंगे.''

मूसा अपने इर्दगिर्द के लोगों के चेहरों की मुर्झाहटों को देखता हुआ ठाकुर और हरि के साथ आगे बढ़ता रहा.

सहदेव ठाकुर से फिर मिलने का वायदा करके हरि मूसा के साथ स्टेशन की ओर बढ़ने को हुआ.

दोनों से रुखसत लेने से पहले सहदेव ठाकुर ने कहा, ''कल रविवार है न! कल मैं फरीद भाई जान के साथ तुम दोनों के गांव पहुंचूंगा...बच्चों को खेल दिखाने.''

''हमें बड़ी खुशी होगी चाचा, जरूर आना.''

इसके बाद हरि ने मूसा से कहा, ''चलो, नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी.''

उसने जो देख लिया था वही बहुत था. उससे तो यह भी कहा गया था कि सैकड़ों लोग जिन्हें आखिरी गाड़ी में जगह नहीं मिल पाती है, वे शहर की गलियों और पटरियों में अपने बीवी-बच्चों के साथ रात बिताने को मजबूर होते हैं. उस रात चोरी-चपाटी के साथ मजदूरों की बीवी बेटियों के साथ बलात्कार भी होते रहते हैं. मैदान से निकलकर आम सड़क तक पहुंचते हुए हरि जो कुछ देखता रहा, उससे यह अनुमान लगा सका कि इस उजाले के मिटते ही अंधेरे में वे मनचले शहरी गुंडे किस हद तक पहुंच सकते थे. गांव से आयी औरतों के बदनों पर आगे-पीछे हाथ फेरकर बड़े ही स्वाभाविक ढंग से उन मनचलों को आगे निकल जाते देख हरि का अपना खून खौलकर रह जाता.

रास्ते भर के उन शर्मनाक नजारों के गवाह बने दोनों दोस्त आगे बढ़ते रहे. स्टेशन की ओर लपकते हुए हरि ने मूसा से केवल इतना ही कहा, ''इसे बंद करना होगा.''

क्रमशः

अगले अंक में

सहदेव ठाकुर का हरि के गांव आगमन...सहदेव ठाकुर का इतिहास...अपने लोगों की तलाश में अपने भले ही मिले या नहीं मिले, अपनापन जरूर मिल गया...

कैसे-कैसे लोग : दो

...मेरी बाल्जाक से मुलाकात हो गयी

☐ से.रा. यात्री

अभी-अभी एक निमंत्रण पत्र मिला है जिसमें नगर के एक दिग्गज पत्रकार-साहित्यकार के अभिनंदन समारोह की सूचना है. जिन वक्ताओं को उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर भाषण देने हैं, उनमें सबसे ऊपर मेरा ही नाम है.

ये सज्जन बहुश्रुत बहुमुख हैं. अभी दो महीने पहले सूचना विभाग से अवकाश ग्रहण किया है.रिटायर होते समय उपनिदेशक के पद पर थे. कहा जाता है कि घोर पढ़ाकू किस्म के जीव हैं. कई नगरों के इतिहास लिख चुके हैं. कई शोध ग्रंथ भी तैयार किये हैं. देश-विदेश काभी दौरा करते रहे हैं. अभिनंदन इधर-उधर कई बार हो चुके हैं और कई प्रांतों से पुरस्कार पाने में भी पीछे नहीं रहे हैं.

स्थानीय साहित्यिकों में उनका कुछ इस कदर दबदबा है कि शायद ही कोई ऐसा साहित्यिक समारोह या गोष्ठी होती हो जहां उन्हें अतिथि या अध्यक्ष अथवा संचालनकर्ता न बनाया जाता हो. शाम-ए-सनीचर नाम की एक गोष्ठी तो बरसों से महज उनके विद्वतापूर्ण लतीफे सुनने के लिए ही होती चली आ रही है.

मैं लगभग ढाई दशक से मुख्य शहर से दूर रह रहा हूं इसलिए मेरी भेंट उनसे गाहे-बगाहे ही होती है. हां, कभी-कभी दिल्ली से लौटते हुए या हाट-बाजार में उनसे मुलाकात हो जाती है. उन पर दरबारी संस्कृति का बड़ा जबरदस्त प्रभाव है. मिलते ही चेहरे पर जो हास्य उभरता है, वह दीनता की सीमा तक जा पहुंचता है. खूब झुककर फर्जी सलाम करते हैं, इसके बाद मेरी उपलब्धियों और साहित्यिक क्रिया-कलापों का इस शैली में बखान करते हैं, जैसे उनके पास मेरी रचनाएं पढ़ने और मनन करने के अलावा और कोई काम ही नहीं बचा है.

एक बार तो उन्होंने वह कमाल कर दिखाया कि लगभग बीस वर्षों के बाद भी जब मुझे उसकी याद आ जाती है तो मैं उनके ज्ञान और अध्ययनशीलता को लेकर उलझन में पड़ जाता हूं. हुआ यह था कि एक शाम मैं हाट-बाजार करके घर की ओर लौटने के लिए रिक्शे की तलाश में था कि वह अचानक सामने से आ गये और छूटते ही बोले, ''बधाई हो भाई साहब. मैंने आपकी रचना 'गर्दिश के दिन' पढ़ी. भई क्या खूब लिखी है. कोई पढ़कर देखे तो पता चले कि हमारी राष्ट्रभाषा में कैसे-कैसे हीरा लेखक पड़े हैं. वह कितनी विडंबनाओं और विषमताओं में रहकर अपने रहने जिगर से महान रचनाओं का सृजन करते हैं.'' इसके एक क्षण बाद ही विदेशी लेखकों पर जा पहुंचे, ''अब आप देखिये, विदेशी लेखक कितना ऐश्वर्य भोगते हैं. मैं पिछले टूर में यूरोप गया तो इत्तिफाक से मेरी बाल्जाक से मुलाकात हो गयी.''

> मैं रह-रहकर गहरे आश्चर्य में डुबकी लगाता रहा कि क्या उनकी शोध और अध्ययन की यही दशा और दिशा है...!

मेरी देह झनझना उठी. मैं यह भूल गया कि मैं कहां खड़ा हूं. मैंने उनको टोका, ''बाल्जाक आपको कहां मिल गये?''

''डी ला कैफे में बैठे थे और हैमिंग्वे का इंतजार कर रहे थे. मुझे किसी ने बताया कि सार्त्र भी वहीं बैठकर 'डिवाइन कामेडी' लिखा करते थे.''

अब उनसे आगे बातें करने की कोई तुक नजर नहीं आयी. मैं चलने को था कि तभी मुझे अपने गर्दिश के दिन याद आ गये. मैंने पूछा, ''हां, आपने मेरी 'गर्दिश...' कहां पढ़ी?'' उन्होंने जिस पत्रिका का नाम बताया उसमें तो वह भेजी ही नहीं गयी थी. इसके अलावा संपादक के हाथ में अपनी 'गर्दिश...' मैं स्वयं सौंपकर आया था. मेरे पास संपादक की चिट्ठी भी आ चुकी थी कि अगले एक-दो महीनों में उसका नंबर आयेगा. उनकी बात का कोई सिर-पैर मेरी समझ में नहीं आया पर साथ ही यह अचरज भी बना रहा कि बिना छपे भला उन्हें पता भी कैसे चल गया कि मैंने 'गर्दिश के दिन' नाम की कोई रचना लिखी है.

उनसे विदा लेने से पहले मैंने फिर पत्रिका का नाम पूछा जो उन्होंने फिर गलत बताया. मैंने तैश में सोचा कि घर जाते ही पहला काम संपादक को कड़ा पत्र लिखने का करूंगा. आखिर उन्होंने यह क्या किया कि रचना अपनी पत्रिका के लिए ली और ठेल दी एक ऐसी पत्रिका में जिसमें उसके छपने का कोई महत्व ही नहीं था.

मैंने नमस्कार करके उनसे विदा ली और रिक्शा पकड़कर घर की दिशा में चल पड़ा. घर पहुंचने के बाद भी वह गर्दिशवाली बात मेरे दिमाग में, दांत में फंसे तिनके की तरह अटकी ही रही.

यह तो मुझे बराबर लगा कि कहीं घपला जरूर है क्योंकि जो आदमी पिछले दिनों ही बाल्जाक से मिलकर आया है और सार्त्र से 'डिवाइन कॉमेडी' लिखवा चुका है, उसने मेरी 'गर्दिश...' भी कहीं की कहीं पढ़ मारी हो. इसमें आश्चर्य ही क्या है, पर फिर भी बिना छपे उसे पता भी कैसे चला?

घर पहुंचने के बाद भी मैं वह भूला नहीं. खाना खाकर आराम से एक दैनिक लेकर दीवान पर पसर गया. अभी मैंने तीसरा पृष्ठ उल्टा ही था कि मेरी नजर उस पत्रिका में अगले मास छपनेवाली रचनाओं के विज्ञापन पर पड़ गयी जिसमें मेरी 'गर्दिश...' छपनी थी. पलक झपकते सारा रहस्य खुल गया कि उन सूचना विभागी दिग्गज ने मेरी रचना कहां पढ़ मारी थी.

मैं रह-रहकर गहरे आश्चर्य में डुबकी लगाता रहा कि क्या उनकी शोध और अध्ययन की यही दशा और दिशा है! यह तो मैं अनेक बार सुन चुका था कि पुस्तक पढ़े बिना मात्र उसकी फ्लैप सामग्री देखकर लोग अच्छा भाषण दे डालते हैं, पर यह भी आज देखने में आ गया था कि ऐसे महापंडितों की भी कमी नहीं है जो किसी पत्रिका में किसी रचना का मात्र विज्ञापन देखकर ही उसकी प्रशंसाओं के पुल खड़े कर सकते हैं.

उन सज्जन का अभिनंदन समारोहवाला कार्ड हाथ में पकड़े हुए मैं सोच रहा हूं कि कहीं उन्होंने उसी नजरिये से तो मुझे इनवाइट नहीं किया है जो उनका अपना है कि रचना पढ़े बिना ही स्वस्ति वाचन का सिलसिला शुरू कर दिया जाये. मैंने तो अब तक उनकी न कोई रचना देखी है न पुस्तक. यहां तक कि किसी प्रकाशन सूची में भी उनकी किसी कृति का नाम नहीं पढ़ा है. अब उन्होंने जब मुझे निमंत्रण पत्र भेजा ही है और बोलनेवालों में शीर्ष पर मेरा स्थान है तो क्यों न मैं भी कहूं कि अभी पिछले दिनों जब मैं शेक्सपीयर से मिला तो उन्होंने आपके 'धूर्तराज' महाकाव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की. और मुझे किंचित भी आश्चर्य नहीं है कि वह इसे बड़े मजे में पचा जायेंगे. ☐

नयी कहानी का 'टीपू सुल्तान'

□ सुधीश पचौरी

'आलोचना की पुनर्यात्रा' में अब तक आप पढ़ चुके हैं देवीशंकर अवस्थी, सुरेंद्र चौधरी और डा. नामवर सिंह की कथा समीक्षा पर स्तंभकार की टिप्पणियां. इस बार प्रस्तुत है—कथाकार कमलेश्वर की कथा-समीक्षा पर एक टिप्पणी.

कमलेश्वर नयी कहानी के उन नायकों (खलनायक ?) में से हैं जो लगातार चर्चा और विवाद के केंद्र में रहे हैं. आज भी उनका धारावाह 'आधारशिलाएं' दिलचस्प हलकों में सनसनी उत्तेजना और गुस्सा पैदा करता है. अरसे तक नयी कहानी की 'अस्मिता' के लिए संघर्ष चलाने के बाद से कमलेश्वर का लिखा हुआ लगातार विवादग्रस्त रहा है. अपनी पीढ़ी के लेखकों में वे अति 'चंट', 'चलता पुर्जा', 'अवसरवादी' कहे जाते हैं तो नये लेखकों के बीच वे एक 'खुरांट उस्ताद' की तरह लिए जाते हैं. नयी कहानी के संपादन काल में उन्होंने हिंदी के वृद्धजनों को नाराज किया तो 'सारिका' के संपादन काल में उन्होंने 'लघु पत्रिका' आंदोलन पर अनिल घई से हमले करवाए, फिर समांतर आंदोलन चलाया और उसे बिखरते हुए देखा. एक विवादित मिथ की तरह कमलेश्वर कहानी चिंतन में लगातार मौजूद रहे हैं. फिल्मों-टी.वी. में कूदने के बाद भी वे हिंदी वालों को राहत की सांस नहीं लेने देते. ऐसे शख्स के 'कथा चिंतन' पर आज बात करना, कईयों के लिए उनकी चापलूसी करना या बेजा महत्व देना होगा किंतु यदि हम अपनी मातृभाषा को लेकर जरा से भी जिम्मेदार हैं तो हमें 'दाना दुश्मन' को जरूर वकत देनी चाहिए. कमलेश्वर यदि हिंदी कहानी का दुश्मन भी हे तो वह एक दाना दुश्मन है, यह नहीं भूलना चाहिए. उसकी असफलताओं से हम सभी सीख सकते हैं.

कमलेश्वर के कथा चिंतन का दौर लंबा है. यद्यपि उसका एक नक्शा शुरू में ही बन गया था. 'नयी कहानी' की अस्मिता को स्थापित करने और बचाने की जद्दोजहद में, राकेश, यादव के साथ जिस व्यक्ति ने लगातार खडगहस्त्र होकर लड़ाई लड़ी वह कमलेश्वर ही हो सकता था. जो लोग नयी कहानी की इलाहाबादी त्रयी के पीछे चले जाने की बात कहते हैं वे यह तथ्य भूल जाते हैं कि 'नयी कहानी' को विचारधारात्मक एवं आलोचनात्मक अस्त्र मुहैया करने वालों में कमलेश्वर, यादव, राकेश, की त्रयी आगे थी. कमलेश्वर, शायद इस त्रयी में अगले सफों में लगने वाले रहे. नयी कहानी के जरिए भारतीय समाज में कथा को रख कें देखने की शुरुआत करने वालों में कमलेश्वर शायद प्रगतिशील समीक्षकों से आगे रहे हैं.

आधुनिक हिंदी कहानी का यह वह दौर था जब नये कथाकार को 'पीर बवर्ची भिश्ती खर' सभी कुछ बनाना पड़ा है. नये लिखने के साथ अपने वक्त के पिछड़ गये किंतु महत्वपूर्ण लोगों को आंखों में उंगली डालकर बतना भी पड़ता था कि 'नया' क्या है? इसीलिए इनके कथा-संकलनों में भूमिकाएं कथाओं जितनी ही महत्वपूर्ण होती थीं.

'राजा निरबंसिया' (५७) की भूमिका, 'बयान' की भूमिका, 'नयी कहानी' की भूमिका (जो अब स्वतंत्र पुस्तक के रूप में अनुपलब्ध है), हिंदी कथा चिंतन के महत्वपूर्ण कालांकित बहसों की ओर संकेत करती है.

नयी कहानी में 'नया' क्या है? नयी कहानी जीवन के साथ कैसे संबंधों को तनाती है? यथार्थ की कलात्मक प्रतिनितिधकता की समझ के बिना इन्हें नहीं समझा जा सकता. 'प्रामाणिक यथार्थ', 'प्रामाणिक अनुभव', 'ईमानदारी', ये तमाम पद कमलेश्वर के वे औजार हैं जिनसे वे एक ओर पुरानी कहानी को नयी से अलगाते हैं, दूसरी ओर नए का दावा पेश करते हैं. तब तक हिंदी आलोचना मूलत: काव्यालोचना का दूसरा नाम था. 'राजा-निरबंसिया' की भूमिका में कमलेश्वर कहते हैं **''हिंदी आलोचकों ने आज के कहानी साहित्य का समुचित अध्ययन नहीं किया अत: नयी कहानी के वैशिष्टय और नए पन को पकड़ पाने में वे असफल रहे. इसीलिए कहानियों की आलोचना करते हुए आज भी बहुत से आलोचकों के मुंह से सुन पड़ता है कि कहानी अभी प्रेमचंद्र और जैनेंद्र से आगे नहीं गयी.''**

एक विध्वंसक की तरह कमलेश्वर आज तक पुराने को हटाने में लगे रहे हैं. 'शाश्वत मूल्यों का आग्रह और नयी कहानी', 'कहानी में नया क्या है', 'पुरानी कहानी की जड़ता के कारण', 'प्रेत बोलते हैं' आदि उनके चर्चित लेख पुराने की ध्वंस के बेजोड़ गवाह हैं. कथा चिंतन में ऐसी आवेगमयी और आक्रोशमय अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है. पुराने की सड़ांध और व्यतीत पर कोई रहम नहीं. नये के स्वागत के लिए विकलता और उत्सुकता की कमी नहीं. ये पुराने लोग कहानी के रीतिकालीन लोग हैं. इनके नायक कौन हैं. जैनेंद्र हैं. यशपाल हैं. अश्क हैं. कभी-कभार गलती से अच्छी कहानी लिख देने के बावजूद ये लोग 'रीतिकालीन' हैं. क्यों? क्योंकि इतिहास क्रम में यथार्थ परिस्थितियों से निकलकर जो मनुष्य आते-आते रुक गया था, वह भारतीय विचार संपदा और जीवन परंपरा का केंद्रीय व्यक्ति था...पर कथा-साहित्य में उस पर पर्दा पड़ गया. ऐसा रीतिकालीन मनुष्य पैदा कर दिया गया जो अपनी व्यक्तिगत क्रूरता से समस्त सामाजिक संदर्भों को नकारकर अपने मनोलोक में प्रेयसियों के संग में टहल-टहल कर वेदना और दुख पर भाषण दे रहा था...अपनी कुंठाओं को सही साबित कर अपने व्यक्तित्व के चारों ओर प्रभामंडल निर्मित कर रहा था...यह अर्धसामंती अर्धशहरी पाखंडी नायक उस मध्यवर्ग से विपरीत और गिरा हुआ था. समाज के भयानक विघटन को 'झेल' रहा था. कमलेश्वर इसी भारतीय मध्यवर्ग के आंतरिक विघटन में नयी कहानी का नया नायक ढूंढ़ते हैं.

नयी कहानी के इस विघटित नायक की

पृष्ठभूमि कमलेश्वर कभी नहीं भूलते. कारण क्या उनकी स्वानुभूत पृष्ठभूमि रही? वह 'कस्बे का आदमी' है. वह शहरी है. महानगर अभी नहीं बने हैं. वे अभी बनने हैं. अभी तो गांव से कस्बे, कस्बे से कुछ बड़े शहर की ओर अग्रगामी शक्तियां धावित हैं. नयी कहानी का रचनाकार यहीं से, इसी यात्रा से आता है. उम्मीद और कुछ कर गुजरने की तमन्ना के बीच आजादी के ऐन पहले का आदर्श और उसके बाद जल्द ही आने वाला यथार्थ बेमेल हो जाते हैं. नयी कहानी के विघटित मनुष्य में, विघटन की पहली खबर हमें मिलती है. कमलेश्वर इस 'विघटन' को सामाजिक सत्य कहते हैं और शाश्वतता के पाखंड से उसे लड़ा देते हैं. शाश्वत जीवन के पाखंड और इकहरे पात्र उनकी तीखी आलोचना के शिकार बनते हैं. उन्हें चिढ़ है कि हर कहानी लिखने से पहले ही सद्-असद् के बोझ से दबी जाती है. प्रेमचंद के प्रति इसीलिए कमलेश्वर अतः निसूरूण हैं.

कमलेश्वर के कथा चिंतन की दूसरी विशेषता पुरानी कहानी की 'स्त्री' की 'टाइपोलोजी' सटीक ढंग से पकड़ना है और उसकी व्यर्थता को सिद्ध करना है. नयी कहानी की औरत को स्थापित करने के लिए इस पूर्ववर्ती नायिका की निरर्थकता सिद्ध करना जरूरी था. यहां से नयी पुरानी कहानी की जीवन दृष्टि की नव्यता शुरू होती थी. पुरानी कहानी में 'नवयुवती' वह होती थी जिसके लहाराते काले केश होते थे (बाल नहीं), उसके नीचे ललाट होता था, जिस पर कभी-कभी एक बिंदी लगी रहती थी. ललाट के नीचे भृकुटियां थीं और उनके नीचे चकित मृगी के-से दो नयन थे. ये नयन सजल रहने के काम आया करते थे और इनमें सावन भादों उमड़ते रहते थे. नयनों के पास ही नासिका होती थी और नासिका के दोनों ओर कपोल होते थे (गाल नहीं) नासिका के नीचे अधर होते थे जो अस्पष्ट भाषा में बुदबुदाते रहते थे...गर्दन कभी-कभी होती थी कभी नहीं भी. बाहें बिल्कुल नहीं होती थीं. सिर्फ कोमल हाथ होते थे या कलाइयां. कलाइयों में चूड़ियां बजती रहती थीं और हाथों में सिर्फ एक उंगली होती थी जो आंचल लपेटने के काम आती थी. उसके नीचे कुछ नहीं होता था. सिर्फ पैर होते थे. जिनमें भी एक अंगूठा ही ज्यादातर नजर आया करता था. वह अंगूठा धरती कुरेदने के काम आता था. नवयुवती के पास जबान होती थी. जो सिर्फ 'दुत' या 'मेरी मां नहीं मानेंगी' या 'आप बड़े वो हैं' जैसे दो तीन शाश्वत वाक्य बोलने के काम आती थी.

हिंदी साहित्य की मीनाकुमारियों के इस प्रस्तरीकृत व्यक्तित्व के निर्माताओं के पाखंड की खिल्ली उड़ाए बिना 'मिस पाल' या 'मित्रो' की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी. कमलेश्वर पुरानेपन के इसी मर्म प्रदेश पर प्रहार करते हैं जो स्त्री को अपने त्याग, तपस्या और भोग की देवदासी बनाए रखना चाहता था. किंतु किसी दबंग स्त्री के सामने पड़ जाने पर पाजामा गीला कर बैठता था. आधुनिक भारतीय स्त्री की ऐसी गहन पहचान कमलेश्वर के इस आत्मसंघर्ष की अन्यतम विशेषता है. वे जीवन को विकलांगता नहीं समग्रता और मानवीयता में देखने की वकालत करते हैं. जिस स्त्री के सिर्फ मुख है, उंगली है, पैर का अंगूठा है, वह विकलांग बनायी गयी औरत ही है. कमलेश्वर इस औरत को समूचा व्यक्तित्व देने की मांग करते हैं.

इलाहाबाद कथा-समारोह हो या कोई अन्य घटना, पत्र-पत्रिकाएं हों या अनौपचारिक बहसें, कमलेश्वर ने हमेशा नयी कहानी के शत्रुओं से निरंतर युद्ध किया. 'नयी कहानी और संत्रस्त लोग' में जैनेंद्र को कक्षा चार के विद्यार्थी कहलवाना (राकेश ने कहा था) जमाने में कम साहस का काम न रहा होगा.

कमलेश्वर की लेखमाला 'प्रेत बोलते हैं' इस संदर्भ में नयी कहानी की अंतिम एवं निर्णायक विजय को घोषित करने वाली कही जा सकती है, जिसकी चर्चा के बिना यह कमलेश्वर-चर्चा अधूरी लगेगी. यह लेखमाला 'धर्मयुग' में छपी थी. इसमें नयी कहानी के आत्मसंघर्ष का दुहरा रूप खुलकर सामने आ गया था क्योंकि १९६५-६६ तक नयी कहानी इतिहास बन चुकी थी.

'प्रेत बोलते हैं' में प्रथम स्मरण की तरह मुक्तिबोध की सद्यः मृत्यु आती है जिन्हें उन प्रेतात्माओं ने अपने प्रमोद में व्यक्तिवादी, रुग्ण और ह्रासोन्मुख शक्तियों के हाथों में सौंपकर एक गहरा मौन साध लिया था. ये प्रेतात्माएं कौन हैं? ये हिंदी समीक्षा में मौजूद हैं. इन प्रेतात्माओं को हर बार बलि चाहिए. मुक्तिबोध की बलि ली. अब किसकी बारी है. कमलेश्वर पूछते हैं. यह लेखमाला मुक्तिबोध के 'समीक्षा की समस्याएं' की तरह आवेश में लिखी गयी है. इन प्रेतों ने सूरदास को कामुक कहा, पंत को 'गौण' प्रसाद को पुनरुत्थानवादी, समहादेवी को व्यक्तिनिष्ठ, कुंठित और असामाजिक, निराला को उद्धत और यशपाल को सैक्स ग्रंथियों से ग्रसित.

स्पष्ट है कि ये 'प्रेत' प्रगतिवादी समीक्षा के खंडहरों से निकले हैं. तलवार मार्का प्रगतिवादी समीक्षा करने में रामविलास और शिवदान दोनों में होड़ है. मजाक यह कि उनमें भी लड़ाई है. तलवार को लेकर. कमलेश्वर नयी कहानी को इन प्रेतों की तलवारों से बचाते हैं. इन प्रेतों को 'नया' नहीं दिखाई देता. जो दिखता है वह अपने प्रगतिशील खंडहर में पड़ी हुई सूखी ठठरियों का ढेर. वे चाहते हैं कि मान्यता मिले तो इन्हें, इन ठठरियों को. अश्क, बेदी, कृश्न चंदर से.इनके लिए नयी कहानी नामक चीज़ व्यर्थ और अजन्मी है.

इसी क्रम में 'कथा समीक्षा और पराजित पहरुए' लेख नयी कहानी की समीक्षा को लेकर अपनाए गये कैजुअल और काम चलाऊ खेमे को धिक्कारता हुआ कहता है कि कथा-क्षेत्र में कार्यरत रहने के लिए आलोचक में अपार धीरज का अभाव है. यहीं कमलेश्वर कहते हैं अब यथार्थ की कसौटी पर भी कहानी को परख सकना नामुमकिन होता जा रहा है. इशारा स्पष्ट है. स्पष्ट है नामवर सिंह के समीक्षा-औजार १९६६ तक आते आते चुक गये थे. उनकी समझ रुढ़ हो गयी थी. वे अभी तक यानी (१९६६ तक) 'साहित्यिक यथार्थ' को ही मानव यथार्थ माने हुए बैठे हैं.

यह सचमुच खेद की बात है कि एक वक्त में अत्यंत उद्दीप्त भाव हिंदी कथा समीक्षा बहुत जल्दी ही बुझ गयी. कमलेश्वर के कथा चिंतन में बार-बार हिंदी कथा समीक्षा के अपने मिजाज को देखने की तमन्ना जोर मारती रही और आज भी वे नयी कहानी की रक्षा में सर्वाधिक तत्पर रहते हैं. 'समांतर' तक आते-आते उनके कथा-चिंतन में हिंदी कहानी के इतिहास को लिख सकने की व्याकुलता देखी जा सकती है. हम उनसे असहमत हो सकते हैं, किंतु नयी कहानी और कहानी को एक विधा के रूप में अलग से पहचानने की उनकी ललक को कथा-चिंतन के इस समकालीन शून्य में महत्वपूर्ण मानना होगा.

यदि हिंदी कथा समीक्षा और 'सिनिसिज्म' में यदि कोई फर्क नहीं रह गया तो इसका बहुत कुछ श्रेय समीक्षकों का रचना के प्रति एक 'क्षत्रप' का, एक प्रतिहिंसक का, एक धंधाखोर का रवैया रहा है. कमलेश्वर जब कहते हैं कि यह हिंदी का दुर्भाग्य ही है कि आलोचना के क्षेत्र में नामवर सिंह तक आते-आते आलोचक के प्रति रचनाकार की दिलचस्पी ही खत्म हो गयी, तो प्रकारांतर से वे दुखद सत्य का ही उद्घाटन करते हैं. ☐

पुस्तक प्रेमी

□ गोपाल शेखरन

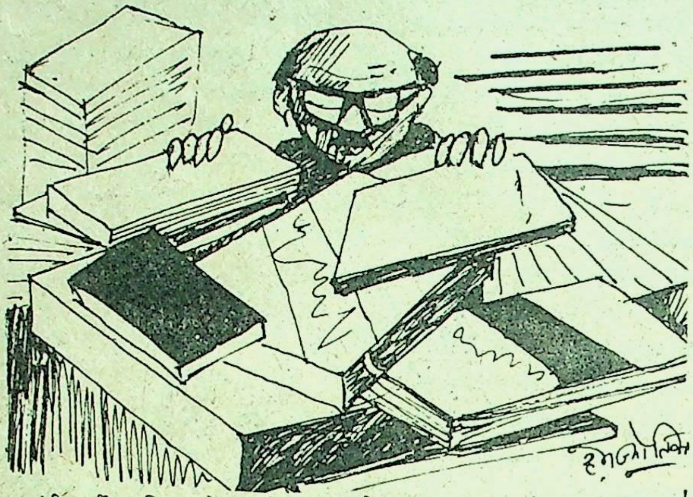

प्रगति मैदान में पुस्तक मेला चल रहा था. मैंने अपने एक विख्यात लेखक मित्र के साथ इस मेले में योगदान देने का निश्चय किया. पुस्तक मेले के तीसरे दिन हम दोनों प्रगति मैदान पहुंच गये. टिकट लेने से पूर्व हमने मंत्रणा की और अपने बजट को दृष्टि में रखते हुए हमने सौ-दो सौ की पुस्तकें प्रति व्यक्ति खरीदने का निर्णय ले लिया.

टिकट लेकर हमने प्रवेश किया. सबसे पहले हमने लघुशंका कर ली. जिससे अंदर जाकर पुस्तकों के दाम सुनकर यह शंका उत्पन्न न हो जाये. हम सबसे पहले सामने के गेट नंबर एक में प्रवेश कर गये. पुस्तकों के दर्शन हुए तो हमें ऐसे लगा जैसे हमारे कानों में संगीत की मधुर झंकार बजने लगी है. हमने पुस्तकों के दर्शन करने आरंभ कर दिये. इस प्रकार शुद्ध वातावरण में मैंने अपने मित्र से कहा, "भाई, मैं आतंकवाद पर एक पुस्तक लिख रहा हूं. यदि कोई ऐसी पुस्तक दिखाई दे जिसमें कोई पागल लगने वाला व्यक्ति बंदूक लिए खड़ा हो तो मुझे बता देना. मुझे ऐसी एक पुस्तक अवश्य खरीदनी है."

इस पर मेरे मित्र ने कहा, "मैं मछली पकड़ने वालों के जीवन पर एक उपन्यास लिख रहा हूं, यदि तुम्हें किसी पुस्तक के मुख पृष्ठ पर मछली का चित्र दिखाई दे या मछली पकड़ने का जाल दिखाई तो मुझे बना देना. मुझे भी ऐसी पुस्तक अवश्य खरीदनी है."

हममें कुछ समय तक पुस्तकों को देखने का बड़ा उत्साह रहा. हम स्टाल में प्रवेश कर पहले बेचने वालों को देखते जो हमसे अधिक मोटे-ताजे थे. फिर हम पुस्तकों को देखते जो हम जैसी कमजोर थीं. कुछ पुस्तकों को हम उठाकर खोलते तो हमारे अंदर संगीत की ध्वनि बजने लगती. पर जब हमारी दृष्टि उनके मूल्यों पर जाती, हमारी आंखों के आगे अंधेरा छा जाता.

उसके बाद हमने बाहर से ही पुस्तकों के मुखपृष्ठ पढ़ने आरंभ कर दिये और आगे बढ़ते गये. हमने देखा कि कहीं प्रेमचंद और गोर्की बड़ी गंभीरता से हमारी जेबों में झांक रहे हैं. कहीं यशपाल हमें देखकर मुस्करा रहे हैं, कहीं गोर्की हम से हाथ मिलाने को उत्सुक लगते हैं और कहीं नागरजी कह रहे हैं, 'कुछ कहो, कुछ ऊंचा बोलो, सुनाई नहीं दे रहा है.' कहीं हमें ऐसे लगा कि रेणुजी हमें देखकर कह रहे हैं, 'मैंने आप दोनों को पहचाना नहीं.'

हम आगे बढ़े. मेरा मित्र एक स्टाल पर रुका और मुझे सुनाते हुए चिल्लाया, "मिल गयी आपकी पुस्तक, वह देखो, एक अंग्रेज हाथ में बंदूक लिए खड़ा है."

मैंने देखा कि अंग्रेज जिसने बंदूक उठायी हुई थी, सेना की वर्दी में था और पुस्तक द्वितीय विश्व युद्ध के बारे में थी.

मैंने अपने मित्र को समझाया, "यह पुस्तक आतंकवाद पर नहीं, विश्वयुद्ध पर है". फिर मैंने उस पुस्तक को खोलकर, उसके दाम पढ़ते ही वह पुस्तक तुरंत बंद कर दी—दाम बारह सौ रुपये लिखे थे.

इसके बाद हम आगे बढ़े. मैंने एक पुस्तक देखी और मैं चिल्ला पड़ा, "मिल गयी आप की पुस्तक मित्र. वह देखो, उस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर मछली का चित्र बना है."

उसने देखा और बोला, "यह पुस्तक मछलियों के विषय में है, मछली पकड़ने वालों पर नहीं." फिर उसने भी पुस्तक खोलकर देखी और बोला, "दाम पंद्रह सौ रुपये," और तत्काल पुस्तक वहीं रख दी.

हम बाहर निकले और वह बोला, "लगता है, ये पुस्तकें तो हम अगले जन्म भी नहीं खरीद सकते." इसी बीच हम एक आकर्षक स्टाल में घुस गये. वहां बैठे एक व्यक्ति ने हमारे हाथों में एक मोटी सूची पुस्तिका पकड़ा दी. मैंने सूची-पुस्तिका के अंतिम पन्ने को देखा. लगभग नब्बे पृष्ठों की थी वह सूची पुस्तिका. यह मुफ्त में मिल रही थी. फिर हमने पुस्तकें देखनी आरंभ कीं. हमने एक पुस्तक उठाकर देखी-लगभग सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य पचास रुपये था.

हम बाहर निकले और मैंने कहा, "पुस्तकें क्या खरीदनी हैं, अब हम जिस स्टाल में जायेंगे वहां की सूची पुस्तिका उठा लेंगे." इस प्रकार हम अपने थैलों में पुस्तिका-सूची भरते गये. हम दोनों प्रतिभा संपन्न लेखक उस समय पुस्तक सूचियां बटोरते हुए कल्पना-शक्ति से विहीन हो गये थे. हमारे थैले लगभग भर चुके थे.

इस प्रकार घूमते-घूमते हम उस स्टाल पर पहुंच गये, जो हम दोनों के प्रकाशक का था. वहां प्रवेश करते ही हमारे कानों में संगीत की तरंगे प्रवेश करती गयीं. जब हमने अपनी-अपनी पुस्तकें रैकों पर लगी देखीं तो हमारा सिर गर्व से ऊंचा हो गया. हमें अपनी पुस्तकों के दाम तो पता थे. मैंने कहा, "ऐसा करते हैं कि तुम मेरी पुस्तकें खरीद लो, मैं तुम्हारी पुस्तकें खरीद लेता हूं. हमारे आनुमानित बजट में तो हम दो-दो पुस्तकों से अधिक खरीद नहीं सकते."

हम दोनों में सहमति होते देर नहीं लगी.

हम बुरी तरह थक चुके थे. हमें थैले उठाने में कठिनाई हो रही थी. हम बाहर निकले. जब हम गेट से बाहर निकले तो हमें ऐसे लगा कि हमारे थैलों में कई पुस्तक सूचियां हैं—जिनमें हमारे जीवन की, हमारे वक्त के सूची पत्र भी हैं. फिर हमें ऐसे लगा कि प्रेमचंद, गोर्की, यशपाल, रेणुजी और नागरजी हम दोनों को देखकर हमारे ऊपर हंस रहे हैं और ठहाके लगा रहे हैं.

हम जब प्रगति मैदान से बाहर निकले तो मेरे कंधे पर लटके थैले पर झटका लगा. मैंने अपने मित्र से कहा, "भाई, मुझे ऐसे लग रहा है कि मेरे थैले में पुस्तकें न होकर मरी हुई मछलियां हैं."

वह बोला उठा, "मित्र, मुझे भी ऐसे लग रहा है कि थैले में पुस्तकें नहीं बंदूक के शिकार, मरे हुए कौवे हैं." □

पुरुषोत्तम

□ भगवतीशरण मिश्र

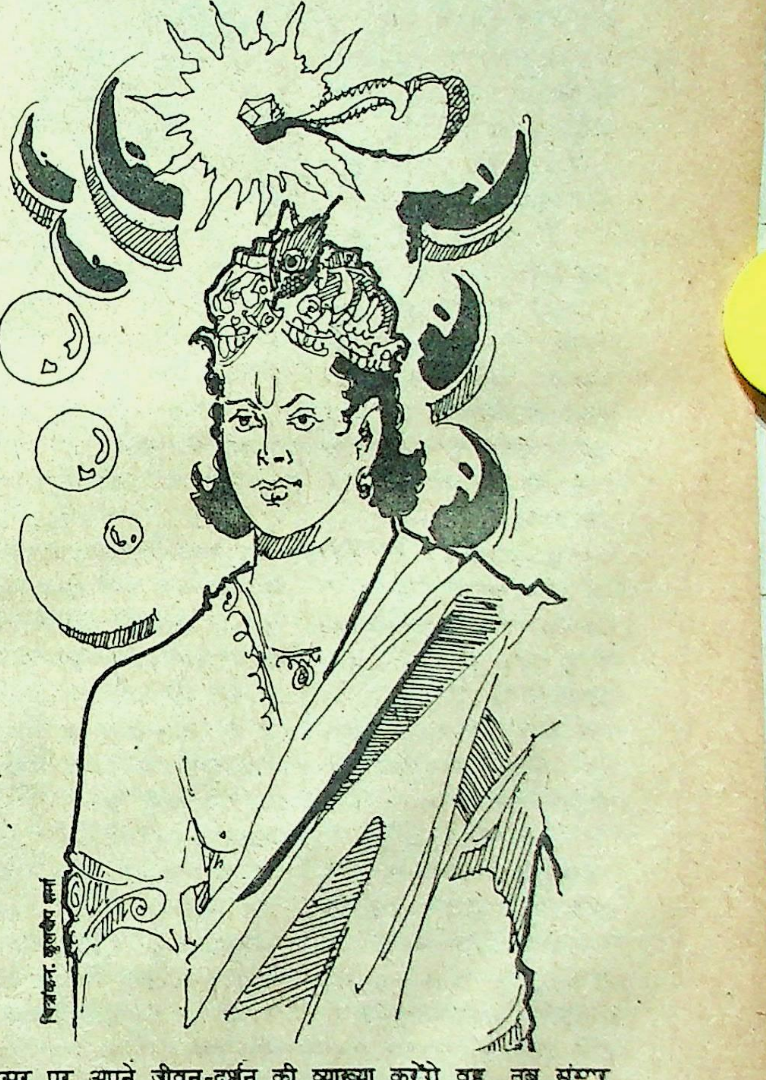

चित्रांकन: कुलदीप शर्मा

अभी भी सारी बातें पारदर्शी शीशे की तरह स्पष्ट हैं उनके सामने. वही चोरी वाली बात! स्यमंतक की चोरी. कभी-कभी हंसी भी आती है उन्हें! किशोरावस्था से लेकर द्वारिकाधीश कहलाने तक के जीवन-क्रम में इतनी ख्याति, इतना यश अर्जित करने के पश्चात इस कुकर्म का भी उत्तरदायी बनना था उन्हें? माना संघर्ष-संकुल रहा उनका जीवन-मार्ग पर संघर्ष के इन असंख्य कांटों में से भी एक सुरभित सुमन की तरह ही तो प्रस्फुटित हुआ है उनका जीवन-पुष्प. नहीं? कीर्ति और उपलब्धि के सोपान दर सोपान चढ़ते, वय के जिस मोड़ पर वे खड़े हैं वहां संपूर्ण आर्य-भूमि के नृपतियों की जय-जयकार और उनके स्तुति-गान ने असंतुलित नहीं कर दिया उन्हें, यही क्या कम है? पर नहीं, संतुलन खोना उन्होंने सीखा ही नहीं. सुख-दु:ख, मान-अपमान, कीर्ति-अपकीर्ति सबमें सम रहना उनके जीवन-दर्शन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है. कभी समय आया तो पूरी व्याख्या ही प्रस्तुत करेंगे अपनी जीवन-दृष्टि की. अभी तक तो लोग उनके कृत्यों के ही साक्षी रहे हैं, उनके चिंतन, उनके दर्शन से कहां ठीक से परिचय हो पाया किसी का? अनुकूल समय की प्रतीक्षा है उन्हें. कभी खोलेंगे वे अपने मन की गांठों को. उन्मुक्त होगा उनका चिंतन प्रवाह—किसी पर्वतीय प्रपात की तरह ही स्वच्छंद, निर्मल और निर्बाध. पर अभी? अभी तो लगा है मस्तक पर यह कलंक. पूरे द्वारिका में गत दो दिनों से चर्चा का एक ही विषय है—कृष्ण ने अच्छा नहीं किया यह। माना स्यमंतक-मणि मूल्यवान है. शुभ है वह. जहां रहता है संपत्ति की वर्षा ही होती है वहां. सारे शुभग्रह कुंडली मारकर ही बैठ जाते हैं उस गृह में, जहां वास होता है स्यमंतक का. मंगल-मय, कल्याण-मय बन आता है वह परिवेश जहां पड़ा रहता है स्यमंतक. विजय-श्री वरण करती है इसके धारक को. पर यह क्या कि मांगने से नहीं मिले तो चोरी ही कर लें उसकी!

हां, मांगा था, अवश्य मांगा था उन्होंने स्यमंतक को सत्राजित् से. पर अपने लिए नहीं. चाहा था उसे नृप उग्रसेन के लिए. असल राजा तो वही थे. भले कृष्ण द्वारिकापति के रूप में ख्यात थे पर राज्य तो उग्रसेन का ही था. और राज्य की सर्वाधिक बहुमूल्य एवं शुभ वस्तु को तो राजा के पास होना ही चाहिए. एक व्यक्ति के पास होने से तो स्यमंतक-मणि केवल उसी का कल्याण कर सकती. राजा के पास आकर वह संपूर्ण प्रजा के कल्याण और समृद्धि का कारण बन सकती थी. तब वह सही हाथों में 'सर्वे भवंतु सुखिन:' के आर्य-आदर्श को अर्थ दे सकती थी. नहीं, स्यमंतक को सत्राजित की निजी संपत्ति बनकर नहीं रहना था, उसे तो राज्य-कोष में आना ही था और यही सोचकर उन्होंने सत्राजित से मणि की मांग की थी. समझनेवाले समझ गये कि अपना कंठहार बनाने के निमित्त ही कृष्ण ने चाहा है इस देदीप्यमान मणि को. जैसे अब तक मन ही नहीं भरा उनका दैहिक साज-श्रृंगार से. किशोरावस्था में मोर-पंख सजाते रहे माथे पर तो अब स्यमंतक को ही मुकुट में जड़ने का शौक हो आया है उनको. उन्हें इस अवस्था में भी हंसी आ रही थी. नील वर्ण पर शोभित यह पीतांबर ही क्या पर्याप्त नहीं था उनके व्यक्तित्व को यथेष्ट आकर्षण प्रदान करने के लिए? किसी मणि-मूंगे और रत्न-आभूषण की क्या आवश्यकता थी उन्हें इस नाशवान तन को सजाने-संवारने हेतु? तन की क्षणभंगुरता और आत्मा की अमरता संबंधी शाश्वत सत्य से परिचय नहीं था क्या उनका? यह विनाशशील शरीर तो अमर आत्मा का आवास-मात्र है. अधिक-से-अधिक उसका वाह्य आवरण, वस्त्र-मात्र है यह आत्मारूपी शरीर का. निरंतर जर्जर और जीर्ण होते-होते अंततः निश्चित विनाश को ही तो प्राप्त होता है वह. तो इस शरीर को सजाने के लिए स्यमंतक की चोरी के सदृश कुकृत्य पर उतरेंगे वे? जैसा सोचा है, उचित अवसर पर अपने जीवन-दर्शन की व्याख्या करेंगे वह, तब संसार समझेगा शरीर का क्या महत्व है उनकी दृष्टि में. पर अभी तो एक भयानक प्रश्न चिह्न बनकर ही अड़ा है यह स्यमंतक उनके समक्ष. सभी सत्राजित् के सदृश लोभी और मिथ्यावादी की बातों में आ बिना सोचे-समझे मणि के अपहरण का आरोप लगा बैठे हैं उन पर.

दोष उनका भी कुछ कम नहीं है. सभी लोगों की तरह स्यमंतक की चकाचौंध ने उन्हें भी तो चकित कर दिया था.

सत्राजित् बहुत दिनों से द्वारिका से गायब था. कहा जाता था कि वह किसी अरण्य गुहा-गह्वर में तपस्यारत था. सूर्य का उपासक था सत्राजित्. नगर में रहता, तब भी सागरतीर जाकर कमर-भर जल में

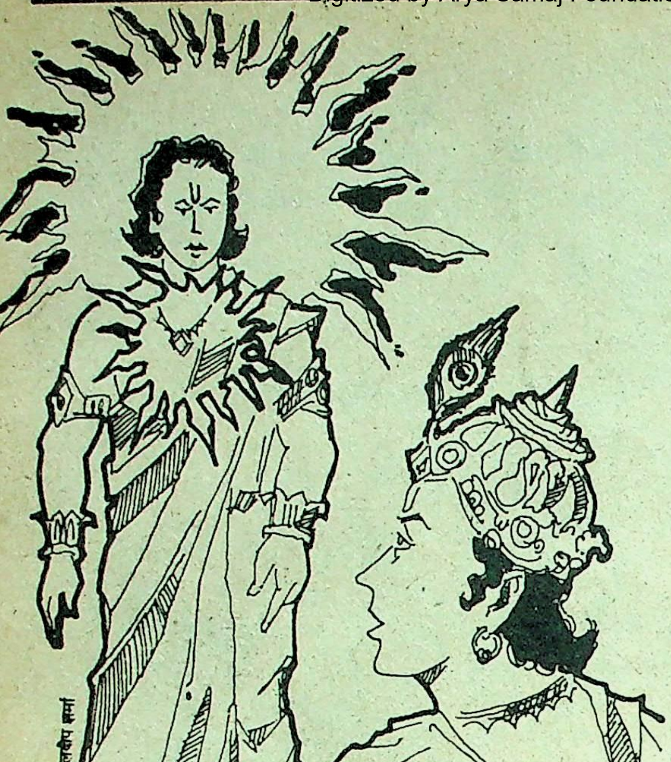

अतिक्रमण

□ हरिशंकर सक्सेना

नगर में 'अतिक्रमण हटाओ' अभियान के तहत नगर पालिका के कर्मचारी पुलिस बल के साथ सक्रिय थे. एक प्रधानाचार्य की लिखित रिपोर्ट पर वे उनके कॉलेज की 'स्पोर्ट्स फील्ड' में भी पहुंच गये. 'फील्ड' कालेज से अलग सड़क पार थी. उसमें किसी ने एक पक्की कोठरी बनाकर लकड़ी की टाल जमा ली थी. अभियान दल ने वहां पहुंचते ही सबसे पहले टाल मालिक के दो डंडे जमाकर उसे तुरंत सामान हटाने की हिदायत दी और फिर उस कोठरी को भी ढहा दिया. यह कार्य कालेज-स्टाफ और छात्रों के सामने ही पूरा किया गया.

घंटेभर बाद अभियान दल वापस चला गया और प्रधानचार्य को कोठरी की ईंटें कालेज ले जाने की इजाजत दे दी. उन्होंने छात्रों और अध्यापकों के सहयोग से सारी ईंटें बैलगाड़ी में भरवा-भरवाकर कालेज पहुंचवा दीं. कालेज में ईंटों का एक खासा ढेर लग गया.

कई दिन बाद कालेज से एकाएक तमाम ईंटें गायब हो गयीं.

खड़ा वह घंटों सूर्याभिमुख हो गायत्री मंत्र का जप करता रहता. सहस्र-सहस्र-अंजलि-सागर-जल से तर्पा करता वह नित्य सूर्य-देव का. पर यह तपश्चर्या जैसे पर्याप्त नहीं थी और सहसा विलुप्त ही हो गया वह द्वारिका से.

लौटा तो नगर में एक अभूतपूर्व हंगामा खड़ा हो गया. नगर-द्वार पर उसके उपस्थित होते ही संपूर्ण नगर ही जैसे देदीप्यमान हो आया. प्रकाश का एक महान पुंज ही जैसे महाद्वार के अंदर प्रवेश हेतु प्रयत्नशील था. भीषण चकाचौंध से सभी की आंखें चौंधिया गयी थीं और कोई समझ नहीं पा रहा था कि प्रकाश का यह अद्भुत वृत्त कैसे और कहां से प्रकट हो गया था. सत्राजित् के तन का कोई भाग भी तो दृष्टि-पथ में आ नहीं रहा था—बस प्रकाश, प्रकाश, और प्रकाश. ऐसी स्थिति में अगर किसी भी नगरवासी ने उसे पहचान नहीं पाया तो इसमें आश्चर्य क्या?

''स्वयं सविता (सूर्य) ही आपके दर्शनों को पधार रहे हैं, सूर्य-मंडल को छोड़कर.'' कुछ लोग दौड़े-दौड़े पहुंचे थे उनके पास. स्वयं उपासना में रत थे उस समय वह प्रात: में पद्मासन लगाये वे स्वयं भगवान सविता के महा मंत्र गायत्री—के जाप में लीन थे. नित्य का यह कार्य था उनका. मंदिर के पास ही पहुंच गये लोगों के ऊंचे स्वर ने उनकी एकाग्रता में व्यवधान अवश्य उपस्थित किया पर वे पूजा समाप्त कर ही उठे.

''क्या बात है?'' अपने सहज सस्मित रूप में पूछा था उन्होंने विस्मय-विमुग्ध पुरवासियों से.

''सविता, भगवान सूर्य पधार रहे हैं नगर में. आप भी तो सूर्योपासक हैं. नित्य गायत्री-जाप करते हैं. प्रतीत होता है आपकी पूजा से ही प्रसन्न हो वे...''

''चुप करिए,'' श्रीकृष्ण ने उन्हें बीच में ही टोका, ''मेरी पूजा-मात्र पूजा के लिए होती है. आत्म-शुद्धि के लिए. कोई विशेष लक्ष्य नहीं उसका. किसी फल-प्राप्ति अथवा देव-दर्शन का लक्ष्य नहीं है इस अर्चना-आराधना का. किसी देवी-देवता को मैं क्यों कष्ट देने लगा यहां तक आकर मुझे दर्शन देने हेतु?''

''पर हम मिथ्या-भाषण नहीं कर रहे. स्वयं सविता...नहीं विश्वास हो तो आप स्वयं चलकर देख लें. इसीलिए तो हम दौड़े पहुंचे हैं आप तक.'' पुरवासी अपने विश्वास पर अडिग थे.

''चलिए.'' उन्होंने अपने पीतांबर को कंधों पर सहेजा था और नगर-जनों के साथ लग गये थे.

सत्राजित् अब तक नगर के अंदर प्रवेश कर चुका था और नगर-मार्ग को प्रोद्भासित-प्रज्ज्वलित करते हुए सच एक प्रकाश-पुंज की तरह ही अपने गंतव्य की ओर बढ़ता जा रहा था वह.

देखिए, देखिए, स्वयं रवि-देव ही हैं ये या नहीं? स्वयं सविता...नागर लोगों ने समवेत कंठ से कहा था. उनके आश्चर्य का अंत नहीं था. निर्णय के लिए वे श्रीकृष्ण के मुख की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखे जा रहे थे.

''सविता नहीं, सत्राजित है यह.'' उन्होंने मुस्कराते हुए कहा था. ''स्यमंतक मणि मिल गयी है इसे किसी गिरा-गह्वर में. भगवान सूर्य का प्रसाद भी कह सकते हैं इसे. पूजा-अर्चना व्यर्थ भी कहां जाती है? जिसे हम मात्र संयोग कहते हैं, नियति के किसी सुनियोजित क्रिया का परिणाम ही होता है वह. सच भगवान सूर्य संतुष्ट हो गये सत्राजित् की साधना से. साधार नहीं है यह स्यमंतक मणि जिसके प्रकाश से सत्राजित सूर्य की तरह ही भासित हो रहा है. बहुत प्रभाव है इस मणि का. पर नहीं रहना चाहिए इसे सत्राजित् के पास. पात्र नहीं है वह इसका. दुरुपयोग ही करेगा वह इस महान् मणि का.''

अब लगता है यहीं पर गलती हो गयी थी उनसे. सार्वजनिक अभिव्यक्ति दे दी थी उन्होंने मणि के महत्व और सत्राजित की अपात्रता को. अब अगर लोग सत्राजित् के इस कथन में विश्वास करने को बाध्य हैं कि श्रीकृष्ण ने चोरी कर ली है स्यमंतक की तो उसमें उनका दोष ही क्या?

पर खूब निकला सत्राजित, श्रीकृष्ण सोच रहे थे. एक ढेले से दो शिकार करने को उद्यत है वह—श्रीकृष्ण को बदनाम करने और मणि को कहीं सुरक्षित रख छोड़ने का. श्रीकृष्ण की निरंतर बढ़ती कीर्ति उसके लिए सहय नहीं हो रही थी और उन्हें अपकीर्ति से मंडित करने के अवसर की खोज में ही निरंतर लीन रहता था वह. सूर्य की उत्कट उपासना के मूल में भी यही बात थी. इस रूप में स्वयं को शक्ति-संपन्न कर ले

सभी अध्यापकों में रोष फैल गया. उन्होंने कालेज के चौकीदार को फटकारा–

"क्यों बे मंगली, बताता क्यों नहीं, ईंटें कहां गयीं यहां से?"

मंगली बहुत घबड़ाया हुआ था. फिर भी उसने अनभिज्ञता प्रकट की, "मुझे नहीं मालूम साब!"

अध्यापकों का शक उसी पर था. उन्होंने उसे धमकी दी, "देख सच-सच बता दे वरना तेरी नौकरी चली जायेगी." मंगली को पैरों तले से जमीन खिसकती दिखायी दी. उसका चेहरा पसीने से तर हो गया. वह कुछ कहना चाहता था लेकिन बोल नहीं पा रहा था. लगता था कोई बात उसके गले में अटकी हुई है. अंततः कुछ अध्यापक उसे एकांत में ले गये.

"आखिर बात क्या है, बताता क्यों नहीं?" उन्होंने कहा, "अगर तू सच बता देगा तो हम तुझे बचा लेंगे." मंगली को थोड़ा सहारा मिला. उसने तुरंत पोल खोल दी.

"मैं क्या करूं साब, कल प्रिंसिपल साब ने सब ईंटें ढुलवा लीं... उनका नया मकान जो बन रहा है." मंगली की बात सुनकर सभी लोग हतप्रभ रह गये. उन्हें लगा कि असली अतिक्रमण यही है जो देश को खोखला कर रहा है. □

चाहता था वह कि लोग श्रीकृष्ण को भूलकर उसी के जय-गान में लग जायें. इस प्रयास में उसे सफलता क्या मिलती, पर इस मणि को प्राप्त कर व्यर्थ की अशांति मोल ले ली थी उसने.

"सत्राजित् की प्रकृति और उसके कुत्सित लक्ष्य से पूरी तरह परिचित श्रीकृष्ण मणि को उसके पास से हटाने को कटिबद्ध थे.

"इस मणि को तुम राजकीय कोषागार में जमा कर दो." उसी शाम सत्राजित के महल पर स्वयं पहुंचे थे और यह प्रस्ताव दे दिया था.

"पर क्यों? मणि तो मेरी अपनी संपत्ति है. इसे भगवान सविता ने मेरी तपस्या से प्रसन्न होकर मुझे प्रदान किया है." सत्राजित् ने छूटते ही कहा था. पश्चिम-आकाश पर घिरते संध्या के अंधकार की तरह ही उसके मुख पर आशंका और भय का भाव घिर आया था.

"तुम ठीक बोलते हो?" श्रीकृष्ण ने पूछा था.

"क्या?"

"भगवान सविता स्वयं तुम्हारे समक्ष अपने हाथों में मणि लिये प्रकट हुए थे?"

सत्राजित् के मुख से सहसा कोई शब्द नहीं निकला था.

"बोलते क्यों नहीं?"

"नहीं, वे प्रकट नहीं हुए थे."

"तब?"

"फिर भी यह उन्हीं की अनुकंपा से मिली है. पूजा-उपासना के पश्चात् मैं पहाड़ों में एक ओर भटक गया था कि एक गुफा में यह पड़ी मिली."

"तो यह राजकीय संपत्ति हुई."

"कैसे?" सत्राजित् के मुख पर अंकित भय और गहरा हो गया था.

"जिस स्थान पर तुम्हें यह मणि मिली वह महाराज उग्रसेन के शासन-क्षेत्र के अंतर्गत ही आता है. अतः इस खनिज-संपदा पर महाराज का स्वाभाविक अधिकार है."

"यह तो घोर अन्याय है."

"अन्याय नहीं, न्याय है यह. एक बात तुम बताओगे?" श्रीकृष्ण ने गंभीर होते हुए पूछा.

"क्या?"

"इस स्यमंतक मणि से जो तुम्हें लाभ होगा, तुम्हारी समृद्धि-संपत्ति में जो वृद्धि होगी, उसे तुम स्वयं तक ही सीमित रखोगे या इससे अन्य नगरवासियों अथवा समग्र प्रजा को भी लाभ होगा?"

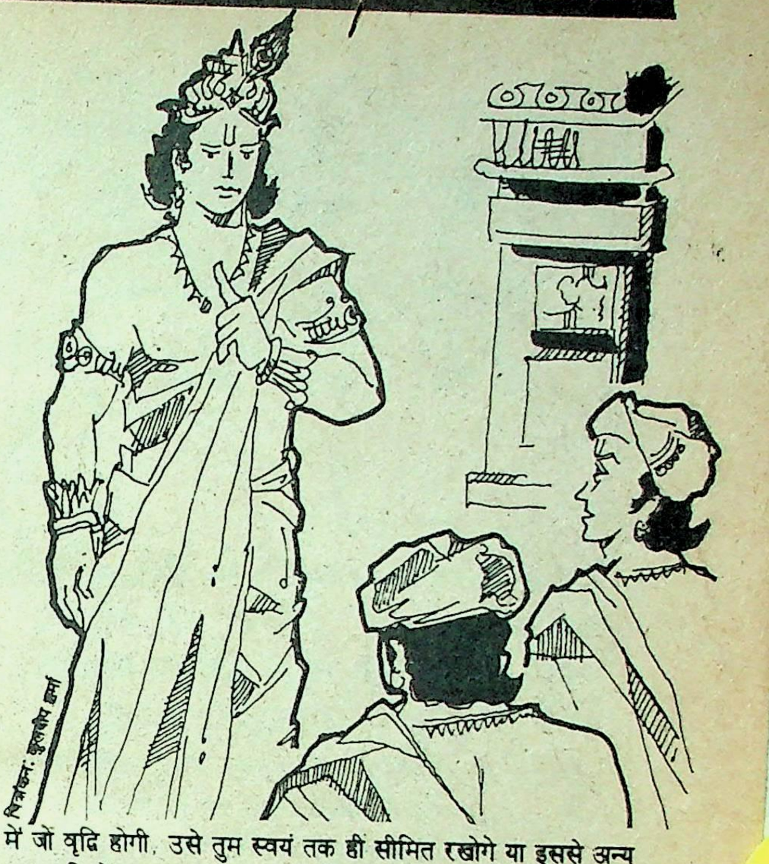

"कैसी बात करते हैं आप?" सत्राजित् खीझकर बोला. खार तो वह सदा उनसे खाये ही रहता था.

"कैसी बात क्या? एक सीधा-सा प्रश्न तो पूछा है मैंने तुमसे."

"यह मणि मेरे अध्यवसाय, मेरी साधना, मेरी तपश्चर्या के फलस्वरूप मुझे उपलब्ध हुई है. भगवान सविता ने विशेष अनुग्रह-स्वरूप मुझे इसे प्रदान किया है. मैं उनके इस आशीर्वाद से स्वयं को लाभान्वित करूंगा, शेष जन की मुझे कौन चिंता हुई है?"

"यही तो, यही तो, "श्रीकृष्ण ने गंभीर होते हुए कहा, "स्वार्थांध हो रहे हो तुम. जो सार्वजनिक संपत्ति को अपना मान बैठे, उससे अधिक संकीर्ण-बुद्धि कौन होगा! सभी समान हैं. समत्व का यह भाव ही व्यक्ति की सच्ची उपलब्धि, उसकी वास्तविक सिद्धि है. तुम्हारी साधना अभी अपरिपक्व ही है. सिद्धि के शिखर पर तुम पहुंचे नहीं, साधना के अनगढ़ सोपानों पर ही भटक रहे हैं अभी तुम्हारे चरण. भगवान सहस्रांशु क्यों देने लगे तुझ स्वार्थ-प्रेरित को यह दिव्य दान? राज्य की संपत्ति है यह, राज्य-कोष में ही इसे जाना है."

"अपना दर्शन और अपना यह दीर्घ भाषण किसी और के लिए रखिएगा." सत्राजित् अपने महल-द्वार की ओर बढ़ते हुए बोला, "यह मणि मेरी रहेगी."

"अगर मैंने इसे ले लिया तो?" कृष्ण ने कहा तो सत्राजित् मुड़ा और साथ लगे उत्सुक और अपार जन-समूह को संबोधित करते हुए बोला, "सुन लो पुरजन, नगर के सभी संभ्रांत नागरिक! क्या कह रहे हैं आपके द्वारिकापति. मणि लेकर रहेंगे यह." कहते हुए वह द्वार के अंदर चला गया. प्रकाश-पीड़ित लोगों के नेत्रों को मुक्ति मिली पर सभी के कानों में सत्राजित् की अंतिम बात देर तक गूंजती रही, "सुन लें सभी संभ्रांत नागरिक!...मणि लेकर रहेंगे आपके द्वारिकापति!"

क्रमशः

छोटा बकुलपुर का यात्री

'वह कागज पाकर पहरेदारों ने चैन की सांस ली. अब उन्हें शून्य में अंधेरे में नहीं टटोलना पड़ेगा ' कैसा था यह कागज और इसका प्रभाव कि वे उसे अकाट्य प्रमाण मान रहे थे...?

☐ मानिक वंद्योपाध्याय

जन्म : १९०८

बंगला साहित्य के महान रचनाकारों में एक. 'अनुशीलन समिति' के संपर्क में आकर पढ़ाई छोड़ मानिक साहित्यिक जीवन से जुड़ गये. पहला कहानी संग्रह 'अतशि मामी'. १९३५ में पहला उपन्यास 'जननी' प्रकाशित. यहीं से शोषितों और दलितों के लिए महत्वपूर्ण कथायात्रा की शुरुआत.

प्रमुख कृतियां : 'पुपुल नाचेर इतिकथा', 'सोनार चेदामी' व 'पद्मानदीर माझी' (उपन्यास).

४० उपन्यासों व २५० कहानियों के इस यशस्वी कृतिकार की रचनाओं के अनुवाद विश्व स्तर पर हुए हैं.

निधन : ३ दिसंबर, १९५६

अनुवाद: डा. माहेश्वर

गाड़ी करीब एक घंटा लेटा थी.

ठीक समय से पहुंचने से भी प्रायः शाम हो गयी. स्टेशन की मिट्टी-तेल की बत्तियां उसके पहले ही जलायी जा चुकी थीं. प्लेटफार्म पर थोड़े से यात्री, शंकित और स्तब्ध, आने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे. अधिक रात को आने वाली दूसरी गाड़ी के लिए इस स्टेशन पर साधारणतया और अधिक यात्री इकट्ठा होते देखे गये हैं. उस समय यात्रियों के अभाव को सिपाहियों का एक दल पूरा कर रहा था.

गाड़ी डेढ़ मिनट रुकती है. इस अल्पावधि के लिए जो व्यस्तता और कोलाहल सुनायी पड़ता है, वह भी आज अपेक्षाकृत बहुत कम लग रहा था. गाड़ी छूटने के दो-चार मिनट बाद ही स्टेशन का इलाका यात्रीशून्य होकर अद्भुत रूप से शांत और भुतहा लगने लगा. जो लोग गाड़ी से उतरे थे, वे बिना किसी ओर देखे जल्दी से गेट पर टिकट देकर अपने-अपने रास्ते चले गये.

स्टेशन के बाहर आकर भी कोई रुक नहीं रहा था. स्टेशन से सटे हुए तिराहे के मोड़ पर सिर्फ दो-तीन दूकानों में बत्ती जल रही थी, बाकी सब बंद थीं. चाय की दूकान की रोशनी सबसे तेज थी. आमतौर पर इस समय दूकान ग्राहकों से भरी रहती थी. पर आज एकदम सूनी पड़ी थी. बरगद के विशाल वृक्ष के नीचे बने हुए चबूतरे पर दो किसान थोड़ी-सी साग-सब्जी सजाये बैठे थे, मगर भिंडी और बैंगन का मोल पूछने की जिज्ञासा भी किसी के मन में नहीं उठ रही थी.

स्टेशन की बत्तियों की तरह ही दिवाकर की आंखें भी टिमटिमा रही थीं. उसने इधर-उधर देखा. उसका जाना-पहचाना स्टेशन अचानक जिस तरह यात्री शून्य हो रहा था, उसे जादू के खेल जैसा लग रहा था. सशस्त्र सिपाहियों के एक दल द्वारा स्टेशन पर दखल कर लेने से स्टेशन का रूप ऐसा कुछ नया नहीं लगा उसे. ऐसे दृश्य उसे देखने का उसे अभ्यास था. कल यहां जो घटना घट गयी थी, उसका विवरण भी उसने गाड़ी में सुना था. उसे ऐसे ही दृश्य की उम्मीद थी.

"देखा तूने?"

बच्चे को छाती से चिपकाये अन्ना ने दबे गले से कहा, "देखना क्या है? हंगामा हुआ है, पहरा बैठ गया है, नहीं तो क्या ठेठर (थियेटर) होगा? बौड़म की तरह खड़े मत रहो, चलो चलते हैं."

बीड़ी-सिगरेट के कश खींचते हुए कई बाबू जैसे लोग लापरवाह अंदाज में खड़े होकर बड़ी ही उपेक्षा के साथ यात्रियों को देख रहे थे, दो-एक लोगों से नाम-धाम भी पूछ रहे थे. अब उनकी नजर दिवाकर पर पड़ी. अधेड़ उम्र का गिट्ठा आदमी मुंह टेढ़ा करके बोला, "जाने दो. बेकार का आदमी है, किसान होगा."

उसका खद्दरधारी छोकरा-सा साथ ही मुस्कराया. वह पान से लाल मुंह में और दो पान भरकर चबाते-चबाते अन्ना की ओर देखता रहा. अचानक पिच से पीक थूककर उक हाथ ऊंचा करके उंगली के इशारे से दिवाकर को अपने पास बुलाया, "ऐ ! सुन !"

दिवाकर ने उसे देखकर भी नहीं देखा, सुनकर भी नहीं सुना. अपनी पोटली बगल में दबाये, रस्सी में बंधी हंड़िया को हिलाते हुए अन्ना को साथ लिये धीरे-धीरे वह कदम बढ़ाता रहा.

बाबुओं में से तीन आदमी तब उसके सामने आ खड़े हुए.

"टिकट है?"

"हां, है." कमीज की जेब से दिवाकर ने दो टिकट निकालकर उन्हें दिखा दिये.

"कहां जाओगे?"

"जी. छोटा बकुलपुर जाऊंगा."

दिवाकर की बात सुनकर वे जैसे हल्के से चौंक पड़े. पानखोर छोकरे ने फिर पिच से थूका. कल के हंगामे में प्लेटफार्म की लाल बजरी पर

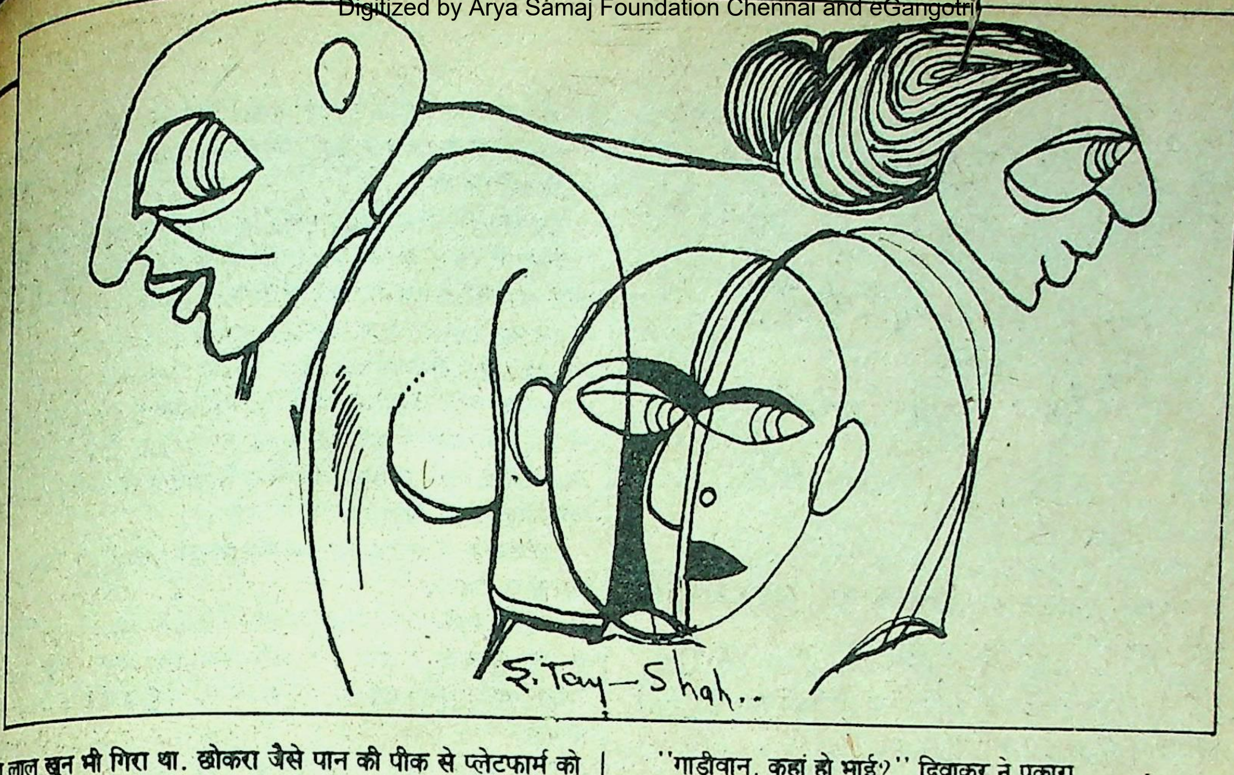

थोड़ा लाल खून भी गिरा था. छोकरा जैसे पान की पीक से प्लेटफार्म को और भी रंगीन कर देना चाहता था. दिवाकर को भी पान खाना अच्छा लगता है. रास्ते में पूरे पांच पैसे देकर उसने भी एक पान खरीदा था. अब उसने वही पान कागज की पुड़िया में से निकालकर मुंह में धर लिया. वे लोग उसके इतने पास खड़े थे कि उसे लग रहा था, पान इसी कारण उसे कड़वा लग रहा है. दूर एक कारखाने की बत्ती उसकी आंखों में चुभ रही थी. लग रहा था, वह बत्ती जैसे अंधेरे आकाश में बिना किसी सहारे के झूल रही है. उसी कारखाने की हड़ताल को लेकर कल स्टेशन पर हंगामा हुआ था. उनके तीन नेताओं को पकड़कर ट्रेन से कहीं ले जाया जा रहा था, जिन्हें छुड़ा ले जाने के लिए कई सौ मजदूर स्टेशन पर जा पहुंचे थे. तब गोली चली थी और खून बहा था. गाड़ी में उसी घटना का विस्तृत विवरण सुनकर दिवाकर का मन बहुत खराब हो गया था.

गिट्ठे आदमी ने पूछा, "इतनी रात को छोटा बकुलपुर जाओगे? वहां की खबर जानते हो?"

दिवाकर ने निर्लिप्त भाव से कहा, "खबर सुनकर ही आया हूं, बाबू. वहां हमारे नाते-रिश्तेदार रहते हैं. देखने आया हूं कि वे जिंदा हैं या स्वाधीन हो गये हैं."

गिट्ठे ने कहा, "बाप रे! तुम्हारी जुबान तो बड़ी तेज है?"

"नहीं बाबू, गरीब आदमी हूं, तेज जुबान कहां से पाऊंगा?"

तिराहे के पास दो बैलगाड़ियां जमीन में मुंह धंसाये पड़ी थीं और पास में जमीन पर बैठे एक जोड़ा दुबले और शांत बैल जुगाली कर रहे थे. आमतौर पर स्टेशन के सामने दो-तीन इक्कड़ा घोड़ा गाड़ियां खड़ी रहती हैं. उनके घोड़े जितने प्राचीन होते हैं, गाड़ियां उनसे भी अधिक. बेगारी में पकड़े जाने के डर से गरीब गाड़ीवानों ने आज अपनी गाड़ियां बाहर नहीं निकाली थीं. घोड़ा गाड़ी पर बैठकर ससुराल जाने लायक माली हालत कभी नहीं रही दिवाकर की. फिर भी आज वह घोड़ा गाड़ी पर सवार होकर ही जाता. इसी उद्देश्य से उसने अन्ना का एक चांदी का गहना बंधक रखकर पैसों का जुगाड़ किया था. छोटा बकुलपुर पहुंचते-पहुंचते रात हो जायेगी, यह जानकर ही वे रवाना हुए थे. पर उन्हें आशा थी कि औरत और बच्चे को लेकर तीन दिन का रास्ता वे घोड़ा गाड़ी की मदद से जल्द ही पार कर लेंगे. पर अब सिर्फ बैलगाड़ी का भरोसा था.

"गाड़ीवान, कहां हो भाई?" दिवाकर ने पुकारा.

दोनों बैलगाड़ियों के मालिक एक साथ प्रकट हुए. हल्के अंधेरे में दिवाकर को लगा कि एक आदमी जैसे पुराने बरगद से और दूसरा पास की दूकान के बेड़े में से प्रकट हुआ है.

उन्हें कोई जल्दी न थी, बैलगाड़ियों में वैसा कंपटीशन न था आराम-आराम से उन्होंने जानना चाहा कि दिवाकर कहां जायेगा. दिवाकर ने छोटा बकुलपुर का नाम लिया तो दोनों गाड़ीवानों ने सिर हिलाते हुए कहा, "अरे बाप रे! रात में छोटा बकुलपुर कौन जायेगा? वहां सैना-पुलिस गांव घेरे हुए है. लड़ाई चल रही है."

चारों लोगों ने अपने सामने की सड़क पर नजर दौड़ायी. छोटा बकुलपुर को जानेवाले रास्ते ने थोड़ी दूर जाकर मोड़ लिया था मगर उनकी नजर उस मोड़ तक नहीं जा रही थी. लग रहा था, खतरनाक अंधेरे में सड़क खो गयी है.

बायें हाथ में गोद के बच्चे को संभालते हुए अन्ना ने दिवाकर को पीछे कर दिया और खुद आगे आकर कमान संभाल ली.

"वहां तक मत जाना, चाचा जितनी दूर जा सको ले चलो. बाकी

खाते समय

□ राजेश शास्त्री

चुनाव के दिनों, अपने निर्वाचन क्षेत्र में दौरा करते समय नेताजी ने एक वृद्धा से वोट देने का आग्रह किया. इसके आगे नेताजी. कुछ कह पाते उसके पूर्व ही वृद्धा ने कहा, "अरे... भईया तुम सभी, नेता लोग, सारे के सारे समय भ्रष्टाचार में लगे रहते हो, और चुनाव के दिनों में हाथ जोड़े हुए आ जाते हो."

नेताजी बोले, "देखिये, माताजी, जहां तक भ्रष्टाचार की बात है, तो सभी अंगुलियां एक-सी तो नहीं होतीं!"

इस बात पर तपाक से वृद्धा बोली, "देखो बेटा, अंगुलियां तो अलग-अलग होती हैं, पर खाते समय सभी एक हो जाती हैं."

□

रास्ता हम पैदल चले आयेंगे. किराया तुम्हें अच्छा ही दूंगी.''

जिस गाड़ीवान को अन्ना ने चाचा कहा था, उसका नाम राम था.

राम ने दूसरे, अपेक्षाकृत युवा गाड़ीवान से कहा, ''रात के समय कौन परेशानी मोल ले? क्यों घोसू?''

'ओ मां! तुम मरद होकर डर रहे हो!'' अन्ना ने मीठे स्वर में कहा, ''गोद में बच्चा लिये औरत जाने को तैयार है और तुम लोग मरद होकर डर के मारे पोंक रहे हो!''

राम चुप रह गया. उसकी उम्र ज्यादा है पर साहस कम.

गगन घोष ने कहा, ''कमलतला तक जा सकता हूं.''

चलो, यही सही. कमलतला का शिवान पार करके अगर गाड़ी वाला उतार दे तब भी आधा मील पैदल चना होगा. पूरे तीन मील चलने से तो कहीं यह अच्छा है. घोष ने गाड़ी में बैल नांध दिये तो अन्ना उस पर जा बैठी. उसे इस कसरत का अभ्यास है. गगन की बैलगाड़ी लड़बड़ाती हुई चल रही थी. बैल भी इतना दुबला और बूढ़ा था, अगर गगन उसकी पूंछ ऐंठकर सोंटा न मारे तो वह एक कदम भी आगे धरने को तैयार न था. अन्ना ने बड़े आग्रह के साथ छोटा बकुलपुर की खबर पूछी, हालांकि गांव पहुंचने के पहले अपने बाप-भाई का कुशल समाचार जानने की आशा उसने नहीं की थी. गांव के बारे में ढेर सारे भीतरी विवरण और अनेक नयी खबरें गगन से उसे जानने को मिलीं. दूर से उन्होंने सुना था कि छोटा बकुलपुर की हालत बहुत खराब है. प्रचंड आघात से गांव का गृहस्थ जीवन तहस-नहस और चूरमार हो गया है. गगन से मालूम चला कि मामला ठीक-ठीक वैसा नहीं है. शुरू-शुरू में गांव पर खूब अत्याचार हुआ था. पर उसके बाद गांव के लोगों ने एकजुट होकर तैयारी करके ऐसा मोर्चा बनाया कि चौधरियों और घोषों का कोई आदमी दो दर्जन राइफिल धारियों के बिना गांव के भीतर घुसने की हिम्मत न करता था. एक बार मुंह खुल गया तो गगन घोष को रोके कौन? बैल की पूंछ उमेठते हुए मुंह से टिटकारियों की तरह-तरह की और अद्भुत आवाजें निकालने के अलावा बीच-बीच में वह चारों ओर के हालात भी बयान कर रहा था. उसके अनुसार सचमुच कलयुग वाकई अब अपने अंतिम चरण में है. चारों ओर के लच्छन देखकर तो ऐसा ही लगता है, वरना कहीं राजा और प्रजा में लड़ाई होती है?

''हम कलजुग के पापी लोग हैं. इस लड़ाई में हम मरेंगे. फिर हमारे बाल-बच्चे सतजुग में मौज करेंगे.''

अंधेरे निस्तब्ध रास्ते पर बैलगाड़ी काफी शोर करती हुई चल रही थी. रास्ते के किनारे के किसी-किसी घर से बीच-बीच में टार्च की रोशनी बैलगाड़ी पर आ पड़ती और कोई गंभीर स्वर में पूछता, ''कौन जा रहा है? कहां जाओगे?''

गगन जवाब देता, ''इस्टेशन से मेहरारू (औरत) उतरी है टरेन से, कमलतल्ला जायेगी.'' जब तक बैलगाड़ी मकानों और पेड़-पौधों की आड़ में नहीं हो जाती, तब तक टार्च की रोशनी अन्ना की देह से सटी रहती. ट्रेन से उतरा हुआ आदमी निरीह, निर्दोष औरत ही है जो गाड़ी में जा रही है—इस बात का प्रत्यक्ष ज्ञान, जितनी देर संभव हो, कर लेना उन्हें जरूरी लग रहा था.

इस इलाके में बस्ती बहुत घनी है. एक-दूसरे से सटे हुए बड़े-बड़े गांव हैं. फिर भी, अभी रात के पहले पहर में ही सड़क पर लोगों का आना-जाना प्रायः बंद हो गया था. गांव के लोगों का चलना-फिरना भी रहस्यमय हो गया था. इसी रास्ते से लोग एक से दूसरे गांव को जाते हैं. पर अब लगता है, जैसे लोगों को कहीं आने-जाने की जरूरत ही नहीं रही.

अचानक एक आदमी रास्ते के पास के अंधेरे से निकलकर रास्ते पर आ गया और तेजी से कुछ दूर चलने के बाद फिर उसी अंधेरे में मिल गया. एक-दो लोगों के इस प्रकार के आने-जाने से रास्ते की निर्जनता और निस्तब्धता ज्यादा अस्वाभाविक लग रही थी.

कमलतला में पुलिस की एक बड़ी छावनी पड़ी. उधर देखकर गगन सिर खुजलाने लगा.

''छोटा बकुलपुर तक चलूं क्या?'' गगन ने अनुमति मांगने के स्वर में कहा. दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया. फिर गगन ने खुद ही कहा, ''चलो बहन, तुम्हें छोड़ आते हैं. बीच रास्ते में तुम्हें कैसे उतार दूं, तुम्हीं बताओ?''

खुश होकर अन्ना ने अपनी आंतरिक कृतज्ञता जताते हुए कहा, ''भगवान भी मुंहजौंसा अंधा है, नहीं तो तुम्हारे पास नयी गाड़ी और जवान बैल होना चाहिए.''

छोटा बकुलपुर का शिवान छूते-छूते एक साथ तीन-तीन टार्चों की रोशनी बैलगाड़ी पर पड़ी, साथ ही किसी ने हांक लगायी. गांव के प्रवेश द्वार पर पुलिस का पहरा बैठ गया था जिससे उस विद्रोही गांव को बाहरी दुनिया से काट दिया गया. गगन की बैलगाड़ी के असमय प्रकट होने से उनके बीच थोड़े आनंद और उत्तेजना का संचार हुआ. गाड़ी में सिर्फ दो बैल, एक गाड़ीवान, एक पुरुष और एक बच्चे के साथ एक औरत देखकर उन्होंने अंदाजा लगाया कि डर का कोई कारण नहीं है.

देखते-देखते सात-आठ लोगों ने बैलगाड़ी को घेर लिया. टोपी को ठीक से सिर पर बिठाते हुए अधेड़ उमर के आदमी ने गंभर आवाज में कहा, ''कहां से आ रहे हो?'' लगता था वही उनका लीडर था.

गगन ने उत्तर दिया, ''इस्टेशन से टरेन की पसिंजर...''

''शट अप! तुझसे कौन पूछ रहा है? तुम्हारा नाम?''

''मेरा नाम दिवाकर दास है.''

''बाप का नाम? कहां रहते हो? क्या करते हो? इधर क्यों आये हो.''

''बाप का नाम मनोहर दास, तिरपन के अकाल में स्वर्ग गये. बीमारी कुछ नहीं थी, उपवास से मरे. हावड़ा में रहता हूं, घनश्याम बेटेनट कारखाने में मजदूर हूं. इधर के हंगामे की बात सुनी तो औरत रोने लगी, उसके बाप-भाई पता नहीं मरे या जिंदा हैं. मैंने सोचा, कारखाने की हड़ताल दो-चार दिन में खतम होने वाली नहीं है. आजकल के हालात ही ऐसे हैं. सोचा, औरत को लेकर देख आऊं, ससुराल का क्या हाल-चाल है.'' विनम्रता पूर्वक, स्पष्ट और सरल भाषा में अपने आने का कारण और विवरण पेश किया. चूंकि उसने रो गाकर अपनी बात नहीं कही और डर से कांपते हुए उनके पैरों पर गिरकर दया की भख नहीं चाही इसलिए शायद उसकी व्याख्या पसंद नहीं आयी.

''पोटली में क्या है? बम या बंदूक?''

''कपड़े हैं.''

''तुम वाकई दिवाकर दास हो, फैक्ट्री में मजदूरी करते हो, ससुराल

आये हो, तुम्हारा कोई बुरा इरादा नहीं है इसका कोई सबूत दे सकते हो?''

''क्या सबूत दूं बताइये? कोई गवाह साथ तो लेकर आया नहीं.''

सोलह-सत्रह वर्ष का गोरा चिट्टा स्वयं सेवक लड़का खिलखिलाकर हंस पड़ा. लंबे-चौड़े थुलथुल प्रौढ़ ने उसे डांटा तो अचानक उसकी हंसी थम गयी और झटके से हंसी रुकने के कारण खांसते-खांसते वह बेदम हो गया.

अन्ना ने कहा, ''गांव के दस-पांस किसानों को बुलाओ न बाबू जी तो दो-चार लोग चीन्हेंगे ही. मैं इसी गांव की लड़की हूं.''

''वे तो चीन्हेंगे ही, न चीन्हे तो भी चीन्ह लेंगे. जिनके साथ उनकी मेलीभगत है, उन्हें नहीं चीन्हेंगे तो किसे चीन्हेंगे.''

अन्ना ने दिवाकर के कान में फुसफुसाकर कहा, ''जानते हो? गांव के लोगों को बुलाने में डर रहा है.''

लंबे-चौड़े थुलथुल आदमी ने उंगली उठाकर कहा, ''ऐ ! फुसफुसाकर क्या बात हो रही है? गुपचुप सलाह-मशविरा नहीं चलेगा, खबरदार!''

''बाबू, क्या गांव में जाना मना है? दफा १४४ लगी है?'' दिवाकर ने पूछा.

लंबे सिर और बढ़ी हुई जुल्फों वाले कुर्ताधारी छोकरे ने कहा, ''मना क्यों होगा? मना नहीं है. तुम लोग कौन हो, किस मतलब से आये हो, यह जानने के बाद तुम्हें जाने दिया जायेगा.''

''यह सब जानने का उपाय करो न बाबू लोग.''

''चोप! तमाशा हो रहा है क्या?''

इस धमकी से दिवाकर चुप हो गया, पर बच्चा जैसे इसका प्रतिवाद करते हुए रो पड़ा. उनकी ओर पीठ करके बैठी अन्ना बच्चे को चुप कराते हुए उनकी बातें सुन रही थी, अचानक वहां प्रकट होकर उन्होंने एक गंभीर और जटिल परिस्थिति का निर्माण कर दिया है और इसे लेकर वे लोग परेशान और विभ्रमित हो गये हैं. सामान, वेशभूषा और चेहरा देखकर, उन लोगों की बातचीत सुनकर सचमुच इस बात का अंदाजा लगाना कठिन था कि वे वाकई निरीह, साधारण, मजदूर हैं और उनका कोई दूसरा मतलब नहीं है. इसीलिए उनका आना भयंकर संदेह पैदा कर रहा था. पिछले कुछ दिनों में छोटा बकुलपुर में जो तांडव चल रहा था उसे देखते हुए वाकई कोई सीधा-सादा, गरीब आदमी औरत-बच्चे को साथ लेकर भला कहीं अपनी जान फंसाने के लिए आना चाहेगा? और वह भी हंगामे की खबर जानने के बाद? किसी मामूली आदमी को ऐसा साहस कहां से होगा? उससे भी बड़ी बात है, संदेह की बात है. चारों ओर इतनी पहफलों को देखकर भी ये जरा नहीं भड़के, निर्भय और निश्चिंत भाव से बैठे हैं?

''निश्चय ही कोई खतरनाक आदमी वेश बदलकर आया है.'' एक आदमी ने नीचे गले से कहा.

''चलो, सर्च करते हैं.'' दूसरे आदमी ने कहा.

लंबे-चौड़े थुलथुल आदमी ने हुक्म दिया, ''ऐ! अपना सामान लेकर नीचे उतरो.''

उसके मुंह से आवाज निकलते ही दो लोगों ने दिवाकर को खींचकर नीचे उतार दिया. उत्साह अथवा उत्तेजना के आधिक्य से मिट्टी की हड़िया उसके हाथ से गिरकर फूट गयी और उसका पानी और उस पानी में किलबिल करती पांच-छह सिंघी मछलियां जमीन पर रेंगने लगीं.

दिवाकर ने गुस्से से कहा, ''बाबू लोग, कर दिया न आप लोगों ने गरीब का कबाड़ा? अब अपनी बीमार औरत को क्या खिलाऊंगा?''

उत्तर में एक आदमी ने गंभीर आवाज में कहा, ''क्यों दिवाकर दास, यही नाम है न तुम्हारा? तुम तो कहते हो, तुम कारखाने में मजदूरी करते हो? कुली-मजदूरों की औरतें कब से सिंघी मछली का सुरुआ (शोरबा) खाने लगीं? सिंघी मछली आजकल पंद्रह-सोलह रुपये सेर है.''

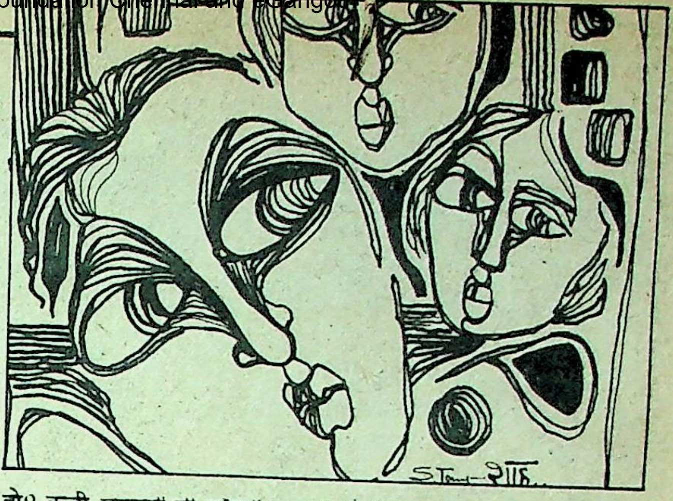

''बाबूजी, क्या सिंघी मछली खाना गरीबों के लिए मना है?''

इसके जवाब में वह आदमी गरज उठा, ''शट अप! बेअदब!''

पोटली को खोलकर सारी चीजें बिखेरते समय और उसमें बम या बंदूक ढूंढ़ते समय एक दुर्घटना हो गयी. अन्ना के बच्चे ने रास्ते में दो-एक बार टट्टी किया था. अन्ना ने वे गंदे पोतड़े गुमेंटकर पोटली में एक किनारे डाल दिये थे. तलाशी लेनेवाले के हाथ में मैला लग गया. कुत्सित गंध और स्पर्श से बौखलाकर उसने पोटली में लात मार दी. जिसके फलस्वरूप कीचड़ की तरह का तरल पदार्थ उसके पांव में लग गया था. गाड़ी में बिछे हुए फटे बोरे और उसके नीचे रखी बिचाली को उलटने-पलटने के बाद गगन और दिवाकर की खाना तलाशी हुई. दिवाकर की कमीज की जेब से पान की पुड़िया निकली.

''वाह! पान! दे तो एक मुझे.''

पुड़िया में तीन पान बचे थे, जो तीन पहरेदारों के मुंह में गये. पान चबाते-चबाते एक आदमी ने टार्च की रोशनी उस कागज पर डाली जिसमें पान लिपटा हुआ था. उस पर छपी इबारत को पढ़ते ही जैसे उसे बिजली का शॉक लग गया. कागज को अच्छी तरह फैला कर वह फटी नजरों से हेड लाइन की तरफ देखने लगा. हेड लाइन थी—''छोटा बकुलपुर के संघर्षशील बहादुरों के प्रति.''

रहस्योद्घाटन की उत्तेजना से कांपते हुए वह आदमी चीख उठा. ''मिल गया! इश्तहार मिल गया!''

इश्तहार ? हां, ठीक ही तो है. यह तो बड़ा भयंकर इश्तहार है! हालांकि कागज बुरी तरह मुश गया था और पान के रस तथा चूने के दागों से भर गया था फिर भी उसे कोशिश करके पूरा पढ़ा जा सकता था.

वह कागज पाकर पहरेदारों ने चैन की सांस ली. अब उन्हें शून्य में अंधेरे में टटोलना नहीं पड़ेगा, काल्पनिक संदेह और संशय से जर्जर नहीं होना पड़ेगा. अब उनकी मुट्ठी में अकाट्य प्रमाण आ गया था. अब इस षड्यंत्र का पर्दाफाश हो जायेगा.

''यह इश्तहार तुमको कहां मिला?''

प्रश्नकर्ता ने एक-एक शब्द को जीभ पर घुमा-घुमाकर ऐसे उच्चारण किया जैसे वह कोई बहुत स्वादिष्ट चीज हो.

''कैसा इश्तहार? इश्तहार के बारे में तो मैं कुछ भी नहीं जानता. चार आने का पान खरीदा था, पान वाले ने इसी कागज में लपेटकर दिया था.''

''पानेवाले ने लपेटकर दिया था या तुमने खुद जान-बूझकर पान खरीदा और इश्तहार से उन्हें लपेट लिया?''

''क्यों? ऐसा मैं क्यों करूंगा?''

''अब और नौटंकी मत करो! सीधे से अपना असली नाम बता दो!''

दिवाकर और अन्ना ने एक दूसरे की ओर देखा. ☐

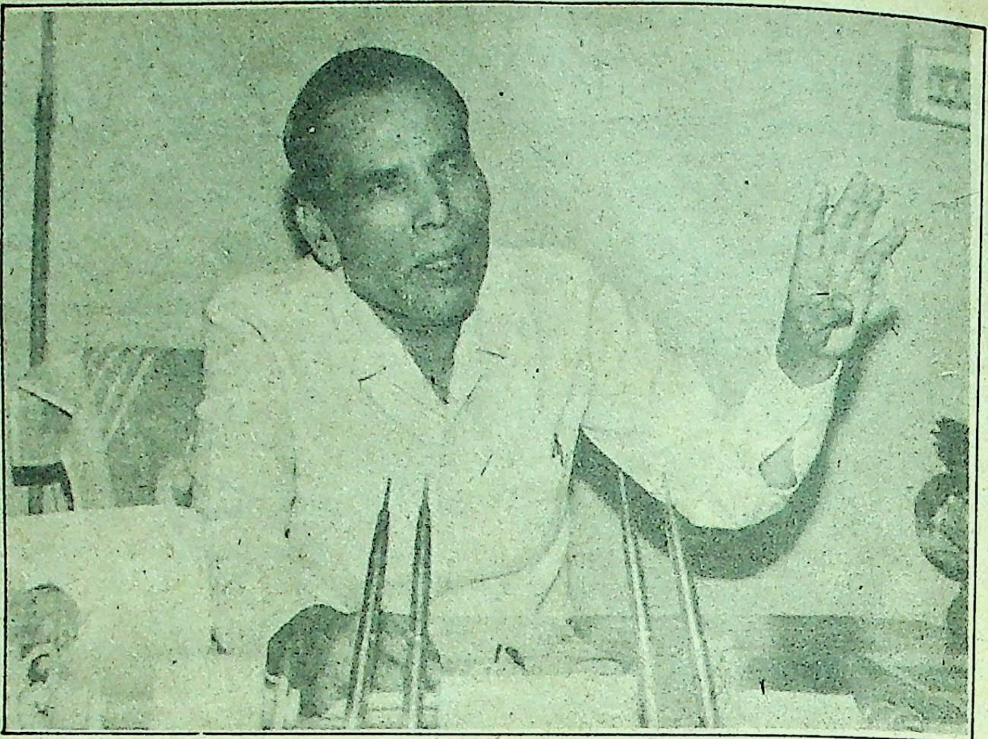

माटी की धड़कन को सुरक्षित रखना जरूरी है.

डा. नारायण दत्त पालीवाल

हिंदी अकादमी के सचिव डा. नारायण दत्त पालीवाल से हाल ही में सारिका-प्रतिनिधि की एक सार्थक बातचीत हुई. प्रस्तुत है इस वार्ता पर आधारित आलेख.

हिंदी अकादमी के सचिव डा. नारायण दत्त पालीवाल मृदुभाषी और मिलनसार व्यक्तित्व के धनी हैं. तमाम दबावों के चलेत भी वे जिस सहज और आत्मविश्वासी ढंग से अकादमी की गतिविधियों को सुचारु रूप में संचालित कर रहे हैं उसे उनकी विशेषता के रूप में रेखांकित किया जा सकता है. पिछले दिनों एक भेंट के दौरान जब अकादमी की ओर से साक्षरता अभियान में किये जा रहे प्रयासों की खबर मिली तो यह स्वाभाविक ही था कि उनसे यह पूछा जाता कि इस अभियान का अभिप्राय क्या है!

डा. पालीवाल ने बताया कि जो आज अंगूठा लगाते हैं, वे अधिक से अधिक ३ माह में हस्ताक्षर कर सकें. बसों के नंबर और जगहों के नाम पढ़ सकें. दुकानों के नाम पढ़ सकें और अखबारों के शीर्षक पढ़ सकें. शुरुआत में हम बीस केंद्र खोलना चाहते हैं. महिपाल पुर और इंद्रलोक के अतिरिक्त गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा के सहयोग से काम प्रारंभ हो चुका है. शाहदरा और मादीपुर में भी केंद्र खोलने की योजना है. दिल्ली प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से भी एक केंद्र खोलने की योजना है. हमने पब्लिक स्कूलों से भी सहयोग करने को कहा है. इस योजना के अंतर्गत ग्रीनफील्ड स्कूल, लक्ष्मीनगर से चर्चा हो चुकी है.

इस योजना में ३ माह की अवधि तय है. हमारी योजना है कि एक केंद्र में ३० व्यक्ति साक्षर बनाए जाएं. यहां एक प्रशिक्षक रखा जायेगा. आमतौर पर योग्य स्थानीय आदमी का चुनाव हीं इस काम के लिए किया जाएगा. कॉपी, पेंसिल, चटाई और ब्लैक बोर्ड इत्यादि की व्यवस्था हिंदी अकादमी करेगी. अभी हम जगह का अनुरोध संस्थाओं और स्थानीय लोगों से कर रहे हैं. योजना में स्थानीय बच्चों के लिए प्रतियोगिताओं का भी प्रावधान है. साहित्यिक प्रतियोगिताओं के जरिए उनकी रुचि का विकास यहां मूल उद्देश्य है. इन केंद्रों में बाल-साहित्य भी उपलब्ध कराया जाएगा. साक्षरता के साथ-साथ ये केंद्र हिंदी-केंद्र के रूप में भी काम करेंगे. यहां युवाओं के प्रोत्साहन के लिए भी कार्यक्रम आयोजित किए जायेंगे. हिंदी के लिए अनुकूल वातावरण बनाना हमारा उद्देश्य है

इस संदर्भ में हम दिल्ली प्रशासन के सेकेंडी और सीनियर सेकेंडी स्कूलों में भी पत्र लिख रहे हैं...ताकि वहां हिंदी कक्ष खुल सकें. हिंदी भाषा साहित्य और साहित्यकारों को इनके माध्यम से प्रचारित व और अधिक प्रसारित करने की योजना है. हमारे इंद्रलोक केंद्र में साहित्यकारों के ५० चित्र है. और दो बड़ी अल्मारियों में किताबें भी. यहां समय-समय पर साहित्य, भाषा से संबंधित व्याख्यानभाषाएं व आयोजन तो होते ही हैं पुराने कवियों की शैली व वेश़-भूषा में कवि-दरबार प्र कराने की योजनाएं हैं. इससे अंग्रेजियत भरे माहौल में हिंदी की पहचान बढ़ेगी.

साक्षरता अभियान में वयस्क हों या बच्चे, स्त्री हो या पुरुष, सभी को स्थान दिया जायेगा. हिंदी के प्रति रुझान पैदा करने की गर्ज से सर्वाधिक अंक पाने वाले ४० छात्रों को पुरस्कृत किया गया. कक्षा आठ, नौ व ग्यारह में सर्वाधिक अंक पाने वाले विद्यार्थी को ५०० रुपये व पदक प्रदान किया जायेगा.

हिंदी के प्रति उत्साहवर्धक माहौल तैयार करने

दृष्टि से हिंदी अकादमी साहित्यकारों को त्साहित और सम्मानित तो करती ही है...विश्वविद्यालयों की हिंदी परिषदों को भी दमी की ओर से सहयोग करने का निर्णय किया या है. प्रत्येक विश्वविद्यालय के प्रत्येक कॉलेज में र्थियों द्वारा स्वयं आयोजित हिंदी के कार्यक्रमों भी अकादमी की ओर से सहयोग किया जायेगा. संदर्भ में विद्यालयों के प्रधानाचार्यों से भी रोध किया गया है. वे हिंदी की विशिष्ट व्याख्यान लाएं आयोजित कराएं... और अन्य कार्यक्रम भी. असल, हम जन-समान्य को हिंदी के कार्यक्रमों में म्मिलित करना चाहते हैं. यह भी योजना है कि ष्ठ साहित्यकारों से महत्वपूर्ण साक्षात्कार किये ं. उनकी वाणी, विचार और भावनाएं रिकार्ड सुरक्षित रखी जाएं...ताकि पीढ़ी उनसे कुछ ख सके. आधुनिक माध्यमों के जरिए उनके न के संघर्ष, साधना और अनुभवों को दस्तावेज़ रूप में सुरक्षित रखना जरूरी काम है. उनके त्र, लेख और संदेश आने वाले समय में प्रेरणा-त बनेंगे.

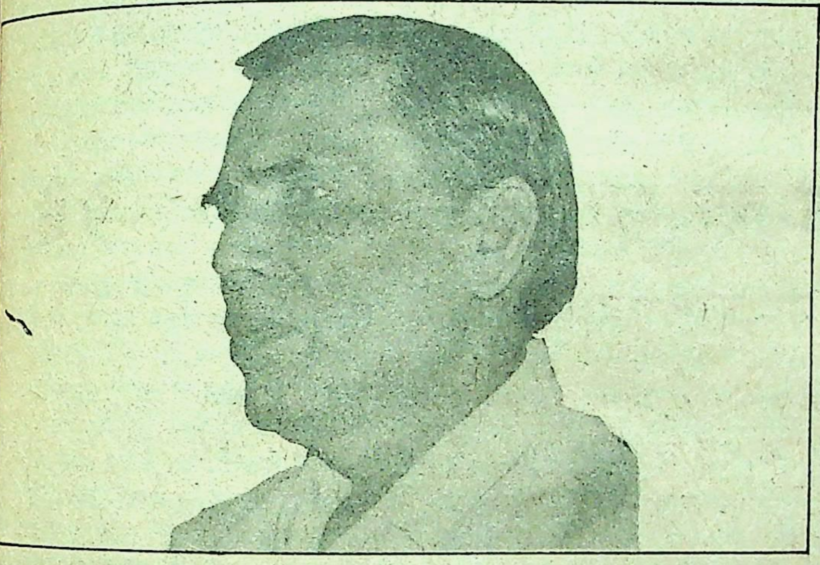

● दिल्ली की सांस्कृतिक विरासत को सहेजना होगा : डा. पालीवाल

दिल्ली की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित कर हेजने का काम भी अकादमी को करना है. यहां की तन लोक-संस्कृति के प्रतीक लोक-गीत और लोक थाएं संकलित करनी होंगी. आज, जबकि गांव मशः सिमट रहे हैं...यह एक बड़ा काम है. नवीय संवेदनाएं यदि सुरक्षित हैं, तो वे गांवों में है. आज उत्सव गीतों को हम भूलते जा रहे हैं र नयी-से-नयी फिल्मी तर्जों को ही प्राथमिकता जाने लगी है...जबकि लोक-संगीत की विराट पदा दम तोड़ने को है. माटी की इस धड़कन को सुरक्षित रखना बहुत जरूरी है. दिल्ली के क्षेत्र माज, इतिहास, कला, संस्कृति और परंपराओं से बद्ध महत्वपूर्ण जानकारियां एकत्र करने की योजना म तैयार कर रहे हैं. सांप्रदायिक सौहार्द की जो रासत दिल्ली में मौजूद है, तीज-त्यौहारों पर ल-बैठकर खुशियां मनाने के जो रीति-रिवाज ...और फिर सबसे ऊपर 'फूल वालों की सैर' है...यह सब जिस भाइचारे और आत्मीय माहौल को बनाते हैं. उसकी आत्मा को हमें समझना है और अपनाना भी है.

सांस्कृतिक विरासत को सहेजने के साथ-साथ हम नयी प्रतिभाओं को सामने लाने के लिए भी कृतसंकल्प हैं. यह ठीक है कि पुराना आदरणीय है. पूज्य है, उसे सम्मान जरूर मिलना चाहिए पर जो नया है, प्रतिभाशाली है, उसे भी सम्मानपूर्ण स्थान मिलना चाहिये. इसके लिए कुछ स्थापितों को यदि त्याग भी करना पड़ जाए तो उन्हें जरूर करना चाहिए. बुजुर्गों को अपने साये में नयी पौध को फलने-फूलने के अवसर देने चाहिए. युवाओं के लिए प्रोतसाहन, प्रकाशन, पुरस्कार व प्रतियोगिता के हर संभव अवसर हम जुटाते हैं

अब तक अकादमी ने १६४ युवा लेखकों को पुरस्कृत किया है. ८१ कृति पुरस्कार दिये हैं और दो शलाकन सम्मान. पहला शलाका सम्मान प्रख्यात आलोचक डा. राम विलास शर्मा को और दूसरा सुप्रसिद्ध कथाशिल्पी श्री विष्णु प्रभाकर को दिया गया. अकादमी यह भी विचार कर रही है कि विधागत सेमिनार और गोष्ठियां आयोजित करने के साथ-साथ शलाका सम्मान की तरह ही युवा साहित्यकारों के लिए भी एक सम्मान घोषित किया जाये. बड़े रचनाकारों की परिचय पुस्तिकाएं प्रकाशित करने की भी महत्वाकांक्षी योजना अकादमी बना रही है. हाल ही में हिंदी अकादमी की पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' ने 'समकालीन हिंदी कहानी' पर एक विशेषांक निकाला है. इसमें समकालीन कथा जगत के महत्वपूर्ण हस्ताक्षरों की कहानियों के साथ-साथ चार कथा-आलोचकों के लेख भी सम्मिलित हैं. इस विशेषांक की सर्वत्र सराहना हुई है. इन कहानियों को हम एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में इंद्रप्रस्थ कहानी संग्रह' में भी प्रकाशित कर रहे हैं.

पूरे उत्साह, संलग्नता और आत्मीय डूब के साथ पालीवाल जी अकादमी की योजनाएं समझाते रहे जैसे उनकी दुनिया में हिंदी अकादमी से अलग और कुछ है ही नहीं. □

कृतियां

मृत्यु पार का देश

मृत्यु होने पर मनुष्य कहां जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं? परलोक में जीव का अवस्थान किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आंदोलित करती रही है. इस सभी की मीमांसा स्वामी असेदानंद महाराज ने अपने इस ग्रंथ 'मृत्यु के पार' में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है. इहलोक एवं परलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपरोक्त प्रश्नों का प्रमाणिक उत्तर इस ग्रंथ में उन्होंने दिया है. मानव एवं प्राणी मात्र की आत्मा का विनाश नहीं है. किंतु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है. मनुष्य जन्म मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्म सत्ता की उपलब्धि करता है.

मृत्यु पार का देश रहस्यमय है. जहां न सुर्य है न चंद्र और न ही नक्षत्र. जिस देश में स्थूल कुछ भी नहीं, जहां केवल सूक्ष्म भावना एवं सूक्ष्म चिंता का राज्य है. इस चिंता राज्य को ही मनोराज्य अथवा स्वप्नराज्य कहते हैं. मृत्यु होने पर सभी का सूक्ष्म शरीर स्वप्नलोक या मानसलोक में जाता है. वहां केवल मन का विलास है. चलना फिरना खाना, देना लेना सभी, समस्त परलोकवासी जीवात्मा मन से ही भोग करते हैं इसीलिए यह मनोलोक अथवा मनोराज्य है.

स्वामी अभेदानंद महाराज ने 'मृत्यु के पार' तत्व पर विचार एवं आलोचना की है जिससे जन्ममरण शील एवं मायासक्त मानव उस जन्म मरणातीत आत्मसत्ता के रहस्य को जान सकें. प्रायः अधिकांश लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के पश्चात मानव की सत्ता अथवा अस्तित्व रहता नहीं वह शून्य में ही विलीन हो जाता है. किंतु यह वास्तविकता नहीं है.

वास्तविकता क्या है? यह जाना जा सकता है इस पुस्तक से जो अभेदानंद महाराज की मूल अंग्रेजी पुस्तक 'लाइफ बियांड डेथ' का हिंदी अनुवाद है. अंग्रेजी से 'मृत्यु के पार' शीर्षक से अनुवाद किया है स्वामी संशुद्धानंद महाराज ने और भूमिका लिखी है श्रीमद् स्वामी प्रज्ञानानंद महाराज ने. अन्य भाषाओं के संस्करणों की तरह हिंदी संस्करण में भी प्रेतात्माओं के आलोक चित्र आदि भी दिये गये हैं

● मृत्यु के पार, लेखक : स्वामी अभेदानंद,
प्रकाशक : श्रीरामकृष्ण वेदांत मठ, कलकत्ता, मूल्य बीस रुपया.

प्रकृति लय का लास्य और अभाव का तांडव

☐ कृष्णदत्त पालीवाल

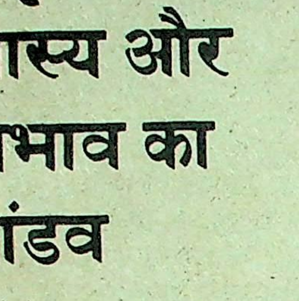

☐ बर्फ की चट्टानें—शैलेश मटियानी, सचिन प्रकाशन, दरियागंज नयी दिल्ली-२, मूल्य, २५०.००.

शैलेश मटियानी की इन कुमाऊंनी परिवेश की कहानियों में पहाड़ी जीवन की ऐतिहासिक अनुभूति का रचनात्मक विस्तार है. उनकी रचना दृष्टि अखंडता में इस प्रदेश के मानव को बदलते देश और काल के नवीन संदर्भों में परिभाषित करती है. एक ओर प्रकृति का अपार अम्लान नैसर्गिक वैभव दूसरी ओर आर्थिक अभावों से जूझते मनुष्य के दुखते, कसकते और कराहते जीवनानुभव उनकी संवेदना में सृजन विस्फोट पाते हैं. इस संवेदनशील रचनाकार को कवि हृदय की अंतर्दृष्टि प्राप्त है, वे कहानी में कविता रचते हैं. इन कहानियों में काव्यात्मकता और नाटकीयता का विशेष आकर्षण है. कहानी की यह काव्यात्मकता अपने आसपास की वास्तविकता के मार्मिक पक्षों को चुनौती के स्तर पर ग्रहण करती है. चुनौती के दोनों स्तर उनमें कार्य करते हैं तत्व संबंधी और रूप संबंधी. आर्थिक अभावों का तनाव उनके हृदय में घिराव डालता है, उन्हें मथता, फेंटता है. नतीजा यह होता है कि कहानियां अंचल विशेष की संपूर्ण व्यथा-कथा को मानव वास्तविकता के मूल पर ठीक से कह लेती हैं. वे 'कहते' नहीं हैं, वर्णन विस्तार में उनकी मनोवृत्ति नहीं रमती. वे कहानियों में भाव-विचार के बिंबों, प्रतीकों और मिथकों को एक खास 'विजन' में ढाल देते हैं. इस संग्रह की पहली कहानी **'पोस्टमैन'** अंचल से प्राप्त भरोसे की भाषा में पाठक की संवेदना को कसती है. आर्थिक अभावों के कारण घर छोड़कर सेना में भर्ती होनेवाले युवकों की स्थिति, परिस्थिति और उनके परिवारों की मनोभूमि का पत्र और तार की मनोवृत्ति का फर्क और मनीआर्डर का अर्थ खोलती है. कहानी एक प्रकार से सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास बनकर उभरती है. हिंदी में जब कभी पर्वतीय जीवन के आर्थिक कष्टों का अर्थशास्त्र समाज शास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों के विशेष अध्ययन का केंद्र बनेगा, तब शैलेश मटियानी की इन नायाब कहानियों का मूल्य और बढ़ जायेगा.

पचास से ऊपर कहानियों का चुनिंदा संग्रह कहानीकार शैलेश मटियानी के सृजन की आंतरिकता, प्रेरणा भूमि और रचना हेतुओं का प्रतिनिधित्व करता है. कहानियों में न केवल अनुभूति पक्ष के वरन् कथ्यपक्ष के वस्तुनिष्ठ स्वभाव के और उसकी अंतर्योजना में विद्यमान परिज्ञान पक्ष के विकास की छवियां हैं. अरूप को रूप, अमूर्त को मूर्त और वायवीय को वास्तविक बनानेवाली ऐंद्रिय चेतना कहानीकार को प्राप्त है. इंद्रियों के रूप, रस, स्पर्श, श्रवण और स्वाद के बिंब बेहद मर्मस्पर्शी हैं और कथा के भीतर उबलते भावों को, तूफान को दृष्टि देते हैं. एक उदाहरण से कहना चाहूं तो कह सकता हूं कि **'वह तू ही था?'** जैसी कहानी एक कभी न भूलनेवाला प्रेम गीत बन जाती है. प्रकृति सुंदरी के लास्य पर युवतियों का यौवन थिरकता है और प्राणों का पागल प्यार किसी प्रेमी को पाकर प्रेमदीप जलाता है. दरअसल प्रेम हृदय की स्वच्छंद प्रकृति का यह प्रकृत भाव-जगत है. जिसमें रूप रस की मादकता को पीने की आकुल अधीरता है. प्रकृति का काव्यात्मक चित्र देखिए—**''संध्या की बेला जब हिमानी बयार चलती है, छोटी बिलैत नैनीताल में हिया हुलसता है, गान पुलकता है. देवदार की हरी-भरी डालियां हिलती हैं कि कुमुमिया अनंत हिरणियां नेत्रोंवाली करूणी के कानों की सुवर्ण रजत की बालियां हिलती हैं कि रसिकों के पांव तले का कांटा, पीछे-पीछे का दुश्मन बिसर जाता है.''** यह पूरा भाव-चित्र एक रेखाचित्र है, शब्दों से तराशकर बनाया गया लय बिंब. किंतु लय बहुत टूटती नहीं है. प्रकृति मानव के सामूहिक अवचेतन के द्वार को आदिम बिंब की कालिदासीय जीवन तरंग में फिर रचती है—**''सुहानी संध्या में हिमानी बयार क्या बहती है, फूल-फूल भंवरे गुन-गुन रस घोलते हैं, कुंज-कुंज विहंग कुछ यूं बोलते हैं कि रसवंती, रूपवंती धरणियां रूई की रूपहली बाती बनाती हैं कि मैया के मंदिर में पहला दीपक अपने प्रियतम के नाम का जलाना है.''** राधिका का झुलसी संध्या में जसौत सिंह को पाना और पति ध्यानसिंह का ठिठुरता प्रेम हवा हो जाना. जसौत सिंह ठहरा उसका जार-जरजरा, चोर-चरवाहा प्रेमी, जो प्रेम में जूते खाता है और ध्यानसिंह के सामने का यथार्थ उसे दावत में वाक्यों से बार-बार चीरता है, पर प्रेमिका का अखंड हृदय नहीं टूटता. तिरिया पातक प्रेम से पराजित है. कहानी की पूरी संवेदना का भाव-तंत्र स्वच्छंदतावादी प्रेम का एक भाव्य है, एक टीका है, एक वार्तिक. सुमित्रानंदन पंत की कविताओं से इस कहानी का एक अजीब साम्य है. पर्वतीय नारी का 'साइके' पूरे 'आर्किटाइयल इमेज' के साथ उपस्थित है. परिवेश कहानी की देह है और कथ्य का प्रेम रस प्राण. बिना व्यक्त किये अधिक व्यक्त कर जाने की जो सूझ-बूझ है, वह अन्य कहानीकारों के लिए दर्शनीय है. प्रकृति को प्रेम लय से तदाकार शैलेश मटियानी जैसा कहानीकार हिंदी में दूसरा नहीं है. संवेदना की सशक्त प्रतीक व्यवस्था में यह कहानीकार फणीश्वर नाथ रेणु और मार्कंडेय से आगे है. कहानी का यह प्रकृत मुहावरा ही शैलेश की शक्ति है. मानव मन के भीतर कूदने, डुबकी लगाने की शैलेश को तांत्रिक ताकत प्राप्त है.

कहानी की जिस तात्त्विता पर ध्यान तुरंत केंद्रित होता है, वह है इन कहानियों की मूल संवेदना और कथन शैली. जिसे 'रूटेड स्टोरी' कहा जाता है, उसका उदाहरण भी यहां सीधे मिलता है. पर्वत के अंचल की गंध-तरंग का एक रूपजाल इस शिल्प को गठित करता है. कहानी अपने भाव-तंत्र पर वीणा के तारों-सी झनझनाकर मौन हो जाती है. एक विराट मौन की मधु छाया में मन जल बिंदु-सा खो जाता है. अन्न की खुद-बुद, गड़रिये की स्वर लहरी, घास काटती, हेरती युवतियों का हिरनी मन, खरगोशी उछाल और पर्वत का प्यार. संवेदना, परिवेश और शिल्प तीनों ही इन कहानियों में एकाकार हैं. भाषा की देशी लयात्मकता में [illegible] संस्कार की सघनता और आत्मविस्तार के प्रकाश छाया के रंग हैं. परंपरा की प्रवाहित गति में वर्तमान की अतीतता और अतीतता की वर्तमानता साथ-साथ चलती हैं. यहां दृष्टा और सृष्टा मन का भेदभाववाला सिद्धांत [illegible] नहीं है. कोई अस्तित्ववादी विडंबना इसे जहरीला नहीं बनाती है. केवल प्रदेश और परिवेश के देवी-देवताओं, मिथकों, पीड़ाओं के

वाप सुनाई देती है. इन कहानियों का नानुभव भरोसे का इसलिए है कि उपार्जित ल के प्रति कहानीकार में आत्मदान का, विसर्जन का भाव है. प्रकाशित भाव क्षण जा के प्रति पूर्ण समर्पण ने इन कहानियों थीम में एक स्पंदित एकान्विति और जीवंत फनी' निष्पन्न की है. अपनी हर कहानी में र्मल वर्मा की कहानी '**परिंदे**' जैसी लय को कार भी कहानीकार संरचनात्मक आन्विति का चा पाता है. कहानी का पूरा ढांचा टूटता है र नयी संवेदना की नयी कहानी का आलोक टता है.

अच्छी बात यह है कि पश्चिम से आयातित उवत आधुनिकता का इन काहानियों में मोह हीं है. मूलत: ये संस्कारी भारतीय मन की हानियां हैं, जिनमें अंतर्मानसिकता के नये र्झर फूट-फूट पड़े हैं. भाषा में लोक संवेदना की पूरी रंगत है और कथा का नया ठाठ दृष्टि-न्न संवेदना के रचनात्मक रूपांतरण से र्मित है. वाक-तत्व का विनायक भाव हर कोण र उपस्थित है. भौगोलिक स्थिति और स्कृतिक संवेदना का मिश्रण कथा-संवेदना को हीं-कहीं कमजोर करता है पर सर्वत्र ऐसा नहीं . शैलेश के पास नये कहानीकारों को खाने लायक बहुत है, यह कौन भूल सकता . ☐

कहानी केंद्रित 'अक्षरा'

हाल ही में 'अक्षरा' (संपादक : प्रभाकर श्रोत्रिय) का कहानी केंद्रित अंक प्रकाशित हुआ है. उपेंद्र नाथ अश्क, राजी सेठ, शैलेश पंडित, प्रभुनाथ सिंह आजमी, कमल कुमार, विजय, सुनील कौशिश, विलास गुप्ते, दिनेश पाठक, ललित साह, उर्मिला शिरीष और चंद्रशेखर दुबे की रचनाओं के अतिरिक्त 'साहित्य का भविष्य' (विद्यानिवास मिश्र) और शिवप्रसाद सिंह का रम्य निबंध अंक को समृद्ध बनाते हैं. विद्यानिवास मिश्र साहित्य के भविष्यत और भविष्यत के साहित्य को लेकर महत्वपूर्ण विचार अपने लेख में लेकर आये हैं तो शिवप्रसाद सिंह आशावादित को भली कृताकर उसके तर्क भी प्रस्तुत करते हैं. कहानी न कहने की पीडा के बहाने वे कहानी के पाश्र्व जगत की सच्चाईयों को उजागर कर गये हैं. अपनी तरह का यह अनूठा पत्र-निबंध है. ☐

['अक्षरा' संपर्क शामला हिल्स, भोपाल-462 002]

अपने बीच के पात्रों का जीवंत कथा-लोक...

☐ प्रदीप पंत

सिद्धार्थ के लौटने तक

☐ सिद्धार्थ के लौटने तक (कहानी संग्रह); लेखक: सुरेंद्र अरोड़ा; प्रकाशक: ज्ञान गंगा, २०५-सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ ; मूल्य: ५०.०० रुपये; पृष्ठ : १६८

सुरेंद्र अरोड़ा की कहानियों को लेकर बहुत बड़े-बड़े दावे तो नहीं किये जा सकते, लेकिन इतना जरूर है कि उन्होंने अपनी कहानियों में आज के वक्त के और अपने आसपास के लोगों और समाज के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, भावनाओं-संदेवनाओं, विरोधों-अंतर्विरोधों, आकांक्षाओं-महत्वाकांक्षाओं आदि को पकड़ने की सार्थक कोशिश की है और इस क्रम में उन्होंने कुछ 'बहुत अच्छी' तो कुछ 'अच्छी' और कुछ 'साधारण' कहानियां लिखी हैं. उनका नया कहानी संग्रह '**सिद्धार्थ के लौटने तक**' इस तथ्य और सत्य का गवाह है.

संग्रह में कुल मिलाकर दस कहानियां हैं. पहली कहानी '**ऊंच-नीच**' संग्रह की सबसे सशक्त कहानी है. रामासरे नामक जमादार इस कहानी का नायक है. इतिहास की किसी पुस्तक में अशोक और अकबर तो नायक हो सकते हैं और हैं भी किंतु कोई जमादार नायक के रूप में कभी नजर नहीं आयेगा. लेकिन अपने समय से जुड़ी कहानियां ऐसे ही छोटे-छोटे नायकों को लेकर चलती, बढ़ती तथा अपनी पहचान बनाती हैं और उनके माध्यम से हम इन मामूली कथानायकों की त्रासदी से रू-ब-रू होते हैं. रामासरे का बेटा प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल पास करता है. यह सूचना औरों को देते हुए रामासरे कलक्टर को भी दे डालता है जो उससे मिठाई खिलाने के लिए कहता है. रामासरे खुशी-खुशी उसके पास मिठाई ले जाता है, लेकिन बदले में रामासरे को मिलता है अपमान और तिरस्कार. यही नहीं, उसके लौटने पर कलक्टर अपने पी.ए. श्रीवास्तव से कहता है कि मिठाई नौकरों में बांट दो. दिलचस्प यह कि पी.ए. इस मिठाई के डिब्बे को चुपके से अपने ब्रीफकेस में डाल लेता है और बड़े इत्मीनान से बैठकर गाने लगता है—''वैष्णव जन ते तेने कहिए, जो पीर परायी जाने रे!...'' कहानी यहीं पर समाप्त हो जाती है, और इसके साथ ही गहरी मानवीय पीड़ा और व्यंग्य दोनों ही एक साथ पाठक को झकझोर देते हैं और रामासरे का दुखी व उदास चेहरा साकार हो उठता है. हमारी वर्ग-विभाजित समाज व्यवस्था पर यह कहानी एक कड़ा प्रहार है. ऐसी कहानी पार्टीगत रुझानों और आदेशों-निर्देशों से मुक्त लेखक ही लिख सकता है. यह कहानी संग्रह की ही सर्वश्रेष्ठ रचना नहीं है, बल्कि अपने आप में—स्वतंत्र रूप से—एक 'बहुत अच्छी' कहानी भी है. यदि इस कहानी में कलक्टर के चरित्र के पाखंड को, जो इस वर्ग की विशेषता है, और बारीकी से प्रस्तुत किया जाता तो 'ऊंच-नीच' एक अद्वितीय कहानी बन सकती थी.

सुरेंद्र अरोड़ा के संग्रह की दूसरी कहानी है— '**भेड़िए**.' फैक्ट्री के एक साधारण किंतु जुझारु मजदूर की जुझारु बेटी है आनंदमयी जिसकी सुंदरता पर पुलिस अधिकारी अरविंद मुग्ध हो जाता है और अंतत: उससे विवाह रचा लेता है—उसे अपनी व्यक्तिगत सफलता के लिए इस्तेमाल करने के उद्देश्य से. आनंदी कभी उसका विरोध करती है, कभी उसके आगे झुकती और टूटती है तो कभी फिर विरोध की मुद्रा में खड़ी हो जाती है. ऐसा अद्भुत सशक्त चरित्र है आनंदी जिसमें तमाम मानवीय कमजोरियां भी हैं. यों इस कहानी में सुमन जैसा कृत्रिम चरित्र भी है जो सबके सामने नेता के गले में हाथ डाल देती है, लेकिन सुरेंद्र अरोड़ा ने आनंदी के चरित्र को जिस कुशलता से तराशा है उसके कारण सुमन की ओर पाठक का बहुत कम ध्यान जाता है.

अपनी इन्हीं विशेषताओं के लिए '**सीढ़ियां**' को भी याद किया जायेगा. यद्यपि यह एकदम भिन्न फलक पर लिखी गयी रचना है—शुचि से श्रीमती शुचिता चक्रवर्ती बनने के दौरान लोगों को सीढ़ियां बनाकर सफलता पाने वाली लड़की की कहानी है यह और इस माने में शुचि का चरित्र आनंदी के चरित्र के एकदम

प्रतिकूल है—किंतु दोनों में साम्य यह है कि आनंदी और शुचि दोनों ही अपनी कमजोरियों के बावजूद अत्यंत सशक्त होकर उभरी हैं और आज की औरत के भिन्न-भिन्न चेहरों को सामने लाती हैं, यहां तक कि हम भी औरत के कई-कई चेहरों तक को उनमें देख सकते हैं.

कहानी **'लवर्स'** इन तीनों कहानियों के विपरीत एक कमजोर कहानी है.

सुरेंद्र अरोड़ा अपनी कहानियों में प्लाट बुनने, शब्द चुनने और संवाद रचने की कला में माहिर हैं. इसी कारण उनकी एकदम सायास गढ़ी हुई कहानियां तक पाठक को अपने साथ बहा ले जाती हैं. **'अहेरी'** इसकी एक बेहतरीन मिसाल है, जिसमें दो मुख्य पात्र हैं—एक सुंदर स्त्री कामिनी, एक सुंदर पुरुष 'वह'. कामिनी पर वह आसक्त है. देह को भोगने के लिए उसे घर बुलाता है. वह जाती है, समर्पित हो जाती है, किंतु यकायक 'उसके' अंदर कहीं अपराध बोध जाग उठता है कि जिससे इतना प्यार, उसे जूठा करना उचित नहीं. और वह उसके शरीर को नहीं रौंदता. कहानी का यह प्लाट मानो किसी भावुक कवि की कल्पना है, जिंदगी का सच नहीं, किंतु सुरेंद्र अरोड़ा कहानी कहने के अपने कौशल के सहारे उसे एकदम सच सरीखा बना देते हैं. किसी अधकचरे लेखक ने इस प्लाट को उठाया होता तो लगता कि 'क्या ऐसा हो सकता है', किंतु इस लेखक के हाथों उठाये गये इस प्लाट से लगता है कि 'हां, ऐसा भी हो सकता है.'

दस कहानियों के इस संग्रह की छठी कहानी वह है जिसके शीर्षक पर पुस्तक का शीर्षक रखा गया है यानी—**'सिद्धार्थ के लौटने तक'**. कहानी में हैं एक बूढ़ा पिता, तीन बेटे, एक बेटी. तीन में से एक बेटा पिता की डांट-फटकार के कारण वर्षों पहले भाग गया था. अब पांच साल बाद लौट रहा है. नाम है बबल, जिसके इर्द-गिर्द प्रतीक गढ़ा गया है सिद्धार्थ का. बड़ा बेटा ऊंचा अफसर है, पर मां-बाप को साथ नहीं रखता. छोटा बेटा मामूली हैसियत का है, जिसकी पत्नी उन्हें साथ नहीं रखना चाहती. इन विडंबनापूर्ण स्थितियों के मध्य झूलते हुए पिता को आस है कि सिद्धार्थ के लौटने पर वे चैन से मर सकेंगे...कहानी यहीं पर एकाएक समाप्त हो जाती है—एक अधूरेपन के साथ. कहानी को पढ़ते समय लगातार लगता है कि इसकी थीम पुरानी है, सिद्धार्थ का प्रतीक कहीं साकार होता नहीं दीखता, कहानी में वह संवेदना कतई मुखर नहीं होती जो बेटे के भागने से पिता के मन में उत्पन्न होनी चाहिए. इस संग्रह की शीर्षक कहानी के रूप में ऐसी कमजोर कहानी को प्रस्तुत किया ही नहीं जाना चाहिए था.

अब संग्रह की सातवीं कहानी **'नौ दिन चले अढ़ाई कोस'** की बात की जाये. सुरेंद्र में कहानी को झटकेदार बनाने और असामान्य विषय-वस्तु को उठाने या सामान्य विषय-वस्तु को असामान्य ढंग से प्रस्तुत करने की जो अद्‌भुत क्षमता है, उसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है यह कहानी. मूलत: अपेंडिक्स का ऑपरेशन कराने वाले दो मरीजों की यह कहानी उनके इत्मीनान, भय, आशा, आशंका का और साथ ही साथ अस्पताल के माहौल का बड़ा खूबसूरत चित्रण है. साथ ही यह एक असहाय बूढ़े की कहानी भी है जिसका ऑपरेशन इन दो मरीजों के ऑपरेशन से पहले होता है. यह कहानी कहीं पर गुदगुदाती है, कहीं पर मानवीय विवशताओं को उभारती है तो कहीं पर मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति पर बड़े सटीक ढंग से वार करती है.

लेकिन दूसरी ओर सायास लेखन से **'कैसी काली रात'** जैसी साधारण कहानियां जन्म लेती हैं. हिंदी में हाल के वर्षों में पंजाब के आतंकवाद से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़ी बहुत-सी कहानियां लिखी गयी हैं. यह कहानी भी उन्हीं में से है—सिख करमा के मालिक को गोली मार दी गयी है. करमा सोचता है कि अब क्या किया जाये? क्या कोई मदद के लिए आगे आयेगा? कहीं उसी को आतंकवादी तो नहीं मान लिया जायेगा, क्योंकि वह सिख है? अंतत: होता भी यही है. पुलिस से लेकर गांव के पुजारी तक सभी उसे आतंकवादी मानते हैं. आतंकवाद की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी इस कहानी की अपनी कोई खास अलग पहचान नहीं है, न कहीं पर भी कहानी आलोड़ित-उद्वेलित करती है. इस विषय पर लिखी गयी तमाम कहानियों में से एक होकर रह जाती है यह कहानी—या फिर इसमें कहीं थोड़ी-सी चमक है तो वही सुरेंद्र के भाषायी चमत्कार और विषय-वस्तु को लटके-फटके से प्रस्तुत करने के कारण.

मौत का चित्रण **'कैसी काली रात'** में है तो **'एक छोटी-सी मौत'** में भी. कहना न होगा कि कई बार मौत जैसी—खासतौर पर किसी जवान लड़की की मौत जैसी—असामान्य घटना भी संबंधों की औपचारिकता में उलझकर मामूली प्रसंग बनकर रह जाती है. १८ वर्षीया भतीजी नीली की मौत के प्रति काफी हद तक उसकी चाची और कुछ हद तक उसके चाचा का सरोकार भी यही जाहिर करता है. एक ही शहर में अलग रहने पर भतीजी नीली की मौत की खबर सुनने पर चाचा-चाची को कोई हड़बड़ाहट नहीं. वे इत्मीनान से तैयार होते हैं, चाची चाय पीती है, बिस्कुट खाती है, थोड़ा समय यह तय करने में निकल जाता है कि स्कूटर से चला जाए या बस से. वहां पहुंचने पर भी चाची के मन में कोई खास पीड़ा नहीं है, बल्कि उसकी [illegible] इस बात पर केंद्रित होती है कि मृत नीली किस पोशाक में है. एक ओर अर्थी ले जायी जा रही है, 'राम नाम सत्य है' के स्वर उठ रहे हैं, चाचा अर्थी को कंधा देने के लिए आगे बढ़ रहे हैं तो दूसरी ओर चाची उन्हें पीछे खींचकर कह रही है, **''सुनो! तुमने देखा! नीली ने वही सूट पहन रखा है जो मैंने दिया था. चाइना सिल्क का. वह देखो, सलवार का पांयचा दिखाई दे रहा है. वो देखो...!''** यह सब बहुत स्वाभाविक, बहुत सटीक-सा लिखकर सुरेंद्र मानो एक गहरा व्यंग्य कर जाते हैं—मनुष्य की क्षुद्रता पर, उसकी स्वार्थी मनोवृत्ति पर...और हमें लगता है कहानी के ये पात्र—ये चाचा-चाची—हमारे देखे हुए हैं, ये हमारे अपने बीच के भी हो सकते हैं और स्वयं हम भी—अपने में ही खोये-डूबे हुए, अपने-अपने स्वार्थों की दुनिया में कैद.

स्वार्थों की दुनिया की ही एक अन्य कहानी है—संग्रह की अंतिम कहानी—**'नाच चल रहा है'**.

छोटू यानी रमेश कुमार यानी रेलवे में गुड्स क्लर्क के विवाह का प्रकरण. गुड्स क्लर्क महोदय के मन में बार-बार विचार उठ रहे हैं—दहेज लूं या नहीं? अंत में आम युवकों की तरह वह भी स्थितियों से समझौता कर लेता है और साकार हो उठता है हंसी-खुशी का माहौल, नाच-गाने का माहौल...और बस. शादी का नाच, स्वार्थों का नाच—सब एक साथ. यह भी **'सिद्धार्थ के लौटने तक'** की भांति संग्रह की एक साधारण कहानी है, हालांकि शब्दों को बांधने और संवादों को साधने की अपनी कला में महारत हासिल कर लेने के कारण सुरेंद्र इस कहानी को नष्ट होने से बचा ले जाते हैं, लेकिन जब हम संग्रह की पहली कहानी **'ऊंच-नीच'** से **'नाच चल रहा है'** जैसी कहानियों की तुलना करते हैं तो **'नाच चल रहा है'** काफी कमज़ोर, काफी शिथिल मालूम पड़ती है.

किंतु किसी संग्रह में सभी कहानियों के श्रेष्ठ होने की उम्मीद करना किसी भी लेखक के साथ ज्यादती है. यों भी तर्क का तकाजा है कि किसी संग्रह में श्रेष्ठतम कहानी के मुकाबले कुछ साधारण और सामान्य कहानियां तो होंगी ही, किंतु सुरेंद्र अरोड़ा के इस संग्रह की कहानियों का कुल प्रभाव निश्चित रूप से आश्वस्तिपूर्ण है.

विनय विश्वास

कुछ कहानियों से गुजरते हुए

य पांच रुपये में पैंतीस कहानियों और चार लेखों काशन महंगाई के इस दौर में ों के लिए एक विरल र है. ''इंद्रप्रस्थ ती'' का कहानी विशेषांक -जून १९९०) यह अवसर है.

'बली' (भीष्म साहनी) घरों में काम करके अपना अकेले चलानेवाली लड़की की कहानी है. लड़की की स्थिति ऐसी बन गयी है कि कनों के तानों, नखरों और ों की तरह अपने निजी की हत्या भी उसके लिए रण-सी बात है. यह रुणता मार्मिक है, और लिए सर्जनात्मक. **'सिद्धि'** यादव) में कलात्मक ियां कुछ अधिक हैं. कारण यह हो कि कम उम्र में नेवाली महिला की दुनिया में से बाहर की तक पहुंचता है. इसीलिए पात्र 'केस हिस्ट्री' के करीब और 'चरित्र'. के करीब है. **'अपना शहर'** ल कुमार) **'इतना** ान' (रेखा) और **'आस्था'** शर्मा) के पात्र 'चरित्र' न ाने के कारण भी कमअसर न सब कहानियों की तरह लोक' (गोविंद मिश्र) भी को बांधे रखती है. यह प्रेमी नेवाली संपन्न महिला की है. उसकी इस प्रवृत्ति की पड़ताल के जरिये उसके सहानुभूति पैदा करने की की गयी है, जो सामाजिक अनैतिक है. इस दृष्टि से ाश' (प्रदीप पंत) एक त्मक स्वर से संपन्न किंतु लोक' (की तुलना में सपाट है. **'इंद्रलोक'** की तरह **सपने देखती हैं'** उनियाल) भी एक लड़की की अनैतिकताओं से भरी सफलता की कहानी है, लेकिन यहां नायिका के प्रति लेखक का रवैया सहानुभूतिपूर्ण नहीं, व्यंग्यपूर्ण है. व्यर्थ के विस्तार मोह से परे यह व्यंग्यपूर्ण गद्य चित्र असरकारी है. **'आठवां आश्चर्य'** (असगर वजाहत) संस्मरण के अंदाज में ओढ़ी हुई आधुनिकता का छद्म उद्घाटित करती है. अतिरिक्त काव्यात्मकता ने **'अंतिम क्षण'** (ज्ञानप्रकाश विवेक) को कमअसर किया है. **'विप्लव कथा'** (अवधेश कुमार) में भी जगह-जगह जिन काव्यात्मक युक्तियों का सहारा लिया गया है, उन्हें गद्यात्मक रूप देकर भूख, नींद, सपने और चोरी के अंतर्संबंध और प्रभावी रूप में व्यक्त किये जा सकते थे.

'बदहवास' (गंगा प्रसाद विमल) एक ढाबे वाली और उसके आस-पास के दृश्य पर विचार करती है तो दूसरी ओर **'अभी तो'** (राजी सेठ) आभिजात्य वर्ग की स्थितियों पर, जिसमें विचारों और प्रसंगों का परस्पर अलगाव कृतित्रमा पैदा करता है. इसकी अपेक्षा **'अंतहीन'** (हिमांशु जोशी) कुछ सहज है जिसमें चरित्र परिस्थितियों के बहाव में खुद को बहने देता है और दु:खी रहता है. परोक्षत: यह दुख का वरण है. **'समय कम है'** (क्षितिज शर्मा) का मास्टर ट्यूशन पढ़ाकर भय का वरण करता है. इस भय को भूख का अर्थ-विस्तार करते हुए औचित्यपरक बनाने की कोशिश उसके अंतर्विरोध तीव्रता से नहीं उभरने देती. **'यश सर'** (प्रेमपाल शर्मा) में भी दब्बू सरकारी कर्मचारी का दब्बूपन तीव्रता से नहीं उभर पाया. पात्रों के प्रति लेखकीय मोह इस समस्या का एक मुख्य कारण है. इसके विपरीत **'जनावर'** (चित्रा मुद्गल) में मार्मिकता के सारे उपकरण मौजूद रहने पर भी मार्मिकता कम होने का मुख्य कारण है—अंतर्वस्तु के प्रति लेखकीय तटस्थता. प्रसंगों का अनावश्यक फैलाव इसका एक और कारण है. उक्त तटस्थता **'जो मारे जायेंगे'** (धीरेंद्र अस्थाना) में भी है जिसमें व्यावसायिक और प्रतिबद्ध ईमानदार पत्रकारिता के बीच द्वंद्व है. व्यावसायिकता विजयी होती है. एक अन्य कहानी **'अजीत'** (कमलेश्वर) का अखबारीपन अलग ढंग का है. पंजाब में एक अजीत सिंह के मारे जाने पर, जिनके भी घर से अजीत नाम के लोगों की वहां होने की आशंका थी, वे सब मृतक की शिनाख्त करने की कोशिश में टूट रहे हैं. इस टूटन को व्यक्त करनेवाली यह कहानी संरचना की दृष्टि से कमजोर तथा आरंभ में निरर्थक लफ्फाजी से ग्रस्त है किंतु अंत में कहानीपन और मार्मिकता को थोड़ा बहुत छूती है.

अपने समय की सामान्य और व्यापक समस्या-गरीबी को **'गरम कोट'** (डा. माहेश्वर) सहज व जीवंत ढंग से उभारती है. बताती है कि ठोस वास्तविकता (गरीबी) व्यक्ति की सारी मानसिक ग्रंथियों पर भारी पड़ती है. इसका कहानीपन अपने संक्षिप्त रूप में अचूक है. यहां न अनुभव का जांच-परख तराश का कोई संकट है न अभिव्यक्ति का. यह संकट **'एक मामूली आदमी'** (रामदरश मिश्र) के लिए भी नहीं है. जिंदगी सिर्फ धन और तथाकथित प्रतिष्ठा का पर्याय नहीं यह सच जीवंत प्रसंगों के माध्यम से व्यंजित है. इस जीवंतता के अभाव में **'झरना'** (रतन वर्मा) वास्तविक समस्याओं से दो चार होने पर भी पाठक को कम आंदोलित कर पाती है. **'गोविंद गाथा'** (अमर गोस्वामी) की स्थिति इस से कुछ ही बेहतर है.

'गरम कोट' की तरह **'टुंड्रा प्रदेश'** (पंकज बिष्ट) भी सामान्य चरित्रों की असामान्य कहानी है. यथार्थ का भरा-पूरा संतुलित चित्रण दो बच्चों के माध्यम से, जो भाई-भाई हैं, बहुत कुछ व्यंजित करता है. विपरीत परिवेश में आर्थिक और भावनात्मक स्तरों पर संघर्ष करते बच्चे परिवेश का अंग बनकर आये हैं. उनका बचपन जिम्मेदारियों से लदा बड़ापन होने के लिए विवश है. इस कारुणिक यथार्थ में भाई-भाई के संबंधों की ऊष्मा कहानी को जीवंत बनाती है. **'किस्सागो'** (शेखर जोशी) का प्रभाव और भी तीव्र है

वाचक के कथाकारीय झूठ के ठीक सामने गांव के बच्चे का खुरदुरा सच और अधिक खुरदुरा होकर उभरता है. यहां बच्चा कल्पनालोक की कहानियों के प्रति कम और घर में ईंधन के प्रभाव के प्रति ज्यादा सचेत है. यह बच्चा भी 'बड़ा' है. लोक-प्रसंगों के दक्ष प्रयोग और गद्य के ठेठ अंदाज ने कहानी में जो भरा-पूरा वातावरण बनाया है, यह यथार्थवाद का उल्लेखनीय सर्जनात्मक आयाम है.

इस अंक में नौवें दशक की हिंदी-कहानी पर चार लेख भी हैं. चंचल चौहान और सुधीश पचौरी के लेख पाठकीय अनुभव के अकाल को आलोचकीय फर्मूलेबाजी की कुछ बूंदों से ढंकने की नाकाम कोशिश करते हैं. अखिल अनूप अपनी भाषाई कलाबजियों पर मुग्ध होने के कारण निरर्थक विस्तार में मन से रमे हैं. आलोचक की मसीहाई मुद्रा से दूर अध्येता की दृष्टि से बात करने के कारण सिर्फ 'इधर की कहानी पर कुछ नोट्स' लेख ही कुछ दूर तक काम का है. □

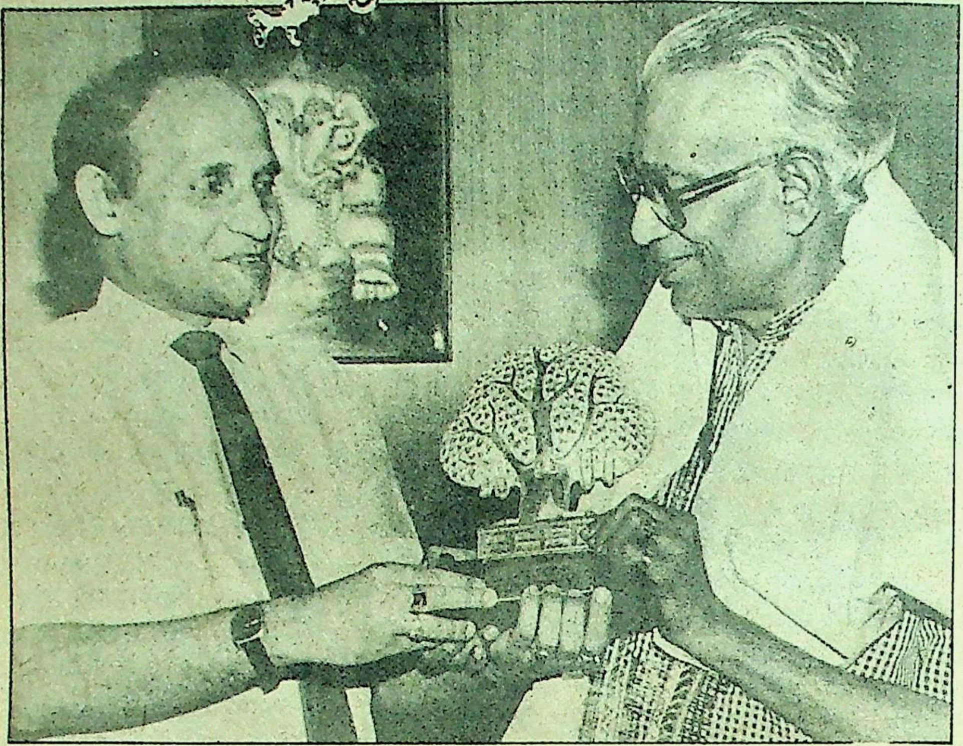

● डा. धर्मवीर भारती को पुरस्कार का प्रतीक चिह्न 'चांदी का बोधिवृक्ष' प्रदान करते हुए बिहार राजभाषा विभाग के निदेशक डा. भगवती शरण मिश्र.

डा. धर्मवीर भारती सम्मानित

२२ मई, शाम साढ़े सात बजे. ५ शाकुंतल [डॉ. भारती का आवास] बांद्रा पूर्व बंबई. बिहार राजभाषा विभाग के निदेशक डा. भगवतीशरण मिश्र और उनके सहयोगी उपनिदेशक श्री बी. दास बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा प्रदत्त डा. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान के प्रतीक चिह्न और अलंकरण डा. धर्मवीर भारती को समर्पित करने आये. इस अवसर पर एक छोटी, सादा, लेकिन आत्मीय संगोष्ठी डा. भारती के आवास पर ही आयोजित हो गयी. इसमें मुख्यत: 'धर्मयुग' के संपादक गणेश मंत्री, 'नवभारत टाइम्स' बंबई के स्थानीय संपादक विश्वनाथ सचदेव, 'सारिका' के संपादक अवधनारायण मुद्गल, बंबई विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष डा. चंद्रकांत बांदिवडेकर, लेखिका पुष्पा भारती और चित्रा मुद्गल आदि ने हिस्सा लिया. अलंकरण प्रदान करने से पहले डा. भगवतीशरण मिश्र ने भारतीजी की साहित्य साधना, एक सफल विशिष्ठ और वरिष्ठ पत्रकार की प्रखर सूझबूझ तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार में उनके महत्वपूर्ण योगदान पर संक्षिप्त लेकिन महत्वपूर्ण और विद्वतापूर्ण टिप्पणी करते हुए कहा कि भारतीजी को सम्मानित करके बिहार का राजभाषा विभाग और बिहार सरकार ही मूलत: गौरवान्वित हुई है. डॉ. मिश्र ने बताया कि आधिकारिक रूप में यह सम्मान समारोह ४ अक्तूबर को पटना में संपन्न कर लिया गया था लेकिन गंभीर अस्वस्थता के कारण भारतीजी उस समारोह में उपस्थित नहीं हो सके थे. एक लाख रुपये की सम्मान राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा उनके पते पर भिजवा दी गयी थी. इस समय हम लोग भारतीजी को बिहार सरकार की ओर से शेष अलंकरण प्रदान करने और उनके स्वस्थ्य और दीर्घ जीवन की कामना करने यहां आये हैं.

अलंकरणों में सम्मान का प्रतीक चिह्न चांदी का बोधिवृक्ष, भागलपुरी रेशम का दुशाला और तांबे का प्रशस्ति पत्र प्रमुख थे. अलंकरण समर्पित करने के बाद अनौपचारिक बातचीत में डा. मिश्र ने बताया कि अब डा. राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान की राशि एक लाख, इक्यावन हजार रुपये कर दी गयी है. शिखर सम्मान के अतिरिक्त बिहार सरकार का राजभाषा विभाग १२ अन्य पुरस्कार भी प्रदान करता है जिनमें मुख्य हैं : हिंदी कविता के क्षेत्र में विशिष्टतम योगदान के लिए ५१ हजार रुपये का रामधारी सिंह दिनकर पुरस्कार, लेखन की किसी भी विधा में विशिष्टतम योगदान के लिए २५ हजार रुपये का केवल महिलाओं को दिया जाने वाला महादेवी वर्मा पुरस्कार और हिंदी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में विशिष्टतम योगदान के लिए २५ हजार रुपये का बाबू गंगाशरण सिंह पुरस्कार.

शिखर सम्मान तीन वर्ष पू शुरू हुआ है. इसके समर्पण प्रयत्न यह रहता है कि एक बिहार से बाहर के किसी वरि साहित्यकार, पत्रकार या हि सेवी को सम्मानित किया जाये एक वर्ष बिहार की ही कि वरिष्ठ प्रतिभा को पुरस्कृत कि जाये. सबसे पहले यह सम्म स्वर्गीय श्री अमृतलाल नागर दिया गया. दूसरे वर्ष श्री जान वल्लभ शास्त्री को और १९८९ लिए भारतीजी को दिया गया है. यह अतिशयोक्ति नहीं सच्चाई है कि हिंदी की कोई भी छोटी या बड़ी पत्रिका सब अधिक बिहार में पढ़ी जाती है. इसलिए बिहार को इस बात गर्व है कि वह हिंदी के लगभग छोटे या बड़े लेखक से कमोबे परिचित रहता है. जो पाठको जागरूकता बिहार में दिखाई दे है वह शायद ही किसी अन्य हिं भाषी प्रदेश में नजर आती हो.

डॉ. धर्मवीर भारती को सम्मा का प्रतीक चिह्न तथा अलंकर प्रदान करने की औपचारिकता निभाने के लिए आयोजित संक्षिप्त लेकिन अनौपचारि संगोष्ठी रात लगभग दस संपन्न की गयी.

हिंदी के लिए ंदोलन होंगे

विश्वविद्यालय हिंदी परिषद के तत्वावधान में र दिल्ली विश्वविद्यालय के र हाल में एक दिवसीय य संगोष्ठी का आयोजन गया जिसका विषय था ज्ञान व सामाजिक विज्ञान आदि यों में हिंदी माध्यम' एवं विद्यालय प्रशासन और ं'. संगोष्ठी का उद्घाटन पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने या.

इस अवसर पर अपने टन भाषण में ज्ञानी जैलसिंह हा कि हिंदी के विकास में से बड़ी बाधा सरकार की नीयत न होना है.

जनप्रतिनिधियों को आड़े हाथों हुए ज्ञानी जी ने कहा कि के समय नेता भारत की ता से वोट लेने के लिए हिंदी र भारतीय भाषाओं में भाषण ते हैं. लेकिन सत्ता में आते ही दी को भूलकर अंग्रेजी के जाल फंस जाते हैं. यह देश के लिए ता की बात है.

पूर्व राष्ट्रपति ने उत्तरप्रदेश के ख्यमंत्री श्री मुलायमसिंह यादव मुक्त कंठ से प्रशंसा की और हा कि वे पहले ऐसे राजनीतिज्ञ जिन्होंने राष्ट्रभाषा के उत्थान के कदम उठाकर साहस का रिचय दिया है. ऐसा ही साहस धानमंत्री श्री विश्वनाथप्रताप ह भी दिखा दें तो यह इस सरकार की सबसे बड़ी उपलब्धि गी.

दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति श्री उपेंद्र बख्शी ने अवसर पर कहा कि अलंकारिक हिंदी की अपेक्षा आम बोलचाल की हिंदी के प्रयोग से हम दी का विकास तेजी से कर गे.

प्रथम सत्र में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान आदि विषयों में हिंदी माध्यम पर चर्चा का विषय प्रवर्तन डा. जगदीश चंद्र मूना ने किया. वक्ताओं में डा. बी. एस. यादव, श्री विश्वंभर प्रसाद गुप्त बंधु, डा. आर. बी. जैन प्रमुख थे. सभी का कहना था कि हिंदी माध्यम में पारिभाषिक शब्दों की कोई समस्या नहीं है. इस सभा के अध्यक्ष डा. सत्यप्रकाश ने विज्ञान की मौलिक पुस्तकों के लेखन पर बल दिया.

द्वितीय सत्र में अध्यक्षता डा. रामेश्वरप्रसाद मिश्र ने की और 'विश्वविद्यालय प्रशासन और हिंदी' विषय पर जिन वक्ताओं ने अपने पत्र पढ़े उनमें सर्वश्री डा. सूबेसिंह राणा, डा. महेशचंद्र अग्रवाल, श्री विजय मल्होत्रा थे. इस सत्र में संयोजक हिंदी अकादमी के सचिव डा. नारायण दत्त पालीवाल और डा. कृष्णलाल थे.

संगोष्ठी का समापन दिल्ली विश्वविद्यालय के समकुलपति डा. के. डी. गंगराडे ने किया.

☐ प्रस्तुति : दयानंद वत्स

कहानी का[illegible]शाला

यदि नये कहानीकारों को अग्रज पीढ़ी के रचनाकारों-आलोचकों के साथ अंतरंग बातचीत, बहस तथा विचार-विमर्श का अवसर मिले, तो उनकी रचनाशीलता अधिक सार्थक तथा प्रभावशाली बन सकती है. इसके अलावा, लेखक-आलोचक के बीच संवादहीनता को तोड़ने की भी जरूरत है. इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए जनवादी लेखक संघ की कुरुक्षेत्र इकाई ने, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय परिसर में पिछले दिनों [२६-२७ मई को] एक कहानी कार्यशाला का आयोजन किया. दो दिन तक चली इस कार्यशाला के चार सत्रों में हरियाणा, दिल्ली व चंडीगढ़ से आये हुए तीस लेखकों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया. इनमें स्थानीय लेखकों के अलावा रमेश उपाध्याय, विष्णु नागर, राकेश वत्स, ज्ञानप्रकाश विवेक, ललित कार्तिकेय, सहीराम, मदनलाल वर्मा, अमृतलाल मदान, रामकुमार आत्रेय 'प्रभाकर', मनमोहन, शुभा, अशोक भाटिया, प्रमोद कौंसवाल, सत्यपाल सहगल, आनंद प्रकाश, अजय श्रीवास्तव, विनोद कुमार, धन्वंतरि, हरनाम शर्मा आदि लेखक-आलोचक शामिल थे.

पहले सत्र में 'हिंदी कहानी की वर्तमान स्थिति' तथा रचनात्मकता के सामने आयी हुई चुनौतियों पर परिचर्चा हुई. डा. ओमप्रकाश ग्रेवाल ने बहस की शुरुआत करते हुए सामाजिक यथार्थ के ज्वलंत मुद्दों की सही परिकल्पना विकसित करने की आवश्यकता को रेखांकित किया. उन्होंने स्पष्ट किया कि आज की जटिल परिस्थितियों में रचनाशीलता के संदर्भ में चलताऊ निष्कर्षों से काम नहीं चलेगा. मात्र शैली, शिल्प या रूप के आधार पर की गयी चर्चा भ्रामक हो सकती है. राकेश वत्स ने अपने पर्चे में आज की कहानी की सूरत के साथ-साथ सीरत पर भी ध्यान केंद्रित करने की जरूरत पर बल दिया. सुरजीत ने नयी कहानी और उसके बाद आये बदलावों तथा मुख्य पड़ावों पर दृष्टिपात किया. दिनेश दधीचि ने रचनाकारों द्वारा स्वयं अपनी स्थापित अवधारणाओं के प्रति भी आलोचनात्मक तथा वस्तु परक दृष्टि विकसित करने की जरूरत को रेखांकित किया. उनका कहना था कि आज ऐसी कहानियां परोसते चले जाने की कतई जरूरत नहीं है, जो पाठक की बनी-बनायी आम समझ की गहरी जांच-पड़ताल किये बिना उसे और पुख्ता करती चली जायें. इन तीनों विचारोत्तेजक आलेखों पर गर्मजोशी से बहस हुई.

शेष तीन सत्रों में कहानियों का पाठ और उन पर टीका-टिप्पणी का दौर-दौरा रहा.

प्रस्तुति : तारा पांचाल

ग़ज़लों की वह शाम

राजधानी दिल्ली धीरे-धीरे देश की सांस्कृतिक राजधानी भी बनती जा रही है, जहां आये दिन साहित्य, कला, संगीत आदि के कार्यक्रम होते हैं. इन कार्यक्रमों में से कुछ बड़े चलताऊ किस्म के होते हैं, किंतु कुछ स्मरणीय बन जाते हैं. ऐसा ही एक कार्यक्रम २३ मार्च १९९० को त्रिवेणी कला संगम के सभागार में देखने को मिला जिसे राजधानी की साहित्यिक संस्था 'बरगद' ने आयोजित किया था.

यह था उपेंद्र कुमार की ग़ज़लों की संगीतमय प्रस्तुति का कार्यक्रम. उपेंद्र कुमार अपेक्षाकृत नये ग़ज़ल-गो हैं, लेकिन उनकी ग़ज़लों में अद्भुत परिपक्वता है. इसी कारण वे कह सके हैं—'ज़िंदगी के सफर में बस्तियां कई आयीं, अपना घर नहीं आया' या 'धुंध है तो छंटने का इंतजार क्या कीजे'. एक ओर मांसल और दूसरी ओर गहन सामाजिक संलग्नता वाली ऐसी तमाम ग़ज़लों को जब श्रोताओं ने गायक के मुख से सुना तो वे भावविभोर हो उठे. शब्द, स्वर और वाद्यों के संगम से उस शाम साहित्य और संगीत की स्निग्ध नदी ही बह उठी.

कार्यक्रम की अध्यक्षता विख्यात विधिवेत्ता डा. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने की. उपेंद्र कुमार की कविता—यात्रा का परिचय प्रसिद्ध कवि डा. शेरजंग गर्ग ने दिया और आयोजन का सफल संचालन लेखक-पत्रकार-अभिनेता-रईस मिर्ज़ा ने किया. ☐

● प्रस्तुति : प्र. पंत

ये मुस्कान रहेगी कायम

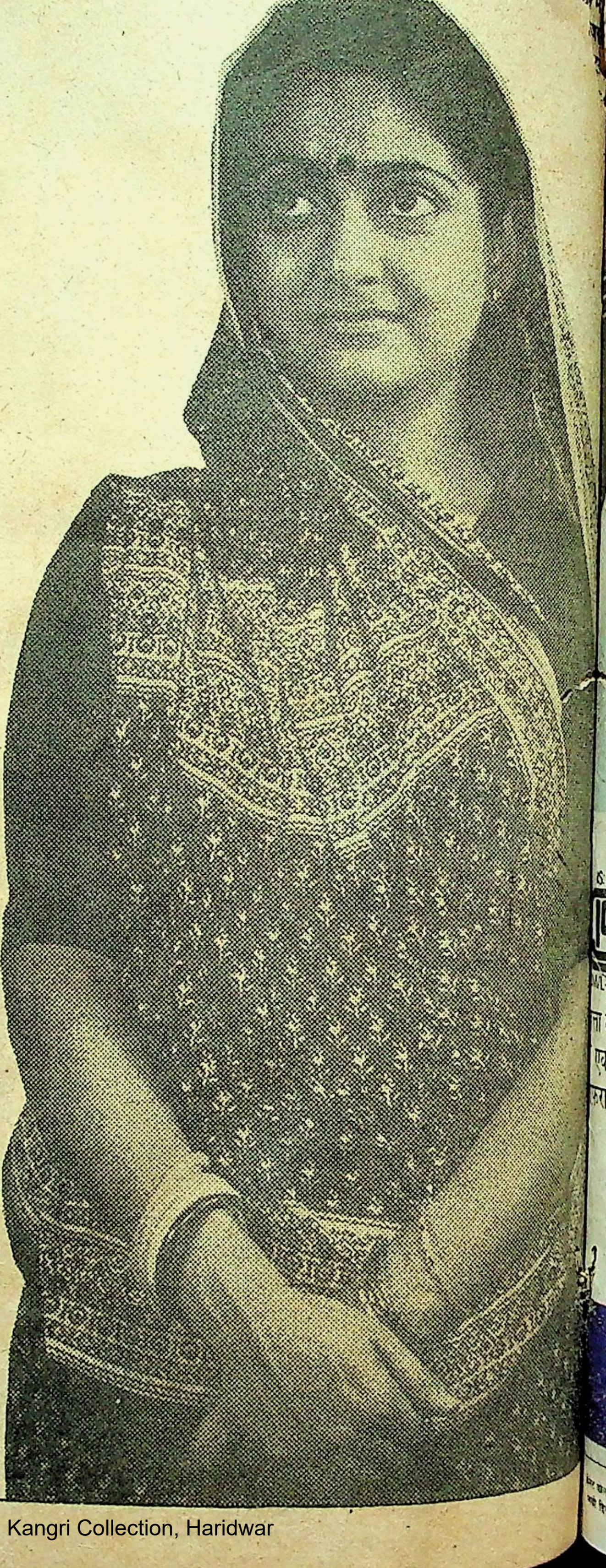

जिस दिन से मिल गया उसे अनचाहे गर्भ से छुटकारा,
उसकी खुशियों का झिलमिलाया सितारा।
अपने परिवार को छोटा रखने के लिए आज
संसार में साढ़े छः करोड़ से भी ज्यादा औरतें ओरल पिल्स यानि
गर्भ निरोधक गोलियां खा रही हैं।
उन्हीं की तरह उसने भी माला-डी-नई छोटी
खुराक वाली गोलियां खाना शुरू कर दी हैं।
ये गोलियां खासतौर से भारतीय महिलाओं
के लिए अनुकूल हैं।
पहला बच्चा जल्दी नहीं,
दूसरा उसके तीन साल बाद
और इसके लिए हर समझदार औरत खाती है गर्भ निरोधक
गोलियां
माला-डी-गोलियों के प्रयोग से छाती का कैंसर,
डिम्ब ग्रंथि का कैंसर, गर्भाशय कैंसर तथा पेडू
में सूजन जैसे रोग का खतरा कम हो जाता है।

डाक्टर की सलाह लीजिए,
वह आपको माला-डी की राय देंगे।

Rx
माला·डी
Mala·D
निरोधक गोलियां
CONTRACEPTIVE PILLS
स्त्रियों के लिए खाने की गोली
for oral use by women

माला-डी, बच्चों के जन्म में अन्तर के लिए
सुरक्षित, सरल और शर्तिया उपाय
नई खाने की गर्भ-निरोधक गोलियां,
रियायती दामों पर,
सिर्फ 2 रु. में एक पैकेट।

davp 90/169

"स्व[illegible]जवाब
सुगन्ध, वाह जनाब!"

रत्नाछाप
जाफरानी पत्ती
300
रत्नाछाप
ज़ाफरानी प
सुगन्धित चबाने की तम्बाकू
शुद्ध वज़न 50 ग्राम
300

IS:2344
ISI
ML-1081435
ता के मानदण्ड
एकदम खरा
फरानी जर्दा

रत्ना
छाप
जाफरानी पत्ती नं.-300

TRADE MARK
REGD. NO. 295532

अब नई शानदार पैकिंग में

वैधानिक चेतावनी : तम्बाकू चबाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है

प्रभात ज़र्दा उत्पादन

र एंड क. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेश चंद्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग [illegible] बंबई-400001. शाखाएं: 7 बहादुरशाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7 ए. एस.एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014; एस.एंड बी. टावर्स, 88, महात्मा गांधी रोड, बंगलोर-560001; 8-9 अनुपम चेंबर्स, टोंक रोड, जयपुर-302004.

पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति प्र. U-89

RNI No. 6254/60

Regn. No. KRN
RJ 2954

16/7/90

1686
24/7/90

408
5/8/90

चुटकी में मस्ती
Chutki
अब
जर्दा पान मसाला
में भी उपलब्ध।
चुटकी
पान मसाला
Chutki
Chutki
Pan Masala with Zarda
Chutki

प्यार के रिश्तों में एक अनोखी ताज़गी और मीठी-मीठी महक लाता है। हर मौके, हर महफिल में रंग जमाता है। सौंफ छुआरा और इलायची वाला चुटकी पान मसाला

वैधानिक चेतावनी: जर्दा चबाना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

जनरुचि की 50 पुस्तकों की एक अनूठी संग्रहणीय शृंखला

विश्व-प्रसिद्ध
जासूसी कांड

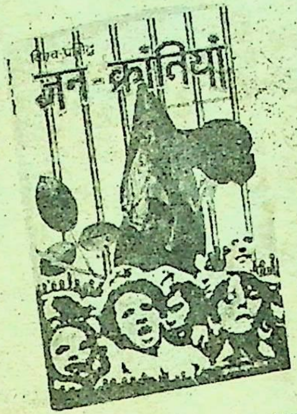
विश्व-प्रसिद्ध
जन-क्रांतियां

विश्व-प्रसिद्ध
अनसुलझे रहस्य
पुस्तक महल

विश्व-प्रसिद्ध
अद्भुत घटनाएं

विश्व-प्रसिद्ध
विनाश-लीलाएं

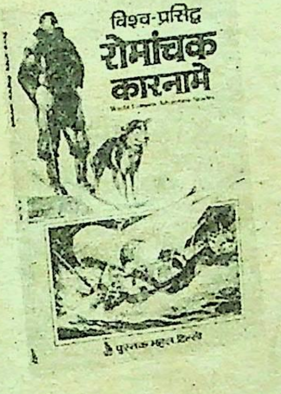
विश्व-प्रसिद्ध
रोमांचक
कारनामे
पुस्तक महल दिल्ली

शृंखला की
अन्य प्रकाशित
पुस्तकें

मूल्य : 18/-प्रत्येक
डाकखर्च : 5/-प्रत्येक
छः पुस्तकों पर डाकखर्च माफ

- प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री
- कलात्मक प्रस्तुतिकरण
- सैकड़ों दुर्लभ चित्र
- वाजिब दाम

An abridged edition of
GUINNESS BOOK OF WORLD RECORDS
गिनेस बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स
विश्व-प्रसिद्ध
रिकार्ड्स

1. नास्त्रेदमस के अनुसार सन् 1999 में दुनिया खत्म–*भविष्यवाणियां और भविष्यवेत्ता*
2. एक जनसंहार, जिसमें छः करोड़ से भी अधिक लोगों की निर्मम हत्याएं हुईं–*जनसंहार*
3. सोफिया लॉरेन, ज़ैकलीन कैनेडी, मर्लिन मनरो जैसी यौन-देवियाँ–*विलासी सुंदरियां*
4. सरकंडे की नाव से 13,000 मील लंबी तूफानी समुद्र की यात्रा–*रोमांचक कारनामे*
5. जवाहरलाल नेहरु और एडविना माउंटबेटेन की प्रेम-कहानी–*हस्तियों के प्रेम-प्रसंग*
6. हत्यारा हेग, जिसकी प्यास मानव-रक्त पीकर ही बुझती थी–*क्रूर हत्यारे*
7. वीनस फ्लाइट्रैप पौधा, जो करता है जीवित प्राणियों का शिकार– *मांसाहारी पेड़-पौधे*
8. क्लियोपैट्रा , जो 10,000 से भी अधिक लोगों के साथ हमबिस्तर हुई–*कुख्यात महिलाएं*

–यह दुनिया आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय, सनसनीखेज एवं रोमांचक चीजों एवं घटनाओं से भरी पड़ी है –इन सभी के विषय में दुर्लभ सचित्र जानकारी जुटाती है–**विश्व-प्रसिद्ध शृंखला**

–इसकी प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक ऐसा मिनि एनसाइक्लोपीडिया है, जो परम ज्ञानी से लेकर एक औसत पाठक तक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम से जोड़कर उसके ज्ञान-भंडार को बढ़ाता है ।

विश्व-प्रसिद्ध......
* प्रेरक-प्रसंग * दुर्घटनाएं
* खोजे * जनसंहार
* जासूस * युद्ध
* वैज्ञानिक * क्रूर हत्यारे
* सभ्यताएं * ड्रग-माफिया
* भविष्यवाणियां एवं भविष्यवेत्ता
* बैंक डकैतियां व जालसाजियां
* धर्म, मत एवं संप्रदाय
* खोज-यात्राएं
* हस्तियों के प्रेम-प्रसंग
* तख्तापलट की घटनाएं
* रोमांस-कथाएं
* 101 व्यक्तित्व
* भ्रष्ट राजनीतिज्ञ
* अलौकिक रहस्य
* गुप्तचर-संस्थाएं
* राजनैतिक हत्याएं
* आतंकवादी संगठन
* चिकित्सा-पद्धतियां
* सनकी तानाशाह
* खेल और खिलाड़ी
* कुख्यात महिलाएं
* मिथक एवं पुराण-कथाएं
* मांसाहारी व विचित्र पेड़-पौधे
* भयानक रोगों पर विजय
* आध्यात्मिक एवं शैतान-कल्ट्स

शेष 9 पुस्तकें प्रेस में

30 Titles available in English & 5 in Bangla

VAN/PM/8/90

अपने निकट व ए.एच. व्हीलर के रेलवे व बस-अड्डों के बुकस्टॉलों पर मांगें अन्यथा वी.पी.पी. द्वारा मंगाने के पते :-

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006 शोरूम : 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

कथा पहेली

जून : १९९०

सर्वशुद्ध हल

१. युगल की 'जुर्म'
२. 'डाले नहीं हाशिये' और रचनाकार शील
३. 'पापी'
४. 'बदलते जीवन मूल्य'
५. महेश चंद्र सरल ने अपनी रचना 'फसल'
६. 'विषवृक्ष'
७. सुरेंद्र चौधरी
८. 'श्रद्धा का ताजमहल'

२५०० प्रतियोगियों में से केवल तीन प्रतियोगी सर्वशुद्ध हल भेज पाने में सफल हुए हैं. पुरस्कार राशि इन प्रतियोगियों में समान रूप से वितरित की जा रही है. पुरस्कार विजेताओं को बधाई.

पुरस्कार विजेता हैं.

गगन कुमार श्रीवास्तव
४११-ए. इंडिया आर्फिंग रेलव कालोनी
ट्रांसपोर्ट नगर
कानपुर-२०८०२३ (उ.प्र.)

शरदेंदु शखर
वाणिज्य मंत्रालय
कमरा नंबर-५३८, उद्योग भवन
मौलाना आजाद रोड
नयी दिल्ली-११००११

कमल किशोर आर्य
सुपुत्र श्री चांदमल आर्य
कटरा बाजार, सादो की गली
जोधपुर-३४२००२ (राज.)

सारिका कथा पहेली

सारिका गौर से पढ़िए और २०० रु. पुरस्कार जीतिए!

'सारिका कथा पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों से अनुरोध है कि वे पूर्तियां इसी पृष्ठ पर भेजें. इस बार के प्रश्न जुलाई १९९० के अंक पर आधारित हैं. पूर्तियां कार्यालय में पहुंचने की अंतिम तिथि २५ अगस्त, १९९० है. जिन इलाकों में 'सारिका' विलंब से पहुंचती है, वहां के पाठक २५ तारीख के बाद भी पूर्तियां भेज सकते हैं.

कथा-पहेली : अगस्त : १९९०

निर्देशानुसार खाली स्थान भरिए...

१. इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी . . . . है.

२. . . . . शीर्षक रचना के साथ सर्वाधिक सटीक रेखांकन/चित्र का प्रयोग हुआ है.

३. साक्षरता का व्यक्तित्व के विकास के साथ संबंध ही नष्ट हो जाने के खतरे का संदर्भ . . . . ने अपने . . . . में प्रस्तुत किया है.

४. इन रचनाओं के लेखकों के नाम कोष्ठक में लिखें.

I 'भेड़िए' [ ] II 'वह तू ही था' [ ]
III 'परिंदे' [ ] IV 'किस्सागो' [ ]
V 'अतिक्रमण' [ ] VI 'अंतहीन' [ ]

५. पात्र को स्टेज पर से उतारकर पब्लिक के बीच ले आने का उल्लेख . . . . की . . . . शीर्षक कहानी में आया है.

६. . . . . शीर्षक रचना में शहर की समूची तस्वीर उभर कर आती है.

७. . . . . . . शीर्षक रचना में एक मणि का उल्लेख हुआ है यह मणि है— . . . .

८. लोक कथा शैली की एक कहानी इस अंक में प्रकाशित हुई है. यह कहानी है— . . .
. . . .

९. एक ही पृष्ठ पर चार महान रचनाओं के चित्र प्रकाशित हुए हैं. यह रचनाकार हैं
I . . . . II . . . .
III . . . . IV . . . .

नाम . . . .

पता . . . .

डायमंड पाकेट बुक्स में

चार नये उपन्यास

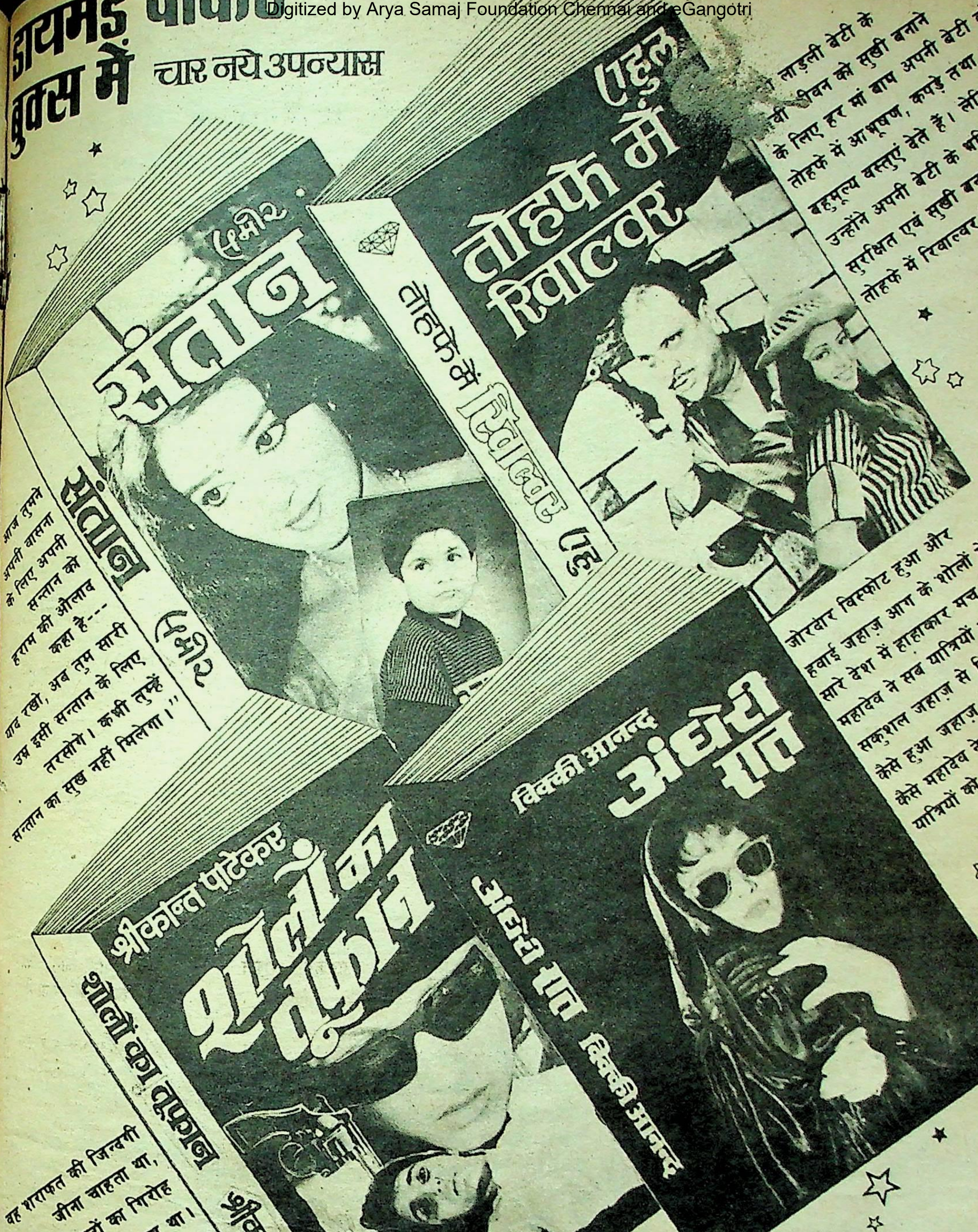

[illegible] लाड़ली बेटी के भावी जीवन को सुखी बनाने के लिए हर मां बाप अपनी बेटी को तोहफे में आभूषण, कपड़े तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं देते हैं। लेकिन... उन्होंने अपनी बेटी के भविष्य को सुरक्षित एवं सुखी बनाने के लिए तोहफे में रिवाल्वर दिया।

"आज तुमने अपनी वासना के लिए अपनी सन्तान को हराम की औलाद कहा है--- याद रखो, अब तुम सारी उम्र इसी सन्तान के लिए तरसोगे। कभी तुम्हें सन्तान का सुख नहीं मिलेगा।"

जोरदार विस्फोट हुआ और हवाई जहाज़ आग के शोलों में घिर गया। सारे देश में हाहाकार मच गया। महादेव ने सब यात्रियों को सकुशल जहाज़ से निकाल लिया। कैसे हुआ जहाज़ में विस्फोट? कैसे महादेव ने सब यात्रियों को बचा लिया?

वह शराफत की जिन्दगी जीना चाहता था, लेकिन हत्यारों का गिरोह उसके खून का प्यासा था। जब उसके सीने में शोलों का तूफान उठा तो उसने हत्यारों को चुन चुनकर मौत के घाट उतार दिया।

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

अगला अंक

दिल्ली दरबार बनाम जाटों के सिरताजों की राजनीति के तरकश के तमामतर तीरों की मारक क्षमता का बयान प्रस्तुत करती आनंदप्रकाश जैन की संपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासिका

नागपाश

सवाई जयसिंह का बेटा, नवयुवक राजा माधोसिंह, २२ नवंबर, १७५३ के दिन, जाटों के सिरताज महाराज सूरजमल के साथ दिल्ली से चलकर भरतपुर पहुंचा. कुछ इस नव-निर्मित अभेद्य कहे जानेवाले किले को देखने की चाह लिए और कुछ ऐसी शख्सियत से रू-ब-रू होने की चाह लिए जिसके बारे में किंवदंतियां मशहूर थीं कि सूरजमल के दिल की धड़कनें वहीं से पैदा होती हैं.

वह थी रानी हंसिया. कोई कहता था कि जब वह हंसती है तो सामने वाले को गलफांसी लग जाती है. किसी का विचार था कि मनुष्य के अंतर को बच्चों की पाटी की तरह पढ़ लेती है. महाराज सूरजमल और उनके रत्नों को माधोसिंह से ढेरों मंत्रणाएं करनी थीं मगर माधोसिंह को एक ही धुन थी—कब उस रहस्यमयी रानी के दर्शन होंगे, जो चुन-चुनकर तूणीर से तीर निकालती थी और तत्कालीन जाट-अर्जुन को अपने गांडीव की प्रत्यंचा पर चढ़ाने के लिए चुपके से थमा देती थी...

पत्रिका की कीमत पर एक पूरी किताब

सारिका

कई बार अपने ही खयालों में मरा है वह. कौन-सा वह उपाय न होगा जो मरने की खातिर उसने न आजमाया हो. मगर हर बार उसने पाया कि मरा वह नहीं, समय है.

मरे हुए समय और जिंदा इंसान का हाल बयान करती—इस बार की कहानियों में आप पायेंगे अपने सुदूर वर्तमान, अवश्यंभावी भविष्य और इस आगामी अतीत का हाल-हवाल-

इन्हें बयान किया है :—

द्विवजेंद्रनाथ मिश्र 'निर्गुण', रामदरश मिश्र, आनंद प्रकाश जैन, अरविंद कुमार, बलराज वर्मा, सुभाष पंत, रामाशीष, अभिमन्यु अनत और एकदम नये कथाकार-कलाकार राजकमल ने.

एक नयी शुरुआत

कथा शेक्सपियर की हो—'जूलियस सीजर', और कथा-भूमि, पात्र हों भारतीय—सिंधु नदी के तट पर बसे सेंधव गणराज्य की राजधानी धारानगरी के! तब!

पूरब और पश्चिम के इस मेल की क्या छटा निराली ही न होगी? अरविंद कुमार ने नव्यतम प्रयोग नाटक 'जूलियस सीजर और विक्रम सेंधव' का एक अंश.

साथ ही

- **से.रा. यात्री का हलफिया बयान कि कब और कैसे उन्होंने कथाकार राजेंद्र यादव का बिस्तर बंधवा दिया था.**
- **विजय मोहन सिंह की कथा आलोचना की सैर पर ले जायेंगे इस बार आलोचना की पुनर्यात्रा' के अंतर्गत सुधीश पचौरी.**
- **सरकती सरकार की खेल-भावना और मेधा की बानगी बयान करेंगे गोपाल चतुर्वेदी—अपने स्तंभ के जरिए.**
- **कृतियां, हलचल, आपकी बात, अपनी बात, कार्टून, लघुकथाएं तथा कथा-पहेली तो होगी ही.**

सारिका

सितंबर, ९०

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान

वर्ष : ३०, अंक : ४५९, अगस्त : १९९०

भीष्म साहनी : हीरक जयंती अंक

प्रकाशक:
रमेश चंद्र

संपादक:
अवधनारायण मुद्गल

उप संपादक:
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

सीनियर मैनेजर विज्ञापन:
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिस्पांस:
डा. राजेंद्रपाल जैन

सीनियर ऑफीसर रिस्पांस:
शबनम अग्रवाल

रिस्पांस सहयोगी:
अशोक माथुर

प्रोडक्शन:
हरेंद्र सिंह नेगी
उदेश कुमार

अंक सज्जा
हेम ज्योतिका

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था:
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय:
डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग,
बंबई-400001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर

33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1

13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट,
कलकत्ता-700062

'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6 डी नगामवक्कम हाई रोड,
मद्रास-600034

88 महात्मागांधी रोड, बंगलूर

407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411002

उपन्यासिका

५६ गणित :
श्रवणकुमार

उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था कि हर औरत पजैस्सिव होती है. एक बार उसके हाथ कोई आदमी लग जाये तो उसे समूचे को हड़प लेना चाहती है. उन्हें पजैस्सिवनेस से बड़ी चिढ़ है. वह अपनी पत्नी की भी इसी पजैस्सिवनेस से चिढ़ उठते हैं. हां, अक्सर जब वह मेरे साथ होते हैं तो मैं चाहती हूं, वह कहीं जायें नहीं, मेरे पास ही रहें. काश कि मैं उन्हें रोक पाती!

लेकिन सच, कैसे बंध गया हूं एक फैंस्ड, एक इतने प्रतिबद्ध व्यक्ति से, इसलिए अक्सर सोचती हूं कि मुझे उनसे अधिक की या 'संपूर्णता' की आशा नहीं करनी चाहिए.

नहीं भई, कहीं भी छुटकारा नहीं. इस अनाम तकलीफ से किसी प्रकार भी मुक्ति नहीं.

आवरण पारदर्शी:
धर्मवीर जयनर

आवरण सज्जा:
जसबीर सिंह

भीष्म साहनी की कथा-रचनाएं

१० नीली आंखें
२० वाइ. चू
३२ मनादी
३९ बबली
५१ मुआवज़े

आत्मरचना

१३ जिंदगी ७५° के कोण से
१७ भीष्मजी एक नजर में

परिचर्चाएं

१९ भीष्म साहनी निर्देशकों की निगाह में :
संजय मासूम
४३ भीष्म साहनी समकालीनों की निगाह में :
देवेंद्रकुमार चौबे
५४ भीष्म साहनी नाट्यकारों की निगाह में : **सामबे**

विशिष्ट आयोजन

१८ मेरे पति भीष्म साहनी :
शीला साहनी
२९ मेरी नजर के आईने में :
से.रा. यात्री
४६ भीष्म साहनी का कथा-संसार :
राजकुमार सैनी
४८ भीष्म साहनी की कृतियां :
रमाकांत,
भारत यायावर,
राकुगो.

साक्षात्कार

३५ लेखक की विडंबना यह है कि वह अपने लिखे को काट नहीं सकता :
भीष्म साहनी से महेश दर्पण की बातचीत

धारावाही आयोजन

७१ लाल पसीना :
अभिमन्यु अनत
७९ पुरुषोतम :
भगवतीशरण मिश्र

स्थायी स्तंभ

४ कथा पहेली
८ आपकी बात
९ पुरस्कार

कापीराइट ©1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

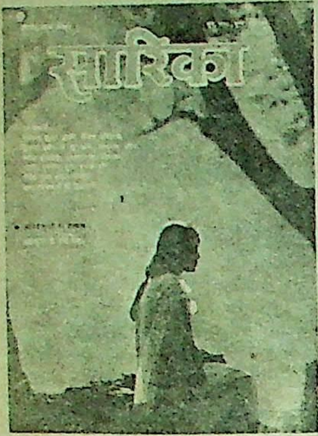

कलम का रक्षक

'टाट का कफन' में नफीस आफरीदी ने वर्त्तमान के संदर्भ में एक लेखक या कवि की स्थिति को काफी खूबसूरती से बयां किया है. कलम की ही बदौलत आज तक कई बड़ी-बड़ी क्रांतियां, सत्ता परिवर्त्तन हुए हैं और आज कलम के एक रक्षक की मृत्यु पर उसे कंधा देनेवाले भी नहीं मिलते लेखक अपनी लेखनी से गरीबों की समस्याओं को उठाने का प्रयत्न करता है परंतु वे लोग भी उसकी भूख का ख्याल नहीं करते. अपनी लेखनी को सार्थक बनाने के लिए उसे अपने जीवन, अपनी खुशियों की बलि देनी पड़ती है. अपने सारे कीमती वक्त को वह अपनी लेखनी में स्याही बनाकर डाल देता है किंतु बदले में उसे सिर्फ लोगों की गालियां, ताने सुनने को मिलते हैं. ऐसे महान व्यक्ति को भूखों मरना पड़ता है. पागलों की भांति रहना पड़ता है. और मरने पर उसे कफन भी देनेवाला कोई नहीं रहता.

- **विजयकुमारसिंह 'अजनबी', पटना सिटी**

पाठक ही समीक्षक

आबिद सुरती का उपन्यास 'आकाश के उस पार' हिंदी स्टंट फिल्मों का-सा अस्वाभाविक और प्रभावहीन है. यह अन्य सस्ती रुचिवाली कहानी-पत्रिकाओं के ही उपयुक्त है, 'सारिका' के समान स्तरीय पत्रिका के नहीं.

'जिज्जी' उच्चकोटि की मार्मिक कथा है. कहानी के सभी चरित्रों को उदात्तता प्रदान करना, पाठकों को सत्यं, शिवं, सुंदरम् के दर्शन कराते हुए उन्हें संवेदना की उच्च भावभूमि में स्थापित करना, 'अंचल' जैसे वरिष्ठ साहित्यकार के अनुरूप ही है. उर्मिला जी के चरित्र की गरिमा, उनकी सौत तक के प्रति सदाशयता अनुपम है.

'बड़े होते लोग' में आदर्श और यथार्थ का द्वंद्व परिलक्षित है. परिवार में स्वार्थ और संकीर्णता अधिकतर छोटों की ओर से ही प्रदर्शित होती है, बड़े को तो बड़ा रहना ही पड़ता है.

प्यार की प्यास कितनी तीव्र होती है, फिर वह प्यार मां से मिले या किसी लड़की से, इस सत्य की स्थापना 'किराये का इंद्रधनुष' कहानी में की गयी है.

लघुकथा 'मुंह चलाना' में सुंदर हास्य एवं व्यंग्य का पुट है.

'टाट का कफन' में एक नकारात्मक चरित्र के माध्यम से बेकारी बेकार व्यक्ति का अपमानित जीवन, उसका चिढ़चिढ़ापन आदि का यथार्थ वर्णन है.

'बेटी' बेटे-बहुओं के बुढ़ापे में अलग हो जाने तथा आंख फेर लेने की घर-घर की सीधी-सादी भाषा में कहानी है. अंततः उपेक्षिता 'बेटी' ही काम आयी.

वास्तव में कहानी के उन्नयन के लिए औजारों-हथियारों, बढ़इयों, लुहारों, जमादारों अथवा 'तोता-मास्टरों' की नहीं, सहृदय एवं संवेदनाशील पाठकों एवं उनकी हार्दिक प्रतिक्रियाओं की आवश्यकता है तथा किसी कहानी की उत्तमता के लिए तथाकथित समालोचना के नहीं. प्रबुद्ध पाठकों के प्रमाण-पत्र ही पर्याप्त हैं जो कहानी में निहित उदात्त भावनाओं के आधार पर प्रदत्त हों. नुस्खों से अच्छी कहानी नहीं लिखी जाती.

- **नंदकिशोर जैन, लखनऊ**

रचना के पार

संवेदना की जमीन से उपजी एक सार्थक भाव प्रवण कहानी 'आकाश के उस पार' निश्चित रूप में आबिद सुरती के मानवीय सरोकार को उजागर करती है, परंतु इस कहानी ने कुछ प्रश्न खड़े किये हैं जो सिर्फ रचनाकार के सामने न होकर व्यापक साझेदारी की मांग करते हैं.

प्रश्न यह है कि अंजु यदि मर न गयी होती, या वह फूलते गुब्बारे की तरह बे औरत शह न होकर एक सुंदर और सामान्य पत्नी होती तो क्या नायक के मन में नील के प्रति जन्मी गहरी निरुब्बत भावना को नकारा जा सकता था? या उस स्थिति में नील की वह कठिन त्रासदी अर्थहीन हो जाती जिसे वह पल-पल अपने भीतर अकेले में जी रही थी. मुझे नहीं लगता कि नायक के मन में नील के दर्द से अनजाने जुड़ाव और उस जुड़ाव के कारण उपजा प्रेम, मात्र उस रिक्तता का परिणाम था जो अंजु के फुसफुस होने के कारण पैदा हुई थी. तो फिर नील की त्रासदी में हिस्सेदार होने की जरूरत महसूस करने की प्रक्रिया में, पत्नी तत्व की अनुपस्थिति क्यों जरूरी है या इस रचना में हो गयी है?

मेरे समूचे विचार तंत्र में जरूरत एक परिवर्तन भरी दृष्टि की है जो निश्चित रूप से प्रेम तत्व की ऊर्जा से फूटेगी जैसा आबिद ने पकड़ा है, परंतु इस दृष्टि के तहत समाज की बहुत-सी व्यवस्थाओं को, उदार तथा मानवीय भावना से अंतर्निहित होना होगा...पहले तो प्रेमतत्व को ही भ्रांतियों से मुक्त करने की बात है. प्रेम न तो विवाहोन्मुख प्रेरणा है, न स्त्री पुरुष के बीच देह संबंध की मांग का पर्याय...पर अभी प्रेम इन्हीं संज्ञाओं से पारिभाषित होता है.

नीला के दुख से जुड़ाव का प्रश्न भावनात्मक तो है परंतु उस प्रश्न का हल भावुक प्रसंगों में भटककर नहीं तलाशा जा सकता ऐसा मैं सोचता हूं.

- **अशोकगुप्ता, नयी दिल्ली**

संवेदनाओं से खिलवाड़

'कहानी की तीसरी दुनिया के दो तोता मास्टर' (शैलेश मटियानी) पढ़ा, उन्होंने बड़ी बेबाकी और गहन अध्ययन के पश्चात दो महान हस्तियों के स्वभाव, कृतियों और उनके दृष्टिकोण का खुलकर बयान किया है. फिर भी वे स्पष्ट नहीं कर पाये की 'ये' फल ठीक है या 'वे' फल ठीक हैं. अगर मान लिया जाय की ये दोनों हस्तियां अपनी-अपनी जगह अपना खास महत्व रखती हैं, तो फिर समीकरण या सामंजस्य के संतुलन की प्रकृति तो दूर रह जाती है. ऐसे में मटियानी जी का आलेख कोई निर्णायक भूमिका अदा नहीं कर पाता. जबकि अपेक्षा यह रही है कि ऐसा केंद्र बिंदु बनाया जाय जहां से यह जाना जाय कि किनका वृत्त आड़ा-तिरछा है या फिर विकृत है. यहां सुधीश पचौरी की बात को नजर-अंदाज नहीं किया जा सकता है कि—"नामवर जी के कथा समीक्षा संबंधी लेख बहुत महान नजर नहीं आते...उनकी अपनी ऐतिहासिकता है. किंतु वह उतनी बड़ी नहीं जितनी की लोग उन्हें शिकायतें पहुंचाते हैं."

नये स्तंभ में से.रा. यात्री की शुरुआत अच्छी रही. मानवीय संवेदनाओं के साथ नाटकीय खिलवाड़ व्यंग्य ही नहीं, बल्कि चुनौती भरा प्रश्न है कि आज का मनुष्य इतना क्यों बनावटी होता जा रहा है? सच तो यह है कि ये रोजमर्रा की जिंदगी में इतने लतपथ रहते हैं कि जीवन का अन्य पक्ष गैर-जरूरी सा प्रतीत होता है.

क्या व्यक्ति के जीवन में 'उपभोग' की त्रासदी इतनी है कि मानवीय संवेदना औपचारिक नाटकीय या कुंठित-सी प्रतीत होती है?

- **अरुण अभिषेक, पूर्णिया**

कुर्रतुल-ऐन हैदर को पच्चीसवां ज्ञानपीठ पुरस्कार

७ जुलाई, १९९० को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार की प्रवर परिषद की बैठक में २५ वें ज्ञानपीठ पुरस्कार की घोषणा कर दी गयी. यह पुरस्कार वर्ष १९८९ के लिए है. पुरस्कारजयी कृतिकार रहीं उर्दू की सुप्रसिद्ध लेखिका कुर्रतुल-ऐन हैदर. इस बार के पुरस्कार के लिए निर्धारित अवधि (१९६९-८३) में भारतीय साहित्य में उनके योगदान को विशेष रूप से उत्कृष्ट एवं महत्वपूर्ण माना गया है. ज्ञानपीठ पुरस्कार को भारतीय सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार माना जाता है. डेढ़ लाख राशि का यह साहित्यिक पुरस्कार भारतीय साहित्य को सर्वोत्कृष्ट सृजनात्मक योगदान के लिए प्रति वर्ष समर्पित किया जाता है. यह एकमात्र ऐसा पुरस्कार है जो हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित पंद्रह भाषाओं में से किसी भी भाषा में उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतीय नागरिक को भेंट किया जाता है.

कुर्रतुल-ऐन हैदर ने उर्दू को ज्ञानपीठ पुरस्कार दूसरी बार दिलवाया है. पांचवां ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९६९) फिराक गोरखपुरी को समर्पित किया गया था. इस तरह उर्दू को यह गौरव दोबारा पाने के लिए बीस बरस तक इंतजार करना पड़ा. जबकि इस बीच कन्नड़-हिंदी चार-चार बार, बंगला-मलयालम तीन-तीन बार, उड़िया-मराठी-गुजराती और तेलुगू दो-दो बार यह गौरव पा चुकी हैं.

कुर्रतुल-ऐन-हैदर बिजनौर के एक प्रतिष्ठित साहित्यिक परिवार से संबंधित हैं. उनके पिता सज्जाद हैदर यल्दराम और उनकी मां नजर सज्जाद दोनों ही प्रमुख उर्दू साहित्यकार थे. १९२७ में अलीगढ़ में जन्मी कुर्रतुल-ऐन-हैदर एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न लेखिका है. उनके अब तक ५ उपन्यास, ४ उपन्यासिकाएं और ४ कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. साथ ही उन्होंने हेनरी-जेम्स की 'पोर्ट्रेट ऑफ लेडी' और टी.एस. एलियट की 'मर्डर इन द केथेड्रल' पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद भी किया है. अली सरदार जाफरी के साथ उन्होंने 'गालिब : पोयट्री एंड लेटर्स' और खुशवंत सिंह के साथ 'स्टोरीज फ्राम इंडिया' पुस्तकें तैयार की हैं. उन्हें १९६७ में साहित्य अकादमी पुरस्कार, १९६९ में सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार तथा १९८५ में गालिब पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं. इस बार ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए निर्धारित अवधि (१९६९-८३) में प्रकाशित उनकी उल्लेखनीय कृतियां हैं— उर्दू का सबसे पहला अ-काल्पनिक उपन्यास 'कारे-जहां दराज है' (दो भाग) एक उपन्यास 'आखिरे-शब के हमसफर' और एक कहानी-संग्रह 'रोशनी की रफ्तार'. वह लेखन में निरंतर सक्रिय हैं और १९८८ में उनका नव्यतम उपन्यास 'गार्दिशे-रंगे-चमन' प्रकाशित हुआ है.

तीन दशक से भी पहले उनके उर्दू साहित्य-जगत में प्रवेश करते ही तत्काल एक तहलका-सा मच गया था. १९५९ में, जब वह पाकिस्तान में थीं, उनका उपन्यास 'आग का दरिया' प्रकाशित होते ही वह रातों-रात एक विशिष्ट साहित्यिक हस्ती बन गयीं. ७वें दशक के प्रारंभ में उनके भारत में बस जाने के पश्चात १९६५ में प्रकाशित उनका कहानी-संग्रह 'पतझड़ की आवाज' उनका सर्वाधिक लोकप्रिय कहानी-संग्रह है जिस पर उन्हें १९६७ का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला. १९५९ में प्रकाशित उनके उपन्यास 'आग का दरिया' में प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक के भारत के चारित्रिक विकास का विश्लेषण किया गया है. लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है. दूसरी पुस्तक जो एक कहानी-संग्रह है, जड़ों से उखाड़कर आंधी-तूफान में झोंक दिये गये लोगों की दुखती रगों का लाजवाब दस्तावेज है. कुर्रतुल-ऐन-हैदर की अधिकतर कहानियां उनके भारत के सांस्कृतिक अतीत के प्रति विशेष लगाव और वर्तमान के साथ उसके संबंध-निरूपण के स्वभाव की बेजोड़ मिसालें हैं.

कुर्रतुल-ऐन-हैदर के लेखन की यह अभिलाक्षणिक विशेषता उनकी परवर्ती कृतियों में भी अबाध रूप से बनी रही है. १९६९-८३ की अवधि में प्रकाशित उनके उपन्यास 'कारे-जहां दराज है' और 'आखिरे-शब के हमसफर' भी हमारे लंबे इतिहास के पन्ने हैं. 'कारे-जहां दराज है' की प्रकृति आत्मकथात्मक है और यह लेखिका के पूर्वजों (जिला बिजनौर) के सैयदों की कहानी है जो १२वीं शताब्दी से शुरू होती है और वर्तमान काल तक जारी रहती है. वास्तव में उस परिवार की कहानी कहते हुए लेखिका ने भारतीय मुसलमानों के सामान्य सांस्कृतिक आचार-व्यवहार की संरचना की झांकी भी प्रस्तुत की है. 'आखिरे शब के हमसफर' (निशांत के सहयात्री) में एक उपमहाद्वीप के इतिहास के एक सर्वाधिक निर्णायक चरण का वर्णन है जो द्वितीय महायुद्ध के पहले के बंगाल की उग्रवादी घटनाओं और देशव्यापी भारत छोड़ो आंदोलन से लेकर देश-विभाजन और फिर १९७१ की घटनाओं तक फैली है. जिनकी परिणति बंगला देश के उदय में हुई. किंतु ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण से अधिक लेखिका की रुचि यह दिखाने में है कि उच्च आदर्शों से प्रेरित अपना सब कुछ त्यागकर क्रांति की धुन में निकले लोग किस प्रकार समय-परिवर्तन के साथ आदिम प्रवृत्तियों और ईर्ष्या के वशीभूति होकर निहायत मामूली आदिमयों के स्तर पर उतर आते हैं, लोभ तथा लालसा में निप्त हो जाते हैं और सामान्य भोग-विलास के चक्कर में पड़ जाते हैं. संयोगवश उनका नव्यतम उपन्यास 'गार्दिशे-रंगे चमन' भी अपने में २०० वर्षों की अवधि समेटे है.

काल और स्थान दोनों में ही परिव्याप्त विशालता और विस्तार की गुणवत्ता कुर्रतुल-ऐन हैदर के कृतित्व की सर्वप्रथम विशेषता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे समय की कुछ अमूल्य कथा-कृतियां उन्हीं की देन हैं.

सारिका परिवार की ओर से पुरस्कारजयी कृतिकार को हार्दिक बधाई. □

लघु विज्ञापन

स्वास्थ्य, शक्ति एवं
सुखमय विवाहित जीवन के लिए
डा० नरेश मित्रा
मौडर्न हैल्थ क्लीनिक
1768, लाल कुआँ, दिल्ली-6
फोन : 524645 (1 से 6 बजे तक)
ज्ञानवर्धक यौवन संदेश पुस्तक मुफ्त प्राप्त करें
मोटापा घटाने हेतु भी परामर्श लें
सन्तान के इच्छुक स्त्री-पुरुष स्वयं मिलें

नीली आंखें

यहां हर राह जाते के कुतूहल के लिए सामग्री थी, मनोरंजक, कामोत्तेजक! एक लड़की, घर छोड़कर आयी हुई, निराश्रय और फिर गरीब, जो कहोगे, सुन लेगी, जो सुनाओगे, सह लेगी, फिकरों की इस बौछार के सामने लड़की का चेहरा जर्द पड़ने लगा, और नीली आंखें त्रस्त हो उठीं. बार-बार सिर पर का आंचल संभालती हुई, पीपल के सहारे संज्ञाहीन-सी खड़ी थी.

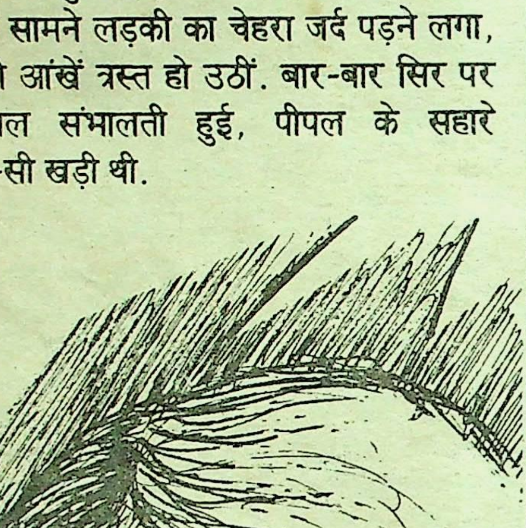

रेखांकन : हेमज्योतिका

इस सड़क पर आने-जानेवालों का तांता केवल गहरी रात गये थमता है. कहीं-कहीं पर राह जाते लोग कुतूहलवश इकट्ठे भी हो जाते हैं और छोटी-सी भीड़ बन जाती है; लेकिन घड़ी भर बाद यह भीड़ रेशमी कपड़े की हल्की-सी गांठ की तरह खुल भी जाती है, और आमदोरफ्त का तांता उसी तरह कायम रहता है. इस क्षणिक जन-समूह की अपने में कोई विशेषता या अभिप्राय नहीं, लेकिन इसकी भी एक हल्की-सी ठोकर किसी को बरसों के लिए अचेत कर सकती है, कौन मानेगा?

इसी सड़क के किनारे, सायंकाल के बढ़ते अंधेरे में एक अस्पताल के सामने दो व्यक्ति खड़े रो रहे थे. एक बीस-बाईस वर्ष का लड़का और दूसरी सत्तरह-अठारह वर्ष की लड़की. ऐसा जान पड़ता था जैसे एक-दूसरे से जुदा हो रहे हों. लड़की बार-बार आंसू पोंछती और पास ही पीपल के पेड़ की ओट में सिमटी जाती; लड़का जमीन पर बैठा हुआ बड़े आग्रह से उसे रुक जाने को कह रहा था.

"देख राजो, दो दिन और मांग खा, फिर मैं ठीक हो जाऊंगा, खुदा कसम, मुझे छोड़कर मत जा."

"मैं कहां से मांगूं? मुझे देता कौन है?"

"तो यूं छोड़कर चली जायेगी? सरम नहीं आयेगी तुझे? मैं मर रहा हूं और तू भागे जा रही है."

"तू अस्पताल में मजे से है. तुझे तो वहां बिस्तर भी मिलता है, मैं बाहर सड़क पर क्या करूं?" और फिर लड़की की आंखें आंसुओं से डबडबा आयीं.

लड़का हल्के नीले रंग की बीमारों की वर्दी पहने हुए था, चेहरे का रंग जर्द और शरीर शिथिल, खड़ा तक न हो सकता था. जिस लड़की को वह बार-बार जाने से रोक रहा था, वह भी कोई सुंदरी न थी, साधारण ग्रामीण लड़की थी. उसका भी चेहरा पीला और रो-रोकर थका हुआ, कपड़े मैले और कहीं-कहीं पर से फटे हुए, सिर के बाल रूखे और बिखरे हुए थे. हां, आंखें उसकी नीली थीं, स्वच्छ आकाश की-सी नीली जो किसी-किसी वक्त आंसू पोंछने के बाद धुली हुई, आकर्षक जान पड़तीं.

पास खड़े हुए लोग इस जुदाई का तमाशा देख रहे थे. ज्यों-ज्यों भीड़ बढ़ती जाती, लड़की सहमी हुई पेड़ की ओट में छिपती जाती. लड़का इन तमाशाइयों के सहारे लड़की को रोक लेना चाहता था. पास खड़े हुए एक बाबू को हाथ जोड़कर कहने लगा, "बाबू साहब, इसे समझाओ, अपना देश होता तो दूसरी बात थी, परदेस में मुझे यों छोड़े जा रही है, मैं इसे कहां से ढूंढूंगा?"

"तू इसे अस्पताल में क्यों नहीं रखता?" बाबू ने पूछा.

"वहीं पर थी बाबू, पर साहब ने निकाल दिया, वहां सिरफ बीमार को रहने देते हैं."

अब के बाबू ने लड़की को कहा, "अरी ठीक ही तो कहता है, दो दिन और मांग खा, जब यह तंदुरुस्त हो जाये तो काम करने लगेगा."

"यह क्या काम करेगा, घर से ले आया और यहां आकर बीमार पड़ गया. मैं कहां से मांगकर इसे खिलाऊं?"

लड़का व्याकुलता से बोल उठा, "अरी मैं औरत के हाथ का मांगा हुआ खाऊंगा? देखो साहब, यह जोड़ा मैंने इसे सिलवा कर दिया है."

"तो यह जाना कहां चाहती है?" बाबू ने पूछा.

"मैं क्या जानूं साहब, कहां जाना चाहती है."

लड़की चुप थी.

"अरी, बोलती क्यों नहीं, कहां जायेगी?"

अबकी रुंधी हुई आवाज में लड़की ने जवाब दिया, "मुझे यहां डर लगता है." और फूट-फूटकर रोने लगी.

इस लड़की का रोना एक भूखे बच्चे के रोने की तरह सरल जान पड़ता था. लेकिन अचंभे की बात थी कि जिस लड़की को सड़क पर डर लगता है, वह अपने एक मात्र आश्रय को छोड़कर कहां जाना चाहती है?

किसी साहब का अधेड़ उमर का बहरा भी, अपने लड़के के साथ चलते-चलते रुक गया था. पहले तो वार्तालाप सुनता रहा, फिर अपने लड़के से पूछा, ''क्यों मंगू, यह रातवाली लड़की तो नहीं क्या?'' और जब मंगू ने इसके उत्तर में ''दिक्खे तो वही'' जवाब दिया, तो बहरा भीड़ के दायरे में अंदर आ गया, और बीमार को संबोधित करके कहने लगा, ''अरे, यह तेरी औरत है? औरत को यूं फेंक जाते हैं? जानता है, रात-भर क्या बीती इस पे? देखो बाबू, यह लड़की बच गयी सो हम हैरान हैं. दो शराबी इसके पीछे पड़ गये. कभी यह रोती-चिल्लाती एक गली में जा छिपती, कभी दूसरी में. दस बार हमारी नींद टूटी होगी रात को.''

इस पर भीड़ में से एक मनचले ने आवाज कसी, ''अरे, तू ने ही तो शराब नहीं पी रखी थी रात को? खूब पहचाना तुमने?'' कई लोग हंसने लगे. बहरा थोड़ी देर हत्-बुद्धि भीड़ को देखता रहा, फिर चुपचाप भीड़ में से निकलकर चला गया.

जो थोड़ी-सी सहानुभूति लड़की के प्रति बन पायी थी, वह इस एक वाक्य ने छिन्न कर दी. लड़की इस पेड़ के नीचे दूसरी रात न बिताना चाहती थी. व्याकुल और डरी हुई, एक पागल की तरह यहां से भाग जाना चाहती थी.

भीड़ के लिए वार्तालाप बोझल और नीरस हो रहा था. इस एक वाक्य से कइयों के दिल हल्के हुए. एक साहब सिगरेट का कश लगाकर चुटकी बजाते हुए बोले, ''यह सब बकवास है, यह इसकी औरत नहीं, साला कहीं से भगा लाया है. अब तंग आ गया है और फेंकना चाहता है.''

''अरे वह तो खुद जाना चाहती है, यह तो उसे रोक रहा है.'' किसी ने जवाब दिया.

''तो इसे कोई और मिल गया होगा जो जाना चाहती है. साले शहर को गंदा कर रहे हैं.'' और सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए इधर-उधर देखने लगे.

एक दूसरे साहब ने अपना संशय मिटाना चाहा—

''क्यों री, यह तेरा खाविंद है?''

लड़की, डरी हुई, चुप खड़ी रही.

''देखा साहब, मैंने कहा नहीं था. जो खाविंद होता तो बोलती नहीं?''

लोगों का कुतूहल बढ़ने लगा. लड़की से फिर पूछा गया—

''तो इसके साथ भागकर आयी हो? शादी नहीं की?''

पीपल की ओट में से, सकुचाते हुए लड़की ने धीरे से जवाब दिया:

''शादी करी है, गली में फकीर ने करवायी थी.''

तमाशाइयों में से कई खिल-खिलाकर हंसे, ''यह बाबू ठीक कहता है. यह शादी इसी तरह की है.''

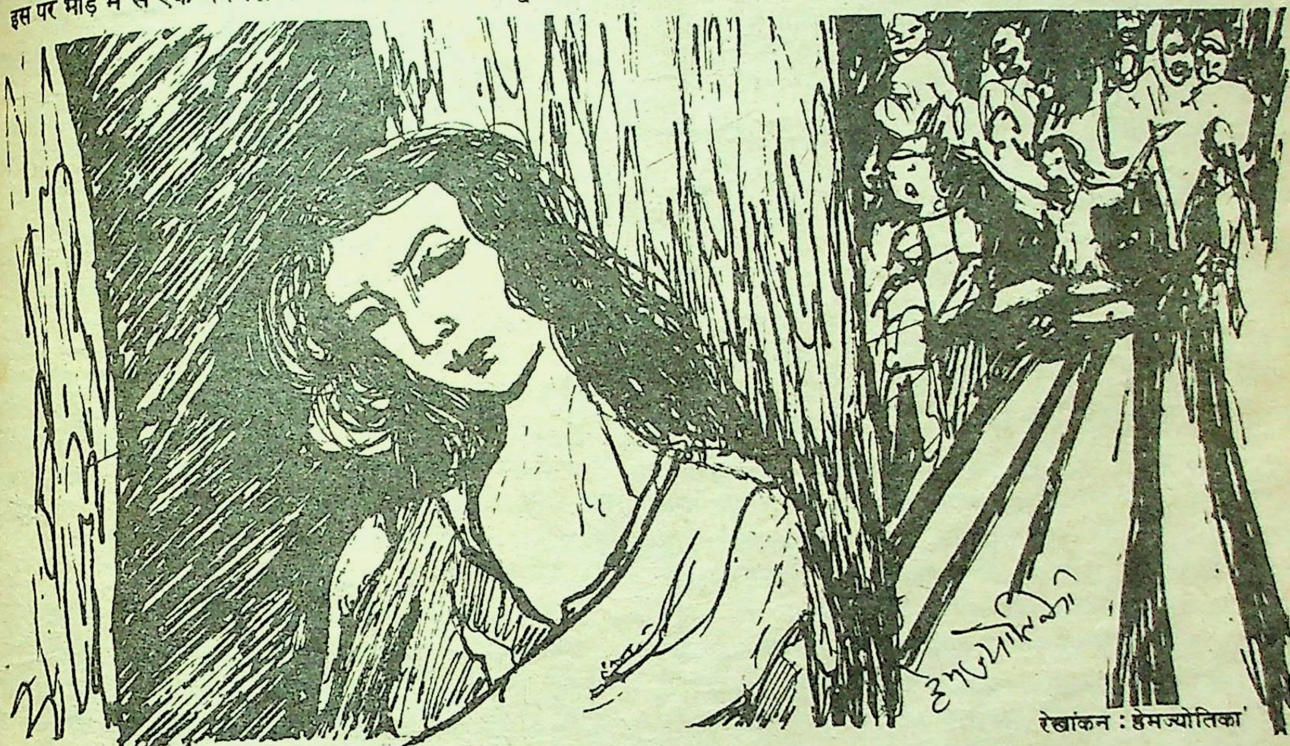

रेखांकन : हेमज्योतिका

लोगों को फिकरेबाजी का अच्छा अवसर मिल गया था. लड़की पर तरह-तरह के आक्षेप होने लगे, जैसे किसी पक्षी के पंख नुचने लगें. बीमार जमीन पर बैठा, एक हाथ से पेट दबाता हुआ, बड़ी दीनता से, कभी एक की तरफ, कभी दूसरे की तरफ देख रहा था.

''टका जेब में नहीं और आप इश्क करने निकले हैं!'' एक ने कहा.

''लड़की जवान है, इसीलिए साला इसे जाने नहीं देता!''

''बीमार है तो भी...''

फिर कई लोग हंसने लगे.

अब एक दाढ़ीवाले सज्जन भी इस भीड़ में खड़े तमाशा देख रहे थे. सिर पर तुर्रेवाली सफेद पगड़ी, काला कोट, गहरी सिलवटोंवाली सलवार, मौका देखकर सीधे लड़की के पास जा पहुंचे और अपने कामातुर हाथों से उसकी पीठ, कंधों और बालों को सहलाने लगे और उसे आश्वासन देने लगे. लड़के ने देखा तो उसका दिल बैठ गया; लेकिन सिवाय व्याकुल याचना के और क्या कर सकता था.

दो फौजी भी चलते-चलते आन खड़े हुए थे. एक ने दूसरे को कहा, ''चीज अच्छी है, करूं सिफारिश तेरी? सस्ते में काम हो जायेगा. जालिम

की आंखें हैं कि बस...''

मीड़ बढ़ने लगी.

यहां हर राह जाते के कुतूहल के लिए सामग्री थी, मनोरंजक, कामोत्तेजक! एक लड़की, घर छोड़कर आयी हुई, निराश्रय और फिर गरीब, जो कहोगे, सुन लेगी, जो सुनाओगे, सह लेगी. फिकरों की इस बौछार के सामने लड़की का चेहरा जर्द पड़ने लगा, और नीली आंखें त्रस्त हो उठीं. बार-बार सिर पर का आंचल संभालती हुई, पीपल के सहारे संज्ञाहीन-सी खड़ी थी. और इन्हीं फिकरों में बीमार की क्षीण याचना बार-बार सुनने में आती :

''देख राजो मत जा. ...मैं जरूर अच्छा हो जाऊंगा...नहीं हुआ तो देस लौट चलेंगे. ...अरी, देखती नहीं, मैं किस हालत में हूं? मेरे पास से मत जा...'' और बार-बार रोने लगता

एक हिंदुत्व-प्रेमी भी इस मीड़ में खड़े थे. आगे बढ़कर बड़ी गंभीरता से पूछने लगे, ''अरे, यह लड़का हिंदू है कि मुसलमान?''

एक दूसरे हिंदू सज्जन ने जवाब दिया, ''कभी हिंदू भी लड़कियां भगाकर लाते हैं, जरूर मुसलमान होगा कोई.''

एक तीसरे ने कहा, ''इसके गले में तावीज नहीं देखते? मुसलमान ही तो है.''

लेकिन उन्हें फिर शक गुजरा, ''तो फिर यह साला मुसलमान, किसी हिंदू लड़की को तो भगाकर नहीं ले आया?''

लेकिन लड़की के गले में भी एक तावीज बंधा हुआ था जो फकीर द्वारा करायी गयी शादी के वक्त, चिर सुहाग की कामना करते हुए उसने फकीर से लेकर पहना था. उसका काला धागा अब भी लड़की की गर्दन पर दीख रहा था, सो बात आगे नहीं बढ़ पायी.

धीरे-धीरे कई एक बातों का पता चला.

केवल दस रोज पहले ही यह शादी हुई थी. जब वे दोनों मजदूरी की तलाश में अपना गांव छोड़कर यहां भाग आये थे. दोनों एक-दूसरे के प्रेम में उलझे हुए, बेसुध चले आये. तब इसकी ओर कोई आंख उठाकर भी देखता तो लड़का अपनी जान पर खेल जाता. पहले तो हफ्ता भर मजदूरी की तलाश में इस नये शहर की खाक छानते रहे. जब मजदूरी मिली तो एक रात लड़का पेट दर्द से चीख उठा, और रात-भर छटपटाता रहा. राजो किंकर्तव्य-विमूढ़ उसके सिरहाने बैठी हाय-हाय करती रही. सुबह कहीं दर्द शांत हुआ और लड़का सो गया. पर तीसरे दिन फिर दर्द का दौरा हुआ, अब की आधा दिन और आधी रात तड़पते बीती. राजो कांप उठी. अजनबी शहर में एक-एक क्षण असह्य हो उठा. दूसरे दिन लड़खड़ाते हुए दोनों इस अस्पताल के सामने पहुंचे. खैराती अस्पतालवालों ने रहम खाया और लड़के को तो दाखिल कर लिया; लेकिन लड़की बाहर अकेली रह गयी. सारा दिन उसकी खिड़की के पास खड़ी रहती है. उसकी सेहत की दुआएं मांगती. लेकिन एक दिन बड़े साहब ने देख लिया, और झिड़ककर अस्पताल की हद से बाहर निकाल दिया. तब यह मांगने निकली. अस्पताल के पास ही एक रेल का पुल है, जहां आने-जानेवालों का सामान दूसरे पार ले जाने का एक पैसा मिलता है. दिन-भर डरती-सकुचाती मजदूरी तो करती रही, लेकिन अपनी नीली आंखों को लोगों की नजरों से न बचा पायी. कल रात जब इसी पीपल के पेड़ के नीचे आकर सोने लगी तो एक नर-पिशाच की परछाई देखी. राजो पहले तो सहमी, फिर चीखती-चिल्लाती उठ खड़ी हुई और रात-भर उसके ढूंढते साये से भागती फिरी...

दाढ़ीवाले सज्जन और भी दयालु हो रहे थे. उसके कंधे सहलाते हुए धीरे से कहने लगे, ''अगर यहां नहीं रहना चाहती, तो तेरा इंतजाम मैं कर दूंगा, तू अपने देश चली जा. मैं तुझे गाड़ी में बिठला आऊंगा.''

ज्यों-ज्यों यह दाढ़ीवाला आदमी लड़की के नजदीक जाकर उसे आश्वासन देता, बीमार पति का हृदय उतना ही अधिक व्याकुल हो उठता. दर्शकों की फिकरेबाजी लड़के को इतना विचलित न कर पाती थी, जितना कि इस अपरिचित आदमी का आश्वासन.

जब पीछे खड़े हुए दो फौजी मजाक करते हुए चले गये, तब भीड़ कुछ चुप हुई.

एक शख्स ने पूछा, ''क्यों बे, मजदूरी कहां करता है?''

''पुल पर, साहब!'' लड़के ने जवाब दिया.

''पुल पर? अरे पुल पर मजदूरी करके इसका पेट भी पालेगा और अपना भी?''

''तो साले, खिला नहीं सकता था तो इस मां को साथ क्यों उठा लाया था?'' और फिर फिकरों की बौछार पड़ने लगी.

किसी को दया आयी. जेब में से चार पैसे निकालकर लड़के के पास फेंके और कहा, ''इसे अभी गांव भेज दे, नहीं तो तेरे हाथ से निकल जायेगी, समझा?''

लड़के ने इकन्नी माथे पर लगायी. उसकी टूटी आशा फिर बनने लगी. याचना-भरे स्वर में सब लोगों से मांगने लगा, ''दो दिन और गुजर हो जाने दो बाबू, फिर मैं मजदूरी लायक हो जाऊंगा. हम भिखमंगे नहीं हैं, बाबू!''

सब दर्शकों के सामने से तीन-तीन बार घूम जाने के बाद उसके हाथ में केवल पांच आने पैसे इकट्ठे हो पाये. लड़के ने चुपचाप वह पैसे राजो की मुट्ठी में रख दिये.

ऐन इसी वक्त दूर से लाल पगड़ीवाला सिपाही अपनी गश्त पर आता हुआ नजर आया. लड़की ने उसे देखा तो झट से पेड़ के पीछे छिपकर खड़ी हो गयी. बीमार ने सिपाही को आते देखा तो उसका सारा शरीर कांपने लगा. घबराया हुआ बोला, ''बाबू जी, इससे पैसे ले लो, नहीं तो सिपाही सब छीन लेगा.''

''अरे, घबराओ नहीं, कुछ नहीं कहेगा.''

''नहीं बाबू जी, यह सब छीन लेगा, यह हमें मिलने भी नहीं देता.''

लड़की ने फौरन आगे बढ़कर साथ खड़े हुए दाढ़ीवाले के हाथ में पैसे रख दिये और फिर छिपकर खड़ी हो गयी. सिपाही की नजर जब बीमार पर पड़ी तो वह बढ़ता हुआ चला आया, ''उठ हरामजादे. अभी तक यहीं पर बैठा है!''

''हजूर, अभी तक अस्पताल का दरवाजा बंद नहीं हुआ है. मांग नहीं रहा हूं हजूर. अभी चला जाऊंगा.'' बीमार ने गिड़गिड़ाकर कहा.

सिपाही ने छूटते ही बीमार की कांपती देह पर जोर से दो ठुड्डे लगाये, और सिर पर थप्पड़ मारा. वह हड़बड़ाकर हाथ जोड़ता हुआ, लड़खड़ाता हुआ अस्पताल की ओर जाने लगा. अस्पताल के दरवाजे पर पहुंचकर, एक बार फिर लड़के ने चीखकर पुकारा, ''राजा, मत जाइयो...दो दिन इन पैसों पर गुजरकर मुझे ठीक हो जाने दे. दोनों देस लौट चलेंगे, यहां एक दिन नहीं रहेंगे. मुझे छोड़कर मत जा.'' और फिर धीरे-धीरे अपनी दुखती पसलियों पर हाथ रखे, दर्द से हाय-हाय करता हुआ, अंधेरे में खो गया.

सिपाही चला गया. धीरे-धीरे भीड़ भी एक दु:स्वप्न के दृश्य की तरह बिखर गयी. लेकिन दाढ़ीवाला, इस दु:स्वप्न की कुरूप छाया की तरह, फिर धीरे-धीरे लड़की के पास पहुंचा. अब अंधेरे में देखनेवाला उसे कोई न था. केवल बीमार, अस्पताल की एक खिड़की के पीछे दोनों हाथों से खिड़की के सीखचों को पकड़े हुए आंखें फाड़-फाड़कर बाहिर झांक रहा था. □

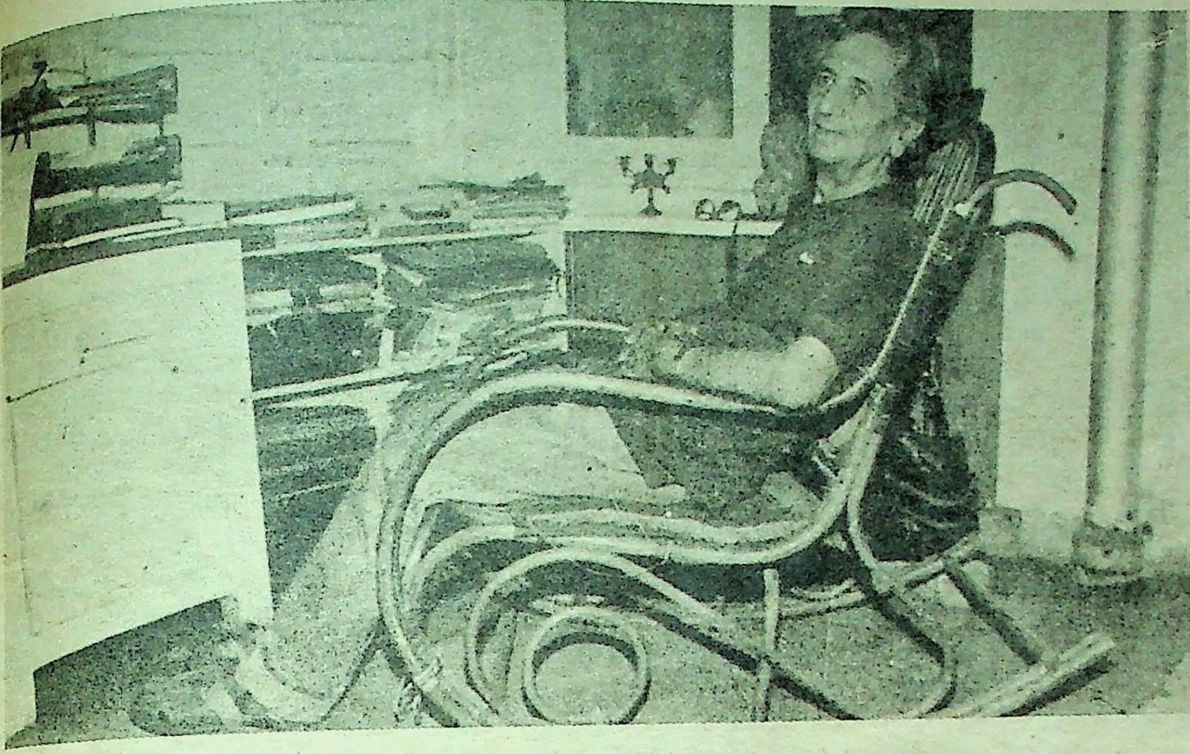

जिंदगी — ७५° के कोण से

भीष्म साहनी

' तरह-तरह की यादें, अनगिनत अधूरे चित्र, इन्हीं अधूरे चित्रों, संस्कारों, अनुभवों की पूंजी को लेकर मैं साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ था. शायद सभी ऐसे लोग जो परिस्थितियों द्वारा धकेले जाते हैं, जो व्यवहार की दुनिया में निकम्मे साबित होते हैं, अपने अरमान पूरे करने के लिए साहित्य का दरवाजा खटखटाते हैं...'' कभी यह कहा था भीष्मजी ने. आज जीवन के पिचहत्तर वर्ष पूरे करने जा रहे भीष्मजी बता रहे हैं कि उस पूंजी का हुआ क्या ! उसमें कितनी श्रीवृद्धि हुई. कि अपने विगत का स्मरण उन्हें कौन-सी अनुभूतियां दे जाता रहा है !

फर्क तो बहुत होता है, ७५ और ५० और २५ में. २५ की उम्र में नजर सारा वक्त आगे की ओर उठी रहती है, ५० पर शायद आप आगे-पीछे दोनों ओर देखने लगते हैं, पर ७५ पर पहुंचने पर तो नजर पीछे की ओर ही ज्यादा मुड़ी रहती है. आगे देखने को बहुत रह नहीं गया होता. २५ की उम्र में आप मनसूबा बांधते है, सपने देखते हैं, आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाने की क्षमता रखते हैं. ५० की उम्र में आप अपने ढर्रे पर चल रहे होते हैं, उतावलेपन की जगह कदमों में कुछ-कुछ स्थिरता-सी आ चुकी होती है. पर ७५ पर पहुंचने पर आप अपना किया-कराया समेटने की मनःस्थिति में होते हैं. जो बन पाया. उसी को गनीमत समझने लगते हैं. छोटी उम्र में तो हम फतवे भी देते हैं, जो बात कहते हैं, छाती ठोककर, उतने ही विश्वास के साथ भविष्यवाणी भी करते हैं, पर ७५ तक पहुंचते-पहुंचते छाती ठोककर कुछ कहनेवाली मानसिकता शिथिल पड़ चुकी होती है.

जग में अंधियारा छाया था,
मैं ज्वाला लेकर आया था,
मैंने जलकर दी आयु बिता,
पर जगती का तम हर न सका.
मैं जीवन में कुछ कर न सका.

बच्चनजी ने अपने ये उद्गार व्यक्त तो जवानी के दिनों में ही किये थे, पर अंतिम पंक्ति को छोड़कर जिस मानसिकता की झलक इन पंक्तियों में मिलती है वह कुछ-कुछ ७५ वर्ष की मानसिकता से ही मेल खाती है. अंतिम

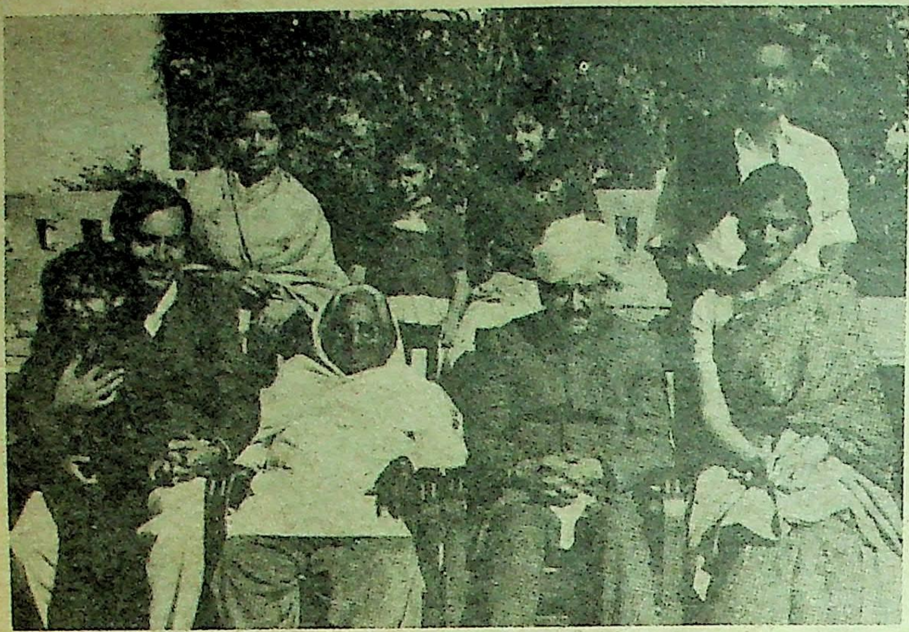

● तीन पीढ़ियां : भीष्म साहनी, बलराज साहनी अपने माता-पिता, पत्नियों और अपने बाल-गोपालों के साथ.

पंक्ति की नकारात्मक गूंज ७५ वर्ष के व्यक्ति की वाणी में कम ही सुनाई पड़ती है, जीवन को त्रासदी के रूप में देखना भी जवानी का ही गुण है, बुढ़ापे का नहीं. बुढ़ापे की मानसिकता को तो शायद अंग्रेज कवि चेस्टर्टन ने ज्यादा सही अभिव्यक्ति दी है:

It is something to have done, as we have done
It is something to have wept as we have wept,
It is something to have watch'd the stars, when all men slept.

छाती ठोंककर कुछ कह सकने की क्षमता या किला फतह करने की महत्वाकांक्षा मन में से निकल चुकी होती है. यों तो किला फतह करने की भावना साहित्य-सृजन के क्षेत्र में जवानी के दिनों में भी उतनी ही अटपटी होती है जितनी वयस्क हो जाने पर. लेखन के क्षेत्र में कोई भी माई का लाल किला फहत करने के लिये नहीं उतरता. जो ऐसा समझकर कलम उठाता है, कि दुनिया को एक नया करिश्मा कर दिखा देगा, वह शीघ्र ही लेखन का क्षेत्र छोड़, कहीं ठेकेदारी या सरकारी नौकरी करने लगता है, करिश्मा दिखाने के लिये यह क्षेत्र अनुकूल नहीं है. हां, कोई रचना करिश्मा बन जाये तो अलग बात है.

समेटने का वक्त तो बेशक आ गया है. पर वास्तव में समेटता कोई नहीं. अन्य सभी काम पहले की तरह चलते रहते हैं, जबकि समेटने का काम स्थगित होता रहता है. मेरा घर पिछले चालीस साल के सामान से अटा पड़ा है, बहुत कुछ है जो मैं खुद बटोरता रहा हूं, बहुत कुछ है जो मेरे प्रियजन छोड़ गये हैं. घर में रोज झगड़ा होता है कि घर का फालतू सामान कब निकलेगा. कभी-कभी तो पत्नी दो टूक कह देती है, ''हम चले जायेंगे तो यह कूड़ा बच्चों को साफ करना पड़ेगा. हम खुद ही क्यों न साफ कर जायें?''

एक दिन मैं इसे साफ करने बैठा भी था. पुरानी चिट्ठियों का अंबार था. सोचा था, पुराने पत्र-व्यवहार की संगति ही क्या रह गयी है. पर चिट्ठियों को हाथ लगाना भूल थी. बिना हाथ लगाये, आंखें बंद किये पूरा अंबार का अंबार फेंक देता तो सही था. यहां दो घंटे तक उलझे रहने के बाद दो पत्र फेंकने के लिये निकाल पाया. और वे भी परिपत्र थे. उनमें से एक फिर वापिस टांक दिया.

बहुत-सी किताबें इकट्ठा करता रहा हूं, इस उम्मीद पर कि कभी पढ़ूंगा. अब जानता हूं कि इन्हें पढ़ नहीं पाऊंगा. फिर भी हर आये दिन और किताबें इक्ट्ठी करता रहता हूं.

बात मानसिकता की है जो बुढ़ापे को कबूल करने से इंकार करती है, और ऐसा लगता है, जिंदगी के आखिरी दिन तक चलता रहेगा.

बचपन में सुना था कि कोई कंजूस मरते दम तक अपना धन किसी को देना नहीं चाहता था. अब समझ में आता है कि वह क्यों नहीं देना चाहता था, इसलिए नहीं कि वह कंजूस था, या उसकी आत्मा धन के साथ चिपटी हुई थी, वरन इसलिए कि अशरफियों से भरा घड़ा उसकी जिंदगी का प्रतीक बना हुआ था जिस पर से उसकी आंखें हटाए नहीं हटती थीं.

पर समेटने की बात व्यवहार-संगत है इसलिए इसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती. यों तो जिंदा आदमी सदा जिंदगी के बारे में ही सोचता है, मौत का विचार उसे परेशान नहीं करता. एक जीते-जागते व्यक्ति के लिए मृत्यु का विचार असंगत ही बना रहता है. पर ७५ तक पहुंचते-पहुंचते कुछ आहटें-सी उसे जरूर सुनाई पड़ने लगती हैं, पर्दे के पीछे किसी की उपस्थिति का भास जरूर जेहन में रहने लगता है, जो एक तरह की याददहानी है कि अब ज्यादा लंबे मनसूबे तुम नहीं बांध सकते. नये-नये काम तो अभी भी हाथ में लिये जाते हैं पर लंबे काल की योजनाएं अब नहीं बनतीं. अब तो बैंक राशि जमा करवानी हो तो अल्पकाल के लिये, लंबी अवधि के लिये नहीं. तीन साल की अवधि भी लंबी जान पड़ती है. छः साल की अवधि का तो सवाल ही पैदा नहीं होता. फिर भी इस विचार से मन में बेचैनी पैदा हो, या दिल बैठ-बैठ जाये, ऐसा कदापि नहीं होता. जिंदा रहने की अपनी मस्ती होती है, जिसके सामने अन्य सभी विचार गौण हो जाते हैं.

जिस विश्वास के साथ और जिस एकाग्रता और भावोन्माद में जवानी में लोग जिंदगी की बाजी लगा देते हैं—और शायद दुनिया उसी के सहारे चलती है—किसी ध्येय के लिये, सब कुछ भूल कर, कूद जाते हैं, वह विश्वास और भावोन्माद ७५ तक पहुंचते-पहुंचते जरूर शिथिल पड़ जाता है.

मेरे एक मित्र विलायत में इंजीनियरिंग पढ़ने गये. यह बहुत दिन पहले की बात है. विलायत में ही उनके विचार बदल गये, वामपंथी विचारधारा में विश्वास करने लगे. जब इंजीनियरिंग की पढ़ाई समाप्त करके भारत लौटे और जहाज बंबई की बंदरगाह से आ लगा तो सीधा घर जाने की बजाय कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर जा पहुंचे. नाम लिखवाया और तीस रुपये मासिक पगार पर पार्टी का काम करने लगे, और साल-दर-साल उसी में जुटे रहे. एक बार भी मुड़कर नहीं देखा. ऐसे ही अनेक अन्य लोगों को भी कूदते देखा. किसी को कला और संस्कृति के क्षेत्र में, किसी को स्वतंत्रता-आंदोलन में, किसी को अपना रास्ता खोज पाने के लिये घर छोड़ते देखा. यह कूद जाने की उन्मत्त-सी भावना ७५ तक पहुंचते-पहुंचते शेष नहीं रह जाती. न तो विचार ही जल्दी बदल पाते हैं, न कूद जाने के लिये पैर ही उठते हैं. यही गनीमत है कि जिस ढर्रे पर वर्षों से चलते आ

रहें हो उसी पर साबत कदमी से बने रहो.

एक और बात में भी २५ और ७५ में अंतर पाया जाता है.

कुछ दिन पहले राजस्थान की यात्रा करते समय एक नव-विवाहित दंपती से मिल-बैठने का मौका मिला. वे लोग भी उसी निवासगृह में टिके हुए थे जहां पर मैं और मेरी पत्नी थे.

युवा पति-पत्नी एक दूसरे के प्रेम में डूबे हुए थे. एक-दूसरे पर निछावर थे. पत्नी सुंदर नहीं थी, नाक-नक्श की दृष्टि से बड़ी साधारण-सी थी, पति भी सांवले रंग का छोटे कद का जीव था. पर उनकी आंखें एक-दूसरे पर से हटती ही नहीं थीं.

''हम एक-दूसरे के लिए बने हैं, जी.''

युवा पत्नी बार-बार कहती, दोनों प्रेम का ऐसा झूला झूल रहे थे कि देखते बनता था.

उनकी बातें सुनते हुए, उनके प्रेमोद्गार की सच्चाई से तो इंकार नहीं था, पर उसके भीतर छिपी जीवन की विडंबना की अनुगूंज हमें बार-बार सुनायी पड़ रही थी. अनेक प्रेमियों की जीवन यात्रा के अनेक चरण देख चुकने के बाद, कहीं-कहीं पर तो आरंभ से अंत तक, जीवन के यथार्थ और प्रेम के उन्मत्त आवेगों के बीच तालमेल बैठा पाना असंभव हो जाता है. ७५ तक पहुंचते-पहुंचते, जीवन की इस विडंबना का बोध भी मन में बैठ चुका होता है. भले ही वह प्रेम के शपथ हों या बड़े-बड़े आदर्शों की या जीवन मूल्यों की दुहाई हो या बड़े-बड़े दावों की, जीवन के अनुभव उन पर प्रश्न चिन्ह लगाये बिना नहीं रहते.

इसका यह अर्थ नहीं कि ७५ वर्ष की अवस्था तक पहुंचने पर मनुष्य को जीवन की व्यर्थता का बोध होने लगता है. कदापि नहीं. बल्कि बुढ़ापे की दहलीज पर खड़े तुम दुनिया को देखो तो दुनिया पहले से कुछ ज्यादा ही रंगीन नजर आती है. यह इस सब के बावजूद कि तुम जीवन में बहुत कुछ देख चुके हो, बहुत कुछ खो चुके हो, बहुत से थपेड़े भी खा चुके हो. दुनिया के रंग पहले से कहीं ज्यादा चटकीले, ज्यादा आकर्षक नजर आते हैं. हर वसंत पहले की तुलना में ज्यादा निखरा-निखरा, भले ही वह आकाश की नीलिमा रही हो या बच्चों की हंसती आंखें या स्त्रियों की कमनीयता. क्या मालूम इसका कारण यह रहा हो कि इसे छोड़ने के दिन नजदीक आ रहे हैं, या यह कि जवानी के दिनों में दिमाग पर चर्बी चढ़ी रहती थी, तरह-तरह के अपने ही जुनून घेरे रहते थे, आंख उठाकर दुनिया के रंगों को देखने का मौका ही नहीं मिलता था, या शायद इसलिये कि ७५ तक पहुंचते-पहुंचते मनुष्य अभिनेता कम और दर्शक ज्यादा बन चुका होता है.

कुछ मुद्दत पहले एक बुजुर्ग से मिलने गया जो बीमारी से अभी-अभी उठे थे और पूरी तरह तंदरुस्त नहीं हो पाये थे. मैं उनके पास बैठा उनकी तीमारदारी कर रहा था. जब मैंने पाया कि वह बार-बार, उचक-उचककर खिड़की के बाहर देख रहे हैं. जब भी बाहर सड़क पर जाती हंसती-बतियाती स्त्रियों की आवाज उनके कान में पड़ती कि वह उचककर बाहर देखने लगते. मैंने चुटकी ली तो मुस्कराकर कहने लगे:

''अब उनकी तरफ देखने की भी
इजाजत नहीं है? वे हमारी तरफ
नहीं देखेंगी तो क्या हम भी उनकी
तरफ नहीं देखें. यह जुल्म तो
न करो, यार.''

फिर यह गालिब का शेअर गुनगुनाने लगे:

''गो हाथ को जुंबश नहीं,
आंखों में तो दम है,
रहने दो अभी सागर-ओ-मीना
मेरे आगे.''

मैं जीवन यात्रा में गिरता-पड़ता बहुत-सी मंजिलें लांघकर ७५ की अवस्था तक पहुंचा हूं, पर इसका यह मतलब नहीं कि मैंने जीवन को समझ लिया है, या जीवन का कोई सत्य मेरे हाथ आ गया है. या कि जीवन पर मेरी पकड़ ज्यादा मजबूत हो गयी है, या कि मैंने जिंदगी जीने का कोई सही रास्ता ढूंढ निकाला है. जीवन अभी भी मेरे लिये अबूझ पहेली बना हुआ है, इसका यह मतलब भी नहीं कि ७५ का हो गया हूं तो बढ़िया कहानी लिख पाऊंगा. बढ़िया कहानी लिखने के लिये कोई उम्र नहीं होती. सालों की गिनती के आधार पर कोई बड़ा या छोटा लेखक नहीं होता. जिंदगी पर पकड़ जवानी में भी ढीली पड़ जाती है और बुढ़ापे में भी, मानसिक और सर्जनात्मक स्तर पर जवानी में भी शिथिलता आ सकती है और बुढ़ापे में भी. हां, बुढ़ापे की अपनी कुछ व्याधियां जरूर हैं जिनका असर आपके लेखन पर पड़े बिना नहीं रहता—जैसे—आपकी अपनी दृष्टि का पैनापन जाता रहे, आप अपने को दोहराने लगें, आवश्यक और अनावश्यक का भेद न कर पायें, आपका दिल ठंडा पड़ जाये, बाहर के प्रभाव आप तक न पहुंच पायें, आदि-आदि. मात्र

● तीन पीढ़ियां: भीष्म साहनी अपनी पत्नी, बेटी, दामाद और उनके बेटे के साथ.

अनुभव के बल पर ही तो रचनाएं नहीं रची जातीं.

जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देखने के बाद केवल सतत काल प्रवाह का ही बोध होता है, कोई नपे—तुले निष्कर्ष इंसान नहीं निकाल पाता. प्रत्येक काल खंड के अपने दबाव, अपने मानदंड, अपने आवेग होते हैं, अपने संघर्ष और विचारधाराएं भी. और अपना रास्ता खोजने के प्रयास भी. यहां दिशाहीनता का बोध नहीं होता. पर परिवर्तन का बोध होता है जिसकी व्याख्या इतिहास के जानकार ही कर पायें तो कर पायें. जमाना था जब हमारे समाज में खादी पहननेवाले स्वतंत्रता सेनानी, और आत्म बलिदान के प्रतीक माने जाते थे. खादी का जादू न जाने कहां गुम हो गया है, और खादी पहननेवाले अपना सारा प्रभाव खो बैठे हैं. जमाना था जब स्तालिन का नाम युगप्रवर्तक के रूप में लिया जाता था अब उसके अपने देश में ही असंख्य लोग उसे दानव की संज्ञा देने लगे हैं. जमाना था जब रूस की अक्तूबर क्रांति को युगांतरकारी घटना माना जाता था जिसने दुनिया के सामने नयी-नयी संभावनाओं के द्वार खोल दिये थे. अब रूस की ही किसी पत्रिका में यह पढ़ने को मिले कि "हमारे देश के लाखों—लाख लोगों को इस बात का यकीन हो गया है कि अक्तूबर क्रांति एक भयानक भूल थी, कि देश में होनेवाले गृहयुद्ध ने हमारे पतन का सूत्रपात किया था..." तो दिल को गहरा धक्का तो लगता ही है, उस परिवर्तन का भी अंदाज हो जाता है.

कभी सोचा नहीं था कि मेरे जीवन काल में ही इतने बड़े परिवर्तन देखने को मिलेंगे. मेरे देखते-देखते ही पंजाब का स्वरूप बदल गया है. काश्मीर की घाटी में खून के छींटे उड़ने लगे हैं...

इन सब परिवर्तनों को देखते हुए भी मन में विरक्ति का भाव नहीं उठता. हम अपने काल खंड से गहरे में जुड़े होते हैं, उसका अंग होते हैं. उसमें घटनेवाली घटनाएं हमें विचलित और उद्वेलित करती हैं और इस काल खंड में सक्रिय तत्वों के संघर्ष में हम मानसिक स्तर पर कहीं जुड़ते भी हैं, निश्चेष्ट दर्शक मात्र बने नहीं रहते.

जीवन प्रवाह की उद्दाम गति का भास पहले की ही भांति होता रहता है, जिंदगी के बदलते मंजर इसी प्रवाह के द्योतक हैं. न जाने आगे देखने को क्या मिलेगा. पर इतना देख चुकने के बाद भी न तो, जैसा मैंने कहा, जिंदगी पर मेरी पकड़ ज्यादा मजबूत हुई है, न ही मैंने जिंदगी का कोई भेद पा लिया है. अपने अनुभवी जीवन की दुहाई देने के बावजूद शायद एक ही बात हाथ लगी है कि मनुष्य के अपने हाथ में केवल उसका परिश्रम ही है, उसी पर उसका बस है शेष सब अनिश्चित है.

"रौ में है रख्श-ए-उम्र
कहां देखिये थमे.
न हाथ बाग पर हैं,
न है पा रिकाब में."

नागरजी की मृत्यु के कुछेक महीने पहले मैं उनके घर पर उनसे मिला था. अमरकांत और शेखर जोशी भी साथ में थे. नागरजी बहुत दुबला गये थे. उनकी बीनाई कमजोर पड़ गयी थी. सुनाई भी कम देता था, शरीर रोग ग्रस्त हो चुका था. स्वयं हाथ से लिख पाने से लाचार थे. पढ़ पाने से भी लाचार. पर जब उनके रचनात्मक कार्य की चर्चा चली तो चहककर बोले :

"कबीर पर सामग्री इकट्ठा
कर रहा हूं. बहुत-सी कर ली
है, दो वर्ष से कर रहा हूं.
शीघ्र ही लिखने में जुट जाऊंगा.
वह किताब तो लिखना ही है..."

उनका उत्साह देखकर रश्क होता था.

कभी सोचा नहीं था कि मेरे जीवन काल में ही इतने बड़े परिवर्तन देखने को मिलेंगे. मेरे देखते-देखते ही पंजाब का स्वरूप बदल गया है. काश्मीर की घाटी में खून के छींटे उड़ने लगे हैं...

नागरजी का उत्साह और उनकी लगन, मेरा संबल है, मुझ जैसे ही अनेक वयस्क लेखकों का संबल है. लेखक के मन में इस प्रकार की कोई भ्रांति नहीं होती कि उसका साहित्यिक योगदान बड़ा महत्वपूर्ण होगा, न ही इस बात की खुशफ़हमी कि वह कोई बहुत बड़ी देन अपने पीछे छोड़ जायेगा. बल्कि लेखक, विशेषकर आज के जमाने में भली-भांति जानता है कि उसके चले जाने के कुछ ही वर्षों बाद उसकी किताबें किसी पुस्तकालय के तख्ते पर पड़ी धूल चाट रही होंगी. किसी ने अनुमान लगाया था कि आजकल, मरणोपरांत किसी लेखक की उम्र दस-पंद्रह साल से ज्यादा नहीं होती. लोग भूल-भुला जाते हैं. पर लेखक के लिये, भले ही उसकी रचनाओं की कुछ भी गति हो, उसका लेखन, उसके लिये सार्थक क्रिया है, जिसके साथ वह तन-मन से जुड़ा होता है. यह भी मन-भुलावा ही सही. भले ही आपके जीते जी भी कोई पाठक आपकी चीज उठाकर पढ़ना गवारा न करे. भले ही सुधी आलोचक चिल्ला-चिल्लाकर कहते रहें : "चुक गया. चुक गया. चुक गया." विरले ही कभी कोई लेखक स्वयं अपने हाथ से कलम रख देता है. यह उसका जुनून भी है और समझ लीजिये ढर्रा भी है. बुढ़ापे की दहलीज पर पहुंचकर लिखना छोड़ देगा तो जायेगा कहां? अधर में लटक जायेगा. ढर्रा भी अपने में बड़े काम की चीज है. ज्यादा होगा, फुसफुसी कहानियां लिखेगा, अटपटे उपन्यास लिखेगा, इससे नुकसान तो इतना ही होगा कि उसकी किताबों का वजन पांच किलोग्राम से बढ़कर छः किलोग्राम हो जायेगा, सात किलोग्राम हो जायेगा. कुछ किताबें रद्दी के दाम बिकेंगी, पर उसका जुनून तो बना रहेगा, अपनी धुन में तो लगा रहेगा. और रद्दी के दाम भी तो बढ़ रहे हैं.

पर मैं इस जुनून को इतना हल्का भी नहीं समझता. किसी भी काम की भांति यह भी पूरी तन्मयता मांगता है और जिगर का खून मांगता है और दुनिया भर से जुड़ने का गौरव और उल्लास प्रदान करता है.

यों तो जिंदगी में प्रत्येक व्यक्ति अपना रास्ता, टटोल-टटोलकर, स्वयं बनाता है, अपनी ही अक्ल के मुताबिक चलता भी है, पर जिंदगी की राह पर चलते हुए कभी किसी द्वारा दी हुई सीख या किसी के मुंह से सुने दो शब्द मन में अटक जाते हैं और भुलाये नहीं भूलते. ऐसे ही अनेक वाक्य मेरे मन में भी अटके रह गये हैं. मैं नहीं जानता कहां तक उन्होंने मेरा पथ प्रदर्शन किया है, पर मन में अटके जरूर रहे हैं. मेरे पिता कहा करते थे : "मुट्ठी भर मिट्टी भी उठाना हो तो बड़े ढेर में से उठाना." और मां कहा करती थीं : "थोड़ा लद्द सवेले आ." (यह पंजाबी का 'अखाण' है. देहातों में लोग गधे की पीठ पर भूसी या अनाज के बोरे या बेचनेवाली कोई भी चीज लादकर शहर की ओर निकल जाया करते थे. कहा है कि थोड़ा सामान लादकर ले जाओ ताकि उससे निबटकर जल्दी घर लौट सको. मतलब कि थोड़ी कमाई से संतुष्ट रहो.) और एक सीख मुझे मेरे भाई से भी मिली थी. एक बार कोई जरूरत पड़ने पर मैंने उन्हें लिखा कि अमुक व्यक्ति से मेरी सिफारिश कर दो ताकि मेरा काम हो जाये. जवाब में उन्होंने मुझे लिखा : "पेड़ पर से अपने हाथ से फल तोड़ने का अपना ही मजा है. मैं तुम्हें इस सुख से वंचित करना नहीं चाहता."

इसी प्रकार के अनेक वाक्य और वाक्यांश मैं अपने मन में संजोये हुए हूं, अस्तु!

२७.६.१९९०

भीष्म साहनी : एक नजर में

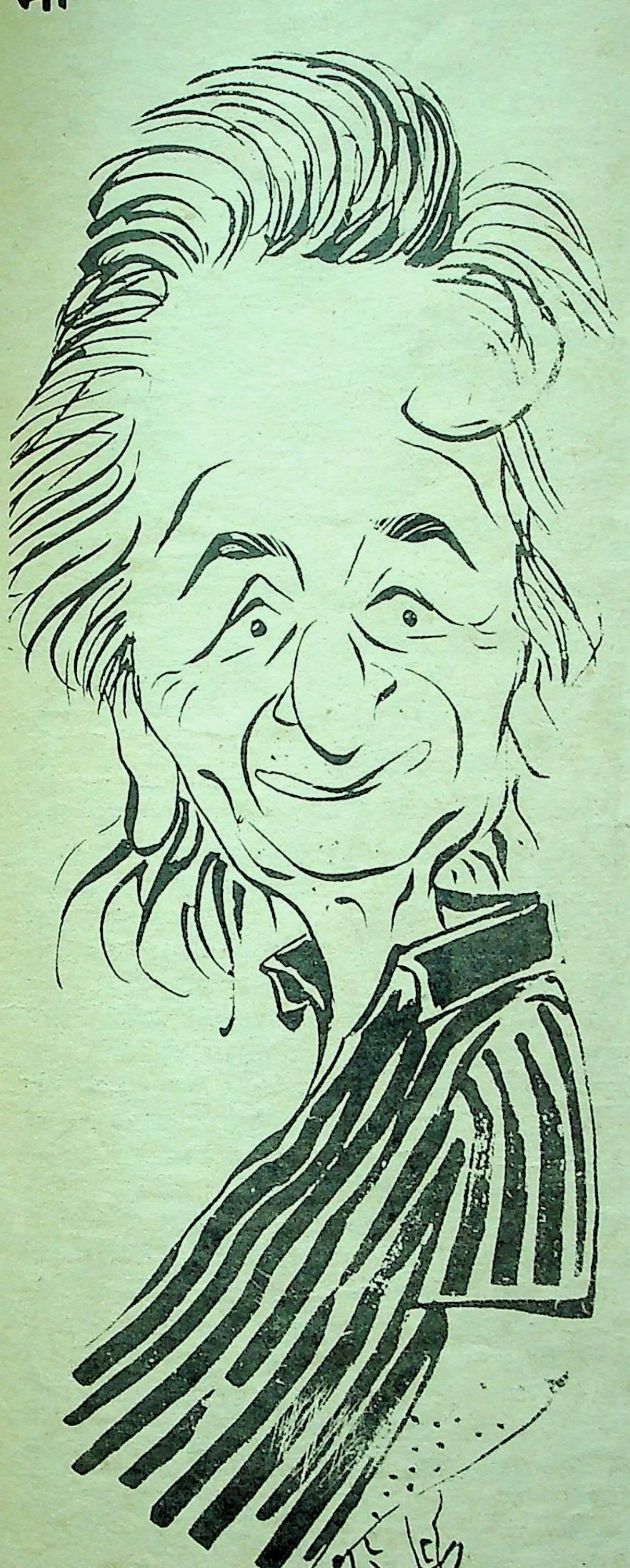

जन्म : ८ अगस्त, १९१५
रावलपिंडी (पाकिस्तान)
शिक्षा : एम. ए. पी-एच. डी.

पिता श्री हरबंसलाल साहनी एवं माता श्रीमती लक्ष्मी देवी. पिता व्यापार करते थे और आर्य समाज के सक्रिय सदस्य थे. आरंभिक शिक्षा गुरुकुल पोठोहार में हुई पर दो वर्ष बाद ही स्थानीय डी.ए.वी.स्कूल में दाखिल. १९३१ में मैट्रिकुलेशन और १९३३ में इंटरमीडियेट की कक्षाएं पास कीं. १९३३ में लाहौर चले गये. वहीं गवर्नमेंट कॉलेज से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया. घर लौटकर पिता के साथ व्यापार करने लगे और साथ ही स्थानीय डी.ए.वी. कॉलेज में ऑनरेरी तौर पर पढ़ाने व नाटक खेलने लगे.

१३ अगस्त, १९४७ को दिल्ली के लिए रवाना. पहले कुछ समय बंबई में अपने बड़े भाई के साथ (बलराज साहनी) रहे. कुछ समय अंबाला के एक कॉलिज में नौकरी भी की. अंततः १९४९-५० में दिल्ली पहुंच गये. यहां युवा रचनाकारों की एक साप्ताहिक गोष्ठी में नियमित रूप से भाग लेने लगे. इन्हीं दिनों दिल्ली कॉलिज में कार्यरत हो गये. १९५७ में भारत सरकार की ओर से इनका चुनाव सोवियत संघ में अनुवादक के रूप में कर लिया गया. ६३ में भारत लौटने पर फिर से आप दिल्ली कॉलिज में पढ़ाने लगे. १९६५ से १९६७ तक 'नई कहानियां' का संपादन किया. सन् १९८० में अध्यापन से अवकाश प्राप्त कर स्वतंत्र लेखन में जुट गये.

अब तक प्रकाशित कृतियां

उपन्यास: 'झरोखे' [१९६७], 'कड़ियां' [१९७०], 'तमस' [१९७३], 'बसंती' [१९८०] तथा 'मय्यादास की माड़ी' [१९८८]

कहानी संग्रह: 'भाग्य रेखा' [१९५३], 'पहला पाठ' [१९५६], 'भटकती राख' [१९६६], 'पटरियां' [१९७३], 'वाड्चू' [१९७८], 'शोभा यात्रा' [१९८१], 'निशाचर'. [१९८३], 'पाली' [१९८९], के अतिरिक्त 'मेरी प्रिय कहानियां', 'प्रतिनिधि कहनियां' और 'हिंदी कहानी संग्रह' [संपादन].

नाटक: 'हानूश' [१९७७], 'कबिरा खड़ा बजार में' [१९८१], 'माधवी' [१९८४].

जीवनी: 'बलराज, माई ब्रदर' [१९८१].

निबंध संग्रह: 'अपनी बात' [१९८९].

बाल साहित्य: 'गुलेल का खेल' [१९८०] तथा 'वापसी'.

पुरस्कार-सम्मान

- भाषा विभाग, पंजाब द्वारा १९७५ में 'शिरोमणि लेखक' पुरस्कार.
- 'तमस' उपन्यास पर १९७६ में साहित्य अकादेमी पुरस्कार.
- अफ्रोएशियाई लेखक संघ की ओर से १९८० में 'लोटस पुरस्कार'.
- १९७९-८० में दिल्ली साहित्य कला परिषद द्वारा सम्मानित.
- १९८५ में उपन्यास 'बसंती' पर उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से पुरस्कृत.
- १९९० में हिंदी-उर्दू साहित्य पुरस्कार [लखनऊ].
- १९९० में 'मय्यादास की माडी' उपन्यास के लिए हिंदी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत.
- अनेक पुस्तकों के विविध भारतीय व विदेशी भाषाओं में अनुवाद.
- नाटकों व फिल्मों में अभिनय.

पत्नी के आईने में पति के अक्स

भीष्मजी की सगाई तो किसी और से साथ तय हुई थी

☐ शीला साहनी

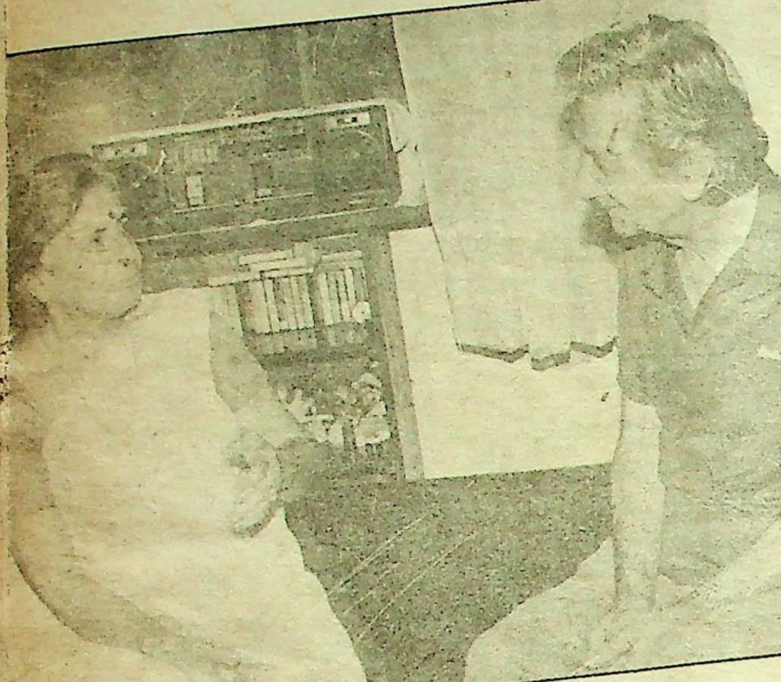
अब

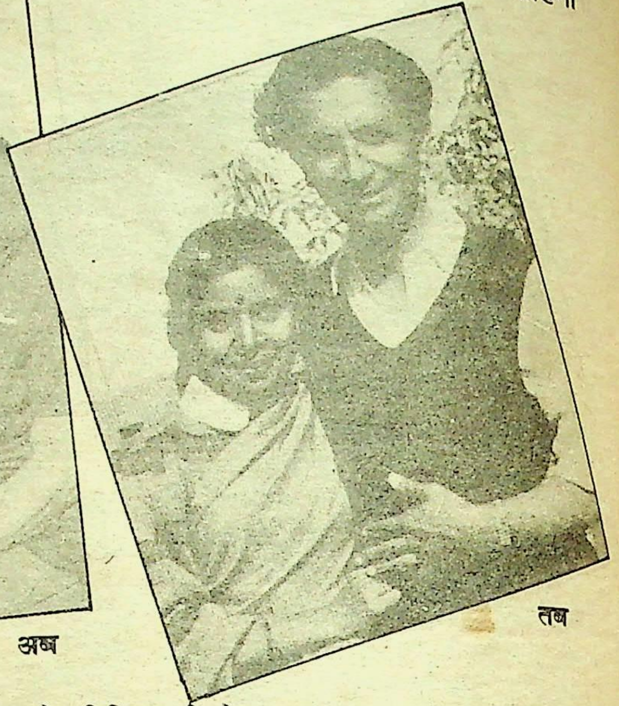
तब

शीलाजी से बातचीत शुरू ही हुई थी कि टेलीफोन मैकेनिक आ गया और उन्होंने थोड़ी देर ठहर जाने की गुजारिश यह कहते हुए की कि यह काम भी मुझे ही करना है. भीतर भीष्मजी बैठे हैं. परंतु वे एक पल के लिए भी इधर नहीं आयेंगे फिर शीलाजी टेलीफोन ठीक करवाने में जुट गयीं. घर का हो या बाहर का, रत्ती से रेखा तक का काम शीलाजी करती हैं. भीष्मजी रसोई के काम-धाम में भले ही मदद कर दें, परंतु ड्राइंग-रूम से लेकर बाहर की दुनिया का काम-काज शीलाजी ही संभालती हैं.

टेलीफोन मैकेनिक के चले जाने के बाद बातचीत का सिलसिला फिर से शुरू हुआ. शीलाजी ने बताया. "देखिए, अभी आपके सामने टेलीफोन मैकेनिक पुराने टेलीफोन सेट का साठ रुपये मांग रहा था. अगर मेरी जगह भीष्मजी होते तो तुरंत निकालकर दे देते.

उन्होंने कहा कि वो पति के रूप में तो बहुत अच्छे हैं, परंतु व्यावहारिक बिल्कुल नहीं हैं. इनकी अच्छाई का सभी नाजायज लाभ उठाते हैं. मैं तो इनकी विनम्रता से परेशान हूं. इनकी विनम्रता का लाभ दूसरे लोग उठाते हैं और उससे तकलीफ मुझे होती है.

वे साधु हैं, कर्मयोगी हैं, निष्काम कर्मयोगी हैं, ये सारी बातें तो बड़ी ऊंची हैं, परंतु बीबी के लिए यह कमाल की बातें नहीं होती, बल्कि मुसीबत होती हैं.

शीलाजी ने बताया कि भीष्मजी को हुक्म लेना खूब आता है, देना नहीं आता. वे खुद मेरे साथ खाना बनाते हैं, ये कुछ भी करते हुए कभी नहीं थकते. उन्होंने कभी भी मुझे दबाया नहीं, परंतु मेरी सुख-सुविधाओं के प्रति उनका ध्यान भी नहीं गया.

मुझे इस बात का हमेशा डर लगा रहता है कि भीष्मजी फिर मुझे फंसायेंगे! वे हमेशा निश्चिंतता से अनिश्चितता की ओर प्रस्थान करते हैं. जैसे कि मास्को चले गये. वे पहले कांग्रेस में थे, फिर कम्युनिस्ट पार्टी में चले गये. उन्होंने कभी नहीं सोचा कि बाल-बच्चों का क्या होगा?

वैसे, इनके साथ रहकर मुझे साहित्य में रुचि पैदा हुई. मैं तो दर्शन-शास्त्र की छात्रा थी.

भीष्मजी से पहली बार आमने सामने होने के संदर्भ में बताते हुए शीलाजी कहती हैं कि रावलपिंडी में मेरे पिताजी पुलिस में थे. एक बार भीष्मजी 'भूतगाड़ी' नामक नाटक को खुद रूपांतरित और निर्देशित करके अभिनय कर रहे थे. पिताजी मुझे नाटक दिखाने ले गये. इसी नाटक में भीष्मजी को मैंने पहली बार देखा. यह नाटक मुझे काफी अच्छा लगा. इसमें भीष्मजी ने अभिनय भी अच्छा किया था.

मैं रावलपिंडी में डी.ए.वी. कॉलेज में बी.ए. (तृतीय वर्ष) की छात्रा थी. यहीं अंग्रेजी के क्लास में पढ़ाते हुए उनसे पहली मुलाकात हुई. उन्होंने बहुत अच्छा पढ़ाया था. अंग्रेजी के नाटक का पहले उन्होंने सारांश बता दिया, फिर रोचक ढंग से नाटक पढ़ाया. इससे मैं काफी प्रभावित हुई थी.

उन दिनों में कॉलेज साइकिल से जाती थी और भीष्मजी बहुत सीधे-सादे, बहुत चुप और गंभीर रहने वाले प्राध्यापक थे, जबकि मैं काफी चंचल थी.

१९४४ में मैं बीस बरस की थी और भीष्म जी २८ बरस के थे. एम.ए. की परीक्षा देने के पांच दिनों के बाद मेरी शादी हुई. हालांकि भीष्म जी की सगाई उनके माता-पिता ने बचपन में ही किसी और लड़की के साथ तय कर रखी थी. वह लड़की काफी मोटी-तगड़ी थी. वह पढ़ी-लिखी नहीं थी. भीष्मजी ने मुझे पसंद किया था. ☐

☐ प्रस्तुति : सामबे

'तमस' और 'मोहन जोशी' का अभिनेता भीष्म साहनी कैसा था?

उन्होंने किरदार को बखूबी निभाया

☐ गोबिंद निहलानी

देखिए, विभाजन की थीम, बल्कि उससे भी ज्यादा सांप्रदायिकता पर एक फिल्म करने का इरादा था बहुत दिनों से. इस लिहाज से मैं एक अच्छा साहित्यिक कार्य ढूंढ़ रहा था. इस विषय पर मुझे लघु कथाएं तो बहुत मिलीं, पर उपन्यास कोई नहीं मिल पा रहा था. 'झूठा सच' तो था, पर काफी बड़ा था. जिस दौरान 'गांधी' बन रही थी, उस दौरान मैं एक दिन दिल्ली के श्रीराम सेंटर स्थित किताबों की एक दुकान में गया, यों ही किताबें आदि देखने. वहीं मुझे 'तमस' नजर आयी. मैंने इससे पहले कभी भी भीष्म साहनी को पढ़ा नहीं था. तमस नाम मुझे बहुत अच्छा लगा और मैंने किताब खरीद ली. फिर जब पढ़ना शुरू किया, तो रख ही नहीं पाया. बांध लिया मुझे उपन्यास ने. तभी मैंने सोच लिया था कि इस पर फिल्म बनाऊंगा.

मुझे इस उपन्यास में दो चीजें दिखाई दीं. एक तो भीष्मजी ने यह उपन्यास तीस साल बाद लिखा था. यानी वक्त की इतनी लंबी दूरी होने के बावजूद बिल्कुल सटीक या कहें प्रासंगिक नजर आया. फिर उन्होंने जो बात कही थी, वह विशुद्ध रूप से भावनात्मक नहीं थी. पूरे उपन्यास में एक सादापन था, सहजता थी और सबसे अहम बात कि ईमानदारी दिखी. किसी भी धर्म के ऊपर 'जजमेंट' पास करने की कोशिश नहीं थी. कृत्रिमता मुझे बहुत कम दिखी. तो जो ये ईमानदारी, अंर्तदृष्टि दिखी, उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ. सच कहूं तो इसके पहले मैंने ऐसा उपन्यास नहीं पढ़ा था.

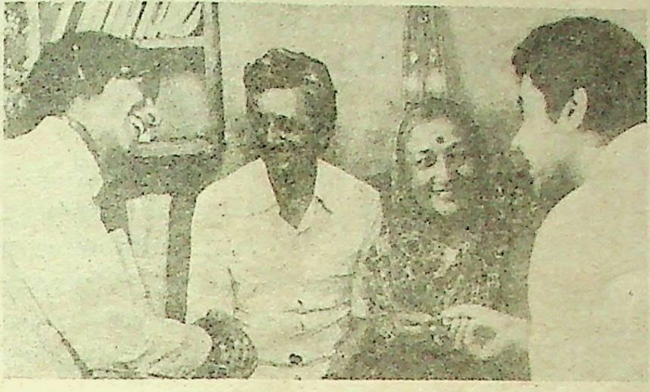

'मोहन जोशी हाजिर हो' फिल्म के एक दृश्य में नसीरुद्दीन शाह और दीना पाठक के बीच अभिनेता भीष्म साहनी.

एक महत्वपूर्ण बात यह कि चूंकि भीष्म साहनी प्रगतिशील विचारधारा के आदमी हैं, लिहाजा उनका नजरिया सांप्रदायिक नहीं है. इसीलिए उपन्यास की मुख्य बात जो है, यह नहीं है कि विभाजन क्यों हुआ; बल्कि यह है कि राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किस तरह लोगों का इस्तेमाल किया जाता है. मतलब आज की सच्चाई के साथ 'तमस' गहरे जुड़ा हुआ है.

मैं आज भी गर्व का अनुभव करता हूं कि मैंने भीष्मजी के तमस का फिल्मांकन किया. कम-से-कम इस बहाने एक सार्थक बहस की शुरुआत तो हुई. एक जागृति तो पैदा हुई.

जहां तक भीष्मजी द्वारा 'तमस' में अभिनय करने की बात है, तो जब मैंने उपन्यास पढ़ा और सरदार हरनाम सिंह का चरित्र पढ़ा तो मुझे लगा कि भीष्मजी इस किरदार को बखूबी निभा पायेंगे. क्योंकि उस चरित्र में एक सादापन था, जिसे कहते हैं न पैदाइशी ईमानदारी, वह थी और भीष्मजी में ये सारी बातें मुझे दिखायी दीं. उनकी आंखों में, आवाज में मुझे ईमानदारी दिखी. इसलिए मैंने उन्हें चुना. जब हम शूटिंग कर रहे थे, तो मेरा अंदाषा सही निकला. बेहद स्वाभाविक अभिनय किया उन्होंने. उनकी 'परफामेंस' ऐसी थी कि वो पूरी यूनिट को 'रच' करते थे.

उन्होंने बेहतरीन अभिनय किया

☐ सईद मिर्जा

जिन्होंने 'मोहन जोशी हाजिर हो' देखी है, वे उसमें भीष्म साहनी के अभिनय को यकीनन आज तक भुला नहीं पाये होंगे. एक प्रतिष्ठित लेखक द्वारा उतना स्वाभाविक अभिनय करना कई लोगों के आश्चर्य की वजह बन गया था. मंजे हुए अभिनेता-अभिनेत्रियों के बीच खालिस लेखक-कहानीकार भीष्म साहनी ने अपने किरदार को जिस तरीके से जिया, उसने यह प्रमाणित कर दिया कि साहनी प्रतिभाशाली सृजनकर्मी ही नहीं, प्रतिभाशाली अभिनयकर्मी भी हैं.

अपनी लीक से हटकर बनायी गयी फिल्मों की वजह से हमेशा चर्चा के केंद्र में रहनेवाले सईद अख्तर मिर्जा 'मोहन जोशी हाजिर हो' के निर्देशक थे. अभिनेता भीष्म साहनी पर उन्होंने अपने विचार कुछ इन शब्दों में व्यक्त किये—''मैंने भीष्मजी से अभिनय करवाने का निर्णय इसलिए लिया, क्योंकि मुझे उनके चेहरे पर बहुत कुछ नजर आया. साफ लफ्जों में कहूं, तो उनके चेहरे पर मुझे तवारीख (इतिहास) नजर आयी. एक तरह की 'डाक्यूमेंटरी'. और फिल्म इस बात की शाहिद (गवाह) है कि मेरी आंखों ने धोखा नहीं खाया था. कितनी गजब की 'परफारमेंस' दी उन्होंने! मैं जितना सोचता था, उससे कहीं बढ़कर बेहतरीन काम किया.

''सबसे अहम बात यह रही कि मुझे उन्हें कुछ भी सिखाना नहीं पड़ा. एक बार भी यह नहीं कहना पड़ा, कि मैं यह चाहता हूं या आप ऐसा करिए. जबकि वो खुद मुझसे कहते थे कि तुम सबको कुछ-न-कुछ बताते हो, सिखाते हो, मुझे भी सिखाओ. लेकिन बतौर निर्देशक मैं जानता था कि उन्हें कुछ सिखाने-बताने की कोई जरूरत ही नहीं है. यकीनन भीष्म साहनी जी में अद्भुत अभिनय-क्षमता है, महान अभिनेता हैं वो.

''स्वभाव इतना सहयोगी है कि पूछिए मत. एक अत्यंत उम्दा इनसान में जितनी खासियत होनी चाहिए, सारी-की-सारी उनमें हैं. बुजुर्ग होते हुए भी वो किसी मुश्किल के सामने विचलित नहीं होते थे. 'पानी में तैरते' हुए वो कई दफा लोकेशन पर पहुंचे और एक बार भी यह शिकायत नहीं की कि भई मैं बुजुर्ग आदमी हूं, मुझे इस तरह तकलीफ होती है.'' ☐

—प्रस्तुति : संजय मासूम

वाङ्‌चू

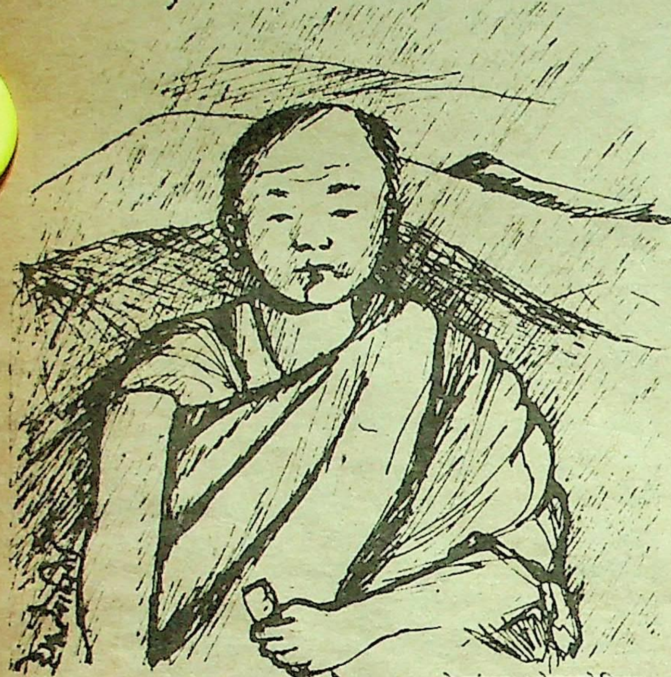

रेखांकन : हेमज्योतिका

भीष्म जी की प्रतिनिधि कहानी के रूप में आमतौर पर 'चीफ की दावत' और 'अमृतसर आ गया है' के नाम लिये जाते हैं पर वे स्वयं 'वाङ चू' को भी अपनी प्रतिनिधि कहानी मानते हैं. प्रस्तुत है यह कहानी और डॉ. गंगा प्रसाद विमल की टिप्पणी जो इस कहानी को पुनर्मूल्यांकित करने का अपने ढंग से प्रयास भी करती है.

तभी दूर से वाङ् चू आता दिखाई दिया.

नदी के किनारे, लालमंडी की सड़क पर धीरे-धीरे डोलता-सा चला आ रहा था. धूसर रंग का चोगा पहने था और दूर से लगता था कि बौद्ध भिक्षुओं की ही भांति उसका सिर भी घुटा हुआ है. पीछे शंकराचार्य की ऊंची पहाड़ी थी और ऊपर स्वच्छ नीला आकाश. सड़क के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे सफेदे के पेड़ों की कतारें. क्षण भर के लिए मुझे लगा, जैसे वाङ् चू इतिहास के पन्नों पर से उतरकर आ गया है. प्राचीन-काल में इसी भांति देश-विदेश से आनेवाले चीवरधारी भिक्षु पहाड़ों और घाटियों को लांघकर भारत में आया करते होंगे. अतीत के ऐसे ही रोमांचकारी धुंधलके में वाङ् चू भी चलता हुआ नजर आया. जब से वह श्रीनगर में आया था, बौद्ध विहारों के खंडहरों और संग्रहालयों में घूम रहा था. इस समय भी वह लालमंडी के संग्रहालय में से निकलकर आ रहा था, जहां बौद्धकाल के अनेक अवशेष रखे हैं. उसकी मन:स्थिति को देखते हुए वह सचमुच ही वर्तमान से कटकर अतीत के ही किसी कालखंड में विचर रहा था.

''बोधिसत्वों से भेंट हो गयी?'' पास आने पर मैंने चुटकी ली.

वह मुस्करा दिया, हल्की टेढ़ी-सी मुस्कान, जिसे मेरी मौसेरी बहन डेढ़ दांत की मुस्कान कहा करती थी, क्योंकि मुस्कराते वक्त वाङ् चू का ऊपर का होंठ केवल एक ओर से थोड़ा-सा ऊपर को उठता था.

''संग्रहालय के बाहर बहुत-सी मूर्तियां रखी हैं. मैं वही देखता रहा.'' उसने धीमे से कहा, फिर वह सहसा भावुक होकर बोला, ''एक मूर्ति के केवल पैर-ही-पैर बचे हैं...''

मैंने सोचा, आगे कुछ कहेगा, परंतु वह इतना भावविह्वल हो उठा था कि उसका गला रुंध गया और उसके लिए बोलना असंभव हो गया.

हम एक साथ घर की ओर लौटने लगे.

''महाप्राण के भी पैर ही पहले दिखाए जाते थे.'' उसने कांपती-सी आवाज़ में कहा और अपना हाथ मेरी कोहनी पर रख दिया. उसके हाथ का हल्का-सा कंपन, धड़कते दिल की तरह महसूस हो रहा था.

''आरंभ में महाप्राण की मूर्तियां नहीं बनाई जाती थीं ना! तुम तो जानते हो, पहले स्तूप के नीचे केवल पैर ही दिखाए जाते थे. मूर्तियां तो बाद में बनाई जाने लगी थीं.''

ज़ाहिर है बोधिसत्व के पैर देखकर उसे महाप्राण के पैर याद हो आये थे और वह भावुक हो उठा था. कुछ पता नहीं चलता था, कौन-सी बात किस वक्त वाङ् चू को पुलकाने लगे, किस वक्त वह गद्‌गद होने लगे.

''तुमने बहुत देर कर दी. सभी लोग तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं. मैं चिनारों के नीचे भी तुम्हें खोज आया हूं,'' मैंने कहा.

''मैं संग्रहालय में था.''

''वह तो ठीक है, पर दो बजे तक हमें हब्बा कदल पहुंच जाना चाहिए, वरना जाने का कोई लाभ नहीं.''

उसने छोटे-छोटे झटकों के साथ तीन बार सिर हिलाया और कदम बढ़ा दिये.

वाङ् चू भारत में मतवाला बना घूम रहा था. वह महाप्राण के जन्म-स्थान लुंबिनी की यात्रा नंगे पांव कर चुका था, सारा रास्ता हाथ जोड़े हुए. जिस-जिस दिशा में महाप्राण के चरण उठे थे, वाङ् चू मंत्रमुग्ध-सा उसी-उसी दिशा में घूम आया था. सारनाथ में, जहां महाप्राण ने अपना पहला प्रवचन किया था और दो मृगशावक मंत्रमुग्ध-से झाड़ियों में से निकलकर उनकी ओर देखते रह गये थे, वाङ् चू एक पीपल के पेड़ के नीचे घंटों नतमस्तक बैठा रहा था, यहां तक कि उसके कथनानुसार उसके मस्तक में अस्फुट-से वाक्य गूंजने लगे थे और उसे लगा था, जैसे महाप्राण का पहला प्रवचन सुन रहा है. वह इस भक्तिपूर्ण कल्पना में इतना गहरा डूब गया था कि सारनाथ में ही रहने लगा था. गंगा की धारा को वह दसियों शताब्दियों के धुंधलके में पावन जलप्रवाह के रूप में देखता. जब से श्रीनगर में आया था, बर्फ से ढके पहाड़ों की चोटियों की ओर देखते हुए अक्सर मुझसे कहता, ''वह रास्ता ल्हासा को जाता है ना, उसी रास्ते बौद्ध ग्रंथ तिब्बत में भेजे गये थे,'' वह उस पर्वतमाला को भी पुण्य-पावन मानता था, क्योंकि उन पर बिछी पगडंडियों के रास्ते बौद्ध भिक्षु तिब्बत की ओर गये थे.

वाङ् चू कुछ वर्षों पहले वृद्ध प्रोफेसर तान शान के साथ भारत आया था. कुछ दिनों तक तो वह पहले उन्हीं के साथ रहा और हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन करता रहा, फिर प्रोफेसर शान चीन लौट गये और वह यहीं बना रहा और बौद्ध सोसाइटी से अनुदान प्राप्त कर सारनाथ में आकर बैठ गया. भावुक काव्यमयी प्रकृति का जीव, जो प्राचीनता के मनमोहक वातावरण में विचरते रहना चाहता था. वह यहां

तथ्यों की खोज करने नहीं आया था. वह तो बोधिसत्वों की मूर्तियों को देखकर गद्‌गद होने आया था. महीने भर से संग्रहालयों के चक्कर काट रहा था, लेकिन उसने कभी नहीं बताया कि बौद्ध धर्म की किस शिक्षा से उसे सबसे अधिक प्रेरणा मिलती है. न तो वह किसी तथ्य को पाकर उत्साह से खिल उठता, न उसे कोई संशय परेशान करता. वह भक्त अधिक और जिज्ञासु कम था.

मुझे याद नहीं कि उसने हमारे साथ कभी खुलकर बात की हो, या किसी विषय पर अपना मत पेश किया हो. उन दिनों मेरे दोस्तों के बीच घंटों बहसें चला करतीं, कभी देश की राजनीति के बारे में, कभी धर्म के बारे में, लेकिन वाङ्‌चू इनमें कभी भाग नहीं लेता था. वह सारा वक्त धीमे-धीमे मुस्कराता रहता और कमरे के एक कोने में दुबककर बैठा रहता. उन दिनों देश में वलवलों का सैलाब-सा उठ रहा था. स्वतंत्रता आंदोलन जोरों पर था और हमारे बीच उसी की चर्चा रहती—कांग्रेस कौन-सी नीति अपनाएगी, आंदोलन कौन-सा रुख पकड़ेगा. क्रियात्मक स्तर पर तो हम लोग कुछ करते-कराते नहीं थे, लेकिन भावनात्मक स्तर पर उसके साथ बहुत कुछ जुड़े हुए थे. इस पर वाङ्‌चू की तटस्थता कभी हमें अखरनें लगती, तो कभी अचंभे में डाल देती. वह हमारे देश की ही गतिविधि के बारे में नहीं, अपने देश की गतिविधि में भी कोई विशेष दिलचस्पी नहीं लेता था. उसके अपने देश के बारे में भी पूछो, तो मुस्कराता सिर हिलाता रहता था.

कुछ दिनों से श्रीनगर की हवा भी बदली हुई थी. कुछ मास पहले यहां गोली चली थी. कश्मीर के लोग महाराजा के खिलाफ उठ खड़े हुए थे, और अब कुछ दिनों से शहर में एक नयी उत्तेजना पायी जाती थी. नेहरूजी श्रीनगर आनेवाले थे और उनका स्वागत करने के लिए नगर को दुल्हन की तरह सजाया जा रहा था. आज ही दोपहर को नेहरूजी श्रीनगर पहुंच रहे थे. नदी के रास्ते नावों के जुलूस की शक्ल में उन्हें लाने की योजना थी और इसी कारण मैं वाङ्‌ चू को खोजता हुआ उस ओर आ निकला था.

हम घर की ओर बढ़े जा रहे थे, जब सहसा वाङ्‌ चू ठिठककर खड़ा हो गया.

''क्या मेरा जाना बहुत जरूरी है? जैसा तुम कहो...''

मुझे धक्का-सा लगा. ऐसे समय में, जब लाखों लोग नेहरूजी के स्वागत के लिए इकट्ठे हो रहे थे, वाङ्‌ चू का यह कहना कि अगर वह साथ में न जाये, तो कैसा रहे, मुझे सचमुच बुरा लगा. लेकिन फिर स्वयं ही कुछ सोचकर उसने अपने आग्रह को दोहराया नहीं और हम घर की ओर साथ-साथ जाने लगे.

कुछ देर बाद हब्बा कदल के पुल के निकट लाखों की भीड़ में हम लोग खड़े थे—मैं, वाङ्‌ चू तथा मेरे दो-तीन मित्र. चारों ओर, जहां तक नजर जाती, लोग-ही-लोग थे—मकानों की छतों पर, पुल पर, नदी के ढलवां किनारों पर. मैं बार-बार कनखियों से वाङ्‌चू के चेहरे की ओर देख रहा था कि उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई है, कि हमारे दिल में उठनेवाले वलवलों का उस पर क्या असर हुआ है. यों भी यह मेरी आदत-सी गयी बन है, जब भी कोई विदेशी साथ में हो, मैं उसके चेहरे का भाव पढ़ने की कोशिश करता रहता हूं कि हमारे रीति-रिवाज, हमारे जीवन-यापन के बारे में उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है. वाङ्‌ चू अधमुंदी आंखों से सामने का दृश्य देखे जा रहा था. जिस समय नेहरूजी की नाव सामने आयी, तो जैसे मकानों की छतें भी हिल उठीं. राजहंस की शक्ल की सफेद नाव में नेहरूजी स्थानीय नेताओं के साथ खड़े हाथ हिला-हिलाकर लोगों का अभिवादन कर रहे थे. और हवा में फूल-ही-फूल बिखर गये. मैंने पलटकर वाङ्‌-चू के चेहरे की ओर देखा. वह पहले ही की तरह निश्चेष्ट-सा सामने का दृश्य देखे जा रहा था.

''आपको नेहरूजी कैसे लगे?'' मेरे एक साथी ने वाङ्‌ चू से पूछा.

वाङ्‌ चू ने अपनी टेढ़ी-सी आंखें उठाकर उसके चेहरे की ओर देखा. फिर अपनी डेढ़ दांत की मुस्कान के साथ कहा, ''अच्छा, बहुत अच्छा!''

वाङ्‌ चू मामूली-सी हिंदी और अंग्रेजी जानता था. अगर तेज बोलो तो उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ता था.

नेहरूजी की नाव दूर जा चुकी थी, लेकिन नावों का जुलूस अभी भी चलता जा रहा था, जब वाङ्‌ चू सहसा मुझसे बोला, ''मैं थोड़ी देर के लिए संग्रहालय में जाना चाहूंगा. इधर से रास्ता जाता है, मैं स्वयं चला जाऊंगा.'' और वह बिना कुछ कहे, एक बार अधमिची आंखों से मुस्कराया और हल्के-से हाथ हिलाकर मुड़ गया.

हम सभी हैरान रह गये. इसे सचमुच जुलूस में रुचि नहीं रही होगी, जो इतनी जल्दी संग्रहालय की ओर अकेला चल दिया है.

''यार, किस बूदम को उठा लाये हो? यह क्या चीज है? कहां से पकड़ लाए हो इसे?'' मेरे एक मित्र ने कहा.

''बाहर का रहनेवाला है, इसे हमारी बातों में कैसे रुचि हो सकती है!'' मैंने सफाई देते हुए कहा.

''वाह, देश में इतना कुछ हो रहा हो और इसे रुचि ही न हो!''

वाङ्‌ चू अब तक दूर जा चुका था और भीड़ में से निकलकर पेड़ों की कतार के नीचे आंखों से ओझल होता जा रहा था.

''मगर यह है कौन?'' दूसरा एक मित्र बोला, ''यह न बोलता है, न चहकता है. कुछ पता नहीं चलता, हंस रहा है, या रो रहा है! सारा वक्त एक कोने में दुबककर बैठा रहता है.''

''नहीं, नहीं, बड़ा समझदार आदमी है. पिछले पांच साल से यहां पर रह रहा है. बड़ा पढ़ा-लिखा आदमी है. बौद्ध धर्म के बारे में बहुत कुछ जानता है.'' मैंने फिर उसकी सफाई देते हुए कहा.

मेरी नजर में इस बात का बड़ा महत्त्व था कि वह बौद्ध ग्रंथ बांचता है और उन्हें बांचने के लिए इतनी दूर से आया है.

> कभी वह मुस्कराता, कभी सिर हिलाता और सारा वक्त दार्शनिकों की तरह मेरे चेहरे की ओर देखता रहा. मुझे लग रहा था कि मेरे कहे का उस पर कोई असर नहीं हो रहा. कि चिकने घड़े पर मैं पानी उंडेले जा रहा हूं.

''अरे भाड़ में जाये ऐसी पढ़ाई! वाह जी, जुलूस को छोड़कर म्यूजियम की ओर चल दिया है!''

''सीधी-सी बात है, यार!'' मैंने जोड़ा, ''इसे यहां भारत का वर्तमान खींचकर नहीं लाया, भारत का अतीत लाया है. ह्यून त्सांग भी तो यहां बौद्ध ग्रंथ ही बांचने आया था. यह भी शिक्षार्थी है. बौद्ध मत में इसकी रुचि है.''

घर लौटते हुए हम लोग रास्ता भर वाङ्‌-चू की ही चर्चा करते रहे. अजय का मत था कि अगर वह पांच साल भारत में काट गया है, तो अब वह जिंदगी भर यही पर रहेगा.

''अब आ गया है तो लौटकर नहीं जायेगा. भारत में एक बार परदेशी आ जाये तो लौटने का नाम नहीं लेता.''

''भारत देश वह दलदल है कि जिसमें एक बार बाहर के आदमी का पांव पड़ जाये, तो वह धंसता ही चला जाता है, निकलना चाहे भी, तो नहीं निकल सकता!'' दिलीप ने मजाक में कहा, ''न जाने कौन-से कमल फूल तोड़ने के लिए इस दलदल में घुसा है.''

''हमारा देश हम हिंदुस्तानियों को पसंद नहीं, बाहर के लोगों को तो बहुत पसंद है!'' मैंने कहा.

''पसंद क्यों न होगा! यहां थोड़े में गुजर हो जाती है, सारा वक्त धूप खिली रहती है, फिर बाहर के आदमी को लोग परेशान नहीं करते, जहां बैठा है वहीं बैठा रहने देते हैं. इस पर उन्हें तुम जैसे झुड्डू भी मिल जाते हैं, जो उनका गुणगान करते रहते हैं और आवभगत करते रहते हैं! तुम्हारा वाङ्‌चू भी यहीं पर मरेगा...!''

हमारे यहां उन दिनों मेरी छोटी मौसेरी बहन ठहरी हुई थी, वही जो वाङ्‌चू की मुस्कान को डेढ़ दांत की मुस्कान कहा करती थी. चुलबुली-सी लड़की बात-बात पर ठिठोली करती रहती थी. मैंने दो-एक बार वाङ्‌चू को कनखियों से उसकी ओर देखते पाया था, लेकिन कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह सभी को कनखियों से ही देखता. पर उस शाम नीलम मेरे पास आयी और बोली, ''आपके दोस्त ने मुझे उपहार दिया है. प्रेमोपहार!''

मेरे कान खड़े हो गये, ''क्या दिया है?''

''झूमरों का जोड़ा!''

और उसने दोनों मुट्ठियां खोल दीं, जिनमें चांदी के कश्मीरी चलन के दो सफेद झूमर चमक रहे थे. और फिर वह दोनों झूमर अपने कानों के पास ले जाकर बोली, ''कैसे लगते हैं?''

मैं हतबुद्धि-सा नीलम की ओर देख रहा था.

''उसके अपने कान कैसे भूरे-भूरे हैं!'' नीलम ने हंसकर कहा.

''किसके?''

''मेरे इस प्रेमी के!''

''तुम्हें उसके भूरे कान पसंद हैं?''

''बहुत ज्यादा! जब शर्माता है, तो ब्राउन हो जाते हैं, गहरे ब्राउन!'' और नीलम खिलखिलाकर हंस पड़ी.

लड़कियां कैसे उस आदमी के प्रेम का मजाक उड़ा सकती हैं, जो उन्हें पसंद न हो! या कहीं नीलम मुझे बना तो नहीं रही है?

पर मैं इस सूचना से बहुत विचलित नहीं हुआ था. नीलम लाहौर में पढ़ती थी और वाङ्‌चू सारनाथ में रहता था और अब वह हफ्ते भर में श्रीनगर से वापस जानेवाला था. इस प्रेम का अंकुर अपने आप ही जल-भुन जायेगा.

''नीलम, ये झूमर तो तुमने उससे ले लिये हैं, पर इस प्रकार की दोस्ती अंत में उसके लिए दु:खदायी होगी. बने-बनायेगा कुछ नहीं?''

''वाह भैया, तुम भी कैसे दकियानूसी हो! मैंने भी चमड़े का एक राइटिंग पैड उसे उपहार में दिया है. मेरे पास पहले से पड़ा था, मैंने उसे दे दिया. जब लौटेगा, तो प्रेम-पत्र लिखने में उसे आसानी होगी.''

''वह क्या कहता था?''

''कहता क्या था, सारा वक्त उसके हाथ कांपते रहे और चेहरा कभी लाल होता रहा, कभी पीला. कहता था, मुझे पत्र लिखना, मेरे पत्रों का जवाब देना. और क्या कहेगा बेचारा, भूरे कानोंवाला!''

मैंने ध्यान से नीलम की ओर देखा, पर उसकी आंखों में मुझे हंसी के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं दिया. लड़कियां दिल की बात छुपाना खूब जानती हैं. मुझे लगा, नीलम उसे बढ़ावा दे रही है. उसके लिए यह खिलवाड़ था, लेकिन वाङ्‌चू जरूर इसका दूसरा ही अर्थ निकालेगा.

इसके बाद मुझे लगा कि वाङ्‌चू अपना संतुलन खो रहा है. उसी रात मैं अपने कमरे की खिड़की के पास खड़ा बाहर मैदान में चिनारों की पांत की ओर देख रहा था, जब चांदनी में, कुछ दूरी पर पेड़ों के नीचे मुझे वाङ्‌चू टहलता दिखाई दिया. वह अक्सर रात को देर तक पेड़ों के नीचे टहलता रहता था. पर आज वह अकेला नहीं था. नीलम भी उसके साथ ठुमक-ठुमककर चलती जा रही थी. मुझे नीलम पर गुस्सा आया. लड़कियां कितनी जालिम होती हैं! यह जानते हुए भी कि इस खिलवाड़ से वाङ्‌चू की बेचैनी बढ़ेगी, वह उसे बढ़ावा दिये जा रही थी.

दूसरे रोज खाने की मेज पर नीलम फिर उसके साथ ठिठोली करने लगी. किचन में से एक चौड़ा-सा एलुमीनियम का डिब्बा उठा लायी. उसका चेहरा तपे तांबे जैसा लाल हो रहा था.

''आपके लिए रोटियां और आलू बना लायी हूं. आम के अचार की फांक भी रखी है. आप जानते हैं, फांक किसे कहते हैं? एक बार कहो तो, फांक! कहो वाङ्‌चू जी, फांक!''

उसने नीलम की ओर खोयी-खोयी आंखों से देखा और बोला, ''बांक!'' हम सभी खिलखिलाकर हंस पड़े.

''बांक नहीं फांक!''

''बांक!'' फिर हंसी का फव्वारा फूट पड़ा.

नीलम ने डिब्बा खोला. उसमें से आम के अचार का टुकड़ा निकालकर उसे दिखाते हुए बोली, ''यह है फांक, फांक इसे कहते हैं!'' और उसे वाङ्‌चू की नाक के पास ले जाकर बोली, ''इसे सूंघने पर मुंह में पानी भी आता है. आया मुंह में पानी? अब कहो, फांक!''

''नीलम क्या फिजूल बातें कर रही हो! बैठो आराम से!'' मैंने डांटते हुए कहा.

नीलम बैठ गयी पर उसकी हरकतें बंद नहीं हुई. बड़े आग्रह से वाङ्‌चू से कहने लगी, ''बनारस जाकर हमें भूल नहीं जाइयेगा! हमें खत जरूर लिखियेगा. और अगर किसी चीज की जरूरत हो तो संकोच नहीं कीजियेगा.''

वाङ्‌चू शब्दों के अर्थ तो समझ लेता था, लेकिन उनके पीछे व्यंग्य की ध्वनि वह नहीं पकड़ पाता था. वह अधिकाधिक विचलित महसूस कर रहा था.

''भेड़ की खाल की जरूरत हो, या कोई नमदा, या अखरोट...''

''नीलम!''

''क्यों भैया, भेड़ की खाल पर बैठकर ग्रंथ बांचेंगे?''

वाङ्‌चू के कान लाल होने लगे. शायद पहली बार उसे भास होने लगा था कि नीलम ठिठोली कर रही है. उसके कान सचमुच भूरे रंग के हो रहे थे, जिनका वह मजाक उड़ाया करती थी.

''नीलमजी, आप लोगों ने मेरा बड़ा अतिथि-सत्कार किया है. मैं बड़ा कृतज्ञ हूं.''

हम सब चुप हो गये. नीलम भी झेंप-सी गयी. वाङ्‌चू ने जरूर ही उसकी ठिठोली को समझ लिया होगा. उसके मन को जरूर ठेस लगी होगी. पर मेरे मन में यह विचार भी उठा कि एक तरह से यह अच्छा ही है कि नीलम के प्रति उसकी भावना बदले, उसे ही सबसे अधिक परेशानी होगी.

शायद वाङ्‌चू अपनी स्थिति को जानते-समझते हुए भी एक स्वाभाविक आकर्षण की चपेट में आ गया था. भावुक व्यक्ति का अपने पर कोई काबू नहीं होता. वह पछाड़ खाकर गिरता है, तभी अपनी भूल को समझ पाता है.

सप्ताह के अंतिम दिनों में वह रोज कोई-न-कोई उपहार लेकर आने लगा. एक बार मेरे लिए भी एक चोगा ले आया और बच्चों की तरह जिद करने लगा कि मैं और वह अपना-अपना चोगा पहनकर एक साथ घूमने जायें. संग्रहालय में वह अब भी जाता था, दो-एक बार नीलम को भी अपने साथ ले गया था और लौटने पर सारी शाम नीलम बोधिसत्वों की

खिल्ली उड़ाती रही थी. मैं मन-ही-मन नीलम के इस व्यवहार का स्वागत ही करता रहा, क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि वाङ्‌चू की कोई भावना हमारे घर में जड़ जमा पाये. सप्ताह बीत गया और वाङ्‌चू सारनाथ वापस लौट गया.

वाङ्‌चू के चले जाने के बाद उसके साथ मेरा संपर्क वैसा ही रहा, जैसा आमतौर पर एक परिचित व्यक्ति के साथ रहता है. गाहे-ब-गाहे कभी खत आ जाता, कभी किसी आते-जाते व्यक्ति से उसकी सूचना मिल जाती. वह उन लोगों में से था, जो बरसों तक औपचारिक परिचय की परिधि पर डोलते रहते हैं, न परिधि लांघकर अंदर आते हैं और न ही पीछे हटकर आंखों से ओझल होते हैं. मुझे इतनी ही जानकारी रही कि उसकी समतल और बंधी-बंधाई दिनचर्या में कोई अंतर नहीं आया. कुछ देर तक मुझे कुतूहल-सा बना रहा कि नीलम और वाङ्‌चू के बीच की बात आगे बढ़ी या नहीं, लेकिन लगा कि वह प्रेम भी वाङ्‌चू के जीवन पर हावी नहीं हो पाया.

बम और बलराज साहनी

एक दिन एक पुलिस अधिकारी, अपने साथ सिपाहियों की एक टुकड़ी को लिए हमारे घर पर पहुंच गया. वह अपने साथ हमारे घर की तलाशी लेने का हुक्मनामा लेकर आया था. पिताजी तो भौंचक्के रह गये और बेहद घबरा गये. पूरे तीन दिन तक हमारे घर की तलाशी ली जाती रही, पर बलराज के विरुद्ध कोई आपत्तिजनक सूत्र नहीं मिला. अंत में तलाशी खत्म हुई और बलराज के खिलाफ जारी किये गये गिरफ्तारी के वारंट वापिस ले लिये गये. यह सारा हंगामा बलराज की एक बचकाना हरकत के कारण हुआ. उन्होंने मेरठ में हमारी फुफेरी बहन उर्मिला शास्त्री को जो स्थानीय कांग्रेस की एक जानी-मानी नेता थीं—एक पत्र लिखा कि शीघ्र ही घर में दो बम पहुंच जायेंगे, क्योंकि हमने उनके लिए आर्डर भेज रखा है. चिट्ठी रास्ते में पकड़ ली गयी थी, और पुलिस उन दो बमों को खोज निकालने के लिए हमारे घर पहुंच गयी थी. पंजाबी में अंग्रेजी के शब्द 'Bomb' को 'बम' के रूप में लिखा जाता है, और उस शब्द के दो अर्थ होते हैं. एक तो विस्फोटक बम, पर दूसरा बांस के उस लंबे धड़ को भी पंजाबी में बम कहते हैं, जो तांगे में लगाया जाता है—जिन बांस की दो छड़ों के बीच घोड़े को जोता जाता है, उन्हें भी 'बम' कहते हैं. बलराज का मतलब बांस के बमों से था. घर पर उन दिनों तांगा हुआ करता था और पिताजी ने उसके लिए दो नये 'बम' खरीदने का फैसला किया था, यह मजाक घरवालों को बड़ा महंगा पड़ा, क्योंकि कुछ दिन तक उस बात का सचमुच खतरा बना हुआ था कि बलराज को गिरफ्तार करके जेल खाने में डाल देंगे. □

□ भीष्म साहनी

बरस और साल बीत गये. हमारे देश में उन दिनों बहुत कुछ घट रहा था. आये दिन् सत्याग्रह होते, बंगाल में दुर्भिक्ष फूटा, 'भारत छोड़ो' का आंदोलन हुआ, सड़कों पर गोलियां चलीं, बंबई में नाविकों का विद्रोह हुआ, देश में खूंरेजी हुई, फिर देश का बंटवारा हुआ और सारा वक्त वाङ्‌चू सारनाथ में ही बना रहा. वह अपने में संतुष्ट जान पड़ता था. कभी लिखता कि तंत्र ज्ञान का अध्ययन कर रहा है, कभी पता चलता कि कोई पुस्तक लिखने की योजना बना रहा है.

इसके बाद मेरी मुलाकात वाङ्‌चू से दिल्ली में हुई. यह उन दिनों की बात है, जब चीन के प्रधानमंत्री चू एन लाई भारत-यात्रा पर आनेवाले थे. वाङ्‌चू अचानक सड़क पर मुझे मिल गया और मैं उसे अपने घर ले आया. मुझे अच्छा लगा कि चीन के प्रधानमंत्री के आगमन पर वह सारनाथ से दिल्ली चला आया है. पर जब उसने मुझे बताया कि वह अपने अनुदान के सिलसिले में आया है और यहां पहुंचने पर उसे चू एन लाई के आगमन की सूचना मिली है, तो मुझे उसकी मनोवृत्ति पर अचंभा हुआ. उसका स्वभाव वैसा का वैसा ही था. पहले की तरह हौले-हौले अपनी हेढ़ दांत की मुस्कान मुस्कराता रहा. वैसा ही निश्चेष्ट, असंपृक्त. इस बीच उसने कोई पुस्तक अथवा लेखादि भी नहीं लिखे थे. मेरे पूछने पर इस काम में उसने कोई विशेष रुचि भी नहीं दिखाई. तंत्र ज्ञान की चर्चा करते समय भी वह बहुत चहका नहीं. दो-एक ग्रंथों के बारे में बताता रहा, जिनमें से वह कुछ टिप्पणियां लेता रहा था. अपने किसी लेख की भी चर्चा उसने की, जिस पर वह अभी काम कर रहा था. नीलम के साथ उसकी चिट्ठी-पत्री चलती रही, उसने बताया. हालांकि नीलम कब की ब्याही जा चुकी थी और दो बच्चों की मां बन चुकी थी. समय की गति के साथ हमारी मूल धारणाएं भले ही न बदलें पर उनके आग्रह में परिवर्तन होता रहता है. अपने अध्ययन आदि की भी उसने चर्चा की, वहां भी आग्रह और उत्सुकता में स्थिरता-सी आ गयी थी. पहले जैसी भावविह्वलता नहीं थी. बोधिसत्वों के पैरों पर अपने प्राण निछावर नहीं करता फिरता था, लेकिन अपने जीवन से संतुष्ट था. पहले की ही भांति थोड़ा खाता, थोड़ा पढ़ता, थोड़ा भ्रमण करता और थोड़ सोता था और दूर लड़कपन के झुटपुटे में किसी भावावेश में चुने गये अपने जीवन-पथ पर कछुए की चाल मजे से चलता आ रहा था.

खाना खाने के बाद हमारे बीच बहस छिड़ गयी, ''सामाजिक शक्तियों को समझे बिना तुम बौद्ध धर्म को भी कैसे समझ पाओगे? ज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र एक-दूसरे से जुड़ा है, जीवन से जुड़ा है. कोई चीज जीवन से अलग नहीं है. तुम जीवन से अलग होकर धर्म को भी कैसे समझ सकते हो?''

कभी वह मुस्कराता, कभी सिर हिलाता और सारा वक्त दार्शनिकों की तरह मेरे चेहरे की ओर देखता रहा. मुझे लग रहा था कि मेरे कहे का उस पर कोई असर नहीं हो रहा, कि चिकने घड़े पर मैं पानी उंडेले जा रहा हूं.

''हमारे देश में न सही, तुम अपने देश के जीवन में तो रुचि लो! इतना तो जानो-समझो कि वहां पर क्या हो रहा है!''

इस पर भी वह सिर हिलाता और मुस्कराता रहा. मैं जानता था कि एक भाई को छोड़कर चीन में उसका कोई नहीं है. १९२९ में वहां पर कोई राजनीतिक उथल-पुथल हुई थी, उसमें उसका गांव जला डाला गया था और सब सगे-संबंधी मर गये थे. ले-देकर उसका एक भाई बचा था और वह पेकिंग के निकट किसी गांव में रहता था. वर्षों से वाङ्‌चू का संपर्क उसके साथ टूट चुका था. वाङ्‌चू पहले अपने गांव के स्कूल में पढ़ता रहा था, बाद में पेकिंग के एक विद्यालय में पढ़ने लगा था. वहीं से वह प्रोफेसर ज्ञान के साथ भारत चला आया था.

''सुना, वाङ्‌चू भारत और चीन के बीच बंद दरवाजे अब खुल रहे हैं.

अब दोनों के बीच संपर्क स्थापित हो रहे हैं और इसका बड़ा महत्व है. अध्ययन का यही काम जो तुम अभी तक अलग-थलग करते रहे हो, वही अब तुम अपने देश के मान्य प्रतिनिधि के रूप में कर सकते हो. तुम्हारी सरकार तुम्हारे अनुदान का प्रबंध करेगी. अब तुम्हें अलग-थलग पड़े नहीं रहना पड़ेगा. तुम पंद्रह साल से अधिक समय से भारत में रह रहे हो, अंग्रेजी और हिंदी भाषाएं जानते हो, बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करते रहे हो, तुम दोनों देशों के सांस्कृतिक संपर्क में एक बहुमूल्य कड़ी बन सकते हो.''

उसकी आंखों में हल्की-सी चमक आयी. सचमुच उसे कुछ सुविधाएं मिल सकती थीं. क्यों न उनसे लाभ उठाया जाये? दोनों देशों के बीच पायी जानेवाली सद्भावना से वह भी प्रभावित हुआ था. उसने बताया कि कुछ ही दिनों पहले अनुदान की रकम लेने जब वह बनारस में गया तो सड़कों पर राह चलते लोग उससे गले मिल रहे थे. मैंने उसे मशवरा दिया कि कुछ समय के लिए जरूर अपने देश लौट जाये और वहां होने वाले विराट परिवर्तनों को देखे और समझे, कि सारनाथ में अलग-थलग बैठे रहने से उसे कुछ लाभ नहीं होगा, आदि-आदि.

वह सुनता रहा, सिर हिलाता और मुस्कराता रहा लेकिन मुझे कुछ मालूम नहीं हो पाया कि उस पर कोई असर हुआ है, या नहीं.

लगभग छह महीने बाद उसका पत्र आया कि वह चीन जा रहा है. मुझे बड़ा संतोष हुआ. अपने देश में जायेगा, तो धोबी के कुत्तेवाली उसकी स्थिति खत्म होगी, कहीं का होकर तो रहेगा. उसके जीवन में नयी स्फूर्ति आयेगी. उसने लिखा कि वह अपनी एक ट्रंक सारनाथ में छोड़े जा रहा है, जिसमें उसकी कुछ किताबें और शोध के कागज आदि रखे हैं, कि बरसों तक भारत में रह चुकने के बाद वह अपने को भारत का ही निवासी मानता है, कि वह शीघ्र ही लौट आयेगा और फिर अपना अध्ययन कार्य करने लगेगा. मैं मन-ही-मन हंस दिया, एक बार अपने देश में गया तो लौटकर यहां नहीं आने का.

चीन में वह लगभग दो वर्षों तक रहा. वहां से उसने मुझे पेकिंग के प्राचीन राजमहल का चित्र-कार्ड भेजा, दो-एक पत्र भी लिखे, पर उनसे उसकी मनस्थिति के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिली.

उन दिनों चीन में भी बड़े बलबले उठ रहे थे, बड़ा जोश था और उस जोश की लपेट में लगभग सभी लोग थे. जीवन नयी करवट ले रहा था. लोग काम करने जाते, तो टोलियां बनाकर, गाते हुए लाल ध्वज हाथ में उठाये हुये. वाङ्-चू सड़क के किनारे खड़ा उन्हें देखता रह जाता. अपने संकोची स्वभाव के कारण वह टोलियों के साथ गाते हुए जा तो नहीं सकता था, लेकिन उन्हें जाते देखकर हैरान-सा खड़ा रहता, मानो किसी दूसरी दुनिया में पहुंच गया हो.

उसे अपना भाई तो नहीं मिला, लेकिन एक पुराना अध्यापक, दूर-पास की उसकी मौसी और दो-एक परिचित मिल गये थे. वह अपने गांव गया. गांव में बहुत कुछ बदल गया था. स्टेशन से घर की ओर जाते हुए उसका एक सहयात्री उसे बताने लगा—वहां, उस पेड़ के नीचे, जमींदार के सभी कागज, सभी दस्तावेज जला डाले गये थे और जमींदार हाथ बांधे खड़ा रहा था.

वाङ्-चू ने बचपन में जमींदार का बड़ा घर देखा था. उसकी रंगीन खिड़कियां उसे अभी भी याद थीं. दो-एक बार जमींदार की बग्घी को भी कस्बे की सड़कों पर जाते देखा था. अब वह घर ग्राम-प्रशासन केंद्र बना हुआ था, और भी बहुत कुछ बदला था, पर यहां पर भी उसके लिए वैसी ही स्थिति थी, जैसी भारत में रही थी. उसके मन में उत्साह नहीं उठता था. दूसरों का उत्साह उसके दिल पर से फिसल-फिसल जाता था. वह यहां भी दर्शक ही बना घूमता था. शुरू-शुरू के दिनों में उसकी आवभगत

कलाहीनता के शिखर

भीष्म साहनी इकहरी कहानियां लिखने के लिए विख्यात हैं. इकहरी कहानियों में वर्णन की सपाटता और विस्तृत वाग्विलास मिलता है. भीष्म की वाङ् चू कथा के घटनाहीन फैलाव का एक सर्वोत्तम उदाहरण है. इसमें कथा केवल इतनी है कि कश्मीरी शहर में एक चीनी बौद्ध जिज्ञासु कथा वाचक के संपर्क में आता है और वह भारत की उथलपुथल भरी सक्रियता से विमुख केवल बौद्ध संग्रहालयों में रुचि लेता है. इससे वाचक की मित्र-मंडली सदैव वाङ् चू का मखौल उड़ाया करती है. वाचक की एक संबंधी किशोरी के प्रति वाङ् चू के मन में आसक्ति है किंतु किशोरी उसके प्रति एक खिलवाड़ भरी क्रूरता का प्रदर्शन करती है. वाङ् चू अपने देश लौटता है और फिर भारत चीन 'सीमा युद्ध' के दिनों लौट आता है. वह भारत की पुलिस द्वारा सताया जाता है. और अंत में मर जाता है.

इन विवरणों को पढ़ते हुए सहसा लू शुन की 'खुङ ई-ची' और 'आक्यू की सच्ची कहानी' याद आती है. इन दोनों कहानियों का जबर्दस्त प्रभाव 'वाङ् चू' कहानी पर देखा जा सकता है. बहस की जा सकती है कि क्या 'चरित्रों' के कथाफलक प्रभाव के रूप में ग्रहण किये जा सकते हैं या उसे कोई 'इतर' कर्म मानना चाहिए? बहस यह भी की जा सकती है कि इस कहानी का मौलिक कथन क्या है? क्या यह मात्र एक ऐसी त्रासदी है जो तमाम गुमनाम आदमियों के साथ घटती है या फिर यह एक धर्मांध की नियति है? मसलन लू शुन ने क्रांतिपूर्व मनुष्य की स्थिति का जो वर्णन किया था, भीष्म साहनी का भी वही प्रयोजन था कि वे स्वाधीनता पूर्व और स्वाधीनता के बाद के भारत की तस्वीर दिखाना चाहते थे.

कहने का अर्थ यह है कि भीष्म आखिर कश्मीर, दिल्ली, कलकत्ता के बहाने जिस आडंबर की रचना करते हैं क्या उसमें नये, उमंग से भरे ताजे भारत के दर्शन होते हैं या भीष्म यह कहना चाहते हैं कि प्रजातंत्र में पुलिस अधिक क्रूर, विवेकहीन और अमानवीय होती है. केवल वर्णन कर देने भर से क्रिया की उस तीव्रता को व्यक्त नहीं किया जा सकता. उसके कला का विवेक और कला की विशिष्ट दृष्टि अपेक्षित है.

भीष्म साहनी प्रगतिशील खेमे के कथाकार हैं, "आज जब विचारधाराओं के मस्तूल डूब रहे हैं तब क्या भीष्म या उन जैसे कथा लेखकों के लेखन का पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए? साहित्य और कलाओं की दुनिया में एक लंबे अर्से तक सृजनात्मकता की सच्ची कोशिशें विचारधारा और झूठ के ताबूतों में कैद रही हैं. 'वाङ् चू' जैसी कहानियों को लेकर उन सवालों से टकराना उचित रहेगा कि लोक संपदा किस रूप में संवेदनात्मक प्रारूप को प्रखर

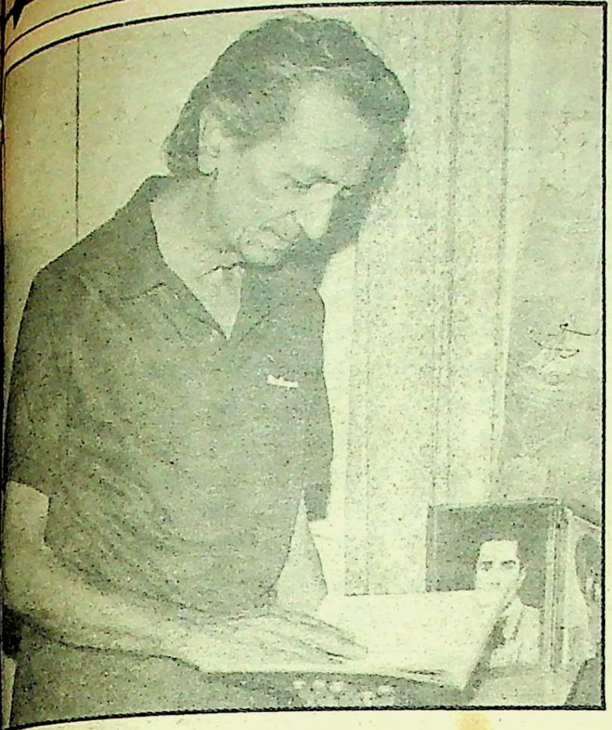

करती है. 'वाइ चू' में संभावना थी कि भीष्म शैव कश्मीर की लोक समृद्धि से एक तनाव पैदा करते और वाइ चू जैसे चरित्र अपनी बुद्धवादी विवेक दृष्टि का विस्तार करते, परंतु जैसा होता है, एक उठाया हुआ विचार या एक उठाया हुआ कथा फलक केवल वर्णनों के घटाटोप तक सीमित रह जाता है. लू शुन की 'आक्यू की सच्ची कहानी' में आक्यू का चरित्र क्रांतिपूर्व दुनिया का एक प्रतिनिधि है. वह अपनी सादगी में भी जटिल है. इसके उलट भीष्म ने एक चुप्पे, घुन्ने वाइ चू को जैसे प्रस्तुत किया है वह न दया का पात्र है न उसका अंत त्रास की प्रखरता उपजा पाता है.

भीष्म की 'वाइ चू' कलाहीनता का एक शिखर है. शिखर इसलिए कि भीष्म की कहानियां प्रगतिशील आलोचकों के लिए आदर्श हैं.—वे समूची भारतीय मनीषा को कलाहीनता के बेडौल खंडहर निर्मित करने के लिए आकर्षित करते हैं वरना क्या कोई एक समीक्षक उस सच्चाई को सामने न लाता जो वास्तविकता है. 'वाइ चू' की भाषा पर आप गौर करें तो पायेंगे कि वह रसहीन. वक्रताहीन वर्णन है. साम्यवादी लेखन का अनुकरण करने का ही यह परिणाम हो सकता है अन्यथा प्रगतिशील खेमे को कुछ ऐसे महत्वपूर्ण रचनाकारों को अपने साथ अवश्य जोड़ना चाहिए था जो सादगी में कला के अद्भुत शिखर कायम कर सकते हैं. यह बातें 'वाइ चू' के संदर्भ में इसलिए उठ खड़ी होती हैं कि किसी रचनाकार की पहचान के, एक धारा की प्रवृत्ति के संदर्भ में सपाट, साधारण रचनाओं की ही चर्चा न हो. 'वाइ चू' जैसी प्रभाववादी कहानियां यदि अपने प्रभावों के मूल का उल्लेख साथ रखें तो तुलनात्मक दृष्टि से दो संस्कृतियों, दो विश्व दृष्टियों की चर्चा हो सकती है.

मेरा विनम्र प्रस्ताव है—और 'पेरिस्त्रोयका' के दौर की आवश्यकता भी है कि एक सही प्रगतिकामी, मानवाभिमुखी रचनाधर्मिता को उसका अभिलक्ष्य प्राप्त हो. बहस यह नहीं कि रूप और वस्तु में चीजों को विभाजित किया जाये अपितु वस्तु के उन्नत रूप को स्वीकृति मिले. □

□ गंगाप्रसाद विमल

भी हुई. उसके पुराने अध्यापक की पहलकदमी पर उसे स्कूल में आमंत्रित किया गया. भारत-चीन सांस्कृतिक संबंधों की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में उसे सम्मानित किया गया. वहां वाङ्‌ चू देर तक लोगों को भारत के बारे में बताता रहा. लोगों ने तरह-तरह के सवाल पूछे, रीति-रिवाज के बारे में, तीर्थों, मेलों-पर्वों के बारे में. वाङ्चू केवल उन्हीं प्रश्नों का संतोषप्रद उत्तर दे पाता जिनके बारे में वह अपने अनुभव के आधार पर कुछ जानता था, लेकिन बहुत कुछ ऐसा था, जिसके बारे में भारत में रहते हुए भी वह कुछ नहीं जानता था.

कुछ दिनों बाद चीन में 'बड़ी छलांग' की मुहिम जोर पकड़ने लगी. उसके गांव में भी लोग लोहा इकट्ठा कर रहे थे. एक दिन सुबह उसे भी रद्दी लोहा बटोरने के लिए एक टोली के साथ भेज दिया गया था. एक दिन भर वह लोगों के साथ रहा था. एक नया उत्साह चारों ओर व्याप रहा था. एक-एक लोहे का टुकड़ा लोग बड़े गर्व से दिखा-दिखाकर ला रहे थे. उस लोहे को साझे ढेर पर पिघलाया जाने लगा. आग के इर्द-गिर्द बैठे लोग क्रांतिकारी गीत गा रहे थे. सभी लोग एक स्वर में सहगान में भाग ले रहे थे, अकेला वाङ चू मुंह बाए बैठा था.

चीन में रहते, धीरे-धीरे वातावरण में तनाव-सा आने लगा और एक झुटपुटा-सा घिरने लगा. एक रोज एक आदमी नीले रंग का कोट और नीले ही रंग की पतलून पहने उसके पास आया और उसे अपने साथ ग्राम-प्रशासन केंद्र में लिवा ले गया. रास्ते भर वह आदमी चुप बना रहा. केंद्र में पहुंचने पर उसने पाया कि एक बड़े-से कमरे में पांच व्यक्तियों का एक दल मेज के पीछे बैठा उसकी राह देख रहा है.

जब वाङ्‌ चू उनके सामने बैठ गया, तो वे बारी-बारी से उसके भारत निवास के बारे में सवाल पूछने लगे—''तुम भारत में कितने वर्षों तक रहे?''...''वहां क्या करते थे?''...''कहां-कहां घूमे?'' आदि-आदि. फिर बौद्ध धर्म के प्रति वाङ्‌ चू की जिज्ञासा के बारे में जानकर उनमें से एक व्यक्ति बोला, ''तुम क्या सोचते हो, बौद्ध धर्म का भौतिक आधार क्या है?''

सवाल वाङ चू की समझ में नहीं आया. उसने आंखें मिचमिचाईं.

''द्वंद्वात्मक भौतिकवादी की दृष्टि से तुम बौद्ध-धर्म को कैसे आंकते हो?''

सवाल फिर वाङ चू की समझ में नहीं आया, लेकिन उसने बुदाबुदाते हुए उत्तर दिया, ''मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में उसके सुख और शांति के लिए बौद्ध-धर्म का पथ-प्रदर्शन बहुत महत्वपूर्ण है. महाप्राण के उपदेश...''

और वाङ्‌ चू बौद्ध-धर्म के आठ उपदेशों की व्याख्या करने लगा. वह अपना कथन अभी समाप्त नहीं कर पाया था जब प्रधान की कुर्सी पर बैठे पैनी तिरछी आंखोंवाले एक व्यक्ति ने बात काटकर कहा, ''भारत की विदेश नीति के बारे में तुम क्या सोचते हो?''

वाङ्‌ चू मुस्कराया, अपनी डेढ़ दांत की मुस्कान, फिर बोला, ''आप भद्रजन इस संबंध में ज्यादा जानते हैं. मैं तो साधारण बौद्ध जिज्ञासु हूं. पर भारत बड़ा प्राचीन देश है, उसकी संस्कृति शांति और मानवीय सद्भावना की संस्कृति है...''

''नेहरू के बारे में तुम क्या सोचते हो?''

''नेहरू को मैंने तीन बार देखा है. एक बार तो उनसे बातें भी की हैं. उन पर कुछ-कुछ पश्चिमी विज्ञान का प्रभाव अधिक है, परंतु प्राचीन संस्कृति के वह भी बड़े प्रशंसक हैं.''

उसके उत्तर सुनते हुए कुछ सदस्य तो सिर हिलाने लगे, कुछ का चेहरा तमतमाने लगा. फिर तरह-तरह के पैने सवाल पूछे जाने लगे. उन्होंने पाया कि जहां तक तथ्यों का और भारत के वर्तमान जीवन का सवाल है, वाङ्‌ चू की जानकारी अधूरी और हास्यास्पद है.

''राजनीतिक दृष्टि से तो तुम शून्य हो! बौद्ध-धर्म की अवधारणाओं को भी समाज शास्त्री की दृष्टि से तुम आंक नहीं सकते. न जाने वहां बैठे क्या करते रहे हो! पर हम तुम्हारी मदद करेंगे.''

पूछताछ घंटों तक चलती रही. पार्टी अधिकारियों ने उसे हिंदी पढ़ाने का काम दे दिया, साथ ही पेकिंग के संग्रहालय में सप्ताह में दो दिन काम करने की भी इजाजत दे दी.

जब वाङ् चू पार्टी दफ्तर से लौटा, तो थका हुआ था. उसका सिर भन्ना रहा था. अपने देश में उसका दिल जम नहीं पाया था. आज वह और भी ज्यादा उखड़ा-उखड़ा महसूस कर रहा था. छप्पर के नीचे लेटा, तो उसे सहसा ही भारत की याद सताने लगी. उसे सारनाथ की अपनी कोठरी याद आयी जिसमें दिन-भर बैठा पोथी बांचा करता था. नीम का घना पेड़ याद आया, जिसके नीचे कभी-कभी सुस्ताया करता था. स्मृतियों की श्रृंखला लंबी होती गयी. सारनाथ की कैंटीन का रसोइया याद आया, जो सदा प्यार से मिलता था, सदा हाथ जोड़कर 'कहो भगवन' कहकर अभिवादन करता था.

एक बार वाङ् चू बीमार पड़ गया था, तो रोज कैंटीन का रसोइया अपने-आप उसकी कोठरी में चला आता था, ''मैं भी कहूं चीनी बाबू चाय पीने नहीं आये, दो दिन हो गये! पहले आते थे, तो दर्शन हो जाते थे, हमें खबर की होती भगवान तो हम डॉक्टर बाबू को बुला लाते... मैं भी कहूं, बात क्या है.''

फिर उसकी आंखों के सामने गंगा का तट आया, जिस पर वह घंटों घूमा करता था. फिर सहसा दृश्य बदल गया और कश्मीर की झील आंखों के सामने आ गयी, पीछे हिमाच्छादित पर्वत, फिर नीलम सामने आयी, उसकी खुली-खुली आंखें, मोतियों-सी झिलमिलाती दंतपंक्ति... उसका दिल बेचैन हो उठा.

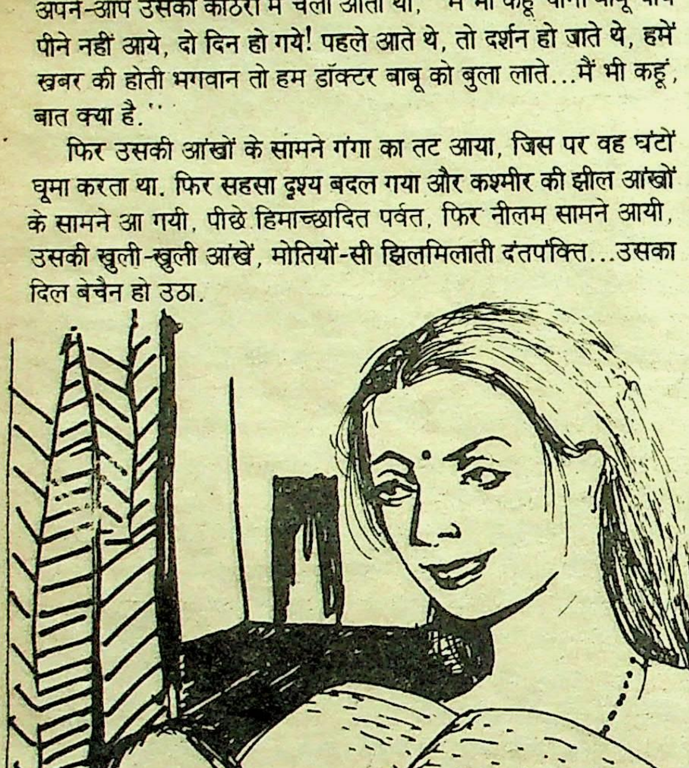

रेखांकन : हेमज्योतिका

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, भारत की याद उसे ज्यादा परेशान करने लगी. वह जल में से बाहर फेंकी हुई मछली की तरह तड़पने लगा. सारनाथ के विहार में सवाल-जवाब नहीं होते थे. जहां पड़े रहो, पड़े रहो. रहने के लिए कोठरी और भोजन का प्रबंध विहार की ओर से था, यहां पर नयी दृष्टि से धर्मग्रंथों को पढ़ने और समझने के लिए उसमें धैर्य नहीं था, जिज्ञासा भी नहीं थी. बरसों तक एक ही ढर्रे पर चलते रहने के कारण वह परिवर्तन से कतराता था. इस बैठक के बाद वह फिर से सकुचाने-सिमटने लगा था. कहीं-कहीं पर उसे भारत सरकार-विरोधी वाक्य भी सुनने को मिलते. सहसा वाङ् चू बेहद अकेला महसूस करने लगा और उसे लगा कि जिंदा रह पाने के लिए उसे अपने लड़कपन के उस दिवास्वप्न में फिर से लौट जाना होगा, जब वह बौद्ध भिक्षु बनकर भारत में विचरने की कल्पना किया करता था.

उसने सहसा भारत लौटने की ठान ली. लौटना आसान नहीं था. भारतीय दूतावास से तो वीसा मिलने में कठिनाई नहीं हुई, लेकिन चीन की सरकार ने बहुत-से एतराज उठाये. वाङ् चू की नागरिकता का सवाल था, और अनेक सवाल थे. पर भारत और चीन के संबंध अभी तक बहुत बिगड़े नहीं थे, इसलिए अंत में वाङ् चू को भारत लौटने की इजाजत मिल गयी. उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह भारत में ही अब जिंदगी के दिन काटेगा. बौद्ध भिक्षु बने रहना उसकी नियति थी.

जिस रोज वह कलकत्ता पहुंचा, उसी रोज सीमा पर चीनी और भारतीय सैनिकों के बीच मुठभेड़ हुई थी और दस भारतीय सैनिक मारे गये थे. उसने पाया कि लोग घूर-घूरकर उसकी ओर देख रहे हैं. वह स्टेशन के बाहर अभी निकला ही था, जब दो सिपाही आकर उसे पुलिस के दफ्तर में ले गये और वहां घंटे भर एक अधिकारी उसके पासपोर्ट और कागजों की छानबीन करता रहा.

''दो बरस पहले आप चीन गये थे. वहां जाने का क्या प्रयोजन था.''

''मैं बहुत बरस तक यहां अध्ययन करता रहा था, कुछ समय के लिए अपने देश जाना चाहता था.''

पुलिस-अधिकारी ने उसे सिर से पैर तक देखा. वाङ् चू आश्वस्त था और मुस्करा रहा था—वही टेढ़ी-सी मुस्कान.

''आप वहां पर क्या करते रहे?''

''वहां एक कम्यून में मैं खेती-बारी की टोली में काम करता था.''

''मगर आप तो कहते हैं कि आप बौद्ध ग्रंथ पढ़ते हैं?''

''हां, पेकिंग में मैं एक संस्था में हिंदी पढ़ाने लगा था और पेकिंग म्यूजियम में मुझे काम करने की इजाजत मिल गयी थी.''

''अगर इजाजत मिल गयी थी तो आप अपने देश से भाग क्यों आये?'' पुलिस अधिकारी ने गुस्से में कहा.

वाङ् चू क्य जवाब दे? क्या कहे?

''मैं कुछ समय के लिए ही वहां गया था, अब लौट आया हूं...''

पुलिस अधिकारी ने फिर से सिर से पांव तक उसे घूरकर देखा. उसकी आंखों में संशय उभर आया था. वाङ् चू अटपटा-सा महसूस करने लगा. भारत में पुलिस अधिकारियों के सामने खड़े होने का उसका पहला अनुभव था. उससे जमानती के लिए पूछा गया, तो उसने प्रोफेसर तान श्रान का नाम लिया, फिर गुरुदेव का, पर दोनों मर चुके थे. उसने सारनाथ की संस्था के मंत्री का नाम लिया, शांतिनिकेतन के पुराने दो-एक सहयोगियों के नाम लिए, जो उसे याद थे. सुपरिटेंडेंट ने सभी नाम और पते नोट कर लिए. उसके कपड़ों की तीन बार तलाशी ली गयी, उसकी डायरी को रख लिया गया, जिसमें उसने अनेक उद्धरण और टिप्पणियां लिख रखे थे और सुपरिटेंडेंट ने उसके नाम के आगे टिप्पणी लिख दी कि इस आदमी पर नजर रखने की जरूरत है.

रेल के डिब्बे में बैठा, तो मुसाफिर गोली-कांड की चर्चा कर रहे थे. उसे बैठते देख सब चुप हो गये और उसकी ओर घूरने लगे.

कुछ देर बाद जब मुसाफिरों ने देखा कि वह थोड़ी-बहुत बंगाली और हिंदी बोल लेता है, तो एक बंगाली बाबू उचककर खड़े हुए और हाथ झटक-झटककर कहने लगे, "या तो कहो कि तुम्हारे देशवालों ने विश्वासघात किया है, नहीं तो हमारे देश से निकल जाओ...निकल जाओ...निकल जाओ...!"

डेढ़ दांत की मुस्कान जाने कहां ओझल हो चुकी थी. उसकी जगह चेहरे पर त्रास उतर आया था. भयाकुल और मौन, वाङ् चू चुपचाप बैठा रहा. कहे भी तो क्या कहे? गोली कांड के बारे में जानकर उसे भी गहरा धक्का लगा था. उस झगड़े के कारण के बारे में कुछ भी स्पष्टतः मालूम नहीं था. और वह जानना चाहता भी नहीं था.

हां सारनाथ में पहुंचकर वह सचमुच भावविह्वल हो उठा. अपना थैला रिक्शा में रखे जब वह आश्रम के निकट पहुंचा, तो कैंटीन का रसोइया सचमुच लपककर बाहर निकल आ. "आ गये भगवन? आ गये मेरे चीनी बाबू ! बहुत दिनों बाद दर्शन दिये ! हम भी कहें, इतना अरसा हो गया, चीनी बाबू नहीं लौटे ! और कहिए, सब कुशल-मंगल है? आप यहां नहीं थे, हम कहें, जाने कब लौटेंगे! यहां पर थे तो दिन में दो बातें हो जाती थीं, भले आदमी के दर्शन हो जाते थे. इसमें बड़ा पुण्य होता है," और उसने हाथ बढ़ाकर थैला उठा लिया, "हम दें पैसे, चीनी बाबू?"

वाङ् चू को लगा, जैसे वह अपने घर पहुंच गया है.

"आपकी ट्रंक चीनी बाबू, हमारे पास रखी है. मंत्रीजी से हमने ले ली. आपकी कोठरी में एक दूसरे सज्जन रहने आये, तो हमने कहा, कोई चिंता नहीं, यह ट्रंक हमारे पास रख जाइए और चीनी बाबू, आप अपना लोटा बाहर ही भूल गये थे? हमने मंत्रीजी से कहा, यह लोटा चीनी बाबू का है, हम जानते हैं, हमारे पास छोड़ जाइए."

वाङ् चू का दिल भर आया. उसे लगा जैसे उसकी डांवाडोल जिंदगी में संतुलन आ गया है. डगमगाती जीवन-नौका फिर से स्थिर गति से चलने लगी है.

मंत्रीजी भी स्नेह से मिले, पुरानी जान-पहचान के आदमी थे. उन्होंने एक कोठरी भी खोलकर दे दी, परंतु अनुदान के बारे में कहा कि उसके लिए फिर से कोशिश करनी होगी. वाङ् चू ने फिर से कोठरी के बीचोंबीच चटाई बिछा ली, खिड़की के बाहर वही दृश्य फिर से उभर आया. खोया हुआ जीव अपने स्थान पर लौट आया.

तभी मुझे उसका पत्र मिला कि वह भारत लौट आया है और फिर से जमकर बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन करने लगा है. उसने यह भी लिखा कि उसे मासिक अनुदान के बारे में थोड़ी चिंता है और इस सिलसिले में मैं बनारस में यदि अमुक सज्जन को पत्र लिख दूं तो अनुदान मिलने में सहायता होगी.

पत्र पाकर मुझे खटका हुआ. कौन-सी मृगतृष्णा इसे फिर से वापस खींच लाये है? यह लौट क्यों आया है? अगर कुछ दिन और वहां बना रहता, तो अपने लोगों के बीच इसका मन लगने लगता. पर किसी की सनक का कोई इलाज नहीं. अब जो लौट आया है तो क्या चारा है. मैंने 'अमुक' जी को पत्र लिख दिया और वाङ् चू के अनुदान का छोटा-मोटा प्रबंध हो गया.

पर वाङ् चू के लौटने के दसेक दिन बाद वह एक दिन प्रातः चटाई पर बैठा एक ग्रंथ पढ़ रहा था और बार-बार पुलक रहा था, जब उसकी किताब पर किसी का साया पड़ा. उसने नजर उठाकर देखा, तो पुलिस का थानेदार खड़ा था, हाथ में एक पर्चा उठाए हुए था. वाङ् चू का दिल बैठ गया. अब यह कौन-सी नयी परेशानी उठनेवाली है? वाङ् चू को बनारस के बड़े पुलिस स्टेशन में बुलाया गया था. वाङ् चू का मन आशंका से भर उठा था.

तीन दिनों बाद वाङ् चू बनारस के पुलिस स्टेशन के बरामदे में बैठा था. उसी के साथ बेंच पर बड़ी उम्र का एक और चीनी व्यक्ति भी बैठा था, जो जूते बनाने का काम करता था. आखिर बुलावा आया और वाङ् चू चिक उठाकर बड़े अधिकारी की मेज के सामने जा खड़ा हुआ.

"तुम चीन से कब लौटे?"

वाङ् चू ने बता दिया.

"कलकत्ता में तुमने अपने बयान में कहा कि तुम शांतिनिकेतन जा रहे हो, फिर तुम यहां क्यों चले आये? पुलिस को पता लगाने में बड़ी परेशानी उठानी पड़ी है."

"मैंने दोनों स्थानों के बारे में कहा था. शांतिनिकेतन तो मैं केवल दो दिन के लिए जाना चाहता था."

"तुम चीन से क्यों लौट आये?"

"मैं भारत में रहना चाहता हूं...!" उसने पहले का जवाब दोहरा दिया.

"जो लौट आना था तो गये क्यों थे?"

यह सवाल वह बहुत बार पहले भी सुन चुका था. जवाब में बौद्ध ग्रंथों का हवाला देने के अतिरिक्त उसे कोई और उत्तर नहीं सूझ पाता था

बहुत लंबी इंटरव्यू नहीं हुई. वाङ् चू को हिदायत दी गयी कि हर महीने के पहले सोमवार को बनारस के बड़े पुलिस स्टेशन में उसे आना होगा और अपनी हाजिरी लिखानी होगी.

वाङ् चू बाहर आ गया, पर खिन्न-सा महसूस करने लगा. महीने में एक बार आना कोई बड़ी बात नहीं थी, लेकिन वह उसके समतल जीवन में बाधा थी, व्यवधान था.

वाङ् चू मन-ही-मन इतना खिन्न महसूस कर रहा था कि बनारस से लौटने के बाद कोठरी में जाने की बजाय वह सबसे पहले उस नीरव पुण्य-स्थान पर जाकर बैठ गया, जहां शताब्दियों पहले महाप्राण ने अपना पहला प्रवचन किया था, और देर तक बैठा मनन करता रहा. बहुत देर बाद उसका मन फिर से ठिकाने पर आने लगा और दिल में फिर से भावना की तरंगें उठने लगीं.

पर वाङ् चू को चैन नसीब नहीं हुआ. कुछ ही दिन बाद सहसा चीन और भारत के बीच जंग छिड़ गयी. देश भर में जैसे तूफान उठ खड़ा हुआ. उसी रोज शाम को कुछ पुलिस अधिकारी एक जीप में आये और वाङ् चू को हिरासत में लेकर बनारस चले गये. सरकार यह न करती तो और क्या करती? शासन करनेवालों को इतनी फुरसत कहां कि संकट के समय संवेदना और सद्भावना के साथ दुश्मन के एक-एक नागरिक की स्थिति की जांच करते फिरें.

दो दिनों तक चीनियों को पुलिस स्टेशन की एक कोठरी में रखा गया. दोनों के बीच किसी बात में भी समानता नहीं थी. जूते बनानेवाला चीनी सारा वक्त सिगरेट फूंकता रहता और घुटनों पर कोहनियां टिकाए बड़बड़ाता रहता, जबकि वाङ्-चू उद्भ्रांत और निढाल-सा दीवार के साथ पीठ लगाए बैठा शून्य में देखता रहता.

जिस समय वाङ् चू अपनी स्थिति को समझने की कोशिश कर रहा था, उसी समय दो-तीन कमरे छोड़कर पुलिस सुपरिटेंडेंट की मेज पर उसकी छोटी-सी पोटली की तलाशी ली जा रही थी. उसकी गैर मौजूदगी में पुलिस के सिपाही कोठरी में से उसकी ट्रंक उठा लाये थे. सुपरिटेंडेंट के सामने कागजों का पुलिंदा रखा था, जिस पर कहीं पाली में तो कहीं संस्कृत भाषा में उद्धरण लिखे थे, लेकिन बहुत-सा हिस्सा चीनी भाषा में था. साहब कुछ देर तक तो कागजों को उलटते-पलटते रहे, रोशनी के

सामने रखकर उनमें लिखी किसी गुप्त भाषा को ढूंढते भी रहे, अंत में उन्होंने हुक्म दिया कि कागजों के पुलिंदे को बांधकर दिल्ली के अधिकारियों के पास भेज दिया जाए, क्योंकि बनारस में कोई आदमी चीनी भाषा नहीं जानता था.

पांचवें दिन लड़ाई बंद हो गयी, लेकिन वाङ्-चू को सारनाथ लौटने की इजाजत एक महीने के बाद मिली. चलते समय जब उसे उसकी ट्रंक दी गयी और उसने उसे खोलकर देखा, तो सकते में आ गया. उसके कागज उसमें नहीं थे, जिस पर वह बरसों से अपनी टिप्पणियां और लेखादि लिखता रहा था और जो एक तरह से उसके सर्वस्व थे. पुलिस अधिकारी के कहने पर कि उन्हें दिल्ली भेज दिया गया है, वह सिर से पैर तक कांप उठा था.

''वे मेरे कागज आप मुझे दे दीजिए. उन पर मैंने बहुत कुछ लिखा है, वे बहुत जरूरी हैं.''

इस पर अधिकारी रुखाई से बोला, ''मुझे उन कागजों का क्या करना है, आपके हैं, आपको मिल जायेंगे,'' और उसने वाङ्-चू को चलता किया. वाङ्-चू अपनी कोठरी में लौट आया, अपने कागजों के बिना वह अधमरा-सा हो रहा था. न पढ़ने में मन लगता, न कागजों पर नये उद्धरण उतारने में और फिर उस पर कड़ी निगरानी रखी जाने लगी थी. खिड़की से थोड़ा हटकर नीम के पेड़ के नीचे एक आदमी रोज बैठा नजर आने लगा. डंडा हाथ में लिए वह कभी एक करवट बैठता, कभी दूसरी करवट. कभी उठकर डोलने लगता, कभी एक कुंए के जगत पर जा बैठता, कभी कैंटीन की बेंच पर आ बैठता, कभी गेट पर जा खड़ा होता. इसके अतिरिक्त अब वाङ्-चू को महीने में एक बार के स्थान पर सप्ताह में एक बार बनारस में हाजिरी लगवाने जाना पड़ता था.

तभी मुझे वाङ्-चू की चिट्ठी मिली. सारा ब्यौरा देने के बाद उसने लिखा कि बौद्ध विहार का मंत्री बदल गया है और नये मंत्री को चीन से नफरत है और वाङ्-चू को डर है कि अनुदान बंद हो जाएगा. दूसरे, कि मैं जैसे भी हो, उसके कागजों को बचा लूं. जैसे भी बन पड़े, उन्हें पुलिस के हाथों से निकलवाकर सारनाथ में उसके पास भिजवा दूं. और अगर बनारस के पुलिस स्टेशन में प्रति सप्ताह पेश होने की बजाय उसे महीने में एक बार जाना पड़े, तो उसके लिए सुविधाजनक होगा, क्योंकि इस तरह महीने में लगभग दस रुपये आने-जाने में लग जाते हैं और फिर काम में मन ही नहीं लगता, सिर पर तलवार टंगी रहती है.

वाङ्-चू ने पत्र तो लिख दिया, लेकिन उसने यह नहीं सोचा कि मुझ जैसे आदमी से यह काम नहीं हो पायेगा. हमारे यहां कोई काम बिना जान-पहचान और सिफारिश के नहीं हो सकता. और मेरे परिचय का बड़े-से-बड़ा आदमी मेरे कालेज का प्रिंसीपल था. फिर भी मैं कुछेक संसद-सदस्यों के पास गया, एक ने दूसरे की ओर भेजा, दूसरे ने तीसरे की ओर. मैं भटक-भटककर लौट आया. आश्वासन तो बहुत मिले, पर सब यही पूछते, ''वह चीन जो गया था, वहां से लौट क्यों आया?'' या फिर पूछते, ''पिछले दस साल से अध्ययन ही कर रहा है?''

पर जब मैं उसकी पांडुलिपियों का जिक्र करता, तो सभी यही कहते, ''हां, यह तो कठिन नहीं होना चहिए.'' और सामने रखे कागज पर कुछ नोट कर लेते. इस तरह के आश्वासन मुझे बहुत मिले, सभी सामने रखे कागज पर मेरा आग्रह नोट कर लेते. पर सरकारी काम के रास्ते चक्रव्यूह के रास्तों के समान होते हैं और हर मोड़ पर कोई न कोई आदमी तुम्हें तुम्हारी हैसियत का बोध कराता रहता है. मैंने जवाब में उसे अपनी कोशिशों का पूरा ब्यौरा दिया. यह भी आश्वासन दिया कि मैं फिर से लोगों से मिलूंगा, पर साथ ही मैंने यह भी सुझाव दिया कि उसके लिए यही बेहतर है.

खत से उसके दिल की क्या प्रतिक्रिया हुई, मैं नहीं जानता. उसने क्या सोचा होगा? पर उन तनाव के दिनों में जब मुझे स्वयं चीन के व्यवहार पर गुस्सा आ रहा था, मैं वाङ्-चू की स्थिति को बहुत सहानुभूति के साथ नहीं देख सकता था.

उसका फिर एक खत आया. उसमें चीन लौट जाने का कोई जिक्र नहीं था. उसमें केवल अनुदान की चर्चा की गयी थी. अनुदान की रकम अभी भी चालीस रुपये ही थी, लेकिन उसे पूर्व सूचना दे दी गयी थी कि साल खत्म होने पर उस पर फिर से विचार किया जाएगा कि वह मिलती रहेगी या बंद कर दी जाएगी.

लगभग साल-भर बाद वाङ्-चू को एक पुर्जा मिला कि तुम्हारे कागज वापस किए जा सकते हैं, कि तुम पुलिस स्टेशन आकर उन्हें ले जा सकते हो. उन दिनों वह बीमार पड़ा था, लेकिन बीमारी की हालत में भी वह गिरता-पड़ता बनारस पहुंचा. लेकिन उसके हाथ एक तिहाई कागज लगे. पोटली अभी भी अधखुली थी. वाङ्-चू को पहले तो यकीन नहीं आया, फिर उसका चेहरा जर्द पड़ गया और हाथ-पैर कांपने लगे. इस पर थानेदार रुखाई के साथ बोला, ''हम कुछ नहीं जानते. इन्हें उठाओ और यहां से ले जाओ, वरना इधर लिख दो कि हम लेने से इंकार करते हैं.''

कांपती टांगों से वाङ्-चू पुलिंदा बगल में दवाये लौट आया. कागजों में केवल एक पूरा निबंध और कुछ टिप्पणियां बची थीं.

उसी दिन से वाङ्-चू की आंखों के सामने धूल उड़ने लगी थी.

वाङ्-चू की मौत की खबर मुझे महीने भर बाद मिली, वह भी बौद्ध विहार के मंत्री की ओर से कि मरने से पहले वाङ्-चू ने आग्रह किया था कि उसकी छोटी-सी ट्रंक और गिनी-चुनी किताबें मुझे पहुंचा दी जायें.

उम्र के इस हिस्से में पहुंचकर इंसान बुरी खबरें सुनने का आदी हो जाता है और वे दिल पर गहरा आघात नहीं करतीं.

मैं फौरन तो सारनाथ नहीं जा पाया, जाने में कोई तुक भी नहीं थी, क्योंकि वहां वाङ्-चू का कौन बैठा था. पर कुछ दिनों बाद मौका मिलने पर मैं गया. मंत्रीजी ने वाङ्-चू के प्रति सद्भावना के शब्द कहे—बड़ा नेकदिल आदमी था, सच्चे अर्थों में बौद्ध भिक्षु था, आदि-आदि. मेरे दस्तखत लेकर उन्होंने ट्रंक मेरे हवाले की. ट्रंक में वाङ्-चू के कपड़े थे, वह फटा-पुराना चोगा था, जो किसी जमाने में उसने श्रीनगर में खरीदा था. छोटा-सा कामदार चमड़े का पैड था, जो नीलम ने उसे उपहार स्वरूप दिया था. तीन-चार किताबें थीं, पाली की और संस्कृत की. चिट्ठियां थीं, जिनमें कुछ चिट्ठियां मेरी, और कुछ नीलम की रही होंगी, कुछ और लोगों की.

ट्रंक उठाए मैं बाहर की ओर जा रहा था, जब मुझे अपने पीछे कदमों की आहट मिली. मैंने मुड़कर देखा, कैंटीन का रसोइया भागता चला आ रहा था. अपने पत्रों में अक्सर वाङ्-चू उसका जिक्र किया करता था.

''बाबू आपकी बहुत याद करते थे. मेरे साथ आपकी चर्चा बहुत करते थे. बहुत भले आदमी थे...''

और उसकी आंखें डबडबा आयीं. सारे संसार में शायद यही अकेला जीव था, जिसने वाङ्-चू की मौत पर दो आंसू बहाये थे.

''बड़ी भोली तबियत थी. बेचारे को पुलिसवालों ने बहुत परेशान किया शुरू-शुरू में तो चौबीस घंटे की निगरानी रहती थी. मैं उस हवलदार से कहूं, भैया, तू क्यों इस बेचारे को परेशान करता है! वह कहे, मैं तो ड्यूटी कर रहा हूं...!''

मैं ट्रंक और कागजों का पुलिंदा ले आया हूं. इस पुलिंदे का क्या करूं? कभी सोचता हूं, इसे छपवा डालूं. पर अधूरी पांडुलिपि को कौन छापेगा? पत्नी रोज बिगड़ती है कि मैं घर में कचरा भरता हूं. दो-तीन बार वह फेंकने की धमकी भी दे चुकी है, पर मैं इसे छिपाता रहता हूं. कभी किसी तख्ते पर रख देता हूं, कभी पलंग के नीचे छिपा देता हूं. पर मैं जानता हूं, किसी दिन ये भी गली में फेंक दिये जाएंगे. □

☐ से.रा. यात्री

भीष्म साहनी : मेरी नजर के आईने में

कमलेश्वरजी ने १९६५ में 'नई कहानियां' से एकाएक त्यागपत्र दे दिया [भीतर की स्थिति का मुझे पता नहीं चल पाया]. लेखकों के हल्के में इससे खासी अफरा-तफरी मच गयी. इतनी प्रतिष्ठित और 'कहानी' विधा को जबरदस्त मंच प्रदान करनेवाली पत्रिका सहसा यों अकाल मौत मर जाए, यह कोई नहीं चाहता था. इस पत्रिका में जहां विभिन्न भाषाओं के स्थापित लेखक सहयोग कर रहे थे वहीं नये लेखकों के लिए यह प्रवक्ता का काम कर रही थी. कहानी को उस दौर में केंद्रीय विधा का दर्जा 'नई कहानियां' ने ही दिलाया था.

मैं उन दिनों इलाहाबाद में था. अश्कजी के बंगले पर दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर के अलावा कई नये कहानीकार मौजूद थे. इन सभी न अपनी पहचान 'नई कहानियां' से ही बनायी थी और दिल से चाहते थे कि पत्रिका का प्रकाशन बंद न हो.

कमलेश्वर के अलावा राजेंद्र यादव और राकेश ही इस पत्रिका के संपादक हो सकते थे. वे दोनों दिल्ली में ही थे पर 'नई कहानियां' की यह 'त्रयी' अपनी ख्याति के शिखर पर थी और कमलेश्वर के त्यागपत्र देन के बाद यह किसी तरह संभव नहीं था कि राकेश या यादव इस पत्रिका का संपादक होना स्वीकार कर लेन.

जब तरह-तरह के अनुमान लगाये जा रहे थ तो एक दिन सुनन में आया कि तभी रूस स लौटे भीष्म साहनी 'नई कहानियां' के संपादक हो गय हैं.

शोर-शराब और चर्चा से दूर रहनेवाले भीष्मजी तब तक बहुत अच्छी कहानियां लिख चुके थ और काफी पहले 'कहानी' के विशेषांक में छपी उनकी कहानी 'चीफ की दावत' ने उन्हें ख्यात लेखक का स्तर प्रदान कर दिया था.

यह वह समय था जब 'नई कहानी' की त्रयी के अलावा, रेणु, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, अमरकांत और मार्कंडेय कहानी लेखकों के रूप में स्वीकार हो चुके थे. पर यह आश्चर्य की बात है कि 'चीफ की दावत' के लेखक की 'नई कहानी' के शोर-शराबे में कोई खास चर्चा नहीं होती थी. उसी दौरान मेरी अश्कजी से भीष्मजी के बारे में बातें हुई थीं तो उन्होंने भीष्मजी की एक कहानी का उल्लेख करते हुए कहा था—"भीष्म अच्छा लिखने लगा है." उनकी इस टिप्पणी से मुझे यही लगा था कि भीष्म साहनी थोड़ी उम्र के ही लेखक होंग. उनके फोटो देखकर भी यही लगता था, भोला-सा हल्का मुस्कराता चेहरा. बच्चों जैसी कौतुक से दीप्त आंखें.

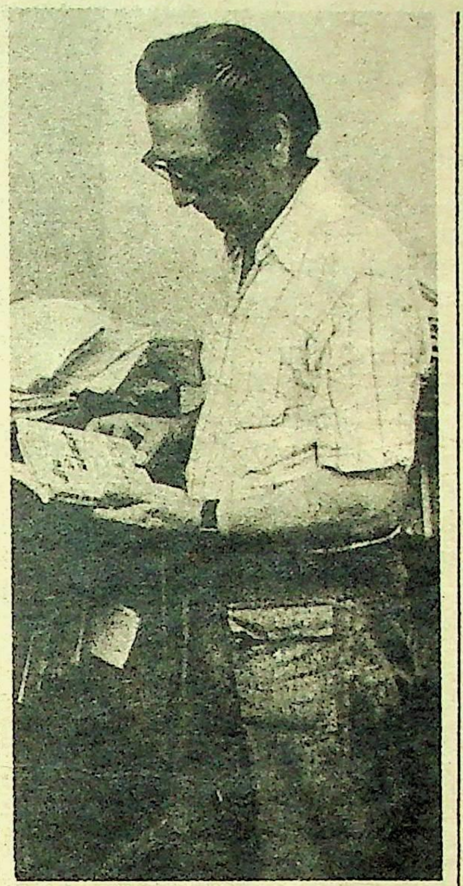

तब तक भीष्मजी का कोई उपन्यास नहीं छपा था. संभवत: कहानी संग्रह भी किसी प्रतिष्ठित संस्थान से प्रकाशित नहीं हुआ था. जहां तक मुझे याद है उनका पहला कहानी संग्रह 'भटकती राख' नेहरूजी की मृत्यु के बाद ही छपा था, 'तमस' तो और भी देर बाद प्रकाशित हुआ था.

मेरा ख्याल था भीष्मजी अधिक से अधिक पैंतीस वर्ष के होंगें क्योंकि उनके बारे में जब भी कहीं बातें होती थीं उन्हें अधिक उम्र का नहीं समझा जाता था. 'नई कहानी' वाले सभी पैंतीस या इससे नीचे की ही उम्र वाले लोग थे.

तभी एक दिन 'राजकमल प्रकाशन' में मेरी उनसे भेंट हो गयी. वह 'नई कहानियां' के संपादन के सिलसिले में 'राजकमल प्रकाशन' के एक केबिन में बैठते थे. पूरा समय वह संपादन को नहीं देते थे. दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी कालिज में अंग्रेजी के प्रोफेसर भी थे. मैंने उन्हें अत्यंत कोमल, शालीन और मितभाषी पाया. चेहरे पर एक खास तरह की सौम्यता और आंखों में व्यंग्यमिश्रित कारुण्य का भाव उभरता लगता था. उम्र का एकाएक अनुमान नहीं हो पाता था पर वह पकेपन की सीमा में दाखिल हो चुके थे. मेरे लिए यह अकल्पनीय था कि उस दौर के सभी महत्वपूर्ण कहानी लेखकों की टक्कर की कहानियां लिखनेवाला और उन सबसे आयु में भी काफी सीनियर लेखक चर्चा के केंद्र में नहीं था. नामवर सिंह जो 'नई कहानी' के प्रवक्ता बने हुए थे, उन्होंने भी भीष्मजी का जिक्र उल्लेखनीय रूप में कहीं नहीं किया था. हैरानी की बात यह थी कि उनकी एक से एक अच्छी कहानी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही थीं. तब भीष्मजी पचास वर्ष के थे. भला हो राजकमल प्रकाशन का जिसने उनकी पुस्तकों के फ्लैप पर उनकी उम्र का कहीं उल्लेख कर दिया था.

भीष्मजी ने 'नई कहानियां' का संपादन बहुत देर तक नहीं किया क्योंकि बाद में वह इलाहाबाद से प्रकाशित होने लगी थी—पर थोड़े ही समय में कई चर्चित और खासा वाद-विवाद खड़ा करनेवाली कहानियां उन्होंने छाप दी थीं. मुझे याद है कृष्णा सोबती की कहानी 'यारों के यार' पर तो खूब ही चख-चख हुई थी.

मैं 'नई कहानियां' के संपादन के दौरान उनसे कई बार मिला और उन्हें हमेशा प्रस्तुत ही पाया. नये लेखकों से मिलने-जुलने और बातें करने में वह परम उत्साही लगते थे, बाद में उनके ईस्ट पटेल नगर के पते पर मैं उन्हें कभी-कभी पत्र भी लिखने लगा. वह कार्ड पर उत्तर देते थे और अविलंब लिखते थे.

बरस-दो बरस के पत्राचार के बाद मैं उन्हें सूचित किये बिना ही उनसे मिलने पहुंचने लगा. उनके पास जब भी गया वह हमेशा घर पर मिले और कभी यह आभास नहीं मिला कि मैं वहां पहुंचनेवाला एक अचर्चित व्यक्ति हूं या उन्हें मेरे कारण अपना कोई काम बंद करना पड़ रहा है. कई बार शीलाजी भी होती थीं. उनका बेटा तब तक रूस नहीं गया था. वह भी घर पर मिल जाता था, पर वह बहुत चुप्पा और अपनी पढ़ाई में मस्त रहनेवाला जीव था. हम दोनों के साथ कभी नहीं बैठता था.

उनके घर जाकर मुझे हमेशा यही अनुभव हुआ जैसे वह मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे. दरवाजा खोलते समय उनके चेहरे पर आया उल्लास

बलराज साहनी का पत्र भीष्म साहनी को

बंबई २७.७.७१

मेरे प्यारे निकड़े वीर,

अब तक तुम ने मेरा 'रूसी सफरनामा' जरूर पढ़ लिया होगा, अगर नहीं तो, मैं वारी जाऊं, देर नहीं करना, क्योंकि जितनी जल्दी किताब छप जाये उतना ही अच्छा. इसके अनुवाद का सारा खर्च मेरे जिम्मे है. तुम्हें कैसी लगी? छोटी-मोटी गलतियां तो वहीं पर ठीक कर सकते हो, और बड़ी भूलों के बारे में पुस्तक की भूमिका में लिख सकते हो, अधिक पाद—टिप्पणियां देने से पाठक के प्रवाह में रुकावट आती है, ऐसा मैं समझता हूं, तुम्हारी चुप्पी नाना प्रकार के मानसिक तनावों का हिस्सा न बन जाए. जैसे मेरी बंबई की जिंदगी बन चुकी है. जो खाली वक्त मिलता है उसे नाटक की उधेड़बुन में लगा देता हूं जिसकी मंझदार में डूबे हुए मुझे कोई कूल-किनारा नजर नहीं आ रहा है. मेरे लिये दुआ करना. शबनम अपने नये घर और परिवार में लीन होती जा रही है. उसकी सास और देवर भी उसके साथ हैं. कुछ दिन पहले देवर का एपेंडिक्स का आपरेशन हुआ था, अब ठीक है. आज रोज शबनम ने टेलिफोन पर बताया कि एक छोटा-सा आपरेशन अविनाश को भी करवाना है, तोष आज ही पता करने जायेगी. बेटियां पराया धन होती हैं, इस उक्ति की सच्चाई तुम्हें कल्पना का ब्याह करने के बाद महसूस होगी.

बाकी सब ठीक-ठाक है. कारोबार चल रहा है जिसमें मेरा तनिक भी मन नहीं लगता. इसी आस और इंतजार में बैठा हूं कि परीक्षित और सनोबर अपने पैरों पर खड़े हो जाएं तो मैं अपनी 'खड़ताल' हाथ में लूं, तंबूरा तुम्हें पकड़ा दूंगा. पर तुम अपने संबंध में तो कभी कुछ लिखते ही नहीं, खैर, पोस्टकार्ड ही डाल देना, पर, जरूर. तुम्हें पता चल गया होगा कि मेरा नेरोबी जाने का प्रोग्राम रद्द हो गया था और सोफिया भी मैं नहीं जा रहा. वरुण को बहुत-बहुत प्यार, शीला को 'गलवकड़ी'.

(मूल गुरुमुखी से अनुवाद : भीष्म साहनी)

किसी भी मिलने आनेवाले को गहरी स्वस्ति प्रदान करनेवाला होता था. उनके ड्राइंग रूम में बैठकर सारी दोपहर बातें करता रहता था. कभी-कभी हम दोनों निकट ही तंदूर पर रोटियां बनवाने चले जाते थे. खाना खा चुकने के बाद जो बातों का सिलसिला शुरू होता था वह शाम तक अविराम और निर्विघ्न चलता रहता था. यह एक आश्चर्यजनक बात है कि अपने बीसों बार वहां होने की अवधि में मैंने एक बार भी टेलीफोन की घंटी बजते नहीं सुनी. क्या महानगर में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जो उन्हें टेलीफोन पर कुछ कहना-सुनना चाहता हो. यहां तक कि मृत्यु से पूर्व एक बार बलराज साहनी भी वहां आये थे और हम तीनों नवंबर की दोपहर भर बातें करते रहे—शाम होने लगी पर टेलीफोन की घंटी एक बार भी नहीं बजी. क्या यह संभव हो सकता है कि बलराजजी के दिल्ली में होने का किसी को पता न हो और उतने ख्यात कलाकार से एक भी व्यक्ति न मिलना चाहे!

शीलाजी तब तक अपने कार्यालय से नहीं लौटी थीं. सो भीष्मजी स्वयं चाय अथवा काफी बनाकर ट्रे उठाये ड्राइंग रूम में आये. उनके इस कार्य के पीछे कोई हीनता या मनोग्रंथि नहीं थी. वह मजे में किसी नौकर से यह काम करवा सकते थे पर उन्होंने अपने छोटे-बड़े सभी काम हर परिस्थिति में स्वयं ही निपटाना पसंद किया है.

वह स्वयं से मिलने आनेवाले व्यक्ति को कभी बोझ की तरह नहीं लेते. एक जाड़े की दोपहर ज्यों ही खाना खत्म हुआ वह अपनी पत्नी से बोले चलो यात्री जी को 'बुद्धा पार्क' घुमा लाते हैं. उन्होंने गाड़ी निकाली और पति-पत्नी मुझे साथ लेकर घर से निकल गये. हम लोग कई घंटे तक वहां पार्क में बैठकर आत्मीयता से बतियाते रहे.

मैं कस्बे में रहनेवाला आदमी था और खुले मन से लोगों से मिलता-जुलता था, इसलिए सभी को, मुक्त और खाली समझता था. आज सोचता हूं तो एक संकोच मुझे घेर लेता है और मैं उन दिनों की तरह उन पर धावा बोलने की बात सोच नहीं पाता. लगता है दिल्ली के लेखक अथवा परिचित, उनसे मिलना-जुलना या फोन करना इसी वजह से टालते होंगे...कि वे सरल मन भीष्म को तंग करना पसंद नहीं करते होंगे. उनके लिखने-पढ़ने में बाधक नहीं बनना चाहते होंगे.

भीष्म साहनी की रचनात्मकता का अंत:प्रवाह किसी प्रकार का व्यवधान सहन नहीं

कर पाता. वह इस संबंध में किसी को कुछ नहीं बतलाते पर वह भीतर से भी बहुत छुई-मुई हैं यह कम लोग ही जानते होंगे. लिखने में उन्हें जबरदस्त एकांतिकता चाहिए. इस मामले में वह अपने अग्रज स्व. बलराज साहनी से एकदम अलग हैं. बलराजजी को शूटिंग के दौरान जब भी थोड़ा-सा वक्त मिल जाता था वह अपने टाइप राइटर पर कुछ न कुछ टाइप कर ले जाते थे, पर भीष्म जी इस तरह की भीड़भाड़ के बीच कुछ नहीं लिख सकते. मैंने एक बार उनकी पत्नी से उनके लिखने की स्थिति के बारे में पूछा था तो उन्होंने कहा था, ''भीष्म जी जब लिखते हैं तो फिर उन्हें कुछ नहीं सुहाता. उनके लिखते में कोई आ जाये तो वह भीतर से बहुत उद्विग्न हो उठते हैं. कहते कुछ नहीं हैं, पर इतने उखड़ जाते हैं कि फिर बात भी नहीं कर पाते—चुप हो जाते हैं.''

भीष्म जी की मानसिक संरचना सूक्ष्म तंतुओं से बनी है और वहां किसी तरह के हल्केपन की गुजर नहीं है. यही कारण है कि उनमें गहरी संलग्नता का भाव है और वह आज की आपाधापी से बहुत दूर हैं. कितनी भी व्यस्तता के बावजूद उन्होंने चलताऊ लेखन नहीं किया बल्कि सच पूछा जाय तो वह एक मात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने बहुत कम उम्र में अच्छा लिखना शुरू किया और देर से चर्चित हुए. उनकी रचनाएं उनके विकास क्रम के सोपान हैं और वह आज भी रचनारत हैं. प्रगतिशील लेखक संघ के महामंत्री रहे हों या आज 'एफ्रो एशियन राइटर्स एसोशिएशन' के जनरल सेक्रेटरी हों—पर उनका लेखन बंद नहीं हो पाया है.

भीष्म साहनी के सामने उनके बड़े भाई एक बड़ी लकीर की तरह थे. पर उन्होंने कभी संबंधों का इस्तेमाल नहीं किया. वह चाहते तो कई दशक पहले फिल्मी दुनिया में जा सकते थे पर उन्होंने तो अपने घर में बलराजजी के वे फोटो भी नहीं टांगे जिन पर आने-जानेवालों की दृष्टि जाए और वह भीष्मजी को बलराजजी की वजह से खास समझकर महत्व दें. अनेक वर्षों में शायद ही कभी बलराज साहनी के बारे में उनसे बातें हुई हों. वह उन व्यक्तियों में नहीं है जो दूसरों के प्रभामंडल में जीते हों. वह फिल्म में भी गये. 'मोहन जोशी हाजिर हों' में उन्हें खूब सफलता मिली. 'तमस' की भी बेतहाशा चर्चा हुई. उन्होंने 'तमस' में एक भूमिका भी निभाई. पर यह सब करने के लिए उन्होंने आत्मनिर्भरता का उदाहरण ही सामने रखा. यह सब बलराजजी की मृत्यु के पंद्रह साल बाद हुआ.

कई बार मेरे मन में यह सवाल पैदा हुआ है कि क्या भीष्मजी एक संत हैं जो लाभालाभ की तरफ से निरपेक्ष हैं. उन्हें इतनी दुनियावी सफलता और लेखकीय प्रतिष्ठा क्यां किसी तरह के समझौतों के बिना ही मिल गयी है. वह एक अंतर्राष्ट्रीय लेखकीय संगठन में महत्वपूर्ण पद पर हैं. एक बड़े प्रकाशन संस्थान से ही उनकी लगभग सारी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं. उन्हें इधर पुरस्कार भी खूब मिले हैं. चुप और रचनारत आदमी की यह नियति कहां होती है? उसे तो अक्सर गुमनामी में जीकर निःशेष होना पड़ता है. यह बात अलग है कि बाद में उसकी जय-जयकार होती है, खूब दुंदुभियां बजती हैं.

मेरे कौतुहल का बहुत साफ जवाब मेरे पास नहीं है पर पिछले पच्चीस वर्षों में मैंने भीष्मजी को जब-जब और जहां-जहां देखा है—हमेशा संयत, गंभीर और विवादों से अलग ही पाया है. लोग उन्हें चालाक और अवसरवादी भी मानते होंगे पर मुझे लगता है वह अकुंठित और प्रायः अजातशत्रु हैं. उनकी सबल रचनात्मकता, संस्कार और पारिवारिक परिवेश ने उन्हें अवसर का लाभ सहज में उठाना दीक्षा के रूप में दिया है. वह किसी तरह की उछल-कूद किये बिना ही अपना प्राप्य पाते रहे हैं. उनमें धीरज की कमी नहीं है. शायद यही कारण है कि पचास साल की उम्र तक जो आदमी चर्चा के केंद्र में नहीं रहा जबकि उसकी रचनात्मकता तब भी श्रेष्ठ की पंक्ति में थी, वह आज पूरी तरह रेखांकित है और अकुंठित भी. उन्होंने एक कहानी लेखक के रूप में साहित्यिक यात्रा आरंभ की थी, आज वह एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार और नाटककार भी हैं.

मैं बरसों से जानता चला आ रहा हूं कि उनकी सही उम्र क्या है, पर उनकी जीवंतता, तारुण्य ऊर्जा और नयों के बीच सहज खप जाने की प्रवृत्ति से यही लग रहा है कि वह अचानक और एकाएक पचहत्तर के हो उठे हैं. क्षरणशीलता और फालतूपन से बचने का संयम निश्चय ही कभी उनके शतक पूरा कर लेने पर फिर हमें आश्चर्य में डालेगा और लगेगा—'अरे भीष्मजी अचानक शतायु हो उठे!' ☐

ऐसी स्थिति में प्रेम कहानी...!

कालिज में वानप्रस्थीजी और घर पर पिताजी, मेरी हर हरकत पर नजर रखते थे. पहले ही स्कूल के दिनों में मेरी बहुत-सी शिकायतें लग चुकी थीं. एक बार फुफेरे भाई के उस्तरे से अपनी मूंछें मूंड चुका था और हेडमास्टर साहिब के बैंत खा चुका था. मूंछे मूंडना, उन दिनों, प्रेम करने से कम चरित्रहीन कर्म नहीं माना जाता था. मूछें तो अभी नमूदार भी नहीं हुई थीं, पर हेडमास्टर साहिब ने ये सोचकर कि मूंछें आने से पहले इसका यह हाल है तो सचमुच मूंछें आ जाने पर क्या होगा, अधोगति के किस गर्त में गिरेगा, मुझे अच्छी तरह से धुन दिया था. फिर एक बार 'पिया' शब्द पर भी चांटे पड़ चुके थे. किसी दोहे में 'पिया' शब्द का प्रयोग किया गया था और मैं उसे गुनगुनाते पकड़ा गया था. दो चांटे तो छूटते ही पड़ गये थे. पर जब मैंने इसरार किया कि यहां 'पिया' शब्द का अर्थ परमेश्वर है तब पांच चांटे और पड़े, और साथ में हेडमास्टर साहिब ने यह टिप्पणी भी कर दी कि इस लड़के के भाई में और इसमें उतना ही फर्क है जितना नार्थ पोल और साउथ पोल में है.

इसलिए घर पर भी मेरी निगरानी रखी जाने लगी थी. मेरे बारे में पिताजी के विचार, हेड मास्टर साहिब के विचारों से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे. इसी कारण, कालिज के दिनों में, वह मेरी एक अंग्रेजी नावल खिड़की के बाहर फेंक चुके थे. जब मैंने बार-बार कहा कि वह तो मेरे कोर्स की किताब थी, तब वह और भी ज्यादा बिगड़े, ''अगर कालिज में तुम्हें ऐसी लच्चर किताबें पढ़ते हैं तो तेरा कालिज जाना ही बंद करा दूंगा.''

उन दिनों मैं कसरत भी किया करता था. कद का छोटा होने के कारण यह भी ख्याल था कि शायद कसरत के द्वारा ही कद ऊंचा हो जाए. इसीलिए व्यायाम संबंधी अंग्रेजी रसाले भी खरीदता रहता था. एक बार एक रसाले में दो तस्वीरें मुझे अच्छी लगीं जो मैंने फाड़कर रख लीं. ये दो आदर्श कसरतियों की थीं, एक व्यायाम करते पुरुष की, दूसरी व्यायाम करती महिला की. वह पुरुषवाली तस्वीर तो कहीं इधर-उधर हो गयी, पर व्यायाम करती स्त्री की तस्वीर मेरी पाठ्य पुस्तक में कहीं जा पहुंची. पिताजी गाहे-बगाहे इंस्पेक्शन पर आते थे. तस्वीर देखी तो बरस पड़े. किस्मत अच्छी थी, सफाई देते समय मुझे पुरुष कसरती मिल गया. जान बची लाखों पाये. ऐसी स्थिति में प्रेम कहानी कौन लिखता... ☐

संदर्भ : 'जब मैंने प्रेम कहानी लिखी' : भीष्म साहनी]

मनादी

भीष्म साहनी के नये उपन्यास मय्यादास की माड़ी का एक अंश

उस दिन ढलती दोपहर का समय था और पीली-पीली अलसायी-सी धूप चारों ओर फैली थी, जब गंज मंडी के बाहर मैदान की ओर से ढोल बजने की आवाज सुनायी दी थी. राह जाते लोग ठिठक गये थे. मनादी का ढोल था, और कुछ दिन से तरह-तरह की खबरें सुनने में आ रही थीं. लोग कदम बढ़ाते हुए गंज मंडी के बड़े फाटक की ओर जाने लगे.

मनादी करनेवाला और कोई नहीं, कस्बे के मीरासी का भाई जलाल था—धारीदार कुर्ता, सिर पर लाल रंग की तुर्रेदार पगड़ी पहने हुए था. जब कभी कोई जरूरी मनादी करने वह निकलता तो सिर पर तुर्रेदार पगड़ी जरूर रखता था. उसे देखते ही लोग समझ गये थे कि कोई खास खबर देने निकला है.

"खलक खुदा दी, हुक्म बादशाह दा, हर खास-ओ-आम को मतला किया जाता है कि फिरंगी के लश्कर सल्तनत-ए-खालसा की तरफ बढ़े आ रहे हैं. कल से शीशमहल में भरती शुरू हो जायेगी."

और ढोल पर जोर से थाप देकर वह मैदान की ओर आगे बढ़ गया.

देखते-ही-देखते कस्बे का माहौल बदल गया था. वातावरण में उत्तेजना भर गयी थी. लोग भागते हुए घरों के बाहर निकल आये. गंज मंडी के बाहर का मैदान लोगों से भरने लगा. उत्कंठा और जिज्ञासा उन्हें बाहर खींचे ला रही थी. मैदान में जगह-जगह लोगों की टोलियां खड़ी नजर आने लगीं. क्या हुआ है? क्या होने जा रहा है? कस्बे का माहौल उद्वेलित हो उठा था.

मनादी कर चुकने के बाद मीरासी का भाई गंज मंडी की ऊंची दीवार के साथ-साथ चलता हुआ काबुली दरवाजे की ओर जाने लगा था. पांच-सात बच्चे भी उसके पीछे-पीछे हो लिये थे. फिरंगी फौजों ने खालसा राज पर हमला बोल दिया था. लाहौर-दरबार ने कुमक मांगी थी और शीशमहल में दूसरे दिन से भरती शुरू होनेवाली थी. वातावरण में अजीब-सी धड़कन पैदा हो गयी थी. आगे क्या होगा, इसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता था. एक तरह की धुंध-सी आंखों के सामने फैली थी.

फाटक के पास खड़ा कोई आदमी कह रहा था, "सतलज की ओर फौजें बढ़ रही हैं. यही सुनने में आया है."

दो-तीन मलियारनें सिरों पर साग-सब्जी की टोकरियां रखे गांव को लौट रही थीं. मनादी का ढोल सुनकर ठिठक गयी थीं. उनमें से एक बोली, "धाड़ा-लोटी पड़ेगी, देख लेना!" और उन्होंने गांव की ओर अपने कदम तेज कर दिये थे.

काबुली दरवाजे के बाहर भी खड़े होकर जलाल ने मनादी की, उसी तरह फिर से ढोल पर थाप सुनायी दी और वह काबुली दरवाजे की मेहराब लांघकर कस्बे के अंदर बिछे गलियों के जाल में दाखिल हो गया. धीरे-धीरे उसके ढोल की आवाज दूर पड़ने लगी.

लोगों की उत्कंठा बराबर बढ़ती जा रही थी. जहां कहीं वे किसी को कुछ कहते सुनते उसी के पास जा खड़े होते. बार-बार उनकी आंखें उस रास्ते की ओर उठ जाती थीं जो लाहौर को जाता था, कि अभी कोई हरकारा आयेगा, या भागते धूल उड़ाते हुए घुड़सवार आयेंगे और नयी-नयी सूचनाएं देंगे. ढलती दोपहर के समय एक घुड़सवार सरपट घोड़ा दौड़ाता आया भी था, धूल-मिट्टी से अटा हुआ, जो हाथ ऊंचा उठाये चिल्ला रहा था—'जंग छिड़ गयी है! जंग छिड़ गयी है.' और सीधा शीशमहल की ओर घूम गया था.

तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगी थीं. कोई कहता कि शीशमहल के फाटक खोल दिये गये हैं और राजा साहिब से मिलने, कस्बे के रईस-साहूकार, रायजादे, दीवान सभी पहुंच रहे हैं. जंग की खबर केवल आशंका और भय को ही जन्म नहीं देती, वह वर्तमान के अंकुश भी ढीले

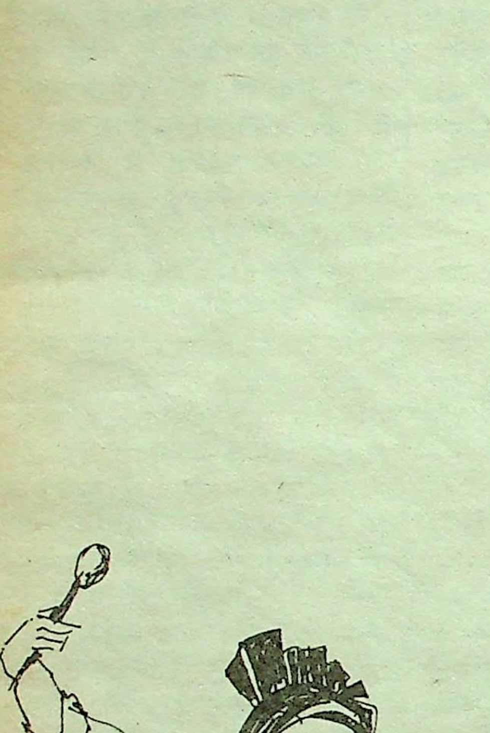

रेखांकन : हेमज्योतिका

कर देती है. दैनिक जीवन को नियमित करनेवाले बंधन भी शिथिल पड़ने लगते हैं. एक प्रकार की उन्मुक्तता का-सा भास होने लगता है. इसी कारण लोग दिन-भर बाहर मैदान में डोलते रहे थे. लाम जो छिड़ गयी थी. पर साथ-ही साथ, अंदर-ही अंदर गहरी उत्तेजनापूर्ण भावनाएं भी कसमसाने लगी थीं. किसी के दिल में मरदानगी और जौहर के वलवले उठ रहे थे, खालसा दरबार के लिए झूल जाने के, कुछ थे जिनके दिल में भविष्य के प्रति आशंका, अनिश्चय के भाव उठ रहे थे. एक झटके से जीवन का तारतम्य टूट गया था. अब कुछ होनेवाला है, अब कुछ होकर रहेगा...एक अमूर्त, निःशब्द-सी अकुलाहट और व्यग्रता कस्बे के माहौल में आ गयी थी.

कुछ ही देर बाद इस धड़कते माहौल में, मैदान में खड़े लोगों की आंखें काबुली दरवाजे की ओर घूम गयी थीं, जहां से दीवान मय्यादास धीर-गंभीर चाल से, हाथ में छड़ी उठाये काबुली दरवाजे में से निकलकर बाहर आ गया था, और दीवार के साथ-साथ चलता हुआ गंज मंडी की ओर जाने लगा था. लोग समझ गये थे कि दीवान, बाहर के रास्ते शीशमहल की ओर जा रहा है. उसे देखकर ही इस बात का भास होने लगा था कि स्थिति बदल गयी है, और गंभीर हो उठी है. दीवानजी, किसी गंभीर मश्विरे के लिए राजा साहिब के पास जा रहे हैं. दीवार के साथ-साथ मैदान के किनारे-किनारे चलता हुआ दीवान मय्यादास पूरे कस्बे की गरिमा का प्रतीक लग रहा था. सीधा सतर शरीर, स्थिर गंभीर चाल, चेहरे पर बड़प्पन और दृढ़ता का भाव. कस्बे के जीवन में, लगता था, जैसे एक निर्णायक घड़ी आ गयी है और उसमें दीवान मय्यादास अपनी भूमिका निभाने जा रहा है.

लगभग उसी समय जब दीवान मय्यादास बाहर के रास्ते से शीशमहल की ओर जा रहा था, कस्बे के अनेक जाने-माने व्यक्ति—दीवान, मलिक, रायजादे अपने-अपने घर में से निकलकर अथवा साहूकारे व आढ़त की पैढ़ी पर से उठ-उठकर शीशमहल की ओर जाने लगे थे. किसी ने भावावेश में दरबारी पोशाक पहन ली थी और कमरबंद में से झूलती तलवार लिये हुए था, कोई सीधे-सादे लिबास में ही चल दिया था. सभी के कदम शीशमहल की ओर बढ़ रहे थे, कोई किसी गली को लांघता हुआ, कोई किसी को. कस्बे का राजा अमीरचंद था तो मामूली-सा राजा, पर कस्बे में खालसा राज्य की सत्ता का प्रतीक था. उसी पर लोगों की भावनाएं केंद्रित होने लगी थीं. सभी महसूस कर रहे थे कि मुसीबत लाहौर-दरबार पर नहीं, समूचे राज्य पर आयी है, इसलिए बरबस, उनका ध्यान राजा अमीरचंद की ओर जाने लगता था.

तभी सहसा बड़े मैदान में हंसी का फौव्वारा छूटा. रंगीला दीवान धनपत अपने टट्टू को एड़ लगाता, उसकी पीठ पर उचकता मैदान पार करने लगा था. उसका मुंह शेखों के बाग की ओर था, जहां से काफिलोंवाला रास्ता शुरू होता था.

अपनी-अपनी टोली में खड़े बहुत-से लोग हंस दिये थे.

''सुलह करवाने जा रहा है!'' किसी ने ऊंची आवाज में कहा, जिस पर जगह-जगह खड़े लोग हंसने लगे थे.

मैदान में अनेक मनचले खड़े थे. बांशी, हरनारायण और रामजवाया की टोली भी वहीं पर थी. दीवान धनपत मैदान पार करता हुआ उन्हीं की ओर बढ़ता जा रहा था. मनादी के कारण वातावरण में जो तनाव पैदा हो गया था, दीवान धनपत के सामने आ जाने पर वह तनाव ढीला पड़ने लगा था, लोग हंसने-बतियाने लगे थे.

''सुलह करवाने नहीं, जंग में अपने जौहर दिखाने जा रहा है!'' कोई और बोला.

''इस टट्टू पर बैठकर भाला चलायेगा!'' नौजवानों की टोली में से आवाज आयी.

''जंग के मैदान में भी अंगरखा पहनकर लड़ेगा!''

इस पर ठहाका हुआ.

अब तक मैदान में खड़े लगभग सभी लोगों की नजरें, रंगीले दीवान की ओर घूम गयी थीं और सभी को मानो मन-बहलाव का साधन मिल गया था.

धनपत अपनी तथाकथित दरबारी पोशाक में ही था. फीके रंग की मियानवाली तलवार टट्टू की पीठ से लग-लगकर उछल रही थी. लोगों को तफरीह का मौका मिल गया था.

मनचलों की टोली के पास से गुजरा तो बांशी टोली में से निकल आया और उसके साथ-साथ भागने लगा और फिर उचककर, धनपत के पीछे टट्टू की पीठ पर चढ़ बैठा. कद-बुत्त से टट्टू सामान्य गधे से कुछ ही ऊंचा रहा होगा. इस पर मैदान में ठहाका उठा, लोग हंसी से लोट-पोट होने लगे.

बांशी ने अपनी दोनों बांहें धनपत की कमर में डाल दी थीं. लोग और भी ज्यादा हंसने लगे थे. उन्हें लगा जैसे उनकी आंखों के सामने कोई भड़ैत खेला जाने लगा है.

''उतर आ बांशी, दीवानजी को जल्दी पहुंचना है, बुलावा आया है.'' पीछे से आवाज आयी.

धनपत की कमर में हाथ डाले बांशी को बैठा देखकर मैदान में खड़े लोग ठठाकर हंस रहे थे.

''उतर आ, उतर आ, बांशी, दीवानजी को देर हो रही है. जंग रुकी हुई है!''

मैदान के दूसरे सिरे पर पहुंचकर बांशी कूदकर टट्टू से उतर गया और हंसता, खी-खी करता अपनी मंडली की ओर आने लगा.

''पर यार, यह तो बताओ, यह दीवान जा कहां रहा है. कस्बे के बाहर क्यों चला गया है?''

धनपत धूल उड़ाता मैदान पार कर गया था और आंखों से ओझल हो गया था.

इस भांति उस दिन कस्बे से दीवान धनपत का प्रस्थान हुआ था. कुछ घड़ियां मन पर अपनी अलग-सी छाप छोड़ जाती हैं. यह भी एक ऐसी घड़ी थी जो कस्बे को याद रही और वक्त बीतते न बीतते ऐतिहासिक महत्व ग्रहण कर गयी थी.

जंग के मैदान की दुनिया दूसरी थी. यहां भी दिल में वलवले उठते थे. दुश्मन के साथ लोहा लेने को दिल मचलता था, मर-मिटने का-सा जनून सिर पर तारी हो जाता था.

पहली बार जब लेखराज ने हजारों-हजार सैनिकों का लश्कर देखा तो उसका दिल झूम-झूम उठा था. इतना बड़ा लश्कर भी हो सकता है! दूर क्षितिज तक उठे हुए नेजे-भाले, हवा में लहराते रंग-बिरंगे ध्वज और झंडे, रंगारंग वस्त्रों मे घुड़सवार, कहीं हरे तो कहीं लाल रंग के कमरबंद और उनमें लटकती तलवारें, हवा में बजते नगाड़ों की गूंज. पैदल फौज के दस्ते—दूर-दूर तक फैले हुए, मानो कोई सैलाब उठा हो जो आगे बढ़ता जा रहा हो. लेखराज भी उस विराट अभियान का एक अंग है, इस विचार से ही उसका दिल हिलोरें लेने लगता था.

एक के बाद एक, वह तीन लड़ाइयों में लड़ा था. कुछेक महीने की ही बात रही होगी; और फिर सब खत्म हो गया था. पर कुछेक महीनों का वह संसार, दादी मां की कहानियों के उस संसार से कितना भिन्न साबित हुआ था.

सरदार लालसिंह की कमान में उनकी सेना सतलज नदी पार करके आयी थी और दिनों-दिन चलते रहने के बाद वे लोग एक लंबे-चौड़े, सपाट मैदान में उतरे थे. फौज के बड़े सालार को उसने केवल एक बार देखा था. सफेद घोड़े पर सवार उसके चेहरे से नूर टपकता था, छाती तनी हुई. उसके चेहरे की छवि को देखते ही मन प्रेरणा और उछाह से भर उठता था. यह आदमी इतनी बड़ी सेना का संचालन कर रहा है, युद्ध का संचालन कर रहा है, कितना बड़ा काम है, कितनी दानिशमंदी का काम है. इसीलिए स्वयं, अपने दस्ते में कहीं दूर तैनात रहते हुए भी लेखराज की आंखें बार-बार उस जगह की ओर उठ जाया करती थीं, जहां उनकी फौज का सालार, अपने सजे हुए सफेद घोड़े पर बैठा नजर आता था. उसे आंख-भर देख लेने से ही लेखराज में साहस, विश्वास और दृढ़ता का संचार होता था.

मध्यान्ह के समय वे उस लंबे-चौड़े मैदान में पहुंचे थे. बड़ा बीहड़ मैदान था, लगभग सपाट मैदान. यहां कोई मोर्चा कैसे लेगा? कहीं-कहीं पर छितरी झाड़ियां थीं, गिने-चुने पेड़ थे, या फिर बालू के टूह थे. फौजी किस ओट में बैठकर मोर्चा बांधेंगे? पर यह सब सैनिक के सोचने के लिए नहीं है, इसका निर्णय तो सेनापति ही करता है.

इसी लंबे-चौड़े मैदान के पार, लगभग मील-भर की दूरी पर फिरंगी फौज छावनी डाले हुए थी. अब तक लेखराज ऐसी अनेक छावनियां देख चुका था. लंबे-चौड़े मैदान में, सीधी लंबी पांतों में, खेमे-ही खेमे, गुलाबी रंग के तंबू, बीच में चौड़ा रास्ता. और छावनी के सामने फिरंगी का झंडा—आड़ी-तिरछी, नीली-लाल-सफेद धारियोंवाला झंडा और झंडे के नीचे चमचमाती तोप की बगल में तैनात हथियारबंद सैनिक.

पर यहां से कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था. मैदान के पार, कोई हरकत नहीं थी, सब अबूझ और रहस्यमय हो रहा था. चारों ओर सकता छाया था. सैनिक जगह-जगह मोर्चे बांध रहे थे, बालू के टूह और उनके पीछे तोपें गाड़ी जा रही थीं. लेखराज की टुकड़ी को स्वयं कुछेक झाड़ियों के पीछे मोर्चा बांधने के लिए भेज दिया गया था, और स्वयं लेखराज अपनी बंदूक संभाले एक झाड़ी के पीछे जमकर बैठ गया था. कुछ फौजी पेड़ों पर चढ़कर टहनियों और पत्तों की आड़ में बैठ गये थे. जहां जिसे जो आड़ मिली, वहीं तैनात हो गया था. कुछेक झड़पें देख चुकने पर भी लेखराज के लिए यह सब नया था.

सुनने में आया था कि पूरी-की-पूरी फौज यहां नहीं आयी थी. फौज का कुछ हिस्सा, सालार के हुक्म से, पीछे छोड़ दिया गया था—इस आशय से कि दूसरी फौज के बड़े सालार को कुमक की जरूरत पड़ सकती है, जो वहां से कुछ ही दूर फिरंगी के विरुद्ध एक और मोर्चा खड़ा कर रहा था.

लेखराज झाड़ी के पीछे से फिरंगी की छावनी की ओर आंख लगाये था, पर कहीं कोई हरकत नहीं थी. चारों ओर जैसे चुप्पी छायी थी. पर फिर सहसा, खालसा फौज की ओर से गोलीबारी की जाने लगी थी. बड़े सालार ने हुक्म दे दिया था और तोपें गोले बरसाने लगी थीं. सनसनाते गोले हवा को चीरकर जाते और दूर क्षितीज के पास जाकर फटते. दुश्मन आगे बढ़ रहा होगा, तभी सालार ने गोलाबारी का हुक्म दिया है. कुछ देर तक ऐसा ही चलता रहा था. फिर गोले बरसना बंद हो गये थे और चुप्पी छा गयी थी.

फिर कुछ ही दिन बाद लेखराज के लिए जंग की अंतिम मुठभेड़ एक कुएं की जगत के पास हुई थी. नजदीक ही कहीं फिरंगी छावनी रही होगी, क्योंकि एक छोटे-से घर के ऊपर फिरंगी झंडा लहरा रहा था. कुएं के निकट ही बड़े-बड़े पत्थरों से अटा एक मैदान था, और वहीं पत्थरों के पीछे सिक्ख फौज के सैनिक छितरे हुए थे और मोर्चा बांधे हुए थे. यहां भी फिरंगी फौज की लहरों पर लहरें उठती हुई उनकी ओर बढ़ने लगीं थी. अब तो उन्हें देखकर ही दिल दहल जाता था. किसी जंगल में से उठकर आ रही थीं. शायद वहीं पर उनकी छावनी थी. पहले यहां पर भी तोपें दागी जाती रही थीं, फिर सैनिक सैलाब की तरह उमड़ते हुए हमला बोलने लगे थे. उसका मित्र मनोहर कुएं की जगत के पीछे तैनात था. जिस चट्टान के पीछे लेखराज मोर्चा बांधे हुए था, वहां से कुएं का गोल चबूतरा साफ-साफ नजर आ रहा था. अकेला मनोहर ही नहीं तीन-चार और सैनिक भी वहीं पर मोर्चा बांधे हुए थे. फिर चिल्लाते-दहाड़ते, फिरंगी फौज के सैनिक संगीनें आगे बढ़ाये कुएं की जगत की ओर बढ़ते जा रहे थे. लड़ाई अब बंदूकों-तोपों की न रहकर किर्चों-बर्छों और तलवारों के साथ लड़ी जाने लगी थी. मुठभेड़ें शुरू हो गयी थीं. अंतिम बार जब लेखराज ने कुएं की जगत की ओर देखा तो मनोहर खड़ा तलवार झुला रहा था. उसकी छाती लहू-लुहान हो रही थी. लेखराज ने देखा, उसकी छाती में संगीन घोंपी गयी थी, इसके बावजूद उसका हाथ तलवार घुमाये जा रहा था.

बस इतना ही लेखराज देख पाया था. फिर कहीं बिगुल बजने लगे थे, खालसा फौज के सैनिक हथियार डालने लगे थे. फिर अपनी पीठ-पीछे लेखराज ने किसी की बंदूक के कुंदे का प्रहार महसूस किया था. सिक्ख सेना के जगह-जगह छितरे सैनिक पकड़े जा रहे थे. उसे भी हांककर ले जाने लगा था. उसकी नजर पीठ-पीछे खड़े गोरे फौजी पर पड़ी थी—पतली-पतली मूंछें नीली, चपल आंखें, वही उसकी पीठ में बंदूक का कुंदा मार रहा था.

अर्द्धचेतन-सी स्थिति में ही वह अपने आस-पास के परिवेश को भी ग्रहण कर रहा था—वह पीछे सूखा नाला है, और उसके पार, सामने, टूटी-फूटी इमारत है, जिस पर फिरंगी झंडा लहरा रहा है. उसने अधमुंदी आंखों से यह देख लिया था कि झिलमिलाती फिरंगियों की तोप पीछे जंगल में से निकल आयी है और उस टूटी-फूटी इमारत की ओर बढ़ती आ रही है. उसे लाल वर्दीवाले कुछ सिपाही धकेल रहे हैं, जैसे किसी भैंस को धकेलते हैं.

तभी उसे दीवान धनपत नजर आया था. यहां पर भी वह पीले रंग का अंगरखा पहने था और सिर पर केसरी पगड़ी रखे टूटी-फूटी इमारत के पीछे से चला आ रहा था, और फिर देखते-ही-देखते इमारत के अंदर चला गया था. सचमुच दीवान ही था. पर यहां क्या कर रहा है! बोझिल मस्तिष्क और घुटी-घुटी आंखों के बावजूद लेखराज ने उसे पहचान लिया था. यह धनपत ही है. तब उसका ध्यान केवल पीले रंग के, हवा में फरफराते अंगरखे की ओर गया था, और वह उसे बड़ा अटपटा लगा था. उसके पीछे-पीछे, एक-एक करके पांच-छः कहार पीठ पर बोरे लादे चले आ रहे थे. धनपत वास्तव में उनके आगे-आगे चलता आ रहा था.

अनायास ही लेखराज की आंखें उस पहाड़ी की ओर उठ गयी थीं जहां पर अब मौन छाया था, पर जहां से वह और उसके साथी चिंघाड़ते-ललकारते हुए, नीचे मैदान में उतरे थे. तभी उसे याद आया था कि मनोहर मारा गया है, और उसके दिल में असह्य-टीस-सी उठी थी और उसे लगा था जैसे उसके दायें घुटने से मनोहर की बांह टकरायी है और उसके दिल में से जैसे कुछ रिसने लगा है.

और उस रात, तारों से भरे आकाश के असीम प्रसार के नीचे लेखराज बिलख-बिलखकर रोया था.

तीन बड़ी लड़ाइयों के बाद खालसा राज्य की कमर टूट गयी थी. सालारों ने हथियार डाल दिये थे. फिरंगी की फतह हुई थी. पंजाब, अंग्रेजों के कब्जे में आ गया था. □

उम्र की हीरक जयंती और लेखन की स्वर्ण जयंती करने जा रहे वरिष्ठ कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, गद्यकार और संपादक, अनुवादक, अभिनेता भीष्म साहनी से महेश दर्पण की अंतरंग बातचीत—

''लेखक की विडंबना यह है कि लिखी हुई चीज को वह फाड़कर फेंक नहीं सकता!''

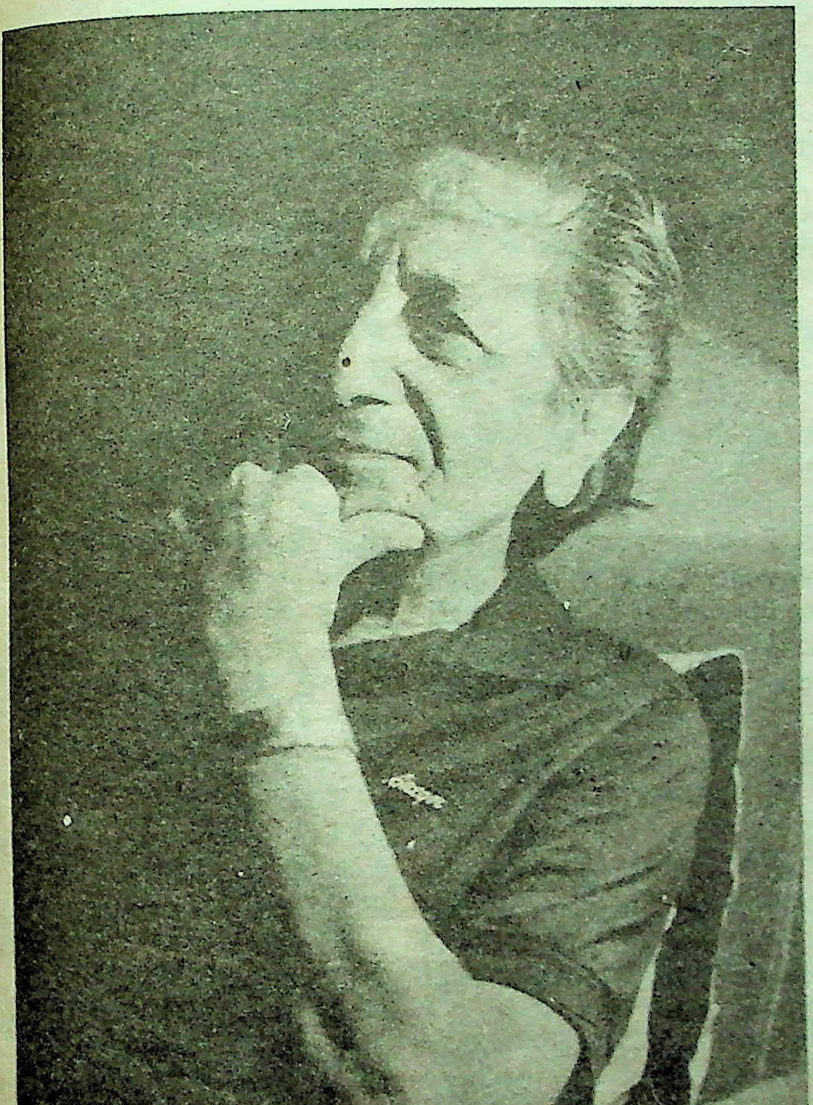

● आज से लगभग पांच दशक पूर्व, जब आपने लिखना शुरू किया था...वह एक तरह से साहित्य में परिवर्तन का समय था. तब आपके पसंदीदा रचनाकार कौन-कौन से थे? कैसा था आपका यह समय?

□ बचपन के दिनों में सुदर्शन और प्रेमचंद की कहानियां पढ़ने को मिलती थीं. मेरे पिता आर्य समाज से जुड़े थे. उसके वार्षिकोत्सव में कुछ पुस्तक विक्रेता अपने स्टॉल लगाते थे. पिताजी कुछ पुस्तकें लेते थे. वहीं मैंने पहली बार 'प्रेम पच्चीसी' आदि प्रेमचंद की पुस्तकें, 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' [एक प्रहसन : सुदर्शन] को पढ़ा. पहलेपहल इन्हीं दो के लेखन के संपर्क में आया. कॉलेज छोड़ने के बाद अज्ञेय, यशपाल, जैनेंद्र की रचनाएं पढ़ने को मिलीं. 'शेखर : एक जीवनी', 'त्यागपत्र' और यशपाल का कहानी संग्रह...फिर कुछ अर्सा बाद 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पढ़ी. बंटवारे के बाद जब दिल्ली आये, हिंदी के लेखकों के अतिरिक्त शरतचंद्र के उपन्यास, उर्दू के हास्यरसप्रधान लेखक अजीमबेग चुगताई को पढ़ा. भारती का 'सूरज का सातवां घोड़ा' निकला...जिसकी बड़ी चर्चा रही. फिर तो अपने साथियों की रचनाएं...निर्मल, राकेश, कमलेश्वर, अमृतराय, शेखर जोशी, अमरकांत आदि को पढ़ा. अमृतराय के बड़े भाई श्रीपतजी ने एक विशेषांक निकाला था. इसमें पुराने और नये लेखकों—विष्णु प्रभाकर, चंद्रगुप्त विद्यालंकार और नये लेखकों में हम लोगों की कहानियां छपी थीं.

● पहली रचना आपने कैसे लिखी? यह अनायास हो गयी शुरूआत थी या सोच-विचारकर आपने लिखना प्रारंभ किया था?

□ ऐसा हुआ कि मैं उन दिनों रावलपिंडी में था. अपने पिता के साथ व्यापार में काम करता था. एक दिन लौटते वक्त एक घटना घटी. भीड़ एकत्र थी. भीड़ के बीच एक लड़की घिरी खड़ी थी. पास ही एक अस्पताल था जिसके बरामदे पर एक बीमार युवक बैठा था. दोनों मेहनत-मजदूरी करनेवाले थे. गांव से भागकर आये थे. लड़की के लिए सिर छुपाने लायक जगह नहीं थी. भीड़ में से कुछ छेड़-छाड़ कर रहे थे. मैं भी खड़ा हो गया. इस घटना को लेकर 'नीली आंखें' कहानी लिखी. अमृतराय ने 'हंस' में उसे छापा.

सायास का क्या अर्थ है? मनगढ़ंत कहानी हो तो सायास लिखी जाती है. जहां किसी अनुभव का आधार मिले वहां भावना के स्तर पर कितने गहरे आप जुड़ते हैं, वह महत्वपूर्ण

है. भाषा और गठन की दृष्टि से आपकी कोशिश रहती है...कि अच्छी चीज बन पाये. पर शायद छोटी उम्र में आदमी ज्यादा परवाह भी नहीं करता.

● ये 'नीली आंखें' आपको गहरे में प्रभावित करती रही हैं, लगता है. 'ओ हरामजादे' कहानी में भी तो...लाल की पत्नी की आंखें खाड़ी के नीले जल-जैसी नजर आयी हैं आपको!

☐ इसका एहसास तो मुझे मास्को जाने पर हुआ.

● अंग्रेजी साहित्य की विधिवत पढ़ाई की है आपने...जन्म से आप पंजाबी परिवार के हैं और लेखन आप हिंदी में करते हैं. यह इरादा आपने कैसे बनाया?

☐ बड़ा अच्छा सवाल है आपका. जैसे संस्कार या पृष्ठभूमि थी वह एक भाषी तो नहीं थी. गुरुकुल में केवल हिंदी-संस्कृत पढ़ी. स्कूल में माध्यम उर्दू था, घर में पंजाबी. हिंदी-संस्कृत का जोर था. हाई स्कूल तक पहुंचते-पहुंचते अंग्रेजी विषय लिया. बी.ए. ऑनर्स और अंग्रेजी में एम.ए. किया. उर्दू और अंग्रेजी का प्रभाव साहित्य की दृष्टि से अधिक था. जब मैं बी.ए., एम.ए. की पढ़ाई कर रहा था तब हफीज जालंधरी आदि लिख रहे थे. मुशायरे होते थे...और फिर अंग्रेजी साहित्य भी. एकभाषी माहौल में लड़कपन नहीं बीता. पर घर में देर तक हिंदी-संस्कृत पढ़ाई गयी. मेरे परिवार में कुछ लोग थे जो हिंदी में लिखते थे. इसका प्रभाव जरूर पड़ा. मेरी बुआ की बेटी सत्यवती मलिक हिंदी में लिखती थीं. चंद्रगुप्त विद्यालंकर (जीजाजी) और बलराजजी की कहानियां 'विशाल भारत' आदि में छपी थीं. बुआ की बेटी कविताएं लिखती थीं. इस तरह से हिंदी से जुड़ा. अंग्रेजी तो बस पठन-पाठन तक ही सीमित रही. दिल्ली जब आता था तो बनारसीदास चतुर्वेदी, विष्णु प्रभाकर से मिलना हुआ...

● पिता के व्यापार में हाथ तो आप बंटाने लगे थे, मजबूरन ही सही...पर इससे कथा-अनुभव तो जुटे ही होंगे! उन पर भी कुछ काम आपने किया होगा!

☐ मेरे पिता भी सच्चे मानों में व्यवसायी नहीं थे. उनकी रुचि सामाजिक कार्यों में जुड़े रहने की थी. वे महत्वाकांक्षी व्यापारी नहीं थे. जब मैं कालेज छोड़कर आया, तब वे व्यापार से भी करीब-करीब मुक्त हो चुके थे. यह काम ऐसा नहीं था कि चौबीसों घंटे डूबकर काम करें. पर मेरा मन लगा नहीं. मुझे मजबूरी में करना पड़ता तो अपना भी लेता. और लोग मदद करनेवाले थे, इसलिए इसे पेशे के रूप में नहीं अपनाया. नाटक करने लगा. कांग्रेस में भी गया...फिर भी, तरह-तरह के तजुर्बे हुए. मेरी जिंदगी किताबी ही नहीं रही. अगर मैं केवल अध्यापन कार्य ही करता तो शायद किताबी माहौल में ही रह जाता. इससे मुझे लाभ ही हुआ. राष्ट्रीय आंदोलन, बाजार का अनुभव मुझे मिला. रावलपिंडी एक तरह से पिछड़ा हुआ इलाका था, पर आंदोलन का प्रभाव तो वहां पर भी था ही. अंग्रेजी सरकार वहां बड़ी दमन की नीति अपनाती थी. गांव में कोई प्रचार करनेवाला जाये तो उसे मार डालते थे. दरअसल, वहां से तो फौज में भरती की जाती थी. इसके बावजूद लोग उठते थे आंदोलन में शामिल होने के लिए. एक छोटे शहर का एक करेक्टर होता है...एक कॉम्पेक्टनेस होती है...वहां का माहौल आपकी पकड़ में आ जाता है.

● शुरुआत में आपने कविताएं लिखी हैं. यह सिलसिला जारी क्यों नहीं रह पाया?

☐ नहीं चला. मैं बता नहीं सकता. शायद दूसरी तरफ मन चला गया.

● व्यापक सार्थकता की कहानियां आपकी पसंद पर खरी उतरती हैं. अपनी पसंद की, समकालीन कथाकारों की कुछ कहानियों का खुलासा कर सकेंगे?

☐ बहुत-सी कहानियां गुजरी थीं उन दिनों नजर से. 'आर्द्रा', 'मलबे का मालिक', 'गुलकी बन्नो'...शीर्षक तो बहुत याद नहीं हैं, पर ये जो आमतौर पर कहा जाता है कि 'प्रगतिशील आंदोलन जो चला, कहानी को प्रचारात्मक बनाने के लिए चला,' यह कहना गलत है. उन्नीसवीं शताब्दी से ही हमारे यहां साहित्य चेतना समाजोन्मुख होती चली जा रही थी. बंकिम का उदाहरण सामने है. एक रुझान-सा आया था कि साहित्य की रचना किसी सामाजिक यथार्थ से जुड़े. एक प्रवृत्ति पनपने लगी थी. हमारी विरासत मानवतवाद की थी. व्यक्ति को एक बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि थी. आर्थिक, सामाजिक परिवेश में देखने की प्रवृत्ति जुड़ी. प्रेमचंद आये तो एक नयी सार्थकता जुड़ी. यह कहना कि जानबूझकर साहित्य को नारेबाजी का माध्यम बनाया गया, गलत है. यह जरूर है कि कहीं-कहीं सामाजिक उद्देश्य को प्राथमिकता दी जाने लगी. अपने तईं मैं ऐसा नहीं मानता. मैं मानता हूं कि लेखक रचना करता है, साहित्य के प्रतिमानों पर उसे उतरना चाहिए. जिस युग में हम गुजर रहे थे, वह उद्वेलन का युग था. विचारधाराओं का बड़ा प्रबल प्रभाव रहा था. मार्क्सवाद, गांधीवाद, साम्यवाद...इनका भी प्रभाव लेखक पर पड़ता है. पर वह अपने को कटघरे में बांधता भी तो नहीं है. जिस सामाजिक सार्थकता की आप बात करते हैं, वह वामपंथी लेखकों तक ही सीमित हो, ऐसा नहीं है.

● आपको ऐसा प्रतीत नहीं होता कि स्वयं को मुक्त समझनेवाला प्राणी—लेखक भी आज अंततः एक 'कमोडिटी' में तब्दील होता जा रहा है. तब उसकी स्वतंत्रता का अर्थ बेमानी नहीं हो जाता!

☐ देखिये, मैं सोचने में, वाणी देने में स्वतंत्र हूं, यह तो जरूरी है. मेरे मानसिक गठन पर, संस्कारों, काल और पठन-पाठन, अनुभवों का प्रभाव रहा. उससे मुझे एक दृष्टि मिली. एक व्यक्तित्व मिला. मैं ऐसा नहीं मानता कि लेखक किसी वेक्यूम में जीता है. जिस काल में वह रहता है, उसकी गतिविधियों का उस पर बड़ा प्रभाव रहता है. लिखता वह अपने संवेद और दृष्टि के बल पर है. बड़े-बड़े लेखकों का भी प्रभाव पड़ता है...पर कलम तो लेखक अपनी ही चलाता है. मैं कहानी लिखता हूं और छपने के लिए भेज देता हूं...हां, ज्यादा प्रलोभन की बात कहें तो दूरदर्शन और फिल्म, प्रसारण के नये माध्यम...अच्छा है, इससे रचना अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचती है. 'तमस' के अनुभव से मैंने देखा है. रेखा तो लेखक स्वयं ही खींचेगा.

● 'पतनशील समाज की जो बुराइयां आज हमारे समाज में साफ-साफ नजर आने लगी हैं...उनसे निजात पाने का रास्ता आप किस रूप में देखते हैं?

☐ हमारा समाज कितना पतनशील है और कितना विकासशील है, इसका निर्णय कर पाने के लिए हम अलग-अलग मानदंडों का प्रयोग करते हैं. यदि बाहर के देशों पर हमारी आर्थिक निर्भरता कम होती जाये तो उसे हम विकास मानते हैं, देश का औद्योगीकरण हो, देश आत्मनिर्भर होता चला जाये, राजनीतिक स्तर पर जनतंत्रात्मक शक्तियां सुदृढ़ होती जाएं तो इसे भी हम विकास का चिह्न ही मानेंगे. स्त्रियां अधिक आत्मविश्वास के साथ सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में अग्रसर हों तो इसे भी हम सकारात्मक प्रवृत्ति ही मानेंगे.

दूसरी ओर उपभोक्ता संस्कृति, एक बाढ़ की तरह हमारे सामाजिक जीवन पर छाने लगे और हमारे सभी परंपरागत मूल्य और मान्यताएं उसमें डूबते लगें—हिंसा बढ़े, अपराध बढ़े, उधर गैंडे राजनीति के क्षेत्र में पहुंच जाएं, उधर सांप्रदायिक जहर सामाजिक जीवन के अंग-अंग में फैलता चला जाए, तस्करी और ड्रग एडिक्शन बढ़ता जाए तो हमें लगेगा कि हमारा

समाज धरातल की ओर जा रहा है.

एक प्रकार का संघर्ष तो सारा वक्त चलता रहता है, लेकिन कभी-कभी लगता है कि हम बेबस होते जा रहे हैं. पर रास्ता संघर्ष का ही है और साहित्यकार निश्चय ही इस संघर्ष में अपनी दृष्टि-अनुसार अपनी भूमिका निभा सकता है.

● आजादी के बाद के भारतीय साहित्य ने अपनी सामाजिक सार्थकता किन अर्थों में बचाये रखी है? क्या ऐसा प्रतीत नहीं होता कि आधुनिक साहित्य से जन-सामान्य का कोई नाता ही नहीं रह गया है?

□ आजादी के बाद रहा हो, या इससे पहले, भारतीय लेखक उन दबावों को जरूर महसूस करता रहा है जो हमारे समाज पर तथा व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते रहे हैं. हिंदी साहित्य में शहरी जीवन, और उसमें भी मध्यवर्गीय जीवन पर पड़नेवाले दबावों के प्रति लेखक अधिक सचेत रहा है. यथार्थ की पकड़ भी ज्यादा मजबूत हुई है. पर जहां-जहां लेखक, जिंदगी से दूर हुआ है, या मात्र अपने में खो गया है, वहां वह जन-सामान्य से भी दूर होता गया है.

● आज हम विश्व स्तर पर चल रहे बड़े-बड़े आंदोलनों की चर्चा तो खूब करते हैं, पर असहाय और निरीह छूट गये अपने ही देश के आम नागरिक की स्थिति पर गौर करने की जरूरत तक नहीं समझते, जहां वह अपने राजनैतिक अधिकार से भी हाथ धो बैठा है!

□ इसमें संदेह नहीं कि लेखक का अनुभव क्षेत्र सीमित रहा है. उसने इसे तोड़ने का प्रयास भी नहीं किया. एक प्रकार की भलमनसाहत, भीरुता, मध्यवर्गीय दृष्टि हमें अपने देश के विशाल जन-समुदाय के साथ जुड़ने, उसके जीवन की धड़कनों को महसूस कर पाने, उसकी जिंदगी को आंकने की दिशा में बाधक रही है. इसकी सफाई में हम दलीलें तो दे सकते हैं लेकिन इसे हम न्याय संगत नहीं कह सकते.

● क्या राजनैतिक आंदोलनों की असफलता इससे नहीं जुड़ती? क्या इसी कारण हमारे यहां राजनैतिक उपन्यास भी अधिक नहीं लिखे जा सके?

□ हमारे यहां राजनैतिक उपन्यास नहीं लिखे गये, यह सही है, लेकिन इसका कारण राजनैतिक आंदोलनों की असफलता रहा हो, मैं ऐसा नहीं मानता.

● समय-समय पर आते, चले जाते रहे कथा-आंदोलनों को आपने नज़दीक से देखा है...इसमें सर्वप्रमुख आंदोलन आप किसे मानते हैं?

□ 'नई कहानी आंदोलन'.

● लंबे समय से आप प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े रहे हैं. मौजूदा हालात में एक रचनाकार को ऐसे संगठन क्या-कुछ दे सकने की स्थिति में रह गये हैं...?

□ साहित्य सृजन के स्तर पर भले ही किसी संगठन का योगदान बहुत सीमित रहा हो—हालांकि संगठन की गतिविधि से, साहित्य और समाज के प्रति उसकी दृष्टि से, तथा उस संगठन से जुड़े प्रतिभासंपन्न सहकर्मियों से, लेखक को अपने काम में भी बड़ी प्रेरणा और उत्साह मिल सकता है. पर इससे अलग संगठन की अपनी अलग सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका होती है. यदि आज सांप्रदायिक, विसर्जनवादी तत्वों के विरुद्ध खड़ा होने की जरूरत है तो एक संगठन उसमें प्रभावी भूमिका निभा सकता है. इसी भांति लेखन-प्रकाशन से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिए एक साझा मंच जुटा सकता है. समाज में एक जीवंत सांस्कृतिक माहौल पैदा करने की दिशा में भी अपना योगदान दे सकता है.

● विभाजन की त्रासदी पर तो आपने खूब लिखा है...पर उसके बाद की ऐसी कौन-सी बड़ी घटना है जिसे आप एक 'सबक' के तौर पर रेखांकित करना चाहते हैं?

□ विभाजन की त्रासदी पर भी लिखा था तो एक 'सबक' के तौर पर नहीं लिखा था. एक विकट मानवीय स्थिति को दिखा पाने की दृष्टि से लिखा था.

आज के जीवन की अनेक ऐसी घटनाएं हैं जो उतनी ही मार्मिक, उतनी ही भयावह और विकट हैं. आज का हमारा सामाजिक जीवन बड़ा विचलित और उद्वेलित करनेवाला है. सवाल ऐसे मुद्दे पर लिखने की इच्छा का नहीं है, सवाल इन मुद्दों पर अपनी पकड़ का है. अनुभव जनित रचनाओं में और सायास लिखी जाने वाली रचनाओं में ज़रूर अंतर होता है, हालांकि सायास लिखी जानेवाली रचनाओं की सार्थकता और महत्व से इंकार नहीं है.

● प्राय: आपकी कहानियों के चरित्र हमारे भीतर जगह बना लेते हैं, कहीं-कहीं तो कहानी ही रेखाचित्र के करीब खिंचती चली गयी प्रतीत होती है. तो यह जो प्रक्रिया है, चरित्रों के प्रति एक अतिरिक्त मोह है, यह अनायास हो जाता है या आप सचेत रूप से करते हैं? आपकी बेहतरीन कहानियां तो वे हैं जहां स्थितियां अपने आप में कथा-चरित्र बन जाती हैं. जैसे 'अमृतसर आ गया है' या 'चीफ की दावत'...ऐसे में 'कुछ और साल' का मधुसूदन पीछे छूट जाता है.

□ कहानी लिखते समय हम स्थितियों-घटनाओं को तो वास्तविक जीवन में से अक्सर उठाते हैं, साथ ही साथ पात्रों को भी उठाते हैं. जहां कोई स्थिति कहानी में पनपने, अपना स्वरूप और आकार ग्रहण करने लगती है, कल्पना द्वारा की जानेवाली जोड़-तोड़ के साथ, वहां पात्र भी अपना स्वरूप, चरित्र और व्यक्तित्व ग्रहण करने लगता है. यों तो यह कहना सरलीकरण होगा कि हम किसी स्थिति अथवा घटना को जीवन में से उठाते हैं, घटना, उस सक्रिय पात्र के साथ जुड़कर ही हमारा ध्यान आकृष्ट करती है. पात्र काल्पनिक अथवा अमूर्त नहीं होता. जो विसंगति किसी स्थितिविशेष में पायी जाती है वैसी ही कोई विसंगति उस पात्र में भी पाई जा सकती है जो उसमें सक्रिय है. इस तरह पात्र की ओर ध्यान अधिक जाता है.

● घटना जब कथा-रूप में बयान कर दी जाये तब वह मार्मिक होते हुए भी कहानी का-सा प्रभाव नहीं छोड़ती...पर 'माता-विमाता' आपकी प्रतिनिधि कहानियों में मानी गयी है!

□ आपका सवाल मैं समझ नहीं पाया. घटना अपने में कलात्मक महत्व नहीं रखती. वह मात्र

घटना होती है. पर उसके भीतर पायी जानेवाली विडंबना या विरोधाभास या विसंगति की पहचान उस घटना को कलात्मक संभावनाओं की दृष्टि से मूल्यवान बना देती है. लेखक उसी को उभारने का प्रयास करता है.

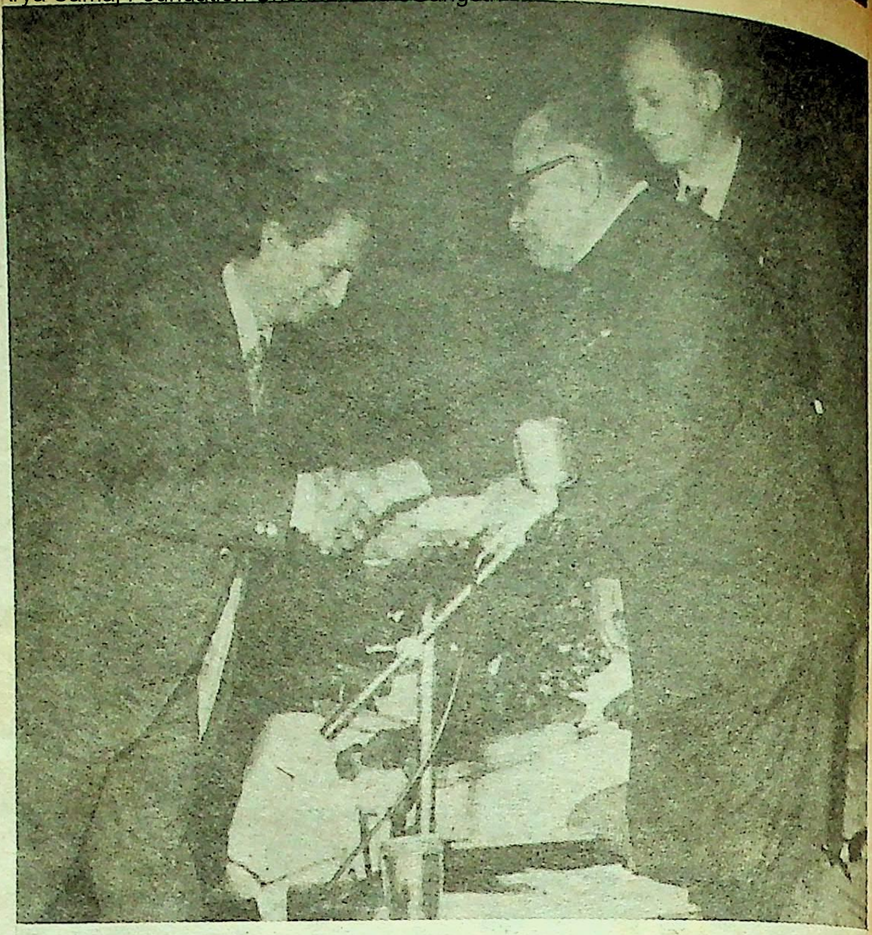

● कबीर के व्यक्ति और विचार को लेकर जो प्रभाव आपके मन पर था...उसने 'कबिरा खड़ा बजार में' की रचना करवाई या नाटक लिखने के लिए आपने कबीर का अध्ययन किया!

☐ मोटे तौर पर तो कबीर के व्यक्तित्व और दृष्टि के बारे में मेरी अल्प-सी जानकारी ने ही मुझे कबीर पर लिखने के लिए उत्प्रेरित किया. पर धीरे-धीरे जब मैं इस ओर चल पड़ा तो मुझे बहुत पढ़ने-जानने की जरूरत महसूस हुई. हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रभावशाली रचना 'कबीर' से मुझे कबीर के दर्शन को समझने में बड़ी मदद मिली. फिर तो जो मेरे हाथ लगा, उसे मैंने पढ़ा. इनमें शोध ग्रंथ भी थे और छिटपुट पुस्तकें भी.

● नाटकों के प्रति आपका रुझान किस तरह हुआ? 'हानूश' से पहले का दौर कैसा रहा था?

☐ 'हानूश' से पहले मैंने अनेक नाटकों का अनुवाद, रूपांतर तथा मंचन किया था. स्कूल और कालिज के दिनों में नाटक खेलता था. कॉलेज छोड़ने के बाद मंचन करने लगा. इनमें प्रसिद्ध चेक नाटक 'आर.यू.आर.', 'घोस्ट ट्रेन' 'जुबैदा' आदि शामिल हैं. एक नाटक का रूपातरण ख्वाजा अहमद अब्बास के साथ मिलकर इप्टा के लिए भी किया, और नाटक में अभिनय भी किया, निर्देशन भी किया. कुछेक एकांकी भी खेले. इस तरह रंगमंच के साथ काफी दिन तक जुड़ा रहा. पर 'हानूश' से पहले नाटक-लेखक की ओर मुड़ने का कोई इरादा नहीं था. 'हानूश' नाटक लिखने का इरादा तो मास्को में बना जहां मैं अनुवाद कार्य के लिए गया हुआ था. पहला ड्राफ्ट इतना अधकचरा था कि जब मेरे भाई ने उसे पढ़कर सिर हिला दिया तो मैंने निराश होकर उसे ताक पर रख दिया. लगभग दो वर्ष बाद उसे फिर से उठाया. लेखक की स्थिति की विडंबना इस बात में भी है कि लिखी हुई चीज़ को वह फाड़कर फेंक नहीं सकता. अगर ऐसा कर भी दे तो उसके दिल को धुकधुकी-सी लगी रहती है...कि फेंक न दी होती तो उसमें से कुछ बन जाता. हानूश के साथ भी ऐसा ही हुआ.

● सांप्रदायिकता का सवाल आज जिस कदर बड़ा होता जा रहा है...आप उससे मुक्ति पाने का रास्ता किस रूप में देखते हैं? सुधार का कोई रास्ता या निर्णायक हल...

☐ एक लेखक के नाते मैं मुख्यत: सांस्कृतिक स्तर पर ही सांप्रदायिकता विरोधी अभियान में अपना योगदान दे रहा हूं. भारत जैसे बहुजातीय, बहुभाषी, बहुधर्मी किसी भी देश में किसी भी जातीय सवाल का हल हिंसात्मक दबाव द्वारा नहीं खोजा जा सकता. दंगों द्वारा, कभी कोई जाति तो कभी कोई, अपना शक्ति-प्रदर्शन करे, और यह समझे कि इस आधार पर समाज में संतुलन आ जायेगा, इस प्रकार का तर्क बड़ा गलत और खतरनाक है. शक्ति प्रदर्शन द्वारा हम इस समस्या का समाधान नहीं कर सकते. न ही राजनैतिक स्तर पर किये जाने वाले समझौतों द्वारा. निश्चय ही धर्म को राजनीति से अलग करके ही इसका कोई समाधान संभव होगा. सभी नागरिकों को बराबरी का अधिकार देते हुए, निजी धार्मिक मान्यताओं को उसके नागरिक कर्तव्यों से अलग करते हुए, और इस नियम का कड़ाई से पालन करते हुए ही हम कोई समाधान ढूंढ सकते हैं. यह बराबरी का अधिकार सांस्कृतिक स्तर पर तो और भी ज्यादा महत्वपूर्ण है. सभी भाषाओं को बराबरी का दर्जा देना, सांझी सांस्कृतिक विरासत को मान्यता देना, सांस्कृतिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित करना, संस्कृति के क्षेत्र में उदारता और आदर भाव...इस तरह से हम बहुत हद तक सांप्रदायिकता के ज़हर को फैलने से रोक सकते हैं.

● आपने कहानियां, उपन्यास, नाटक...तीनों विधाओं में समान अधिकार से काम किया है. पर सबसे ज्यादा रचनात्मक सुख आप किस विधा में अनुभव करते हैं?

☐ नाटक की विधा मुझे बहुत प्रिय है. पर वर्षों तक कहानियां-उपन्यास लिखते रहने के बाद 'नाटक' विधा में कुशलता ग्रहण करना आसान नहीं है. कहीं-कहीं कहानी-उपन्यास की शैली हावी होने लगती है. कहानी-उपन्यास के पीछे सोचने और कहने का ढंग अलग होता है; नाटक के पीछे अलग.

रचनात्मक सुख तो सभी विधाओं में मिलता है.

● इधर आप रचना-कर्म के नाम पर क्या कर रहे हैं?

☐ एक उपन्यास 'मय्यादास की माड़ी' १९८८ में प्रकाशित हुआ था, तदनंतर 'पाली' नाम से एक कहानी संग्रह, 'अपनी बात' नाम से एक निबंध संग्रह भी. हाल ही में 'मुआवजे' शीर्षक से एक नाटक भी लिखा है, इन दिनों एक उपन्यास पर काम कर रहा हूं. ☐

भीष्म साहनी की नव्यतम कहानी

बबली

बस, वही कुछ तो देख पाती है जो दिन के उजाले में नजर आता है, उसके आगे धुंध है, जिसमें किसी आकृति अथवा रेखा अथवा रास्ते का क्षीण-सा संकेत भी नहीं मिलता. उस गहराती धुंध में उसे कुछ नजर आये, उसकी न तो अब कभी उसे इच्छा हुई है और न ही उसका इंतजार रहा है.

रेखांकन : हेमज्योतिका

"वह तो नौकरीवाली है ना, जी, साढ़े आठ बजे घर से निकल जाती है, उसका भी तो ख्याल रखना पड़ता है ना, जी," बबली बोली.

"तुम्हें सबका ख्याल है, बबली, सिर्फ मेरा ख्याल नहीं है," घर-मालकिन कहने लगी, "मेरे साथ तो तू मनमर्जी करती है, कभी बारह बजे आ जायेगी, कभी एक बजे."

"क्या करूं जी, और घरों में भी तो काम होता है."

बबली बातें भी करती जाती और बासन भी मलती जाती थी, दायें कंधे से बार-बार, कभी अपना पल्ला पीछे हटाती हुई, कभी माथे पर झूलती बालों की लट को हाथ की पीठ से पीछे फेंकती हुई. मिनटों में उसने बर्तन साफ कर डाले थे, और उसके तुरंत बाद वह झाड़-पोंछ में लग गयी थी.

"तू एक काम कर, बबली, मेरे घर में दो बार आना शुरू कर दे. सुबह आयी तो आंगन धो दिया, मेरे लिए सब्जी काट दी. दूसरी बार बेशक देर से आ, तब कपड़े धोना, चपातियां सेंकना, झाड़-पोंछ, यह सब कर."

बबली चुप रही.

"क्यों यह ठीक नहीं?"

"ठीक तो है बीबीजी, पर मैं पहुंच नहीं पाऊंगी."

"क्यों?"

"नौ बटा बीसवाली की बेटी स्कूल से आती है ना, बीबीजी, उसे चौराहे पर से लेकर घर पहुंचाना होता है. बस डेढ़ बजे पहुंचती है, मैं क्या करूं?"

"पर उसे घर पहुंचना तेरा काम तो नहीं है. इसके लिए कोई और बंदोबस्त कर ले."

"और कौन है जी, उनके घर में, साहिब दफ्तर में होते हैं."

"अच्छा सुन," घर-मालकिन कुछ सोचकर बोली, "बेशक सफाई का काम तू रोज नहीं किया कर. एक दिन सफाई कर दे, एक दिन बाकी सारा काम. इस तरह तो वक्त पर आ पायेगी ना?"

बबली को कोई भी गृहणी छोड़ती नहीं. घरों की बीवियां नियमित काम के अलावा दस काम और उससे करवा लेती हैं.

"बबली, जब जाओगी तो ये चिट्ठियां डाक में डालती जाना."

"बबली, उसी तरफ से जा रही हो, बिजलीवाले से कहना घर पर आये."

"जाने से पहले मेरे पौधों को पानी देती जाना, बबली!"

वह काम में चुस्त है, और हाथ की साफ है, इस पर हंसमुख है, कभी उसके माथे पर बल नहीं आया, हंस-हंसकर काम करती है.

बबली कालीन पर ब्रुश लगा रही थी तब घर-मालकिन बोली, "तू चली जायेगी तो मैं क्या करूंगी, बबली?"

"और कोई मिल जायेगी, जी."

इस पर घर-मालकिन उलाहने की-सी आवाज में बोली, "पागल, यह नहीं कहती कि मैं कहीं नहीं जाऊंगी, उल्टे कहती है कोई और मिल जायेगी."

"और क्या जी," बबली बोली और खिलखिलाकर हंस दी.

"सुन बबली," मौका देखकर गृहणी ने कहा, "तू पांच घरों में काम करती है ना, तू उनमें से दो घर छोड़ दे, सिर्फ मेरे घर में काम कर. मैं तुम्हें अढ़ाई सौ दे दूंगी."

"वे मुझे छोड़ें भी तो, जी," बबली ने हंसकर कहा, "बीवियां कहां छोड़ती हैं जी, कोई एक भी नहीं छोड़ेगी."

"वे अपना फायदा देखती हैं, तुम्हें चाहिए अपना लाभ देखो. अपनी जान तोड़ने से तुम्हें क्या मिलेगा?"

फिर घर-मालकिन, सोफे पर से पांव लटकाये उसे समझाने लगी, "पांच घरों में काम करती हो तो कम-से-कम बीस जनों का काम करती हो, एक-एक घर में चार-चार जीव तो होंगे. बीस जनों के बर्तन मांजती हो, बीस जनों के कपड़े धोती हो, पांच घरों में झाड़ू लगाती हो, बोल कितना काम हुआ? यहां सारे घर में कुल मिलाकर तीन कमरे हैं और रहनेवाले कुल दो जने हैं, और मैं तुम्हें उतनी पगार देने के लिए तैयार हूं, जितनी तू तीन घरों से कमाती है. बोल, इसमें तेरा लाभ है या नहीं?"

बबली सुन रही थी और मुस्कराती जा रही थी, और साथ ही साथ कालीन पर ब्रुश भी लगा रही थी. बीवी ठीक कह रही थी, पर फिर भी वह बीवी की बात मानने के लिए तैयार नहीं थी.

आज सुबह बबली काम पर देर से पहुंची थी. पहली बस छूट गयी थी, दूसरी बस आधे घंटे बाद मिली और उसका रास्ता भी लंबा था. चालीस मिनट तो यों ही बस में निकल जाते थे और आज तो, बस जाने किन-किन रास्तों से घूमती हुई पूरे एक घंटे में पहुंची थी.

बस में से निकलते ही वह भागती हुई बैंकवाली के घर पहुंची थी. बैंकवाली सुबह साढ़े सात बजे घर से निकल जाती है. बैंक तक पहुंचने में उसे भी पैंतालीस मिनट लगते हैं, और कुछ रास्ता पैदल भी चलना पड़ता है.

"मैं आ गयी जी," बबली ने चहककर कहा. तेज-तेज चलने के कारण वह हांफ रही थी.

बैंकवाली मालकिन, सजी-धजी, कंधे से बैग लटकाये फ्लैट के बाहर ताला लगा रही थी तब बबली हांफती हुई सीढ़ियां चढ़ आयी. बैंकवाली ने मुड़कर देखा तो आश्वस्त हो गयी.

"अब आयी है, मरजाणी !"

"क्या करती जी, बस छूटी गयी."

बैंकवाली ने मुड़कर ताला खोल दिया और चाभी बबली के हाथ में देती हुई बोली, "ले पकड़ चाभी. झाड़ू-पोंछा करके कपड़े-लत्ते संभाल देना. कुर्सी पर धुलाई के कपड़े रखे हैं, उन्हें इस्त्रीवाले को दे आना. इधर सब्जीवाले से एक पाव मटर, आधा किलो प्याज और पाव-भर भिंडी लेकर रख जाना." और बैंकवाली बबली के हाथ में दस का नोट देती हुई सीढ़ियां उतर गयी.

बैंकवाली जल्दी में थी, फिर भी कुतूहलवश चलते-चलते पूछ लिया, "तेरी सगाई का क्या हुआ ?"

"टूट गयी जी."

"क्यों ?...अच्छा कल पूछूंगी, देर हो रही है. कल वक्त पर आना..." और बीवी सीढ़ियां उतर गयी थी.

* * *

बबली भी अपनी जगह खुश थी. हवा से अठखेलियां करती हुई-सी, एक घर से दूसरे घर में काम करने जा रही थी.

बैंकवाली के घर काम कर चुकने के बाद जब बबली सात बटा तीनवाली के घर पहुंची तो नौ बजनेवाले थे. बीवी मुचड़ी हुई, ढीली-ढाली नाईटी पहने आंगन में अपने गिने-चुने पौधों को पानी दे रही थी.

"आ गयी तू?"मालकिन ने तुनककर कहा, "कहां मर गयी थी इतनी देर? बबली तू तो हड्डियों का साड़ा बनती जा रही है."

बबली खड़ी हंसती रही थी.

"बस, आ गयी, देख लो."

"देर से क्यों आयी ?"

"पहली बस छूट गयी थी, जी."

"ले पकड़," मालकिन ने बबली के हाथ में खाली लोटा थमाते हुए कहा, "इस तरफ मैंने पानी दे दिया है, तू उधर, मोटर के पीछे देना. पानी की बाल्टी भरकर अंदर से ले आना. कूलर को भी ऊपर से साफ कर देना...मैं अंदर जा रही हूं.." और वह अपनी नाईटी संभालती अंदर चली गयी थी.

जहां बैंकवाली साढ़े सात बजे घर से निकल जाती थी, वहां सात बटा तीनवाली आठ बजे उठती थी. आज वह आठ बजे भी नहीं उठती, अगर पानी के नल सवा आठ बजे बंद नहीं हो जाते. बबली, बैंकवाली के घर जाने से पहले यहां आती थी, गेट की चाभी उसी के पास रहती थी, वही गेट का ताला खोलती, वही आंगन का नल खोलकर रब्बर की नली से पौधों में पानी डालती, आंगन धोती और चाभी को बंद दरवाजे के नीचे से अंदर खिसकाकर बैंकवाली के घर भाग जाती थी. सात बटा तीनवाली जब आंखें मलती हुई आठ बजे उठती तो सुबह की हवा में आंगन के पौधे नहा-धोकर, उजले-उजले, दायें-बायें हौले-हौले हिल रहे होते, झूम से रहे होते तो घर-मालकिन का मन भी खिल उठता और अनायास उसके मुंहे से निकल जाया करता था, "इस मरजाणी बबली का बड़ा सहारा है. कैसा अच्छा आंगन धो जाती है."

वहां भी आंगन धोने के बाद जब बबली अंदर गयी थी तो बीवी ने वही सवाल पूछा था, "तेरी सगाई का क्या हुआ?"

"टूट गयी जी," बबली चटककर बोली थी.

"क्यों?"

"लड़केवालों ने कहीं और बात कर ली है."

"पर अब तेरा क्या भरोसा, बबली, कहीं फिर से तेरी सगाई की बात चली तो तू नौकरी छोड़ देगी."

सात बटा तीनवाली ने कुतूहलवश पूछा था, पर मन ही मन सगाई टूट जाने पर वह संतुष्ट भी हुई थी. बबली की सगाई हो जाती तो निश्चय ही उसे कोई इंतजाम करना पड़ता. इन लोगों में चट सगाई और पट ब्याह जो चलता है. बड़ा झझट उठ खड़ा होता. आजकल बबली जैसी लड़कियां मिलती कहां हैं?

"क्यों टूटी तेरी सगाई? तू तो मुझे नोटिस दे रही थी कि अपना इंतजाम जल्दी कर लो."

बबली हंसती हुई सिर झटककर बोली, "वह भी कहता था जी, बबली बर्तन मलने का काम छोड़ दे तब हम सगाई करेंगे.पर मेरा बाप नहीं माना."

"बर्तन मलना क्यों छोड़ दे? क्या उनकी जात तुझसे ऊंची है?"

"होगी, एक जात ऊंची है."

"फिर तेरा बाप क्यों नहीं माना?"

"वह क्यों मानेंगे जी, मैं बर्तन मलना छोड़ दूं तो हम खायेंगे कहां से?"

"तेरी मां कितने घरों में काम करती है?" बीवी ने पूछा.

"दो घरों में."

"बस ? वह और घर क्यों नहीं पकड़ लेती?"

"वह दो घरों में काम करेगी जी, थक जाती है."

"और तेरी बहिन ?"

"वह पढ़ रही है बीबी जी, स्कूल जाती है, वह चौका-बर्तन के काम को हाथ नहीं लगायेगी."

"और तेरा भाई?"

"वह लड़का है जी, वह क्यों यह काम करेगा?"

"तो फिर सारा काम तू ही करती है, तू ही करेगी?"

"सही है, मैं ही करूंगी. मैं ही तो करती हूं." अपनी टुनटुनाती हंसी के साथ बबली बोली.

"इसीलिए कहती हूं, क्यों अपनी जान तोड़ रही है. अकेले मेरे घर में काम कर...और तेरा बाप?"

''वह ढुलाई का काम करते हैं बीबी जी, वजन उठाते हैं. अपने ठेले पर लोहे की छड़ें, सरिये, ऐसा माल गोदाम से लादकर जगह-जगह पहुंचाते हैं...उन्हें पगार मिलती है जी,'' बबली ने गर्व से कहा.

तभी सहसा बबली उठ खड़ी हुई थी.

''मैं जाऊंगी जी, देर हो रही है.'' और पल्ले से ही हाथ पोंछकर भागने को हुई.

''दूध तो पी जा, दासे पर रखा है.''

''कल पिऊंगी जी, अब देर हो रही है.'' और बबली सीढ़ियां उतर गयी.

बबली की सगाई का पिछला अड़ंगा सबसे ज्यादा परेशान करनेवाला था. तब भी बर्तन-बासन छोड़ने की मांग आयी थी, कि मांडे मांजनेवाली लड़की को हम घर की बहू नहीं बनायेंगे और बबली के मां-बाप ने बबली के सभी घर छुड़वा दिए थे और बबली दर्जी का काम सीखने लगी थी. उन्हीं के घर के पास नानकू नाम का एक बूढ़ा दर्जी बैठता था, उसकी तंग-सी कोठरी में बबली, पहले कुछ दिन तो काज काढ़ती और कमीजों पर बटन लगाती रही थी. सिलाई का काम सीखते हुए बबली फिर से अपने दांपत्य जीवन के सपने देखने लगी थी. लड़का मोटर-ड्राइवर था. बबली की आंखों के सामने नये-नये नजारे घूमने लगे थे. उसका ड्राइवर पति, घर के सामने मोटर लेकर आया है, और उसे घुमाने ले जा रहा है. मोटर हवा से बातें करती हुई उड़ती जा रही है. ठंडी-ठंडी हवा बबली के मुंह पर थपेड़े मार रही है और उसके बाल उड़ने लगे हैं. बबली का दिल उल्लास से भर-भर जाता था.

फिर जब वह कटाई-सिलाई का काम कुछ-कुछ सीख गयी थी और अपने हाथ से कपड़ा काटने लगी थी, उसे इस बात का विश्वास हो चला था कि वह काम सीख जायेगी और दो पैसे कमाने लायक हो जाएगी कि सहसा सगाई की बात टूट गयी थी, लड़केवालों ने किसी दूसरी जगह जुबान दे दी थी. इस बार जब बबली मुहल्ले में काम करने के लिए लौटी थी तब बीवियों के तेवर जरूर चढ़े थे. पूरे बीस दिन तक सगाई का मामला लटका रहा था. एक बीवी ने तो दूसरा इंतजाम कर भी लिया था. नौ बटा बीसवाली ने तो यहां तक कह दिया था कि अब कभी नहीं आयी तो पैसे काटूंगी. पर फिर, बबली आखिर बबली थी, उस जैसी लड़की और कहां से मिलेगी, और बबली फिर से अपने काम में जुट गयी थी, और फिर से एक गली से दूसरी गली में भागती हुई, कभी एक घर की सीढ़ियां चढ़ती, कभी दूसरे घर की सीढ़ियां उतरती नजर आने लगी थी.

डेढ़ बजते-बजते बबली बस स्टाप पर खड़ी थी. नौ बटा बीसवाली की बेटी की राह देख रही थी. बस ठीक पौने दो बजे पहुंच गयी. बस में से उतरते ही बेटी ने स्कूल का थैला बबली के कंधे पर डाल दिया और उसका हाथ पकड़कर झूमती-बतियाती हुई घर की ओर जाने लगी.

तीन बजे के आसपास वह अधेड़ उम्र की सरदारनी के घर बैठी उसके बाल काढ़ रही थी. वहां भी उसकी सगाई की चर्चा चल रही थी.

''चौका-बर्तन का काम नहीं छोड़ना बबली. जो भी कुछ कहता है, कहने दो. यह काम नहीं छोड़ना. इस काम में बरकत है...'' सरदारनी सीख दे रही थी.

फिर वह भागती हुई दो घरों के लिए दूध लेने गयी. बूथ चार बजे खुलता था पर आज लाईन लंबी थी. पूरा आधा घंटा दूध ले जाने में ही निकल गया.

दिन ढल रहा था, जब बबली डॉक्टरनी के घर कालीन पर बैठी, कपड़े इस्त्री कर रही थी, डॉक्टरनी अपने क्लीनिक जाने को तैयार हो रही थी. तैयार भी हो रही थी और बबली को समझा भी रही थी, ''कहने को तो ससुरालवाले कुछ भी कहते रहेंगे, पर घर में लड़की की कमाई के पैसे आते रहें तो उन्हें अच्छा ही लगता है. अब जहां भी तेरी सगाई हो, काम करना नहीं छोड़ना, यह बात गांठ बांध ले. यही काम करती जा...''

शाम छः बजते ही बबली मुहल्ले में से भाग खड़ी हुई. तीन नंबर की बस छह बजकर पांच मिनट पर मिलती थी और सीधी उसकी बस्ती तक ले जाती है. बबली जब बस में बैठती है तो अस्तप्राय सूर्य की लाली, घरों की छतों, दीवारों पर अभी खेल रही होती है और जब वह बस में से उतरती है तो अंधेरा घिर चुका होता है और वातावरण में धुआं गहरा रहा होता है.

ऐसी ही स्थिति कुछ-कुछ सुबह के वक्त भी होती है जब बबली काम पर निकलती है. वह बस में बैठती है, चारों ओर अंधेरा छाया होता है, पर जब बस बीवियों के मुहल्ले में पहुंचती है तो सुबह की निखरी-निखरी धूप चारों तरफ छितरी होती है.

जब बबली घर पर पहुंची तो मां ने कोठरी में दिया जला रखा था और बापू, कोठरी के बाहर चुपचाप बैठा था.

''बापू, आज तुम काम पर से जल्दी लौट आये?''

उसका बाप चुप रहा. सिर पर उड़ते रूखे, खिचड़ी बाल, धूप में संवलाया फूला हुआ चेहरा, गंदली आंखें.

''नहीं, उन्होंने मेरी छुट्टी कर दी है.''

बबली की नजर बापू के दांये पैर की ओर गयी. पैर पर मैली-सी थिगलियां बंधी थीं और पैर सूजा-सूजा लग रहा था.

''यह क्या हुआ बापू?''

उसी दिन सुबह जब उसका बाप लोहे के सरिये उठा-उठाकर ठेले पर लाद रहा था तो एक सरिया दांये पैर पर जा गिरा और जख्म हो गया. बबली के बाप ने जमीन पर से एक चीथड़ा उठाकर जख्म पर रखा और फिर से सरिया लादने लगा. उसने चीथड़े से खून को पोंछा, फिर एक और चीथड़ा उठाकर जख्म को बांध दिया और ठेला खींचने लगा. पर थोड़ी ही देर बाद टीस उठने लगी और जब बोझा उतारकर गोदाम की ओर

दास्तान-ए-समर्पण

रचनाकार जब अपनी कृति किसी व्यक्ति के नाम समर्पित करता है तो निश्चय ही यह एक भावुक-सा क्षण होता है...और इससे होती है एक खास रिश्ते की पहचान. भीष्म साहनी ने अपनी कृतियों के समर्पण जिन व्यक्तियों के नाम किये हैं...उनका विवरण इस प्रकार है.

'भाग्य रेखा'	शीला के नाम.
'भटकती राख'	मां को.
'वाङ्चू'	वरूण के लिए.
'शोभा यात्रा'	प्रिय मित्र सोम सुंदरम् के लिए.
'निशाचर'	प्रिय मित्र राधेश्याम दुबे को सप्रेम.
'पाली'	कल्पना-वरूण को सप्रेम.
'हानूश'	निर्मल वर्मा के लिए.
'कबिरा खड़ा बजार में'	प्रिय मित्र रामजी मिश्र के लिए.
'माधवी'	आदरणीय बंधु त्रिलोचन शास्त्री को.
'झरोखे'	कल्पना को.
'कड़ियां'	परीक्षित को.
'तमस'	बलराज जी को.
'मय्यादास की माड़ी'	दिवंगत माता-पिता के चरणों में.

सभी पुस्तकें राजकमल प्रकाशन, १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२ से प्रकाशित हैं.

लौट रहा था तो पांव सूज रहा था और शरीर तपने लगा था. .

गोदाम से घर की ओर वह चलने ही वाला था जब ठेकेदार ने उसकी छुट्टी कर दी.

''अब यह काम तेरे का बस नहीं है. घर पर बैठ.''

इस संक्षिप्त से ब्यौरे से बबली के मन को आघात पहुंचा हो, ऐसा कुछ नहीं था. ऐसी घटनाएं तो आये-दिन घटती रहती थीं. हां, पर यह गनीमत थी कि सगाई टूट गयी थी और बबली बीवियों के मुहल्ले में जा पहुंची थी और उन्होंने उसे रख लिया था. बबली की सगाई टूट जाने से उसके मां-बाप को केवल सदमा ही पहुंचा हो, ऐसा भी नहीं था, कुछ-कुछ संतोष भी हुआ था, कुछ-कुछ वैसा ही संतोष जैसा पांच घरों की बीवियों को हर बार बबली की सगाई टूट जाने पर हुआ करता था.

दो दिन तक बबली फिर काम से गायब रही. बाप को जख्म के कारण ताप चढ़ आया था और उसकी दवा-दारू करना था.

''मैं आ गयी जी,'' बबली ने नौ बटा बीसवाले घर में कदम रखते ही पुकारा.

''तू कहां से टपक पड़ी बबली. मैंने तो सोचा अब तू नहीं आयेगी. कहीं और सगाई की बात चल पड़ी होगी.''

''अब कहीं नहीं जाऊंगी. लौट आयी हूं,'' बबली ने हंसकर कहा.

''कल फिर तेरी सगाई की बात चली तो तू फिर छोड़ जायेगी.''

''अब सगाई की बात नहीं चलेगी बीबी जी ! अब बापू की नौकरी भी छूट गयी है.''

बैंकवाली के घर गयी तो उसने भी बबली को सिर से पांव तक देखा. वह समझ नहीं पायी कि क्या बात हुई है, बबली बार-बार गायब रहने लगी है, असमंजस में थी कि उसे रखे या नहीं रखे, जब उसकी बेटी लपककर बबली की बांहों में जा पहुंची.

बबली आश्वस्त थी कि उसका काम फिर से शुरू हो गया. फिर से वही जानी-पहचानी आवाजें. पर जब बीवियों ने फिर से उसे रख लिया तो उनके मुतालबे भी बढ़ने लगे.

बबली ने दो घर और पकड़ लिए हैं. क्या करती? बहिन सातवीं में पढ़ रही है, भाई गलियों में घूमने लगा है और बाप दिन-भर खाट पर बैठने लगा है. उससे कहो कि माल ढोने का काम न सही कोई दूसरा काम कर लो, कहीं चौकीदारी का काम कर लो, कहीं चपरासी लग जाओ, तो वह खीझकर इंकार कर देता है. कुछ काम हैं जो वर्षों तक करते रहो तो उनकी आदत हड्डियों में घुस जाती है. बबली का बाप सारी उम्र बोझा ढोता रहा है, अब कोई काम उसे रास नहीं आता, कुछ कहो तो चिल्लाने लगता है.

दो घर और पकड़ लेने से बबली की भागमभाग और ज्यादा तेज हो गयी है. धीरे-धीरे समय बीतने लगा है, उसकी सगाई की चर्चा पीछे छूटने लगी है, धीरे-धीरे दूर होती जा रही है. उसके पिता के पांव की चोट नासूर बन गयी है, अब वह कोई भी काम करने लायक नहीं रह गया है. वक्त बीतते न बीतते बबली सगाई की उम्र भी लांघ जाएगी. दर्जिन या कुछ और बन पाने की उम्र भी. अब उसके पांवों में स्फूर्ति की जगह स्थिरता आ गयी है, उत्सुकता के स्थान पर एक प्रकार की मूक उदासीनता. जब मोटर-ड्राइवर के साथ सगाई की बात चली थी तो दिल कैसे धक-धक करता था. एक बार वह मुआ सड़क पर सामने पड़ गया था तो ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी थी. वैसा अनुभव फिर कभी नहीं हुआ. अब तो बबली को अपने भविष्य का कभी ध्यान नहीं आया. कभी-कभी उसकी आंखें यह देखकर चौंक-सी जाती हैं कि बाप बूढ़ा हो चला है, और मां बड़बड़ाने लगी है, पर आगे क्या होगा, उसकी कोई धूमिल-सी रूपरेखा भी आंखों के सामने कभी नहीं उभरी. बस, वही कुछ तो देख पाती है जो दिन के उजाले में नजर आता है, उसके आगे धुंध है, जिसमें किसी आकृति अथवा रेखा अथवा रास्ते का क्षीण-सा संकेत भी नहीं मिलता. उस गहराती धुंध में उसे कुछ नजर आये, उसकी न तो अब कभी उसे इच्छा हुई है और न ही उसका इंतजार रहा है.

आज सुबह बबली नौ बटा बीसवाली के घर पहुंची तो घर-मालकिन भभककर बोली, ''यह कोई वक्त है आने का, बबली? देख तो क्या वक्त हो रहा है? अब देर से आयी तो मैं पैसे काटूंगी.''

जवाब में बबली क्षीण-सी मुस्कान के साथ बोली, ''क्या करती बीबी जी, पांच बटा तीनवाली के सिर में दर्द हो रहा था, उसे छोड़कर कैसे चली आनी?''

इस पर बीबी बरस पड़ी, ''तुम लोगों पर तरस खाने का कोई फायदा नहीं. देख तो मैंने तुम्हें कितनी चीजें दी हैं,'' और बीबी एक-एक चीज गिनने लगी और फिर तर्जनी हिलाती हुई बोली, ''अब दोनों कान खोलकर सुन लें. ठीक वक्त पर आएगी तो अगले महीने से दूसरा इंतजाम करूंगी.''

पहली बार जब एक गृहस्थी ने पैसे काटनेवाली बात कही थी तो दिल छलनी हो गया था, पर अब कोई गृहस्थी दहलीज पर से लौटा दे तो क्या, और जो चाय की प्याली पिला दे तो क्या, बबली को अब कोई फर्क नहीं पड़ता.

नौ बटा बीसवाली के घर से निकलकर जब वह सरदारनी के घर पहुंची तो और ज्यादा देर हो चुकी थी. सात घरों का काम निभाना हो तो देर-सवेर तो हो ही जाती है. सरदारनी के तेवर भी चढ़े हुए थे. ''अंदर कदम मत रखना बबली, मैंने कह दिया.''

''क्यों बीवी जी?'' बबली ने सहजभाव से कहा. जालीवाले दरवाजे के पीछे खड़ी बीवी का तमतमाया चेहरा उसे नजर आ रहा था.

''तूने तो हद्द कर दी. यह कोई वक्त है आने का? दो बज रहे हैं. बारह बजे कहा था और दो बजे चली आ रही है. मेरे घर का काम तुमने मजाक समझ रखा है.''

इस पर बबली ने फिर सहजभाव से कहा, ''क्या करती बीवीजी, मैं तो आ रही थी पर सात नंबरवाली ने रोक दिया. कहने लगी मैं दो मिनट में सहेली के घर से अपनी साड़ी ले आऊं, तू घर पर बैठ. बस मैं अभी लौटी कि लौटी, पर लौटी एक घंटे के बाद...''

''अब तू उसी के घर में बैठ.''

''उसी का काम कर.'' और बीबी ने फटाक से दरवाजा बंद कर दिया.

बबली चुपचाप खड़ी रही, और फिर दूसरे घर की ओर चल दी. □

जहां तक मेरा सवाल है, मैं तमस सीरियल से पूरी तरह संतुष्ट हूं. उपन्यास की मूल भावना को बहुत अच्छी तरह से गोविंद निहलानी ने इस धारावाहिक में पेश किया है. मुझे तो यह बेहद पसंद आया... हर तरह से, चाहे वह फिल्मांकन हो या निर्देशन, घटनाओं का चित्रण हो या पात्रों का चयन. सब कुछ मुझे बहुत उत्कृष्ट नजर आता है. उपन्यास जिस दृष्टि से लिखा गया है, धारावाहिक में उसी दृष्टि को बनाये रखा गया है और सचमुच राष्ट्रहित में यह प्रयास हुआ है. इस धारावाहिक को बनाने में देश का हित सबसे पहले ध्यान में रखा गया है.

—भीष्म साहनी

आयोजक : देवेंद्र कुमार चौबे

समकालीनों की नजर में भीष्म साहनी का साहित्य

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य को, जिन रचनाकारों ने अपनी सार्थक रचनाशीलता के माध्यम से, एक व्यापक फलक प्रदान किया, उनमें भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है. 'झरोखे', 'तमस', 'बसंती', 'मय्यादास की माड़ी', जैसे उपन्यास, 'चीफ की दावत', 'अमृतसर आ गया है', 'ओ हरामजादे', 'वाड़ चू', 'त्रास' जैसी कहानियां और 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में', 'माध्वी' जैसे नाटकों के माध्यम से, हिंदी साहित्य में एक सार्थक हस्तक्षेप करते हुए भीष्म साहनी ने विभाजन की त्रासदी के साथ ही टूटते मानवीय मूल्यों, कला और संस्कृति के क्षेत्र में बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप, निम्न और मध्यवर्गीय चरित्र को पूरी जीवंतता के साथ उकेरा है. इनकी कहानियों में भारतीय जन-जीवन पूरे परिवेश के साथ उभरकर सामने आया है. विचारधारा के स्तर पर वे मार्क्सवादी हैं तथा इसी में वे समस्याओं के हल की तलाश करते हैं. प्रगतिशील लेखक संघ के वे महासचिव भी रह चुके हैं इसीलिए उनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता लगभग स्पष्ट ही है.

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमने उनके कथा साहित्य को टटोलने की कोशिश की, समकालीनों की राय जानी. यहां प्रस्तुत हैं उनके समकालीनों के विचार :

उन्होंने बाबू की मानसिकता को जिया है.

विष्णु प्रभाकर

भीष्म साहनी को मैंने एक पाठक की दृष्टि से पढ़ा है. उनकी कहानियां केवल भावनात्मक स्तर पर ही प्रभावित नहीं करतीं, बल्कि हमारे संस्कारों पर गहरे चोट करती हैं. खासकर उनकी कहानी 'चीफ की दावत'. यह बहुत ही सहज रूप से लिखी गयी कहानी है. इसमें मां के प्रति एक पुत्र का जो दृष्टिकोण है, वही चीज प्रभावित करती है. एक प्रकार से यह कहानी उस दोगली संस्कृति को प्रस्तुत करती है, जिसमें हम आज जी रहे हैं. 'अमृतसर आ गया है' कहानी भी, एक चरित्र के माध्यम से मानव स्वभाव को प्रस्तुत करती है. यह चरित्र बहुत ही सहज है तथा ऐसा लगता है कि भीष्म साहनी कहीं भी इस चरित्र के विकास के लिए प्रयत्न नहीं करते. वस्तुतः महान चरित्र वही होता है, जो अपने आप आगे बढ़ जाता है. 'अमृतसर आ गया है' के बाबू के साथ भी ऐसा ही हुआ है. बाबू की मानसिकता को लगता है, भीष्म साहनी ने खुद जिया है. इस मामले में मैं भीष्म को यशपाल से ऊपर मानता हूं. खासकर विभाजन की त्रासदी को लेकर उन्होंने जिन चरित्रों का निर्माण किया है उसमें बड़ी खूबी के साथ सारी स्थितियां सहज भाव से आती हैं.

प्रेमचंद यह मानते थे कि जिस साहित्य का समाज से सरोकार नहीं है, वह साहित्य नहीं है. भीष्म साहनी भी इसी रूप में प्रेमचंद से जुड़ते हैं. वैसे भी जब आदमी अपने को व्यक्त करता है, तो वह समाज से जुड़ता ही है. बिना जुड़े वह कुछ कह ही नहीं सकता. प्रसाद भी प्राचीन काल में झांकते हैं तो उसी संदर्भ में कि वे वर्तमान से उसकी तुलना कर सकें.

भीष्म साहनी बहुत ही संवेदनशील व्यक्ति हैं. इसका असर भी उनके साहित्य में देखने को मिलता है. उनके इस सरल और सौम्य व्यक्तित्व के कारण ही उन पर मार्क्सवाद उस रूप में हावी नहीं है, जैसा अन्य वामपंथी लेखकों में देखने को मिलता है. इसीलिए बहुत सारे वामपंथी लेखक कच्चेपन के शिकार हैं. बहुत सारी खूबियों के बाद भी भीष्म साहनी पर मार्क्सवाद का प्रभाव है. इसी कारण उनकी कई कहानियों की संवेदना बाधित होती है. उर्दू में मंटो की एक कहानी है 'टोबा टेकसिंह', उसमें कहीं भी आग्रह नहीं है. फिर भी इस कहानी में विभाजन की कटुता और मार्मिकता जिस भयावह स्थिति के साथ उभरकर आयी है वह भीष्म में, यहां तक कि यशपाल में भी नहीं है.

वे सच्चे अर्थों में धर्म निरपेक्ष और प्रतिबद्ध हैं

डा. नामवर सिंह

भीष्म साहनी की कहानियों पर अभी तक मैंने अलग से कुछ नहीं लिखा और इसका मुझे अफसोस भी है. किंतु यह सच है कि मैं शुरू से ही उनकी कहानियों का प्रशंसक रहा हूं. उनकी कहानी 'चीफ की दावत' के आधार पर अच्छी कहानी की विशेषताओं का निरूपण मैंने तभी किया था, जब न तो उस कहानी की कहीं चर्चा हुई थी और न नये कहानीकारों में भीष्म साहनी का कहीं जिक्र आता था.

सादगी और सहजता भीष्म जी की कहानी कला की ऐसी खूबियां हैं, जो प्रेमचंद के अलावा और कहीं नहीं दिखाई देती हैं. जीवन की विडंबनापूर्ण स्थितियों की पहचान भी भीष्म साहनी में अप्रतिम है. यह विडंबना उनकी अनेक अच्छी कहानियों की जान है. 'चीफ की दावत' में जिस मां को चीफ की नजर से छुपाने की कोशिश की जाती है, वही अंततः दावत की सबसे बड़ी उपलब्धि साबित होती है. 'वाङ. चू' कहानी में उस बौद्ध भिक्षु के जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि वह अपने देश में भारत प्रेमी होने के कारण यातना सहता है और भारत में सताया जाता है चीनी जासूस समझकर. ऐसी ही एक और मार्मिक कहानी है 'त्रास', जिसमें एक मोटरकारवाला साइकिलवाले को टक्कर मारकर घायल कर देता है. गरीब

साइकिलवाला उसे अपना परम हितैषी और दयालु समझता है, जबकि मोटरवाला इतना कमीना है कि मुआवजे के रूप में पांच रुपया देने में भी सोच-विचार करता है. यही वह कहानी है जिसमें भीष्म जी ने आधुनिक महानगरों में पलनेवाली अमानुषिक घृणा की ओर संकेत किया है और यह भी बताया है कि आधुनिक अमूर्त घृणा पुराने जमाने की सरल घृणा से कितनी अलग है. देश के विभाजन पर वैसे तो कई कहानियां लिखी गयी हैं, लेकिन 'अमृतसर आ गया है' का स्थान उनमें विशिष्ट है—खासकर के उस दब्बू बाबू के मनोविज्ञान के सूक्ष्म चित्रण के कारण जो अमृतसर आते ही शेर हो जाता है और उसके अंदर दबी हुई सांप्रदायिक हिंसा उग्र रूप धारण कर लेती है.

हिंदी में भीष्म साहनी को प्रतिष्ठा उनके उपन्यास 'तमस' के कारण मिली और वह भी लगभग सातवें दशक के अंत में. कारण स्पष्ट ही इस उपन्यास की विषयवस्तु है अर्थात देश के विभाजन की त्रासदी. इसके पहले यशपाल का 'झूठा-सच' जैसा विशाल उपन्यास छप चुका था. इसके बावजूद भीष्म जी ने 'तमस' लिखना आवश्यक समझा और उसके द्वारा उनको ख्याति भी मिली. खासतौर से गोविंद निहलानी की फिल्म के बाद. 'तमस' निश्चय ही देश के विभाजन पर लिखा हुआ एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, किंतु मेरी नजर में वह न तो उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और न ही देश के विभाजन पर लिखे हुए उर्दू-हिंदी के अन्य उपन्यासों में ही कोई विशिष्ट कृति. उदाहरण के लिए कुर्रतुल ऐन हैदर का 'आग का दरिया' और अब्दुला हुसैन का 'उदास नस्लें' यहां तक कि यशपाल का 'झूठा-सच' उससे भी बेहतर उपन्यास है. मुझे तो भीष्मजी के उपन्यासों में 'मय्यादास की माड़ी' नामक उपन्यास, जो अभी ही में छपा है, कई दृष्टियों से ज्यादा अच्छा लगा.

मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि अपने उपन्यासों की अपेक्षा भीष्म जी अपनी कहानियों के लिए ज्यादा याद किये जाएंगे. प्रेमचंद की तरह उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा कहानी विधा के अंदर अधिक कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई है. वैसे प्रेमचंद के समान ही भीष्म जी के बारे में यह प्रश्न बराबर विवादास्पद रहा है.

भीष्मजी की साहित्यिक यात्रा की एक महत्वपूर्ण मंजिल है नाटक की दिशा में उनका प्रयास. लोग भूल ही गये हैं कि भीष्म साहनी कहानी की दुनिया में कदम रखने से पहले 'इप्टा' से जुड़े हुए थे. उस आरंभिक रुचि की अभिव्यक्ति लगभग बीस-पच्चीस साल बाद हुई. यह सुखद आश्चर्य है, किंतु अपने पहले नाटक 'हानूश' के द्वारा ही नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बना ली और हिंदी नाट्य संसार में एक शून्य को, सार्थक ढंग से भरने का प्रयास भी किया. इसी तरह 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की लोकप्रियता ने 'तमस' के साथ भीष्म साहनी की प्रतिष्ठा में अप्रत्याशित वृद्धि की. किंतु मुझे तो उनका सबसे अच्छा नाटक 'माधवी' लगा. खासकर महाभारत के पुराने आख्यानों में नयी सूझ और नया अर्थ भरने के प्रयास के कारण. हिंदी में नारी मुक्ति के प्रश्न पर लिखा हुआ ऐसा मार्मिक नाटक मेरे देखने में नहीं आया. यदि भीष्म साहनी के नाटकों के लिए उपयुक्त रंगमंच मिले तो यह प्रमाणित हो जाएगा कि उनमें मोहन राकेश से कहीं बड़ी नाट्य प्रतिभा है.

भीष्म साहनी वर्तमान हिंदी जगत के उन थोड़े से लेखकों में से हैं, जो सच्चे अर्थों में धर्म निरपेक्ष और प्रतिबद्ध हैं. खास बात यह है कि वे अपनी रचनाओं में इस आस्था का ढोल नहीं पीटते. यह विशेषता उनके व्यक्तित्व का इतना अभिन्न अंग है कि इसे उन्हें दिखावे की जरूरत नहीं पड़ती. उनके सौम्य, शालीन, सहज और विनम्र व्यक्तित्व के साथ विचारों की दृढ़ प्रतिबद्धता इतना घुलमिल गयी है कि कभी-कभी उसके बारे में भ्रम भी होता है. बिना आक्रामक हुए भी कोई लेखक प्रतिबद्ध हो सकता है इसकी सर्वोत्तम मिसाल भीष्म साहनी हैं.

इस पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी वे श्रम और साधना में किसी भी युवा लेखक से युवतर दिखाई पड़ते हैं. उनकी शक्ति का मूल स्रोत क्या है, यह मेरे लिए हमेशा कौतुहल और आश्चर्य का विषय रहा है.

सहज मानवीय ऊष्मा के संवेदनशील कथाकार हैं

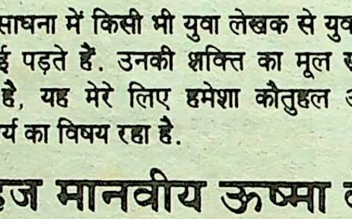

राजेंद्र यादव

मेरी दृष्टि में भीष्म साहनी सहज मानवीय ऊष्मा के संवेदनशील कथाकार हैं. मोटे रूप में उनके साहित्य को पढ़कर मेरे मन में यही भावना उठती है. और मेरी यह बात इस तथ्य से पुष्ट होती है कि उनके यहां बाकायदा 'विलेन' जैसा कोई नहीं है.

प्रेमचंद भी इसी प्रकार सहज मानवीय भावनाओं के रचनाकार हैं और इसलिए मुझे लगता है कि वे प्रेमचंद के ज्यादा निकट हैं. हालांकि प्रेमचंद की अपेक्षा उनका कलात्मक पक्ष ज्यादा मजबूत है. वे अपनी कहानियों को, उपन्यासों को ज्यादा सावधानी से तराशते हैं, इसीलिए भीष्म के पास अच्छी कहानियां प्रेमचंद के मुकाबले शायद ज्यादा हैं. यह हो सकता है कि उस तरह की एक खास धमाका मचानेवाली, शोर मचानेवाली, आलोचकों को ललकारनेवाली कहानियां भीष्म के पास नहीं है जैसे कि प्रेमचंद के पास 'कफन', 'पूस की रात' या 'शतरंज के खिलाड़ी' हैं. इस तरह की कहानियां जो एक तरह से हमारी चेतना पर एक धक्का देती है—ऐसी कहानियां शायद भीष्म के पास कम हैं. इस तरह के धक्कों में वे विश्वास नहीं करते.

'तमस' सघन स्थिति को प्रस्तुत करनेवाली रचना है और विभाजन की त्रासदी पर केंद्रित है. लेकिन इस विषय पर मंटो जितनी तीखी प्रतिक्रिया और कटु टिप्पणियोंवाले लेखक हैं, भीष्म साहनी उतने नहीं हैं. विपरीत स्थितियों को देखकर, अस्वीकार की जानेवाली बातों को लेकर, आदमी में जो गुस्सा होता है, वह गुस्सा भीष्म साहनी में नहीं दिखाई देता है. इसलिए उनकी प्रतिक्रिया या उनका प्रतिरोध उतना तीव्र नहीं है, जितना हमें यशपाल, मंटो या पंजाब की विभाजन की त्रासदी से गुजरे हुए अन्य रचनाकारों में दिखाई देता है...उनमें एक खास तरह का ठंठापन है. जिसे कुछ लोग आलोचना करते वक्त एक 'यांत्रिक एप्रोच' कहते हैं. इस बात पर मुझे शिकायत है भीष्म से कि वे बहुत तीव्र आवेगों के कथाकार नहीं हैं, चाहे वह प्रेम, भावना या मानवीयता हो. यही कारण है कि इस स्तर पर 'तमस' की मां भी एक सामान्य, निरीह और असहाय बूढ़ी औरत है. इसलिए उसमें अलग से कुछ नहीं है, वो 'टाइप्ड' ज्यादा है, व्यक्ति कम.

भीष्म साहनी हमारे वरिष्ठ और महत्वपूर्ण रचनाकार हैं. हाल ही में प्रकाशित 'मय्यादास की माड़ी' संयोग से मुझे उनके पिछले सारे लेखन से अलग लगती है.

भीष्म साहनी का समग्रता में अभी मूल्यांकन नहीं हुआ है. अब तक उनके पूरे कथा साहित्य को, पूरी मानसिक बनावट को एक गहरी अंतर्दृष्टि के साथ समझने की कोशिश नहीं हुई है. शायद हर लेखक को अपने मूल्यांकन से शिकायत होती है. मुझे तो बहुत ज्यादा है. भीष्म साहनी को पता नहीं है या नहीं.

भीष्मजी ने लगातार अपने शिल्प को तोड़ा है

कमलेश्वर

भीष्म साहनी ने अपने कथा साहित्य में जीवन की सच्चाई को बहुत ही गहराई और सघनता से पेश किया है. हिंदी कथा में जो व्याप्ति थी, और जो अभी तक छोटे-छोटे क्षेत्रों में या अंचलों में या मानवीय संबंधों की गुच्छियों में उलझी हुई थी, उसको उन्होंने संवेदना के स्तर पर उठाया और बड़े संवेदनात्मक और संवेदना से भरे चरित्र और स्थितियों और उन स्थितियों में छिपा हुआ इतिहास और समाज का दंश—उसको उद्घाटित किया.

परंपरा की भी अपनी एक जड़ता होती है और इस जड़ता में लेखक को बांधो क्यों? मैं समझता हूं भीष्म ने अपनी तरह से अपनी परंपरा का भी निर्वाह किया है. दूसरी बात, कोई भी लेखक परंपरा में होता भी है और परंपरा के बाहर भी होता है. तभी वह कुछ नया दे पाता है. भीष्म जी ने ऐसा किया.

कोई भी लेखक किसी के अनुभव को दुहराता नहीं है. सांप्रदायिक वैमनस्य को लेकर जो कुछ अनुभव भीष्म के हैं, वो प्रेमचंद से ज्यादा गहरे हैं. इसलिए कि भीष्म ने उस भयनाक नरसंहार को खुद देखा है, सहा है, जिया है, जबकि प्रेमचंद के सामने वे अनुभव नहीं थे. इसी प्रकार विभाजन की त्रासदी, यातना, दुख को लेकर जो कुछ मंटो ने लिखा, यशपाल जी ने उसको एक बड़े भारी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पेश किया और भीष्म ने उसी इतिहास का परिप्रेक्ष्य लेते हुए उस दिशा को छुआ, जो यशपाल नहीं छूना चाहते थे. भीष्म ने उसमें से मानवीय पक्ष को ज्यादा उजागर किया है, वनस्वित त्रास, संत्रास के. उन्होंने उस नरसंहार के बीच से आधे जीवित, आधी सांस लेते हुए लोगों को फिर कहीं-न-कहीं ऐसे उठाकर खड़ा किया कि वे हमें लगता है चाहे घाव उनके शरीर पर हों, मन पर हों, लेकिन अपनी इंसानियत पर घाव लगने नहीं पाये.

विचारधारा के स्तर पर भीष्म साहनी मार्क्सवादी हैं और मुझे लगता है कि वे मार्क्सवाद में ही समस्याओं का निदान देखते हैं. यह ठीक ही है क्योंकि हर लेखक को यह अधिकार होता है कि वह किस विचारधारा से जुड़े या किस पार्टी का पक्ष ले. हर किसी की अपनी दृष्टि होती है और उसी के अनुसार वह लिखता है, काम करता है, क्योंकि उसकी आस्था, उसका विश्वास, उसकी प्रतिबद्धता कहीं तो टिकती ही है. यही कारण है कि भीष्म ने अपने लेखन के माध्यम से उन शक्तियों को बेनकाब किया जो विभाजन की त्रासदी के कारण थे.

भीष्म साहनी ने लगातार अपने शिल्प को तोड़ा है. उन्होंने जो सहजता इस समय के अंतराल में रचनाकार के रूप में प्राप्त की है, वह बड़ी विरल चीज है.

एक कथाकार के रूप में भीष्म का जो देय है, वह केवल हिंदी कहानी को नहीं, बल्कि भारतीय कहानी को, और केवल भारतीय कहानी को नहीं आज की जो जीवंत प्रगतिकामी—प्रगतिशील और प्रगतिवाद दोनों शब्दों से परहेज नहीं कर रहा...लेकिन जो प्रगतिकामी समाज है, किसी भी देश का, मैं समझता हूं कि ये कहना चाहिए कि तीसरी दुनिया का जो लेखन है; उस तीसरी दुनिया के लेखन में भीष्म साहनी का बहुत बड़ा योगदान है.

भीष्मजी इस दौर के महत्वपूर्ण लेखक हैं

शानी

भीष्म साहनी ऐसे लेखक नहीं हैं जिनके कथा साहित्य के विषय में कोई परिचय दिया जाए, राय दी जाये. वे अग्रज कथाकार हैं तथा उन्होंने हिंदी कथा साहित्य में बहुत ही सार्थक ढंग से हस्तक्षेप किया है. मेरी निश्चित धारणा है कि भीष्म साहनी उन थोड़े से लेखकों में से हैं जो वास्तविक जन सरोकार के साथ जुड़े रहे हैं. सच्चा लेखक होने का अर्थ ही है, बुनियादी तौर पर जनता से जुड़ना. जब आप दमित या शोषित के साथ नहीं हैं तो आप लेखक हैं ही नहीं.

भीष्म साहनी अपने संपूर्ण लेखन में चाहे वह कहानी हो या उपन्यास या नाटक-सीधे जनता खासकर आम जनजीवन से जुड़े रहे हैं. इसी कारण उन्होंने हिंदी को कुछ बहुत अच्छी कहानियां दीं. वे उन थोड़े से लेखकों में से हैं, जो अच्छी कहानियां लिखते हैं और लोगों को निराश नहीं करते. चलताऊ ढंग से उन्होंने कुछ नहीं लिखा है. बहुत साफ शब्दों में मैं एक बात कहना चाहूंगा. मैं उनको जितना अच्छा कहानीकार समझता हूं, उतना अच्छा उपन्यासकार नहीं. अब जैसे 'तमस' उनका बहुचर्चित उपन्यास है. लेकिन मुझे लगता है कि यह उपन्यास एक तरह से, हिंदू-मुस्लिम समस्या को या सांप्रदायिकता को बहुत सतही ढंग से छूता है. एक ऐसी समस्यां को, जिसके लिए इतिहास में जाने की जरूरत थी, उन्होंने केवल अंग्रेजों के मत्थे ठोक दिया है. लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी में इस विषय को, सांप्रदायिकता और विभाजन को लेकर जूझनेवाले थोड़े से लेखकों में भीष्म साहनी हैं—खासकर यशपाल के बाद. उन्होंने हिंदी को 'तमस' और 'अमृतसर आ गया है' जैसा कथा साहित्य दिया. मेरा ख्याल है हिंदी में भीष्म साहनी और कृष्णा सोबती जैसे कथाकार हैं, जिन्होंने यशपाल के अतिरिक्त इस समस्या को देखने की कोशिश की. वैसे यह आश्चर्य की बात है कि हिंदी के अधिकांश लेखकों ने सांप्रदायिक वैमनस्य जैसी समस्या को छुआ नहीं है अथवा छूते-छूते रह गये हैं. शायद वजह यह भी है कि हिंदी के अधिकांश लेखकों ने, जो खासकर हिंदी भाषी प्रदेशों से आते हैं—इस खून-खराबे को उस हद तक नहीं देखा है जितना पंजाब, दिल्ली या पाकिस्तान के लेखकों ने देखा है. भीष्म जी ने, मंटो ने, सीधे उससे रूबरू होकर लिखा, इसलिए, 'अमृतसर आ गया है,' 'टोबा टेकसिंह' जैसी कहानी वे दे पाये.

एक लेखक का सबसे बड़ा दायित्व यही होता है कि बहुत सारे छुपे हुए जो पात्र हैं, जो समाज में देखे-अनदेखे रह जाते हैं, हम जानते हैं उनको, लेकिन अनदेखा कर दिया जाता है, लेखक उन्हें ढूंढ निकालता है. रेणु ने ऐसा किया. 'हीरामन' जैसे चरित्र को सहज ही नहीं भुलाया जा सकता है. भीष्म साहनी ने भी ऐसा ही किया. भीष्म जी के बारे में मैं जब भी सोचता हूं, खासकर उनके पात्रों के बारे में, तो मुझे उस मां की बहुत याद आती है, जो टूटे हुए फर्नीचर की तरह छुपायी जाती है. उसका नाम महत्वपूर्ण नहीं है, लेखक की यह दृष्टि महत्वपूर्ण है, जो ऐसे पात्रों को समाज में ढूंढती है. □

कथाकार भीष्म साहनी

□ राजकुमार सैनी

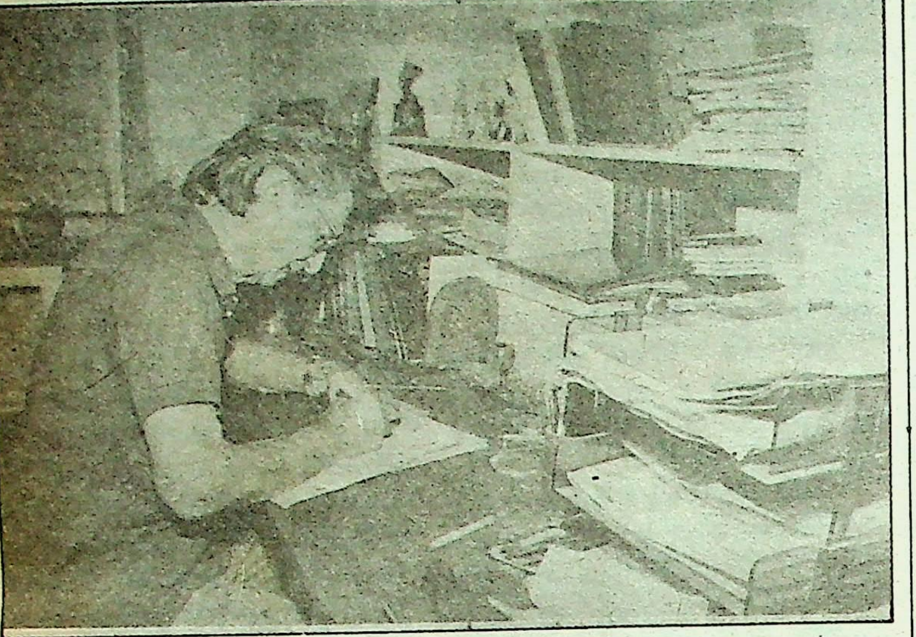

सन् १९४७ के बाद के प्रमुख कथाकारों में भीष्म साहनी का नाम अब आदर के साथ लिया जाता है. गैर-सांप्रदायिक (सेक्यूलर) चेतना के वे एक प्रतिनिधिक और प्रगतिशील रचनाकार हैं. हिंदी में पंजाबी अंचल के स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, अज्ञेय और भीष्म साहनी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. इनमें यशपाल के बाद भीष्म साहनी उक्त अंचल के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासकार एवं कहानीरकार हैं. रावलपिंडी के मुस्लिम बहुल क्षेत्र में लालित-पोषित युवा रचनाकार भीष्म साहनी का प्रारंभ और विकास आर्यसमाजी वातावरण में हुआ. इसी दौरान युवा भीष्म को हिंदुओं, मुसलमानों और सिक्खों के जीवन-यापन का घनिष्ठ परिचय मिला और इस मिली-जुली संस्कृति को निकट से आत्मसात करने तथा परखने का अवसर मिला. इस मिश्रित माहौल ने उनकी जीवनदृष्टि को सकारात्मक और सक्रियात्मक ढंग से प्रभावित किया. इसी का सुपरिणाम हुआ कि भीष्म साहनी एक सेक्युलर और प्रगतिशील दृष्टिसंपन्न युवा कथाकार के रूप में साहित्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए. सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय वे कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता थे. मार्च १९४७ के सांप्रदायिक दंगों के विरुद्ध उन्होंने रावलपिंडी की राज्य कांग्रेस समिति में शिरकत की. उस समय वहां जो राहत-समिति बनी, उसके वे सदस्य थे. इस समय के अनुभवों और प्रेक्षणों को संजोकर उन्होंने 'तमस' उपन्यास रचा. 'तमस' उपन्यास में रावलपिंडी और उसके आसपास की कई घटनाएं सूक्ष्य या दृश्य रूप में प्रस्तुत हुई हैं. जो सन् १९४२ से १९४७ के बीच वहां घट रही थीं. एक तरह से ऐसी घटनाएं उस समय पूरे पंजाब में घट रही थीं और उन्होंने देश के इतिहास को अपने ढंग से प्रभावित-कुप्रभावित किया था. 'तमस' उपन्यास में ऐसी घटनाओं और तत्संबंधी संदर्भों को रचनात्मक स्तर पर चरितार्थ किया गया है. इसीलिए वह उस समय का एक प्रामाणिक और रचनात्मक दस्तावेज बन गया है.

सन १९४७ में ही श्री भीष्म साहनी 'इप्टा' से जुड़ गये और उनका वामपंथी झुकाव स्पष्ट से स्पष्टतर होता गया. 'इप्टा' में उन्होंने अपने बड़े भाई बलराज साहनी के मार्ग निर्देशन में एक अभिनेता के रूप में कार्य किया. श्री बलराज साहनी अपने समय के एक अत्यंत लोकप्रिय और प्रमुख अभिनेता थे. इसके अतिरिक्त वे स्वयं एक महत्वपूर्ण लेखक थे. भीष्म साहनी के कलात्मक व्यक्तित्व के विकास में बलराज साहनी का विशेष योगदान रहा. उस समय बलराज साहनी ने एक लोकप्रिय नाटक का निर्देशन किया. भीष्म साहनी की सुरुचि संपन्न और कलात्मक दृष्टि संपन्न पत्नी श्रीमती शीला साहनी और कैफी आजमी की पत्नी श्रीमती शौकत आजमी ने इस नाटक में एक साथ अभिनय किया. नाटक का नाम 'भूतगाड़ी' था.

सन १९५० में भीष्म साहनी दिल्ली आकर बस गये और उन्होंने दिल्ली कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक के रूप में कार्य किया. १९५७ से १९६३ तक वे मास्को में रहे और वहां ढेर सारा अनुवाद कार्य किया. १६ वर्ष की आयु में कथा-लेखन आरंभ किया. पहली कहानी 'नीली आंखें' प्रकाशित हुई. यह कहानी 'हंस' पत्रिका में छपी थी, जिसका संपादन उन दिनों कुशल कथाकार, संपादक और समालोचक अमृत राय कर रहे थे.

भीष्म साहनी के कथाकार व्यक्तित्व का जो सिलसिला उस समय शुरू हुआ, वह आज तक चल रहा है. आज भी वे थके नहीं हैं. अभी हाल ही में प्रकाशित उनका 'मय्यादास की माड़ी' शीर्षक उपन्यास हमारे समय का एक महत्वपूर्ण हिंदी उपन्यास है. इस उपन्यास में उन्होंने पंजाबी प्रांतर में ढहते हुए सामंतवाद की जर्जर इमारत को, उसकी एक-एक ईंट को उलट-पलटकर दिखाया है और यह साबित कर दिया है कि वे (यशपाल के बाद) हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद की विरासत के दूसरे प्रामाणिक दावेदार हैं. 'मय्यादास की माड़ी' में 'गोदान' जैसी संश्लिष्टता, सहजता, कला धैर्य व श्रमशीलता, रचनात्मक प्रौढ़ता और संजीदगी का अद्भुत संयोग है.

बलराज साहनी ने 'सारिका' के ही अगस्त १९६५ अंक में अपने छोटे भाई की कला के बारे में लिखा था— ''साधारण लोगों की छोटी-छोटी बातें वह खुद अपनी आंखों से देखता है. उन लोगों की सामाजिक और व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है. पात्रों को कल्पना में नहीं, जीवन में खोजता और चुनता है.''

इनके 'तमस' और 'बसंती' उपनयासों के बारे में भी यह कथन युक्तियुक्त बैठता है हालांकि यह कथन काफी पहले ही कह दिया गया था. 'तमस' और 'बसंती' के अधिकांश पात्र आंखों देखे हैं. पात्र ही नहीं अधिकांश घटनाएं भी आंखों देखी हैं. 'तमस' में रावलपिंडी और 'बसंती' में दिल्ली का परिवेश और प्रतिवेश बोलता है. बसंती पटेल नगर दिल्ली के एक ओर उग आयी झोंपड़ बस्ती की नारी है. ये बस्तियां बार-बार उजड़ती हैं और बार-बार बसती हैं. श्याम कश्यप के शब्दों में— ''दिल्ली को फैलने, विकसित होने और उसके समानांतर इन मेहनतकशों के बार-बार बसकर उजड़ने की त्रासदी के विरोधाभास के माध्यम से भीष्म साहनी ने हमारे देश में पूंजीवाद

के विस्तार और विकास की निर्मम कहानी कह दी है.'' 'मय्यादास की माड़ी' के अधिकांश चरित्र कल्पना की उपज हैं. कल्पना की उपज होते हुए भी वे वास्तविक जीवन जैसे प्रत्यक्ष और विश्वसनीय हैं. इसका कारण शायद यह है कि लेखक का मानस इतना प्रौढ़ और परिपक्व हो चुका है कि उसकी कल्पनाशीलता वायवी और रहस्यपरक नहीं है. यह यथार्थ की तरह ठोस और प्रत्यक्ष है. तथापि इस उपन्यास का एक पात्र 'कल्ला' आंखों—देखा पात्र है और यही पात्र, उपन्यास में चित्रित जीवन की आयरनी को सर्वाधिक मार्मिकता के साथ उभारता चलता है. इस उपन्यास में भीष्म साहनी की कथा-कला का स्थापत्य उल्लेखनीय है. बड़ी मेहनत के साथ वे नींव खोदते हैं, फिर एक-एक ईंट चुनते हैं. दीवारें खड़ी करते हैं. चारदीवारी तैयार हो जाती है. फिर उसके भीतर एक मजबूत इमारत उभरती नजर आती है.

सामंतवाद की ढहती हुई इमारत की एक-एक ईंट को परखते हुए, उसके सारे मलबे का सर्जनात्मक इस्तेमाल करते हुए वे अपने उपन्यास की इमारत निर्मित करते हैं. डा. रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' में निराला के काव्य में स्थापत्य कला का उल्लेख किया है. भीष्मजी के इस उपन्यास में भी स्थापत्य कला देखने योग्य है.

उक्त तीन उपन्यासों के अतिरिक्त भीष्मजी ने और भी उपन्यास लिखे हैं. सभी उपन्यासों की काल क्रमानुसार सूची इस प्रकार है:—

१. 'झरोखे' (१९६७), २. 'कड़ियां' (१९७१) ३. 'तमस' (१९७४), ४. 'बसंती' (१९८०) और ५. 'मय्यादास की माड़ी' (१९८८).

इसके अतिरिक्त वे एक चर्चित नाटककार भी हैं. नाटकों की सूची इस प्रकार है:—

१. 'हानूश (१९७७), २. 'कबिरा खड़ा बजार में' (१९८१) और ३. 'माधवी'. संयोग ही है कि तीनों नाटक अपनी कथावस्तु के लिए इतिहास, अतीत और मिथक के मुखापेक्षी रहे हैं. 'हानूश' में वे लगभग ५०० वर्ष पहले प्राग नगर में हानूश नाम के एक ताला मिस्त्री की संघर्ष गाथा रचते हैं. 'कबिरा खड़ा बजार में' युवा कबीर की कथा है जो सच्चाई और ईमानदारी की भाषा बोलने के जुर्म में कमर पर कोड़े खाता है. 'माधवी' मध्ययुगीन नारी के साथ होने वाले अन्याय और उसके शोषण का कच्चा चिट्ठा है. तीनों नाटकों की अंतर्वस्तु में एक संघर्षधर्मी जिजीविषा स्पंदित होती है जिसका स्मरण भी आज के मानव और मानवी को प्रेरणा व स्फूर्ति प्रदान करता है.

भीष्मजी ने अपने बड़े भाई बलराज साहनी की जीवनी भी लिखी है. यह जीवनी अंग्रेजी में है तथा' बलराज माई ब्रदर' (१९८१) के नाम से प्रकाशित है.

भीष्म साहनी एक कुशल अनुवादक भी हैं. इन्होंने सोवियत साहित्य की लगभग २५ कृतियों के अनुवाद किये हैं, जिनमें तालस्ताय के 'रिसरक्शन' का अनुवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है और सर्वोत्कृष्ट बन पड़ा है. इसके अतिरिक्त इन्होंने यशपाल, अमरकांत, कमलेश्वर और रमाकांत तथा पंजाबी के कथाकार नवतेजसिंह और गुरुदयाल सिंह की पंजाबी कहानियों का भी अंग्रेजी में अनुवाद किया है. तथापि प्रमुख रूप से वे एक प्रौढ़ उपन्यासकार और कहानीकार ही हैं. उपन्यासकार के रूप में उनकी चर्चा की जा चुकी है.

भीष्मजी की कहानियों में 'वाङ चू', 'नया मकान', 'लीला नंदलाल की', 'चीफ की दावत', और 'अमृतसर आ गया है' जैसी कुछ कहानियां मुझे विशेष रूप से पसंद हैं.

> ''भीष्मजी की तरह रचनाकार होना बहुत कठिन है. वर्षों तक चुपचाप और लगातार परिश्रम करते रहने से ही उनका ऐसा प्रखर रचना व्यक्तित्व उभरकर आया है. चींटी की तरह वे मेहनती और संग्रही हैं.''
>
> —अमरकांत

'नया मकान' शीर्षक कहानी में एक मध्यवर्गीय युवक की मानसिकता का व्यंग्यात्मक चित्रण है जो वर्गापसरण की प्रक्रिया से गुजरने का दावा करता रहता है, किंतु व्यवहार और आचरण में कुलीनों की नकल करता है. नवधनाढ्य मानसिकता से ग्रस्त है और आर्थिक महत्वकांक्षा की सीढ़ियां चढ़ रहा है.

'चीफ की दावत' कहानी में मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं के सटीक चित्रण के माध्यम से मौजूदा व्यवस्था द्वारा पालित मूल्यधर्मिता के पाखंड को हम खंड-खंड होते हुए देखते हैं. कहानी का प्रमुख पात्र अपने चीफ बास को दावत पर बुलाता है. इस दावत के अवसर पर सीधी-सादी बूढ़ी मां एक गैर जरूरी सामान की तरह निरर्थक हो जाती है, लेकिन, चीफ को उसी बुढ़िया के हाथ की बनायी हुई फुलकारी ही पसंद आती है. विडंबना की पराकाष्ठा यह है कि जिस मां को चीफ की नजर से परे रखने की भरसक कोशिश की जाती है, उसी के हाथ की बनाई चीज चीफ को अच्छी लगती है. कहानी का अंत व्यंग्य को करुणा के बीज भाव से आच्छादित कर लेता है. वह व्यंग्य सार्थक होता है जो करुणा को उद्घाटित कर सके. हरिशंकर परसाई की व्यंग्य-कथा 'मन्नु भैया की बारात' का अंत भी ऐसे ही करुणा तक व्यंग्य की सृष्टि करता है. 'चीफ की दावत' कहानी के अंत में मां बेटे से कहती है—''मुझे हरिद्वार भेज दो.'' वह समझ गयी है कि बेटे के घर में अब वह फालतू और अनावश्यक हो गयी है.

'अमृतसर आ गया है' कहानी 'कथन' और 'कथ्य' का एक पारदर्शी क्रिस्टल है. 'वस्तु' और 'रूप' की ट्रांसपरेंसी है. स्मृति विधान की शैली में वाचक बीते हुए कालखंड को याद कर रहा है, एक संजीदा अहसास के साथ. पूरी कहानी में व्यंग्य और करुणा का पारस्परिक टकराव है. अतीत (या व्यतीत) के घटाटोप में वर्तमानता बिजली की तरह बार-बार कौंध उठती है. कहानी की बुढ़िया प्रतीकात्मक है, बड़बड़ाते हुए आदर्शवाद और बुदबुदाते हुए. मानवतावाद की नियति और परिणति को नमूदार करती हुई वह एक जीर्ण-शीर्ण प्रतिमा है. 'तमस' उपन्यास की ही तरह यह कहानी सांप्रदायिकता के अंधेरे में चीत्कार की तरह सुनाई देती है.

'वाङ चू' कहानी का नायक न चीनी है न भारतीय है. वह एक मनुष्य है. राजनीति ने इसी मनुष्य को संदेहास्पद बना दिया है. साहित्य का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह मनुष्य की असली पहचान बनाए रखे. यह कहानी इसी उद्देश्य की पूर्ति करती है और इसीलिए एक सार्थक रचना है.

अंत में हिंदी के श्रेष्ठ कहानीकार अमरकांत की एक टिप्पणी का अंश उद्धृत करते हुए इस आलेख का समापन करना चाहता हूं—

''भीष्मजी की तरह रचनाकार होना बहुत कठिन है. वर्षों तक चुपचाप और लगातार परिश्रम करते रहने से ही उनका ऐसा प्रखर रचना व्यक्तित्व उभरकर आया है. चींटी की तरह वे मेहनती और संग्रही हैं...''

भीष्मजी का व्यक्तित्व और कृतित्व बार-बार भुला दी जानेवाली बात की फिर याद करा देता है कि अपनी सहज साहित्य-साधना और निरंतर परिश्रम से एक संघर्षधर्मी और समाजनिष्ठ लेखक कलात्मक उत्कर्ष के ऊंचे से ऊंचे शिखर पर पहुंच जाता है जबकि अपनी जन्मजात प्रतिभा का ढिंढोरा पीटनेवाले तथा कलात्मक आतंक बरपा करनेवाले आत्ममुग्ध लेखक रेत के टीलों तक ही पहुंचते हैं और वहीं लोट-पोट हो रहते हैं. □

संधिकाल का मानवीय दस्तावेज मय्यादास की माड़ी

विगत दशक में जिन दो उपन्यासों के साथ उपन्यास पुन: चर्चा के केंद्र में आया उनमें से एक था भीष्म साहनी का 'तमस' और दूसरा जगदंबाप्रसाद दीक्षित का **मुर्दाघर**. **तमस** इस अर्थ में उपन्यास लेखन की नयी प्रवृत्ति की ओर संकेत करता था कि उसका कोई नायक न था. यहां इतिहास के एक विशिष्ट काल खंड में विभिन्न सामाजिक शक्तियों की टकराहटों के बीच सारे पात्र अपनी-अपनी भूमिकाओं के स्वयं नायक थे. तमस की सफलता-कथा का तो अब कहना ही क्या है. थोड़ी-बहुत यही विशेषता मुर्दाघर की भी थी. किंतु किसी ऐतिहासिकता के अभाव में, जो उपन्यास को महाकाव्यात्मक ऊंचाई देता है, वह एक थोड़े समय की उत्तेजना बनकर रह गया.

भीष्मजी की यही कला दृष्टि उनके नवीनतम उपन्यास **मय्यादास की माड़ी** में है जिसमें तमस के लगभग सौ साल पहले का कालखंड चित्रित है, और अधिक प्रौढ़ता और निखार पर है. तमस में विभाजन के तत्काल पहले, १९४६ का जलता हुआ पंजाब है, उसके सौ साल पहले भी पंजाब की भूमि पर एक आग लगी थी. उस समय महाराजा रणजीतसिंह के लगभग ४० वर्ष के शांतिपूर्ण शासन के बाद, जो मल्का विक्टोरिया के कंपनी शासन में भारत के पूर्ण विलय का अंतिम कांटा था, सिख अमलदारी के अंग्रेजी अमलदारी में संक्रमण का द्वंद्व चल रहा था. **मय्यादास की माड़ी** इसी संक्रमण के द्वंद्व की कथा है, जिसमें भीष्मजी के ही शब्दों में प्रश्न किसी के देश भक्त या देशद्रोही होने का नहीं बल्कि अपने-अपने हित के अनुसार समय को पहचानकर आचरण करने का था (पृष्ठ १३३) जो समस्त द्वंद्व का आधार है. किंतु ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होते हुए भी **मय्यादास की माड़ी** वैसा तथाकथित ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है जो अंतत: इतिहास पुरुषों की वीरगाथ बनकर रह जाते हैं. यह १९वीं शताब्दी में बरतानी शासन व्यवस्था के मजबूत होने के साथ केवल पंजाब ही नहीं संपूर्ण भारतीय सामाजिक विकास (वस्तुत: पतन) का एक मानवीय दस्तावेज है, और वह भी इतनी खूबसूरती के साथ कि जो इन बारीकियों से अनभिज्ञ हैं वे भी इस उपन्यास के कथा-रस में डूब-डूब जायेंगे. इसके अनेक हास्यजनक स्थलों पर हंसेंगे, क्षोभजनक स्थलों पर कुपित होंगे, दुखद स्थलों पर अवसाद से घिर जायेंगे, और अंतत: अपने अतीत जन-जीवन के बारे में कुछ नया जानेंगे. व्लादिमीर नाबोकोव ने लिखा है—बड़ा उपन्यासकार जादूगर और शिक्षक दोनों होता है. भीष्मजी इस उपन्यास के साथ इसी रूप में प्रतिष्ठित होते हैं.

कथा के केंद्र में है दीवान मय्यादास की माड़ी (किलानुमा महल) जो टीले के पार काबुली दरवाजे के आगे फैले कस्बे पर जैसे शासन करती है हालांकि खालसा शासन का वैधानिक प्रतिनिधि शीशमहल में रहनेवाला अमीरचंद है लेकिन दीवान मय्यादास लाहौर दरबार का ऊंचा ओहदेदार और काबुल में राजदूत रह चुका है. फिर भी वह कथा का नायक नहीं, उस पुरानी व्यवस्था का अस्तगामी प्रतिनिधि है जिसका सूरज भारतीय आकाश में डूब रहा है नयी अमलदारी के कायदे-कानूनों के आगे कुछ दिनों वह दृढ़ता से खड़ा रहता है पर अंतत: इतना टूट जाता है कि नयी-नयी शुरू हुई रेलवे के गार्ड को ही अंग्रेज हाकिम समझकर उसे झुक-झुककर सलाम बजाने लगता है. यह समय को न समझकर पुराने आदर्शों से चिपके रहनेवालों की दयनीयता है? समय को समझता है उसके छोटे भाई की जारज संतान दीवान धनपत जो कथा को ले चलनेवाला एक प्रतिनायक (अथवा मनोरंजक खलनायक) है. वह पीला अंगरखा और केसरिया पगड़ी पहने मरियल टट्टू पर चलता है. (एक तरह का डान क्विक्जोट), अंग्रेजों की फौज को ऊंटों की सप्लाई करता है जिनकी दुमें काटकर वह एक की जगह दो के हिसाब से पैसे वसूलता है और जब तीन लड़ाइयों में खालसा राज्य को, मुख्यत: जनरलों की गद्दारी के कारण, हराकर अंग्रेज हाकिम की अमलदारी शुरू होती है तो अपनी सेवाओं के बदले तीन गांवों की सनद पाकर अपनी कुटिलता से मय्यादास की माड़ी पर भी काबिज हो जाता है. जहां से कभी उसका सामान तक फेंकवा दिया गया था. अब वह अंगरखे केसरिया पगड़ी और मोतियों की माला के ऊपर अंग्रेज भक्ति के प्रमाणस्वरूप नेकटाई लगाकर अपना दरबार लगाता है और लगान न देनेवाली रैयत को कोड़ों से पिटवाता है. अंग्रेजी अमलदारी का एक और परिणाम उस व्यापारी वर्ग का विकास है जो भारतीय पूंजीवाद का आदि रूप है. उसका प्रतिनिधि मलिक मंसाराम है जो विदेशी सामानों के व्यापार से अमीर बन राजा अमीरचंद के शीशमहल की नीलामी में दीवान धनपत के दबदबे को धूल चटा देता है. इस क्षति की पूर्ति दीवान धनपत की बेटी से अपने मंझले बेटे को ब्याहकर दहेज में शीशमहल प्राप्त कर तथा बारात की बेइज्जती के बहाने अपने पगले बड़े बेटे से मलिकों की एक और बेटी ब्याहे बिना दुल्हन को विदा न कराने की जिद करता है. और अंतत: नाटकीय परिस्थितियोंवश एक गरीब विधवा की पुत्री रुक्मिनी को ब्याह कर लौट जाता है. उपन्यास इसी नाटकीय घटना से प्रारंभ होता है परंतु यह सारी कुटिलता नाकाम हो जाती है जब अंतत: अपने ही पापों के प्रतीक के रूप में अपनी ही बदबू न सह पाने के कारण लकवाग्रस्त हो प्राण त्याग देता है, और बागडोर लंदन से लौटे उसके सबसे छोटे बैरिस्टर बेटे हकीकतराय के हाथ में आ जाती है. जो बाप की तरह अंग्रेज परस्त है लेकिन तब तक कोठी की धूल झड़ने लगी है और उसकी सबसे ऊंची बुर्जी पर उल्लू बैठकर भावी पतन का अशुभ संकेत देने लगते हैं.

लेकिन जीवन की द्वंद्वात्मकता एकांकी नहीं होती. जहां हम सिख अमलदारी की जगह अंग्रेजी अमलदारी के साथ रेलवे, जमींदारी व्यवस्था, विदेशी माल और फैशन तथा विकृति लानेवाले मनोरंजनों आदि के आयात के जरिये जीवन के रूपांतरण का साक्षात करते हैं वहीं बीज रूप में आगामी बदलाव की दूसरी शक्तियां-कूका विद्रोह, आर्यसमाज के शिक्षा प्रसार आदि के संकेत पाते हैं जो जड़ता की शक्तियों से टकराती दिखायी देती हैं और अंतत: दीवान हकीकतराय की नींद हराम करती हुई आजादी की शक्तियां दस्तक देने लगती हैं.

यहां एक बात की ओर संकेत करना अप्रासंगिक न होगा. १-९वीं सदी के भारत के संक्रमणकाल पर बंगला और तमिल उपन्यासकारों ने भी बहुत कुछ लिखा है. अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक स्थितियों के कारण बंगाल और दक्षिण के जनमानस ने थोड़े समय तक कंपनी राज का स्वागत किया था. संभवत: इसी कारण विमल मित्रऔर प्रमथनाथ बिशी अपने उपन्यासों (**बेगम मेरी .विश्वास**, **लाल किला**) में बंगाल की नवाबी मसनद और बहादुरशाह जफर के शासन के मुकाबले अंग्रेजी

राज व्यवस्था का पक्ष लेते दिखाई देते हैं. तमिल उपन्यासकार शांडिल्यन का **राजा की भेरी** तो अंग्रेजी राज के संस्थापक क्लाईव की महानता और पराक्रम की गुणगाथा है. यह एक भावुक और आत्मपरक दृष्टि है. भीष्मजी की दृष्टि एक संतुलित वैज्ञानिक चिंतन से संपन्न है. वह अत्यंत रोचक ढंग से हमें बताती है कि अग्रेजी शासन व्यवस्था ने भारत के संसाधनों की कैसी लूट की, उनके थोड़े समय के ही शासन में यहां कितने अकाल पड़े और पुरानी सामंती व्यवस्था की ज़गह जहां खेती की भूमि पूरे गांव की होती थी और लगान भी राजा उपज के अनुसार लेता था, वहां अंग्रेजों द्वारा स्थापित जमींदारी व्यवस्था ने किस प्रकार ग्रामीण पंचायती समाज को निजी खेतिहरी की शोषणकारी व्यवस्था में बदलकर उसे रैयत और जमींदार के रूप में बांट दिया. यहां भीष्मजी उस रूढ़ मार्क्सवादी दृष्टि का भी विरोध करते हैं जो भारतीय सामंती समाज को विरोध के भूदास प्रथावले सामंतवाद के समकक्ष मानती रही है.

लेकिन **मय्यादास की माड़ी** एक सामाजिक दस्तावेज ही नहीं, यह नाटकीय उतार-चढ़ावों के साथ अनेक चरित्रों के घात-प्रतिघात की एक मानवीय कथा है. तमस में श्वेत-श्याम रंग की प्रधानता है तो यहां संभवत: अंग्रजों के आगमन से पहले भारत की समृद्धि के प्रतीक स्वरूप नीले, पीले, हरे अंगरखों, मणिमालाओं, रेशमी पगड़ियों, मुश्की घोड़ों के साथ आकाश और प्रकृति के रंगों की छटा आदि से अंत तक छायी रहती है. यदि अमृतलाल नागर के पास लोक भाषा को पकड़ पाने के संवेदनशील कान हैं तो भीष्मजी के पास एक कौशलपूर्ण कैमरा आंख भी है जो हर स्थिति, चेहरे, मनोभाव और व्यवहार को काव्यात्मक सटीकता के साथ फोकस में ला देती है, चाहे वह युद्ध का वर्णन हो या हलवाई के लड़के का 'जांघिये पर हाथ पोंछते हुए' भागना हो. दुनिया के बड़े उपन्यासों की तरह यहां भी हम इतिहास चक्र के साथ करवट लेते समय को बीतता और आगे बढ़ता महसूस करते हैं.

मय्यादास की माड़ी हमें मुग्ध ही नहीं करता बल्कि हिंदी के उपन्यास साहित्य को **प्रौढ़ता और समृद्धि प्रदान करता है.**

रमाकात

• मय्यादास की माड़ी (उपन्यास), भीष्म साहनी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, पृष्ठ : २७३ मूल्य : ७५ रुपये.

'पाली' : अनवरत कथायात्रा का नव्यतम प्रमाण

आज जबकि स्वतंत्रता के बाद उभरी पीढ़ी में अधिकांश कथाकारों का अनुभव-संसार चुक गया है और उनका लेखन मंद-सा पड़ा है, भीष्म साहनी लगातार रचनात्मक हैं

संग्रह की पहली कहानी 'पाली' विभाजन की त्रासदी को, उनकी पूर्ववर्ती कहानियों 'अमृतसर आ गया है', 'जहूरबक्श' या 'सरदारनी' की जमीन पर होते हुए भी उनसे पूरी तरह अलग रूप में घटित होती है. अबोध और मासूम पाली का, परिस्थितियों के कालचक्र में हिंदू से मुसलमान बनाया जाना, फिर हिंदू बनाया जाना, पर मुस्लिम संस्कार का खत्म न होना कई प्रश्न खड़े करती है. पाली के दोनों तरफ हिंदू और मुस्लिम पंडित-मुल्ला हैं, जो अपने धर्म और मजहब में उसे बांधने की कोशश करते हैं और दूसरी तरफ उसकी हिंदू-मुस्लिम माएं हैं-ममता से छलछलाता हृदय लिए, जो उसे सिर्फ बेटे की तरह ही स्वीकारती हैं. दरअसल, भीष्मजी धर्म या मजहब के पंजे से मुक्त मनुष्य की कल्पना करते हैं, ठीक वैसी ही जैसी कबीर ने कभी की थी. आज मजहबों में घिरा मनुष्य कितना दारुण और विवश और त्रस्त है, इसकी गहरी पीड़ा हमारे भीतर वे उतारते हैं. संग्रह की दूसरी कहानी 'झुटपुटा' १९८४ में घटित सिख विरोधी दंगों की भीतरी परतों को हटाती है. दंगाई एक सिख की दुकान में आग इसलिए नहीं लगाते क्योंकि मकान हिंदू का है. एक ड्राइक्लीनर की दुकान में भी आग नहीं लगायी "क्योंकि उसमें एक हिंदू और एक सिख-दोनों भाईवाल हैं." पीछे मोती नगर में ड्राइक्लीनर की एक दुकान किसी सिख सरदार की है. उसे जलाने गये तो किसी ने पुकार कर कहा—"ओ कमबख्तों दुकान सिख की है, पर उसमें कपड़े तो ज्यादा हिंदुओं के हैं." इस पर उसे छोड़ दिया. दूध लेनेवालों की कतार में प्राय: हर आदमी अपने पड़ोसी सिखों के भी दूध के बरतन ले आया है और अंत में एक सरदार ड्राइवर अपनी जान को जोखिम में डालकर ट्रक से दूध ले आता है. इन तमाम दृश्यों को देखकर भीष्मजी को लगता है. "जैसे हम लोग इतिहास के झुटपुटे में जी रहे हैं. आपसी रिश्तों के इतिहास का पन्ना पलटा जा रहा है, दूसरा खुल रहा है. अगले पन्ने पर जाने हमारे लिए क्या लिखा होगा?"

दंगे, लूट-पाट, नृशंसता के बीच भी किस तरह मनुष्यता जीवित है और वही हमारे समाज को सांस्कृतिक एकता में बांधे है— भीष्मजी इसका जीवंत और मार्मिक चित्र अपनी कहानियों के द्वारा रखते हैं.

'नौसिखुआ' एक ऐसे सिख युवक की कहानी है जो आतंकवादियों में नया-नया शामिल हुआ है. उसे जब एक दुकानदार को मारने का आदेश दिया जाता है तो वह उस दुकानदार पर गोली नहीं चला पाता. कारण, दुकानदार की कलाई पर उसके जैसा ही गुरु का कड़ा चमचमा रहा था. वह स्वयं मार दिया जाता है, इस तरह यह कहानी यह तथ्य सामने रखती है कि आतंकवादियों ने सिर्फ सिख धर्म को इस्तेमाल के लिए कवच की तरह पहन रखा है. वास्तविक रूप में वे सिख धर्म के भी वैसे ही विरोधी हैं जैसे मनुष्यता के और अंतत: देश के.

'आवाजें' कहानी पाकिस्तान से विस्थापित ऐसे मनुष्यों की जीवंत गाथा है, जो दिल्ली की एक कालोनी में बसाये जाते हैं और वर्तमान समय में अपनी आगामी पीढ़ी के द्वारा भी जिन्हें उपेक्षित कर ठुकरा दिया जाता है. वे अपने अतीत और वर्तमान में एक साथ विस्थापन की पीड़ा झेलते हैं.

झूमर' इस संग्रह की सबसे लंबी और मार्मिक कहानी है. कहानी के नायक अर्जुनदास के माध्यम से भीष्मजी स्वतंत्रता के संघर्ष के उच्चादर्शों को जीते, त्याग, बलिदान और देश प्रेम के भावाकुल अंतस को लिए एक ऐसे पात्र को हमारे सामने रखते हैं, जो आजादी के बाद पतनशील मूल्यों के बीच आर्थिक अभाव और मानसिक यंत्रणा में जीता है. भीष्मजी इन कहानियों में मनुष्य को उसके अतीत के साथ, वर्तमान की जटिल और भयावह परिस्थितियों के बीच, एक साथ उजागर करते हैं.

संग्रह की 'प्रादुर्भाव', 'सेमिनार', 'खुशबू', और 'चोरी' शीर्षक कहानियां अपने समय के व्यावसायकीकरण के बीच बहुत कुछ तलाशती हैं और एक तीखा व्यंग्य लिए हैं.

भीष्म साहनी के इस नये संग्रह की कहानियों में एक खास प्रकार की ताजगी है जो आज की प्राय: कहानियों में दुर्लभ होती जा रही है. □

□ भारत यायावर

• पाली : भीष्म साहनी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, मूल्य : ४०/

'अपनी बात'

के बहाने सबकी बात

वास्तव में किसी भी लेखक की निजी उधेड़-बुन उसके रचे जा चुके तथा रचे जानेवाले साहित्य ही एक मात्र खाद-पानी होती है. उस उधेड़-बुन के चलते एक रचनाकार ताउम्र एक ऐसी 'शतरंज' खेलता है जिसमें वह अपने लिए मात ही मात चुनता जाता है. यही 'मात' उससे और-और लेखन-परफेक्शन की ओर बढ़ता लेखन कराती जाती है. मगर इस 'मात' को स्वीकार करना हर किसी के वश का रोग नहीं होता. छद्म महानता को त्यागकर, किसी 'मात' को ओढ़ और स्वीकार कर लेना किसी लगभग 'संत' की ही महानता हो सकती है और इस संतई को जो अर्जित कर लेता है वह अपनी आयु के वरिष्ठ पड़ाव पर भी सक्रिय रहता है. इस संतई-अवधारणा को यदि हम अपने समय के महत्वपूर्ण रचनाकर्मी भीष्म साहनी के संदर्भ में तौलें तो बात यकायक पारदर्शी हो उठती है. इस साहित्यिक के विषय में इस आयाम से सोचने का सुअवसर जुटाती है उसकी नयी किताब—'अपनी बात', जिसमें उनके कुछ स्मरण. आलोचनात्मक टिप्पणियां आदि सत्ताइस निबंध संकलित हैं.

इन सभी टिप्पणियों का एक साथ पढ़ते हुए जहा एक ओर किसी बड़े साहित्यकार के नेपथ्य की झांकियों से पाठक का साक्षात्कार होता है, वहीं दूसरी ओर पिछले लगभग चार दशकों का राजनीतिक, सामाजिक; सांस्कृतिक तथा साहित्यिक परिदृश्य भी जीवंत हो उठता है. बंटवारे के समय की खूंरेजी तो बहुत से शब्दकारों ने देखी-भोगी है—कुछ लेखकों ने उस पर बेहद जीवंत रचनाएं भी रची हैं, मगर 'तमस' अकेले भीष्म साहनी ही ने लिखा है. इसी तरह से 'अमृतसर आ गया है' कहानी हो या 'चीफ की दावत'...भीष्म साहनी ने ये रचनाएं देकर मानों इन कथ्यों को निरस्त्र कर डाला है. यह कितनी बड़ी उपलब्धि है कि इतिहास के एक बर्बर दौर को किसी साहित्यिक रचना में कैद कर लिया जाये और फिर भी वह साहित्यकार खुद को साहित्य का 'जमाई' घोषित न करे.

यद्यपि सुविधा के लिए इन निबंधों में से कुछ को हम आत्मपरक, कुछ को निबंधात्मक, अलोचनात्मक या संस्मरणात्मक कह सकते हैं. इनके लेखन का उत्स भी विभिन्न आमंत्रणों—आयोजनों में ही निहित रहा दीखता है; तो भी इनमें एक सूत्रता के पदचाप हमें साफ-साफ सुनाई पड़ते हैं. यह एक सूत्रता किसी लेखक-जैसी 'ठहरी दृष्टि' के सूचक नहीं बल्कि भीष्म साहनी जैसे आस्थावान साहित्यकार के विश्वास का ही शब्दांकन है जो किसी रचना से उच्चतम मानवीय मूल्यों की कलापूर्ण स्थापनाओं की अपेक्षा करता है. जिस ऋृजुता, धैर्यशीलता, पारदर्शिता तथा संवेदनशीलता के साथ से वे अपनी कथाओं, उपन्यासों या नाटकों को पालते-पोसते-प्रस्तुत करते हैं, वही तमाम गुण उनके इस निबंध विधा में देखने को मिलते हैं तथा ये निबंध उपदेश न देकर, चुपचाप पाठक के दिलोदिमाग पर असर डालते हैं; और इस तरह वे इस विधा में लालित्य भी जोड़ देते हैं. भीष्म साहनी ने इन निबंधों में अपने दुख-दर्दों, अभावों, असफलताओं को फैशन-परेड की अनिवार्य नियति से बहुत साफगोई के साथ बचाया है तथा कभी शेक्सपियर के बहाने, तो कभी कबीर या प्रेमचंद के साहित्य की सार्थक चर्चाएं करते हुए उन्होंने अनेकानेक पनप रहे साहित्यिक प्रपंचों-षड्यंत्रों को भी उघाड़ा है.

इन लगभग सभी निबंधों में किसी बड़े लेखक की वह 'पहली दुनिया' दिखाई पड़ती है जो उसके विचारों को कण-कण सुस्पष्ट बनाती है. एक भीष्म साहनी जैसे सफल लेखक की 'मैं, अपनी नजर में' निबंध में वर्णित 'असफलता' पाठक को निराश नहीं करती बल्कि उसकी नितांत व्यक्तिगत छटपटाहट को जान लेने का संतोष प्रदान करती है.

जीवनोन्मुख कहानी की मांग ही संभवत: भीष्म साहनी के कथाकार की बड़ी सफलता है जिसे उनके न केवल आत्मपरक वक्तव्यों में पाया जा सकता है बल्कि प्रेमचंद, परसाई और यहां तक कि 'तमस' की शूटिंग के दौरान लिखे जानेवाले डायरीनुमा रिपोर्ताज में भी थामा जा सकता है. व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई पर लिखे गये दोनों आलेखों में भीष्म साहनी की वही विश्लेषक-विशेषज्ञ की दृष्टि स्थापित होती है जो संभवत: वे किसी कहानी को लिखने के पूर्व भी अवश्यत: इस्तेमाल में लाते होंगे. इतनी सहजता से व्यंग्य को समझकर, परसाई के व्यंग्य को समझा देना तो किसी विशुद्ध आलोचक के वश का भी नहीं लगता. कई स्थलों पर तो भीष्म साहनी यदा-कदा व्यंग्य की फुलझड़ियां भी छोड़ते हैं जो पाठकों के लिए एक 'सूचना' हो सकती है. इसके अतिरिक्त जो एक बात उनके आत्मपरक लेखन में है, उसके जरिए हम जान पाते हैं कि व्यक्तिगत तौर पर भी यह रचनाकार कितना सहज तथा सरल है और इसीलिए वह बेहतर साहित्य हमें सौंप सका है.

भीष्म साहनी ने कहानी, उपन्यास और नाटक—तीनों विधाओं में लिखा है और लगभग समान गति से लिखा है. मगर 'अपनी बात' में उनके कथाकार और वह भी मात्र कुछेक कहानियों तथा केवल 'तमस' उपन्यास के बारे में ही जानने का मौका मिलता है. इस हिसाब से किताब उनके लेखन की संपूर्ण परिक्रमा नहीं करती. इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि इस तरह का इतर लेखन भीष्म साहनी का शौक या जरूरत न रही हो, और दूसरा कारण जो कि अधिक सही लगता है वह यह कि इस किताब को तैयार करते वक्त लेखक का ध्यान उधर गया ही न हो और जो उपलब्ध सामग्री हो उसके आधार पर यह किताब बना दी गयी हो. बेहतर होता यदि ऐसी किताब को तैयार करने से पहले लेखक/प्रकाशक ने यह तय किया होता कि ऐसी किताब में लेखक की मुकम्मल तस्वीर ही जानी चाहिए ताकि जिज्ञासु पाठकों या शोधकर्त्ताओं के लिए भी वह स्मृति समान महत्व प्रदान कर सके.

☐ राजकुमार गौतम

● 'अपनी बात' (निबंध संकलन); लेखक : भीष्म साहनी; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, मूल्य-७५.०० रुपये

जिंदगी की पकड़

कहानी लिखने में इसे भी तरह-तरह के लालच परेशान करते हैं. किसी महान लेखक की रचना पढ़ ले तो उसी के अंदाज में कहानी लिखना चाहता है. उसी लेखक की दृष्टि से लिखने की कोशिश भी करता है. उस वक्त उसे भी लगता है कि उसी की आंखों से दुनिया को देख रहा है और उसी के अंदाज में बात कह रहा है. लेकिन इस कोशिश में हर बार उसे चपत ही पड़ी है, थोड़ी ही देर में मन पर छाया गुबार छनने लगता है और कलम घिसटने लगती है. बात बनती नहीं. दोबारा पढ़ने पर अक्सर झाग ही झाग हाथ लगती है. अब इसने जान लिया है कि किसी दूसरे की दृष्टि से जिंदगी पकड़ में नहीं आती. ☐

[संदर्भ : भीष्म साहनी के एक लेख से]

प्रस्तुति : कानन

मुआवजे

(शस्त्रास्त्रों की दूकान. अलमारियों में छुरे, तलवारें, संगीने, तमंचे, नेजे, आदि सजे हैं. पर्दा खुलने पर दुकानदार धूप-बत्ती हाथ में लिये पहले अपने इष्टदेव की आराधना करता है फिर हथियारों को धूप दिखाता है, उनके सामने फूल रखता है, फिर उन्हें नमस्कार कर प्रार्थना के शब्द बुदबुदा रहा है. छोटेलाल और गुमाश्ता (दलाल) अंदर दाखिल होते हैं.)

दुकानदार : आइये, आइये, अब नींद टूटी है आपकी? हमारी कौम में यही तो कमजोरी है, प्यास लगने पर कुंआ खुदवाते हैं. फरमाइये क्या हुक्म है?

छोटेलाल : दो सौ लाठियां भिजवा दीजिये.

दुकानदार : क्या? क्या फर्माया आपने?

छोटेलाल : दो सौ लाठियां. चलिये अढ़ाई सौ कर दीजिये.

दुकानदार : क्यों, बच्चों की परेड करवाओगे? उनसे कवाइद करवाओगे?

छोटेलाल : हिफाजत और सुरक्षा के लिये.

दुकानदार : लाठियों से कौम की हिफाजत करोगे? आज के जमाने में लाठियों से रक्षा करोगे? युवक पैंतरे बदल-बदलकर लाठी घुमाएंगे और दुश्मन डरकर भाग जायेंगे? यही ना? (हंसता है) अब तो बंदूक-पिस्तौल भी पुराने पड़ गये हैं. श्रीमानजी, अब तो हथगोले और बम चलने लगे हैं. किस दुनिया में रहते हैं आप?...मैंने सुना है कि आप अखाड़े खोल रहे हैं. जहां लड़के कसरत करेंगे, कुश्ती करेंगे. डंड पेलेंगे. (हंसकर) इस तरह कौम की सेवा करोगे? दुश्मन तो गोला-बारूद इकट्ठा कर रहा है, आप लाठियां चलाओगे? वाह, बादशाहो! (अलमारी में से एक छुरा निकाल लाता है) यह छुरा देखो, पूरे नौ इंच लंबा फल है इसका. (छुरे की धार पर उंगली फेरता है) क्या चीज है! इसकी धार देखो, वजन में कितना हल्का है. एक ही वार में पेट की सभी अंतड़ियां काटकर रख देगा. अंदर घुसेड़कर एक ही मरोड़ दो तो वहीं चित्त कर देगा. देखो तो कितना हल्का है, चाहो तो जेब में रख सकते हो, नेफे में अड़ा लो, पता ही नहीं चलेगा, बोलो कितने दूं?

छोटेलाल : दाम क्या है?

दुकानदार : (व्यंग्य से) जाति की रक्षा का दाम पूछते हो?

छोटेलाल : फिर भी?

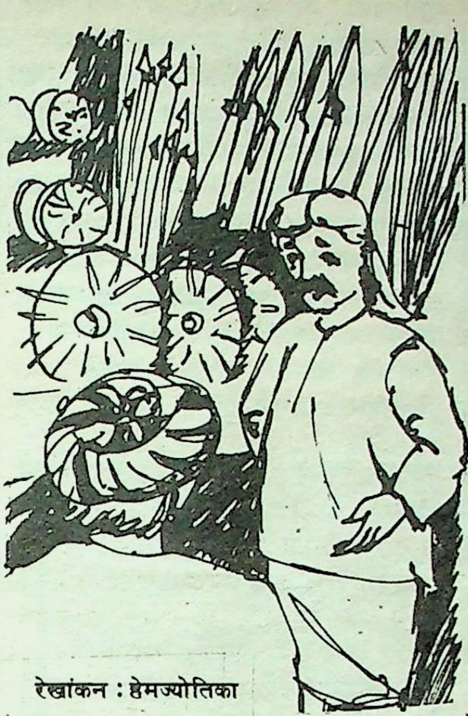

रेखांकन : हेमज्योतिका

भीष्म साहनी के नाटक 'मुआवजे' का एक दृश्य

दुकानदार : यही तो हमारी कौम में कमजोरी है. ब्याह-शादी में तो लाखों बहा देंगे, पर जब कौम पर खतरा मंडराने लगे तो पैसे गिनने लगते हैं. दुश्मन ने असले हथियारों से अपने गोदाम भर लिये हैं, और इधर आपको दाम की चिंता खाये जा रही है.

गुमाश्ता : दुश्मन ने अपने गोदाम भर लिये हैं? आप को कैसे मालूम है?

दुकानदार : क्यों, हम बाजार में नहीं बैठे हैं क्या? बहुत-सा माल वे हम से ही ले गये हैं.

गुमाश्ता : आपसे? क्या आप दुश्मन को भी असला बेचते रहे हो?

दुकानदार : हमें तो व्यापार करना है, महाराज. जो भी आये, दाम दे जाये और माल उठा ले जाये. (छुरा पेश करते हुए) औरों से चालीस रुपया फी छुरा लिया है, आप धर्मभाई हो, आप उनतालीस दे दो.

(छोटे लाल सोचने लगता है)

बाहर यह चीज ७० में भी नहीं मिलेगी. पर आप धर्म के काम के लिये आये हो, पुण्य का काम कर रहे हो, आपको ३९ में दे देंगे.

छोटेलाल : दाम कुछ कम करो, सौ छुरे ले लेंगे.

दुकानदान : वारा नहीं खाता. (पास जाकर) आपको कौन-सा अपनी जेब से देना है महाराज, आप भी तो कौम की जेब से ही दोगे...एक और चीज मैं आपको दिखा देता हूं (अलमारी में से कमानीदार चाकू निकालता है) यह कमानीदार छुरा है. कमानी दबाओ, सात इंच का फल बाहर निकल आता है...हमारी दूकान पर से पांच सौ छुरा जा चुका है.

छोटेलाल : दुश्मनों को बेचा है?

दुकानदार : हम खुद थोड़ा बेचने जाते हैं, पर कोई दूकान पर आ जाये तो इंकार भी तो नहीं कर सकते?

छोटेलाल : वे लोग आप से और क्या कुछ ले गये हैं?

दुकानदार : और भी बहुत कुछ ले गये हैं.

गुमाश्ता : फिर भी?

दुकानदार : (हंसकर) एक ग्राहक का भेद दूसरे को नहीं देते, साहिब, दुकानदार के लिये तो ग्राहक भगवान का रूप होता है...यह छुरा ले जाओ, बड़े काम की चीज है.

छोटेलाल : एक सौ छुरा दे दो.

दुकानदार : एक सौ से क्या बनेगा? छुरा पांच सौ तो लो?

छोटेलाल : दो सौ कर दो. ज्यादा जरूरत हुई तो और मंगवा लेंगे.

दुकानदार : कब मंगवा लोगे, जब दूकानें बंद हो जायेंगी, जब सारा का सारा काम ठप्प हो जायेगा? आपने पहले ही देर कर दी है.

छोटेलाल : तीन सौ कर दो.

दुकानदार : यह वक्त पैसे गिनने का नहीं है महाराज, कौम के काम में कंजूसी नहीं करते. पैसे गिनते रहोगे तो कोई भी काम पूरा नहीं कर पाओगे...मैं चार सौ लिख रहा हूं.

छोटेलाल : (धीरे से सिर हिलाता है) लिख लो.

दुकानदार : (पास जाकर) छुरे तो मैं भेज दूंगा. पर सच पूछो तो हमारे लोग चला नहीं पायेंगे. हमारी कौम को खून से डर लगता है, हमारे हाथों आदमी मर जाये तो हम खुद रोने लगते हैं. पर हां, हमारे आदमी बंदूक-पिस्तौल चला लेंगे. बंदूक दूर से वार करती है ना, इसीलिये. यह काम ज्यादा आसान है, ज्यादा आसान भी है और ज्यादा सुथरा भी है. एक डरपोक आदमी भी बंदूक चला सकता है, पर डरपोक आदमी छुरा नहीं चला सकता. दूर से फायर करो, पता ही नहीं चलता कौन, कहां पर गिरा है.

मेरी बात मानो, कुछ पिस्तौल, तमंचे, बंदूक, हथगोले भी ले लो, एहतयात के लिए. सारा बंदोबस्त वक्त रहते कर लेना चाहिये.

छोटेलाल : (सिर हिलाता है, लगता है दुकानदार के तर्क से प्रभावित हुआ है) मैं अपने साथियों से बात करूंगा.

दुकानदान : साइंस का पूरा-पूरा फायदा उठाओ. यह साइंस का जमाना है. एक बटन दबाओ और हजार आदमी खाक हो जायें, हम

अभी भी कुंद कुल्हाड़ी से गले काटते हैं. साइंस का इस्तेमाल करो, लाठियों-कुल्हाड़ियों के दिन बीत गये. कुछ आगे बढ़ो, श्रीमानजी.

छोटेलाल : मैं मशविरा करूंगा.

दुकानदार : करो मशविरा, पर मशविरा ही नहीं करते रहना...एक और बात भी अर्ज कर दूं...अपने युवकों के हाथ में जरूर हथियार दो, पर अब हर काम के लिये पेशेवर आदमी मिल जाते हैं. पैसे दो, और काम करवा लो. खुद जोखिम उठाने की जरूरत ही नहीं. वे लोग इस काम में खूब मंझे होते हैं, उनका हाथ भी ज्यादा साफ होता है, उनका निशाना अचूक बैठता है. बाहर ही बाहर पैसे दो और काम करवा लो. आग लगाना, लूट-पाट, ये काम आसान होते हैं, कोई भी कर लेगा, पर जान से मारने का काम, पेशेवर के हाथ में, उसी से करवाओ. (पास जाकर धीरे से) कहो तो हम इंतजाम कर दें?

छोटेलाल : (चौंक जाता है) आप? आप इंतजाम कर सकते हैं?

दुकानदार : कर देंगे.

छोटेलाल : आप किस तरह करोगे?

दुकानदार : यह हम पर छोड़ दो. भाई साहिब, अब हर काम के लिये एजेंसियां खुल गयी हैं. यह काम तो टेलीफोन पर भी हो जाता है. हमें सेवा का मौका दीजिये.

(छोटे लाल बक्से से दस-दस हजार के नोटों के पुलिंदे निकालकर दुकानदार के आगे रखता है.)

छोटेलाल : दस-दस हजार की गड्डी है, इन्हें गिन लो, अपनी तसल्ली कर लो.

दुकानदार : आपसे तो आंखें बंद कर के लेंगे, महाराज, यह तो प्रसाद है, पुण्य का पैसा है, चूमकर लेंगे.

छोटेलाल : सामान भिजवा देना.

दुकानदार : बेफिक्र रहिए, ठीक जगह पर पहुंच जायेगा...आदमियों का इंतजाम हम कर देंगे.उन्हें जो कुछ देना-करना होगा वह भी बता देंगे. सस्ते में ही हो जायेगा. एक-एक शराब की बोतल और कुछ पैसे. बहुत महंगा सौदा नहीं है, हम पर छोड़ दें.(मुस्कराता है) आप आराम से घर जाओ और टेलीविजन देखो, आजकल प्रोग्राम अच्छे आ रहे हैं. 'रामायण' का तो जवाब नहीं, वाह, हमारी सभ्यता का निचोड़ निकालकर सामने रख दिया है, वाह वाह, क्या चीज बनी है.

छोटेलाल : अच्छी बात है, तो मैं चलूंगा.

दुकानदार : ठहरो जी, आप की बात यहीं पर करवा देते हैं (घंटी बजाता है) (धीमी आवाज में) पर किसी से इस बात का जिक्र नहीं करना. आप हमारे धर्मभाई हो, आप की मदद करना हमारा फर्ज बनता है.

छोटेलाल : (चौंककर) यहां पर? नहीं, नहीं. यहां ठीक नहीं. नहीं. (झेंप जाता है)

दुकानदार : (हंसता है) बाबूजी, कब आप यह झेंप-शर्म छोड़ोगे? दुनिया में य सब काम खुल्लम-खुल्ला होने लगे हैं. झिझक-शर्म किस बात की? आप तो औरतों से भी ज्यादा शर्माने लगे हो? आप तो कौम का काम कर रहे हो, कौम के काम में झिझक-शर्म किस बात की ?

छोटेलाल : नहीं, नहीं, ऐसी बात तो नहीं है, पर फिर भी यहां पर, (गुमाश्ते से) मैं चलता हूं, गुमाश्ताजी, आप बात कर लो.

दुकानदार : यह भी ठीक है. आप खुद सामने नहीं आओ, गुमाश्ता बात कर लेगा.

> यही तो हमारी कौम में कमजोरी है, ब्याह-शादी में तो लाखों बहा देंगे, पर जब कौम पर खतरा मंडराने लगे तो पैसे गिनने लगते हैं.

(स्टेज पर अंधेरा छा जाता है. थोड़ी देर तक अंधेरा ही बना रहता है, फिर एक ओर को रोशनी का दायरा बन जाता है जिसके बीचोंबीच गुमाश्ता और जग्गा खड़े हैं. जग्गा पेशेवर गुंडा है. गले में रंगदार रूमाली, ऊंचा लंबा पहलवानी आकार, फनियर मूंछें...)

जग्गा : पच्चास रुपये फी आदमी लूंगा. इससे एक पैसा कम नहीं होगा, लूट-पाट अपनी.

गुमाश्ता : यह कौम का काम है.

जग्गा : कौम का हो या निजी हो, इसमें भी आदमी मारना, उसमें भी आदमी मारना. ठेके पर करवाना चाहो तो ठेके पर करवा लो, दिहाड़ी के हिसाब से करवाना चाहो तो इस तरह करवा लो. जैसा तुम्हें वारा खाता हो.

गुमाश्ता : मैंने कहा है ना, यह कौम का काम है.

जग्गा : मुझसे पूछो तो कौम का काम ज्यादा मुश्किल होता है. पूछो क्यों? इसमें दूसरी कौम के आदमी को ढूंढना पड़ता है, खोजना पड़ता है. हम तो हर कौम के आदमी को मारते हैं, हमारे लिये सब बराबर हैं. जो सामने आ जाये. चुनचुनकर मारना ज्यादा मुश्किल होता है.

गुमाश्ता : अगर आदमी मरे नहीं, सिर्फ जख्मी हो जाये, तो कितने पैसे लोगे?

जग्गा : तो भी पच्चास रुपये.

गुमाश्ता : क्यों?

जग्गा : पच्चास रुपये फी केस, मरे या न मरे, हमने तो उसे मारने का जोखिम उठाया, आगे उसकी किस्मत.

गुमाश्ता : पच्चास रुपये ज्यादा है.

जग्गा : ज्यादा हैं? तुम्हें कौन से अमीरजादे और लखपति मरवाने हैं. यही, मोची-नाई-मजदूर मरवाओगे. अगर यह मंजूर नहीं तो दिहाड़ी के हिसाब से मरवा लो.

गुमाश्ता : दिहाड़ी का क्या हिसाब होगा?

जग्गा : दिहाड़ी के हिसाब से, अढ़ाई सौ रुपये रोज.

गुमाश्ता :दिहाड़ी के हिसाब से करें तो क्या मालूम दिन में एक भी आदमी नहीं मर पाये, दिन भर तुम कहीं बैठे सुलफा पीते रहो.

जग्गा : हराम की कमाई हम नहीं खाते, बाबू, जुबान देंगे तो काम पूरा करेंगे...तुम ठेके पर करवा लो. सिट्टियां गिनकर पैसे दे देना.

गुमाश्ता : कत्ल कैसे करोगे?

जग्गा : क्यों? बढ़िया विलायती छुरे से मारेंगे. घुमावदार फलवाला छुरा. एक ही मरोड़ दो और अंतड़ियां बाहर.

गुमाश्ता : तुम छुरा अंदर ही रहने देते हो या बाहर निकाल लेते हो?

जग्गा : छुरे को अंदर कैसे छोड़ देंगे, बाबू, इस तरह तो हर आदमी के लिये नया छुरा खरीदना पड़ेगा. आदमी पांच रुपये का और छुरा पच्चास रुपये का.

गुमाश्ता : यह कौम का काम है, और तुम अपनी कौम के आदमी हो, वरना मुझे तो दूसरे भी मिल सकते हैं.

जग्गा : उनसे करवा लो...और उस्तादजी, हमें दूसरी कौम की तरफ से भी बुलावा मिल चुका है. पर मैंने कहा नहीं, पहले अपनी कौम की खिदमत करेंगे. हां, अगर आप के साथ सौदा पक्का नहीं हुआ, तो हमें तो आदमी ही कत्ल करने हैं, कहीं और कर लेंगे.

गुमाश्ता : तुम्हें चोखा काम मिलेगा. शायद आग लगाने का काम भी मिल जाये.

जग्गा : आग लगाने का काम हम नहीं करेंगे. हम से आदमी मरवा लो, एक. दो, दस, जितने कहोगे पार लगा देंगे, पर आग लगाने का काम कुत्ता काम है, यह हम नहीं करते.

गुमाश्ता : इसमे लूट-पाट भी तो शामिल होगी. वह सब तेरी.

जग्गा : न. यह हाथ काले करनेवाला काम है, तुम कहोगे झुग्गी-झोपड़ी को आग लगा दो, वहां हमें क्या मिलेगा? मिट्टी के मांडे? किसी माड़ी को आग लगाओ, वहां से तो कुछ माल हाथ लगेगा, पर माड़ी के बाहर तो दस-दस चौकीदार होते हैं, लोहे के दरवाजे और सींखचे और झबरैले कुत्ते...पर नहीं, आग लगानेवाला काम ही गंदा काम है.

पूछो क्यों, हाथ काले करो, किरासीन के डिब्बे उठाते घूमते फिरो, चोरों की तरह छिप-छिपकर जाओ, फिर गांडुवों की तरह वहां से भागते फिरो. यह भी कोई काम है! कत्ल का काम शाही काम है, आदमी ऊपर चलता बने, हम घर को चलते बने. मामला मिनटों में खत्म...एक बात पूछूं?

गुमाश्ता : क्या है?

जग्गा : आपने हमीदे को भी बुला भेजा था?

गुमाश्ता : कौन कहता है? उसे तो मैं जानता भी नहीं. तुम्हें इसका ख्याल ही कैसे आया?

जग्गा : एक ही बात है, उससे करवा लो या हम से करवा लो, वह मेरा भागीदार है, हमारी एक-दूसरे के साथ सांझ है.

गुमाश्ता : सांझ है!

जग्गा : उससे भी बात करोगे तो रेट एक ही होगा. यह तो व्यापार है, बाबू तेरे लाले की भाईवाली. सांझेदारी चौधरी खुदा बख्श के साथ है या नहीं? हम से पूछ. तेरे लाले ने माल की चालीस पेटियां खुदाबख्श के गोदाम में रखवायी हैं या नहीं?

गुमाश्ता : इसकी खबर तुम्हें कैसे मिल गयी?

जग्गा : हम से क्या छिपा है बाबू?

गुमाश्ता : उनका पुराना रख-रखाव है.

जग्गा : वही तो मैं भी कह रहा हूं. व्यापार व्यापार है, धर्म धर्म है, दोस्ती दोस्ती है.

गुमाश्ता : (पास आकर) इस बात का जिक्र किसी से करने की जरूरत नहीं है.

जग्गा : किस बात का?

गुमाश्ता : कि लाले ने अपनी चालीस पेटियां खुदाबख्श के गोदाम में रखवा दी हैं.

जग्गा : हमें क्या पड़ी है, तुम सौ पेटियां रखवाओ, पांच सौ रखवाओ...फिर क्या हुक्म है? आज सवेरे मैं डेरे में से निकला तो हमीदा कहने लगा, जग्गे, काम हाथ में से नहीं जाने देना, हम थोड़ा खा लेंगे.

(गुमाश्ता कुछ सोच रहा है)

फिर क्या इरादे हैं? यह फैसले तो फौरन किये जाते हैं, इतनी देर में मैं तीन बंदे पार पहुंचा चुका होता.

गुमाश्ता : तेरा वक्त जाया हुआ, तू यह ले. (थैले में से शराब की बोतल निकालता है.)

जग्गा : इसका क्या करूं?

गुमाश्ता : क्यों, तू कत्ल करने के बाद शराब नहीं पीता?

जग्गा : नहीं उस्तादजी, मैं तो दूध पीता हूं, दूध पीकर सोओ तो नींद खूब जम के आती है, शराब पीकर सोओ तो आदमी बड़बड़ाता है, जब से सियासी कत्ल करने लगा हूं, शराब छोड़ दी है, मुंह में से कुछ अनाप-शनाप निकल जाये तो ख्वाह-म-ख्वाह लेने के देने पड़ जायें. मैं तो काम पर निकलता हूं तो डेरे में कहकर आता हूं कि लो भाई, दूध-जलेबियां गर्म करो मैं आ रहा हूं. एक गिलास दूध साथ में रोटी का टुकड़ा, या दूध में आध पाव जलेबी. बड़ी मीठी नींद आती है, सब कत्ल-वत्ल भूल जाता है.

> दूध पीकर सोओ तो नींद खूब जम के आती है, शराब पीकर सोओ तो आदमी बड़बड़ाता है, जब से सियासी कत्ल करने लगा हूं, शराब छोड़ दी है,

गुमाश्ता : तू तो बड़ा पारसा आदमी बन गया है.

जग्गा : नहीं, ऐसा तो नहीं, शराब का नशा भी करते हैं पर खाली वक्त में, छुट्टी के दिन (शराब की बोतल रख लेता है).

गुमाश्ता : तुम्हें पच्चास रुपये फी केस देंगे. हमें मंजूर है. काम सही होना चाहिये. साथ में एक और काम भी करना होगा.

जग्गा : वह क्या?

गुमाश्ता : काम यह है कि एक जमीन खाली करवानी है.

जग्गा : हो जायेगा. कौन-सी जमीन?

गुमाश्ता : बटन बनानेवाली फैक्टरी है ना? उसकी बगल में पुल के पार.

जग्गा : वहां तो झुग्गी-झोपड़ीवाले डेरा डाले हुए हैं.

गुमाश्ता : वही.

जग्गा : (सोचता है) यों तो बड़े काम में हाथ डालने में बरकत होती है, हमारा बाप कहा करता था. (प्रगटत:) क्या करना होगा?

गुमाश्ता : बस उसे खालीं करवाना है.

जग्गा : वह तो तुम खुद भी खाली करवा सकते हो.

गुमाश्ता : हम खाली करवा सकते तो तुम से कहते ही क्यों.

जग्गा : हो जायेगा. करवा देंगे खाली. पर रुपये पांच हजार होंगे.

गुमाश्ता : इतनी रकम?

जग्गा : बस्ती भी तो बड़ी है. पांच-सात को मारेंगे तभी बाकी लोग भागेंगे. मेरे और आदमी भी तो काम पर लगेंगे. उन्हें भी तो कुछ दूंगा...सारी रकम पेशगी होगी. कर देंगे तुम्हारा काम. पर रकम पेशगी होगी.

गुमाश्ता : पहले जमीन खाली करवाओगे, फिर उसके इर्दगिर्द कांटोंवाली तार लगवाओगे.

जग्गा : तार लगानेवाला कुत्ता काम हम नहीं करते.

गुमाश्ता : चलो, वह हमारे आदमी कर देंगे. तुम जमीन खाली करवाओगे.

जग्गा : हो जायेगी.

गुमाश्ता : एक और काम भी करना होगा.

जग्गा : बोलो.

गुमाश्ता : तुम झुग्गी-झोपड़ीवालों को फैक्टरी के अंदर धकेल दो.

जग्गा : क्यों? उन्हें क्या वहां पर बंद करोगे?

गुमाश्ता : नहीं भाई, हम उन्हें रोजगार देंगे.

जग्गा : तुम रोजगार दोगे? अभी तो तुम उन्हें अगले जहान पहुंचा रहे थे.

गुमाश्ता : तुम नहीं समझ पाओगे. तुम उन्हें फैक्टरी के अंदर धकेल दो.

जग्गा : (हंसकर) जैसे बूचड़खाने में बकरियों को धकेलते हैं?...क्यों? बाहर रहते हुए उन्हें रोजगार नहीं दिया जा सकता. बाबू, तेरा काम मश्कूक जान पड़ता है. रुपये दस हजार होंगे.

गुमाश्ता : क्यों? तु समझता है तू ही यह काम कर सकता है? हम कोई और इंतजाम कर लेंगे.

जग्गा : रुपये दस हजार होंगे. तु किसी दूसरे से क्या करवायेगा, हम अपने सभी साथियों को खबर कर देंगे. कोई तेरे नजदीक नहीं आयेगा. तू समझता क्या है? हमें जानता है या नहीं? अच्छी तरह पहचान ले. सारी रकम रख जा मेरे पास. आज शाम से पहले, रुपये दस हजार दूकान के मालिक के पास पहुंच जायें. उसके बाद अपना यह थोबड़ा मेरे सामने नहीं लाना. पैसा नहीं पहुंचा तो तेरा यह टेंटुआ दबा दूंगा. (गुस्से से) भाग जा यहां से. फूट. फैक्टरी की तरफ इनका मुंह मोड़ दो. हम मुंह मोड़नेवाले हैं क्या? हम तो मुंह तोड़नेवाले हैं...सुअर का बच्चा.

(रोशनी बुझ जाती है.) □

भीष्म साहनी के नाटक: 'प्रयोग' की परिधि में

भीष्म साहनी हिंदी के एक ऐसे नाटककार हैं, जिनका नाटक नौ साल तक लगातार करने के बावजूद कलाकार उसे बार-बार मंचित करना चाहते हैं और दर्शक भी उसे बार-बार देखना पसंद करते हैं. उनके नाटक गांव-किसान, नगर और महानगर के मजदूर, बुद्धजीवी, अमीर और गरीब हर वर्ग के लोग समान उत्साह से देखते हैं.

वे दिल्ली की नाट्य-मंडली 'प्रयोग' के अध्यक्ष भी हैं और 'प्रयोग' ने ६०० से २०,००० दर्शकों के सामने उनके नाटक पिछले नौ साल से दिल्ली और देश के कई हिस्सों में मंचित किये हैं.

'प्रयोग' के निर्देशक और कलाकारों से भीष्मजी के संदर्भ में चर्चा हुई कि नाटकों को मंचित करते हुए उन्हें नाटककार के रूप में भीष्म साहनी और एक आदमी के रूप में भीष्म साहनी कैसे लगे? भीष्मजी के साथ काम करते हुए उनके अनुभव कैसे रहे? उनके नाटकों में क्या-क्या खूबियां हैं?

हैरान कर देता है दर्शकों का ऑबजर्वेशन : **एम.के. रैना**

हमारा भीष्मजी के साथ बहुत ही नजदीकी और प्यार का रिश्ता है. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक करने के दौरान उनसे काफी बातचीत और विचार-विमर्श हुआ. इस नाटक में काफी चीजें ऐसी थीं, जिन्हें रंगमंच की दृष्टि से मंच पर उतारना संभव नहीं था.

नाटक में गीत और संगीत पक्ष बहुत कम थे. या यों कहें कि उसमें संगीत की कोई गुजाईश थी ही नहीं. इन्हीं समस्याओं को हल करने के लिए एक दिन मैंने भीष्मजी को खाने पर बुलाया और अपनी समस्या उनके सामने रखी तो उन्होंने साफ कहा कि संगीत की तो मुझे पकड़ ही नहीं है. तब मैंने सोचा कि बिना गीत और संगीत के तो क़बीर को पूरी समग्रता में पेश ही नहीं किया जा सकता.

फिर मैंने एक छात्र की भांति कबीर ग्रंथावली को पढ़ना शुरू किया और उनके दोहे और पदों को इकट्ठा करके उन्हें नाटक के दृश्यों में पिरोना प्रारंभ कर दिया.

नतीजा यह हुआ कि नाटक के कई पुराने दृश्यों को निकालना पड़ा और नये-नये दृश्यों को जोड़ना पड़ा. अंत में भीष्मजी को यह सब मैंने आखिरी रिहर्सल में दिखाया और फिर नाटक का मंचन हुआ. नाटक होने के बाद दर्शकों की प्रतिक्रियाएं आने लगीं तब उन्हें मंच के अनुकुल बनायी गयी ये सारी चीजें अच्छी लगने लगीं.

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक पुस्तक के रूप में प्रकाशित है. परंतु हम लोग जो नाटक करते हैं, उसकी पांडुलिपि अलग है. यह फर्क मुख्य रूप से गीत, संगीत और भाषा को लेकर है.

हमने अपनी पांडुलिपि में पात्र के अनुकुल भाषा का प्रयोग किया है. जैसे नाटक में जो निम्न जाति के पात्र हैं, वे हमारी पांडुलिपि में अवधी बोलते हैं, जो उच्च वर्ण हैं वे तत्सम मिश्रित हिंदी बोलते हैं. भाष का जो यह स्तर है, इसे हमने अपनी पांडुलिपि में जोड़ा है. वही हम मंचों पर दिखाते हैं.

भाषाओं के इस प्रयोग से नाटक के मूल तत्व जातिवाद, सांप्रदायिक कट्टरतावाद और इसके खिलाफ कबीर का संघर्ष, उनका व्यक्तित्व और उस समय की भारत की तस्वीर बिल्कुल साफ हो गयी है.

हमने कबीर के जिन पदों को लिया है, उसे लोक संगीत और लोक धुन में ही पेश किया है. इस नाटक को कबीरपंथियों ने भी पसंद किया.

एक बार बनारस में इस नाटक का 'शो' होनेवाला था. जहां 'शो' हो रहा था, वहीं कबीर पंथियों का गढ़ था. कुछ दिन पहले एक नाटकमंडली ने वहां कबीर पर जब नाटक किया, तो उन लोगों ने नाटक के कलाकारों के साथ काफी दुर्व्यवहार किया था. खैर, सारी बातें जानने के बाद भी एक विश्वास के साथ नाटक किया. नाटक खत्म होने के बाद आंठ-दस लोग आये. मैंने उन्हें नमस्कार करते हुए कहा कि क्या आप मुझे मारने आये हैं?

उन लोगों ने मुस्कराते हुए कहा, ''नहीं, लेकिन एक गलती आपने भी कर ही डाली और वह यह है कि कबीर ब्राहमणी के गर्भ से पैदा हुआ था. आप लोग यह क्यों नहीं स्वीकार कर पाते हैं कि निम्न जातियों में भी जन्म लेकर लोग संत, महात्मा और विद्वान हो सकते हैं. महापुरुष होने के लिए ब्राहमणी के गर्भ से ही पैदा होना क्या कोई अनिवार्य शर्त है?

मैं दर्शकों के इस ऑबजर्वेशन को देखकर हैरान रह गया. वास्तव में इस बिंदु पर न मैंने और न भीष्मजी ने विचार किया था. उनकी इस बात ने मुझे भी प्रभावित किया.

'हानूश' सबसे अच्छा नाटक है : **जलीस एहसन**

मैंने भीष्मजी के नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' में सिकंदर लोदी, 'माधवी' में गालव और 'हानूश' में हानूश की भूमिका निभायी है. भीष्मजी ने जितने नाटक लिखे, पहले हमारे ग्रुप को पांडुलिपियां दी हैं. उनसे हम लोगों का जीवंत संपर्क रहा है.

कई बार ऐसा हुआ कि उन्होंने नाटक लिखे. नाटक के कुछ दृश्य इस तरह लिखे कि अभिनेता का मंच पर प्रवेश हो गया परंतु उस अभिनेता को मंच पर से वापस नहीं बुलाया गया.

नतीजा यह होता था कि वह अभिनेता बिना अभिनय और संवाद के मंच पर खड़ा रह जाता था. मंच की उन तकनीकों पर उनसे चर्चा होती थी और फिर स्क्रिप्ट में तब्दीली लायी जाती थी.

नाटक की नाटकीयता, मंच की तकनीकी जरूरतों और बारिकियों पर निर्देशक से मदद ली जाती थी. भीष्मजी की महानता यह है कि जब वे एक बार अपने नाटक की पांडुलिपि निर्देशक को सौंप देते हैं, तो फिर वे कोई हस्तक्षेप नहीं करते.

मुझे उनका सबसे अच्छा नाटक 'हानूश' लगा. 'हानूश' की दो सबसे बड़ी विशेषताएं हैं. एक तो उसमें जबरदस्त नाटकीयता है और दूसरे उसमें ठोस ऐतिहासिक संदर्भ उभर आया है.

भीष्मजी की दृष्टि मार्क्सवादी है. उन्होंने बड़े ही खूबसूरत ढंग से सामंतवाद से पूंजीवाद के संक्रमण के क्षण को दिखाया है. किस प्रकार देश में सामंती शक्तियां पूंजीवाद पर हावी है, इसे बड़े ही खूबसूरत ढंग से उन्होंने लिखा है.

'माधवी' को मंच की दृष्टि से कम लोकप्रियता मिली. निर्देशक एम.के. रैना ने काफी मेहनत की. फिर भी इसे सफलता नहीं मिली. दीपा साही ने इसमें माधवी की भूमिका अदा की थी. इसमें नाटकीयता की कमी है और जिस मिथ का प्रयोग इस नाटक में किया गया है, वह प्रचलित भी नहीं है.

हालांकि भीष्मजी इन सारी बातों से वाकिफ थे. इसमें नाटकीयता लाने के लिए तीन बार प्रयास किये गये. जिस दिन पहली बार यह नाटक होना था, उस दिन तक रैना संतुष्ट नहीं थे. वैसे वे इसके प्लॉट और कहानी से काफी प्रभावित हैं.

भीष्मजी की यह एक बड़ी खूबी है कि वे पांडुलिपि देने के बाद भले ही नजर आयें, परंतु जब भी नाटक का 'शो' होता है, वे नाटक देखने जरूर आते हैं और 'शो' खत्म होने का बाद मिठाई का डिब्बा लेकर खड़े दिखाई देते हैं.

भीष्मजी के हर नाटक में उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता उभर कर आयी है, और सबसे बड़ी बात यह है कि यह प्रतिबद्धता नाटक में थोपी हुई नहीं होती.

परिवेश की जबरदस्त पकड़ है : **काव्य कुमार**

मैंने 'कबिरा खड़ा बजार में' में बशीरा और 'माधवी' में सूत्रधार का अभिनय किया.

'बशीरा' की भूमिका को जैसा भीष्मजी ने लिखा है, वैसा ही मैंने मंच पर उतारा है. उसके संवाद, वाक्य-विन्यास और उसकी भाषा बहुत ही खूबसूरत थी.

जब भीष्मजी ने मेरी भूमिका देखी, तो उन्होंने खुश होकर कहा कि मैं ऐसा ही चाहता था. वे मेरे अभिनय से काफी प्रसन्न थे.

नाटक में बशीरा की प्लेसिंग इतनी अच्छी है कि जब मंच पर बशीरा का प्रवेश होता है, तो वह चार पीढ़ियों की कहानियां सुनाता है. इतने लंबे दृश्य को उन्होंने इतने अच्छे ढंग से लिखा है कि दर्शक बोर नहीं होते. यह 'सोलोसीन है. सोलोसीन अक्सर बोरिंग हो जाया करते हैं.

भीष्मजी का नाटक बहुत संतुलित होता है. उनके हर नाटक के दृश्य की अपनी उपयोगिता होती है. वे बड़ी सीधी-सादी भाषा में बहुत ही गूढ़ बातें कह जाते हैं.

कुछ नाटककारों के नाटक सिर्फ पढ़ने में अच्छे लगते हैं, करने में नहीं. परंतु भीष्मजी के नाटक पढ़ने और करने में एक जैसा आनंद देते हैं.

उनके नाटक सहज और स्वाभाविक होते हैं और नाटक के पात्र परम आवश्यक होते हैं. यदि माधवी में 'सूत्रधार' न हो, तो पूरा नाटक ही बिखर जाये.

भीष्मजी का सबसे बड़ा गुण यह है कि एक लेखक के रूप में वे न निर्देशक और न कलाकारों के काम में दखल नहीं देते.

उनके नाटक को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि ऐसा नाटक हमने पहले कभी नहीं पढ़ा.

उन्हें परिवेश का जबरदस्त ज्ञान है. वे पूरे परिवेश को बड़े ही खूबसूरत ढंग से कागज पर उतारते हैं.

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक को 'साहित्य कला परिषद' के छह पुरस्कार मिले हैं और मुझे सर्वश्रेष्ठ (द्वितीय) कलाकार का पुरस्कार मिला है.

काश उनकी रचना का केंद्रबिंदु 'नाटक' होता : **अनीस एहसान आजमी**

मैंने 'कबिरा खड़ा बजार में' में जुलाहे का अभिनय किया है. जुलाहा कबीर का शुरू से साथी है और कबीर जब संत हो जाते हैं, तो वह शिष्य हो जाता है.

भीष्मजी के साथ काम करते हुए विरोध नाम की चीज ही पैदा नहीं होती. वे संशोधन को बड़े सहज ढंग से स्वीकार कर लेते हैं.

बात को जोरदार तरीके से कहने के लिए संशोधन की जरूरत हर नाटक में होती है.

मैंने भीष्मजी, उनकी पत्नी शीलाजी, उनकी पुत्री डा. कल्पना, उनके दामाद रोमी, निर्देशक, एम.के. रैना, उनकी पत्नी डा. अंजलि रैना, वेद ढींगरा और जलीस के साथ 'कबिरा खड़ा बजार में' पढ़ा. भीष्मजी के इस नाटक के स्क्रिप्ट को एन.एस.डी. श्रीराम सेंटर के राजेंद्रनाथ, भारत-भवन, भोपाल, अनामिका, कलकत्ता ने यह कहकर लौटा दिया था कि यह नाटक मंच पर करना संभव नहीं है.

इस नाटक को पढ़ने के बाद यह प्रस्ताव किया गया कि अगर मूल पांडुलिपि को अवधी का टच दे दिया जाये, तो नाटक आकर्षक बन सकता है.

जब नाटक का पहला 'शो' हुआ, तो सर्वेश्वर दयाल सक्सेना काफी प्रभावित हुए. परंतु 'दिनमान' में भीष्मजी के हवाले से नाटक की समीक्षा करते हुए लिखा था कि भीष्मजी इसकी भाषा शैली से संतुष्ट नहीं हैं. जब भीष्मजी ने इस नाटक को प्रकाशित कराया, तो भूमिका में भाषा संबंधी अपना असंतोष व्यक्त भी किया.

शायद भीष्मजी को ऐसा लगा हो कि नाटक मेरा है और भाषा किसी और की.

परंतु जो लोग अवधी जानते हैं, वे इसकी भाषा-शैली की खूब प्रशंसा करते हैं. भीष्मजी ने बहुत कम नाटक लिखे हैं, यदि उन्होंने अपनी रचना का केंद्रबिंदु नाटक बनाया होता, तो विजय लकर और बादल सरकार जैसे नाटककारों की श्रेणी में उनकी गिनती होती.

'कबिरा...' की प्रशंसा में...: **अनूप बरुआ**

'कबिरा खड़ा बजार में' में गांव के ग्रामीण साधु और सिपाही का अभिनय मैंने किया है. भीष्मजी के व्यक्तित्व से ही उनकी क्षमताओं का पता चलता है. वे बड़े ठंडे मिजाज के हैं, बहुत सुलझे हुए, नेक और सही इंसान हैं. उनके साथ बात करते हुए बहुत अच्छा लगता है. उनके भीतर अहम् बिलकुल नहीं है. वे राह चलते हुए भी सही ढंग से रिसपांस करते हैं. बचपन में कबीर के दोहे तो सभी पढ़ते हैं. अलग-अलग लेखक के अलग-अलग इंटरप्रिटेशन होते हैं. हिंदुस्तान के अंदर किसी नाटक कंपनी ने कबीर के ऊपर इतने 'शो' नहीं किए.

पिछले नौ साल में सौ से ऊपर 'शो' हो चुके हैं. आदमी जितनी बार यह नाटक देखता है, उतनी ही बार उसे और इस नाटक को देखने की इच्छा होती है. दर्शक बार-बार उसे देखते हैं और बार-बार उसकी प्रशंसा करते हैं.

बाहर से जब भी नाटक खेलने का निमंत्रण मिलता है 'कबिरा खड़ा बजार में' ही मंचित करने का आमंत्रण आता है. जब कि 'प्रयोग' के पास हर वक्त पांच-छह नाटक तैयार रहते हैं, जिन्हें कभी भी और कहीं भी किया जा सकता है. ☐

गणित

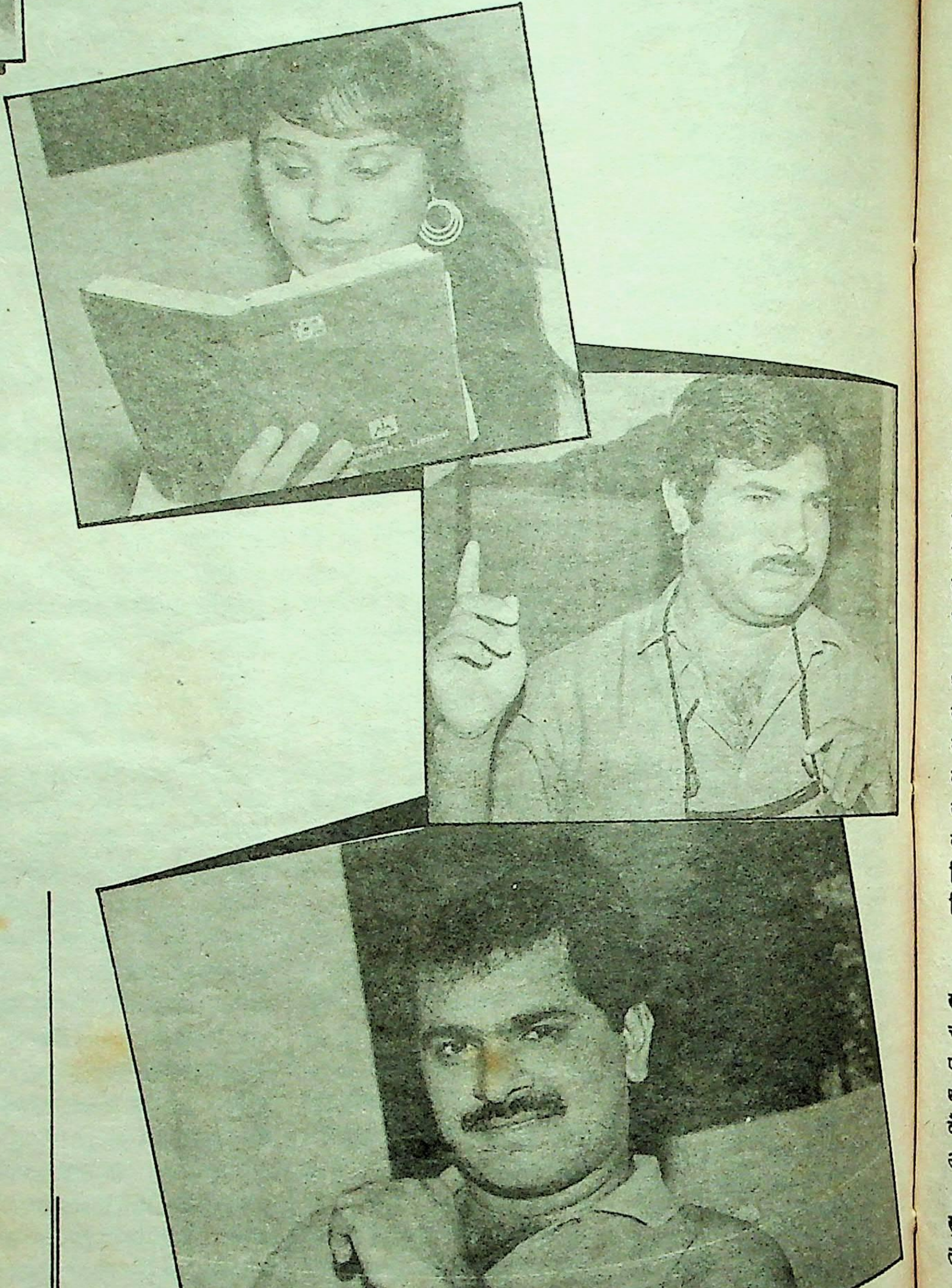

☐ श्रवणकुमार

मूलतः कथाकार. पहली कहानी 1953 में प्रकाशित. तब से अब तक अस्सी से ऊपर कहानियों और तीन उपन्यासों की रचना. कहानियां छह संग्रहों में संगृहीत. दो संग्रह 'श्रवण कुमार की चुनी हुई कहानियां' के रूप में प्रकाशित. एक कहानी संग्रह अंग्रेजी में 'इकोज़ ऐंड री-इकोज़' नाम से प्रेस में. एक और कृति 'मैं : मेरी रचना' (प्रमुख कहानीकारों की रचना-प्रक्रियाओं का संपादित संकलन) मी प्रेस में.

रचनाओं में एक औसत आदमी की अवहेलना और पीड़ा मुखरित. इधर की रचनाओं में मानव नियति और मानव मन की गुत्थियों का सवाल प्रबल.

1986 में हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा 'श्रवणकुमार की चुनी हुई कहानियां-1' के लिए 1984-85 साहित्यिक कृति पुरस्कार.

संपर्क : एच-259,
डी.डी.ए. फ्लैट्स,
नरायणविहार
नयी दिल्ली-110028

अब भी रह-रहकर मेरे अंदर सिहरन दौड़ रही है. यह सिहरन कहां से शुरू होती है और कहां खत्म होती है, इसका मुझे कुछ पता नहीं चल रहा. शायद उस बिंदु से जहां उन्होंने अपनी उंगली के शीर्ष की दाब दी थी, या शायद...मुझे वैसे अब भी अपने होंठ बहुत गीले लग रहे हैं. जैसे उन पर कुछ चिपक रहा हो. उस समय तो मुझे लगा था जैसे कि मैं बिलकुल भीग गयी हूं. बस, जरा थोड़ा और न संभलती तो. तो...? यहीं प्रश्न-चिहन लग जाता है.

तब मैं उनके चेहरे को अपनी हथेलियों के बीच लिये हुए थी और उनकी आंखों में एकटक देख रही थी. कितना अविचलित है यह चेहरा, मुझे लगा था, उस सबके बावजूद. तब मुझे एकाएक लगा था कि यह आदमी एक बहुत बड़ा धोखा भी हो सकता है. पर धोखा देने वाले की आंखें कुछ और ही होती हैं. ''पगले!'' मेरे मुंह से अनायास ही निकल गया था और मैंने खुद ही उस चेहरे को अपने वक्ष में भींच लिया था. हम कहां से कहां पहुंचे जा रहे हैं, मैंने अपने आप से पूछा था, और तब मैंने मन ही मन कहा था—हो जाने दो आज सब कुछ. लेकिन फिर न जाने किसने मुझे जैसे कि कालर से पकड़कर पीछे खींच लिया था और मेरे कान में फुसफुसाया था, ''यही तुम्हारा चरम बिंदु है.''

रह-रहकर वह आवाज अब भी मेरे कानों में गूंज जाती है, जैसे बेहद थके होने पर कई तरह की आवाजें कानों में सांय-सांय करती रहती हैं.

न जाने क्यों, तब मैंने उनसे पूछा था, ''आप किस मानव नियति की बात करते हैं? सच्चाई, ईमानदारी, क्या सब सापेक्ष नहीं हैं? क्या किसी की नियति यह नहीं कि वह दूसरों को पीसता रहे, और किसी की यह कि वह दूसरों से पिसता रहे?''

रात गहरी होती जा रही है और मुझे नींद नहीं आ रही. लगता है जैसे मेरे अंदर मछलियां उछल रही हों. आंखें बंद करती हूं तो वे और भी ज्यादा उछल-कूद मचाने लगती हैं. कानों में सांय-सांय की आवाजें भी और ज्यादा गहरी होने लगती हैं, जैसे तूफान में हवा सीटियां बजाती है. बचपन में सुना था कि भूत सीटियां बजाते हैं. क्या भरोसा अब भी कहीं भूत बैठे मुझे घूर रहे हों और मौका पाते ही मुझे आ दबोचें. अभी उस दिन ही तो सुन रही थी कि पड़ोस में उस लड़की के साथ रात में भूतों ने बलात्कार किया. भय के मारे वह चिल्ला भी न सकी थी. गले में एकदम जैसे किसी ने कपड़ा ठूंस दिया था. एकदम काले भूत, शरीर पर रबड़ चढ़ा हुआ. तब उन भूतों ने किसी दूसरे घर में भी वही कुछ करना चाहा था और तब किसी ने उन्हें ललकारा था, और तब पता चला था कि ये भूत नहीं...ये भूत हैं...!

उफ, कितना दिल दहलाता है यह सब सुनकर! तभी शायद उन्होंने वह उपन्यास भी लिखा था— 'द घोस्ट्स'. पढ़कर एक बार तो सनसना गयी थी मैं. मैं तो, दरअसल, कभी सोच भी न सकती थी कि कोई इतने गहरे में जाकर इस बेबाकी से वार करेगा. मेरा अंदर-बाहर सब छिल गया-सा लगता था—कि कहीं रत्ती-सा भी छुआओ तो सी-सी कर उठूं. जैसे बाहर-भीतर सब कच्चे घाव हों. ''वी आर ए नेशन ऑव घोस्ट्स, लवलैस घोस्ट्स, येस, येस, वी!'' लगा था जैसे समूचा राष्ट्र एक ऐसे कगार पर पहुंच चुका है जहां से गिरकर वह चकनाचूर हो जायेगा. या जैसे बम के धमाके के साथ कहीं से ज्वाला फूटेगा और उसके अंदर से लावा बहकर अपनी ज़द में हर किसी को ले लेगा. तब काफी देर तक मुझे वे धमाके सुनाई देते रहे थे. तब सहज ही मैं उन्हें पत्र लिखने बैठ गयी थी.

मेरे...

'मेरे' के बाद मैंने कई शब्द लिखे थे और काटे थे. कुछ समझ ही नहीं पा रही थी कि क्या संबोधन करूं. उनकी और मेरी उम्र में फर्क भी तो कितना है! उन्होंने खुद ही कहा था कि मैं चालीस को छू रहा हूं. और मैं? अभी पिछले महीने ही तो अट्ठारह पार किये हैं. मेरे जन्म दिन पर, न जाने किस रौ में आकर, उन्होंने मुझे मेजर आर. कहकर पुकारा था. उनका संकेत स्पष्ट ही था—कि अब मैं अपनी जिम्मेदार खुद हूं. खुद ? नहीं, नहीं, अभी तो मुझे कई सीढ़ियां चढ़नी हैं. वैसे तो मैं एक-एक करके सब सीढ़ियां चढ़ ही जाती, लेकिन उन्होंने जैसे कि मुझे एकाएक आखिरी सीढ़ी पर ला खड़ा किया—लो, अब थोड़ा ही तुम्हारे लिए और उचकना बाकी है!

और तब?...वे सामने साये कैसे हैं? जैसे कोई नंगा नाच रहा हो. ठीक यह किसी औरत का साया है. उभार कितने स्पष्ट हैं. अब यह आदमी है. धत् ये क्या करने लगे? मेरा शरीर बुरी तरह तना जा रहा है...ये ...ये सब भूत हैं, भूत और प्रेत! बचो, बचो, इनसे.

'मेरे...' मेरे क्या? उन्होंने मुझे 'लिटल फ्रेंड' कहा था और मुझे लगा था कि हां, फ्रेंडशिप में ही हमारी 'डिलिवरेंस' है. हम दोनों मित्र हैं—मित्र. मेरे मित्र. नहीं, नहीं, आदरणीय. पर आदरणीय में वह भाव नहीं जो मेरे में है. नहीं, इस रिश्ते को अपरिभाषित ही रहने दो. जैसे मानव नियति परिभाषित नहीं हो सकती. हम कहां से आये हैं, हमें कहां जाना है? लगता है जैसे चंद्रमा

''होमो?''
उनकी आंखों में
अब मैं दूसरी
तरह की चमक
देख रही थी. वह
और-और जानना
चाह रहे थे, और
मेरे मुंह से एक
बार जो बात
निकल गयी थी,
वह वापस नहीं
आ सकती थी.
मैं उसे वापस
बुलाना चाहती
भी नहीं थी.

पर पहुंचकर भी मानव कहीं अवरुद्ध हो रहा है. एक हम हैं जो अभी तक रोजी-रोटी की समस्या ही हल नहीं कर पाये हैं और एक वे हैं जो चंद्रमा पर पहुंचकर भी किसी आंतरिक छटपटाहट के शिकार हैं.

मुझे सुनकर कोई अचंभा नहीं हुआ था जब उन्होंने कहा था, "तुम तो समय से बहुत पहले ही सयानी हो गयी थी. यू हैव मेच्योर्ड रादर टू अर्ली."

"यैस," मेरे मुंह से अनायास निकल गया था, "मेरी परिस्थितियों ने मुझे समय से पहले मेच्योर कर दिया."

"कैसे?" वह एकदम उत्सुक हो उठे थे.

"आई हैव बीन ए होमो." मैं सच्चाई उनसे छिपा न सकी थी.

"होमो?" उनकी आंखों में अब मैं दूसरी तरह की चमक देख रही थी. वह और-और जानना चाह रहे थे, और मेरे मुंह से एक बार जो बात निकल गयी थी, वह वापस नहीं आ सकती थी. मैं उसे वापस बुलाना चाहती भी नहीं थी. न जाने कैसे मुझे उन पर इस कदर विश्वास हो रहा था. एक बार मुझे लगा भी कि मेरी इसी बात को लेकर मुझे ब्लैकमेल किया जा सकता है. पर अविश्वास से तो हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते. बल्कि जब मैंने उन्हें अपनी उस सहपाठिनी के बारे में बताया था जिसे एक बार दागी करके बार-बार ब्लैकमेल किया गया और अब वह इस अवस्था में है कि 'इसके' बिना रह ही नहीं सकती, तो वह काफी देर चुप रहे थे. शायद कुछ सोचते रहे थे.

लेकिन 'होमोज़' के प्रति उनकी उत्सुकता कुछ 'एकेडेमिक' भी दिखती थी. वह अब भी कुरेद-कुरेदकर प्रश्न पूछ रहे थे. उन्होंने इसके लिए दूसरा शब्द इस्तेमाल किया—लेसबियन.

"किसके साथ तुम...?"

"थी मेरी एक सहपाठिनी. इससे मेरा स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो गया. हऊ अनहैल्दी इट इज़!"

"ह्वाई अनहैल्दी?"

"बिकॉज़...बिकॉज़..." मैं ठीक से अपनी बात समझा न सकी. उनका खयाल था कि हम शायद शारीरिक रूप से भी 'समलैंगिक' थीं. तब मैंने उन्हें काफी समझाने की कोशिश की कि शरीर ही सब कुछ नहीं है, मन भी बहुत कुछ होता है. जैसे कि अब. हम शारीरिक रूप से चाहे उतने संपृक्त नहीं हैं, पर मानसिक रूप से एकदम जुड़े हुए हैं.

लेकिन तब मैंने उन्हें अमिता की बात भी कह दी थी कि—हऊ इंटेंसली आई हेट हर. आई सीक रिवेंज ऑन हर.

मेरी बात सुनकर वह कुछ चौकन्ने हो गये थे, "क्यों, क्या बिगाड़ा है उसने तुम्हारा?"

"बिगाड़ा नहीं है कि मैं वक्त से पहले ही...!"

वह समझ रहे थे कि मैं कुछ बात उनसे छिपा रही हूं. क्यों छिपा ली थी मैंने उनसे पूरी बात?

मम्मी मुझे बताती है कि जब मैं पांच बरस की थी तब एक 'महात्मा जी' मुझे प्यार से बुलाकर अपने कमरे में ले गये और मेरे सामने नंगे हो गये. वह काफी बुजुर्ग थे—लंबे-लंबे सिर के बाल और लंबी-लंबी दाढ़ी. हमारे मुहल्ले में किसी के यहां आकर ठहरे हुए थे. मैं उस समय तो वहां से ऊं-आं करके चली आयी, लेकिन बाद में गली के सब बच्चों को इकट्ठा करके वहां ले गयी. एक कौतूहल था. सबको दिखाना चाहती थी. 'महात्मा जी' ने वह रात तो किसी तरह वहां काटी, लेकिन सुबह होते ही बोरी-बिस्तर समेत वहां से गायब हो गये.

तभी मम्मी को इन महात्माओं से बड़ी चिढ़ है. मम्मी बताती हैं, अभी जब वह क्वांरी थी—यानी पाकिस्तान बनने से पहले—तो वह अपने घर की खिड़की से इन महात्माओं की काफी लीलाएं देखा करती थी. घर की खिड़की जिधर खुलती थी, उधर मंदिर था, देवी का. वहां के पुजारी के अलावा और भी कई साधु-संन्यासी वहां जमा रहते थे. एक दिन बाल काढ़ते-काढ़ते जब उसने खिड़की खोली तो देखा कि वे आपस में ही गुंथे हुए हैं. एक दिन वहां एक भक्तिन पहुंची हुई थी. पर ये भक्तिनें भी कहां-कहां नहीं पहुंचती. देखा जाये तो एक तरह से ये मठ-मंदिर चलते ही उनके सहारे हैं. धर्म के नाम पर तुम इनसे कुछ भी करवा लो. या इन ब्लैक के पैसे वालों से. पर ये ब्लैक के पैसे वाले हैं अजब. उधर जितनी निर्ममता से लोगों को लूटेंगे, उतनी ही निर्ममता से लुटा भी देंगे. इनकी मुख्य समस्या तो यही होती है कि इतना पैसा पचायें कैसे! इसीलिए जितना ब्लैक का ह्वाइट बन गया, बना लिया और बाकी लुटा दिया. लूटो, लूटो, दिल खोल के लूटो. शायद हमारे देश की बीमारी की जड़ यह लूट का पैसा ही है. एक तरफ लोग इतने गरीब, और दूसरी तरफ रंगा-रंग महफिलें. कल ही कोई कह रहा था कि एक दिन आयेगा जब ब्लैक ह्वाइट दिखने लगेगा और ह्वाइट ब्लैक. हमारे समाजवाद की नींव इसी ब्लैक पर तो रखी गयी है. तब देश चकनाचूर नहीं होगा तो क्या होगा? कांच के मर्तबान की तरह एक दिन सब चूर-चूर होकर बिखर जायेगा...

मम्मी अजब किस्से सुनाती है. तब की बातें बताती है जब मैं अभी पेट में ही थी. मम्मी ने वैसे हमसे काफी दोस्ताना रिश्ता कायम कर रखा है. बल्कि बहुधा तो उससे कोई बात छिपाने को मन नहीं होता. उसकी एक बात मुझे बड़ी प्यारी लगती है—जब गलत काम करोगी, तभी उसको छिपाने की सोचोगी. तो अब मैं क्या कोई गलत काम कर रही हूं? तब मैं क्यों नहीं खुलकर इसके बारे में उससे बात कर पाती? एक बार कुछ की भी थी. काफी रात गये तक बातें होती रही थीं. तब मुझे लगा था कि ऐसी अंतरंगता मुझे और कहीं मिलनी सहज नहीं. तब मैंने मम्मी से कहा था—'मम्मी, बात यूं है. क्या कभी ऐसा नहीं होता कि हम चाभी-भरे खिलौनों की तरह आपस में टकरा जाते हैं और फिर एक-दूसरे से ऐसे बंध जाते हैं कि बरबस एक दूसरे के पीछे टंगे-टंगे, खिंचे-खिंचे चले जाते हैं? 'नियति' क्या यही होती है? पर नियति में कोई स्थिर मंजिल नहीं होती. मंजिल होती भी है तो वह हमेशा आगे-आगे सरकती रहती है. शायद इसी से व्यक्ति भी और-और आगे बढ़ने की सोचता है...'

पर 'इत्तफाक' भी क्या कभी-कभी नियति की कड़ियां

जोड़ने वाला नहीं होता? इत्तफाक देखो कि उनकी वह कहानी मैंने उस पत्रिका में पढ़ी और मुझे लगा जैसे किसी ने मुझे उघाड़कर रख दिया हो. मैं एकाएक अपने को नंगी लगने लगी थी. क्या कभी ऐसा भी होता है कि किसी के साथ तुम्हारा कोई लगाव न हो, लेकिन क्षणिक प्रभाव इतना तीखा हो कि तुम अपनी सारी सुध-बुध खो बैठो और तुम्हें वस्तु-स्थिति का तभी भान हो जब उस आवेश में से गुजर जाओ? जैसे सांप अपनी आंखों से चिड़िया को बांध लेता है, ठीक वैसी ही पकड़ उसकी आंखों में थी. मुश्किल से एक बार मेरी-उसकी आंखें मिली थीं, और मैं उसके और-और करीब होती गयी. हम लोग गाड़ी से जा रहे थे. स्लीपर कोच था. रात हुई और सब अपनी-अपनी नींद में खो गये. पापा सबसे ऊपर वाली बर्थ पर थे, मम्मी बीच वाली पर, और मैं सबसे निचली पर. वह मेरे सामने वाली बर्थ पर था. गज़ब की बेबाकी थी उस शख्स में. मैं तभी संभल पायी जब सब कुछ बीत चुका था. और उन्होंने अपनी कहानी में ठीक इसी स्थिति को पकड़ा था. यह बात मैं अभी तक किसी को बता नहीं पायी हूं. शायद किसी को बताऊंगी भी नहीं...कहानी का नाम भी क्या था— 'पहचान'. यानी उस क्षणिक आवेश से ठीक पहले की स्थिति और उस आवेश के बीत जाने के ठीक बाद की स्थिति. क्षण बीत गया तो पहचान भी खत्म...तब मैंने उन्हें एक पत्र लिखा था...कैसा इत्तफाक है कि वह 'पचाहन' हमारी पहचान बन गयी. पर यह व्यक्ति वैसा व्यक्ति नहीं था. इसकी आंखों में सांप की आंखों की सी पकड़ भी नहीं थी. बल्कि पहली बारं जब मैंने इन्हें देखा था तो मुझे इन पर कुछ हंसी-सी आयी थी. बात ही इन्होंने कुछ ऐसी की थी. चाहिए यह था कि मैं इनसे प्रभावित होती, उलटे यह मुझसे प्रभावित हो रहे थे.

"आई एम स्टन्नड टु फाइंड दैट वन कुड बी सो मेच्योर्ड एट योअर एज." इन्होंने एकाएक कहा था.

"ह्वाई स्टन्नड?" मैंने पूछा था.

और यही वह शब्द था जिस पर मैं मन ही मन हंसी थी. हंसी भी थी, पर इसी वाक्य ने कहीं मुझे सहज ही छू भी लिया था.

मम्मी ने मेरी बात सुनकर मेरा विरोध नहीं किया था. केवल कुछ देर खामोश रही थी, जैसे कुछ सोच रही हो. तब मुझे लगा था कि जरूर मम्मी के जीवन में ऐसा कोई क्षण आया होगा...

नहीं, मम्मी की आंखों से उस समय केवल एक बूंद आंसू टपक पड़ा था, "तुझे क्या पता, पगली, तू मेरी कितनी प्यारी बेटी है!" उसने कहा था, "मैं तेरा हर खुशी में साथ दूंगी बशर्ते कि तू कोई गलत काम न करे." और मम्मी ने तबसे ही उनका घर में हमेशा स्वागत किया है.

नहीं, स्थिति का यह समाधान नहीं.

जैसे-जैसे रात गाढ़ी होती जा रही है, वैसे-वैसे मेरी नींद गायब होती जा रही है. रात भर जगती रही तो सुबह कालेज जाना भी मुश्किल हो जायेगा. परीक्षा में अब कुछ ही महीने तो बाकी है. इन्हें पार कर लूं तब शायद मैं भी कुछ लिख सकूंगी. अपना पहला लिखा इन्हें दिखाया था तो बोले थे, "मुझसे अच्छा लिखती हो."

हूं. ऐसे ही मन रखा होगा.

फिर बोले, "बी योअरसेल्फ."

बात ठीक भी है. पर कोई औरत आदमी के बराबर बोल्ड हो भी कैसे सकती है? विशेषकर हमारे समाज में जहां औरत को व्यक्ति न समझकर हमेशा औरत ही समझा जाता रहा है. जरा-सा लोगों को पता चल जाये कि इस औरत का कोई संरक्षक नहीं, फिर देखो उनकी जीभ कैसे लपलपाती है! या जब कोई औरत किसी को अकेली मिल जाये, तब देखो वह कैसे उसे घेरने की फिराक में पड़ता है! और कुछ न सही, ऊल-जलूल मज़ाक ही शुरू हो जायेंगे...शायद हर समाज में ऐसा ही होता है. पर हमारे यहां के लोग तो जो छिपकर खुद करते हैं, यदि वही दूसरे को करता देख लें तो एकाएक उनके भीतर कहीं का सदाचारी उठ खड़ा होता है. अभी उस दिन ही तो मम्मी कह रही थी कि उनके मुहल्ले की लड़कियां 'मुंह अंधेरे' घर से निकल पड़ती थीं, मंदिर जाने के लिए, लेकिन पहुंचती थीं कहीं और. हां, घर लौटते समय उनके माथे पर चंदन का टीका जरूर लगा रहता था. एक लड़की ने तो...

उस दिन वह भी तो अपना अनुभव बता रहे थे. हर जगह लगता था जैसे कि कोई अपनी चमड़ी नुचवाये बिना बाहर आ ही नहीं सकता. हां, दलालों का सहारा लो तो जिस काम को करवाने में तुम्हें घंटों या महीनों लगेंगे, जहां तुम्हें हार भी माननी पड़े, वहां मिनटों-सैकिंडों में सब कुछ हो जायेगा. फिर ब्लैकमेलर अलग—ऐसा नहीं करोगे तो ऐसा हो जायेगा! और वे तुम्हें अंतिम क्षण तक नहीं बख्शेंगे. यानी अगर तुम्हारी अस्थियां भी प्रवाही जाने को हों, किसी तथाकथित पवित्र स्थल पर तो वे उन्हें भी किसी तरह हड़बोच लेंगे और फिर उनका मुंहमांगा दाम चाहेंगे और दाम न मिलने पर डरायेंगे कि वे उन्हें कहीं कूड़े में फेंक देंगे.

सच, जब वह बातें करते है तो किये जाते हैं, तब रुकने का नाम नहीं लेते. जैसे किसी ने उनकी नस पकड़ रखी हो कि बोले जाओ, बच्चू, खबरदार जो रुके तो. उस समय उनका स्वर कुछ ट्रेजिक भी होता है. है भी तो यह कितनी बड़ी ट्रैजिडी कि एक तरफ तो हम समाजवादी समाज की बात करें और दूसरी तरफ आदमी को कदम-कदम पर ज़लालत का सामना करना पड़े.

लेकिन क्या इस ज़लालत का मुझे भी सामना करना पड़ेगा? जब बाकी लोग इससे नहीं बच पाये, तब मैं कैसे बच सकती हूं? यह हमारे यहां के आदमी की सामूहिक नियति है. किस कदर डर जाती हूं इस सबके बारे में सोचकर! लड़कियों को तो शायद और भी ज्यादा जलालत सहनी पड़ती होगी. कहीं-कहीं नौकरी पाने की, सुना है, शर्त ही यही रखी जाती है. हंसी भी आती है और इन बातों के बारे में सोचकर और रोष भी उमड़ता है. क्या स्त्री-शरीर महज़ एक पण्य-वस्तु है?

शादी? शादी भी क्या एक सौदा नहीं है? लड़केवाले

इस फिराक में रहते हैं कि उन्हें दुधारू गाय मिल जाये जिसे हर वक्त दुहा जा सके और लड़कीवाले इस फिराक में होते हैं कि लड़की के लिए एक मजबूत 'खूंटा' मिले. क्या कभी किसी ने 'कंपेनियनेबलनैस' की बात भी सोची है?—कि दो संगी-साथी आपस में मिलें, जो एक-दूसरे के विकास में सहायक हों. एक वे हैं जो आदमी-औरत कंधे से कंधा मिलाकर हर चोटी पर विजय प्राप्त कर लेना चाहते हैं. और एक हम हैं जो हर बात ले-देकर सैक्स पर ही खत्म करते हैं. यानी इससे आगे कुछ नहीं, फाटक बंद है और बंद रहेगा, और अब तुम लौट जाओ. शायद इसीसे हमारे यहां हर कोई अवरुद्ध-सा दिखता है. क्या करें? कहां जायें?—जैसा भाव ही प्राय: हर चेहरे पर अंकित रहता है. या, बेचारगी! जैसे कोई कह रहा हो—पिटी मी! पिटी मी! उधर उनके चेहरे हर वक्त दमकते हैं. लगता है जैसे सब कुछ पाकर भी वे कुछ और पाने की फिराक में हैं. हैरी! हां, हैरी और ग्लोरिया की बात मुझे याद आ रही है. उन्होंने ही बतायी थी. हैरी और ग्लोरिया पति-पत्नी थे. हैरी कोई चौबीस बरस का था और ग्लोरिया अट्ठाइस बरस की. ग्लोरिया की पहले दो बार शादी हो चुकी थी. यानी हैरी से शादी करने से पहले वह किसी और के साथ रह रही थी. वह हैरी का दोस्त था. हैरी कनाडा से आया था. उसके पास रहने को कोई जगह नहीं थी. न्यूयॉर्क में वैसे भी जगह मिलती कहां हैं! कहीं सातवीं-आठवीं मंजिल पर उसका वह दोस्त रह रहा था. कमरों की दीवारें बिलकुल छिली हुई. फर्श पर सीमेंट जगह-जगह से उखड़ा हुआ. खैर, हुआ यह कि ग्लोरिया में एकाएक कुछ ऐसा परिवर्तन आया कि चौथे ही दिन उसका पति घर से बाहर था और हैरी भीतर. उन्होंने हैरी का ही वाक्य दुहराया था— 'आई वॉक्ड इन, ही वॉक्ड आउट.' हंसी आ गयी थी मुझे यह वाक्य सुनकर और फिर मैं कुछ आश्चर्य में भी पड़ गयी थी. क्या वहां इंसानी रिश्ता, बस, इतना स्थायी है?...एक दिन ग्लोरिया के रूप का ज़िक्र करते हुए कहने लगे कि कसी जीन्स में से उसकी जांघें जैसे पिघलकर बाहर आने को होतीं. जितनी देर वह सामने होती, उतनी देर वह पूरी तरह दिलोदिमाग पर छायी रहती, बल्कि उसक अनुपस्थिति में भी उसका वह रूप कहीं गहरे में गुदगुदाता रहता, यानी उसका यौन आकार ही प्रमुख रहता. तो क्या हम यही मानें कि एक भारतीय के लिए सैक्स ही उसकी इयत्ता है, जबकि विकसित देशों के इन प्राणियों के लिए स्त्री-पुरुष का यह मिलन एक नयी दुनिया खोजने का साधन बनता है? हैरी कैमिस्ट्री में डाक्टर था. लेकिन जितनीं उसकी कैमिस्ट्री में पैठ थी, उतनी ही साहित्य और समाज-शास्त्र में भी. दूसरे शब्दों में, आप उससे किसी भी विषय पर बात कर लें...एक तरह से संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास. और इधर हम हैं कि व्यक्तित्व को जैसे ग्रहण लगा हो. कहीं न कहीं पंगुता ज़रूर नज़र आ जायेगी. उन्होंने शायद 'लॉप-साइडिड पर्सनैलिटी' कहा था. जैसे कहीं घुन लगा हो या बेरी-बेरी के मरीज़ हों.

ग्लोरिया शायद कहीं सैक्रेट्री थी. बारह सौ डालर के करीब पाती थी. हैरी कहीं दो-ढाई हज़ार पा रहा था. दोनों के लिए ग्लोरिया की कमाई काफी थी. बाकी आराम से बचा लेते थे. तभी तो अब भारत के भ्रमण पर आये हुए थे. भारत का भ्रमण कर लेने के बाद वे दूसरे देशों में भी घूमे. कभी समुद्र की लहरों पर और कभी आकाश की गहराइयों में. लेकिन कितने लोग होंगे हमारे देश में जिन्होंने अपने घर से पचास किलोमीटर का फासला भी तय किया होगा? अधिकतर तो कोल्हू के बैल की तरह अपने उसी संकुचित दायरे में चक्कर लगाते रहते हैं. वह कह रहे थे कि उन्होंने स्वयं अभी तक हवाई यात्रा नहीं की, समुद्री यात्रा की तो बात ही क्या!

पर असली सवाल तो कमाई का है. जब सरकार खुद मानती है कि हमारे यहां चालीस प्रतीशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे हैं, यानी उनकी कमाई मुश्किल से पंद्रह-बीस रुपये माहवार है, तब आप ही सोचिए, कैसा होता होगा उनका जीवन! वे लोग जिनकी झोपड़ी में कभी चिराग नहीं जलता, वे लोग जिनके लिए नमक एक नायाब चीज़ है, वे लोग जिनके पांव बीहड़ जंगलों-पहाड़ों में चलने से जानवरों के पांव की तरह खुरीले हो जाते हैं, वे लोग जिन्हें कंद-मूल न मिलने पर जानवरों के गोबर में से अनाज के दाने बीनकर अपनी भूख मिटानी पड़ती है...चालीस प्रतिशत लोगों की हालत तो ऐसी है, और बाकी चालीस प्रतिशत की हालत? शायद उनमें से भी बीस प्रतिशत की हालत कमोबेश उन्हीं खुरीले पांववाले लोगों की तरह होती होगी! बस...फर्क सिर्फ इतना होगा कि इनके झोपड़ों में कभी-कभार चिराग जल जाता होगा, नमक इनके लिए नायाब न होकर चीनी नायाब होती होगी, और ये अपने पांव को खुरीलेपन से बचाने के लिए उनमें कभी-कभार फटे टायर का चप्पल-जूता टांक लेते होंगे. अब आप ही बताइए, ऐसे में कोई क्या जोड़े और क्या खाये! मध्यम वर्ग को बदनाम तो किया जाता है, लेकिन यह मध्यम वर्ग ही है जो समाज को सौष्ठ प्रदान करता है. हां, इस वर्ग में वे लोग भी हैं जो अंतिम श्रेणी

ा था. दोनों
आराम से
आये हुए
देशों में भी
काश की
देश में
फासला भी
की तरह
रहते हैं.
वाई यात्रा

सरकार खुद
गरीबी की
से पंद्रह-
कैसा होता
में कमी
क एक
गलों-पहाड़ों
हो जाते हैं,
रों के गोबर
टानी पड़ती
सी है, और
नमें से भी
ले पांववाले
इतना होगा
जाता होगा,
याब होती
चाने के लिए
ता टांक लेते
या जोड़े और
जाता है,
सौष्ठ प्रदान
अंतिम श्रेणी

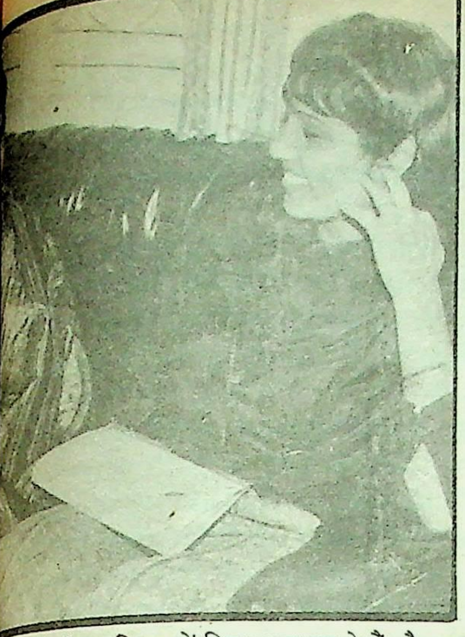

के बीस प्रतिशत में मिल जाना चाहते हैं और उनसे मिलकर एक प्रकार से देश के बाकी लोगों के खिलाफ षड्यंत्र रचते हैं.

वह अपने एक परिचित के बारे में कह रहे थे न? हर महीने उसे सवा सौ रुपये का मनी आर्डर आता था. वह होस्टल में रहता था. कह रहे थे, एक बार उन्होंने ऐसे ही पूछ लिया, ''तुम्हारे पिताजी क्या काम करते हैं?''

''गिरदावर हैं, गिरदावर!'' वह बड़े फख्र से बोला था.

''गिरदावर क्या होता है?''

''गिरदावर? वही कानूनगो. यानी पहले पटवारी, फिर कानूनगो. कानूनगो के बाद नायब तहसीलदार, नायब तहसीलदार के बाद तहसीलदार, तहसीलदार के बाद एस. डी. ओ. या डिप्टी क्लैक्टर, डिप्टी क्लैक्टर के बाद क्लैक्टर, क्लैक्टर के बाद कमिश्नर, कमिश्नर के बाद चीफ सैक्रेटरी. समझे? ये हैं वे मोहरे जिनके सहारे राज्य सरकारें खड़ी हैं. ये न हों तो सरकार के गल्ले खाली पड़ जायें. राजस्व की वसूली यही लोग तो करते हैं. और भाई, पटवारी-कानूनगो ही तो इस व्यवस्था की नींव हैं.''

''कितना मिलता है एक गिरदावर को?''

''एक सौ रुपये माहवार.''

''बस?''

''क्या यह कम है? अरे, ऐसी पोस्टों के लिए तो लोग तरसते हैं. कभी-कभी तो हजारों देने पड़ते हैं इन्हें पाने के लिए. और फिर कहीं अपनी मनपसंद जगह पर पोस्टिंग हो जाये तो कहना ही क्या! सुना नहीं, पुलिस स्टेशनों और चुंगी नाकों के लिए तो बोली लगती है!''

वैसे है न यह मजे की बात—कि किसी को तनख्वाह तो सौ रुपये माहवार मिलती हो और उसमें से वह सवा सौ रुपये हर माह अपने लड़के को भेजे, तीन सौ बीवी को (वह गिरदावर के साथ कहां-कहां घूमती रहे, और फिर इतने परिवार के साथ. दस बच्चे तो होंगे ही) और बाकी जेब खर्च के लिए अपने पास रख ले और उसी जेब खर्च में से मकान खरीदने का जुगाड़ भी कर ले. यदि इस तरह का गणित तुम भी जानते हो तो तुम कुछ भी कर सकते हो. भारत खोजना तो जरूरी है नहीं, उसे तो विदेशी ही खोजेंगे. हां, तुम किसी विदेश को जरूर खोज सकते हो.

सच, उस दिन उन्होंने जाने किस रौ में आकर कह दिया था, ''चलो, हम भी अमेरिका चलेंगे.''

''क्यों, ग्लोरिया की याद सता रही है क्या?''

''ग्लोरिया की नहीं, हैरी की. सच, क्या आदमी था! बोला, पहले मेरी एक लेस्बियन से दोस्ती थी. खूब बढ़िया दोस्त थी. कई बार हम दोनों एक साथ एक ही औरत की तारीफ करते. जिस तरह मैं उसके बारे में रस ले-लेकर बातें करता, ठीक वैसे ही वह भी करती. लेकिन सबसे ज्यादा हैरत मुझे इस बात की होती कि कहने को हैरी केवल चौबीस बरस का था, लेकिन अपने आचार-व्यवहार और चिंतन से वह हमारे यहां के किसी चालीस-वर्षीय व्यक्ति से कम नहीं दिखता था. सच, बड़ी हैरानी होती है यह देखकर कि हमारे देश में सब किशोर ही किशोर हैं, वयस्क कोई नहीं. क्या हो गया है हमारी शिक्षा को? क्या हम जान-बूझकर देश से प्रौढ़ता का बहिष्कार कर देना चाहते हैं? क्या हम जान-बूझकर एक ऐसा चिंतनहीन समाज तैयार करना चाहते हैं जो अपनी उच्छृंखलताओं में खोया रहे और आदमी के विकास से जुड़े मुद्दों से दूर भागे? क्या हमारी पत्रिकाएं भी इसी उच्छृंखलता को बढ़ाने में योग नहीं दे रहीं? आपको शारीरिक मोटापा घटाने से लेकर ड्राइंग रूम की साज-सज्जा संवारने तक के बारे में तो ढेरों लेख मिल जायेंगे, लेकिन आदमी के उत्कर्ष के बारे में शायद एक टिप्पणी भी न मिले. यहां तुम अट्ठारह साल की लड़की से सिवाय प्रेम की ओछी बातें करने के, कोई और ढंग की बात नहीं कर सकते. तुम्हारी बात दूसरी है. लड़कों की हालत भी यही है. या ऊल-जलूल रोमानी किस्से पढ़ेंगे. या चांडाल चौकड़ी जमायेंगे. हां, नकल करने में ये लोग किसी से पीछे नहीं. इधर हिप्पीज़ की बाढ़ देखो कैसे बढ़ती जा रही है. अब इसके पीछे चिंतन कितना है और अंधानुकरण कितना, इस पर ज्यादा विचार करने की जरूरत नहीं. मुख्य बात तो यह है कि वर्जनाओं से घिरे रहने के कारण जब किसी लड़के-लड़की को आपस में मिलने का मौका मिलता है तो सबसे पहले वे एक-दूसरे के शरीर को ही चिचोड़ डालना चाहते हैं.''

सच, कभी-कभी क्या मैं नहीं चाहती कि कोई मेरे शरीर को भी चिचोड़े? उफ, इस शरीर की भी कभी-कभी कितनी तीखी मांग होती है! तब कभी-कभी यह फट पड़ने को होता है. तब ये संयम-बांध, सब टूट जाने को होते हैं. अब भी मैं कैसे तनी जा रही हूं. ओह, मैं क्या करूं? शरीर पर जरा-सा हाथ छुआने से शरीर के भीतर जैसे नन्हे-नन्हे क्षिप्रपगी जीव दौड़ने लगते हैं. एक बार मुझे अपने होंठों के दायें कोने के पास भी ऐसा ही लगा था. अजब सनसनाहट थी. मुझे लगने लगा था जैसे मेरे शरीर का यह भाग ऐसे ही सनसनाते-सनसनाते एकाएक

निष्क्रिय हो जायेगा. शायद लकवा ऐसे ही शुरू होता है—कि एकाएक भीतर के सब तार झनझना उठें और फिर हमेशा के लिए सुन्न पड़ जायें. पर तब तो उन्होंने अपने होंठ मेरे होंठों से छुआ भर दिये थे. आगे बढ़ने की बात ही नहीं थी. मौका भी कहां मिलता है? उस दिन मिला भी था तो मैंने ही कहा था, ''बस, यहीं तक. इससे आगे नहीं.'' और उनके हाथ वहीं रुक गये थे. पर उनकी आवाज कांप रही थी और उन्होंने कहा था, ''बट आई वांट टु हैव यू होल.''

''हूं तो सही आपके सामने समूची. नहीं?'' मैंने अपनी आंखें झपकते हुए कहा था.

''नहीं, ऐसे नहीं. आई वांट टु सी यू फुल.''

''दैन, शैल आई अनड्रेप माइसेल्फ?'' मैंने बात बनाने के लिए कह दिया था.

''ह्वाई नॉट?'' उन्होंने उसी आवेग में कहा था. पर वह आवेग उसी समय थम गया था, हालांकि मैंने भीतर ही भीतर चाहा था कि वह थमे नहीं. फिर मैंने और बात बनायी थी, ''बट माई बॉडी इज़ नॉट ब्यूटिफुल.''

''हुं.'' उन्होंने कहा था, ''आई नो, हाऊ ब्यूटिफुल इट इज़!'' उस समय वह बहुत धीमे बोल रहे थे, यहां तक कि उनके शब्द ठीक से सुनाई भी नहीं पड़ रहे थे. पर उस दिन तो मेरा शरीर वाकई 'ब्यूटिफुल' था, क्योंकि कैमिकल से मैंने अपनी टांगों के सब बाल साफ कर रखे थे. किस रौ में किये थे, पता नहीं. पर मन के कहीं गहरे में ज़रूर उन्हीं का खयाल रहा होगा, क्योंकि एक बार मैंने उन्हें कहा भी था कि मेरी टांगें सुंदर नहीं, मेरी टांगों पर बड़े घने बाल हैं. पर उस दिन कैमिकल शायद मैंने इसलिए भी लगाया था कि मैंने स्कर्ट पहना था. स्कर्ट में मैं अब भी नन्हीं-सी लगती हूं. पर टांगें मेरी काफी मजबूत हैं. शीशे के सामने दोनों पैर जोड़कर खड़ी हो जाऊं तो जांघों के बीच कहीं अंतर नहीं रहता. मेरा चलने का ढंग भी कुछ ऐसा है कि चलती हूं तो दोनों जांघें आपस में टकराती हैं. उन्हें मेरा इस तरह चलना नृत्य की मुद्रा लगा था. ''सच,'' उन्होंने कहा था, ''जब तुम सामने से आती हो तो लगता है जैसे भरत नाट्यम करने जा रही हो.''

नहीं प्रिय, यह भरत नाट्यम नहीं है, यह जीवन-नृत्य है. जीवन-नृत्य की भी अपनी एक अदा होती है. तुममें एक अनूठी लय आ जाती है. दिखने में तो ऐसे लगता है जैसे तुम बड़े उल्लास में हो, लेकिन वास्तव में तुम्हारे भीतर बैठा कोई तुम्हें हमेशा सावधान करता रहता है कि देखो, कहीं तुम्हारा कदम 'थिड़क' न जाये.

नहीं, मेरे कदम 'थिड़कते नहीं. मैं पुख्ता कदमों पर हूं. चाहूं तो सबको चुनौती दे सकती हूं, मां को, बाप को, घर को, बार को. पर किसलिए ? किसलिए? महज़ चुनौती के नाम पर चुनौती? पर कहीं न कहीं तो मुझ पर अंकुश लगा ही हुआ है. क्या मैं खुल्लम-खुल्ला उन्हें स्वीकार कर सकती हूं? मम्मी अक्सर सुनाकर कहती है कि वह बुड्ढा-खूसट बाईस साल की छोकरी ढूंढ रहा था. बुड्ढा-खूसट! क्या वह उनके बारे में भी ऐसा ही कहेगी? क्या वह बुड्ढे-खूसट दिखते हैं? यदि उन्होंने अपनी उम्र बतायी न होती तो हम कभी सोच भी नहीं सकते थे कि वह चालीस के करीब होंगे. मुश्किल से तीस-बत्तीस. चेहरे पर कहीं एक भी तो सलवट नहीं. बाल भी मुश्किल से एक-आध ही पका होगा. पर उससे क्या? इतने तो मेरे भी पक गये हैं. कभी-कभी मम्मी सुना-सुनाकर कहती है, ''ऐसा मौका फिर नहीं आने का. कहो तो 'हां' कर दूं.'' हिश!

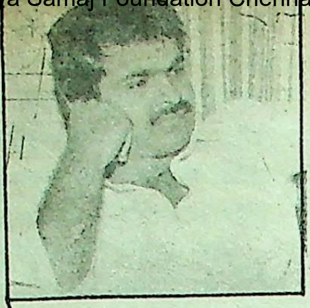

मम्मी मुझे बताती है कि जब मैं पांच बरस की थी तब एक 'महात्माजी' मुझे प्यार से बुलाकर अपने कमरे में ले गये और मेरे सामने नंगे हो गये. वह काफी बुजुर्ग थे. लंबे-लंबे सिर के बाल और लंबी-लंबी दाढ़ी.

सच, कभी-कभी मुझे इनसे भी विरक्ति हो जाती है जब यह ढीले-ढीले से दिखते हैं, क्योंकि मेरे मन में जो इनका चित्र है, वह एक ऐसे आदमी का है जिसमें अद्भुत 'स्ट्राइकिंग फोर्स' है. यानी कभी-कभी तुम्हें लगता है कि यह आदमी एक ही झपट्टे में सबका सफाया कर सकता है. तब ऐसा आदमी तुममें कितना साहस उपजाता है! लेकिन जब वही आदमी तुम्हारे सामने हारा हुआ, टूटा हुआ-सा, बैठा हो तो तुम्हें लगता है जैसे तुम एकाएक लुट गये हो, या तुम्हें लूटनेवाला आदमी तुम्हारे सामने ही बैठा है और वह मुजरिम है, गुनहगार है, और ऐसे आदमी को तुम्हें फौरन सजा देनी चाहिए.

उस दिन तो वाकई मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रखा था. इन्होंने कहा था, ''आई फील टोटली डिमॉरलाइज्ड टुडे.''

''कैसे?'' मैंने पूछना तो चाहा, पर मुझे लगा, यह आज मेरे सामने कौन बैठा है. वह बार-बार अपना चश्मा ठीक करते थे और रूमाल से माथा पोंछते थे. एक बार तो मैंने कहना चाहा, 'यह क्या मरघटी शक्ल बना रखी है! आप पुरुष हैं. पुरुषों जैसी बात कीजिए.' पर कह नहीं पायी थी. फिर मुझे लगा था कि नहीं, इन्हें अपना दिल हल्का कर लेने दो.

वह अपना दिल हल्का करते रहे थे और मुझे बार-बार अचंभा हो रहा था कि यह शख्स इतनी 'ह्यूमिलियेशन' कैसे बरदाश्त कर पाया! क्यों नहीं इसने अपने बॉस के मुंह पर कुछ दे मारा? क्यों नहीं उससे कहा कि आप खुद ही 'इनिशियेटिव' किल करते हैं और खुद ही कहते हैं कि 'इनिशियेटिव' नहीं लेते? कागज उठाकर पटक दिये थे तो आप उसे उठाकर पटक देते. यदि आप जैसे लोग भी इस तरह दब्बू बन गये तो हो गया देश का कल्याण! तब तो देश ज़रूर डूबेगा. जब वह आपके सामने हमेशा गलत काम करता है और आपके पास उसका सबूत भी है, तो आप क्यों नहीं उसे वहीं दबोच लेते? क्या यह खुद के साथ गद्दारी नहीं है? क्या यह राष्ट्र के साथ गद्दारी नहीं है?

वह चले गये थे तो मैं काफी देर तक कुलबुलाती रही थी. क्या यही था वह शख्स जिससे मेरी पहले दिन भेंट हुई थी? लेकिन वे लोग जो दूसरों को 'डिमॉरलाइज़' करते हैं, क्या कहीं गहरे में खुद 'डिमॉरलाइज़्ड' नहीं होते?

क्या बत्ती जला दूं? पर मम्मी जग गयी, तो....? उसे नींद बहुत कम आती है. कभी-कभी तो पांव की आहट पाते ही झट से उठ बैठती

है. एक दिन कह रही थी, जिसकी जवान बेटी हो, उसे नींद आयेगी भी कैसे? मत सोओ, रतजगा किया करो. तुम भी हाथ में खड़तालें-मंजीरे ले लो और गाओ देवी की भेंटें. खूब गाते हैं ये देवी की भेंटे गाने-वाले भी. कभी-कभी तो ऐसे लगता है जैसे कोई मंजीरों की आवाज़ कानों में पीसकर डाल रहा हो. ऐसी महीन पिसती आवाज़ उठती है कि...

उस दिन ऐसे ही कोई बात छिड़ गयी थी. मम्मी भी वहीं बैठी थी. मम्मी कभी-कभी खुद ही तो बात को कहां से कहां ले जाती है. प्रश्न था—क्या ह्यूमन माइंड एक सीधी रेखा पर चलता है? क्या वह इधर-उधर की नहीं सोचता? मम्मी के सामने यह प्रश्न स्पष्ट नहीं हुआ था. फिर प्रश्न को दूसरी तरह रखना पड़ा था— क्या स्त्री-पुरुष एक-दूसरे से आबद्ध हो जाने के बाद फिर और, यानी पर-पुरुष, पर-स्त्री के बारे में नहीं सोचते? क्योंकि प्रायः कई स्त्रियां कहती मिलेंगी—हमने तो कभी अपने आदमी के अलावा दूसरे आदमी को सपने में भी नहीं देखा! मम्मी भी अक्सर अपने को इन्हीं औरतों में गिनती... बहस खूब खिंचती गयी और होते-होते पौराणिक स्त्रियों तक जा पहुंची. उस युग में तो स्त्री ऋतुमति होने पर किसी भी पुरुष से रति-भिक्षा मांग सकती थी. उत्तंक का ऋतु-शांति के लिए अपनी गुरु-स्त्री के साथ गमन करना या चंद्रमा की अपनी गुरु-पत्नी तारा के साथ रति-क्रिया, ऐसे ही प्रसंग नहीं हैं? बल्कि एक युग तो वह भी था जब एक की स्त्री को दूसरा व्यक्ति बिना झिझक सहगमन के लिए ले जा सकता था. वह कह रहे थे महाभारत के श्वेतकेतु ने ही शायद पहली बार अपनी मां के ले जाये जाने पर आपत्ति की थी. पर एक बात तो थी ही कि तब यौन स्वच्छंदता पूरी थी और कोई भी स्त्री पर-पुरुष के बारे में और पुरुष पर-स्त्री के बारे में सोच सकता था. अब भी तो हमारे यहां ऐसी अनेक जातियां हैं जहां स्त्री एक से अधिक पुरुषों के साथ गमन करती है— बस, पहली चूड़ियां तोड़ीं और दूसरे के यहां जा बैठी. पर मम्मी को यह सब भारी लगा. शायद तभी उसने यह मामला कुछ अन्य औरतों के सामने रखा था. बुड्ढी औरतें तो यह बात मानने को बिलकुल तैयार ही न थीं. यह कैसे हो सकता है कि कोई अपने आदमी के होते हुए दूसरे आदमी का मन में खयाल भी लाये? मम्मी राज की मां के उदाहरण से बड़ी संतुष्ट दिखती थी. राज की मां रोज देर तक समाधि लगाये बैठी रहती थी ताकि किसी प्रकार के 'गंदे' विचार उसके मन में न आ पायें. लेकिन एक रात सपने में उसे अपना आदमी दिख गया. उसे मरे कई साल बीत चुके थे. अब इस उम्र में अपने भी आदमी का क्या काम? इसलिए वह दिन भर अपने गालों पर थप्पड़ मारती रही—धिक्कार है मना, ऐसा विचार इस उम्र में मन में भी आये.

पर वहां जो जवान लड़कियां बैठी थीं, उसका कहना था कि मन बंधकर रह ही नहीं सकता. बल्कि एक लड़की ने तो यहां तक कह दिया था कि आजकल शायद ही कोई लड़की ऐसी हो जिसका शादी से पहले शारीरिक संबंध न हुआ हो. इत्तफाक से वहां एक लेडी डाक्टर भी बैठी थी. उसने भी इस बात की पुष्टि की. पुष्टि ही नहीं की, यहां तक कहा कि आजकल की लड़कियां इतनी बेझिझक हैं कि ताज्जुब होता है. कुछ-कुछ तो अपने शरीर के विशेष अंगों के बारे में ऐसे बात करेंगी जैसे आंख-कान के बारे में कर रही हों. मम्मी वैसे तो हारने वाली नहीं है, पर उस दिन जाने कैसे हार मान ली. पर मैं जानती हूं—मम्मी हारकर भी हारने वाली नहीं है.

वैसे है न मजे की बात. कि किसी को तनख्वाह तो सौ रुपये हर माह मिलती हो पर उसमें से वह सवा सौ रुपये अपने लड़के को भेजे, तीन सौ बीवी को. और उसी में से मकान खरीदने का जुगाड़ भी कर ले.

गरमी उसी शिद्दत से पड़ रही है. बल्कि किसी-किसी दिन तो पारा चवालीस को पार करके पैंतालिस को छूने को होता है. कहीं-कहीं तो यह छयालीस तक भी जा पहुंचा है. चारों तरफ त्राहि-त्राहि मच रही है. आसमान ने एक अजीब-सी बेरहमी अख्तियार कर ली है. दिन में उसकी तरफ देखने भर से आंखें झुलस खा जाती हैं. इधर अखबारों में लोगों की गरमी से मरने की खबरें भी आने लगी हैं. देश के कुछ हिस्सों में धरती तक चटखने लगी है. हर तरफ बादलों के लिए पुकार हो रही है. कुछ लोग यज्ञ आहुति दे रहे हैं. क्या इस साल फिर अकाल पड़ेगा?

रुचि की सुबह जब आंख खुली तो उसके माथे की नसों में बेहद तनाव था, बल्कि गरदन की नसें भी ऐंठी हुई थीं. शायद यह तमाम रात पंखे के नीचे पड़े रहने का परिणाम है, उसने सोचा. पहले वह भी घर के अन्य सदस्यों के साथ खुली छत पर सोती थी, लेकिन इधर वह कुछ समय से अपने भीतर की ओर ज्यादा से ज्यादा खिंचती चली गयी थी. उसकी मम्मी ने उसे दो-एक बार टोका भी कि यहां भट्टी में कहां पड़ी रहोगी, लेकिन उसे जैसे बाहर की दुनिया से कुछ लेना-देना ही नहीं था.

अभी मुश्किल से सात बजे थे, लेकिन सूरज की रोशनी इतनी तेज़ हो गयी थी कि आंखों को चीरती थी. वह सूरज की उस तेज़ रोशनी के बावजूद कुछ देर अपने कमरे से लगी हुई बालकनी में खड़ी रही. कुछ लोगों की नित्यक्रिया शुरू हो चुकी थी. कुछ पैदल थे, कुछ साइकलों पर आ-जा रहे थे. बीच-बीच में स्कूटर-मोटर साइकल और कारों वाले भी दिखाई दे जाते थे. उसके घर से थोड़ी ही दूर एक मंदिर खड़ा करने के लिए एक बहुत बड़ा गड्ढा भरा जा रहा था. वहां मज़दूर इतनी सुबह ही काम पर पहुंच गये थे. उसने इन मज़दूरों को पिछले दिन भी देखा था, भरी दुपहरी में. चारों तरफ पत्थर ही पत्थर, कहीं कोई साया नहीं. वे पत्थरों को तोड़-तोड़कर जहां ज़मीन को समतल कर रहे थे, वहां फालतू पत्थरों को उस गड्ढे में फेंकते जा रहे थे. आदमी की मेहनत ही तो है कि उसने मिस्र जैसे देश में ऐसे विशाल स्मारक खड़े कर दिये जिन्हें देखकर एक बार तो बुद्धि चकरा जाये. शायद तभी कुछ लोगों ने एक नया शोशा छेड़ा—कि ये स्मारक आदमी के बूते से बाहर हैं, इन्हें बनाने वाले अतिमानव थे जो किसी दूसरे ग्रह से कुछ समय के लिए यहां आते थे और फिर वापस चले जाते थे.

रुचि बालकनी में मुश्किल से पांच-सात मिनट खड़ी रही होगी कि उसे सामने से एक मोटर साइकल आती

उस युग में तो स्त्री ऋतुमति होने पर क़िसी भी पुरुष से रति-भिक्षा मांग सकती थी. उत्तक का ऋतु शांति के लिए अपनी गुरु-स्त्री के साथ गमन करना या चंद्रमा की अपनी गुरु-पत्नी तारा के साथ रति-क्रिया, ऐसे ही प्रसंग नहीं हैं?

दिखाई दी. मोटर साइकल जैसे ही नज़दीक आयी, वैसे ही वह चौंक उठी—गॉड, अरुण! इत्ती सुबह! लेकिन फिर उसे बहुत अच्छा भी लगा और उसके भीतर एक पुलक-सी भर गयी.

अरुण अब उसके घर के बिलकुल सामने था. "हाय रुचि!" वह दूर से ही चिल्लाया. रुचि भी उत्तर में "हाय अरुण!" कहना चाहती थी, लेकिन संस्कारवश चुप रही और केवल मुस्करा दी. दरअसल, जब से वह अरुण के संपर्क में आयी थी, उसने कभी अरुण को 'अरुण' कहकर नहीं पुकारा था, बल्कि अपने मन में भी जब कभी उससे बातें करती, या उसके बारे में सोचती, हमेशा सम्मानसूचक 'वह' का ही इस्तेमाल करती.

निचले तल्ले का दरवाज़ा खुला ही था. मम्मी या पापा में से शायद कोई दूध लेने चला गया था. उसने अरुण को इशारा किया कि वह सीधा चला आये, और स्वयं भी वह भीतर की ओर लपकी. बाथरूम से पापा के नहाने की आवाज़ आ रही थी. तब मम्मी ही बाहर गयी होंगी, उसने सोचा.

अरुण अब बिलकुल उसके सामने था. उसका मन हुआ कि वह कुलांच भरकर उसके गले से झूल जाये, लेकिन फिर यह सोचकर कि कोई आता न हो, उसने केवल उसका हाथ अपने हाथ में भर लिया और उसे भीतर लिवा ले गयी.

पापा ने बाथरूम में कोई सहगली धुन छेड़ रखी थी—वह नहाते जा रहे थे और गाते जा रहे थे. मम्मी की आहट भी अभी कहीं आस-पास सुनाई नहीं दे रही थी, इसलिए रुचि पहले अरुण को दो-एक क्षण एकटक निहारती रही और फिर सहज ही उसकी गोदी में जा बैठी.

"क्या, घर में कोई नहीं है?" अरुण ने ऐसे ही पूछ लिया.

"है क्यों नहीं! सुन नहीं रहे पापा की आवाज़? और अभी मम्मी भी आती ही होंगी." रुचि ने भी ऐसे ही कह दिया, लेकिन फिर उसके गाल सहलाती हुई बोली, "पर इतने दिन कहां अंतर्धान रहे?"

"यह प्रश्न मैं भी तुमसे पूछ सकता हूं." अरुण के स्वर में भी उलाहना था.

"लेकिन हम तो एक बार हाज़िरी लगा गये थे."

"कब?"

"तीन-चार दिन पहले."

"शाम को?"

"जी, हां."

"जाना पड़ गया था कहीं."

"कहां?"

"एक पत्रिका के कार्यालय में."

"यह एकाएक कैसे?"

"बस, एक मित्र मिल गया. उसी के साथ गयी थी."

"यानी नयी दुनिया की खोज शुरू?"

"पत्रिका के संपादक ने मुझे उस दिनवाली कला प्रदर्शनी पर एक टिप्पणी लिखने को कहा है."

"तो तुम लिख रही हो?"

"क्यों, लिखूं या नहीं?

"ऐसी बातों में राय देने वाला मैं कौन हूं."

"यह बात. देखा, आदमी कितनी जल्दी जैलस होता है."

"यह बात जैलसी की नहीं, तुम्हारे फ्यूचर की है. यह ठीक नहीं होगा कि पहले तुम अपनी परीक्षा से निपट जाओ?"

"परीक्षा भी साथ-साथ निपटती रहेगी. इस संपादक ने मुझे दूसरी कला प्रदर्शनियों पर भी लिखने को कहा है."

"मम्मी-पापा से बात की?"

"की थी. उन्हें तो उसके नाम से ही चिढ़ है. मम्मी कहती थी, जो आदमी मौसम बदलने के साथ बीवी बदले, उसका क्या भरोसा?"

"तुम्हारी मम्मी गलत नहीं कह रही. मैं भी इस संपादक को जानता हूं. नित-नयी लड़कियां फंसाना उसका शगल है. वह एक काउंटर वर्ल्ड खड़ा करना चाहता है."

"काउंटर वर्ल्ड क्या?"

"तुमसे उसने इसके बारे में बात नहीं की?"

"नहीं. हां, यह ज़रूर कह रहा था कि उसे अभी तक किसी भी लड़की ने समझने की कोशिश नहीं की है और उसे ख्वाहमख्वाह बदनाम किया जाता है."

बाहर एकाएक चप्पलें घिसटने की-सी आवाज़ हुई. "मम्मी आ गयी है." रुचि एकाएक अपने को मुक्त करते हुए अलग सोफे पर जा बैठी.

रुचि की मम्मी किचन की तरफ न बढ़कर संभवतया रुचि को देखने सीधी भीतर चली आयी थी. लेकिन वहां रुचि के साथ अरुण को पाकर एकदम विस्मित हो उठी थी, और फिर तुरंत प्रकृतिस्थ हो अरुण को संबोधित करते हुए कह उठी थी, "आप आज इतनी सुबह-सुबह?"

"रुचि को देखे बहुत दिन हो गये थे. मैंने सोचा, इसे

देखते हुए दफ्तर निकल जाऊंगा.'' अरुण ने बिना बात उलझाये साफ-साफ कह दिया.

''बहुत अच्छा किया आपने.'' रुचि की मम्मी अब पूर्णतः सहज थी, ''इधर यह भी आपकी रट लगाये रहती थी. बात-बात में आपका जिक्र होता था.''

अब तक रुचि के पापा भी बाथरूम से निकल आये थे और किसी मेहमान के आने का एहसास पाकर वहीं चले आये थे. ''कहिए जनाब, कहां रहे इतने दिन?'' उन्होंने अरुण से हाथ मिलाते हुए पूछा, ''हमने सोचा, शायद आपको एकाएक कहीं बाहर जाना पड़ गया.''

''नहीं, मैं यहीं था, इसी शहर में. पर कुछ घरेलू ज़िम्मेदारियों ने आ दबोचा था.'' अरुण के पास उत्तर पहले ही तैयार था.

रुचि 'एक्सक्यूज़ मी' कहकर थोड़ी देर के लिए बाहर चली गयी. उसकी मम्मी भी, 'अभी चाय बनाकर ला रही हूं.' कहकर उठ खड़ी हुई. उसके पापा अब लगभग तैयार ही थे, इसलिए वह अपने बाल संवार कर वहीं अरुण के पास बैठ गये.

''क्यों सोहब, क्या तय किया इसकी शादी के बारे में?'' अरुण यों ही पूछ बैठा.

''तय क्या करना है. पहले पढ़ ले, फिर देखेंगे!'' रुचि के पापा जैसे बात को टालना चाहते थे.

रुचि की मम्मी का जैसे किचन में मन नहीं लगा. वह शायद चाय चढ़ाकर फिर वापस वहीं आ बैठी.

''आप इसे समझाइए,'' वह बिना किसी भूमिका के बोली. ''उस लफंगे के चक्कर में पड़ रही हो. अब उसकी पत्रिका के लिए आर्ट एक्जीबिशंस कवर किया करेगी.''

''पर वहां तक इसे पहुंचाया किसने? मुझे कुछ-कुछ ताज्जुब हो रहा था, हालांकि मैं समझता था कि रुचि जैसी लड़की के लिए कहीं भी पहुंच पाना मामूली बात है.''

''था इसका एक क्लास-फैलो. पता नहीं कहां से आ टपका एक दिन मुंह अंधेरे ही. अब घर आये को कोई कहे भी क्या.'' रुचि की मम्मी का बयान जारी था. पर बयान का आखिरी वाक्य न जाने क्यों अरुण को चुभ गया. वह जैसे कसकसा-सा उठा.

''अच्छा, मैं चलता हूं.'' वह एकदम उठ खड़ा हुआ, और उनके मना करते-करते भी अपनी मोटर साइकल तक जा पहुंचा. रुचि को जैसे इस स्थिति का पूर्वाभास था. वह लगभग दौड़ती-सी आयी और अरुण को बाजू से खींचते हुए वापस कमरे में ले गयी. फिर अपनी मम्मी को संबोधित करती हुई बोली, ''मम्मी, मैंने कहा था न, यह बहुत सेंसिटिव है. पता नहीं किस बात का कब बुरा मान जायें.''

अरुण जैसे अब अपने किये पर शर्मिंदा हो रहा था. वह चुपचाप आंखें नीची किये वहां बैठा रहा. रुचि की मम्मी वापस किचन में चली गयी थी और उसके पापा भी 'तैयार' होने के बहाने दूसरे कमरे में चले गये थे.

''ए, यह सुबह-सुबह क्या कर डाला.'' रुचि अपनी आंखों में उलाहना भरकर, लेकिन साथ-साथ मुस्कराते हुए उससे अब मुखातिब थी. ''तभी तुम लोगों से झट भिड़ पड़ते हो.'' और वह आज पहली बार 'आप' से 'तुम' पर उतर आयी थी. ''अच्छा सुनो, तुमने उस दिन वादा किया था कि मुझे अपने कालेज के दिनों की डायरी पढ़ने को दोगे, वादा याद है!''

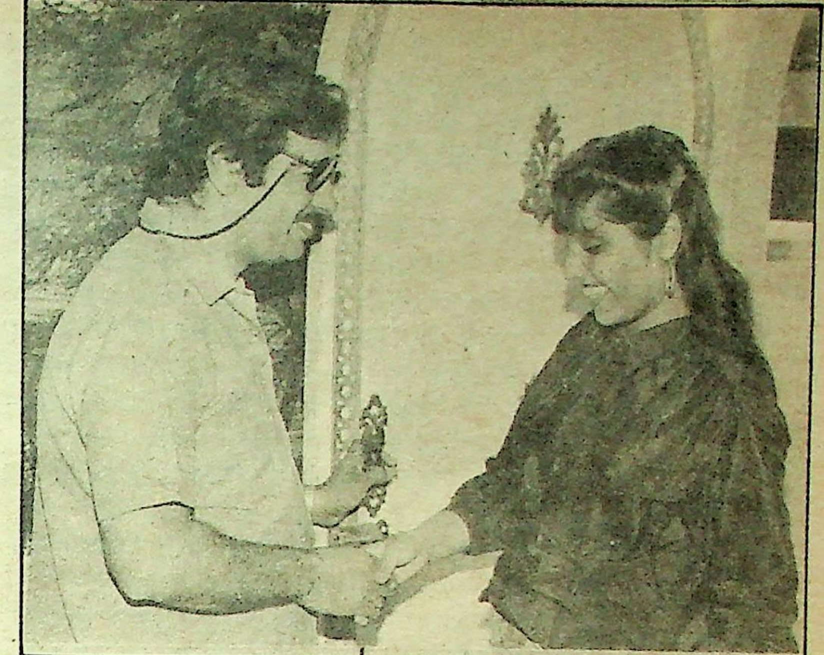

''वादा याद ही नहीं, उसे पूरा भी किया है,'' और अरुण ने अपना ब्रीफकेस खोलकर रुचि के हाथ में एक बड़ा-सा लिफाफा थमा दिया, ''मेहरबानी करके इसे इधर-उधर नहीं करना'', और उसने उसे एहतियातन हिदायत भी दे दी.

''कैसी बात करते हो!'' रुचि उसे प्यार से लगभग झिड़कती-सी उठ खड़ी हुई और उस लिफाफे को कहीं सुरक्षित स्थान पर रखकर तुरंत लौट आयी.

इस बीच रुचि की मम्मी चाय ले आयी थी. लेकिन चाय पहुंचाकर वह वहां रुकी नहीं, उसी क्षण वापस चली गयी.

अरुण ने अपना कप हाथ में लिया ही था कि रुचि अपना कप उठाते हुए अरुण से बोली, ''आओ, इधर बालकनी से कुछ दिखाऊं.''

''क्या बंदर का तमाशा है?''

''चाहो तो बंदर का तमाशा समझ लो. लेकिन दरअसल, है वह आदमी का तमाशा. आदमी की मज़बूरी है कि उसे ऐसे तमाशे करने पड़ते हैं. इनमें अनिवार्यता तो है ही, साथ-साथ शोषण भी है.''

बालकनी में पहुंचकर रुचि ने उन्हीं मज़दूरों की ओर इशारा किया जिन्हें कुछ देर पहले वह खुद देख रही थी. फिर एकाएक बोली, ''मेरा तो खयाल है, हर ऐसे व्यक्ति को जो अपने को सृजनशील कहता है, इन मज़दूरों के साथ मिलकर पत्थर तोड़ने चाहिएं.''

''तब ऐसा क्यों नहीं कहतीं कि हर सृजनशील व्यक्ति को कुछ समय तक कंसेंट्रेशन कैंप में रखा जाना चाहिए?'' अरुण ने तड़पकर उत्तर दिया, ''लगता है तुम भी उन लोगों की हिमायती हो जो अपने विरुद्ध एक

कल्पना करो जब किसी को खुले पांयचे का पजामा पहनाकर नाड़ा खूब कसकर बांध दिया जाये फिर पांयचों के रास्ते उसके भीतर छिप-कलियां-गिरगिटें छोड़ दी जायें.

शब्द नहीं सुन सकते और मौका मिलते ही अपने विरोधी को सांप-छछूंदरों-भरी ऐसी काल-कोठरी में पटक देना चाहते हैं जहां वह मारे दहशत के एक ही सैकंड में दम तोड़ दे. वैसे मैं शारीरिक श्रम को बेहद महत्वपूर्ण मानता हूं, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि मंज़िल तक पहुंचने के लिए एक ही राह पकड़ी जाये. राह दूसरी भी पकड़ी जा सकती है, और हो सकता है वह पहली राह से कुछ ज्यादा ही विकट हो.'' फिर कुछ रुककर बोला,'' ''तुम्हारा सुझाव लगभग वैसा ही है जैसा मैंने शायद तुम्हें कभी पहले भी बताया था, जब किसी लेखक ने कहा था कि लेखनी उठाने से पहले एक दर्जन औरतों के साथ शारीरिक संपर्क कायम करो. कुछ इसी तरह से हमारे कुछ वामपंथी और कुछ दक्षिणपंथी मित्र भी फार्मूले गढ़ कर चलते हैं. लेकिन माई लिटल फ्रेंड, याद रखो, सृजनशीलता फार्मूलों की दासी नहीं. वह अपने आप में एक ऐसी शक्ति है जिसका स्वयं सृजनशीलता वाले व्यक्ति को पूरा-पूरा अंदाज नहीं होता. हां, दृष्टि ज़रूर साफ होनी चाहिए.''

अरुण ने रुचि को एक अर्से बाद 'माई लिटल फ्रेंड' कहकर संबोधित किया था. जाने क्यों, उसे ऐसे लगा जैसे वह एकाएक उसी स्थिति में पहुंच गयी है, जिस दिन वे पहले-पहल मिले थे. वह जैसे फिर पिघलने लगी और इसीलिए खड़े-खड़े अरुण के बिलकुल साथ सट गयी.

''रुचि, तुम्हें मैं एक बात बतानी भूल गया. हालांकि ज्यादा महत्व की तो नहीं है, लेकिन...'' अरुण भी जैसे भावातिरेक में आ गया.

''बस, अब बात नहीं.'' रुचि मौज में आ रही थी.

''बाबा, यहां मजमा लगाना है क्या?'' अरुण रुचि के इतने निकट आ जाने के कारण सकुचा रहा था.

''हम खड़े ही हैं, और तो कुछ नहीं कर रहे.'' रुचि अपनी मौज खो देना नहीं चाहती थी.

''अच्छा सुनो,'' अरुण ने कहा, ''उस दिन जब तुम्हारे यहां ताला पड़ा था तो मेरी सुपर बॉस से कहा-सुनी हो गयी थी.''

''भिड़ गये उससे भी?'' रुचि खिलखिला पड़ी.

''अरे नहीं यार, बात तो सुनो.'' अरुण ने उसे पुचकारते हुए कहा, ''दरअसल, दिन में इतनी गरमी होती है कि दफ्तर में बैठना मुहाल हो जाता है. नाम के लिए कमरे में कूलर भी है, पर जब तक हवा आती-जाती न रहे, तब तक वह अपना कोई असर नहीं दिखा सकता. बस, ऐसी ही सब बातें थीं.''

''इसीलिए मैं तुम्हें मजदूर दिखा रही थी. एक तरफ यह जिंदगी है, जिसमें किसी प्रकार का कोई त्राण नहीं, और एक तरफ तुम्हारे जैसे लोग हैं जो अपनी सुविधाओं के लिए जूझते हैं.''

''बहुत खूब. दलीलें देना कोई तुमसे सीखे. तुम्हारे जैसे लोग ही स्याह को सफेद और सफेद को स्याह बनाते एक सैकेंड नहीं लगाते.

''नहीं, यह स्याह को सफेद बनाना नहीं, आम आदमी की नियति से जुड़ना है. इसी आम आदमी की नियति की तुम बराबर बात करते रहे हो न. तब क्या उससे दूर रहकर उसकी नियति से जुड़ा जा सकेगा?'' और फिर तुमने एक बार खुद ही तो कहा था कि हमें इनके बीच चलकर रहना होगा.''

''बेशक, मैंने कहा था और अब भी कहता हूं, लेकिन इसे नुस्खा मानकर नहीं चलता. चाहता हूं कि समूची व्यवस्था एक बात फिर तरतीब ले. जैसे, क्या यह संभव नहीं कि हमारा आदमी ज़्यादा संवेदनशील बने? लेकिन यह संभव कैसे हो जबकि हम उसे खुद क्रूर बनाते हैं? इधर अखबारों में पढ़ा नहीं कि पुलिस ने उन लोगों को कैसी-कैसी यातनाएं दीं जो एक बार उनके शिकंजे में आ गये? उन लोगों का कसूर क्या था? सिर्फ यही न कि उन्होंने सरकार की 'हां' में 'हां' नहीं मिलायी या अपने अधिकारों के लिए मांग की? क्या अपने अधिकारों के लिए मांग करना भी एक जुर्म है? यानी केवल पांच प्रतिशत लोग पंद्रह प्रतिशत पिट्ठुओं की मदद से अस्सी प्रतिशत लोगों को अपना ताउम्र गुलाम बनाये रहें, और वह भी जनतंत्र के नाम पर? मन होता है कि एक बार तो यह सब छोड़-छोड़कर खुले में आ जाऊं और इन सबको ललकारूं. पर फिर यह सोचकर चुप रह जाना पड़ता है कि जब नौकरी के बावजूद घिसट-घिसटकर चल रहे हैं, यानी एक महीना तनखवाह न मिले तो औंधे हो जाते हैं, तब बिना नौकरी के बीवी-बच्चों को कहां से खिलायेंगे! चलो, यह भी रिस्क ले लेते हैं. पर जेल में हम तो जायें, हमारे बीवी-बच्चों ने क्या बिगाड़ा है जो उन्हें बेघर-लावारिस बना दिया जाये और फिर किसी न किसी बहाने उन पर भी कोड़े बरसाये जायें. सुन-सुनकर दिल दहल उठता है. जैसे कि हम फिर बर्बर युग में आ गये हों.''

रुचि टकटकी लगाये अरुण की बात सुन रही थी. उसे लगा जैसे अरुण की आंखें भीग गयी हैं.

अरुण बोले जा रहा था, ''मैं मानता हूं, कमोबेश हर देश में ऐसा हुआ है और हो रहा है, लेकिन भारत तो जैसे सब देशों से बाज़ी ले गया. अभी तक नाज़ियों के गैस चैंबर्स या दक्षिण अफ्रीका की पागविकता की मिसालें ही सुना करते थे, लेकिन अब तो अपने यहां के 'गिरगिट ऑपरेशन', 'हवाई ऑपरेशन' तथा 'रोलर ऑपरेशन' के बारे में सुन-सुनकर इंद्रियां जैसे सुन्न पड़ जाती हैं. फिर कैदियों को नंगा करके उनके शरीर के नाजुक हिस्सों पर जलती सिगरेटें छुआना या उन्हें उलटा लटकाकर उनकी नाक या गुप्त स्थलों में पिसी मिर्च भरना. हां, एक दृश्य मुझे कभी नहीं भूलता. वह बहुत पहले मैंने किसी विदेशी फिल्म में देखा था. शायद १५७६ के आसपास का वाकया है. यूरोप के किसी पूर्वी देश में घटा था. एक बार ग़रीबों ने अमीरों के खिलाफ बग़ावत कर दी. शुरू में उन्हें कुछ सफलता मिली. लेकिन फिर अमीरों ने अपनी शक्ति बटोरी और ग़रीबों को धर दबोचा और उनके नेता की ताजपोशी करने की घोषणा कर दी. गरीबों का वह नेता तरह-तरह की यातनाएं सहकर अधमरा तो पहले ही हो रहा था, अब उसे तमाम उमराव-उम्रा की उपस्थिति में एक स्टूल पर बिठाया गया. पास में एक अलाव जल रहा था. उसमें लोहे का एक मोटा कनटोप तपाया जा रहा

था. जब क्रनटोप तपकर एकदम लाल हो गया तो उसे चिमटों से उठाकर उस गरीब के सिर पर रख दिया गया जिससे पहले तो उसके बाल जले और फिर गरदन लटक गयी...हो सकता है कुछ समय बाद हमारे यहां भी ऐसे वाकयात सुनने में आयें. खैर, अभी यह तो सुनने में आता ही है कि कुछ लोगों को डाकू या अन्य नाम देकर घने जंगलों में ले जाया जाता है, फिर उन्हें वहां दौड़ने पर मजबूर किया जाता है और जैसे ही वे दौड़ते हैं, उन पर गोली चलायी जाती है. और कहींकहीं ऐसा भी हुआ कि आदमी को हिरासत में लेने की खबर तो मिली, लेकिन बाद में वह कहां गायब कर दिया गया, कुछ पता नहीं. एक बार बस में मुझे एक सज्जन मिले. अपने आपको सृजनशील लेखक कहते थे. मैंने पूछा— 'आप सृजनशीलता' किसे कहते हैं?' बोले— 'मेरी राय में 'सृजनशीलता' इस प्रकार है— कि आदमी को एक ऐसे कमरे में बंद कर दिया जाये जो चारों तरफ से पूरी तरह सील्ड हो, बाहर कड़ी निगरानी भी हो, लेकिन आदमी तब भी गायब हो जाये. लेखक का काम यह पता लगाना होगा कि वह आदमी कहां और कैसे ग़ायब हो गया?' सच, मुझे उस वक्त उसकी बात चाहे बचकानी लगी थी, लेकिन अब वही सही लगने लगी है. ढूंढिए, ये सब लोग कहां गायब हो गये?''

''लेकिन ऐसी शर्मनाक बर्बरता को किसने प्रेरित किया होगा?'' रुचि के मन में सहज ही प्रश्न उठा.

''मेरा खयाल है, इस 'प्रेरणा के स्रोत' को ढूंढ़ना मुश्किल नहीं है. सुना है एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को यातना के खास-खास तरीके सीखने के लिए स्काटलैंड यार्ड भेजा गया था.''

''हां, अखबार में देखा था.''

''शायद अमरीका या रूस ने इनसे भी कड़े तरीके खोज निकाले हों. यह 'गिरगिट ऑपरेशन' तो निश्चय ही किसी विदेश की भेंट है. कल्पना करो, जब किसी को खुले पांयचे का पाजामा पहनाकर नाड़ा खूब कसकर बांध दिया जाये और फिर पायंचों के रास्ते उसके भीतर छिपकलियां-गिरगिटें छोड़ दी जायें.''

रुचि के मुंह से एकाएक चीख-सी निकली, लेकिन वह तुरंत संभल भी गयी.

''बस, इतनी सी हिम्मत है.'' अरुण ने उसे उलाहना दिया. ''ज़रा सोचो, पहले कितनी कुर्बानी दी होगी लोगों ने देश को अंग्रेजों से आजाद करवाने में, और अब कितनी कुर्बानी देनी पड़ेगी हमें इसे सही मानों में आज़ादी दिलाने में.''

रुचि बिलकुल चुप थी. अरुण ने उसे धीरे-से थपथपाया और चलने को तैयार हो गया.

उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था कि हर औरत पज़ेस्सिव होती है. एक बार उसके हाथ कोई आदमी लग जाये तो उसे समूचे को हड़प लेना चाहती है. उन्हें पज़ेस्सिवनेस से बड़ी चिढ़ है. वह अपनी पत्नी की भी इसी पज़ेस्सिवनेस से चिढ़ उठते हैं. हां, अक्सर जब वह मेरे साथ होते हैं तो मैं चाहती हूं, वह कहीं जायें नहीं, मेरे पास ही रहें. काश कि मैं उन्हें रोक पाती! लेकिन जैसे-जैसे देर हो रही होती है, उनके अंदर एक प्रकार की छटपटाहट-सी शुरू हो जाती है. वह बार-बार, बिना बात के, घड़ी देखते हैं. तब मैं भी कहे बिना नहीं रह पाती—नहीं, अभी नहीं जाना. तब उनकी दृष्टि बड़ी कातर हो उठती है. इस पर मैं उन्हें कसके ताना देती हूं और तब उनकी छटपटाहट स्पष्ट दिखने लगती है. वह एक कदम रोके रहते हैं जब कि उनका दूसरा कदम उठ चुका होता है. उस दिन तो मेरे कहने पर कि अभी नहीं जाना, वह खिसिया उठे थे. जैसे कोई बरस पड़ना चाहता हो, पर फिर भी हंस रहा हो. जैसे जबरन हंसना ही किसी की नियति है. पर मैं उन्हें और ताने पर ताना दिये जाती हूं जब तक कि वह मेरे इसरार की अवहेलना कर चल नहीं देते. तब मैं काफी दूर तक उन्हें जाते देखती रहती हूं. तब कभी-कभी लगने लगता है कि मैं दिग्भ्रमित तो नहीं हूं? क्या मैं ठीक दिशा में जा रही हूं? अंत में शायद कुछ भी हाथ न लगे. लेकिन 'अंत' को मैंने कब उपब्लिध माना है? यात्रा भी तो अपने आप में एक उपलब्धि है. बस, उतने ही क्षण जी लो, फिर देख लेंगे अपनी नियति क्या होगी. उनके इस नियति के प्रश्न ने न जाने कितने सारे भविष्य मेरे इर्द-गिर्द टांग दिये हैं. कठपुतलियों की तरह भिन्न-भिन्न आकृतियों में नाचता भविष्य, जिनमें से प्रत्येक का महीन सूत्र उनके हाथ में है. सच! मैं इतनी डिपेंडेंट कब से हो गयी! किसी पर इतनी आश्रित, किसी के प्रति इतनी बाधित! क्षण के एक झटके के साथ कभी अपनी उम्र से वापस किशोरावस्था में आ जाती हूं—जिसे इस वक्त अनजाने ही बड़ी तेजी से फलांग गयी थी और कभी जाने किस गति के साथ बहुत आगे पहुंचकर अचानक बुद्ध के दु:खवाद की हिमायती बन जाती हूं. वह दोनों स्थितियों से परेशान हो उठते हैं—शायद किसी में अपने को सहज महसूस नहीं कर पाते. एक बार बोले थे, ''यू लुक सो लवलेस!'' तो मन हुआ था कि एक ज़बरदस्त चोट करूं, ''एंड यू लुक सो फैंस्ड! लेकिन नहीं कहा. उन्हें तकलीफ देते समय खुद को भी काफी तकलीफ होती है.

लेकिन सच, कैसे बंध गयी हूं एक फैंस्ड, एक इतने प्रतिबद्ध व्यक्ति से. इसलिए अक्सर सोचती हूं कि मुझे उनसे अधिक की या 'संपूर्णता' की आशा नहीं करनी चाहिए, वरना निराशा ही होती है. पर नहीं होता, कुछ नहीं होता मुझसे. इतना सब होने पर भी हक के नाम पर...! ब्लैंक! यू स्टैंड नो व्हेयर. सच, आप मुझे यह क्यों जताना चाहते हैं कि मैं कहीं नहीं हूं, कोई नहीं हूं. आपका परिवार है, आपकी पत्नी है, आपका कर्तव्य है, मैंने इसे कभी नकारने की कोशिश नहीं की. लेकिन मैं भी क्या करूं? मेरे सहने का यह अर्थ तो नहीं कि मेरे अंदर आकांक्षा नहीं, आवेग नहीं. ईर्ष्या मैंने बचपन से नहीं सीखी. कभी नहीं. इसलिए कभी एक नारी-सुलभ ईर्ष्या-भाव के वश में हो जाती हूं, उस समय खुद-ब-खुद शर्म से गड़ने लगती हूं.

नहीं भई, कहीं भी छुटकारा नहीं. इस अनाम तकलीफ से किसी प्रकार भी मुक्ति नहीं.

उन्होंने कहा था कि हम सब उपयोगिता की दुनिया में रहते हैं, सब परोपजीवी हैं; बल्कि रिश्ते-नातों को बनाये रखनेवाली भी यह उपयोगिता, परोपजीविता ही है. उन्हें लगता है कि मेरा उनका संबंध भी इसी उपयोगिता पर आधारित है. क्या यह सच है ? लेकिन अगर यह सच है तो एकात्म होने वाली बात बिलकुल झूठी है? वह बार-बार यही कहते हैं कि शारीरिक रूप से एकस्थ हुए बिना ऐसे लगता रहता है कि जैसे कहीं कुछ कसर है. और तब जब मैंने 'न' कह दिया तो उन्हें लगा कि उनके प्रति मेरे विश्वास में कहीं टूटन है. वह ऐसे, मौके पर 'मिस्ट्रस्ट' शब्द इस्तेमाल करते हैं. नहीं, मैं आपको कैसे समझाऊं कि मुझे आपके प्रति कोई 'मिस्ट्रस्ट' नहीं है, और न ही मैं, जैसा आपने उस दिन कहा था, सरपट दौड़ते हुए एकाएक दिग्भ्रमित-सी खड़ी हो जाती हूं और किस बिंदु से किस बिंदु तक दौड़ी हूं, उसका पर्यवेक्षण करती हूं. हां, कभी-कभी अकारण ही डरने लगती हूं, एक अबूझ डर से कि मैं कुछ, कुछ तो बचाये रखूं. या मुझे कभी-कभी ऐसा भी लगने लगता है कि मैं अपने मां-बाप के प्रति विश्वासघात करूंगी. और फिर मुझे उसका भी खयाल आ जाता है जिसे आपने अपने ही शब्दों में 'माई फर्स्ट लव' कहा था. सच, कितना ओछा लगा था आपके मुंह से यह सुनना. जैसे कोई 'मॉइ गाड', अपने पहले दूसरे, तीसरे...लव की बात कर रहा हो. सच, क्या प्यार इतना सस्ता है? लेकिन नहीं, आपके बाकी वाक्य से स्पष्ट था कि आप किसी घोर यातना में से गुजरे हैं. इसकी झलक मैंने आपकी डायरियों में भी पा ली थी, बल्कि उनके पन्ने पलटते समय इतना बंधती जा रही थी कि मम्मी के आने का डर न होता तो सभी सांस रोके पढ़ जाती. इत्तफाक ऐसा हुआ कि जब-जब मैंने उन्हें पढ़ना चाहा, मम्मी की छाया मेरा पीछा करती मुझे दिखाई दी. किंतु, प्यारी मम्मी, अब यदि मैं अपने कमरे की अंदर से चिटखनी चढ़ा लूं तो तुम यही समझोगी—न, कि मैं अपनी परीक्षा की तैयारी में लगी हूं? लेकिन मम्मी, तुम्हें क्या पता है, कौन सी परीक्षा देने जा रही हूं.

डायरी के पन्ने

28/7/52

वह भी जमाना होता है जब हर कोई तुम्हारी राय मांगने आता है, और वह भी वक्त होता है जब सब तरफ तुम्हारा तिरस्कार किया जाता है.

कल एक बुढ़िया देखी. सत्तर से कम क्या होगी. मांस कई-कई परतें लिये हुए, मुचड़ा-सा, जैसे किसी गैंडे का. चेहरे पर भी अनेक झुर्रियां. चल रही थी तो ऐसे लगता था जैसे अब लुढ़की सो लुढ़की. बगल में पानी से भरा घड़ा उठाये हुए. लगा, जैसे ऐन मौत के कगार पर खड़ी है और किसी भी क्षण ढह पड़ेगी. मां कह रही थी, वह किसी के हाथ का छुआ नहीं खाती. शायद इसी कारण कोई उसके पास नहीं फटकता.

अब उसने एक पगली लड़की से अपने बेटे की शादी कर दी है.

4/8/52

दस बजे हैं. सुबह का समय है. अभी कुछ देर पहले एक मांगनेवाला हमारे दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ. कह रहा था, सुबह से भूखा हूं, खाने को कुछ नहीं मिला. मैं उसे कहने को था कि तुम आगे जाओ, लेकिन मुझे उसकी हालत पर रहम आ गया. मुंह चिबड़ा-सा, मटमैला. शरीर बहुत निर्बल. उम्र लगभग मेरे बराबर, यानी कोई बीस साल. इस उम्र में किसी को मांगना नहीं चाहिए. इतने में मेरी छोटी बहन आ गयी. उसने कहा, 'मांगते हो, इससे अच्छा कहीं कुछ काम करो.' सुनते ही वह झपाटे से आगे मुड़ा और गली में चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, 'किसी को मज़दूर चाहिए, किसी को काम करने वाला चाहिए!' कहीं से कोई जवाब नहीं. फिर लगा उसकी आवाज़ जैसे चारों तरफ गूंजने लगी है और कोई हमारा मज़ाक उड़ाने लगा है!

20/2/53

बंबई में हूं.

मैं नहीं सोच सकता था कि कोई एकाएक इस तरह मुझसे बंध जायेगा. मुझमें धरा ही क्या है? आंखें भीतर धंस गयी हैं और उनपर मोटा चश्मा चढ़ गया है. गालों की खाल भी खिंच गयी है. एक ही बनियान है जिसे रोज़ धोता हूं और पहनता हूं. उसमें भी कई छेद हैं. धोने के लिए कभी-कभी साबुन भी नहीं होता. साबुन आये भी कहां से! पहले तो इस पेट को भरने की समस्या है. घरवालों से एकदम नाता टूट चुका है. उन्होंने चाहा था कि मैं कहीं किसी प्रकार की भी नौकरी कर लूं. लेकिन बी.ए. फेल को नौकरी देता भी कौन? ज्यादा से ज्यादा किसी मनियारी की दूकान पर सौ-पचास की सहायक की नौकरी मिल सकती थी. हां, वहां इश्क तो हो सकता था. दिल भर कर. जैसे प्राय: रोपड़ के छोकड़े करते हैं. 'बहनजी' 'बहनजी' कहते-कहते आगे हाथ बढ़ा देते हैं. और 'बहनजी' भी खूब मज़े लेती हैं. पाउडर-क्रीम के साथ-साथ अपनी अंगिया का नाप भी बताती हैं, जांघिये का भी. इसी तरह, दर्जी की दूकान पर भी, मेरा एक साथी कह रहा था, बड़ा मज़ा रहता है. खूब कस-कसकर अपनी छाती तथा नितंबों का नाप देती हैं...बंबई में नौकरी मैं भी कर रहा हूं, किसी मनियारी वाले या दर्जी की दूकान पर नहीं, एक अखबार के दफ्तर में. ले-दे के संपादकीय विभाग में हम यहां दो-तीन व्यक्ति हैं. एक संपादक जी हैं, और बाकी हम दो उप-संपादक. लेकिन काम हमें ही सब करना होता है. संपादकजी कभी-कभी संपादकीय लिख देते हैं, वरना वह भी हम ही लिखते हैं. पत्र का 'प्रतिनिधित्व' करने के लिए भी हमें ही भेजा जाता है. कल एक ऐसा ही मौका आया. पिछले डेढ़ महीने से यहां काम कर रहा हूं, लेकिन तनख्वाह के नाम पर बीस रुपये थमा दिये गये थे, और बाकी अस्सी रुपये कहा था, कि शीघ्र ही मिल जायेंगे. पर आज-कल में पंद्रह दिन और बीत गये हैं. खोली का किराया पंद्रह रुपये तो चुकाना ही पड़ा था. बाकी बचे थे पांच रुपये. पांच

उन्होंने अपनी डायरी में लिखा था कि हर औरत पजेस्सिव होती है. एक बार उसके हाथ कोई आदमी लग जाये तो उसे समूचे को हड़प लेना चाहती है. वह अपनी पत्नी की भी इसी पजेस्सिवनेस से चिढ़ उठते हैं.

रुपयों से कितने दिन चलता? इसीलिए बाजारवालों से उधार करना पड़ता है. दफ्तर भी मैं रोज़ पैदल ही आता-जाता हूं. कभी-कभी पेट में ऐसी उछल-कूद मची होती है कि मन होता है, किसी भी चीज़ पर दांत गड़ा दूं. कल मुझे जब पत्र का 'प्रतिनिधित्व' करने को कहा गया तो मेरी जेब में केवल दस आने थे जो मैं किसी कीमत पर खर्च करना नहीं चाहता था. इसलिए जब मैंने मैनेजर से किराये के पैसे मांगे तो उसने मुझे एक अठन्नी थमा दी. बहुत गुस्सा आ रहा था मुझे मैनेजर पर! दरअसल, मुझे लगता है कि हमारे पैसे रोकनेवाला यही व्यक्ति है, यद्यपि वह हर चीज के लिए संपादक को इंगित करता है. एक दिन मैंने संपादक से भी बात की थी, पर उसने मालिक की ओर इंगित कर दिया था. मैंने स्वयं जाकर तुमसे मिलना चाहा पर चौकीदार ने मुझे कोठी के भीतर नहीं घुसने दिया था. यह चौकीदार भी कैसा अजब आदमी है. इसको भी मेरी तरह तनख्वाह की पूरी राशि एक मुश्त नहीं मिलती, फिर भी वह मालिक का वफादार है. सेहत भी उसी तरह बरकरार है. वैसा ही लंब-तड़ंग. संपादक भी खूब मुस्तंड है. घर पर भैंस पाल रखी है. कहते हैं, मालिक का खास आदमी है.

लेकिन अपनी इस 'गरीबी' के लिए मैं किसे दोषी ठहराऊं? लोग कहते हैं, मैं बचपन में बिलकुल 'फायर ब्रेंड' था. हर छोटी-मोटी बात पर मैं सिर फोड़ने पर उतारू रहता था. हां, मुझे याद है, एक बार मैंने किसी के सिर में कपड़े धोने·वाली 'थापी' दे मारी थी. वैसे भी मैं अपनी कमर से बिजली के तार से बुनी रस्सी लपेटे रहता था, और जब कहीं कुछ बात हुई, झट उसे खींच लेता था. लेकिन अब? अब लगता है मेरा गुस्सा ऐसे ही सोखा जा रहा है. मेरी आग मुझे ही झुलसाये जा रही है. क्यों नहीं मैं इस मैनेजर, इस संपादक, इस मालिक, इस चौकीदार को एक-बार गिरेबान से पकड़कर झकझोर देता? मालिक की तो, सुना है, पंजाब में दो-तीन मिलें है. यहां उसका दफ्तर है और कोठी है. कोठी सुना है काफी बड़ी है. बाहर से देखने में इतनी बड़ी नहीं लगती, लेकिन अंदर-ही-अंदर, सुना है, बहुत दूर तक चली गयी है. एक कमरे में तीन-चार झूले है और दीवारों पर चारों तरफ आइने है. शायद मालिक को उनमें किसी के साथ लेटना बहुत अच्छा लगता हो. पर वह हमारे पैसे क्यों नहीं देता? यह भी हो सकता है कि उसको इस बात का पता भी न हो और संपादक एवं मैनेजर बीच में ही हड़प जाते हों.

गणित

छायाकार
पवन महेंद्रू

मॉडल
रुचि
ऋता
अरुण
जितेंद्रकुमार
मां
शकुंतला रानी
पिता
छबीलदास
बॉस
रमेशकुमार

ज़िंदगी की दास्तां जैसे कि खत्म होने को है. या यों कहूं कि एक नयी दास्तां शुरू होने को है.

डायरी के पन्ने पढ़ चुकी हूं. एक लहूलुहान दुनिया है उनमें. जैसे किसी ने अपने खून से लिखा हो उन्हें. लेकिन वह खून, लगता है, जैसे कि अब सूख गया है. या हो सकता है अरुण के खून में ही तब्दीली आ गयी हो. धीरे-धीरे अरुण अब भीरू बनता जा रहा है. कितनी चिढ़ है मुझे इस भीरू रूप से. मैं नहीं चाहती कि कोई एक क्षण के लिए भी मुझे कमज़ोर दिखे. लेकिन हां, मुझे 'उस' से बिलकुल जलन नहीं हुई.

मेरी कला समीक्षावाली बात को भी ज़रूरत से ज्यादा तूल दिया गया. मम्मी अलग से, और अरुण अलग से. दोनों ने ही तरह-तरह के अस्त्र चलाये इस पेशकश पर. क्या इसे मैं ईर्ष्या कहूं? ईर्ष्या नहीं तो और क्या है. अरुण नहीं चाहता कि किसी की तरफ मैं नज़र भरकर भी देखूं. यानी तुम हंसो तो मेरे लिए, रोओ तो मेरे लिए! यह किस तरह की 'पजेसिवनेज' है?

पत्रिका के संपादक अश्विनी ने कहा था कि इस ढांचे को आमूल-चूल बदलने की जरूरत है. उनका यह भी कहना था कि यह काम अकेले से नहीं हो सकता. उनके अनुसार सबसे पहले तो हमें एक काउंटर वर्ल्ड, एक प्रतिसंसार, खड़ा करना होगा जिसमें सभी पुराने मूल्यों को नकारना होगा. जैसे, भाई-बहन, मां-बाप, प्रेमी-प्रेमिका—ये सब दकियानूसी मूल्योंवाले रिश्ते हैं. इनके स्थान पर सहज रिश्ते चाहिए ताकि किसी भी बात को लेकर मन पर बोझ न पड़े. यह काउंटर वर्ल्ड बहुत आकर्षक भी हो सकता है और अनाकर्षक भी. आकर्षक इसलिए कि आपको हमेशा आगे बढ़ते रहने का एहसास रहेगा, और अनाकर्षक इसलिए कि इस सबमें नया कुछ भी नहीं.

मुझे अश्विनी का सुझाव अच्छा लगा. मैं तो यही चाहती हूं कि हमारी यह दुनिया फले-फूले, आगे बढ़ती रहे. पहले जिस बिंदु से मैं दुनिया देख रही थी, लगता था बस यह दुनिया बस इत्ती-सी ही है. लेकिन अब लगता है कि नहीं, यह दुनिया बहुत बड़ी है और गुर्बत से लड़ना तो इसका महज़ एक पहलू है, असली मुद्दे दूसरे हैं.

आज मेरे माता-पिता अगर जबरदस्ती मेरी शादी कहीं और कर दें तो यह, यानी अरुण, क्या चुपचाप खड़ा तमाशा नहीं देखता रहेगा? या और कुछ नहीं तो मुझे सीख ही देना शुरू कर देगा? लेकिन इधर अश्विनी जैसे लोग हैं जो इस शादी को एक ही क्षण में बेमानी कर देंगे. जीवन का असली ध्येय आत्मोपलब्धि ही है न? तब कहां से आत्मोपलब्धि अरुण की राह पर चलकर? संघर्ष, संघर्ष केवल संघर्ष! और अक्सर यह संघर्ष अर्थहीन भी लगने लगता है. अश्विनी के साथ जब मैं लंच ले रही थी तो उन्होंने कहा भी था कि उन्हें अब तक किसी ने समझा ही नहीं. अश्विनी अकेले हैं. कैसी कातरता थी उनकी आंखों में उस समय. न घर जैसा घर, न अपने जैसा कोई अपना. मुझे दया भी आयी और मैं सहानुभूत भी होती चली गयी. फिर यकायक अरुण और अश्विनी मेरे सामने दो पलड़ों में खड़े थे. निःसंदेह, अश्विनी का पलड़ा काफी भारी था. मैं मजबूर हूं, अरुण, मजबूर! नियति ने हमें, बस, यहीं तक साथ-साथ बांध रखा था. अब हम और आगे नहीं चल सकेंगे. मुझे तुमसे साफ-साफ कहना होगा. अलविदा, अरुण, अलविदा! जो कुछ तुमने मुझे दिया, वह मैं हमेशा अपने पास थाती बनाकर रखूंगी. हां, लेकिन वह थाती मेरे लिए बोझ नहीं होगी. जहां तक तुमने मुझे पहुंचाया है, उसके लिए तुम्हारी ऋणी हूं. मैं तुम्हारा यह ऋण कभी चुकाऊंगी, जरूर चुकाऊंगी. लेकिन तब तक के लिए अलविदा! □

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, 1989

प्रविष्टि भेजने की अन्तिम तिथि 13 अगस्त, 1990

जन संचार के विभिन्न माध्यम मुख्यतः सूचना और प्रसारण मंत्रालय से सम्बद्ध विषयों जैसे कि प्रकाशन, दूरदर्शन, प्रसारण, विज्ञापन, पत्रकारिता, फिल्म आदि पर हिन्दी में मौलिक लेखन को प्रोत्साहन देने के प्रयोजन से प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार योजना के अन्तर्गत वर्ष 1989 के पुरस्कारों के लिए प्रविष्टियां आमंत्रित करता है। इस योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित पुरस्कार दिए जाएंगेः–

प्रथम पुरस्कार	:	25,000/- रुपये
द्वितीय पुरस्कार	:	15,000/- रुपये
तृतीय पुरस्कार	:	10,000/- रुपये
मान पुरस्कार	:	5,000/- रुपये

वर्ष, 1989 के पुरस्कार के लिए जनवरी, 1989 से 31 दिसम्बर, 1989 तक की अवधि में प्रायोजित पुस्तकें अथवा लिखी पाण्डुलिपियों को विचारार्थ स्वीकार किया जाएगा।

प्रविष्टियां भेजने की अंतिम तिथि

वर्ष 1989 की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, योजना में भाग लेने के लिए अपनी प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि 13 अगस्त, 1990 है। प्रविष्टियां भेजने से पहले पुरस्कार संबंधी नियम, प्रविष्टि प्रपत्र तथा पूर्ण विवरण मंगाने के लिए सहायक निदेशक (राजभाषा), प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली- 110 001 को लिखें अथवा सम्पर्क करें। अपने आवेदन पत्र के साथ अपना पता लिखा 10 × 22 सें.मी. आकार का बिना टिकट वाला एक सादा लिफाफा अवश्य भेजें।

davp 90/184

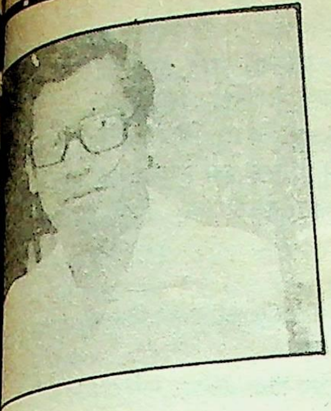

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

ले अंकों में आपने पढ़ा

अंकों में आप रामवरन,
ष, सहदेव ठाकुर, मूसा
रि की दास्तान और उनकी
समस्याओं से रू-ब-रू हो
ैं. अब पढ़िये किसनसिंह
स्तक और उस पुस्तक के
बयान...

कई दिनों से उसकी मां कहती आ रही थी कि गोशाला के बाहर गाय के मूत्र के लिए जो गड्ढा था उसे थोड़ा और गहरा कोड़ना जरूरी था. उसके एकदम छोटा होने के कारण गाय का मूत्र आंगन में दूर तक फैल जाया करता था. समय अभाव के कारण हरि इस काम को कई दिनों से टालता आ रहा था. उसके शहर से लौटने पर रात में जब मां यह कहकर उसे कोस गयी थी कि दूसरों के लिए वह मारा-मारा फिरता रहता है और अपने काम को टालता रह जाता है तो उसने तय कर लिया था कि सुबह उठते ही वह उस काम को पूरा करके रहेगा. रविवार होने के बावजूद वह हफ्ते के अन्य दिनों की तरह तड़के ही उठ गया. सूरज के उगने में समय था. उस धुंधलके में अपने मौलिक कार्यों से निवृत्त हुआ. रसोई के भीतर पहुंचा. मिट्टी के चिराग की रोशनी थी भीतर. देवी चाय बना चुकी थी. उसमें शक्कर घोलने के बाद अपने भाई को कटोरा थमा दिया. जब परांठे देने लगी तो हरि ने कहा कि रख दे वह बाद में खायेगा.

विजय भी उसी के साथ जग गया था. उसने भी रसोई के भीतर आकर चाय पी. हरि के साथ बाड़े में पहुंचा. दोनों ने मिलकर गाय और बकरियों के नीचे बिछी घास को हटाया. गोबर, जो ताजा था उसे विजय ने एक पात्र में अलग रख दिया क्योंकि उसके रसोई से बाहर निकलते समय देवी ने कहा था कि वह सभी गोबर को खाद वाले गड्ढे में न फेंक आये. उसे घर लीपने के लिए कुछ गोबर की आवश्यकता थी. बाड़े को अच्छी तरह से साफ कर चुकने के बाद ही उसने गाय और बकरियों के सामने घास और पानी रखे. मूत्र के गड्ढे को खाली करने में हरि की मदद की. उन चार पांच बालटी मूत्र को वह खाद के गड्ढे में फेंक आया. तीन बकरियों के बीच काले रंग की जो बकरी थी वह अपने सामने की हरी घास के बावजूद मिमियाती घिघियाती ही रही. जान-बूझकर उसके गले में छोटी रस्सी बांधी गयी थी ताकि अपनी कूद-फांद में वह अन्य बकरियों को सींघ मारती न रहे. वह काली खंसी अंजली ने हरि की मां को दी थी. जब इस बाड़े में आया था तो कुलांचे मारता हुआ मेमना था. अंजली उसी गांव की थी जिस गांव की हरि की मां थी. उसका पति त्वाकरण जब भी शराब पीकर घर में हंगामा खड़ा कर जाता था तो अंजली अपने घर से हरि के घर

जब हरि उस गड्ढे को थोड़ा अधिक फैला हुआ और कुछ ज्यादा गहरा खोदकर बाहर निक तो सूरज अपने घंटे भर से अधिक की यात्रा पूरी कर चुका था. उसने अपनी मां को बुलाकर दिखाया. उसके संतुष्ट हो जाने के बाद ही उसने कुदाली नीचे रखी. मां ने अपने अब तक के रोज-रोज के तकाजे को जायज साबित करने के लिए कहा कि गाय को गंदगी में रखने से पाप है. अपनी मां की उस खुशी को बांटकर ही हरि नहाने के लिए वहां से हटा. पर नहाने से पहले बात उसे याद आ गयी. उसने रसोई के पास जाकर बाहर ही से पूछा, ''देवी! घर पर मट्ठा तो है न?''

''बस एक डिबिया भर है.''

''देखो आज दालपूरी पकनी चाहिए. आटा न हो तो हरीश को दूकान भेजकर मंगवा लो.''

''और तरकारी?''

''आलू बना देना मसाले में...पर हां एकदम लटपट होना चाहिए. नारियल न मिले तो की चटनी बना देना.''

उसे फरीद मियां और सहदेव ठाकुर के आने का पूरा विश्वास तो नहीं था फिर भी उम्मीद कि वे आ सकते हैं. फरीद के यहां से वह बहुत बढ़िया चावल का भात खाकर आया था. उस तो फूल गोभी पकी थी. मसूर की दाल थी और टमाटर की चटनी. उस रूगाई को तो उसने लिया था. उतना स्वादिष्ट खाना तो शायद वह उन दोनों को नहीं खिला सकता था पर इतना तो उसे जरूर था कि देवी के हाथ की पकी दालपूरी खाकर वे दोनों खुश हो जायेंगे. उसकी मां भी उतनी मुलायम दालपूरी नहीं पका पाती थी. एक बार जब बातों ही बातों में अंजली ने ब्याह की बात छेड़ दी थी तो हरि कह उठा था, ''अभी नहीं भाभी...! अभी कुछ दिन और इसके हाथ की दालपूरियां खा लेने दो.''

वह नहाने चला गया. उसकी मां गोमूत्र को बहुत ही पवित्र बताती थी पर अधिक दिनों से उस मूत्र की उस बोझिल गंध को वह जल्द से जल्द अपने ऊपर से उतार देना चाहता था. पहले एक बार जब वह कबड्डी खेलता हुआ घायल हुआ था तो घर लौटने पर उसके बाप ने उस गहरी चोट पर गाय के मूत्र के साथ न जाने क्या मिलाकर लेपा था. दो ही तीन बार के लेपन के बाद उसका वह घाव ठीक हो गया था. आज उसके माथे पर उस घाव का कोई भी तक बाकी नहीं था.

कुएं पर हरि को अंजली का पति मिल गया. हरि जानता था कि वह चीनी लेने दूकान जा था फिर भी अनजान बनते हुए उसने उससे पूछा, ''कहां जा रहे हो सोद्रों भैया?''

उसका त्वाकरण नाम हरि को बड़ा अजीब लगता था. इसलिए वह उसे सोद्रों नाम से ही पुकारता था. त्वाकरण ने भी उतने ही भोलेपन के साथ कहा, ''बोमली खरीदने जा रहा हूं.''

हरि हंस पड़ा.

कुएं से नहाकर जब वह लौटा तो हरीश रसोई का बाकी सामान लिये दूकान से लौट आ उसके भाई बहनों में हरीश ही सबसे गोरा था. पर जितना गोरा था उतना ही दुर्बल भी था. दिन बीमार रहता था. उसके गले में अब भी मंदिर के पुजारी का दिया हुआ सूता बंधा रहता विजय और हरीश दोनों के पीछे हरी की मां को बार-बार अस्पताल दौड़ना पड़ता था.

हरि ने अपनी कमीज से उधड़ गये पेबंद को देखा. उसे अपनी मां के पास ले जाकर टांके देने को कहा. उसकी मां ने उसे सुई और धागा थमा दिया. अपनी कमजोर पड़ आयी आंखों से सुई में धागा नहीं पिरो पाती थी. मां के पास कमीज छोड़कर हरि किसनसिंह की पुस्तक लेकर गया.

दो दिन पहले ही उसने उस हस्तलिखित पुस्तक को पढ़ना शुरू किया था. हरि पहले ही चुका था कि किसनसिंह ने सोमा और संतू की यह कहानी बांस की पतली कलम को जामुन के निचोड़े हुए रंग में डुबोकर लिखी थी. हरि ने आगे पढ़ना शुरू किया. पर न जाने क्या सोचकर से पिछले दो पन्नों को उलटकर एक बार फिर से उस अंश को पढ़ने लगा जो दो दिन पहले रुक गया था.

आज भी उसी ठौर पर पहुंचकर वह फिर से खयालों में गोता लगाने लगा. पूछने लगा से—क्या सचमुच आज भी उतनी लंबी यात्रा के बाद मजदूरों को संगठित कर पाना कठिन उस हड़ताल शब्द पर बार-बार सोचता रहा...यह कौन-सा शब्द था जिसको किसनसिंह ने संतू की कहानी में इस्तेमाल किया था! जब डाक्टर क्यूरे से मिलने जा रहा था तो मन ही मन आ जाती थी. उसकी जब शादी हुई थी तो उसकी मां ने उसके हाथों को हरि की मां के हाथों में रखकर अपनी बेटी से कहा था, ''तू रोती क्यों है? मां की गोद से निकलकर मौसी की ही तो में जा रही है.''

लघु-कथा

◆

ओवर-टाइम

दास वीरेंद्र चैतन्य

आदर्श पति की तलाश में प्रौढ़ावस्था में कदम रखती बड़ी कंपनी में कार्यरत एक युवती ने एक दिन अचानक अपने 'बॉस' को घर पर 'डिनर' के लिये आमंत्रित कर लिया. लगातार कई दिनों तक कार्यालय में भी देर तक रुककर 'ओवर-टाइम' किया. फलस्वरूप उसका रुका हुआ 'प्रमोशन' तो उसे मिला ही, साथ ही उसकी अति विशिष्ट कार्यक्षमता के आधार पर पुरस्कार स्वरूप एक और 'प्रमोशन' मिला.

सिटी बसों में धक्के खाकर कार्यालय आनेवाली यह महिला अब सुख सुविधाओं से सुसज्जित बंगले में दर्पण के सामने खड़ी अपने चेहरे की झुर्रियों को 'मेक-अप' में ढक रही थी, बाहर कार में बैठा उसका अधिकारी पति 'शॉपिंग' पर जाने के लिये प्रतीक्षा कर रहा था. ☐

कि उससे इस हड़ताल शब्द की पूरी जानकारी पाने का प्रयत्न करेगा. वहां पहुंचकर मूल

और महादेव के बाप जब जीवित थे तो दोनों उन दिनों की कहानियां सुनाते रहते थे. का बाप तो कई मौकों पर अपनी पीठ पर के कोड़ों के उन निशानों को दिखाता और ''यह काफी नहीं होता था. इन घावों पर नमक-मिर्च छिंड़क दिया जाता था.''

से मसाले की सोंधी गंध आने लगी थी. वह फिर से किसनसिंह की उस पुस्तक में खो स्तक की कहानी से कहीं अधिक उसे तिलमिला जाती थीं संतु के बाप की वे दर्दनाक बातें. उसके भोगे हुए सत्य, उसके जिये हुए दर्द की आहें होती थीं. वह सोचता रहा, आखिर क्या तब से आज तक. बस यही न कि कुछ लोगों की अपनी थोड़ी ज़मीन-जायदाद हो गयी थी. लोग थे ही कितने! उसने एक दिन अपनी मां से पूछा था, ''ये कुछ लोगों के अच्छे खासे बन गये?''

की मां ने गंभीरता बनाये हुए कहा था, ''तुम्हारे बाप की तरह कुछ लोगों ने अपनी मेहनत द्धिमता से थोड़ा बहुत धन कमाया है और कुछ लोगों ने हरखू सरदार के बेटों की तरह अपने को बेचकर पैसा कमाया है.''

हरि की समझ में बात नहीं आयी थी. उसकी मां ने यह भी बताया था उसे कि हरखू सरदार का धन बहुत दिनों तक नहीं रहेगा क्योंकि गरीबों की आहों से पैदा हुआ धन था वह. इस हरि के दिलोदिमाग में एक खलबली-सी पैदा कर दी थी. कई रातें वह अपने आपसे सवाल रह गया था—

अपने बाप का धन भी नहीं रहा. क्या वह भी गलत तरीकों से कमाया हुआ था!'

अपने बाप की जायदाद के चले जाने का जो दुख हुआ था, वह इस अनायास के खयाल से आप कम हो गया था. वजह क्या थी, समझने की जरूरत नहीं समझी उसने. मां के कहने से एक-दो बार हरि के मन में शंका पैदा हुई थी. खैर, उसके अपने गांव में तो कोई धनी-दमी था ही नहीं लेकिन गुडलेंस, फिर उधर पूद्दोर और रोव्येर में कई लोगों की जमीनें ड़े-बड़े घर थे. घोड़े-गाड़ियां थीं. वह सब देखते हुए हरि ने अपने आपसे पूछा था कि क्या गन्ने के खेतों में काम करके कमाया गया था या इन्हें पाने के लिए धांधलियां की गयी थीं? पने आप को जवाब नहीं दे सका था पर मां ने जब हरखू सरदार वाली बात कही तो हरि हर संदेह करने लगा. महादेव का बाप तो हमेशा यही कहता था कि उसके देखते-देखते कई तों-रात धनी हुए थे. तांबी भी वैसा ही कहता था.

के बाहर से आवाज देकर भीतर आ जाने पर उसने अपने हाथ की पुस्तक को बंद कर खाट पर एकदम हरि की बगल में बैठते हुए मूसा ने पूछा, ''आ रहे हैं वे लोग?''

''उम्मीद तो है पर पता नहीं. फरीद चाचा के मानने पर है.''

''मुझे एक काम से निकलना था. पर कहीं ऐसा न हो कि मैं उधर जाऊं और फरीद खालू यहां आयें.''

''कहां जाना है तुम्हें?''

''मामू. हमारे पड़ोस में जो उस्मान है न, उसके छोटे भाई के लिए एक लड़की देखने जाना

''कितने बजे?''

''समय की तो कोई ऐसी बात नहीं.''

''तो फिर ऐसा क्यों नहीं करते कि उधर चले ही जाओ और डेढ़-दो बजे से पहले लौट आओ. अगर उनका आना हुआ भी तो मुझे नहीं लगता कि वे बारह-एक से पहले पहुंचेंगे. हदेव चाचा कह रहे थे न कि वे इस इलाके में बच्चों को मक्का-मदीना दिखाने जा रहे थे. लगता है कि वे लोग घूमते-घामते ही यहां पहुंचेंगे.''

''तो मैं हो आऊं उधर से? उस्मान तो तैयार बैठा है.''

''कैसे जाओगे?''

''साइकिल से ही जाना अधिक अच्छा रहेगा.''

''तो फिर ठीक है. तुम हो आओ.''

''मसाले की बड़ी सोंधी गंध आ रही है.''

''जिनके लिए तैयारी हो रही है, पता नहीं वे आयेंगे भी या नहीं.''

''वे आयें या न आयें, मेरे हिस्से का तो रखना ही होगा.''

के चले जाने के बाद हरि ने फिर से पुस्तक खोल ली.

क्रमशः

अगले अंक में

किसनसिंह की पुस्तक पढ़कर हरि पर क्या प्रतिक्रिया हुई ?...क्या फरीद मियां और सहदेव ठाकुर का आना हो सका ?

स्वतंत्रता से स्वाधीनता की ओर

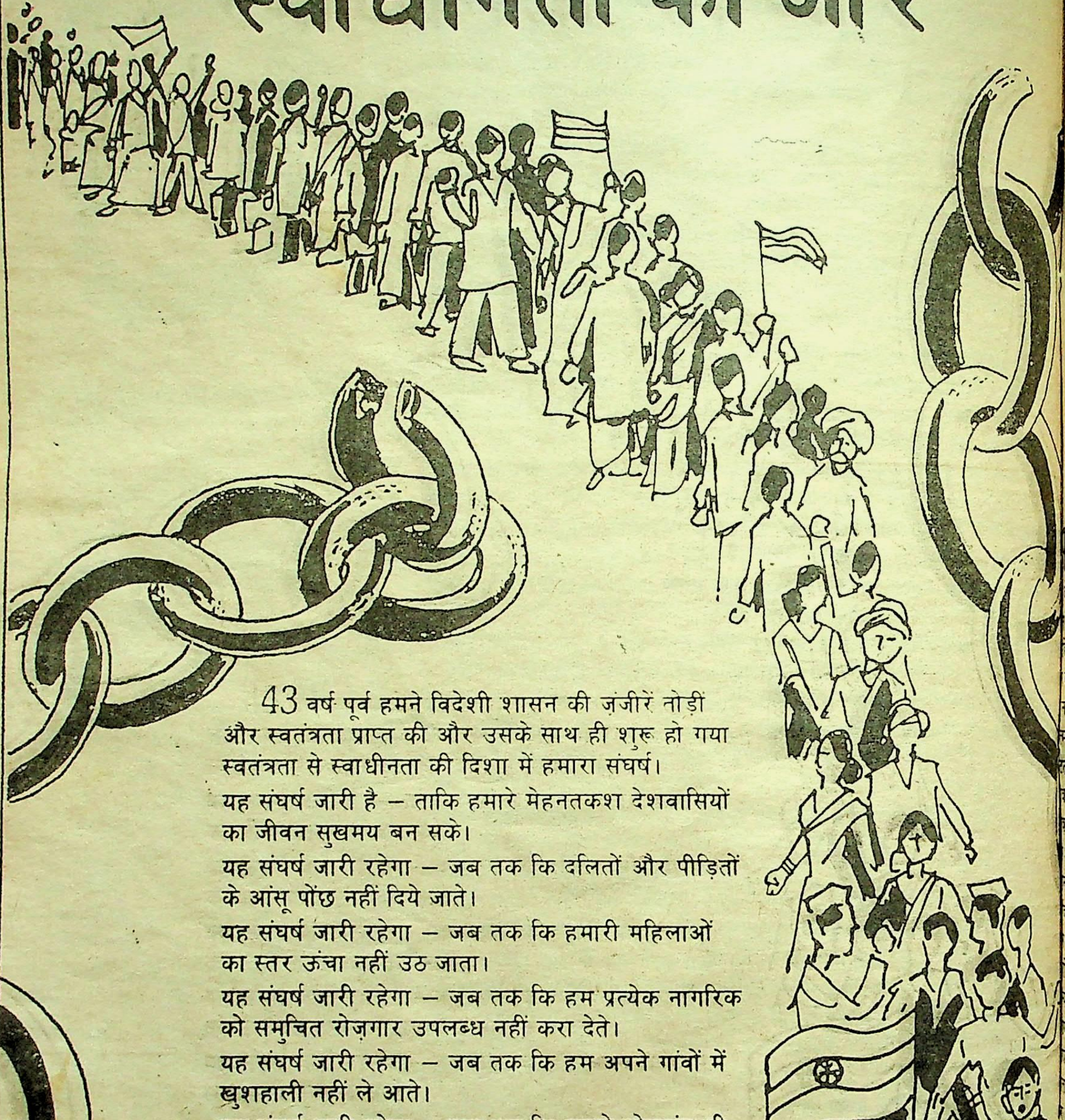

43 वर्ष पूर्व हमने विदेशी शासन की ज़ंजीरें तोड़ीं और स्वतंत्रता प्राप्त की और उसके साथ ही शुरू हो गया स्वतंत्रता से स्वाधीनता की दिशा में हमारा संघर्ष।

यह संघर्ष जारी है – ताकि हमारे मेहनतकश देशवासियों का जीवन सुखमय बन सके।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि दलितों और पीड़ितों के आंसू पोंछ नहीं दिये जाते।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हमारी महिलाओं का स्तर ऊंचा नहीं उठ जाता।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हम प्रत्येक नागरिक को समुचित रोज़गार उपलब्ध नहीं करा देते।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हम अपने गांवों में ख़ुशहाली नहीं ले आते।

यह संघर्ष जारी रहेगा – जब तक कि हमारे लोकतंत्र की जड़ें पूरी मज़बूती नहीं पकड़ लेतीं।

स्वाधीनता की ओर हमारे कदम निरंतर बढ़ रहे हैं।

द्वारा प्रायोजित
थ्य एवं आयुर्वेद

जीवन विज्ञान—आयुर्वेद

—आचार्य राजकुमार जैन

आयु के लिए कौन-सी वस्तु लाभदायक है या किस वस्तु के द्वारा आयु की हानि हो सकती है? किस प्रकार की आयु हितकर होती है और कैसी आयु अहितकर होती है? यह विषय जिस शास्त्र में वर्णित हो तथा रोग का निदान और उसके प्रतिकार के विषय में जिस शास्त्र में वर्णन किया गया हो—विद्वानों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. इस शास्त्र के द्वारा पुरुष चूंकि आयु को प्राप्त करता है तथा आयु के विषय में जान लेता है, इसलिए मुनि श्रेष्ठों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र का यदि ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है तो मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त करने का उपाय ज्ञात हो जाता है.

युर्वेद एक शाश्वत
जीवन विज्ञान है.
प्रत्येक क्षण की प्रत्येक
आयुर्वेदीय सिद्धांतों में
त है. आयुर्वेद मानव
से पृथक कोई भिन्न
नहीं है, अपितु दोनों में
य भाव होने से अत्यधिक
है. सामान्यतः मनुष्य
न की आद्यंत प्रतिक्षण
ली श्रृंखला ही आयु है
आयु ही जीवन है. आयु
ही आयुर्वेद है, अतः
एक संपूर्ण जीवन
है. आयुर्वेद में
त सिद्धांत इतने
व्यापक जन-
योगी एवं सर्व साधारण
हितकारी हैं कि
पूर्वक उन्हें अमल में
यथाशीघ्र आरोग्य लाभ
सकता है. अतः
, मानसिक एवं
स्वास्थ्य की दृष्टि से
की उपयोगिता
है. आयुर्वेद केवल

चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु यह शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान, तत्व विज्ञान, दर्शन शास्त्र, आचार शास्त्र एवं धर्म-शास्त्र का एक ऐसा अद्भुत स्वरूप है, जो संपूर्ण जीवन के अन्यान्य पक्षों को व्याप्त कर लेता है. अतः निःसंदेह यह एक संपूर्ण जीवन विज्ञान है. आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक तत्वों तक ही सीमित नहीं हैं अपितु आध्यात्मिक तत्वों के विवेचन में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है. इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के आद्य स्रोत वेद तथा उपनिषद के बीज ही आयुर्वेद में प्रसार को प्राप्त हुए हैं. इसके अतिरिक्त समकालीन होने के कारण दर्शन शास्त्र एवं धर्म शास्त्र ने भी आयुर्वेद के आध्यात्म संबंधी कतिपय सिद्धांतों को प्रभावित किया है. यही कारण है कि आयुर्वेद का आध्यात्म पक्ष भी उतना ही

" बच्चों की पढ़ाई या सेहत का मामला हो तो मैं समझौता कभी नहीं करती... "

"इसीलिए मैं उन्हें नियमित रूप से झंडु स्पेशल च्यवनप्राश देती हूँ. सचमुच यह स्पेशल है. शुद्ध हरा आँवला, पीपली, वंशसालोचन, कुंडकोल, लौंग, जावंत्री, इलायची और अकलकरा जैसी जड़ी-बूटियाँ. सब को शुद्ध देसी घी में बनाया गया है. मेरा बाज़ार का आना-जाना तो रोज़ ही लगा रहता है, मैं जानती हूँ कि अच्छी और उम्दा दर्जे की चीज़ें हमेशा कुछ महँगी ही मिलती हैं. फिर, जब क्वालिटी की बात हो तो हर कोई झंडु को जानता है और उस पर भरोसा करता है.

मैं, अपने बच्चों को झंडु स्पेशल च्यवनप्राश बारहों महीने देती हूँ. इसीलिए उनमें छोटी-मोटी बीमारियों का मुक़ाबला करने की शक्ति आ गई है. ख़ास तौर से खाँसी और जुकाम.

हाँ, थोड़ी सी परेशानी मुझे ज़रूर है इसमें मिले तत्त्व इतने ताज़ा और शुद्ध हैं कि इसका स्वाद भी कमाल है. बच्चों का बस चले तो वे इसे दिनभर खाते रहें. हर दो-चार दिन बाद मुझे बोतल कहीं दूसरी जगह छिपाकर रखनी पड़ती हैं. क़ीमती है न! "

अब १ किलो के आकर्षक पॉलिजार में भी उपलब्ध.

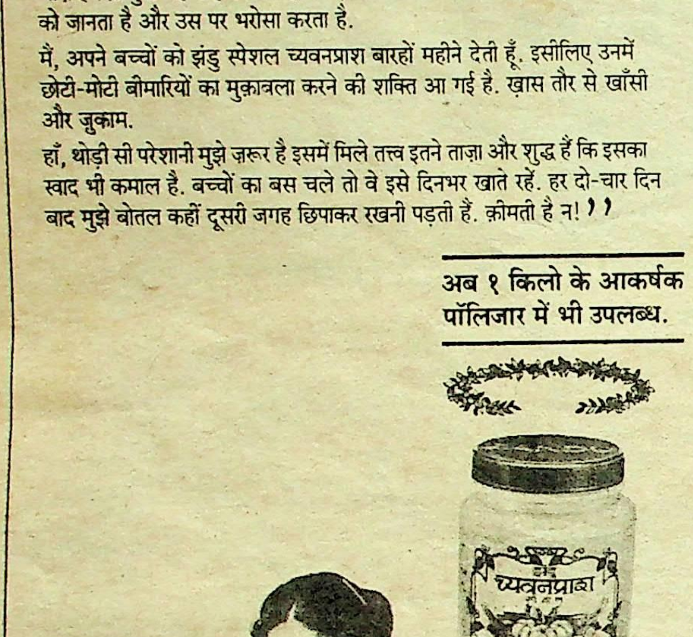

क़ीमती ही सही **झंडु स्पेशल च्यवनप्राश.**

असली च्यवनप्राश

CLARION/B/ZP/17/242

सबल एवं परिपुष्ट है, जितना कि उसका भौतिक तत्व विश्लेषण संबंधी पक्ष है.

इस शास्त्र में मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ-साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गंभीर विचार किया गया है. शरीर के साथ-साथ प्राण तत्व और उसके प्रगतिशील विकास क्रम को भी आयुर्वेद में यथोचित महत्व दिया गया है. यही कारण है कि आयुर्वेद शास्त्र मात्र चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु वह संपूर्ण जीवन विज्ञान है, जिसमें मानव जीवन की दैनिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं पर गंभीर अनुचिंतन के पश्चात उनके समाधानात्मक उपाय प्रतिपादित किये गये हैं. पृथ्वी पर जबसे मानव जीवन प्रारंभ हुआ तब ही से आयुर्वेद अपने मौलिक स्वरूप के साथ विद्यमान है. अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वह शाश्वत है. अपनी कतिपय मूलभूत विशेषताओं के कारण आयुर्वेद मानव जीवन के जितना अधिक निकट है उतना कोई अन्य शास्त्र नहीं है. यही कारण है कि भीषण आघातों एवं प्रहारों के बावजूद आज वह न केवल जीवित है, अपितु सुरक्षित है. हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि आयुर्वेद का अतीत अत्यंत गौरवमय रहा है. किंतु काल गति जब दुर्भाग्य के साथ चलने लगी तो आयुर्वेद का विपुल साहित्य काल कवलित होने लगा और इसके साथ-साथ आयुर्वेद का गौरव भी शनैः शनैः क्षीण होता गया.

आयुर्वेद शास्त्र की यह एक मौलिक विशेषता है कि इसमें मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गंभीर विचार किया गया है. शरीर के साथ-साथ प्राण तत्व का विवेचन, आत्मा और मन के विषय में स्वतंत्र दृष्टिकोण तथा शारीरिक, मानसिक व बौद्धि विकास क्रम का यथोचित व आयुर्वेद की वैज्ञानिकता एवं प्रामाणिकता के सबल प्रमाण हैं. उसकी वैद्यक विद्या अप पृथक पद्धति एवं चिकित्सा संबंधी व्यापकता के कारण विशिष्ट महत्वपूर्ण है. पोषण संबंधी तत्वों एवं रासायनिक पदार्थों का उसमें विशिष्ट रू से विभिक्तीकरण किया गया जो पूर्णतः मात्रा और गुण पर आधारित है. विशिष्ट विधि पूर्वक रस-रसायन-पिष्टी-भस्म, चूर्ण-वटी लेप-घृतपा तैलपाक, अवलेह-मोदक आ कल्पनाएं और समस्त वनौषधियों के प्रयोग ने इस विज्ञान को निश्चय ही मौलि स्वरूप प्रदान किया है. अप सरलता और रोगमुक्त करने की क्षमता के कारण आयुर्वेद की अनेक प्रक्रियाओं ने ग्रामी जन जीवन में इतनी आसानी प्रवेश पा लिया है कि आज भी गांव में किसी के व्याधित या रोग पीड़ित हो जाने पर विभिन्न काढ़ों (क्वाथ), लेप आदि के द्वारा ग्रामीण जन उपचार करते देखे जाते हैं. इसका मूल कारण यही है कि आयुर्वेद मानव जीवन के अत्यधिक सन्निकट है.

महर्षि चरक और सुश्रुत द्वारा प्रतिपादित रोग निदान और चिकित्सा संबंधी सिद्धांत

के अंतरिम प्राण-बल
षण पर भी बल दिया
रोग के मूल कारण को
आहार विहार जनित
र जिस प्रकार संयम
हार गत पथ्य के नियम
ये हैं वे अत्यंत उत्कृष्ट
वहारिक हैं. जो लोग
ो होमियोपैथी, रंग
सा, जल चिकित्सा में
 रखते हैं, वे भी आज
 के महत्व को समझने
और रोग निवारण के
गी के चिकित्सा क्रम में
ारा विनिर्मित आहार
 क्रम को विशेष महत्व
है. आयुर्वेद विज्ञान के
 मौलिक सिद्धांतों को
कालीन विभिन्न
ा प्रणालियों ने बड़ी
के साथ अविकल रूप
कर आत्मसात कर
. यह एक निर्विवाद
कि प्राकृतिक चिकित्सा
 सिद्धांत एवं
ाएं आयुर्वेद मूलक हैं.
र कतिपय विद्वानों के
ार प्राकृतिक चिकित्सा
कोई स्वतंत्र चिकित्सा
नहीं है, अपितु आयुर्वेद
क शाखा विशेष है.
ार संपूर्ण आयुर्वेद को
भाजन की सुविधा की
 आठ अंगों में
 कर दिया गया है और
विषय को अलग-अलग
 संबंधित कर दिया गया
 प्रकार प्राकृतिक
ा पद्धति को भी आयुर्वेद
 स्वतंत्र अंग मान लिया
ता है. इसी प्रकार
 काल में समुद्भूत एवं
 को प्राप्त हुई अन्य
ा प्रणालियों ने भी
 के अनेक विषयों एवं सिद्धांतों को अविकल रूप से ग्रहण कर आत्मसात कर लिया है. अतः इस तथ्य को निःसंकोच रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि आयुर्वेद विज्ञान ने अन्य चिकित्सा प्रणालियों के केवल उद्भव में ही योगदान नहीं किया है, अपितु उनके विकास एवं प्रसार हेतु भी मार्ग प्रशस्त किया है.

आयुर्वेद शब्द अपने आप में परिपूर्ण एवं अर्थ गांभीर्ययुक्त है. आयु और वेद (ज्ञान) इन दो शब्दों के संयोग से आयुर्वेद शब्द निष्पन्न हुआ है. जिसका सामान्य अर्थ होता है—जिसके द्वारा आयु (जीवन) का समुचित ज्ञान प्राप्त हो,वही आयुर्वेद है. महर्षि चरक ने आयुर्वेद की जो समीचीन व्याख्या की है वह निम्न प्रकार है—

''जिस शास्त्र में आयु का विषय अर्थात् स्वरूप प्रतिपादित किया गया हो, जिस शास्त्र का अध्ययन करने से आयु संबंधी ज्ञान प्राप्त होता है अथवा जिस शास्त्र के विषय में विचार करने से हितकर आयु, अहितकर आयु, सुखकर आयु और दुःखकर आयु के विषय में जानकारी प्राप्त होती है अथवा जिस शास्त्र में बताते हुए नियमों का पालन करने से दीर्घायु प्राप्त की जा सकी है उसका नाम आयुर्वेद है. इसी प्रकार स्वस्थ्य मनुष्य की प्रकृति, विकृति,शुभ और अशुभ बताने वाले दूत और अरिष्ट लक्षण इत्यादि के उपदेशों से जो शास्त्र आयु का विषय अर्थात् यह स्वल्पायु है अथवा मध्यमायु है या

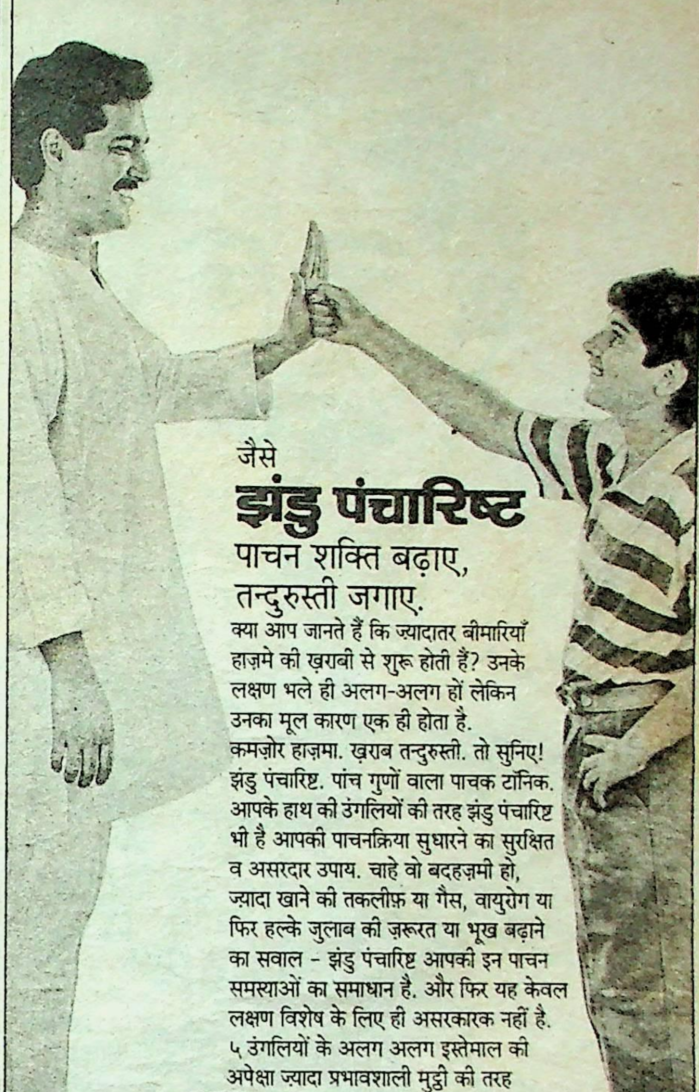

ZANDU PANCHARISHTA
झंडु पंचारिष्ट

पाँच उंगलियाँ साथ मिले तो मुट्ठी कहलाए
उंगलियों की चुस्ती-फुर्ती मुट्ठी की जान बन जाए.

जैसे
झंडु पंचारिष्ट
पाचन शक्ति बढ़ाए,
तन्दुरुस्ती जगाए.

क्या आप जानते हैं कि ज़्यादातर बीमारियाँ हाज़मे की ख़राबी से शुरू होती हैं? उनके लक्षण भले ही अलग-अलग हों लेकिन उनका मूल कारण एक ही होता है.
कमज़ोर हाज़मा. ख़राब तन्दुरुस्ती. तो सुनिए! झंडु पंचारिष्ट. पांच गुणों वाला पाचक टॉनिक. आपके हाथ की उंगलियों की तरह झंडु पंचारिष्ट भी है आपकी पाचनक्रिया सुधारने का सुरक्षित व असरदार उपाय. चाहे वो बदहज़मी हो, ज़्यादा खाने की तकलीफ़ या गैस, वायुरोग या फिर हल्के जुलाब की ज़रूरत या भूख बढ़ाने का सवाल - झंडु पंचारिष्ट आपकी इन पाचन समस्याओं का समाधान है. और फिर यह केवल लक्षण विशेष के लिए ही असरकारक नहीं है. ५ उंगलियों के अलग अलग इस्तेमाल की अपेक्षा ज़्यादा प्रभावशाली मुट्ठी की तरह ही झंडु पंचारिष्ट में वे आयुर्वेदिक गुण हैं जो एक साथ मिलकर आपकी पूरी पाचन क्रिया को सुधारते और उसे स्वस्थ बनाते हैं.
झंडु पंचारिष्ट का नियमित इस्तेमाल कीजिए. कुछ ही दिनों में आप जान जाएंगे कि आप सेहतमंद हो रहे हैं.
याद रखिए, अच्छा हाज़मा याने
अच्छी तन्दुरुस्ती!
और फिर जान है तो जहान है!

४५० मिली.
और
२०० मिली.
में उपलब्ध.

झंडु पंचारिष्ट
पाँच गुणोंवाला पाचक टॉनिक

CLARION/B/ZP/20/242

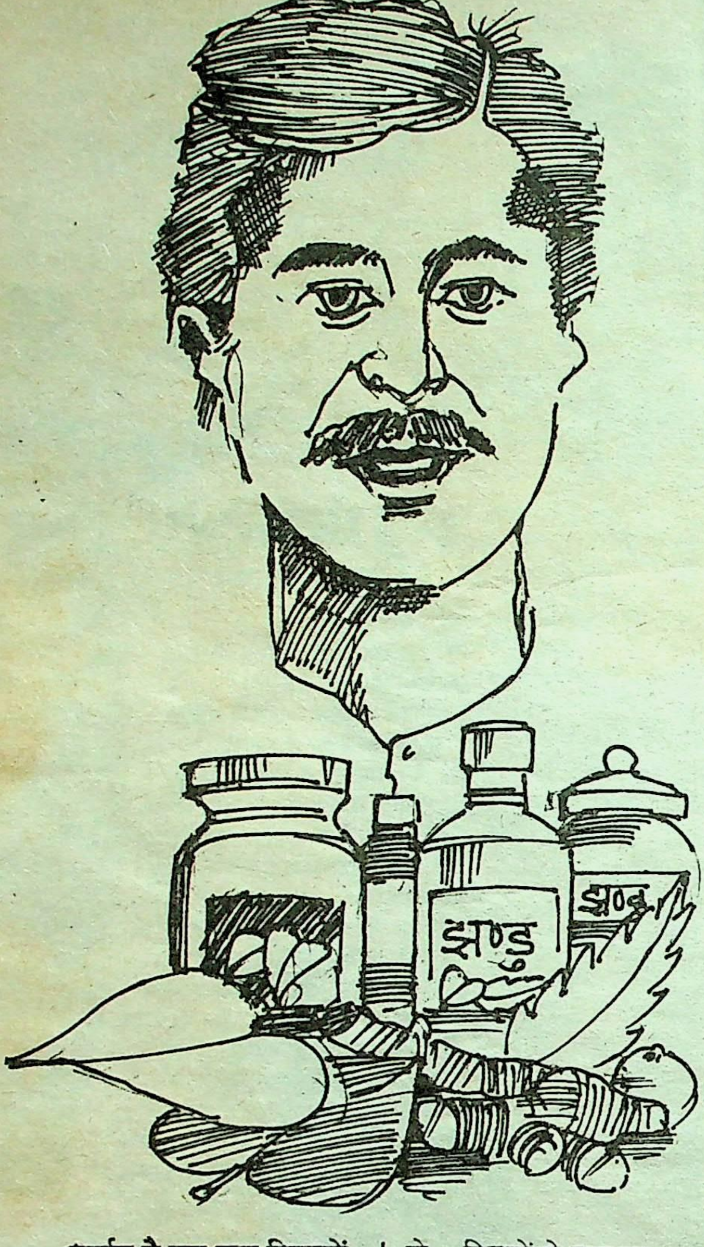

दीर्घायु है इन सब विषयों का ज्ञान करा देता है,वही आयुर्वेद है.''

आयु के लिए कौन-सी वस्तु लाभदायक है या किस वस्तु के द्वारा आयु की हानि हो सकती है? किस प्रकार की आयु हितकर होती है और कैसी आयु अहितकर होती है? यह विषय जिस शास्त्र में वर्णित हो तथा रोग का निदान और उसके प्रतिकार के विषय में जिस शास्त्र में वर्णन किया गया हो—विद्वानों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. इस शास्त्र के द्वारा पुरुष चूंकि आयु को प्राप्त करता है तथा आयु के विषय में जान लेता है, इसलिए श्रेष्ठों के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है. तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र का यदि ज्ञान प्राप्त कर लिया जाता है तो मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त करने का उपाय ज्ञात हो जाता है. क्योंकि इस शास्त्र में बतलाये हुए आहार-विहार संबंधी नियमों और अन्य सदाचारों का पालन करने से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है. इसलिए ऋषियों, आचार्यों और विद्वानों ने इस शास्त्र को आयुर्वेद के नाम से अभिहित किया है.

स्वस्थ मनुष्यों के लिए आयुर्वेद शास्त्र में दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या तदनुसार आहार-विहार का विधान बतलाया गया है. जो उसके अनुसार आचरण करता है वह निश्चय ही स्वस्थ रहता है और अपनी सुदीर्घ आयु का निर्बाध रूप से उपभोग करता है. क्योंकि देश, काल, ऋतु और अपनी प्रकृति के अनुरूप सम्यक आहार-विहार करने से मानव शरीर में स्थित वात-पित्त, कफ ये तीनों दोष समान (प्राकृत) अवस्था में रहते हैं, जठराग्नि भी सम रहती है (अर्थात् न्यूनाधिकता को प्राप्त नहीं होती), धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद, अस्थि-मज्जा-शुक्र) और मल (स्वेद, मूत्र-पुरीष) प्रसन्न रहते हैं. इस प्रकार जिस मनुष्य के शरीर में समस्त क्रियाएं प्राकृत रूप से संपन्न होती रहती हैं, शरीर में किसी प्रकार की विषमता नहीं होती—उसका शरीर कभी विकार ग्रस्त नहीं हो सकता और वह सदैव स्वस्थ रहता है. अतः स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और इसके लिए सम्यक आहार विहार का उपदेश करना आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन है.

मानव शरीर में वातादि दोषों में जब मिथ्या आहार-विहार या देश-काल ऋतु वैषम्य के कारण विषमता उत्पन्न हो जाती है तो वे धातुओं को दूषित कर उनमें भी विषमता उत्पन्न
कर देते हैं. अनेक बार
प्रज्ञापराध के कारण भी
प्रकार के रोगों की उत्पत्ति
शरीर में हो जाती है. अत
औषधोपचार, लंघन आदि
तथा अन्य चिकित्सा विधि
द्वारा विकारोपशमन या रो
निवृति हेतु उपाय किये
हैं. यह भी आयुर्वेद का
प्रयोजन है. इस प्रकार प्र
स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य
रक्षा करना और यदि, कि
कारणवश विकारोत्पत्ति
तो यथा विधि उसका उप
करना—ये दो आयुर्वेद के
मुख्य प्रयोजन हैं. इससे
स्पष्ट है कि आयुर्वेद के
हैं—एक स्वास्थ्य रक्षा सं
पक्ष और दूसरा चिकित्सा
आयुर्वेद में प्रथमतः स्वास
रक्षा संबंधी पक्ष पर विशेष
दिया गया है. क्योंकि मनु
यदि अपने दैनिक क्रिया
कलापों एवं संयमित आह
विहार के द्वारा स्वस्थ बना
रहता है तो वह न केवल
व्यक्तिगत जीवन, अपितु
सामाजिक वातावरण एवं
के लिए उपयोगी है. ऐसी
स्थिति में द्वितीय चिकित्स
पक्ष अर्थहीन हो जाता है.
भी सामान्यतः स्वस्थ सम
निर्माण की दिशा में चिकि
पक्ष की सार्थकता उतनी
है, जितनी अपने आहार
आचार के द्वारा स्वस्थ बने
की है. इसके द्वारा प्रत्येक
व्यक्ति समाज और देश के
अपने कर्त्तव्य निर्वाह की
भूमिका अदा कर सकता

भारतीय चि
केंद्रीय प
१ ई/६, स्वामी राम
नयी दिल्ली-११००

धारावाही : **समापन किस्त**

पुरुषोत्तम

☐ भगवती शरण मिश्र

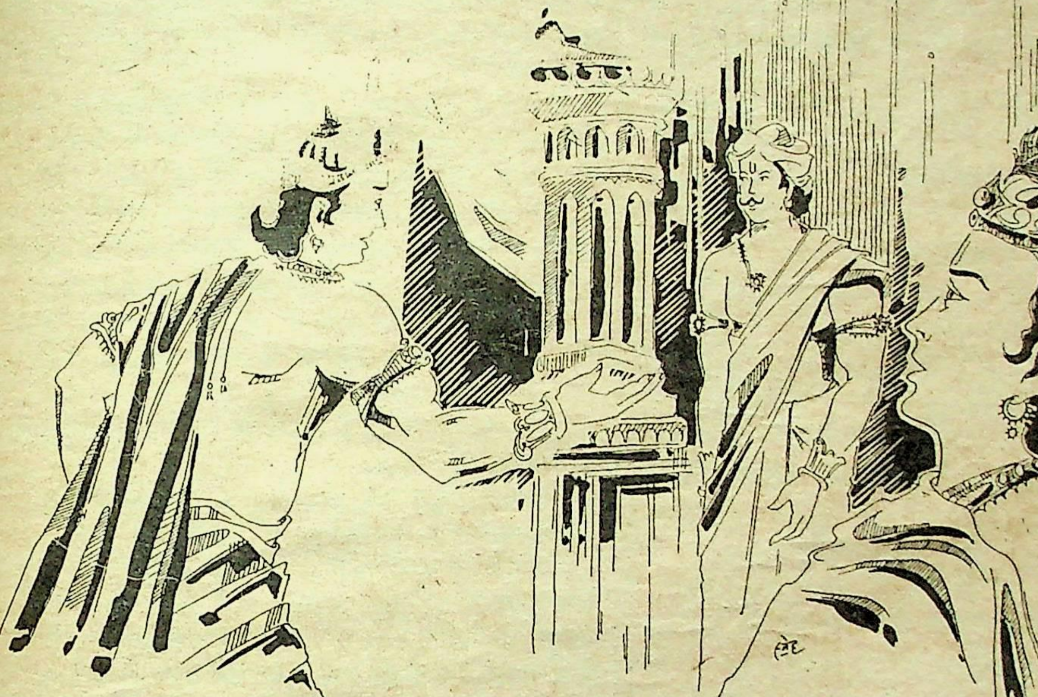

प्रसन था वह जा गायब था—ठीक उसी समय जब से मणि का अता-पता नहीं था. सत्राजित के महल में. प्रसेन अर्थात सत्राजित का सगा भाई—सहोदर. श्रीकृष्ण के गुप्तचरों ने पक्की सूचना दे दी थी.

''स्पष्ट है कि प्रसन के हाथों मणि की किसी गुहा-गह्वर में छिपाकर रखने की सत्राजित की योजना है. महाराज के लिए मणि की तुम्हारी मांग ने उसे इस हेतु विवश किया है.''

''प्रसेन नहीं भी लौट सकता है.'' श्रीकृष्ण ने आशंका व्यक्त की.

''यह संभव है. उसे लौटना होता तो अब तक लौट सकता था.'' संकर्षण ने आशंका की पुष्टि की.

''इसका तात्पर्य यह कि....'' श्रीकृष्ण बोलते-बोलते रुक गये. अब तक प्राय: निर्विकार रहे प्रफुल्ल आनन पर चिंता की रेखाएं पुनः उभर आयीं. इनकी बड़ी-बड़ी आंखें दो विशाल प्रश्न-चिह्न बन बलराम के मुख से चिपक-सी गयीं. दो क्षण को दोनों चुप रहे. मौन का एक संत्रासक साम्राज्य उस मंत्रणा-कक्ष में व्याप्त हो गया. बलराम अपने अनुज के दर्द का अनुभव कर रहे थे और पूरी गहराई से कर रहे थे. प्रसेन के नहीं लौटने का तात्पर्य श्रीकृष्ण पर लगे कलंक का स्थायी हो जाना था—ठीक शशांक पर मढ़े मलिन और विद्रूप धब्बों की तरह.

''प्रसेन मारा भी तो जा सकता है. इतनी कीमती मणि लेकर वह एकाकी निकला है. गुप्तचरों की सूचना के अनुसार सत्राजित की छोटी सेना की टुकड़ी का कोई सैनिक तक नहीं अनुपस्थित है.'' श्रीकृष्ण ने ही मौन तोड़ा. चांद को छोड़कर खिसके बादलों की तरह चिंता की रेखाएं उनके शुभ्र आनन को उन्मुक्त कर चुकी थीं.

''एक संभावना भी बनती है और तब हमें इस कार्य में और शीघ्रता करनी चाहिए.'' बलराम ने एक तरह से अपना निर्णय सुनाया.

''किस कार्य में?''

प्रसेनान्वेषण के कार्य में. इसके पूर्व कि उसके शव का भी पता नहीं लगे और वह सड़-गल कर समाप्त हो जाय हमें उसे ढूंढ़ ही निकालना चाहिए मृत अथवा जीवित.''

''इसका अर्थ यह कि सभी दिशाओं में हम सैनिक भेज दें.'' श्रीकृष्ण कुछ आश्वस्त हो बोले.

बलराम मुस्कराए.

''इसकी आवश्यकता नहीं,'' उन्होंने कहना आरंभ किया,'' केवल तुम्हारा जाना ही पर्याप्त है. सैनिक इस अभियान को उतना महत्व नहीं भी दे सकते और फिर इसमें वीरता के साथ-साथ बुद्धि-चातुर्य की भी आवश्यकता है. प्रसेन ऐसे ही शूर-वीर है, कई सामान्य सैनिकों के लिए वह एकाकी ही भारी पड़ेगा.''

''मैं ? मैं सभी दिशाओं में अकेले कैसे जा सकता हूं ? मैं तो अभी इसी क्षण प्रस्थान करने को प्रस्तुत हूं पर......''

''मैं जानता हूं. जानता हूं तुम्हारे कर्मयोगी रूप को. कर्तव्य का निर्धारण हो जाने के पश्चात् एक क्षण का भी विलंब तुम्हें सह्य नहीं. पर तुम्हारे असमंजस को भी पकड़ पा रहा हूं. एक ही साथ तुम्हें सभी दिशाओं में दौड़ने की आवश्यकता नहीं. प्रसेन तो किसी एक ही दिशा में गया होगा अथवा आगे जाकर दिशा-परिवर्तन कर लिया होगा उसने.'' बलराम ने गंभीरता से कहा.

''वह तो ठीक. पर उस दिशा का पता कैसे लगे ? लग जाय तो अभी मैं...''

बलराम के मुख पर पुन: एक मुस्कान खेली. जैसे वे इस बात को लेकर पूरी तरह आश्वस्त थे. जैसे उन्हें पता हो कि प्रसेन किस ओर गया हो. जैसे वह उन्हीं की आंखों के सामने निकला हो.

''तुम्हें लोग अंतर्यामी कहते हैं.'' संकर्षण ने कहना आरंभ किया, ''बहुत बातें तुम सहज ही समझ जाते हो. तुम्हारी छठी इंद्रिय कुछ ज्यादा ही विकसित है अथवा गायत्री मंत्र के तुम्हारे नित्य जाप ने भगवान सविता का कुछ अधिक अनुग्रह ही तुम्हें उपलब्ध करा दिया है और तुम्हारी बुद्धि अधिक ही प्रखर हो आयी है. पर जैसे सूर्य को भी ग्रहण लग जाता है वैसे ही इस समय तुम्हारी सोचने-समझने की शक्ति कुछ कुंठित हो आयी है. प्रसेन किस दिशा में गया है यह पता लगाना अत्यंत सहज है.''

''कैसे ?'' श्रीकृष्ण कुछ नहीं समझकर बोले.

''तुम्हारे गुप्तचरों ने तो बताया होगा कि वह रथ पर निकला है अथवा अश्व पर. अगर रथ पर निकला है तो और आसान है. रथ-चक्र के चिह्न पकड़कर....''

''ठहरिए भैया, इतना तो मैं भी समझता था. प्रसेन के रथ-चिन्हों की पहचान बहुत कठिन नहीं थी, पर दोनों भाइयों के रथ तो उनके महल में ही पड़े हैं. प्रसेन का प्रिय अश्व अवश्य गायब है.''

''तब तो और आसान है.''

''कैसे ? अश्व के खुरों के चिह्न कभी के मिट गये होंगे.''

''मिट तो रथ के चिह्न भी गये होंगे कम-से-कम वहां तक, जहां तक लोगों का आना-जाना बना रहता है. पर अश्व की एक विशेषता है.''

''क्या ?''

''अश्व अपनी राह में खुरों के निशान ही नहीं, कुछ और पहचान भी छोड़ता है. तुम प्रसेन के अश्व के पोषकों से भेद लो—अपने आदमियों को भेजकर. अश्व के मल-मूत्र की पहचान कर लें वे. उनकी गंध तक की. ऐसे प्रशिक्षित लोग अपनी सेना में भी हैं. उन्हें ही प्रसेन के यहां भेजकर इन बातों का पता करो. हो सके तो उसके अश्व-सेवकों में से एक-दो को अपने पक्ष में कर लो. राजनीति में सब चलता है.''

बलराम की बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए. उनका कर्तव्य निर्धारित हो चुका था. पथ प्रशस्त. अग्रज की बुद्धि का लोहा उन्हें पुन: एक बार और मानना पड़ा था.

''एक बात और करनी है.'' संकर्षण ने महल-द्वार तक उन्हें छोड़ते हुए कहा था.

''क्या ?'' मुख और आंख दोनों से पूछा था श्रीकृष्ण ने. उन्हें स्पष्टत: शीघ्रता थी. वे स्पंदन की ओर एक पैर बढ़ा चुके थे.

''न सही अपने साथ सैनिक पर साक्ष्य के लिए नगर के कुछ गण मान्य व्यक्तियों को अवश्य ले लेना. प्रसेन अकेला गया है तो सैनिकों की सचमुच आवश्यकता नहीं, पर अगर वह सचमुच काल-कवलित हो गया हो तो नागरजन ही तुम्हारे कार्य आयेंगे वर्ना प्रसेन की हत्या का एक नया कलंक भी तुम पर.....''

''ठीक है,'' श्रीकृष्ण ने शीघ्रता में कहा और स्पंदन पर सवार हो गये. सारथी ने अश्वों की वल्गाएं संभालीं तो श्रीकृष्ण के मुख पर विषम स्थिति में भी स्मिति की एक रेखा खिंच गयी. उनका मन अकस्मात् गोकुल की गलियों में लौट गया था. मां यशोदा का कान उमेठना याद हो आया था, ''मत देखना फिर इस चतुर्थी के चांद को.'' कलंक पर कलंक की संभावना बढ़ती जा रही है. सच कितना अशुभ था वह चांद-दर्शन ? कौन चांद-दर्शन ? भगवान का मन अब भावुक हो आया था. गगन के उस चांद के दर्शन अशुभ भी हो सकते हैं पर गोकुल की गलियों, कुंज-निकुंजों का वह चांद ? राधा का वह चंद्र-मुख ? काश, अगर राधा आज उनके साथ होती हो ? तो क्या वे इस तरह व्यथित और उद्विग्न होते ? उनके मुख की एक-एक भंगिमा, एक-एक सूक्ष्म से सूक्ष्मतम रेखा से परिचित राधा क्या उनको एक क्षण के लिए भी व्यग्र देख पाती ? सारे दु:खों को स्वयं पीकर वह उन्हें आश्वस्त और प्रसन्न कर देने के किसी प्रयास से मुख मोड़ती क्या? □

[यह उपन्यास शीघ्र ही राजपाल एंड संस, दिल्ली से प्रकाश्य.]

नूतन हिन्दी शब्द कोश

- हिन्दी भाषा का आधुनिक प्रचलित सही ज्ञान
- कठिन शब्दों के अर्थ
- पर्यायवाची, विपरीतार्थक शब्द
- मुहावरें तथा लोकोक्तियां
- लगभग 30,000 शब्दार्थ

पृष्ठ 992, मूल्य 40/- रु. (डाकखर्च सहित)
वी.पी.पी. द्वारा मगाएं.

न्यू स्टैण्डर्ड पब्लिकेशन्स
1813/A, चन्द्रावल रोड, दिल्ली-110007.

INCREASE YOUR VOCABULARY
Learn to spell, pronounce & use words correctly.
Don't let English be a difficult & troublesome language any more.
POPULAR OXFORD
ENCYCLOPAEDIC ILLUSTRATED
DICTIONARY
Eng.-Eng. & Hindi
Pages 1120 Rs 50/-
Postage Free
(Only in India)
Contains 86000 main entry words, their pronunciations, followed by grammar & meaning in English & Hindi with phrases or derivatives added to it.
Rush your order by V.P.P
NEW STANDARD PUBLICATIONS
1813/A, Chandrawal Road, Delhi-110007.

सार्वजनिक/सरकारी संस्थान प्रगति के पथ पर

भारत में पेट्रोलियम संरक्षण

पी.के. गोयल,
पेट्रोलियम कंजर्वेशन रिसर्च एसोसिएशन

१९७३ की मूल्यवृद्धि से पहले देश में पेट्रोलियम पदार्थों का आयात भारत के कुल आयात (१९७०-७१ में १३२ करोड़ रुपये) का लगभग ८-१० प्रतिशत ही होता था. आज पेट्रोलियम उत्पादों के आयात पर लगभग ६००० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च होती है जो कुल आयात का २५ प्रतिशत है. यह तब है जब कि तेल तथा गैस का घरेलू उत्पादन कई गुना बढ़ गया है.

पेट्रोलियम उत्पादों की बढ़ती हुई कीमतों और इस पर विदेशी मुद्रा के भारी खर्च को देखते हुए १९७६ में भारत सरकार ने पेट्रोलियम कंजर्वेशन रिसर्च एसोसिएशन नामक संस्था का गठन किया जो पेट्रोलियम संरक्षण के क्षेत्र में काम कर सके.

इसे जो काम सौंपे गये थे, वे इस प्रकार थे :—

१. औद्योगिक तथा संगठित यातायात क्षेत्र में ईंधन की बचत का अध्ययन किया जाये.

२. यातायात, घरेलू तथा कृषि जैसे असंगठित क्षेत्रों के लिए प्रचार अभियान चलाया जाये, जिसमें रेडियो, टी.वी. अखबार, होर्डिंग आदि सभी प्रचार साधनों का उपयोग किया जाये.

३. ईंधन में बचत करने के तरीकों तथा उपकरणों के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रम चलाये.

४. ईंधन की बचत को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार से प्रोत्साहन सहायता की सिफारिश. जैसे : घटिया बायलरों को बदलने के लिए आसान शर्तों पर कर्ज की योजना, प्रेशर कुकर जैसे ईंधन में बचत करने वाले उपकरणों पर नये कर समाप्त करना आदि.

यातायात घरेलू, औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों की विभिन्न गतिविधियों में एसोसिएशन ने गत १२ वर्षों में १२ करोड़ रुपये खर्च किये और उन प्रयासों से पेट्रोलियम पदार्थों की जो बचत हुई है, उसका मूल्य है—२८० करोड़ रुपये.

पेट्रोलियम पदार्थों की खपत प्रतिवर्ष तीस लाख टन से भी अधिक रफ्तार से बढ़ रही है. यदि हम मानकर चलें कि किसी नये तेल क्षेत्र में हम २५ प्रतिशत तेल पा सकेंगे और १५ वर्षों तक ३० लाख टन प्रतिवर्ष वहां से मिलेगा तो इसके लिए हमें प्रतिवर्ष एक ऐसे नये तेल क्षेत्र की खोज करनी होगी, जिसकी कुल क्षमता १८ करोड़ टन हो, तभी हम देश की बढ़ती पेट्रोलियम उत्पादों की मांग का मुकाबला कर पायेंगे. पर इस काम के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी उसे जुटाना भी इतना आसान नहीं होगा.

ऊर्जा के लिए गठित कपूर आयोग ने १९८३ में अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया था कि ऊर्जा संरक्षण के उपायों पर यदि ३६०० करोड़ रुपये खर्च किये जायें तो प्रतिवर्ष ऊर्जा की बचत से १९२५ करोड़ रुपये बचाये जा सकेंगे. यानि दो साल में ही इस खर्चे की भरपाई हो जायेगी. अन्यथा इतनी मात्रा में ऊर्जा पैदा करने के लिए ५७६० करोड़ रुपयों के निवेश की आवश्यकता होगी. इसलिए अतिरिक्त ऊर्जा के उत्पादन के लिए नयी सुविधाएं जुटाने के बजाय ऊर्जा की बचत को एक सस्ता विकल्प पाया गया

यंत्रों में, घिसाई कम करने के लिए, उपयोग में आने वाला चिकनाई पैदा करने वाला तेल पेट्रोलियम पदार्थों में सबसे महंगा है. इस समय इसके आयात पर प्रतिवर्ष १५० करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च हो रही है. देश में निकलने वाला तेल इसे बनाने के लिए अनुपयोगी है. अतः उसकी खपत कम करने के लिए एसोसिएशन ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं. साथ ही चिकनाई वाले तेलों की बचत के बारे में ५ पुस्तकें भी तैयार की हैं और कई संगोष्ठियां भी आयोजित की हैं.

पेट्रोलियम तथा रसायन मंत्रालय के पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस विभाग ने तेल शोधकों के लिए कई योजनाएं तैयार की हैं, ताकि उन्हें स्तरीय उत्पादों के उत्पादन में सहायता मिल सके. योजना आयोग में विशेषज्ञों के एक दल ने एक ऐसी योजना तैयार की है जिससे सन् २००० में तेल/कोयला/विद्युत की खपत बहुत ही कम हो जायेगी.

इससे जाहिर होता है कि यदि उद्योग, सरकारी एजेंसियां तथा अनुसंधान एवं विकास आदि क्षेत्र कंधे से कंधा मिलाकर काम करें तो इस समस्या का प्रभावी ढंग से मुकाबला किया जा सकता है और ऊर्जा संरक्षण के मामले में लाखों रुपये बचाये जा सकते हैं. □

९० के दशक के लिए भेल की योजनाएं तथा कार्यक्रम

पी.एस. गुप्ता

अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक
भारत हेवी इलैक्ट्रिकल्स लि

किसी भी विकासशील देश के आर्थिक विकास तथा समग्र उन्नति के लिए व्यावसायिक ऊर्जा का उत्पादन बहुत महत्व रखता है. राष्ट्रीय स्तर पर हमारे नीति निर्धारकों ने ठीक ही सोचा कि भारत जैसे आकार और विविधताओं वाले देश में बड़े पैमाने पर ऊर्जा के उत्पादन के लिए यह जरूरी है कि इसके लिए आवश्यक उपकरणों का निर्माण देश में ही हो और इस प्रकार भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स (भेल) अस्तित्व में आया.

पचास के दशक के मध्य में भोपाल में इसका पहला कारखाना लगाया गया, जिसके साथ ही भारत में विद्युत उपकरणों के निर्माण कार्य का प्रारंभ भी हो गया. इसके बाद साठ के दशक में हरिद्वार, हैदराबाद तथा तिरुचिरापल्ली में तीन और कारखाने लगाये गये. तीस साल के भीतर-भीतर भेल के प्रयासों का ही परिणाम था कि कहां तो भारत को विद्युत उपकरणों के लिए विदेशों को मुंह ताकना पड़ता था और कहां भारत इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा में आ गया. आज देश की कुल ६३००० मेगावाट उत्पादन क्षमता के ६३ प्रतिशत विद्युत का उत्पादन भेल के बने उपकरणों से ही हो रहा है.

आज भेल के कुल १३ कारखाने उत्पादन कार्य में लगे हैं. १८ सर्विस सेंटर हैं. इनके अतिरिक्त देश-विदेश में १०० प्रोजेक्ट साइट पर भेल काम कर रहा है. हैदराबाद में भेल का एक अनुसंधान तथा विकास केंद्र भी है. भेल आज देश के इंजीनियरी संस्थानों में सबसे बड़ा है और दुनिया के प्रतिष्ठित निगमों के साथ सहयोग कर रहा है. ७५ हजार समर्पित कर्मचारियों की सेवा इसे मिल रही है. अमरीका से बाहर के ५०० बड़े निगमों की फॉरचून पत्रिका की ताजा सूची में भेल का भी नाम है.

वर्ष १९८९-९० में भेल का टर्न ओवर २८८५ करोड़ रुपये तथा टैक्स देने से पहले का लाभ १९५ करोड़ रुपये रहा है. यद्यपि कंपनी को देश में विद्युत क्षेत्र की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही गठित किया गया और इन टर्न ओवर का दो-तिहाई देश के विद्युत क्षेत्र से ही प्राप्त होता है पर शेष एक तिहाई उद्योग, ट्रांसमिशन, यातायात तथा तेल एवं गैस क्षेत्र से भी प्राप्त होता है.

कंपनी विदेशों में उत्पादनों तथा सेवाओं की आपूर्ति के अतिरिक्त ४० देशों में परामर्श सेवा भी दे रही है. अंतर्राष्ट्रीय बाजार की तगड़ी प्रतियोगिता के बावजूद कई ऐसे ठेके हासिल किये हैं जिनसे इसकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी है. माल्टा को २X६० मेगावाट टी जी सेट, मलेशिया को नये बायलरों के लिए टर्नकी, टर्की के लिए इंसुलेटर, सोवियत संघ के लिए ८०० मेगावाट के कंडेंसर अमरीका को फ्लूडाइजड बैड कंबश्चन बायलर के हिस्सों के ठेके तो भेल को पिछले एक साल में ही मिले हैं.

यह सब कंपनी के योजनाबद्ध ढंग से काम करने के कारण संभव हुआ है. भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए भी कंपनी ने एक निगमित योजना तैयार कर ली है.

९० का दशक हमारे लिए कई आश्चर्यों और कई चुनौतियों को लेकर आया है. ८० के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था में नरमी की प्रक्रिया शुरू हुई. भेल जैसी कंपनी के लिए घरेलू बाजार तक में अपने को बनाये रखने के लिए तगड़े अंतर्राष्ट्रीय मुकाबलों को झेलना पड़ रहा है. गत पांच वर्षों में भेल के टर्न-ओवर का ७० प्रतिशत घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय निर्माताओं के साथ कड़े मुकाबलों के बाद प्राप्त किया गया है. ९० के दशक में और भी कड़े मुकाबलों के लिए कंपनी ने अपने को तैयार कर लिया है.

सुरक्षा, दूरसंचार, यातायात आदि अन्य क्षेत्रों में भी देश में ही ठेके पाने के लिए भेल को अपने से १० से २५ गुना तक बड़ी अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के साथ मुकाबला करना पड़ता है. ये कंपनियां बड़े आकार तथा बड़ी अर्थव्यवस्था रखने के कारण भेल की तुलना में अधिक सुविधाजनक स्थिति में होती हैं.

नयी विद्युत उत्पादन इकाइयों से उपकरणों की मांग की कमी को देखते हुए भेल ने तय किया है कि देश में अधिक विद्युत उत्पादन के लिए वर्तमान विद्युत उत्पादन इकाइयों के रख-रखाव उनके नवीकरण तथा उनकी कार्य-अवधि को बढ़ाने के काम में वह अधिक ध्यान देगा ताकि इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में वह अपनी प्रमुखता बनाये रखे.

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उपकरणों के निर्यात को बढ़ाने के लिए भेल ने कुछ देशों पर अपना ध्यान केंद्रित किया है—ये हैं दक्षिण पूर्व एशिया के देश—माल्टा, साइप्रस, इरान आदि. इन देशों में निर्यात में वृद्धि की संभावनाओं पर काम किया जा सका है. कुछ सफलता भी मिली है.

१९९५ तक कपनी का लक्ष्य है कि वार्षिक टर्नओवर ६००० करोड़ रुपये के स्तर तक पहुंचाया जाये. हमें विश्वास है कि संपूर्ण भेल परिवार की इच्छाशक्ति और समर्पणभाव की शक्ति पाकर हम अपनी सारी कठिनाइयों तथा बाधाओं पर काबू पा लेंगे और देश के हित में व्यवसाय के सभी मौकों का भरपूर लाभ उठायेंगे. □

बिना कुछ सोचे समझे हमारे वातावरण को बोझिल बनाना और प्रकृति का उस दूषित होते हुए वातावरण को आत्मसात करने में जुट जाना।

किंतु प्रकृति तो सिर्फ़ इतना ही कर सकती है, क्योंकि हम तो पहले से ही उसके साथ न जाने कितना खिलवाड़ कर चुके हैं।

और यह धरती तपने लगती है।

हिमरेखा संकुचित होती जाती है, ध्रुवीय चोटियां पिघलने लगती हैं और समुद्री जल उस ताप के कारण दिगंत को छूने को तत्पर हो जाता है।

जब यह हिम अपना समूचा अस्तित्व खो बैठेगा, तटीय प्रदेश नष्ट हो उस जल प्लावन में डूब जाएंगे।

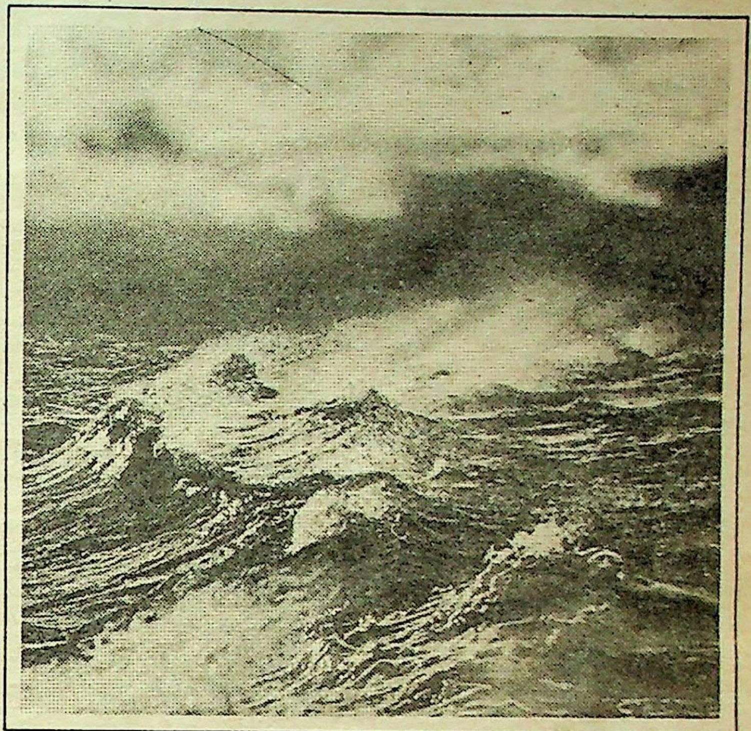

बंबई नगरी कभी यहां बसी थी

न सिडनी होगा, न मायामी, न मांटे कार्लो और न होगी यह बंबई। उनकी जगह होगा यह उफ़नता सागर जल और उन पर छाया होगा एक भयावह सन्नाटा।

और तब ये वाचाल नगर एक कभी न टूटनेवाली ख़ामोशी में खो चुके होंगे।

कुछ ऐसा ही होगा तब।

यदि यह भविष्य आपको तनिक भी भयभीत करता है, तो वह कीजिए जो आपको करना चाहिए।

इस धरती को बचाइए
यही हमारा एक मात्र संसार है

दि मिनरल्स एण्ड मेटल्स ट्रेडिंग
कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड.
स्कोप परिसर, कोर 1, 7 लोदी रोड
नयी दिल्ली-110003.

R K SWAMY/MMTC/5879/HIN

विक्रय हो ज्यादा –
लेखा जांच हो बाकायदा

आयकर अधिनियम 1961 के अंतर्गत

अनिवार्य लेखा परीक्षा

आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 44 क ख के अंतर्गत व्यापारियों व व्यवसायियों के लिए "निर्धारित तिथि" तक "एकाउंटेंट" से अपने पूर्व वर्ष के खातों का आडिट करवाना अनिवार्य है :

(क) व्यापारी	यदि वार्षिक बिक्री, टर्न ओवर या सकल प्राप्तियां चालीस लाख रुपये से अधिक हों।
(ख) व्यवसायी	यदि वार्षिक प्राप्तियां दस लाख रुपये से अधिक हों।

एकाउंटेंट

या तो "चार्टर्ड एकाउंटेंट" या किसी राज्य के मामले में कोई ऐसा व्यक्ति जो कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 226(2) के अधीन उस राज्य में पंजीकृत कंपनियों के लिए आडिटर के रूप में नियुक्ति के योग्य हो।

निर्धारित तिथि

(क) कंपनी के मामले में	: निर्धारण वर्ष के 31 दिसंबर तक
(ख) अन्य मामलों में	: निर्धारण वर्ष के 31 अक्तूबर तक

"एकाउंटेंट" से निर्धारित प्रारूप में आडिट रिपोर्ट प्राप्त करें।

उल्लंघन के लिए दंड

कानून के अंतर्गत नियत समय के अंदर ऐसी आडिट रिपोर्ट प्राप्त करने में या अपनी आय की रिटर्न दाखिल करते समय उसे साथ लगाने में भूल करने पर कुल बिक्री, टर्न ओवर या सकल प्राप्तियों के एक बटा दो प्रतिशत के बराबर राशि, जोकि अधिकतम एक लाख रुपये तक है, जुर्माने के रूप में वसूल की जा सकती है।

आयकर विभाग
आयकर निदेशालय (ग सां प्र व जन संपर्क)
नयी दिल्ली-110001

डीएवीपी 90 131

हिन्दी अकादमी, दिल्ली
का महत्वपूर्ण प्रकाशन

'इन्द्रप्रस्थ कहानी संग्रह'

- इस संग्रह में वरिष्ठ पीढ़ी के एवं युवा पीढ़ी के कहानीकारों की रचना-दृष्टि एक साथ ही पाठकों के लिए उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है ।
- लगभग 300 पृष्ठ के इस कहानी संग्रह में 35 कहानियां संकलित की गई हैं ।
- ये कहानियां जहां आज के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का आईना प्रस्तुत करती हैं, वहीं जीवन के विभिन्न पक्षों को अपने अंक में समेटते हुए मानवीय रिश्तों, संवेदनाओं और परिवेश से भी जुड़ी हुई हैं ।
- कृपया अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए ।
- रॉयल डिमाइ आकार में पक्की जिल्द सहित संग्रह का मूल्य केवल 100/- रु, जिसे सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली के नाम मनीआर्डर/पोस्टल आर्डर/बैंक ड्राफ्ट द्वारा नीचे दिये गये पते पर भेजा जा सकता है ।
- अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

—डॉ. नारायणदत्त पालीवाल
सचिव,
हिन्दी अकादमी,
ए-26/27, सनलाइट इंश्योरैंस बिल्डिंग,
आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110 002.

733950
730274

हिन्दी अकादमी

महत्वपूर्ण कार्य व उपलब्धियां

सम्मान, पुरस्कार, छात्रवृत्ति आदि

१. **'शलाका' सम्मान :** हिंदी अकादमी का यह सर्वोच्च सम्मान है. यह सम्मान अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी भाषा, साहित्य एवं भाषाई एकता और संस्कृति के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा और योगदान के लिए दिया जाता है.

२. **साहित्यकार सम्मान :** हिंदी भाषा और साहित्य की विशिष्ट सेवा तथा प्रचार व प्रसार के लिए ३९ साहित्यकार पत्रकार और हिंदी-सेवी सम्मानित. सम्मान स्वरूप २१,०००/- रु. की राशि, प्रशस्ति-पत्र व शॉल भेंट.

३. **साहित्यिक कृति पुरस्कार :** रचनात्मक एवं उद्देश्यपूर्ण साहित्य सृजन के लिए ६७ लेखक पुरस्कृत. पुरस्कार स्वरूप १११०१/- रु. की राशि तथा ट्राफी भेंट.

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पुरस्कार भी हैं :

—बाल साहित्य पुरस्कार
—नवोदित लेखक पुरस्कार
—छात्र पुरस्कार
—विश्वविद्यालय कविता पुरस्कार
—शोध छात्रवृत्ति

आर्थिक सहयोग व सहायता

१. **साहित्यकार सहयोग :** ५० से अधिक विपत्तिग्रस्त या ज़रूरतमंद साहित्यकारों अथवा उनके परिवार के आश्रितों को आर्थक सहायोग.

२. **छात्र सहयोग :** २५ छात्रों को उच्च शिक्षा अथवा शोध कार्य के लिए आर्थिक सहयोग.

३. **संस्था सहयोग :** लगभग २५० स्वयंसेवी संस्थाओं को हिंदी के प्रचार व प्रसार से संबद्ध कार्यों के लिए आर्थिक सहयोग.

४. **स्कूल व कॉलेजों को सहयोग :** छात्रों में हिंदी के प्रति रुचि जागृत करने तथा उनकी साहित्यिक प्रतिभा के विकास के लिए स्कूल व कॉलेजों में प्रतियोगिताओं, गोष्ठियों, परिचर्चाओं आदि के आयोजन के लिए सहयोग.

५. **प्रकाशन सहयोग :** लगभग २०० लेखकों को उनकी पांडुलिपियों के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग.

६. **लघु पत्र-पत्रिका सहयोग :** लगभग २५० लघु पत्र-पत्रिकाओं को विज्ञापन के माध्यम से सहयोग.

(इ) गोष्ठियां, सम्मेलन, परिचर्चा आदि

अकादमी द्वारा समय-समय पर साहित्यिक गोष्ठियों, सम्मेलनों, परिचर्चाओं आदि का आयोजन किया जाता है. आयोजित कार्यक्रमों में कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं :

'शिक्षा' गोष्ठी, 'पत्रकारिता' गोष्ठी, 'अनुवाद' गोष्ठी, 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' गोष्ठी, 'भारतेंद्र हरिश्चंद्र. गोष्ठी, 'मैथिलीशरण गुप्त' गोष्ठी, 'मुंशी प्रेमचंद. गोष्ठी, 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद', गोष्ठी, 'हिंदी और राष्ट्रीय एकता' गोष्ठी, 'हिंदी-उर्दू आपसी संबंध' गोष्ठी, 'हिंदी के विकास में मुस्लिम साहित्यकारों का योगदान' संगोष्ठी, 'प्रशासनिक कार्यों में हिंदी का प्रयोग व प्रगति' गोष्ठी, 'तुलसी के काव्य में भारतीय संस्कृति' संगोष्ठी, 'आचार्य काका कालेलकर' संगोष्ठी, 'मदन मोहन मालवीय' संगोष्ठी, 'सूर्यकांत त्रिपाठी' 'निराला' गोष्ठी, 'डॉ. जाकिर हुसैन संगोष्ठी, 'संत रविदास' संगोष्ठी, सुब्रह्मण्य भारती' संगोष्ठी, 'दयानंद सरस्वती' संगोष्ठी, 'पं. रामनरेश त्रिपाठी' जन्म शताब्दी संगोष्ठी, 'हिंदी के विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान' विषय पर संगोष्ठी, 'हिंदी के प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान' विषय पर संगोष्ठी, 'स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी साहित्यकारों का योगदान' परिचर्चा, 'साहित्य और सौहार्द्र' परिचर्चा, 'हिंदी के २० बसंत' परिचर्चा, 'हिंदी हम सबकी' परिचर्चा, 'हिंदी शिक्षक' सम्मेलन, हिंदी कार्यकर्ता' सम्मेलन, 'हिंदी दिवस/सप्ताह' का आयोजन, 'अखिल भारतीय हिंदी प्रकाशक संघ एवं अखिल भारतीय हिंदी संथा संघ के सदस्यों में भेंट व वार्ता, 'एकता ज्योति' संयोजन व आयोजन, हरियाणा साहित्य अकादमी के साथ मिलकर 'तुलसी जयंती' का आयोजन, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के दिल्ली में आयोजित ४४वें राष्ट्रीय अधिवेशन में सहयोग.

कवि-सम्मेलन

अकादमी द्वारा प्रतिवर्ष मुख्य रूप से गणतंत्र दिवस तथा स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है. राष्ट्रीय एकता तथा सांप्रदायिक सौमनस्य के प्रचार और प्रसार के उद्देश्य से कुछ अन्य विशेष अवसरों पर भी राष्ट्रीय कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है. इस श्रृंखला के अंतर्गत अकादमी द्वारा आयोजित 'एकता के स्वर', 'वंदना के स्वर', 'चेतना के स्वर' और 'सौहार्द्र के स्वर' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

पुस्तकालय, वाचनालय व हिंदी केंद्र

हिंदी अकादमी द्वारा मॉडल टाउन स्थित छत्रसाल स्टोडियम में दस हजार से अधिक संदर्भ ग्रंथों वाले एक पुस्तकालय व वाचनालय की स्थापना की गयी है. इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों तथा पुनर्वास कालोनियों में हिंदी, उर्दू और पंजाबी भाषाओं के ६० से अधिक संयुक्त पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना भी की गयी है. अकादमी द्वारा स्वयंसेवी संस्थाओं को भी पुस्तकालय और वाचनालय के लिए सहयोग दिया जाता है.

हिंदी अकादमी द्वारा तीस हजारी, विकास भवन तथा गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, राजघाट, नयी दिल्ली में हिंदी केंद्रों की स्थापना भी की गयी है.

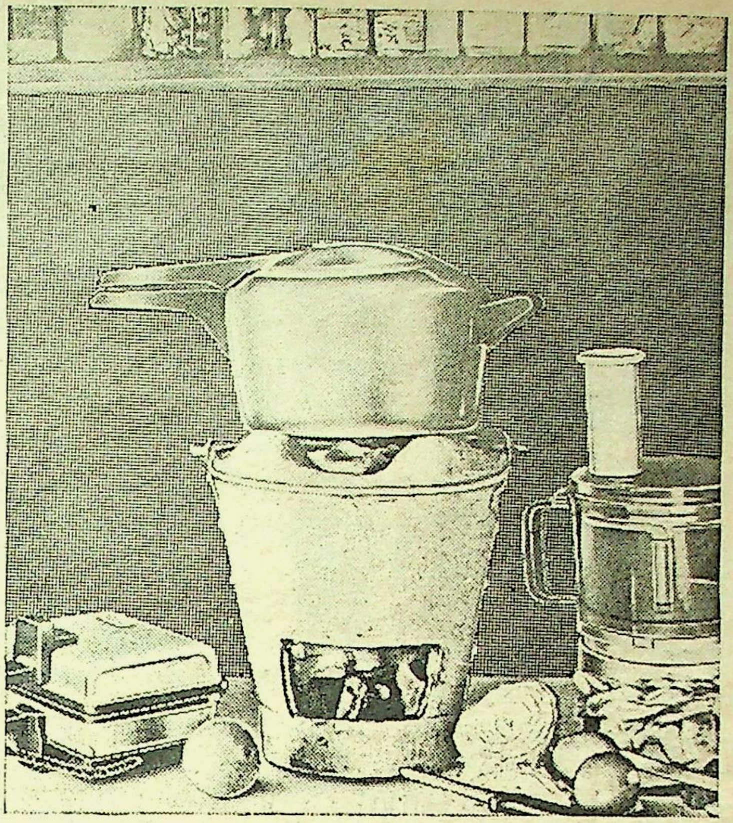

सन् 2010 तक भारतीय गृहणी के लिए एक वक्त का खाना बनाना दिन भर का कार्य हो जाएगा!

क्योंकि सन् 2010 तक हमारे देश के तेल भण्डार रिक्त हो चुके होंगे। तब देश में शायद ना तो कुकिंग गैस होगी, ना मिट्टी का तेल — ना पेट्रोल और ना ही डीज़ल!

हमारी आयात पर पूर्ण निर्भरता सुनिश्चित होगी एवं देश का आयात-निर्यात संतुलन अस्थिर हो जाएगा! पहले से ही हम 6400 करोड़ रुपये मूल्य का पेट्रोलियम आयात करते हैं जो कि हमारे निर्यात की आमदनी का 24% हिस्सा है!

प्रतिवर्ष हम 2000 क़रोड़ रुपये मूल्य के पेट्रोलियम उत्पाद बरबाद करते हैं।

यदि हम इसके संरक्षण के लिए अभी से कदम नहीं उठाएंगे तो सन् 2010 तक भारतीय गृहणी को खाना बनाने के लिए उस ईंधन की जरुरत होगी जो चार दशक पूर्व इस्तेमाल किया जाता था।

अधिक जानकारी व सहायता के लिए लिखें, परामर्श करें या मिलें।

परवाह है, हमें!

कृपया मुझे पेट्रोलियम कंज़रवेशन के बारे में मुफ़्त पुस्तकें भेजें!

नाम____________________

पता____________________

____

शहर/जिला____________________

PCRA
पैट्रोलियम कंजर्वेशन
रिसर्च एसोसिएशन
पोस्ट बॉक्स नं. 572, नई दिल्ली-110001
फोन: 3315868

Mudra:D PCRA:7431 Hin

0805-76

साहित्य अकादेमी के नये प्रकाशन

पृथ्वी की पीड़ा	लेखक	जोगेश दास	१९८९	४०.०० रुपये
भारतीय अंग्रेजी-साहित्य का इतिहास	लेखक	एम. के. नाईक	१९८९	६०.०० ,,
आधुनिक हंगारी कविता	संपादक	मिकलोश वायेदा	१९८९	५०.०० ,,
माखनलाल चतुर्वेदी	लेखक	श्रीकांत जोशी	१९८९	२०.०० ,,
हिंदी कहानी संग्रह	संपादक	भीष्म साहनी	१९८८	५०.०० ,,
आजादी	लेखक	चमल नाहल	१९८८	६०.०० ,,
बड़ा चिड़ियाघर और अन्य कविताएं	अनुवादक	गिरधर राठी	१९८८	१५.०० ,,
स्वामी दयानंद सरस्वती	लेखक	विष्णु प्रभाकर	१९८९	१०.०० ,,
प्रेमचंद	लेखक	प्रकाशचंद्र गुप्त	१९८९	१०.०० ,,
राजा राममोहन राय	लेखक	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर	१९८९	१०.०० ,,
मार्तिन फिएर्रो	लेखक	खोसे अर्नान्देस	१९८९	६०.०० ,,

डाक व्यय निःशुल्क ● १०% की छूट.

शुल्क मनीआर्डर/बैंक-ड्राफ्ट द्वारा सचिव, साहित्य अकादेमी के नाम भेजें.

अधिक जानकारी और निःशुल्क सूचीपत्र के लिए लिखें :

बिक्री प्रबंधक
साहित्य अकादेमी
'स्वाति', मंदिर मार्ग
नई दिल्ली-११० ००१
दूरभाष : ३५३२९७

रवींद्र भवन
३५, फ़ीरोज़शाह मार्ग
नई दिल्ली-११० ००१

२९, एल्डाम्स रोड
तेनाम पेठ
मद्रास-६०० ०१८

१७२, मुंबई मराठी ग्रंथ
संग्रहालय मार्ग, दादर
बंबई-४०० ०१४

जीवन तारा बिल्डिंग,
चौथी मंजिल
डायमंड हारबौर रोड
कलकत्ता-७०० ०५३

साक्षरता

हिंदी अकादमी की यह एक नयीं योजना है, जिसके अंतर्गत ग्रामीण व पिछड़े इलाकों तथा हरिजन और पुनर्वास बस्तियों में साक्षरता कार्यक्रम को लागू किया गया है. इसके अंतर्गत ग्रामीण व पिछड़े इलाकों तथा हरिजन और पुनर्वास बस्तियों में अनपढ़ तथा निरक्षर व्यक्तियों को हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान (शब्द व अक्षर पहचान) दिये जाने की व्यवस्था है. अब तक रंगपुरी पहाड़, महिपालपुर व अन्य कई बस्तियों में ऐसे केंद्र स्थापित किये जा चुके हैं.

प्रकाशन

हिंदी अकादमी द्वारा कई महत्वपूर्ण प्रकाशन आरंभ किये गये हैं, जिनकी सर्वत्र सराहना की गयी है. इनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार हैं:

१. **'इंद्रप्रस्थ भारती'—त्रैमासिक पत्रिका :** 'इंद्रप्रस्थ भारती' हिंदी अकादमी की त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है, जिसके पूरे देश में पाठक हैं.

२. **संकल्प :** हिंदी अकादमी द्वारा हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में 'संक़ल्प' नामक स्मारिका का प्रकाशन किया जाता है. आकदमी द्वारा पिछले वर्ष से स्मारिका के स्थान पर पूर्ण ग्रंथ का प्रकाशन आरंभ किया गया है.

३. **'दिल्ली और आजादी :** 'दिल्ली और आजादी' दिल्ली के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास है. हिंदी अकादमी द्वारा इस पुस्तक का प्रकाशन दिल्ली प्रशासन के स्वतंत्रता सेनानी समन्वय समिति के लिए किया गया है.

४. **'ज्योति कलश' :** हिंदी अकादमी द्वारा गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में लाल किले पर आयोजित कवि सम्मेलन में सुनायी गयी कविताओं को 'ज्योति कलश' नामक पुस्तक में संकलित और प्रकाशित किया जाता है.

५. **'उगती किरणें' :** हिंदी अकादमी द्वारा आयोजित नवोदित लेखक पुरस्कार प्रतियोगिता की पुरस्कृत रचनाओं को 'उगती किरणें' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया जाता है.

६. **'दिल्ली हिंदी साहित्यकार निर्देशिका' :** हिंदी अकादमी द्वारा दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र में हिंदी लेखकों, कवियों और साहित्यकारों के संक्षिप्त परिचय 'निर्देशिका' का प्रकाशन किया गया है. इस निर्देशिका में लगभग ५०० साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय शामिल है.

अनुवाद योजना

भाषायी संस्कृति और पारस्परिक आदान-प्रदान के उद्देश्य से हिंदी के श्रेष्ठ साहित्य का अन्य भारतीय भाषाओं में तथा अन्य भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित करने का प्रावधान है.

अन्य विविध

हिंदी अकादमी द्वारा उर्दू, पंजाबी और संस्कृत अकादमी के साथ मिलकर भी संयुक्त कार्यक्रमों का समय-समय पर आयोजन किया जाता है. □

त्तर रेलवे आपके नित्य जीवन का अभिन्न अंग

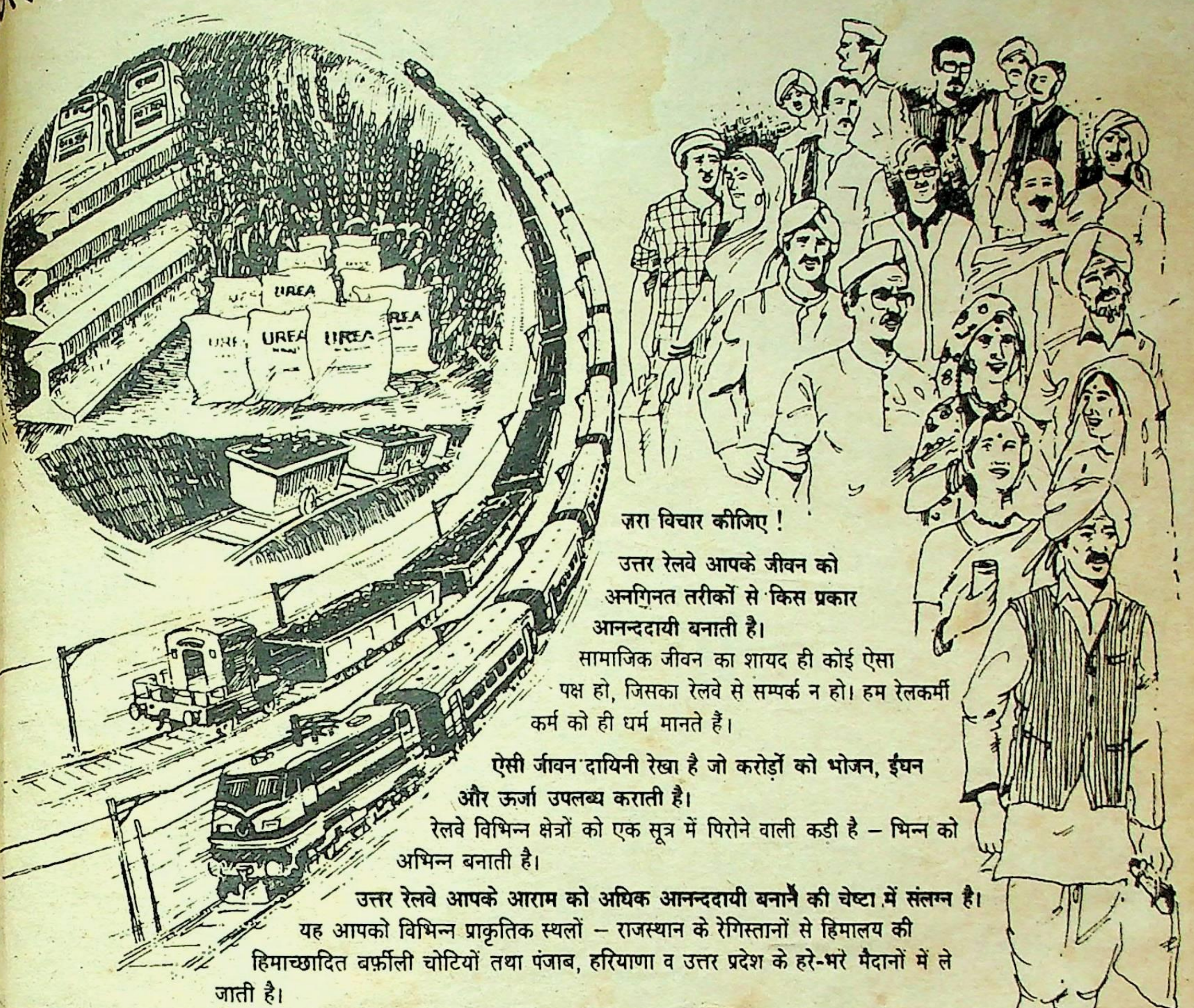

ज़रा विचार कीजिए !

उत्तर रेलवे आपके जीवन को अनगिनत तरीकों से किस प्रकार आनन्ददायी बनाती है।

सामाजिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जिसका रेलवे से सम्पर्क न हो। हम रेलकर्मी कर्म को ही धर्म मानते हैं।

ऐसी जीवन दायिनी रेखा है जो करोड़ों को भोजन, ईंधन और ऊर्जा उपलब्ध कराती है।

रेलवे विभिन्न क्षेत्रों को एक सूत्र में पिरोने वाली कड़ी है – भिन्न को अभिन्न बनाती है।

उत्तर रेलवे आपके आराम को अधिक आनन्ददायी बनाने की चेष्टा में संलग्न है। यह आपको विभिन्न प्राकृतिक स्थलों – राजस्थान के रेगिस्तानों से हिमालय की हिमाच्छादित बर्फ़ीली चोटियों तथा पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के हरे-भरे मैदानों में ले जाती है।

उत्तरी भारत में रेलवे लगभग सवा सौ वर्षों से राष्ट्रीय विकास के प्रत्येक प्रयास – परिवहन, हरित क्रांति, ऊर्जा उत्पादन, तीव्र औद्योगीकरण आदि में सक्रिय योगदान दे रही है।
उत्तर रेलवे प्रतिदिन 900 मेल/एक्सप्रेस एवं सवारी गाड़ियों में 11 लाख यात्रियों का वहन करती है। साथ ही प्रतिदिन 2 लाख टन माल ढोया जाता है।

उत्तर रेलवे की दैनिक गतिविधियों में शामिल हैं –

- 47,000 टन अनाज का उत्तर के उपजाऊ क्षेत्र से देश के विभिन्न भागों को परिवहन.
- 62,000 टन कोयला, उद्योगों के लिए पहुँचाना.
- 15,000 टन पेट्रोलियम पदार्थों का यातायात.
- 17,000 टन खाद ढोना.

ये सब देश में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की भावना की जागृति लाने में सहायक हैं।

रेल पटरियों का जाल, जीवन दायिनी शिराओं और धमनियों की भांति काम कर रहा है।

उत्तर रेलवे करोड़ों देश वासियों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में सतत प्रयत्नशील है।

उत्तर रेलवे

उत्तरी क्षितिज में स्थिर और निरंतर चमकता हुआ नक्षत्र है – उत्तर रेलवे

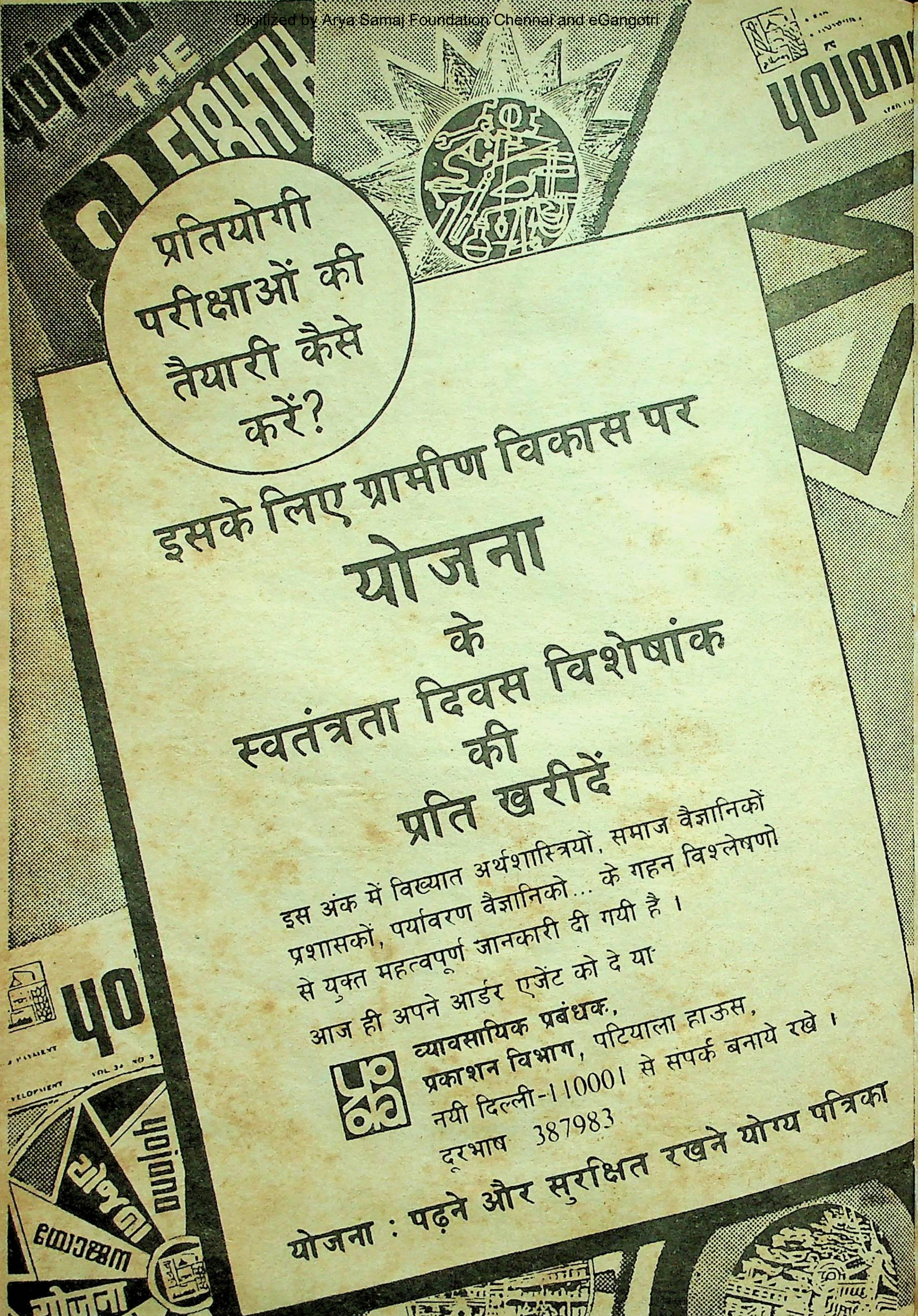
yojana
THE EIGHTH
yojana
VOL 34 NO 9
DEVELOPMENT
योजना
योजना

प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कैसे करें?

इसके लिए ग्रामीण विकास पर

योजना

के

स्वतंत्रता दिवस विशेषांक

की

प्रति खरीदें

इस अंक में विख्यात अर्थशास्त्रियों, समाज वैज्ञानिकों प्रशासकों, पर्यावरण वैज्ञानिको... के गहन विश्लेषणो से युक्त महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है ।

आज ही अपने आर्डर एजेंट को दे या

व्यावसायिक प्रबंधक,
प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस,
नयी दिल्ली-110001 से संपर्क बनाये रखे ।
दूरभाष 387983

योजना : पढ़ने और सुरक्षित रखने योग्य पत्रिका

Compiled
1999-2000